* ओ३म् *

अथ सत्यार्थप्रकाशः

वेदादिविविधसच्छास्त्रप्रमाणैः
समन्वितः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य-
महर्षिदयानन्दसरस्वतीस्वामिविरचितः
(सर्वथा राजनियमे नियोजितः)

प्रकाशक :
वैदिक पुस्तकालय
दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर

प्रकाशक : **वैदिक पुस्तकालय**
दयानन्दाश्रम, अजमेर

संस्करण : ३९वीं आवृत्तिः
सृष्टिसंवत् १९६०८५३१०६
दयानन्द जन्माब्द १८१
विक्रमी सम्वत् २०६२
ईस्वी सन् २००५

ISBN 81-88834-27-0

मूल्य : **१२०.०० रुपये (पुस्तकालय संस्करण)**

शब्द संयोजक : **स्वस्ति कम्प्यूटर्स,**
कैलाशनगर, दिल्ली-११००३१
चलभाष : ०९२११३-६२७३३, ०९२५५९-३५२८९

मुद्रक : **राधा प्रेस**
कैलाशनगर, दिल्ली-११० ०३१
दूरभाष : ०११-२२०८३१०७

प्रकाशकीय

परोपकारिणी सभा, महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी सभा है। महर्षि जी ने अपना धन, वस्त्र, पुस्तक, यन्त्रालय आदि सभा को सौंपे थे। इस सभा की स्थापना करते हुए उन्होंने सभा के तीन उद्देश्य रखे थे। १. आर्ष साहित्य का प्रकाशन द्वारा प्रसार, २. विश्व में वैदिक धर्म का प्रचार तथा ३. आर्यावर्त्तीय दीन अनाथ जनों की रक्षा। स्वामी जी महाराज जब स्वर्गवासी हुए तभी से सभा उनके उद्देश्यों को पूर्ण करने में संलग्न है।

सभा का पहला प्रयास स्वामी जी के साहित्य एवं सामग्री को सुरक्षित करने का रहा है। भारत सरकार के माध्यम से उनकी निजी वस्तुओं की रासायनिक पद्धति से सुरक्षा कराई है। पटलीकरण, माइक्रोफिल्म तथा छायाचित्र आदि के माध्यम से पाण्डुलिपियाँ कागज-पत्र आदि पर्याप्त मात्रा में सुरक्षित कर लिये हैं।

महर्षि जी द्वारा लिखित एवं प्रकाशित समग्र साहित्य सभा ने प्रकाशित किया है। सभा का विचार है ऋषि के सम्पूर्ण साहित्य का मानक संस्करण प्रकाशित हो, यह प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी गई है। सत्यार्थप्रकाश का यह संस्करण इसी प्रक्रिया की एक कड़ी है।

इस संस्करण को शुद्ध, सुन्दर और प्रामाणिक बनाने के लिए आर्य जगत् के शोध विद्वान्, पंजाब विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्र के पूर्व विभागाध्यक्ष, ऋषि में अनन्य निष्ठा रखनेवाले डॉ० रामप्रकाश जी तथा आर्ष साहित्य और ऋषि कार्य के लिए समर्पित योग्य विद्वान् श्री विरजानन्द जी दैवकरणि ने जो परिश्रम किया है, उसका मूल्यांकन परिश्रमी विद्वान् ही कर सकता है। आप दोनों ने छह मास से अधिक समय लगाकर सम्पूर्ण ग्रन्थ का दोनों पाण्डुलिपियों और सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण से मिलान करने का कठिन कार्य सम्पन्न किया है। साथ ही आर्यजगत् के प्रसिद्ध शोध विद्वान् डॉ० सुरेन्द्रकुमार के परामर्श एवं सुझाव इस कार्य में पर्याप्त सहायक रहे हैं। सभा आप सबका आभार मानती है और ईश्वर से आपके उत्तम स्वास्थ्य व दीर्घायुष्य की कामना करती है।

पते रहित प्रमाणों के पते उपयोगिता की दृष्टि से [ ] इस कोष्ठक में यथावत् रक्खे गये हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि पाठकों को यह प्रयास लाभान्वित करेगा।

अजमेर — **धर्मवीर**

१७.१०.२००५ मन्त्री, परोपकारिणी सभा

इस संस्करण के सम्बन्ध में

परोपकारिणी सभा अजमेर में महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्राय: सभी ग्रन्थों की मूल प्रतियाँ हैं। इनमें से सत्यार्थप्रकाश की दो प्रतियाँ हैं। इनके नाम 'मूलप्रति' तथा 'मुद्रणप्रति' रक्खे हुए हैं। मूलप्रति से मुद्रणप्रति तैयार की गई थी। मुद्रणप्रति (प्रेस कापी) के आधार पर सन् १८८४ ईसवी में सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण छपा था। इतने लम्बे अन्तराल में विभिन्न संशोधकों के हाथों इतने संशोधन, परिवर्त्तन तथा परिवर्द्धन हो गए कि मूलपाठ का निश्चय करना कठिन होने लग गया था। मूलप्रति से मुद्रणप्रति लिखनेवाले महर्षि के लेखक तथा प्रतिलिपिकर्त्ता ने सर्वप्रथम यह फेर बदल की थी। महर्षि अन्य लोकोपकारक कार्यों में व्यस्त रहने से तथा लेखक पर विश्वास करने से मुद्रणप्रति को मूलप्रति से अक्षरश: नहीं मिला सके। परिणामत: लेखक ने प्रतिलिपि करते समय अनेक स्थलों पर मूल पंक्तियाँ छोड़कर उनके आशय के आधार पर अपने शब्दों में महर्षि का भाव अभिव्यक्त कर दिया। अनेक स्थानों पर भूल से भी पंक्तियाँ छूट गईं तथा अनेक पंक्तियाँ दुबारा भी लिखी गईं। अनेकत्र मूल शब्द के स्थान पर पर्यायवाची शब्द भी लिख दिये थे। मुंशी समर्थदान ने भी पुनरावृत्ति समझकर १३वें-१४वें समुल्लास की अनेक आयतें और समीक्षायें काट दीं। यह सब करना महर्षि दयानन्द सरस्वती के अभिप्राय से विरुद्ध होता चला गया।

परोपकारिणी सभा से अतिरिक्त अन्य प्रकाशकों के पास यह सुविधा कभी नहीं रही कि वे मूलप्रति से मिलान करके महर्षि के सभी ग्रन्थों का शुद्धतम पाठ प्रकाशित कर सकें। परोपकारिणी सभा की ओर से भी कभी-कभी एक मुद्रणप्रति (प्रेस कापी) से ही मिलान करके प्रकाशन किया जाता रहा। मूलप्रति की ओर विशेष दृष्टिपात नहीं किया गया, किन्तु किसी-किसी ने कहीं-कहीं पाठ देखकर सामान्य परिवर्तन किये हैं और न कभी यह सन्देह ही हुआ कि दोनों प्रतियों में कोई मूलभूत पर्याप्त अन्तर भी हो सकता है।

गत अनेक शताब्दियों में ऋषिमुनिकृत ग्रन्थों में विभिन्न मतावलम्बियों ने अपने-अपने सम्प्रदाय के पुष्टियुक्त वचन बना-बनाकर प्रक्षिप्त कर दिये हैं। इसके परिणामस्वरूप मनुस्मृति, ब्राह्मणग्रन्थ, रामायण, महाभारत, श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र आदि ग्रन्थों में वेदादि शास्त्रों की मान्यताओं के विपरीत भी

लेख देखने को मिलते हैं। इसी सम्भावना का भय महर्षि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों में भी दृष्टिगोचर होने लगा था। इस भय के निवारणार्थ परोपकारिणी सभा ने निश्चय किया कि महर्षि के हस्तलेखों से मिलान करके सत्यार्थप्रकाश आदि सभी ग्रन्थों का शुद्ध संस्करण निकाला जाए। इसलिए अनेक विद्वानों के सहयोग और सत्परामर्श के पश्चात् इस संस्करण में निम्नलिखित मानदण्ड अपनाये गये हैं—

१. **मूले मूलाभावादमूलं मूलम्** (सांख्य १.६७) कारण का कारण और मूल का मूल नहीं हुआ करता, इसीलिए सबका मूलकारण होने से सत्यार्थप्रकाश की मूलप्रति स्वत: प्रमाण है।

२. मुद्रणप्रति जहाँ तक मूलप्रति के अनुकूल है, वहीं तक पाठ मान्य किया है। प्रतिलिपिकर्त्ता द्वारा श्रद्धा अथवा भावुकतावश बढ़ाये गये अनावश्यक और अनार्ष वाक्यों को अमान्य किया है।

३. मुद्रणप्रति में महर्षि दयानन्द जी ने जहाँ-जहाँ स्वहस्त से परिवर्तन-परिवर्द्धन किये हैं, वे सभी स्वीकार किये हैं।

४. सन् १८८३ से १८८४ तक प्रकाशित हुए सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण में प्रूफ देखते समय मुद्रणप्रति के पाठ से हटकर जो परिवर्तन-परिवर्द्धन किये गये थे, वे भी प्राय: सभी अपनाये हैं।

कुछ विद्वान् महर्षि की भाषा में वर्तमान समयानुकूल परिवर्त्तन करने का तथा भाव को स्पष्ट करने के लिए कुछ शब्द बढ़ा देने का व्यर्थ आग्रह किया करते हैं यह अनुचित है, अत: इस संस्करण में ऐसा कुछ नहीं किया गया है।

इस प्रकार इस ग्रन्थ को शुद्धतम प्रकाशित करने के लिये विशेष यत्न किया गया है, पुनरपि मानवसुलभस्वभाव अथवा अनवधानतावश कोई त्रुटि रह गई हो तो आगामी आवृत्ति में उसे शुद्ध कर दिया जायेगा। क्योंकि ऐसे कार्यों में दुराग्रह और अभिमान के छोड़ने से ही सत्यमत गृहीत हो सकता है, इसी में विद्वत्ता की शोभा भी है।

गुरुकुल झज्जर
हरयाणा
१७ अक्तूबर, २००५

विद्वदनुचर
विरजानन्द दैवकरणि
(सम्पादक)

अथ सत्यार्थप्रकाशस्य सूचीपत्रम्

विषया: — **पृष्ठम्**

॥ इति ॥

॥ओ३म् सच्चिदानन्दायेश्वराय नमो नमः॥

भूमिका

सत्यार्थप्रकाश को दूसरी वार शुद्ध कर छपवाया है, क्योंकि जिस समय यह ग्रन्थ बनाया था, उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करना, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने का अभ्यास और जन्मभूमि की भाषा गुजराती थी, इत्यादि कारणों से मुझ को इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था। अब इसको अच्छे प्रकार भाषा के व्याकरणानुसार जानकर अभ्यास भी कर लिया है, इसलिए इस समय इसकी भाषा पूर्व से उत्तम हुई है। कहीं-कहीं शब्द वाक्य रचना का भेद हुआ है, वह करना उचित था, क्योंकि उसके भेद किए विना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी, परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है, प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हाँ, जो प्रथम छपने में कहीं-कहीं भूल रही थी, वह-वह निकाल शोधकर ठीक-ठीक कर दी गई है।

यह ग्रन्थ १४ समुल्लास, अर्थात् चौदह विभागों में रचित हुआ है। इसमें १० दश समुल्लास पूर्वार्द्ध और चार उत्तरार्द्ध में बने हैं, परन्तु अन्त्य के दो समुल्लास और पश्चात् स्वसिद्धान्त किसी कारण से प्रथम नहीं छप सके थे, अब वे भी छपवा दिए हैं।

१. प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओङ्काराऽऽदि नामों की व्याख्या।

२. द्वितीय समुल्लास में सन्तानों की शिक्षा।

३. तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठन-पाठनव्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने-पढ़ाने की रीति।

४. चतुर्थ समुल्लास में विवाह और गृहाश्रम का व्यवहार।

५. पञ्चम समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम की विधि।

६. छठे समुल्लास में राजधर्म।

७. सप्तम समुल्लास में वेदेश्वर विषय।

८. अष्टम समुल्लास में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय।

९. नवम समुल्लास में विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष की व्याख्या।

१०. दशवें समुल्लास में आचार, अनाचार, भक्ष्याभक्ष्य विषय।

११. एकादश समुल्लास में आर्य्यावर्त्तीय मतमतान्तर का खण्डन-मण्डन विषय।

१२. द्वादश समुल्लास में चारवाक, बौद्ध और जैनमत का विषय।

१३. त्रयोदश समुल्लास में ईसाई मत का विषय।

१४. चौदहवें सुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय। और चौदह समुल्लासों के अन्त में आर्यों के सनातन वेदविहित मत की विशेषतः व्याख्या लिखी है, जिसको मैं भी यथावत् मानता हूँ।

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना, सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता, जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाए। किन्तु जो जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना, सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत-वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त रहता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर देना, पश्चात् मनुष्य लोग स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके, सदा आनन्द में रहैं। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जाननेहारा है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़, असत्य पर झुक जाता है। इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्याऽसत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें। विना सत्योपदेश के अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

और जो कहीं-कहीं भूल-चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल-चूक रह जाए, उसको जानने जनाने पर, जैसा वह सत्य होगा, वैसा ही कर दिया जाएगा। और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शङ्का वा खण्डन-मण्डन करेगा, उस पर ध्यान न दिया जाएगा। हाँ, जो वह मनुष्यमात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा, उसको सत्य-सत्य समझने पर, उसका मत संगृहीत होगा।

यदपि आजकाल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त, अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल, सबमें सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्तें-वर्त्तावें, तो जगत् का पूर्ण हित होवे, क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर, अनेकविधि दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि ने, जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दुःखसागर में डुबा दिया है। इनमें से जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्य में धर प्रवृत्त होता है, उससे स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर, अनेक प्रकार विघ्न करते हैं। परन्तु—

'सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः'

सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है। इस दृढ़ निश्चय के आलम्ब से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी नहीं सत्यार्थप्रकाश करने से हटते। यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि—

''यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्''

—यह गीता का वचन है।

इसका अभिप्राय यह है कि जो-जो विद्या और धर्मप्राप्ति के कर्म हैं, वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं। ऐसी बातों को चित्त में धर के इस ग्रन्थ को रचा है। श्रोता वा पाठकगण भी प्रथम प्रेम से देख के, इस ग्रन्थ का सत्य-सत्य तात्पर्य जानकर यथेष्ट करें।

इसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो-जो सब मतों में सत्य-सत्य बातें हैं, वे-वे सबमें अविरुद्ध होने से, उनका स्वीकार करके, जो-जो मतमतान्तरों में मिथ्या बातें हैं, उन-उनका खण्डन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रक्खा है कि सब मतमतान्तरों की गुप्त वा प्रगट बुरी बातों का प्रकाश कर, विद्वान्-अविद्वान् सब साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है, जिससे सबसे सबका विचार होकर, परस्पर प्रेमी हो के, एक मतस्थ होवें।

यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और वसता हूँ, तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तर की झूठी बातों का पक्षपात न कर, यथातथ्य प्रकाश करता हूँ, वैसे ही दूसरे देश वा मत-वालों के साथ भी वैसा ही वर्त्तता हूँ। जैसा स्वदेशवालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूँ, वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है। क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकाल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्ध करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बहिः हैं। क्योंकि जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दु;ख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं, तो वे मनुष्य स्वभावयुक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है, वही मनुष्य कहाता है। और जो स्वार्थवश होकर परहानि मात्र करता रहता है, वह पशुओं का बड़ा भाई है।

अब आर्य्यावर्त्त के विषय में विशेषकर ग्यारहवें समुल्लास तक लिखा है। इन समुल्लासों में जो सत्यमत प्रकाशित किया है, वह वेदोक्त होने से मुझको सर्वथा मन्तव्य और जो नवीन पुराण तन्त्रादि ग्रन्थोक्त बातों का खण्डन किया है, वे त्यक्तव्य हैं।

यदपि जो १२वें समुल्लास में चारवाक का मत लिखा है वह इस समय

क्षीणाऽस्त-सा है, और यह चारवाक बौद्ध जैन से बहुत सम्बन्ध अनीश्वरवादादि में रखता है। यह चारवाक सबसे बड़ा नास्तिक है, उसकी चेष्टा का रोकना अवश्य है। क्योंकि जो मिथ्या बात न रोकी जाय, तो संसार में बहुत-से अनर्थ प्रवृत्त हो जायें। चारवाक का जो मत है वह बौद्ध और जैन का मत है, वह भी १२वें समुल्लास में संक्षेप से लिखा गया है। और बौद्धों और जैनियों का भी चारवाक के मत के साथ मेल है और कुछ थोड़ा-सा विरोध भी है। और जैन भी बहुत-से अंशों में चारवाक और बौद्धों के साथ मेल रखता है और थोड़ी-सी बातों में भेद है। इसलिए जैनों की भिन्न शाखा गिनी जाती है। वह भेद १२वें समुल्लास में लिख दिया है, यथायोग्य वहीं समझ लेना। जो इसका भिन्न है, सो बारहवें समुल्लास में दिखलाया है। बौद्धमत और जैनमत का विषय भी लिखा है।

इनमें से बौद्धों के दीपवंशादि प्राचीन ग्रन्थों में बौद्धमत संग्रह 'सर्वदर्शनसंग्रह' में दिखलाया है, उसमें से यहाँ लिखा है। और जैनियों के निम्नलिखित सिद्धान्तों के पुस्तक हैं, उनमें से—

४ (चार) मूल सूत्र—१. आवश्यक सूत्र, २. विशेष आवश्यक सूत्र, ३. दशवैकालिक सूत्र, और ४. पाक्षिक सूत्र।

११ (ग्यारह) अङ्ग—१. आचाराङ्ग सूत्र, २. सुयगडाङ्ग सूत्र, ३. ठाणाङ्ग सूत्र, ४. समवायाङ्ग सूत्र, ५. भगवती सूत्र, ६. ज्ञाताधर्मकथा सूत्र, ७. उपासकदशा सूत्र, ८. अन्तगड़दशा सूत्र, ९. अनुत्तरोववाई सूत्र, १०. विपाक सूत्र और ११. प्रश्नव्याकरण सूत्र।

१२ (बारह) उपाङ्ग—१. उववाईय सूत्र, २. रायपसेनी सूत्र, ३. जीवाभिगम सूत्र, ४. पन्नगणा सूत्र, ५. जम्बूद्वीपपण्णति सूत्र, ६. चन्दपन्नति सूत्र, ७. सूरियपण्णति सूत्र, ८. निरीयावलिका सूत्र, ९. कप्पिया सूत्र, १०. कपवड़ीसया सूत्र, ११. पुप्पिया सूत्र और १२. पुप्पचूलिया सूत्र।

५ (पाँच) कल्प सूत्र—१. उत्तराध्ययन सूत्र, २. निशीथ सूत्र, ३. कल्पसूत्र, ४. व्यवहार सूत्र और ५. जीतकल्प सूत्र।

६ (छह) छेद—१. महानिशीथबृहद्वाचना सूत्र, २. महानिशीथलघुवाचना सूत्र, ३. मध्यमवाचना सूत्र, ४. पिण्डनिरुक्ति सूत्र, ५. औघनिरुक्ति सूत्र, ६. पर्य्यूषणा सूत्र।

१० (दश) पयन्ना सूत्र—१. चतुस्सरण सूत्र, २. पञ्चखाण सूत्र, ३. तदुलवैयालिक सूत्र, ४. भक्तिपरिज्ञान सूत्र, ५. महाप्रत्याख्यान सूत्र, ६. चन्दाविजय सूत्र, ७. गणीविजय सूत्र, ८. मरणसमाधि सूत्र, ९. देवेन्द्रस्तवन सूत्र, और १०. संसार सूत्र। तथा नन्दी सूत्र, अनुयोगोद्धार सूत्र भी प्रामाणिक मानते हैं।

५ पञ्चाङ्ग—१. पूर्व सब ग्रन्थों की टीका, २. निरुक्ति, ३. चरणी, ४. भाष्य, ये चार अवयव और ये सब मूल मिल के पञ्चाङ्ग कहाते हैं।

इनमें ढूंढिया अवयवों को नहीं मानते। और इनसे भिन्न भी अनेक ग्रन्थ हैं कि जिनको जैनी लोग मानते हैं। इनका विशेष मत पर विचार बारहवें समुल्लास में देख लीजिए।

जैनियों के ग्रन्थों में लाखों पुनरुक्त दोष हैं और इनमें यह भी स्वभाव है कि जो अपना ग्रन्थ दूसरे मत-वाले के हाथ में हो, वा छपा हो, तो कोई-कोई उस ग्रन्थ को अप्रमाण कहते हैं, यह बात उनकी मिथ्या है, क्योंकि जिसको कोई माने, कोई न माने, इससे वह ग्रन्थ जैनमत से बाहर नहीं हो सकता। हाँ, जिसको कोई न माने और न कभी किसी जैनी ने माना हो, तब तो अग्राह्य हो सकता है, परन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है कि जिसको कोई भी जैनी न मानता हो। इसलिए जो जिस ग्रन्थ को मानता होगा, उस ग्रन्थस्थ विषयक खण्डन-मण्डन भी उसी के लिए समझा जाता है, परन्तु कितने ही ऐसे भी हैं कि उस ग्रन्थ को मानते-जानते हों, तो भी सभा वा संवाद में बदल जाते हैं। इसी हेतु से जैन लोग अपने ग्रन्थों को छिपा रखते हैं। दूसरे मतस्थ को न देते, न सुनाते, न पढ़ाते, इसलिए कि उनमें ऐसी-ऐसी असम्भव बातें भरी हैं, जिनका कोई भी उत्तर जैनियों में से नहीं दे सकता। झूठ बात का छोड़ देना ही उत्तर है।

१३वें समुल्लास में ईसाइयों का मत लिखा है। ये लोग बायबिल को अपना धर्मपुस्तक मानते हैं। इनका विशेष समाचार उसी तेरहवें समुल्लास में देखिए। और चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मतविषय में लिखा है। ये लोग कुरान को अपने मत का मूल पुस्तक मानते हैं। इनका भी विशेष व्यवहार १४वें समुल्लास में देखिए। और इसके आगे वैदिकमतविषय में लिखा है।

जो कोई इस ग्रन्थ को कर्त्ता के तात्पर्य से विरुद्ध मनसा से देखेगा, उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा। क्योंकि वाक्यार्थबोध में चार कारण होते हैं—आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य। जब तक इन चारों बातों पर ध्यान देकर, जो पुरुष ग्रन्थ को देखता है, उसको ग्रन्थ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है।

'आकांक्षा' किसी विषय पर वक्ता की और वाक्यस्थ पदों की आकांक्षा परस्पर होती है।

'योग्यता' वह कहाती है कि जिससे जो हो सके, जैसे जल से सींचना।

'आसत्ति' जिस पद के साथ जिसका सम्बन्ध हो, उसी के समीप पद का बोलना वा लिखना।

'तात्पर्य' जिसके लिए वक्ता ने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो, उसी के साथ उस वचन वा लेख को युक्त करना।

बहुत-से हठी-दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेष कर मत-वाले लोग, क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फसके नष्ट हो जाती है। इसलिए जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बाइबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर, उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिए प्रयत्न करता हूँ, वैसा सबको करना योग्य है।

इन मतों के थोड़े-थोड़े ही दोष प्रकाशित किए हैं, जिनको देखकर मनुष्य लोग सत्याऽसत्य मत का निर्णय कर सकें और सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने-कराने में समर्थ होवें। क्योंकि एक मनुष्य जाति में बहकाकर, विरुद्ध बुद्धि कराके, एक-दूसरे को शत्रु बना, लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहि: है। यद्यपि इस ग्रन्थ को देखकर अविद्वान् लोग अन्यथा ही विचारेंगे, तथापि बुद्धिमान् लोग यथायोग्य इसका अभिप्राय समझेंगे, इसलिए मैं अपने परिश्रम को सफल समझता हूँ और अपना अभिप्राय सब सज्जनों के सामने धरता हूँ। इसको देख-दिखला के, मेरे श्रम को सफल करें। और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करना मुझ वा सब महाशयों का मुख्य कर्त्तव्य कर्म है।

सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करे।

॥ अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वरशिरोमणिषु ॥

॥ इति भूमिका ॥

दयानन्दसरस्वती

स्थान महाराणाजी का उदयपुर
भाद्रपद, शुक्लपक्ष, सम्वत् १९३९

(स्वामी) दयानन्द सरस्वती

ओ३म्

अथ सत्यार्थप्रकाशः

श्रीयुक्तदयानन्दसरस्वतीस्वामिविरचितः

दयाया आनन्दो विलसति परस्स्वात्मविदितः,
सरस्वत्यस्यान्ते निवसति मुदा सत्यशरणा।
तदाख्यातिर्यस्य प्रकटितगुणा राष्ट्रिपरमा,
सको दान्तः शान्तो विदितविदितो वेद्यविदितः॥ १॥
सत्यार्थप्रकाशाय ग्रन्थस्तेनैव निर्मितः।
वेदादिसत्यशास्त्राणां प्रमाणैर्गुणसंयुतः॥ २॥
विशेषभागीह वृणोति यो हितं,
प्रियोऽत्र विद्यां सुकरोति तात्त्विकीम्।
अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया,
स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः॥ ३॥
न ततः फलमस्ति हितं विदुषो,
ह्यधिकं परमं सुलभन्नु पदम्।
लभते सुयतो भवतीह सुखी,
कपटी सुसुखी भविता न सदा॥ ४॥
धर्मात्मा विजयी स शास्त्रशरणो विज्ञानविद्या वरो-
ऽधर्मेणैव हतो विकारसहितोऽधर्मस्सुदुःखप्रदः।
येनाऽसौ विधिवाक्यमानमननात् पाखण्डखण्डः कृत-
स्सत्यं यो विदधाति शास्त्रविहितन्धन्योऽस्तु तादृग्घि सः॥ ५॥[१]

---

१. ये श्लोक सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण की मूलप्रति में विषयसूची के पश्चात् लिखे हुये हैं। महर्षि दयानन्द के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों में भी इसी प्रकार श्लोक लिखने की शैली मिलती है। ये श्लोक प्रथम और द्वितीय संस्करण में प्रकाशित होने से रह गये थे, इसीलिये यहां प्रकाशित किये जा रहे हैं। —**सम्पादक**

सत्यार्थप्रकाश के लेखक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

(विक्रमसंवत् १८८१-१९४०)

॥ ओ३म् ॥

अथ सत्यार्थप्रकाशः

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा।
शन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥
नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।
ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः॥ १॥

—[तुलना—तै०आ०प्रपा० ७। अनु० १]

अर्थ—(ओ३म्) जो यह ओङ्कार शब्द है, वह परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है, क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर हैं वे मिलके एक 'ओ३म्' समुदाय हुआ है। इस एक से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे—अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं।

प्रश्न—परमेश्वर से भिन्न अर्थों के वाचक विराट् आदि क्यों नहीं? ब्रह्माण्ड, पृथिव्यादि भूत, मनुष्य, विद्वान् और वैद्यकशास्त्र में शुण्ठ्यादि ओषधियों के भी ये नाम लिखे हैं।

उत्तर—हैं, परन्तु परमात्मा के भी हैं।

प्रश्न—केवल देवों का ग्रहण इन नामों से करते हो वा नहीं?

उत्तर—आपके ग्रहण करने में क्या प्रमाण है?

प्रश्न—देव सब प्रसिद्ध और वे उत्तम भी हैं, इससे मैं उनका ग्रहण करता हूँ।

उत्तर—क्या परमेश्वर अप्रसिद्ध और उससे कोई उत्तम भी है? पुनः ये नाम परमेश्वर के भी क्यों नहीं मानते? जब परमेश्वर अप्रसिद्ध और उसके तुल्य कोई नहीं, तो उससे उत्तम कोई क्योंकर हो सकेगा? इससे आपका यह कहना सत्य नहीं। क्योंकि इस आपके कहने में बहुत-से दोष भी आते हैं, जैसे—**'उपस्थितं परित्यज्याऽनुपस्थितं याचत इति बाधितन्यायः'** किसी ने किसी के लिए भोजन का पदार्थ रख के कहा कि आप भोजन कीजिए और वह जो उसको छोड़के अप्राप्त भोजन के लिए जहाँ-तहाँ भ्रमण करे, उसको बुद्धिमान् न जानना चाहिए, क्योंकि वह उपस्थित नाम समीप प्राप्त हुए पदार्थ को छोड़के अनुपस्थित अर्थात् अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति के लिए श्रम करता है। इसीसे जैसा वह पुरुष बुद्धिमान् नहीं, वैसा ही आपका कथन हुआ। क्योंकि आप उन विराट् आदि नामों के जो प्रसिद्ध प्रमाणसिद्ध परमेश्वर और ब्रह्माण्डादि उपस्थित अर्थों का परित्याग करके असम्भव और अनुपस्थित देवादि के ग्रहण में श्रम करते हैं, इसमें कोई भी प्रमाण वा युक्ति नहीं। जो आप ऐसा कहें कि 'जहाँ जिसका प्रकरण है वहाँ उसी का ग्रहण करना योग्य है, जैसे किसी ने किसी से कहा कि **'हे भृत्य! त्वं सैन्धवमानय'** तू सैन्धव को ले आ। तब उसको समय अर्थात् प्रकरण का विचार करना अवश्य है। क्योंकि सैन्धव नाम दो पदार्थों का है; एक घोड़े और दूसरा लवण का। जो गमन का समय हो तो घोड़े और भोजन का काल हो तो लवण को ले आना उचित है। और जो गमनसमय में लवण और भोजनसमय में घोड़े को ले आवे, तो उसका स्वामी उसपर क्रुद्ध होकर कहेगा कि तू निर्बुद्धि पुरुष है। गमनसमय में लवण और भोजनकाल में घोड़े के लाने का क्या प्रयोजन था? तू प्रकरणवित् नहीं है, नहीं तो जिस समय में जिसको लाना चाहिए था, उसी को लाता। जो तुझको प्रकरण का विचार करना आवश्यक था, वह तूने नहीं किया, इससे तू मूर्ख है, मेरे पास से चला जा।' इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ जिसका ग्रहण करना उचित हो, वहाँ उसी अर्थ का ग्रहण करना चाहिये तो ऐसा ही हम और आप सब लोगों को मानना और करना भी चाहिए।

अथ मन्त्रार्थः

ओं खं ब्रह्म ॥ १ ॥ —यजुर्वेद अध्याय ४० । मन्त्र १७ ॥

देखिए, वेदों में ऐसे-ऐसे प्रकरणों में 'ओम्' आदि परमेश्वर के नाम हैं।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ॥ २ ॥

—छान्दोग्य उपनिषत्। [प्रपा० १ । खण्ड १ । मन्त्र १]

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम् ॥ ३ ॥

—माण्डूक्य[१] ।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ ४ ॥

—कठोपनिषदि [वल्ली २ मन्त्र १५]

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥ ५ ॥
एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ६ ॥

—मनुस्मृति अध्याय १२। श्लोक [१२२]। १२३।

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराट्।
स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः ॥ ७ ॥

—कैवल्य उपनिषत् ॥ [खण्ड १ । मन्त्र ८]

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ८ ॥

—ऋग्वेदे मण्डले १ । सूक्त १६४ । मन्त्र ४६ ॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः पुरुषञ्जगत् ॥ ९ ॥

—यजुर्वेद अध्याय [१३]। मन्त्र [१८] ॥

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्य्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥ १० ॥

—सामवेद [उ०] प्रपाठक ७। त्रिक ८। मन्त्र २ ॥ [मन्त्र १८५८]

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ११ ॥

—अथर्ववेदे का० ११ । प्रपा० २४ । अ० २ । मं० [१] ॥[११.४.१]

अर्थ—यहाँ इन प्रमाणों के लिखने में तात्पर्य वही है कि जो, ऐसे-ऐसे प्रकरणों में ओङ्कारादि नामों से परमात्मा का ग्रहण होता है, लिख आये। तथा परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं, जैसे लोक में दरिद्री आदि के धनपति आदि नाम होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि कहीं गौणिक, कहीं कार्मिक और कहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक हैं।

'ओम्' आदि नाम सार्थक हैं—जैसे (ओं खं०) **'अवतीत्योम्, आकाशमिव व्यापकत्वात् खम्, सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म'** रक्षा करने से 'ओम्', आकाशवत् व्यापक होने से 'खम्', सबसे बड़ा होने से ईश्वर का नाम 'ब्रह्म' है ॥ १ ॥

(ओमित्येत०) **ओ३म्** जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता, उसी की उपासना करनी योग्य है, अन्य की नहीं ॥ २ ॥

(ओमित्येत०) सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम **ओ३म्** को कहा है, अन्य सब गौणिक नाम हैं ॥ ३ ॥

(सर्वे वेदा०) क्योंकि सब वेद, सब धर्मानुष्ठानरूप तपश्चरण, जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्याश्रम करते हैं, उसका नाम '**ओम्**' है ॥ ४ ॥

(प्रशासिता०) जो सबको शिक्षा देनेहारा, सूक्ष्म से सूक्ष्म, स्वप्रकाशस्वरूप, समाधिस्थ बुद्धि से जानने योग्य है, उसको **परम पुरुष** जानना चाहिए ॥ ५ ॥

और स्वप्रकाश होने से '**अग्नि**', विज्ञानस्वरूप होने से '**मनु**' और सबका पालन करने से '**प्रजापति**', परमैश्वर्यवाला होने से '**इन्द्र**', सबका जीवनमूल होने से '**प्राण**' और निरन्तर व्यापक होने से परमेश्वर का नाम '**ब्रह्म**' है ॥ ६ ॥

(स ब्रह्मा स विष्णु०) सब जगत् के बनाने से '**ब्रह्मा**', सर्वत्र व्यापक होने से '**विष्णु**', दुष्टों को दण्ड देके रुलाने से '**रुद्र**', मङ्गलमय और सबका कल्याणकर्त्ता होने से '**शिव**', '**यः सर्वमश्नुते न क्षरति न**

विनश्यति तदक्षरम्'। १। 'यः स्वयं राजते स स्वराट्'। २। 'योऽग्निरिव कालः कलयिता प्रलयकर्ता स कालाग्निरीश्वरः'। ३। **(अक्षर)** जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी, **(स्वराट्)** स्वयं प्रकाशस्वरूप और **(कालाग्नि)** प्रलय में सबका काल और काल का भी काल है, इसलिए परमेश्वर का नाम **कालाग्नि** है॥ ७॥

(इन्द्रं मित्रं) जो एक, अद्वितीय, सत्य ब्रह्म वस्तु है, उसी के इन्द्रादि सब नाम हैं। **'द्युषु शुद्धेषु पदार्थेषु भवो दिव्यः', 'शोभनानि पर्णानि पालनानि पूर्णानि कर्माणि वा यस्य सः सुपर्णः', 'यो गुर्वात्मा स गरुत्मान्', 'यो मातरिश्वा वायुरिव बलवान् स मातरिश्वा',** (दिव्य) जो प्रकृत्यादि दिव्य पदार्थों में व्याप्त, (सुपर्ण) जिसके उत्तम पालन और पूर्ण कर्म हैं, (गरुत्मान्) जिसका आत्मा अर्थात् स्वरूप महान् है, (मातरिश्वा) जो वायु के समान अनन्त बलवान् है, इसलिए परमात्मा के **'दिव्य', 'सुपर्ण', 'गरुत्मान्'** और **'मातरिश्वा'** ये नाम हैं। शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे॥ ८॥

(भूमिरसि०) **'भवन्ति भूतानि यस्यां सा भूमिः'** जिसमें सब भूत प्राणी होते हैं, इसलिए ईश्वर का नाम **'भूमि'** है। शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे॥ ९॥

(इन्द्रो मह्ना०) इसमें **'इन्द्र'** परमेश्वर ही का नाम है, इसलिए यह प्रमाण लिखा है॥ १०॥

(प्राणाय) जैसे **प्राण** के वश सब शरीर, इन्द्रियाँ होती हैं वैसे परमेश्वर के वश में सब जगत् रहता है॥ ११॥

इत्यादि प्रमाणों के ठीक-ठीक अर्थों के जानने से इन नामों करके परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। क्योंकि 'ओ३म्' और 'अग्न्यादि' नामों के मुख्य अर्थ से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। जैसाकि व्याकरण, निरुक्त, ब्राह्मण, सूत्रादि ऋषि मुनियों के व्याख्यानों से परमेश्वर का ग्रहण देखने में आता है, वैसा ग्रहण करना सबको योग्य है, परन्तु 'ओ३म्' यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहाँ-जहाँ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक,

शुद्ध, सनातन, सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण लिखे हैं वहीं-वहीं इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है और जहाँ-जहाँ ऐसे प्रकरण हैं कि—

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः। [यजुः ३१।५]॥
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत। [यजुः ३१।१२]॥
तस्माद् देवा अजायन्त॥ पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥
[यजुः ३१।९] [यजुः ३१।५]॥

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।

—यह तैत्तिरीयोपनिषद् [वल्ली २। अनुवाक १] का वचन है।

ऐसे प्रकरणों में विराट्, पुरुष, देव, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं, क्योंकि जहाँ-जहाँ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों, वहाँ-वहाँ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता। वह उत्पत्ति आदि व्यवहारों से पृथक् है और उपरोक्त मन्त्रों में उत्पत्ति आदि व्यवहार हैं, इसी से यहाँ विराट् आदि नामों से परमात्मा का ग्रहण न होके, संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है। किन्तु जहाँ-जहाँ सर्वज्ञादि विशेषण हों, वहीं-वहीं परमात्मा और जहाँ-जहाँ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों, वहाँ-वहाँ जीव का ग्रहण होता है, ऐसा सर्वत्र समझना चाहिए। क्योंकि परमेश्वर का जन्म-मरण कभी नहीं होता, इससे विराट् आदि नाम और जन्मादि विशेषणों से जगत् के जड़ और जीवादि पदार्थों का ग्रहण करना उचित है, परमेश्वर का नहीं।

अब जिस प्रकार विराट् आदि नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है, वह प्रकार नीचे लिखे प्रमाणे जानो।

अथ ओङ्कारार्थः

'वि' उपसर्गपूर्वक (राजृ दीप्तौ) इस धातु से क्विप् प्रत्यय करने से 'विराट्' शब्द सिद्ध होता है। **'यो विविधं नाम चराऽचरं जगद्राजयति प्रकाशयति स विराट्'** विविध अर्थात् जो बहु प्रकार के जगत् को

प्रकाशित करे, इससे '**विराट्**' नाम से परमेश्वर का ग्रहण होता है।

(अञ्चु गतिपूजनयो:) (अग, अगि, इण् गत्यर्थक) धातु हैं, इनसे 'अग्नि' शब्द सिद्ध होता है। '**गतेस्त्रयोऽर्थाः—ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति, पूजनं नाम सत्कारः।**' '**योऽञ्चति, अच्यतेऽगत्यङ्गतीति वा सोऽयमग्निः**' जो ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्ति होने और पूजा करने योग्य है, इससे परमेश्वर का नाम '**अग्नि**' है।

(विश प्रवेशने) इस धातु से 'विश्व' शब्द सिद्ध होता है। '**विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः स विश्व ईश्वरः**' जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इनमें व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है, इसलिए परमेश्वर का नाम '**विश्व**' है, इत्यादि नामों का ग्रहण **अकारमात्रा** से होता है।

'**ज्योतिर्वै हिरण्यं, तेजो वै हिरण्यम्**' —इत्यैतरेयशतपथब्राह्मणे'

'**यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्तिनिमित्तमधिकरणं स हिरण्यगर्भः**' जिसमें सूर्यादि तेजवाले लोक उत्पन्न होके जिसके आधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजःस्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति और निवासस्थान है, इससे '**हिरण्यगर्भ**' नाम परमेश्वर का है। इसमें यजुर्वेद के मन्त्र का प्रमाण—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

[यजुः० १३।४]॥

इत्यादि स्थलों में 'हिरण्यगर्भ' से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है।

(वा गतिगन्धनयो:) इस धातु से 'वायु' शब्द सिद्ध होता है। **(गन्धनं हिंसनम्)** '**यो वाति चराऽचरञ्जगद्धरति बलिनां बलिष्ठः स वायुः**' जो चराऽचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करे और सब बलवानों से बलवान् है, इससे ईश्वर का नाम '**वायु**' है।

(तिज निशाने) इस धातु से 'तेजः' और इससे तद्धित करने से 'तैजस' शब्द सिद्ध होता है। जो आप स्वयं प्रकाश और सूर्य्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करनेवाला है, इससे ईश्वर का नाम '**तैजस**' है।

इत्यादि नामार्थ **उकार** से ग्रहण होते हैं।

(ईश ऐश्वर्ये) इस धातु से 'ईश्वर' शब्द सिद्ध होता है। '**य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स ईश्वरः**' जिसका सत्य विचार, शील, ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है, इससे उस परमात्मा का नाम '**ईश्वर**' है।

(दो अवखण्डने='**अवखण्डनं नाम विनाशः**') इस धातु से 'अदिति' और इससे तद्धित करने से 'आदित्य' शब्द सिद्ध होता है। '**न विद्यते विनाशो यस्य सोऽयमदितिः, अदितिरेव आदित्यः**' जिसका विनाश कभी न हो वही '**आदित्य**' संज्ञा ईश्वर की है।

(ज्ञा अवबोधने) 'प्र' पूर्वक इस धातु से 'प्रज्ञ' और इससे तद्धित करने से 'प्राज्ञ' शब्द सिद्ध होता है। '**यः प्रकृष्टतया चराऽचरस्य जगतो व्यवहारं जानाति स प्रज्ञः, प्रज्ञ एव प्राज्ञः**' जो निर्भ्रान्त ज्ञानयुक्त, सब चराऽचर जगत् के व्यवहार को यथावत् जानता है, इससे '**प्राज्ञ**' ईश्वर का नाम है। इत्यादि नामार्थ **मकार** से गृहीत होते हैं। जैसे एक-एक मात्रा से तीन-तीन अर्थ यहाँ व्याख्यात किये हैं, वैसे ही अन्य नामार्थ भी ओङ्कार से जाने जाते हैं।

जो (शन्नो मित्रः शं व०) इस मन्त्र में मित्रादि नाम हैं वे भी परमेश्वर के हैं, क्योंकि स्तुति, प्रार्थना, उपासना श्रेष्ठ ही की किई जाती है। श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो अपने गुण, कर्म्म, स्वभाव और सत्य-सत्य व्यवहारों में सबसे अधिक हो। उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ, उसको परमेश्वर कहते हैं, जिसके तुल्य न कोई हुआ, न है और न होगा। जब तुल्य नहीं तो उससे अधिक क्योंकर हो सकता है? जैसे परमेश्वर के सत्य, न्याय, दया, सर्वसामर्थ्य और सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण हैं, वैसे अन्य किसी जड़ वा जीव पदार्थ के नहीं हैं। जो पदार्थ सत्य है, उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी सत्य ही होते हैं। इसलिए सब मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें, उससे भिन्न की कभी न करें। क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव पूर्वज महाशय विद्वान्, दैत्य-दानवादि निकृष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्यों ने भी परमेश्वर ही में विश्वास करके, उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करी, उससे भिन्न की नहीं की। वैसे हम सबको करना योग्य

है। इसका विशेष विचार उपासना और मुक्ति के विषय में किया जाएगा।

प्रश्न—मित्रादि नामों से सखा और इन्द्रादि देवों के प्रसिद्ध व्यवहार देखने से उन्हीं का ग्रहण करना चाहिए।

उत्तर—यहाँ उनका ग्रहण करना योग्य नहीं, क्योंकि जो मनुष्य किसी का मित्र है, वही अन्य का शत्रु और किसी से उदासीन भी देखने में आता है। इससे मुख्यार्थ में सखा आदि का ग्रहण नहीं हो सकता, किन्तु जैसा परमेश्वर सब जगत् का निश्चित मित्र, न किसी का शत्रु और न किसी से उदासीन है, इससे भिन्न कोई भी जीव इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता। इसलिए परमात्मा ही का ग्रहण यहाँ होता है। हाँ, गौण अर्थ में मित्रादि शब्द से सुहृदादि मनुष्यों का ग्रहण होता है।

(ञिमिदा स्नेहने) '**अस्माद् धातोरौणादिकः क्त्रः प्रत्ययः।**' इस धातु से औणादिक 'क्त्र' प्रत्यय के होने से 'मित्र' शब्द सिद्ध होता है। '**मेदते मिद्यते, स्निह्यति स्निह्यते वा स मित्रः**' जो सबसे स्नेह करे और सबको प्रीति करने योग्य है, वह परमेश्वर सबका सच्चा '**मित्र**' है, इससे परमेश्वर का नाम '**मित्र**' है।

(वृञ् वरणे, वर ईप्सायाम्) इन धातुओं से उणादि 'उनन्' प्रत्यय होने से 'वरुण' शब्द सिद्ध होता है। '**यः सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून्धर्मात्मनो वृणोत्यथवा यः शिष्टैर्मुमुक्षुभिर्धर्मात्मभिर्व्रियते वर्य्यते वा स वरुणः परमेश्वरः**' जो आप्तयोगी, विद्वान्, मुक्ति की इच्छा करनेवाले मुक्त और धर्मात्माओं का स्वीकारकर्त्ता, अथवा जो शिष्ट, मुमुक्षु, मुक्त और धर्मात्माओं से ग्रहण किया जाता है, वह 'वरुण' नामयुक्त ईश्वर है। अथवा '**वरुणो नाम वरः श्रेष्ठः**' जिसलिए सबसे श्रेष्ठ है, इसलिए '**वरुण**' परमेश्वर का नाम है।

(ऋ गतिप्रापणयोः) इस धातु से 'यत्' प्रत्यय करने से 'अर्य्य' शब्द सिद्ध होता है और 'अर्य्य' पूर्वक (माङ् माने) इस धातु से 'कनिन्' प्रत्यय होने से 'अर्य्यमा' शब्द सिद्ध होता है। '**योऽर्य्यान् स्वामिनो न्यायाधीशान् मिमीते मान्यान् करोति सोऽर्यमा**' जो सत्य न्याय के करनेहारे मनुष्यों का मान्य और पाप तथा पुण्य करनेवालों को पाप और पुण्य के फलों का यथावत् सत्य-सत्य नियमकर्त्ता है, इसी से परमेश्वर

का नाम '**अर्यमा**' है।

(इदि परमैश्वर्ये) इस धातु से 'रन्' प्रत्यय करने से 'इन्द्र' शब्द सिद्ध होता है। '**य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः**' जो अखिल ऐश्वर्ययुक्त है, इससे परमात्मा का नाम '**इन्द्र**' है।

'बृहत्' शब्दपूर्वक (पा रक्षणे) इस धातु से 'डति' प्रत्यय, बृहत् के तकार का लोप और सुडागम होने से 'बृहस्पति' शब्द सिद्ध होता है। '**यो बृहतामाकाशादीनां पतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः**' जो बड़ों से भी बड़ा और बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डों का स्वामी है, इससे परमेश्वर का नाम '**बृहस्पति**' है।

(विष्लृ व्याप्तौ) इस धातु से 'नु' प्रत्यय होकर 'विष्णु' शब्द सिद्ध हुआ है। '**वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः परमात्मा**' चर और अचररूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम '**विष्णु**' है।

'**उरुर्महान् क्रमः पराक्रमो यस्य स उरुक्रमः**' अनन्त पराक्रमयुक्त होने से परमात्मा का नाम '**उरुक्रम**' है।

जो परमात्मा (उरुक्रमः) महापराक्रमयुक्त (मित्रः) सबका सुहृत् अविरोधी है, वह (शम्) सुखकारक, वह (वरुणः) सर्वोत्तम (शम्) सुखस्वरूप, वह (अर्यमा) (शम्) सुखप्रचारक, वह (इन्द्रः) (शम्) सकल ऐश्वर्यदायक, वह (बृहस्पतिः) सबका अधिष्ठाता (शम्) विद्याप्रद और (विष्णुः) जो सबमें व्यापक परमेश्वर है, वह (नः) हमारा कल्याणकारक (भवतु) हो।

(वायो ते ब्रह्मणे नमोऽस्तु) 'बृह बृहि वृद्धौ' इन धातुओं से 'ब्रह्म' शब्द सिद्ध हुआ है। जो सब के ऊपर विराजमान, सबसे बड़ा, अनन्त-बलयुक्त परमात्मा है, उस ब्रह्म को हम नमस्कार करते हैं। हे परमेश्वर! **(त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि)** आप ही अन्तर्यामिरूप से प्रत्यक्ष ब्रह्म हो **(त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि)** मैं आप ही को प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा, क्योंकि आप सब जगह में व्याप्त होके, सबको नित्य ही प्राप्त हैं **(ऋतं वदिष्यामि)** जो आपकी वेदस्थ यथार्थ आज्ञा है, उसी को मैं सबके लिए उपदेश और आचरण भी करूँगा **(सत्यं वदिष्यामि)** सत्य बोलूँ, सत्य मानूँ और सत्य ही करूँगा, **(तन्मामवतु)** सो आप

मेरी रक्षा कीजिए। **(तद्वक्तारमवतु)** सो आप मुझ आप्त सत्यवक्ता की रक्षा कीजिए कि जिससे आपकी आज्ञा में मेरी बुद्धि स्थिर होकर, विरुद्ध कभी न हो। क्योंकि जो आपकी आज्ञा है, वही धर्म और जो उससे विरुद्ध, वही अधर्म है। **(अवतु मामवतु वक्तारम्)** यह दूसरी वार पाठ अधिकार्थ के लिए है। जैसे '**कश्चित् कञ्चित् प्रति वदति त्वं ग्रामं गच्छ गच्छ**' इसमें दो वार क्रिया के उच्चारण से तू शीघ्र ही ग्राम को जा, ऐसा सिद्ध होता है। ऐसे ही यहाँ कि आप मेरी रक्षा अर्थात् धर्म में सुनिश्चित और अधर्म से घृणा सदा करूँ, ऐसी कृपा मुझपर कीजिए। मैं आपका बड़ा उपकार मानूँगा **(ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः)** इसमें तीन वार शान्तिपाठ का यह प्रयोजन है कि त्रिविधताप अर्थात् इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं—

एक '**आध्यात्मिक**' जो आत्मा, शरीर में अविद्या, राग, द्वेष, मूर्खता और ज्वरपीडादि से होता है।

दूसरा '**आधिभौतिक**' जो शत्रु, व्याघ्र और सर्पादि से प्राप्त होता है।

तीसरा '**आधिदैविक**' अर्थात् जो अतिवृष्टि, अवृष्टि, अतिशीत, अति उष्णता, मन और इन्द्रियों की अशान्ति से होता है।

इन तीन प्रकार के क्लेशों से आप हम लोगों को दूर करके कल्याणकारक कर्मों में सदा प्रवृत्त रखिए। क्योंकि आप ही कल्याणस्वरूप, सब संसार के कल्याणकर्त्ता और धार्मिक मुमुक्षुओं को कल्याण के दाता हैं। इसलिए आप स्वयं अपनी करुणा से सब जीवों के हृदय में प्रकाशित हूजिए कि जिससे सब जीव धर्म का आचरण, और अधर्म को छोड़के परमानन्द को प्राप्त और दुःखों से पृथक् रहैं।

'**सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च**' [यजुः १३।४६]

इस यजुर्वेद के वचन से जो जगत् नाम प्राणी, चेतन और जङ्गम अर्थात् जो चलते-फिरते हैं, '**तस्थुषः**' अप्राणी जो स्थावर जड़ अर्थात् पृथिवी आदि हैं, उन सबके आत्मा होने और स्वप्रकाशरूप सबके प्रकाश करने से परमेश्वर का नाम '**सूर्य्य**' है।

(अत सातत्यगमने) इस धातु से 'आत्मा' शब्द सिद्ध हुआ है।

'**योऽतति व्याप्नोति स आत्मा**' जो सब जीवादि जगत् में निरन्तर व्यापक हो रहा है। '**परश्चासावात्मा च य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽतिसूक्ष्मः स परमात्मा**' जो सब जीव आदि से उत्कृष्ट और जीव, प्रकृति तथा आकाश से भी अतिसूक्ष्म और सब जीवों का अन्तर्यामी आत्मा है, इससे ईश्वर का नाम '**परमात्मा**' है।

सामर्थ्यवाले का नाम ईश्वर है। '**य ईश्वरेषु समर्थेषु परमः श्रेष्ठः स परमेश्वरः**' जो ईश्वरों अर्थात् समर्थों में समर्थ, जिसके तुल्य कोई भी न हो, उसका नाम '**परमेश्वर**' है।

(षुञ् अभिषवे, षूङ् प्राणिगर्भविमोचने) इन धातुओं से 'सविता' शब्द सिद्ध होता है। '**अभिषवः प्राणिगर्भविमोचनं चोत्पादनम्। यश्चराचरं जगत् सुनोति सूते वोत्पादयति स सविता परमेश्वरः**' जो सब जगत् की उत्पत्ति करता है, इसलिए परमेश्वर का नाम '**सविता**' है।

(दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु) इस धातु से 'देव' शब्द सिद्ध होता है। (क्रीडा) जो शुद्ध, जगत् को क्रीड़ा कराने, (विजिगीषा) धार्मिकों को जिताने की इच्छायुक्त, (व्यवहार) सब को चेष्टा के साधनोपसाधनों का दाता, (द्युति) स्वयं प्रकाशस्वरूप, सबका प्रकाशक (स्तुति) प्रशंसा के योग्य, (मोद) आप आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द देनेहारा, (मद) मदोन्मत्तों का ताडनेहारा, (स्वप्न) सबके शयनार्थ रात्रि और प्रलय का करनेहारा, (कान्ति) कामना के योग्य, और (गति) ज्ञानस्वरूप है, इसलिए परमेश्वर का नाम '**देव**' है।

अथवा '**यो दीव्यति क्रीडति स देवः**' जो अपने स्वरूप में आनन्द से आप ही क्रीडा करे अथवा किसी के सहाय के विना क्रीडावत् सहज स्वभाव से सब जगत् को बनाता वा सब क्रीडाओं का आधार है। '**विजिगीषते स देवः**' जो सबका जीतनेहारा, स्वयं अजेय अर्थात् जिसको कोई भी न जीत सके। '**व्यवहारयति स देवः**' जो न्याय और अन्यायरूप व्यवहारों का जनाने [हारा] और उपदेष्टा। '**यश्चराचरं जगत् द्योतयति**' जो सबका प्रकाशक। '**यः स्तूयते स देवः**' जो सब मनुष्यों को प्रशंसा

के योग्य, और निन्दा के योग्य न हो। **'यो मोदयति स देवः'** जो स्वयं आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द कराता, जिसको दु:ख का लेश भी न हो। **'यो माद्यति स देवः'** जो सदा हर्षित, शोक से रहित और दूसरों को हर्षित करने और दु:ख से पृथक् रखनेवाला। **'यः स्वापयति स देवः'** जो प्रलय समय अव्यक्त में सब जीवों को सुलाता। **'यः कामयते काम्यते वा स देवः'** जिसके सब सत्य काम और जिसकी प्राप्ति की कामना सब शिष्ट करते हैं। **'यो गच्छति गम्यते वा स देवः'** जो सब में प्राप्त और जानने के योग्य है, इससे परमेश्वर का नाम **'देव'** है।

(कुबि आच्छादने) इस धातु से 'कुबेर' शब्द सिद्ध होता है। **'यः सर्वं कुम्बति स्वव्याप्त्याच्छादयति स कुबेरो जगदीश्वरः'** जो अपनी व्याप्ति से सबका आच्छादन करे, उससे परमेश्वर का नाम **'कुबेर'** है।

(पृथु विस्तारे) इस धातु से 'पृथिवी' शब्द सिद्ध होता है। **'यः पर्थति सर्वं जगद्विस्तृणाति तस्मात् स पृथिवी'** जो सब विस्तृत जगत् का विस्तार करनेवाला है, इसलिये ईश्वर का नाम **'पृथिवी'** है।

(जल घातने) इस धातु से 'जल' शब्द सिद्ध होता है, **'जलति घातयति दुष्टान् सङ्घातयति-अव्यक्तपरमाण्वादीन् तद् ब्रह्म जलम्'** जो दुष्टों का ताडन और अव्यक्त तथा परमाणुओं का अन्योऽन्य संयोग वा वियोग करता है, वह परमात्मा **'जल'** संज्ञक कहाता है। यद्वा **'यज्जनयति लाति सकलं [ज]गत् तद् ब्रह्म जलम्'** अथवा जो सबका जनक और सब सुखों का देनेवाला है, इसलिये भी परमात्मा का नाम **जल** है।

(काशृ दीप्तौ) इस धातु से 'आकाश' शब्द सिद्ध होता है, **'यः सर्वतः सर्वं जगत् प्रकाशयति स आकाशः'** जो सब ओर से सब जगत् का प्रकाशक है, इसलिए परमात्मा का नाम **'आकाश'** है।

(अद् भक्षणे) इस धातु से 'अन्न' शब्द सिद्ध होता है।

अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते। [तै० उ० २।२]

अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्।
अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः॥

—यह तैत्तिरीयोपनिषत् [३।१०] का वचन है।

अत्ता चराऽचरग्रहणात्॥

यह व्यासमुनिकृत शारीरक सूत्र है। [वे० सू० १।२।९]॥

जो सबको भीतर रखने, सबको ग्रहण करने योग्य, चराचर जगत् का ग्रहण करनेवाला है, इससे ईश्वर के **'अन्न'**, **'अन्नाद'** और **'अत्ता'** नाम हैं। और जो इसमें तीन वार पाठ है, सो आदर के लिए है।

जैसे गूलर के फल में कृमि उत्पन्न होके, उसी में रहते हैं और नष्ट हो जाते हैं, वैसे परमेश्वर के बीच में सब जगत् की अवस्था है।

(वस निवासे) इस धातु से 'वसु' शब्द सिद्ध हुआ है। **'वसन्ति भूतानि यस्मिन्नथवा यः सर्वेषु भूतेषु वसति स वसुरीश्वरः'** जिसमें सब आकाशादि भूत वसते हैं और जो सबमें वास कर रहा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'वसु'** है।

(रुदिर् अश्रुविमोचने) **रुदेर्णिलोपश्च** इस णिजन्त धातु से 'रुद्र' शब्द सिद्ध होता है। **'यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः'** जो दुष्ट कर्म करनेहारों को रुलाता है, इससे परमेश्वर का नाम **'रुद्र'** है।

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते॥

यह यजुर्वेद के ब्राह्मण का वचन है।
[तुलना—श० कां० १४। प्रपा० ६। ब्रा० २। कं० ७]

जीव जिसका मन से ध्यान करता, उसको कहता; जिसको कहता, उसी को करता; जिसको करता, उसी को प्राप्त होता है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है। जब दुष्ट कर्म करनेवाले ईश्वर की व्यवस्था से दु:खरूप फल पाते, तब रोते हैं और इसी प्रकार ईश्वर उनको रुलाता है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'रुद्र'** है।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

—यह मनुस्मृति [अ० १।१०] का श्लोक है।

जल, प्राण और जीवों का नाम नार है। वे अयन अर्थात् निवासस्थान हैं जिसका, इसलिए सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम **'नारायण'** है।

(चदि आह्लादे) इस धातु से 'चन्द्र' शब्द सिद्ध होता है। **'यश्चन्दति चन्दयति वा स चन्द्रः'** जो आनन्दस्वरूप और सबको आनन्द देनेवाला है, इसलिए ईश्वर का नाम **'चन्द्र'** है।

(मगि गत्यर्थक) धातु से **'मङ्गेरलच्'** [उणा० सू० ५।७०] इस सूत्र से 'मङ्गल' शब्द सिद्ध होता है। **'यो मङ्गति मङ्गयति वा स मङ्गलः'** जो आप मङ्गलस्वरूप और सब जीवों के मङ्गल का कारण है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम **'मङ्गल'** है।

(बुध अवगमने) इस धातु से 'बुध' शब्द सिद्ध होता है। **'यो बुध्यते बोध्यते वा स बुधः'** जो स्वयं बोधस्वरूप और सब जीवों के बोध का कारण है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'बुध'** है।

'बृहस्पति' शब्द का अर्थ कर दिया।

(ईशुचिर् पूतीभावे) इस धातु से 'शुक्र' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यः शुच्यति शोचयति वा स शुक्रः'** जो अत्यन्त पवित्र और जिसके सङ्ग से जीव भी पवित्र हो जाता है, इसलिए ईश्वर का नाम **'शुक्र'** है।

(चर गतिभक्षणयोः) इस धातु से 'शनैस्' अव्यय उपपद धर के 'शनैश्चर' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यः शनैश्चरति स शनैश्चरः'** जो सबमें सहज से प्राप्त धैर्यवान् है, इससे परमेश्वर का नाम **'शनैश्चर'** है।

(रह त्यागे) इस धातु से 'राहु' शब्द सिद्ध होता है। **'यो रहति परित्यजति दुष्टान् राहयति त्याजयति स राहुरीश्वरः'** जो एकान्तस्वरूप, जिसके स्वरूप में दूसरा पदार्थ संयुक्त नहीं, जो दुष्टों को छोड़ने और अन्य को छुड़ानेहारा है, इससे परमेश्वर का नाम **'राहु'** है।

(कित निवासे रोगापनयने च) इस धातु से 'केतु' शब्द सिद्ध होता है। **'यश्चिकेतति चिकित्सति वा स केतुरीश्वरः'** जो सब जगत् का निवासस्थान, सब रोगों से रहित और मुमुक्षुओं को मुक्ति समय में सब रोगों से छुड़ाता है, इसलिए परमात्मा का नाम **'केतु'** है।

(यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु) इस धातु से 'यज्ञ' शब्द सिद्ध होता है।

'यज्ञो वै विष्णुः' यह ब्राह्मणग्रन्थ का वचन है।

[श०ब्रा० १।१।२।१३, गो०ब्रा०उत्तरभाग प्रपा० ४। कं० ६]

'यो यजति विद्वद्भिरिज्यते वा स यज्ञः' जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है, और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि-मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है, क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है।

(हु दानाऽदनयोः, आदाने चेत्येके) इस धातु से 'होता' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यो जुहोति स होता'** जो सब जीवों को देने योग्य पदार्थों का दाता और ग्रहण करने योग्य है, इससे ईश्वर का नाम **'होता'** है।

(बन्ध बन्धने) इससे 'बन्धु' शब्द बना है। **'यः स्वस्मिन् चराचरं जगद् बध्नाति बन्धुवद्धर्मात्मनां सुखाय सहायो वा वर्तते स बन्धुः'** जिसने अपने में सब लोकलोकान्तरों को नियमों से बद्ध कर रक्खे और सहोदर के समान सहायक है, इसी से अपनी-अपनी परिधि वा नियम का उल्लङ्घन नहीं कर सकते। जैसे भ्राता भाइयों का सहायकारी होता है, वैसे परमेश्वर भी पृथिव्यादि लोकों के धारण, रक्षण और सुख देने से **'बन्धु'** संज्ञक है।

(पा रक्षणे) इस धातु से 'पिता' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यः पाति सर्वान् स पिता'** जो सबका रक्षक, जैसा पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है, वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है, इससे ईश्वर का नाम **'पिता'** है।

'यः पितॄणां पिता स पितामहः' जो पिताओं का भी पिता है, इससे उस परमेश्वर का नाम **'पितामह'** है।

'यः पितामहानां पिता स प्रपितामहः' जो पिताओं के पितरों का पिता है, इससे परमेश्वर का नाम **'प्रपितामह'** है।

(माङ् माने शब्दे च) इससे माता शब्द बनता है। **'यो मिमीते मानयति सर्वाञ्जीवान् स माता'** जैसे पूर्णकृपायुक्त जननी अपने सन्तानों का सुख और उन्नति चाहती है, वैसे परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है, इससे परमेश्वर का नाम **'माता'** है।

(चर गतिभक्षणयोः) आङ्पूर्वक इस धातु से 'आचार्य्य' शब्द सिद्ध होता है। **'य आचारं ग्राहयति, सर्वा विद्या बोधयति स आचार्य ईश्वरः'** जो सत्य आचार का ग्रहण करानेहारा और सब विद्याओं की

प्राप्ति का हेतु होके, सब विद्या प्राप्त कराता है, इससे परमेश्वर का नाम **'आचार्य'** है।

(गॄ शब्दे) इस धातु से 'गुरु' शब्द बना है। **'यो धर्म्यान् शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरुः'।**

'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'

—यह योगशास्त्र का सूत्र [१।२६] है।

जो सत्यधर्मप्रतिपादक, सकल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता है, जो कि सृष्टि की आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु और जिसका नाश कभी नहीं होता, इसलिए परब्रह्म का नाम **'गुरु'** है।

(अज गतिक्षेपणयोः, जनी प्रादुर्भावे) इन धातुओं से 'अज' शब्द बना है। **'योऽजति सृष्टिं प्रति सर्वान् प्रकृत्यादीन् पदार्थान् प्रक्षिपति जनयति कदाचिन्न जायते सोऽजः'** जो सब प्रकृति के अवयव आकाशादि भूत परमाणुओं को यथायोग्य मिलाता, शरीर के साथ जीवों का सम्बन्ध करके जन्म देता और स्वयं कभी जन्म नहीं लेता, इससे ईश्वर का नाम **'अज'** है।

(बृह बृहि वृद्धौ) इन धातुओं से 'ब्रह्मा' शब्द सिद्ध होता है। **'योऽखिलं जगन्निर्माणेन बर्हति वर्द्धयति स ब्रह्मा'** जो सम्पूर्ण जगत् को रच के बढ़ाता है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'ब्रह्मा'** है।

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'

—यह तैत्तिरीयोपनिषद् [२।१] का वचन है।

'सन्तीति सन्तस्तेषु सत्सु साधु तत्सत्यम्। यज्जानाति चराऽचरं जगत्तज्ज्ञानम्। न विद्यतेऽन्तोऽवधिर्मर्यादा यस्य तदनन्तम्। सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म' जो पदार्थ हों, उनको सत् कहते हैं, उनमें साधु होने से परमेश्वर का नाम **'सत्य'** है। जो सबका जाननेवाला है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'ज्ञान'** है। जिसका अन्त, अवधि, मर्यादा अर्थात् इतना लम्बा-चौड़ा, छोटा वा बड़ा है, ऐसा परिमाण नहीं है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'अनन्त'** है। जो सबसे बड़ा है। इसलिए परमेश्वर के सत्य, ज्ञान और अनन्त नाम हैं।

(डुदाञ् दाने) आङ्पूर्वक इस धातु से 'आदि' शब्द और नञ्पूर्वक 'अनादि' शब्द सिद्ध होता है। **'यस्मात् पूर्वं नास्ति परं चास्ति स आदिरित्युच्यते।' 'न विद्यते आदिः कारणं यस्य सोऽनादिरीश्वरः'** जिसके पूर्व कुछ न हो और परे हो, उसको आदि कहते हैं, जिसका आदिकारण कोई भी नहीं है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'अनादि'** है।

(टुनदि समृद्धौ) आङ्पूर्वक इस धातु से 'आनन्द' शब्द बनता है। **'आनन्दन्ति सर्वे मुक्ता यस्मिन् यद्वा यः सर्वाञ्जीवानानन्दयति स आनन्दः'** जो आनन्दस्वरूप, जिसमें सब मुक्त जीव आनन्द को प्राप्त होते और सब धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त करता है, इससे ईश्वर का नाम **'आनन्द'** है।

(अस भुवि) इस धातु से 'सत्' शब्द सिद्ध होता है। **'यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते तत्सद् ब्रह्म'** जो सदा वर्त्तमान और भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान कालों में जिसका बाध न हो, उस परमेश्वर को **'सत्'** कहते हैं।

(चिती संज्ञाने) इस धातु से 'चित्' शब्द सिद्ध होता है। **'यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् सज्जनान् योगिनस्तच्चित्परं ब्रह्म'** जो चेतनस्वरूप सब जीवों को चिताने और सत्याऽसत्य का जनानेहारा है, इसलिए परमात्मा का नाम **'चित्'** है। इन तीनों शब्दों के विशेषण होने से परमेश्वर का नाम **'सच्चिदानन्दस्वरूप'** कहते हैं।

नित्य—**'यो ध्रुवोऽचलोऽविनाशी स नित्यः'।** जो निश्चल अविनाशी है, सो **'नित्य'** शब्दवाच्य ईश्वर है।

(शुन्ध शुद्धौ) इससे 'शुद्ध' शब्द सिद्ध होता है। **'यः शुन्धति सर्वान् शोधयति वा स शुद्ध ईश्वरः'** जो स्वयं पवित्र, सब अशुद्धियों से पृथक् और सबको शुद्ध करनेवाला है, इससे ईश्वर का नाम **'शुद्ध'** है।

(बुध अवगमने) इस धातु से 'क्त' प्रत्यय होने से 'बुद्ध' शब्द सिद्ध होता है। **'यो बुद्धवान् सदैव ज्ञाताऽस्ति स बुद्धो जगदीश्वरः'** जो सदा सबको जाननेहारा है, इससे ईश्वर का नाम **'बुद्ध'** है।

(मुच्लृ मोचने) इस धातु से 'मुक्त' शब्द सिद्ध होता है। **'यो**

मुञ्चति मोचयति वा मुमुक्षून् स मुक्तो जगदीश्वरः' जो सर्वदा अशुद्धियों से अलग और सब मुमुक्षुओं को क्लेश से छुड़ा देता है, इसलिए परमात्मा का नाम '**मुक्त**' है।

'**अत एव नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो जगदीश्वरः**' इसी कारण से परमेश्वर का स्वभाव नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है।

निर् और आङ्पूर्वक (डुकृञ् करणे) इस धातु से 'निराकार' शब्द सिद्ध होता है। '**निर्गत आकारात्स निराकारः**' जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर का धारण करता है, इसलिए परमेश्वर का नाम '**निराकार**' है।

(अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणकान्तिगतिषु) इस धातु से 'अञ्जन' शब्द बना है और निर् उपसर्ग के योग से 'निरञ्जन' शब्द सिद्ध होता है। '**अञ्जनं व्यक्तिर्म्लक्षणं कुकाम इन्द्रियैः प्राप्तिश्चेत्यस्माद्यो निर्गतः पृथग्भूतः स निरञ्जनः**' जो व्यक्ति अर्थात् आकृति, म्लेच्छाचार, दुष्टकामना और चक्षुरादि इन्द्रियों के विषयों के पथ से पृथक् है, इससे ईश्वर का नाम '**निरञ्जन**' है।

(गण संख्याने) इस धातु से 'गण' शब्द सिद्ध होता है, इसके आगे 'ईश' वा 'पति' शब्द रखने से 'गणेश' और 'गणपति शब्द' सिद्ध होते हैं। '**ये प्रकृत्यादयो जडा जीवाश्च गण्यन्ते संख्यायन्ते तेषामीशः स्वामी पतिः पालको वा**' जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करनेहारा है, इससे ईश्वर का नाम '**गणेश**' वा '**गणपति**' है।

'**यो विश्वमीष्टे स विश्वेश्वरः**' जो संसार का अधिष्ठाता है, उस परमेश्वर का नाम '**विश्वेश्वर**' है।

'**यः कूटेऽनेकविधव्यवहारे स्वस्वरूपेणैव तिष्ठति स कूटस्थः परमेश्वरः**' जो सब व्यवहारों में व्याप्त और सब व्यवहारों का आधार होके भी, किसी व्यवहार में अपने स्वरूप को नहीं बदलता, इससे परमेश्वर का नाम '**कूटस्थ**' है।

जितने 'देव' शब्द के अर्थ लिखे हैं उतने ही 'देवी' शब्द के भी हैं। परमेश्वर के तीनों लिङ्गों में नाम हैं, जैसे—'**ब्रह्म चितिरीश्वरश्चेति**'। जब ईश्वर का विशेषण होगा तब 'देव', जब चिति का होगा तब 'देवी', इससे ईश्वर का नाम '**देवी**' है।

(शक्लृ शक्तौ) इस धातु से 'शक्ति' शब्द बनता है। '**यः सर्वं जगत् कर्तुं शक्नोति स शक्तिः**' जो सब जगत् के बनाने में समर्थ है, इसलिए परमेश्वर का नाम '**शक्ति**' है।

(श्रिञ् सेवायाम्) इस धातु से 'श्री' शब्द सिद्ध होता है। '**यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगता विद्वद्भिर्योगिभिश्च स श्रीरीश्वरः**' जिसका सेवन सब जगत्, विद्वान् और योगीजन करते हैं, उस परमात्मा का नाम '**श्री**' है।

(लक्ष दर्शनाङ्कनयोः) इस धातु से 'लक्ष्मी' शब्द सिद्ध होता है। '**यो लक्षयति पश्यत्यङ्कते चिह्नयति चराचरं जगदथवा वेदैराप्तैर्योगिभिश्च यो लक्ष्यते स लक्ष्मीः सर्वप्रियेश्वरः**' जो सब चराचर जगत् को देखता, चिह्नित अर्थात् दृश्य बनाता, जैसे शरीर के नेत्र, नासिकादि और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण, चन्द्र-सूर्यादि चिह्न बनाता, तथा सबको देखता, सब शोभाओं की शोभा है और जो वेदादिशास्त्र, धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम '**लक्ष्मी**' है।

(सृ गतौ) इस धातु से 'सरस्', उससे मतुप् और ङीप् प्रत्यय होने से 'सरस्वती' शब्द सिद्ध होता है। '**सरो विविधं ज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा सरस्वती**' जिसको विविध विज्ञान, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध प्रयोग का ज्ञान यथावत् होवे, इससे उस परमेश्वर का नाम '**सरस्वती**' है।

'**सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वरः**' जो अपने कार्य करने में किसी अन्य की सहायता की इच्छा लेशमात्र भी नहीं करता, अपने ही सामर्थ्य से, अपने सब काम पूरा करता है, इसलिए परमात्मा का नाम '**सर्वशक्तिमान्**' है।

(णीञ् प्रापणे) इस धातु से 'न्याय' शब्द सिद्ध होता है।

'**प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः**' —यह वचन न्यायसूत्रों के ऊपर

वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य का है। [वा० भा० १।१।१]

'पक्षपातराहित्याचरणं न्यायः' जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों की परीक्षा से सत्य-सत्य सिद्ध हो, जो पक्षपातरहित आचरण धर्मरूप, न्याय कहाता है। **'न्यायं कर्तुं शीलमस्य स न्यायकारीश्वरः'** जिसका न्याय अर्थात् पक्षपातरहित धर्म करने ही का स्वभाव है, इससे ईश्वर का नाम **'न्यायकारी'** है।

(दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु) इस धातु से 'दया' शब्द सिद्ध होता है। **'दयते ददाति जानाति गच्छति रक्षति हिनस्ति यया सा दया, बह्वी दया विद्यते यस्य स दयालुः परमेश्वरः'** जो अभय का दाता, सत्याऽसत्य सर्व विद्याओं का जानने, सब सज्जनों की रक्षा करने और दुष्टों को यथायोग्य दण्ड देनेवाला है, इससे परमात्मा का नाम **'दयालु'** है।

'द्वयोर्भावो द्वाभ्यामितं सा द्विता द्वीतं वा सैव तदेव वा द्वैतम्, न विद्यते द्वैतं द्वितीयेश्वरभावो यस्मिंस्तदद्वैतम्।' अर्थात् **'सजातीय-विजातीयस्वगतभेदशून्यं ब्रह्म'**—दो का होना, दोनों से युक्त होना वह द्विता, वा द्वीत अथवा द्वैत, अर्थात् जो इनसे रहित है। सजातीय जैसा मनुष्य का सजातीय दूसरा मनुष्य होता है, विजातीय जैसे मनुष्य से भिन्न जातिवाले वृक्ष, पाषाणादि। स्वगत अर्थात् जैसे शरीर में आँख, नाक, कान आदि अवयवों का भेद है, वैसे दूसरे स्वजातीय ईश्वर, विजातीय ईश्वर वा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक परमेश्वर है, इससे परमात्मा का नाम **'अद्वैत'** है।

'गुण्यन्ते ये ते गुणा वा यैर्गुणयन्ति ते गुणाः, यो गुणेभ्यो निर्गतः स निर्गुण ईश्वरः' जितने सत्त्व, रज, तम, रूप, रस, स्पर्श, गन्धादि जड़ के गुण, अविद्या, अल्पज्ञता, राग, द्वेष और अविद्यादि क्लेश जीव के गुण हैं, उनसे जो पृथक् है। इसमें **'अशब्दमस्पर्शम-रूपमव्ययम्'** [कठोप० १।३।१५] इत्यादि उपनिषदों का प्रमाण है। जो शब्द, स्पर्श, रूपादि गुणरहित है, इससे परमात्मा का नाम **'निर्गुण'** है।

'यो गुणैः सह वर्त्तते स सगुणः' जो सबका ज्ञान, सर्वसुख,

पवित्रता, अनन्त बलादि गुणों से युक्त है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'सगुण'** है। जैसे पृथिवी गन्धादि गुणों से 'सगुण' और इच्छादि गुणों से रहित होने से 'निर्गुण' है, वैसे जगत् और जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर 'निर्गुण' और सर्वज्ञादि गुणों से सहित होने से 'सगुण' है, अर्थात् ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जो सगुण और निर्गुणता से पृथक् हो। जैसे चेतन के गुणों से पृथक् होने से, जड़ पदार्थ निर्गुण और अपने गुणों से सहित होने से सगुण, वैसे ही जड़ के गुणों से पृथक् होने से, जीव निर्गुण और इच्छादि अपने गुणों से सहित होने से सगुण। ऐसे ही परमेश्वर में भी समझना चाहिए।

'अन्तर्यन्तुं नियन्तुं शीलं यस्य सोऽयमन्तर्यामी' जो सब प्राणी और अप्राणिरूप जगत् के भीतर व्यापक होके, सबका नियम करता है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'अन्तर्यामी'** है।

'यो धर्म्मे राजते स धर्मराजः' जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित, धर्म ही का प्रकाश करता है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'धर्म्मराज'** है।

(यमु उपरमे) इस धातु से 'यम' शब्द बना है। **'यः सर्वान् प्राणिनो नियच्छति स यमः'** जो सब प्राणियों के कर्मफल देने की व्यवस्था करता और सब अन्यायों से पृथक् रहता है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'यम'** है।

(भज सेवायाम्) इस धातु से 'भग', इससे मतुप् होने से 'भगवान्' शब्द सिद्ध होता है। **'भगः सकलैश्वर्य्यं सेवनं वा विद्यते यस्य स भगवान्'** जो समग्र ऐश्वर्य से युक्त वा भजने के योग्य है, इसीलिए ईश्वर का नाम **'भगवान्'** है।

(मन ज्ञाने) इस धातु से 'मनु' शब्द बनता है। **'यो मन्यते स मनुः'** जो मनु अर्थात् विज्ञानशील और मानने योग्य है, इसलिए ईश्वर का नाम **'मनु'** है।

(पॄ पालनपूरणयोः) इस धातु से 'पुरुष' शब्द सिद्ध हुआ है। **'यः स्वव्याप्त्या चराऽचरं जगत् पृणाति पूरयति वा स पुरुषः'** जो सब जगत् में पूर्ण हो रहा है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'पुरुष'** है।

(डुभृञ् धारणपोषणयो:) 'विश्व' पूर्वक इस धातु से 'विश्वम्भर' शब्द सिद्ध होता है। **'यो विश्वं बिभर्ति धरति पुष्णाति वा स विश्वम्भरो जगदीश्वर:'** जो जगत् का धारण और पोषण करता है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'विश्वम्भर'** है।

(कल संख्याने) इस धातु से 'काल' शब्द बना है। **'कलयति संख्याति सर्वान् पदार्थान् स काल:'** जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संख्या करता है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'काल'** है।

(शिष्लृ विशेषणे) इस धातु से 'शेष' शब्द [सिद्ध] होता है। **'य: शिष्यते स शेष:'** जो उत्पत्ति और प्रलय से शेष अर्थात् बाकी रहता है, इसलिए परमात्मा का नाम **'शेष'** है।

(आप्लृ व्याप्तौ) इस धातु से 'आप्त' शब्द सिद्ध होता है। **'य: सर्वान् धर्मात्मन आप्नोति वा सर्वैर्धर्मात्मभिराप्यते छलादिरहित: स आप्त:'** जो सत्योपदेशक, सकल विद्यायुक्त, सब धर्मात्माओं को प्राप्त होता है और धर्मात्माओं से प्राप्त होने योग्य, छल-कपटादि से रहित है, इसलिए परमात्मा का नाम **'आप्त'** है।

(डुकृञ् करणे) 'शम्' पूर्वक इस धातु से 'शङ्कर' शब्द सिद्ध हुआ है। **'य: शं कल्याणं सुखं करोति स शङ्कर:'** जो कल्याण अर्थात् सुख का करनेहारा है, इससे **'शङ्कर'** नाम ईश्वर का है।

'महत्' शब्द पूर्वक 'देव' शब्द से 'महादेव' शब्द सिद्ध होता है। **'यो महतां देव: स महादेव:'** जो महान् देवों का देव अर्थात् विद्वानों का भी विद्वान्, सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है, इसलिए परमात्मा का नाम **'महादेव'** है।

(प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च) इस धातु से 'प्रिय' शब्द सिद्ध होता है। **'य: प्रीणाति प्रीयते वा स प्रिय:'** जो सब धर्मात्माओं, मुमुक्षुओं और शिष्टों को प्रसन्न करता और सबको कामना के योग्य है, इसलिए ईश्वर का नाम **'प्रिय'** है।

(भू सत्तायाम्) 'स्वयं' पूर्वक इस धातु से 'स्वयम्भू' शब्द सिद्ध होता है। **'य: स्वयं भवति स स्वयम्भूरीश्वर:'** जो आप से आप ही है, किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ है, इससे परमात्मा का नाम **'स्वयम्भू'**

है।

(कु शब्दे) इस धातु से 'कवि' शब्द सिद्ध होता है। **'य: कौति शब्दयति सर्वा विद्या: स कविरीश्वर:'** जो वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेष्टा और वेत्ता है, इसलिए परमेश्वर का नाम **'कवि'** है।

(शिवु कल्याणे) इस धातु से 'शिव' शब्द सिद्ध होता है। **'बहुलमेतन्निदर्शनम्'** [धातुपाठे चुरादिगणे] इससे शिवु धातु माना जाता है, जो कल्याणस्वरूप और कल्याण का करनेहारा है, इसलिए परमात्मा का नाम **'शिव'** है।

ये शत नाम परमेश्वर के लिखे हैं। परन्तु इनसे भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम हैं। क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव हैं, वैसे उसके अनन्त नाम हैं। उनमें से प्रत्येक गुण, कर्म और स्वभाव का एक-एक नाम है। यह मेरा लिखना समुद्र के सामने विन्दुवत् है। क्योंकि वेदादि शास्त्रों में परमात्मा के असंख्य गुण, कर्म, स्वभाव व्याख्यात किये हैं। उनके पढ़ने-पढ़ाने से बोध हो सकता है। और अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा होता है, जो वेदादिशास्त्रों को पढ़ते हैं।

(प्रश्न) जैसा अन्य ग्रन्थकार लोग आदि, मध्य और अन्त में मङ्गलाचरण करते हैं, वैसे आपने कुछ भी न लिखा, न किया?

(उत्तर) ऐसा हमको करना योग्य नहीं। क्योंकि जो आदि, मध्य और अन्त में मङ्गल करेगा तो उसके ग्रन्थ में आदि मध्य और मध्य तथा अन्त के बीच में जो कुछ लेख होगा, वह अमङ्गल ही रहेगा। इसलिए—

'मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति'

—यह सांख्यशास्त्र [अ० ५। सू० १] का वचन है।

इसका यह अभिप्राय है कि जो न्याय, पक्षपातरहित, सत्य, वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है, उसी का यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मङ्गलाचरण कहाता है। ग्रन्थ के आरम्भ से ले के समाप्तिपर्यन्त सत्याचार का करना ही मङ्गलाचरण है, न कि कहीं मङ्गल और कहीं अमङ्गल लिखना। देखिए, महाशय महर्षियों के लेख को—

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि॥

—यह तैत्तिरीयोपनिषद् [१।११] का वचन है।

हे सन्तानो! जो '**अनवद्य**' अनिन्दनीय अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हैं, वे ही तुमको करने योग्य हैं, अधर्मयुक्त नहीं।

इसलिए जो आधुनिक ग्रन्थ वा टीकाकारकों के '**श्रीगणेशाय नमः**', '**सीतारामाभ्यां नमः**', '**राधाकृष्णाभ्यां नमः**', '**श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः**', '**हनुमते नमः**', **दुर्गायै नमः**', **वटुकाय नमः**', '**भैरवाय नमः**', '**शिवाय नमः**', '**सरस्वत्यै नमः**', '**नारायणाय नमः**' इत्यादि लेख देखने में आते हैं, इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्या ही समझते हैं। क्योंकि वेद और ऋषि मुनियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मङ्गलाचरण देखने में नहीं आता और आर्ष ग्रन्थों में 'ओ३म्' तथा 'अथ' शब्द तो देखने में आता है। देखो—

'अथ शब्दानुशासनम्'। अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते।

—यह व्याकरणमहाभाष्य [पस्पशाह्निक]

'अथातो धर्मजिज्ञासा'। अथेत्यानन्तर्ये वेदाध्ययनानन्तरम्।

—यह पूर्वमीमांसा।

'अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः'।
अथेति धर्मकथनानन्तरं धर्मलक्षणं विशेषेण व्याख्यास्यामः।

—यह वैशेषिकदर्शन।

'अथ योगानुशासनम्'। अथेत्ययमधिकारार्थः।

—यह योगशास्त्र।

'अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः'। सांसारिकविषयभोगानन्तरं त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्त्यर्थः प्रयत्नः कर्त्तव्यः।

—यह सांख्यशास्त्र।

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'।
चतुष्टयसाधनसंपत्त्यनन्तरं ब्रह्म जिज्ञास्यम्।

—यह वेदान्तसूत्र है।

'ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत'।

—यह छान्दोग्योपनिषद् [१।१।१] का वचन है।

'ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम्'।

—यह माण्डूक्योपनिषद् के आरम्भ का वचन है।

ऐसे ही अन्य ऋषि-मुनियों के ग्रन्थों में 'ओम्' और 'अथ' शब्द लिखे हैं, वैसे ही **(अग्नि, इट्, अग्नि, ये त्रिषप्ताः परियन्ति)** ये शब्द चारों वेदों के आदि में लिखे हैं। '**श्रीगणेशाय नमः**' इत्यादि शब्द कहीं नहीं। और जो वैदिक लोग वेद के आरम्भ में '**हरिः ओम्**' लिखते और पढ़ते हैं, यह पौराणिक और तान्त्रिक लोगों की मिथ्या कल्पना से सीखे हैं। केवल ओङ्कार का पाठ तो ऋषि-मुनियों के ग्रन्थों में देखने में आता है, '**हरि**' शब्द आदि में कहीं नहीं। इसलिए '**ओ३म्**' वा '**अथ**' शब्द ही ग्रन्थ की आदि में लिखना चाहिए।

यह किञ्चिन्मात्र ईश्वर के विषय में लिखा, अब इसके आगे शिक्षा के विषय में लिखा जाएगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषित ईश्वरनामविषये
प्रथमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ १॥

अथ द्वितीयसमुल्लासारम्भः

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।

—यह शतपथब्राह्मण का वचन है।

[तुलना-शतपथ ब्राह्मण का० १४। प्रपा० ५। ब्रा० ८। कं० २॥ तथा छा० उ० प्रपा० ६। खं० १४]॥

वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे, तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान्! जिसके माता और पिता धार्मिक और विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है, उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम, उनका हित करना चाहती है, उतना अन्य कोई नहीं कर सकता। इसीलिए (मातृमान्) अर्थात् **प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्।** धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो, तब तक सुशीलता का उपदेश करे।

माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाशक नशादि पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करे वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें कि जिससे रज-वीर्य्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तमगुणयुक्त हों। जैसा ऋतुगमन का विधि अर्थात् रजोदर्शन के पाँचवें दिवस से ले के सोलहवें दिवस तक ऋतुदान देने का समय है, उन में से प्रथम के चार दिन त्याज्य हैं, रहे १२ दिन, उनमें एकादशी और त्रयोदशी को छोड़ के बाकी १० रात्रियों में गर्भाधान करना उत्तम है। और रजोदर्शन के दिन से ले के १६वीं रात्रि के पश्चात् समागम न करना। पुनः जब तक

ऋतुदान का समय पूर्वोक्त न आवे तब तक और गर्भस्थिति के पश्चात् एक वर्ष तक संयुक्त न हों कि जब दोनों का शरीर आरोग्य, परस्पर प्रसन्नता, किसी प्रकार का शोक न हो। जैसा चरक और सुश्रुत में भोजन-छादन का विधान और मनुस्मृति में स्त्री-पुरुष की प्रसन्नता की रीति लिखी है, उसी प्रकार करें और वर्तें। गर्भाधान के पश्चात् स्त्री को बहुत सावधानी से भोजन-छादन करना चाहिए। पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुष का सङ्ग न करे। बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक द्रव्यों ही का सेवन स्त्री करती रहे कि जब तक सन्तान का जन्म न हो।

जब जन्म हो, तब अच्छे सुगन्धियुक्त जल से बालक को स्नान, नाड़ीछेदन करके, सुगन्धियुक्त घृतादि का होम* और स्त्री को भी स्नान, भोजन का यथायोग्य प्रबन्ध करे कि जिससे बालक और स्त्री का शरीर क्रमशः आरोग्य और पुष्ट होता जाए। ऐसा पदार्थ उसकी माता वा धायी खावे कि जिससे दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों। प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे। तदनन्तर धायी पिलाया करे। परन्तु धायी को उत्तम पदार्थों का खान-पान माता-पिता करावें। जो कोई दरिद्र हो, धायी को न रख सकें तो वे गाय वा बकरी के दूध में उत्तम ओषधि जो कि बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य करानेहारी हों, उनको शुद्ध जल में भिजा, औटा, छान के दूध के समान जल मिला के बालक को पिलावें। जन्मे पश्चात् बालक और बालक की माता को दूसरे स्थान जहाँ का वायु शुद्ध हो वहाँ रक्खें, सुगन्ध तथा दर्शनीय पदार्थ भी रक्खें, और उस देश में भ्रमण कराना उचित है कि जहाँ का वायु शुद्ध हो। और जहाँ धायी, गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके, वहाँ जैसे उचित समझें, वैसा करें। क्योंकि प्रसूता स्त्री के शरीर के अंश से बालक का शरीर होता है, इसी से स्त्री प्रसव समय निर्बल हो जाती है, उस समय उसके दूध में भी बल कम होता है, इसलिए प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे। दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस ओषधि का लेप करे, जिससे दूध स्रवित न

* बालक के जन्मसमय में 'जातकर्म संस्कार' होता है, उसमें हवनादि वेदोक्त कर्म होते हैं, वे श्री स्वामी जी ने संस्कारविधि में सविस्तर लिख दिये हैं।

हो। ऐसे करने से द्वितीय महीने में पुनरपि युवति हो जाती है। तब तक पुरुष ब्रह्मचर्य से वीर्य का निग्रह रक्खे। इस प्रकार जो स्त्री वा पुरुष करेगा, उनके उत्तम सन्तान, दीर्घायु, बल, पराक्रम की वृद्धि ही होती रहेगी कि जिससे सब सन्तान, उत्तम बल-पराक्रमयुक्त, दीर्घायु, धार्मिक हों। स्त्री योनिसङ्कोच, शोधन और पुरुष वीर्य्य का स्तम्भन करे। पुनः सन्तान जितने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे।

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अङ्ग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगें, तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके, वैसा उपाय करे कि जो जिस वर्ण का स्थान, प्रयत्न अर्थात् जैसे '**प**' इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न कि दोनों ओष्ठों को मिला कर बोलना, इसके विना शुद्धोच्चारण ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक नहीं बोल सकता। मधुर, गम्भीर, सुस्वर, अक्षर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न-भिन्न श्रवण होवे। जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े, छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्त्तमान और पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें कि जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न हो के, सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्सङ्ग में रुचि करता हो, वैसा प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श विना निमित्त न करें, क्योंकि इसके स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता, हस्त में दुर्गन्ध भी होता है। सदा सत्यभाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावें। जब पाँच-पाँच वर्ष के लड़का-लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें, अन्यदेशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे-कैसे वर्त्तना, इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थ सहित कण्ठस्थ करावें। जिनसे सन्तान किसी धूर्त के बहिकाने

में न आवें। और जो-जो विद्याधर्मविरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं, उनका भी उपदेश कर दें, जिससे भूत, प्रेत आदि मिथ्या बातों पर विश्वास न हो।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति॥

—यह मनुस्मृति [अ० ५। श्लो० ६५] का श्लोक है॥

अर्थ—जब गुरु का प्राणान्त हो, तब मृतकशरीर जिसका नाम '**प्रेत**' है, उसका दाह करनेहारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक को उठाने वालों के साथ दशवें दिन शुद्ध होता है। और जब उस शरीर का दाह हो चुका, तब उसका नाम '**भूत**' होता है अर्थात् वह अमुकनामा पुरुष था। जितने उत्पन्न हों, वर्त्तमान में आ के न रहें, वे भूतस्थ होने से उनका नाम **भूत** है। ऐसा ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है। परन्तु जिसको शङ्का, कुसङ्ग, कुसंस्कार होता है, उसको भय और शङ्कारूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं।

देखो! जब कोई प्राणी मरता है, तब उसका जीव पाप-पुण्य के वश होकर, परमेश्वर की व्यवस्था से सुख-दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है। क्या इस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है? अज्ञानी लोग वैद्यकशास्त्र वा पदार्थविद्या के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपातज्वरादि शारीर और उन्मादादि मानस रोगों का नाम भूत प्रेतादि धरते हैं। उनका औषधसेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके, उन धूर्त्त, पाखण्डी, महामूर्ख अनाचारी, स्वार्थी, भङ्गी, चमार, शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोङ्ग, छल-कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा, धागा आदि मिथ्या मन्त्र-यन्त्र बाँधते-बँधवाते फिरते हैं। अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ा कर दुःख देते रहते हैं।

जब आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे, उन दुर्बुद्धि-पापी-स्वार्थियों के पास जाकर पूछते हैं कि 'महाराज! इस लड़का, लड़की, स्त्री और पुरुष को न जाने क्या हो गया है?' तब वे अन्धे बोलते हैं कि ''इसके शरीर में बड़ा भूत, प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आ गई है, जब तक

तुम इसका उपाय न करोगे, तब तक ये न छूटेंगे और प्राण भी ले लेंगे। जो तुम मलीदा वा इतनी भेंट दो, तो हम मन्त्र जप पुरश्चरण से झाड़ के इनको निकाल दें।'' तब वे अन्धे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि ''महाराज! चाहे हमारा सर्वस्व जाओ, परन्तु इनको अच्छा कर दीजिए।'' तब तो उनकी बन पड़ती है। वे धूर्त कहते हैं ''अच्छा लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा, देवता की भेट और ग्रहदान कराओ।'' झांझ, मृदङ्ग, ढोल, थाली लेके, उसके सामने बजाते-गाते हैं और उनमें से एक पाखण्डी उन्मत्त होके नाच-कूद के कहता है कि मैं इसका प्राण ही ले लूँगा। तब वे अन्धे उस भङ्गी, चमार आदि के भी पगों में पड़ के कहते हैं ''आप चाहें सो लीजिए, इसको बचाइए।'' तब वह धूर्त्त बोलता है ''मैं हनुमान् हूँ, लाओ मिठाई, तैल, सिन्दूर, सवामन का रोट और लाल लङ्गोट।'' ''मैं देवी वा भैरव हूँ, लाओ पाँच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पाँच बकरे, मिठाई और वस्त्र।'' जब वे कहते हैं कि ''जो चाहो सो लो''। तब तो वह पागल बहुत नाचने-कूदने लगता है। परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उसकी भेट पाँच जूता, दण्डा वा चपेटा, लात मारे तो उसका हनुमान्, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं, क्योंकि वह उनका, केवल धनादि हरण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है।

और जब किसी ग्रहग्रस्त, ग्रहरूप, ज्योतिर्विदाभास के पास जाके कहते हैं—''हे महाराज! इसको क्या है?'' तब वे कहते हैं कि ''इसपर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इनकी शान्ति, पाठ, पूजा, दान कराओ तो इसको सुख हो जाए, नहीं तो बहुत पीड़ित और मर जाए तो भी आश्चर्य नहीं।''

उत्तर—कहिए ज्योतिर्वित्! जैसी यह पृथिवी जड़ है, वैसे ही सूर्यादि लोक हैं। वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं, जो क्रोधित होके दु:ख और शान्त होके सुख दे सकें?

प्रश्न—क्या जो यह संसार में राजा-प्रजा सुखी-दु:खी हो रहे हैं, यह ग्रहों का फल नहीं है?

उत्तर—नहीं, ये सब पाप-पुण्यों के फल हैं।

प्रश्न—तो क्या ज्योतिष शास्त्र झूठा है?

उत्तर—नहीं, जो उसमें अङ्क, बीज, रेखागणित विद्या है, वह सब सच्ची, जो फल की लीला है, वह सब झूठी है।

प्रश्न—क्या जो यह जन्मपत्र है, सो निष्फल है?

उत्तर—हाँ, वह जन्मपत्र नहीं, किन्तु उसका नाम '**शोकपत्र**' रखना चाहिए। क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है, तब सबको आनन्द होता है। परन्तु तब तक होता है कि जब तक जन्मपत्र बनके ग्रहों का फल न सुने। जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है तब उसके माता-पिता पुरोहित से कहते हैं ''महाराज! आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइए'' जो धनाढ्य हो तो बहुत सी लाल-पीली रेखाओं से चित्र-विचित्र और निर्धन हो तो साधारण रीति से जन्मपत्र बनाके सुनाने को आता है। तब उसके मा-बाप ज्योतिषीजी के सामने बैठके कहते हैं ''इसका जन्मपत्र अच्छा तो है?'' ज्योतिषी कहता है ''जो है सो सुना देता हूँ, इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी अच्छे हैं, जिनका फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा, तो सबके ऊपर इसका तेज पड़ेगा, शरीर से आरोग्य और राज्यमान भी होगा।'' इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं ''वाह-वाह ज्योतिषीजी! आप बहुत अच्छे हो।'' ज्योतिषीजी समझते हैं इन बातों से कार्य सिद्ध नहीं होता, तब ज्योतिषी बोलता है कि ''ये ग्रह तो बहुत अच्छे हैं, परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने-फलाने ग्रह के योग से ८वें वर्ष में इसका मृत्युयोग है।'' इसको सुन के माता-पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़के शोकसागर में डूबकर, ज्योतिषीजी से कहते हैं कि ''महाराजजी! अब हम क्या करें?'' तब ज्योतिषीजी कहते हैं ''उपाय करो।'' गृहस्थ पूछे ''क्या उपाय करें?'' ज्योतिषीजी कहते हैं कि ''ऐसा-ऐसा दान करो, ग्रह के मन्त्र का जप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे, तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जाएँ।'' अनुमान शब्द इसलिए है कि जो मर जाएगा तो कहेंगे, हम क्या करें, परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है, हमने तो बहुत-सा यत्न किया और तुमने कराया, उसके कर्म ऐसे ही थे। और जो बच जाए तो कहते हैं कि देखो—हमारे मन्त्र, देवता

और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है! तुम्हारे लड़के को बचा दिया।

यहाँ यह बात होनी चाहिए कि जो इनके जप, पाठ से कुछ न हो तो दूने-तिगुणे रुपये उन धूर्त्तों से ले-लेने चाहिएँ और बच जाए तो भी ले-लेने चाहियें, क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि "इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं", वैसे गृहस्थ भी कहें कि "यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है, तुम्हारे करने से नहीं"। और तीसरे गुरु आदि भी पुण्य-दान कराके आप ले-लेते हैं, तो उनको भी वही उत्तर देना, जो ज्योतिषियों को दिया था।

अब रह गई शीतला और मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र आदि। ये भी ऐसे ही ढोङ्ग मचाते हैं। कोई कहता है कि "जो हम मन्त्र पढ़ के डोरा वा यन्त्र बना देवें, तो हमारे देवता और पीर उस मन्त्र-यन्त्र के प्रताप से उसको कोई विघ्न नहीं होने देते।" उनसे वही उत्तर देना चाहिए कि क्या तुम मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मफल से भी बचा सकोगे? तुम्हारे इस प्रकार करने से भी कितने ही लड़के मर जाते हैं और तुम्हारे घर में भी मर जाते हैं और क्या तुम मरण से बच सकोगे? तब वे कुछ भी नहीं कह सकते और वे धूर्त्त जान लेते हैं कि यहाँ हमारी दाल नहीं गलेगी।

इससे इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़कर धार्मिक, सब देश के उपकारकर्त्ता, निष्कपटता से सबको विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान् लोगों का प्रत्युपकार करना, जैसा वे जगत् का उपकार करते हैं, इस काम को कभी न छोड़ना चाहिए। और जितनी लीला, रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं, उनको भी महापामर समझ लेना चाहिए। इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था ही में सन्तानों के हृदय में डाल दें कि जिससे स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़ के दुःख न पावें। और वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःख प्राप्ति भी जना देनी चाहिए। जैसे "देखो! जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है, तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण की यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का सङ्ग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रहकर

उत्तम शिक्षा, पूर्ण विद्या को प्राप्त करते हैं, वैसे तुम भी रहकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होना। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक, महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम सुशिक्षा, विद्या के ग्रहण और वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब तक हम लोग गृहकर्मों के करने वाले जीते हैं, तभी तक तुमको विद्या ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिए।"

इस प्रकार की अन्य-अन्य शिक्षा भी माता और पिता करें, इसीलिए '**मातृमान् पितृमान्**' शब्द का ग्रहण उक्त वचन में किया है। अर्थात् जन्म से ५वें वर्ष तक बालकों को माता, ६ठे वर्ष से ८वें वर्ष तक पिता शिक्षा करें और ९मे वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्यकुल में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करनेवाली हों, वहाँ लड़के और लड़कियों को भेज दें। और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये विना, विद्याभ्यास के लिए गुरुकुल में भेज दें।

उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाडन कभी नहीं करते, किन्तु ताडना ही करते रहते हैं। इसमें व्याकरण महाभाष्य का प्रमाण है—

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥ [८।१।८]॥

अर्थ—जो माता, पिता और आचार्य सन्तान और शिष्यों का ताडन करते हैं, वे जानो अपने सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं, और जो सन्तानों वा शिष्यों का लाडन करते हैं, वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिला के नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि लाडन से सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताडना से गुणयुक्त होते हैं। और सन्तान और शिष्य लोग भी ताडना से प्रसन्न और लाडन से अप्रसन्न सदा रहा करें। परन्तु माता-पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताडन न करें, किन्तु ऊपर से भयप्रदान और भीतर से कृपादृष्टि रक्खें।

जैसे अन्य शिक्षा की, वैसी चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक-द्रव्य, मिथ्याभाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों के छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा करें। क्योंकि जिस पुरुष ने जिनके सामने एक वार चोरी, जारी, मिथ्याभाषणादि कर्म किया, उसकी प्रतिष्ठा उनके सामने मृत्युपर्यन्त नहीं होती। जैसी हानि प्रतिज्ञा-मिथ्या करने वाले की होती है, वैसी अन्य किसी की नहीं। इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी, उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिए, अर्थात् जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'मैं तुमको वा तुम मुझसे अमुक समय में मिलूँगा वा मिलना अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में तुमको मैं दूँगा' इसको वैसे ही पूरी करे, नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी न करेगा। इसलिए सदा सत्यप्रतिज्ञायुक्त सबको होना चाहिए।

किसी को अभिमान करना योग्य नहीं, क्योंकि—

'अभिमानः श्रियं हन्ति' —यह [किसी कवि] का वचन है॥

जो अभिमान अर्थात् अहङ्कार है, वह सब शोभा और लक्ष्मी का नाश कर देता है, इस वास्ते अभिमान करना न चाहिए।

छल, कपट वा कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है, तो दूसरे की क्या कथा कहनी? छल और कपट उसको कहते हैं, जो भीतर और, बाहर और, दूसरे को मोह में डाल और दूसरे की हानि पर ध्यान न देकर, स्वप्रयोजन सिद्ध करना। 'कृतघ्नता' उसको कहते हैं कि किसी के किये हुए उपकार को न मानना। क्रोधादि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे। जितना बोलना चाहिए उससे न्यून वा अधिक न बोले। बड़ों को मान्य दे, उठकर, जा के, उच्चासन पर बैठावे, प्रथम 'नमस्ते' कहे। उनके सामने उत्तमासन पर न बैठे। सभा में वैसे स्थान में बैठे, जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे। विरोध किसी से न करे। प्रसन्न होकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग रक्खे। सज्जनों का सङ्ग और दुष्टों का त्याग, अपने माता, पिता और आचार्य की तन, मन से सेवा करे।

यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि॥

—यह तैत्तिरीयोपनिषद् [१।११] का वचन है॥

इसका यह अभिप्राय है कि माता, पिता, आचार्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि जो-जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं, उन-उन का ग्रहण करो और जो-जो दुष्ट कर्म हों, उन-उन का त्याग कर दिया करो। जो-जो सत्य जाने, उस-उस का प्रकाश और प्रचार करे। किसी पाखण्डी, दुष्टाचारी मनुष्य पर विश्वास न करे और जिस-जिस उत्तम कर्म के लिए माता, पिता और आचार्य आज्ञा देवें, उस-उस का पालन करे। जैसे माता-पिता ने धर्म, विद्या, अच्छे आचरण के श्लोक, 'निघण्टु', 'निरुक्त', 'अष्टाध्यायी' अथवा अन्य सूत्र वा वेदमन्त्र कण्ठस्थ कराये हों, उन-उन का पुनः अर्थ विद्यार्थियों को विदित करावें। जैसे प्रथम समुल्लास में परमेश्वर का व्याख्यान किया है, उसी प्रकार मानके, उसकी उपासना करें। जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो, उसी प्रकार भोजन, छादन और व्यवहार करें-करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो, उससे कुछ न्यून भोजन करे। मद्य, मांसादि के सेवन से अलग रहें। अज्ञात गम्भीर जल में प्रवेश न करें, क्योंकि जलजन्तु वा किसी अन्य पदार्थ से दुःख और जो तरना न जाने तो डूब ही जा सकता है।

'नाविज्ञाते जलाशये' —यह मनुस्मृति [४।१२९] का वचन है॥

अविज्ञात जलाशय में प्रविष्ट होके स्नानादि न करें।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत्॥

—यह मनुस्मृति [६।४६] का वचन है॥

अर्थ—नीचे दृष्टि कर, ऊँचे-नीचे स्थान को देख के चले, वस्त्र से छान के जल पिये, सत्य से पवित्र करके वचन बोले, मन से विचार के आचरण करे।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

—यह किसी कवि का वचन है [चा० नी० २।११]॥

वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण शत्रु हैं कि जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत

और कुशोभित होते हैं कि जैसे हंसों के बीच में बगुला। यही माता-पिता का कर्त्तव्यकर्म, परमधर्म और कीर्त्ति का काम है कि जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना।

यह बालशिक्षा में थोड़ा-सा लिखा, इतने ही से बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते बालशिक्षाविषये
द्वितीयः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ २॥

अथ तृतीयसमुल्लासारम्भः

अथाऽध्ययनाऽध्यापनविधिं व्याख्यास्यामः ॥

अब तीसरे समुल्लास में पढ़ने-पढ़ाने का प्रकार लिखेंगे। सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चाँदी, हीरा, माणिक, मोती, मूँगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के योग से बालकादिकों का मृत्यु दुष्टों के हाथ से होता है।

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः॥

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता; सुन्दरशील-स्वभावयुक्त; सत्यभाषणादिनियमपालनयुक्त; और जो अभिमान, अपवित्रता से रहित, अन्य की मलिनता के नाशक; सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी-जनों के दुःखों के दूर करने से सुभूषित; वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में रहते हैं, वे नर और नारी धन्य हैं। विना इसके किसी को शोभा प्राप्त नहीं होती।

इसलिए आठ वर्ष के हों तभी, लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की शाला में भेज देवें। जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों, उनसे शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों, वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं। द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके, यथोक्त

आचार्य्यकुल अर्थात् अपनी-अपनी पाठशाला में भेज दें। विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए और वे लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोश एक-दूसरे से दूर होनी चाहिएँ। जो वहाँ अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा नौकर-चाकर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पाँच वर्ष का लड़का और लड़कों की पाठशाला में पाँच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे अर्थात् जब तक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहें, तब तक स्त्री वा पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषयकथा, परस्परक्रीड़ा, विषय का ध्यान और सङ्ग, इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें। और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावें, जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील स्वभाव, शरीर और आत्मा के बलयुक्त हो के, आनन्द को नित्य बढ़ा सकें।

पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोश दूर ग्राम वा नगर रहै। सबको तुल्य वस्त्र, खान, पान, आसन दिये जाएँ, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र के सन्तान हों। सब को तपस्वी होना चाहिए। उनके माता-पिता अपने सन्तानों से वा सन्तान अपने माता-पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार एक-दूसरे से कर सकें, जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर, केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रक्खें। जब भ्रमण करने को जायें, तब उनके साथ अध्यापक रहैं, जिससे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें और न आलस्य प्रमाद करें।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

—यह मनुस्मृति [७।१५२] का श्लोक है॥

इसका अभिप्राय यह है कि इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़के, लड़कियों को घर में न रखके, पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे, वह दण्डनीय हो। प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में आचार्य्यकुल में हो। पिता, माता वा अध्यापक अपने लड़का-लड़कियों को अर्थसहित गायत्रीमन्त्र का उपदेश कर दें। वह मन्त्र—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ —[यजुः० ३६।३]

इस मन्त्र में जो प्रथम ओङ्कार है, उसका अर्थ प्रथमसमुल्लास में कर दिया है, वहीं से जान लेना। अब तीन महाव्याहृतियों के अर्थ संक्षेप से लिखते हैं—'**भूरिति वै प्राणः**' '**यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः**' जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है, उस प्राण का वाचक होके '**भूः**' परमेश्वर का नाम है। '**भुवरित्यपानः**' '**यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः**' जो सब दुःखों से रहित, जिसके संग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं, इसलिए परमेश्वर का नाम '**भुवः**' है। '**स्वरिति व्यानः**' '**यो विविधं जगद् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः**' जो नानाविध जगत् में व्यापक होके सबका धारण कर रहा है, इसलिए परमेश्वर का नाम '**स्वः**' है। ये तीनों वचन तैत्तिरीय आरण्यक [प्रपा० ७। अनु० ५] के हैं।

(सवितुः) '**यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य**' जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्य का दाता है (देवस्य) '**यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः**' जो सर्वसुखों का देनेहारा और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का जो (वरेण्यम्) '**वर्तुमर्हम्**' स्वीकार करने योग्य, अतिश्रेष्ठ (भर्गः) '**शुद्धस्वरूपम्**' शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला चेतन ब्रह्मस्वरूप है (तत्) उसी परमात्मा के स्वरूप को हमलोग (धीमहि) '**धरेमहि**' धारण करें। किस प्रयोजन के लिए कि (यः) जो सविता देव परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।

'हे परमेश्वर! हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप! हे नित्यशुद्धबुद्ध-मुक्तस्वभाव! हे कृपानिधे न्यायकारिन्! हे अज निरञ्जन निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वाधार सर्वजगत्पितः सकलजगदुत्पादक! हे अनादे विश्वम्भर सर्वव्यापिन्! हे करुणामृतवारिधे! सवितुर्देवस्य तव यदों भूर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि दधीमहि धरेमहि ध्यायेम वा। कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह—हे भगवन्! यः सविता देवः परमेश्वरो भवानस्माकं धियः प्रचोदयात्, स एवास्माकं पूज्य

उपासनीय इष्टदेवो भवतु। नातोऽन्यद्वस्तु भवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कञ्चित् कदाचिन्मन्यामहे।'

हे मनुष्यो! जो सब समर्थों में समर्थ; सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप; नित्यशुद्ध-नित्यबुद्ध-नित्यमुक्तस्वभाव वाला; कृपासागर; ठीक-ठीक न्याय का करनेहारा; जन्ममरणादि क्लेशरहित, आकार-विकार रहित; सबके घट-घट का जानने वाला; सबका धर्त्ता, पिता, उत्पादक; अनादि, अन्नादि से विश्व का पोषण करनेहारा, सर्वव्यापक; सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत् का निर्माता, शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है, उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतनस्वरूप है, उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिए कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामिस्वरूप हमको दुष्टाचार, अधर्म्मयुक्त मार्ग से हटा के श्रेष्ठाचार, सत्य मार्ग में चलावे। उसको छोड़कर, दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें, क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। वही हमारा पिता, राजा, न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है।

इस प्रकार गायत्रीमन्त्र का उपदेश करके सन्ध्योपासन की जो स्नान, आचमन, प्राणायाम आदि क्रिया है, सिखलावें। प्रथम स्नान इसलिए है कि जिससे शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि. आरोग्य आदि होते हैं।

इसमें प्रमाण—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

—यह मनुस्मृति [५।१०९] का श्लोक है॥

जल से शरीर के बाहर के अवयव; सत्याचरण से मन; विद्या और तप अर्थात् सब प्रकार के कष्ट भी सह के, धर्म ही के अनुष्ठान करने से जीवात्मा; ज्ञान, अर्थात् पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि, अर्थात् दृढ़निश्चय पवित्र होता है। इससे स्नान भोजन के पूर्व अवश्य करना चाहिये।

दूसरा प्राणायाम, इसमें प्रमाण—

प्राणायामादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः॥

—यह योगशास्त्र [२।२८] का सूत्र है॥

जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है। जब तक मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां च यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

—यह मनुस्मृति [६।७१] का श्लोक है॥

जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं, वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं।

प्राणायाम का विधि—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

—यह योगशास्त्र [१।३४] का सूत्र है॥

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न बाहर निकल जाता है, वैसे प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे। जब बाहर निकालना चाहे, तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच के, वायु को बाहर फेंक दे। जब तक मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रक्खे, तब तक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो तब धीरे-धीरे भीतर वायु को लेके फिर भी वैसे ही करता जाए, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो। और मन में 'ओ३म्' इसका जप करता जाय। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की, पवित्रता और स्थिरता होती है।

एक 'बाह्यविषय' अर्थात् बाहर ही प्राण को अधिक रोकना। दूसरा 'आभ्यन्तर' अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाए, उतना रोके। तीसरा 'स्तम्भवृत्ति' अर्थात् एकदम जहाँ-का-तहाँ प्राण को यथाशक्ति रोक देना। चौथा 'बाह्याभ्यन्तराक्षेपी' अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे, तब उससे विरुद्ध, उसको न निकलने देने के लिए, बाहर से भीतर ले और जब बाहर से भीतर आने लगे, तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर, रोकता जाए। ऐसे एक-दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें, तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से, मन और इन्द्रियें भी स्वाधीन होते हैं। बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्मरूप

हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण कर लेती है। इससे मनुष्य शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे। भोजन-छादन, बैठने-उठने, बोलने-चालने, बड़े-छोटे से यथायोग्य व्यवहार करने का उपदेश करें।

सन्ध्योपासन, जिसे ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं। 'आचमन' उतने जल को हथेली में ले के, पञ्जा के मूल और मध्यदेश में ओष्ठ लगा के करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचे, न उससे अधिक न न्यून। उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी-सी होती है। पश्चात् 'मार्जन' अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अङ्गों पर जल छिड़के, उससे आलस्य दूर होता है। जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे। पुनः समन्त्रक प्राणायाम, मनसापरिक्रमण, उपस्थान। पीछे परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना की रीति सिखलावे। पश्चात् 'अघमर्षण' अर्थात् पाप करने की इच्छा भी कभी न करे। यह सन्ध्योपासन एकान्त देश में एकाग्रचित्त से करे।

अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥

—यह मनुस्मृति [२।१०४] का श्लोक है॥

जङ्गल में अर्थात् एकान्त देश में जा, सावधान हो के, जल के समीप स्थित हो के, नित्य कर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्रीमन्त्र का उच्चारण, अर्थज्ञान और उसके अनुसार अपनी चाल-चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है।

दूसरा **देवयज्ञ**—जो अग्निहोत्र, विद्वानों का संग सेवादि से होता है। सन्ध्या और अग्निहोत्र सायं-प्रातः दो ही काल में करे। दो ही रात-दिन की सन्धिवेला हैं, अन्य नहीं। न्यून-से-न्यून एक घण्टा पर्य्यन्त ध्यान अवश्य करे। जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं, वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करे। दूसरा अग्निहोत्र कर्म—दोनों सन्धिवेला अर्थात् सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र

करने का समय है। एक किसी धातु वा मट्टी की, ऊपर १२ वा १६ अंगुल चौकोण, उतनी ही गहिरी और नीचे ३ वा ४ अंगुल परिमाण से वेदी इस प्रकार बनावे अर्थात् ऊपर जितनी चौड़ी हो, उसकी चतुर्थांश नीचे चौड़ी रहै, उसमें चन्दन, पलाश वा आम्रादि के श्रेष्ठ काष्ठों के टुकड़े उसी वेदी के परिमाण से बड़े-छोटे करके उसमें रक्खे, उसके मध्य अग्नि रख के पुनः उस पर समिधा अर्थात् पूर्वोक्त इंधन रख दे। एक प्रोक्षणीपात्र ऐसा, और तीसरा प्रणीतापात्र इस प्रकार का, और एक इस प्रकार की आज्यस्थाली अर्थात् घृत रखने का पात्र, और एक चमसा ऐसा सोने, चाँदी वा काष्ठ का बनवा के, प्रणीता और प्रोक्षणी में जल तथा घृतपात्र में घृत रख के, घृत को तपा लेवे। प्रणीता जल रखने और प्रोक्षणी इसलिए है कि उससे हाथ धोने को जल लेना सुगम है। पश्चात् उस घी को अच्छी प्रकार देख ले, देख के—

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा।
स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः
प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा॥

[तै० उ० १।५ के आशय पर]।

अग्निहोत्र के इन प्रत्येक मन्त्र से एक-एक आहुति देवे और जो अधिक आहुति देना हो तो—

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ता॒नि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं त॒न्न॒ आ सु॑व॥

[यजुः ३०।३]।

इस मन्त्र और पूर्वोक्त गायत्रीमन्त्र से आहुति देवे।

'ओं' 'भूः' और 'प्राण' आदि ये सब नाम परमेश्वर के हैं। इनके अर्थ कह चुके हैं। 'स्वाहा' शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा

में हो वैसा ही जीभ से बोले, विपरीत नहीं। जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस सब जगत् के पदार्थ रचे हैं, वैसे मनुष्यों को भी परोपकार करना चाहिए।

प्रश्न—होम से क्या उपकार होता है?

उत्तर—सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दु:ख, और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य, और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न—चन्दनादि घिस के किसी को लगावे, वा घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डाल के व्यर्थ नष्ट करना, बुद्धिमानों का काम नहीं।

उत्तर—जो तुम पदार्थविद्या जानते, तो कभी ऐसी बात न कहते। क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो! जहाँ होम होता है, वहाँ से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है, वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के, वायु के साथ दूर देश में जाकर, दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है।

प्रश्न—जब ऐसा ही है तो केशर, कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प और अतर आदि के घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुखकारक होगा।

उत्तर—उस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकालकर, शुद्ध वायु को प्रवेश करा सके, क्योंकि उसमें भेदक-शक्ति नहीं है। और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हल्का करके, बाहर निकाल कर, पवित्र वायु को प्रवेश करा देता है।

प्रश्न—तो मन्त्र पढ़ के होम करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर—मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जायें और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें। वेदपुस्तकों का पठन-पाठन और रक्षा भी होवे।

प्रश्न—क्या इस होम करने के विना पाप होता है?

उत्तर—हाँ! क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न

हो के वायु और जल को बिगाड़ कर, रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से, प्राणियों को दु:ख प्राप्त कराता है, उतना ही पाप उसी मनुष्य को होता है। इसलिए उस पाप के निवारणार्थ, उतना सुगन्ध वा उससे अधिक; वायु वा जल में फैलाना चाहिए। और खिलाने-पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुखविशेष होता है। जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है, उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें, तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके। इससे अच्छे पदार्थ खिलाना-पिलाना भी चाहिए, परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है, इसलिए होम का करना अत्यावश्यक है।

प्रश्न—प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक-एक आहुति का कितना परिमाण है?

उत्तर—प्रत्येक मनुष्य सोलह-सोलह आहुति और छह-छह माशे घृतादि एक-एक आहुति का परिमाण न्यून-से-न्यून चाहिए, और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसीलिए आर्यवरशिरोमणि महाशय, ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे लोग बहुत-सा होम करते और कराते थे। जब तक इस होम का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, जो अब भी प्रचार हो, तो वैसा ही हो जाय। ये दो यज्ञ अर्थात् एक 'ब्रह्मयज्ञ' जो पढ़ना-पढ़ाना, सन्ध्योपासन, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करना। दूसरा 'देवयज्ञ' जो अग्नीहोत्र से ले के अश्वमेध पर्य्यन्त यज्ञ और विद्वानों की सेवा संग करना। परन्तु ब्रह्मचर्य में केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का ही करना होता है।

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्त्तुमर्हति। राजन्यो द्वयस्य। वैश्यो वैश्यस्यैवेति। शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीत-मध्यापयेदित्येके॥ –यह सुश्रुत के सूत्रस्थान के दूसरे अध्याय [श्लोक ५] का वचन है॥

ब्राह्मण तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य; क्षत्रिय क्षत्रिय और वैश्य; तथा वैश्य एक वैश्य वर्ण को यज्ञोपवीत कराके पढ़ा सकता है। कुलीन शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मन्त्रसंहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे,

शूद्र पढ़े, परन्तु उसका उपनयन न करे, यह मत अनेक आचार्य्यों का है। इस विधि के पश्चात् पाँचवें वा आठवें वर्ष से लड़के लड़कों की पाठशाला में और कन्या कन्याओं की पाठशाला में जावें और निम्नलिखित नियमपूर्वक अध्ययन का आरम्भ करें।

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्य्यं गुरौ त्रैवैदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा॥

—यह मनुस्मृति [३।१] का श्लोक है॥

अर्थ—आठवें वर्ष से आगे छत्तीसवें वर्ष पर्य्यन्त, अर्थात् एक-एक वेद के साङ्गोपाङ्ग पढ़ने में बारह-बारह वर्ष मिल के छत्तीस और आठ मिल के चवालीस, अथवा अठारह वर्षों का ब्रह्मचर्य और आठ पूर्व के मिल के छब्बीस, वा नौ वर्ष तथा जब तक विद्या पूर्ण ग्रहण न कर लेवे तब तक ब्रह्मचर्य रक्खे।

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंꣳशति वर्षाणि तत्प्रातःसवनं चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति॥ १॥

तञ्चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यन्दिनꣳसवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥ २॥

अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳसवनं चतुश्चत्वारिꣳ शदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यंदिनꣳसवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳसर्वꣳरोदयन्ति॥ ३॥

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनꣳ सवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानाꣳरुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥ ४॥

अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳशद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनमष्टाचत्वारिꣳ शदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदꣳसर्वमाददते॥ ५॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसंतनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये

यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति॥ ६॥

—यह छान्दोग्योपनिषद् [३।१६।१-६] का वचन है॥

ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है। कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। उनमें से कनिष्ठ—जो यह पुरुष अन्नरसमय देह और पुरि अर्थात् देह में शयन करनेवाला जीवात्मा; यज्ञ अर्थात् अतीव शुभगुणों से सङ्गत और सत्कर्त्तव्य है। इसको अवश्य है कि २४ वर्ष पर्य्यन्त जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी रहकर वेदादि विद्या और सुशिक्षा का ग्रहण करे। और विवाह करके भी लम्पटता न करे, तो उसके शरीर में प्राण बलवान् होकर सब शुभगुणों के वास करानेवाले होते हैं॥ १॥

इस प्रथम वय में जो उसको विद्याभ्यास में संतप्त करे और वह आचार्य वैसा ही उपदेश किया करे और ब्रह्मचारी ऐसा निश्चय रक्खे कि जो मैं प्रथम अवस्था में ठीक-ठीक ब्रह्मचर्य से रहूँगा तो मेरा शरीर और आत्मा आरोग्य, बलवान् हो के, शुभगुणों को वसानेवाले मेरे प्राण होंगे। हे मनुष्यो! तुम इस प्रकार से सुखों का विस्तार करो, जो मैं ब्रह्मचर्य का लोप न करूँ। २४ वर्ष के पश्चात् गृहाश्रम करूँगा तो प्रसिद्ध है कि रोगरहित रहूँगा और आयु भी मेरा ७० वा ८० वर्ष तक रहेगा॥ २॥

मध्यम ब्रह्मचर्य यह है—जो मनुष्य ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहकर वेदाभ्यास करता है, उसके प्राण, इन्द्रियाँ, अन्तःकरण और आत्मा बलयुक्त हो के, सब दुष्टों को रुलाने और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे होते हैं॥ ३॥

जो मैं इसी प्रथम वय में जैसा आप कहते हैं, कुछ तपश्चर्या करूँ, तो मेरे ये रुद्ररूप प्राणयुक्त यह मध्यम ब्रह्मचर्य सिद्ध होगा। हे ब्रह्मचारी लोगो! तुम इस ब्रह्मचर्य को बढ़ाओ। जैसे मैं इस ब्रह्मचर्य का लोप न करके यज्ञस्वरूप होता हूँ और उसी आचार्यकुल से आता और रोगरहित होता हूँ। जैसाकि यह ब्रह्मचारी अच्छा काम करता है, वैसा तुम किया करो॥ ४॥

उत्तम ब्रह्मचर्य ४८ वर्ष पर्य्यन्त का तीसरे प्रकार का होता है। जैसे ४८ अक्षर की जगती, वैसे जो ४८ वर्ष पर्य्यन्त यथावत् ब्रह्मचर्य करता

है, उसके प्राण अनुकूल होकर सकल विद्याओं का ग्रहण करते हैं॥५॥

जो आचार्य और माता-पिता अपने सन्तानों को प्रथम वय में विद्या और गुणग्रहण के लिए तपस्वी कर और उसी का उपदेश करें और वे सन्तान आप-ही-आप अखण्डित ब्रह्मचर्य सेवन से तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्ष पर्य्यन्त आयु को बढ़ावें, वैसे तुम भी बढ़ाओ। क्योंकि जो मनुष्य इस ब्रह्मचर्य को प्राप्त होकर लोप नहीं करते, वे सब प्रकार के रोगों से रहित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं॥६॥

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित् परिहाणिश्चेति। आषोडशाद्वृद्धिः। आपञ्चविंशतेर्यौवनम्। आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता। ततः किञ्चित् परिहाणिश्चेति॥

[तुलना—सु० १।३५।२९]

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक्॥

—यह सुश्रुत के सूत्रस्थान का वचन है [सु० १।३५।१३]॥

इस शरीर की चार अवस्था हैं। एक वृद्धि जो जन्म से लेकर १६वें वर्ष पर्यन्त, दूसरा यौवन १६में वर्ष से लेके २५वें वर्ष पर्य्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है। तीसरी सम्पूर्णता, जो पच्चीसवें वर्ष से ले के चालीसवें वर्ष पर्य्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है। चौथी किञ्चित्परिहाणि, जब सब साङ्गोपाङ्ग शरीरस्थ सकल धातु पुष्ट होके पूर्णता को प्राप्त होते हैं, तदन्तर जो धातु बढ़ता है, वह शरीर में नहीं रहता, किन्तु स्वप्न, प्रस्वेदादि द्वार से बाहर निकल जाता है। वही ४०वां वर्ष उत्तम समय विवाह का है, अर्थात् उत्तमोत्तम तो अड़तालीसवें वर्ष में विवाह करना।

प्रश्न—क्या यह ब्रह्मचर्य का नियम स्त्री वा पुरुष दोनों का तुल्य ही है?

उत्तर—नहीं, जो २५ वर्ष पर्य्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य करे, तो १६ सोलह वर्षपर्यन्त कन्या। जो पुरुष तीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचारी रहै, तो स्त्री १७ वर्ष, जो पुरुष छत्तीस वर्ष रहै, तो स्त्री १८ वर्ष, जो पुरुष ४०

वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य करे, तो स्त्री २० वर्ष, जो पुरुष ४४ वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य करे, तो स्त्री २२ वर्ष, जो पुरुष ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य करे, तो स्त्री २४ चौबीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन रक्खे, अर्थात् ४८वें वर्ष से आगे पुरुष और २४वें वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य न रखना चाहिए, परन्तु यह नियम विवाह करने वाले पुरुष और स्त्रियों का है। और जो विवाह करना ही न चाहैं वे मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हों, तो भले ही रहैं, परन्तु यह काम पूर्ण विद्या वाले, जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है। यह बड़ा कठिन काम है कि जो काम के वेग को थांभ के, इन्द्रियों को अपने वश में रखना।

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च।

—यह तैत्तिरीयोपनिषद् [शिक्षावल्ली, अनुवाक ९] का वचन है।

ये पढ़ने-पढ़ानेवालों के नियम हैं। (ऋतं०) यथार्थ आचरण से पढ़ें और पढ़ावें, (सत्यं०) सत्याचार से सत्यविद्या को पढ़ें वा पढ़ावें, (तपः०) तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रों को पढ़ें और पढ़ावें, (दमः०) बाह्य इन्द्रियों को बुरे आचरणों से रोक के पढ़ें और पढ़ाते जायें, (शमः०) अर्थात् मन की वृत्ति को सब प्रकार के दोषों से हटाके पढ़ते-पढ़ाते जायें, (अग्नयः०) आहवनीयादि अग्नि और विद्युत् आदि को जान के पढ़ते-पढ़ाते जायें, और (अग्निहोत्रं०) अग्निहोत्र करते हुए पठन और पाठन करें-करावें, (अतिथयः०) अतिथियों की सेवा करते हुए पढ़ें और पढ़ावें, (मानुषं०) मनुष्यसम्बन्धी व्यवहारों को यथायोग्य करके पढ़ते और पढ़ाते रहें, (प्रजा०) अर्थात् सन्तान और राज्य का पालन करते हुए पढ़ते-पढ़ाते जायें, (प्रजन०) वीर्य की रक्षा और वृद्धि करते हुए पढ़ते-पढ़ाते जायें, (प्रजातिः०) अर्थात् अपने सन्तान और शिष्य का पालन करते हुए पढ़ते-पढ़ाते जायें।

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥

—यह मनुस्मृति [४।२०४] का श्लोक है॥

यम पाँच प्रकार के होते हैं—

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः॥

—यह योगदर्शन [२।३०] का वचन है।

अर्थात् (अहिंसा) वैरत्याग, (सत्य) सत्य ही मानना, सत्य ही बोलना और सत्य ही करना, (अस्तेय) अर्थात् मन, वचन, कर्म से चोरी त्याग, (ब्रह्मचर्य) अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का संयम, (अपरिग्रह) अत्यन्त लोलुपता स्वत्वाभिमानरहित होना, इन पाँच **यमों** का सेवन सदा करें।

नियम—

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥

—यह योगशास्त्र [२।३२] का वचन है।

(शौच) अर्थात् स्नानादि से पवित्रता, (सन्तोष) सम्यक् प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नहीं, किन्तु पुरुषार्थ जितना हो सके उतना करना, हानि-लाभ में हर्ष वा शोक न करना, (तपः) अर्थात् कष्टसेवन से भी धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान, (स्वाध्याय) पढ़ना-पढ़ाना, (ईश्वरप्रणिधान) ईश्वर की भक्तिविशेष से आत्मा को अर्पित रखना, ये पाँच **नियम** कहाते हैं।

यमों के विना, केवल इन नियमों का सेवन न करे, किन्तु इन दोनों का सेवन किया करे। जो यमों का सेवन छोड़ के, केवल नियमों का सेवन करता है, वह उन्नति को प्राप्त नहीं होता, किन्तु अधोगति अर्थात् संसार में गिरा रहता है।

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः॥

—मनुस्मृति [२।२]॥

अत्यन्त कामातुरता और निष्कामता किसी के लिए भी श्रेष्ठ नहीं, क्योंकि जो कामना न करे तो वेदों का ज्ञान और वेदविहित कर्मादि उत्तम कर्म किसी से न हो सकें। इसलिए—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

—यह मनुस्मृति [२।२८] का श्लोक है।

(स्वाध्याय) सकल विद्या पढ़ने-पढ़ाने, (व्रत) ब्रह्मचर्य्य सत्यभाषणादि नियम पालने, (होम) अग्निहोत्रादि होम, सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग और सत्य विद्याओं का दान देने, (त्रैविद्येन) वेदस्थ कर्मोपासना ज्ञान विद्या के ग्रहण, (इज्यया) पक्षेष्ट्यादि करने, (सुतैः) सुसन्तानोत्पत्ति, (महायज्ञैः) ब्रह्म, देव, पितृ, वैश्वदेव और अतिथियों के सेवनरूप पंचमहायज्ञ और (यज्ञैः) अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्याविज्ञानादि यज्ञों के सेवन से इस शरीर को 'ब्राह्मी' अर्थात् वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधाररूप ब्राह्मण का शरीर बनाना है। इतने साधनों से विना ब्राह्मणशरीर नहीं बन सकता।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥

—मनु० [२।८८]॥

जैसे विद्वान् सारथि घोड़ों को नियम में रखता है, वैसे मन और आत्मा को खोटे कामों में खैंचनेवाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करे। क्योंकि—

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥

—मनु० [२।९३]॥

जीवात्मा इन्द्रियों के वश होके निश्चित बड़े-बड़े दोषों को प्राप्त होता है; और जब इन्द्रियों को अपने वश में करता है, तभी सिद्धि को प्राप्त होता है।

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥

—मनु० [२।९७]॥

जो दुष्टाचारी, अजितेन्द्रिय पुरुष है, उसके वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप तथा अन्य अच्छे काम कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते।

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि॥ १ ॥
नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम्।
ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम्॥ २ ॥

—मनु० [२।१०५-१०६]॥

वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने, सन्ध्योपासनादि पंचमहायज्ञों के करने और होममन्त्रों में अनध्याय और निरोध अर्थात् अननुष्ठान (रुकावट) नहीं होती, क्योंकि नित्यकर्म में अनध्याय नहीं होता॥ १ ॥

जैसे श्वास-प्रश्वास सदा लिये जाते हैं, बन्ध नहीं किये जाते, वैसे नित्यकर्म प्रतिदिन करना चाहिए, न किसी दिन छोड़ना, क्योंकि अनध्याय में भी अग्निहोत्रादि उत्तम कर्म किया हुआ पुण्यरूप होता है। जैसे झूठ बोलने में सदा पाप और सत्य बोलने में सदा पुण्य होता है, वैसे ही बुरे कर्म करने में सदा अनध्याय और अच्छे कर्म करने में सदा स्वाध्याय ही होता है॥ २ ॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम्॥

—मनु० [२।१२१]॥

जो सदा नम्र, सुशील, विद्वान् और वृद्धों की सेवा करता है, उसका आयु, विद्या, कीर्ति और बल; ये चार सदा बढ़ते रहते हैं। और जो ऐसा नहीं करते, उनके आयु आदि चार नहीं बढ़ते।

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥ १ ॥
यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम्॥ २ ॥

—मनु० [२।१५९-१६०]॥

विद्वान् और विद्यार्थियों को योग्य है कि वैरबुद्धि छोड़ के सब मनुष्यों को कल्याण के मार्ग का उपदेश करें; और उपदेष्टा सदा मधुर, सुशीलतायुक्त वाणी बोले। जो धर्म की उन्नति चाहै, वह सदा सत्य में चले और सत्य ही का उपदेश करे॥ १ ॥

जिस मनुष्य के वाणी और मन शुद्ध तथा सुरक्षित सदा रहते हैं; वही सब वेदान्त=सब वेदों के सिद्धान्तरूप फल को प्राप्त होता है॥ २ ॥

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा॥

—मनु० [२।१६२]॥

वही ब्राह्मण समग्र वेद और परमेश्वर को जानता है, जो प्रतिष्ठा से विष के तुल्य सदा डरता है; और अपमान की इच्छा अमृत के समान किया करता है।

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः।
गुरौ वसन् सञ्चिनुयाद् ब्रह्माधिगमिकं तपः॥

—मनु० [२।१६४]॥

इसी प्रकार से कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या धीरे-धीरे वेदार्थ के ज्ञानरूप उत्तम तप को बढ़ाते चले जायें।

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥

—मनु० [२।१६८]

जो वेद को न पढ़ के अन्यत्र श्रम किया करता है, वह अपने पुत्र-पौत्रसहित शूद्रभाव को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।

वर्जयेन्मधु मांसञ्च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥ १ ॥
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम्॥ २ ॥
द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च॥ ३ ॥
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः॥ ४ ॥

—मनु० [२।१७७-१८०]॥

ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का सङ्ग, सब खटाई, प्राणियों की हिंसा॥ १ ॥

अङ्गों का मर्दन, विना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श, आँखों में अञ्जन, जूते और छत्र का धारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष और नाच, गान, बाजा बजाना॥ २॥

द्यूत, जिस किसी की कथा, निन्दा, मिथ्याभाषण, स्त्रियों का दर्शन, आश्रय, दूसरे की हानि आदि कुकर्मों को सदा छोड़ देवें॥ ३॥

सर्वत्र एकाकी सोवे, वीर्य्य स्खलित कभी न करे। जो कामना से वीर्य्य स्खलित कर दे, तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्य्य-व्रत का नाश कर दिया॥ ४॥

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्य्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्॥ १॥ देवपितृ-कार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव॥ आचार्य्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि॥ २॥ नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्॥ ३॥ ये तत्र ब्राह्मणाः समदर्शिनो युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युर्यथा ते तत्र वर्त्तेरन्। तथा तत्र वर्त्तेथाः। [अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्त्तेरन्। तथा तेषु वर्त्तेथाः॥] एष आदेश एष उपदेश एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम्॥ ४॥

—यह तैत्तिरीयोपनिषद् [१।११] का वचन है।

आचार्य्य अन्तेवासी, अर्थात् अपने शिष्य और शिष्याओं को इस प्रकार उपदेश करे कि तू सदा सत्य बोल, धर्माचार कर, प्रमादरहित होके पढ़-पढ़ा, पूर्ण ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं के ग्रहण और आचार्य्य

के लिए प्रिय धन देकर, विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर। प्रमाद से सत्य को कभी मत छोड़, प्रमाद से धर्म का त्याग मत कर, प्रमाद से आरोग्य और चतुराई को मत छोड़, [प्रमाद से उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि को मत छोड़], प्रमाद से पढ़ने और पढ़ाने को कभी मत छोड़। देव, विद्वान् और माता-पितादि की सेवा में प्रमाद मत कर। जैसे विद्वान् का सत्कार करे, उसी प्रकार माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा सदा किया कर। जो अनिन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं, उन सत्यभाषणादि को किया कर, उनसे भिन्न मिथ्याभाषणादि कभी मत कर। जो हमारे सुचरित्र अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हों, उनका ग्रहण कर और जो हमारे पापाचरण, उनको कभी मत कर। जो कोई हमारे मध्य में उत्तम विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण हैं, उन्हीं के समीप बैठ और उन्हीं का विश्वास किया कर। श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिए। जब कभी तुझको कर्म वा शील तथा उपासना ज्ञान में किसी प्रकार का संशय उत्पन्न हो; तो जो वे समदर्शी पक्षपातरहित, योगी, अयोगी, आर्द्रचित्त, धर्म की कामना करनेवाले धर्मात्मा जन हों, जैसे वे धर्ममार्ग में वर्त्तें, वैसे तू उसमें वर्त्ता कर। यही आदेश आज्ञा, यही उपदेश, यही वेद की उपनिषत् और यही शिक्षा है। इसी प्रकार वर्त्तना और अपनी चाल-चलन सुधारना चाहिए।

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम्॥

—मनु० [२।४]॥

मनुष्य को निश्चय करना चाहिए कि निष्काम पुरुष में नेत्र का संकोच-विकास होना भी सर्वथा असम्भव है, इससे यह सिद्ध होता है कि जो जो-कुछ भी करता है, वह-वह चेष्टा कामना के विना नहीं है।

आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च।
तस्मादस्मिन्त्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः॥ १॥
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत्॥ २॥

—मनु० [१।१०८-१०९]॥

कहने, सुनने, सुनाने, पढ़ने, पढ़ाने का फल यही है कि वेद और वेदानुकूल स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म का आचरण करना। इसलिए धर्माचार में सदा युक्त रहै॥ १॥

क्योंकि जो धर्माचरण से रहित है, वह वेदप्रतिपादित धर्मजन्य सुखरूप फल को प्राप्त नहीं हो सकता और जो विद्या पढ़ के धर्माचरण करता है, वही सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है॥ २॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥

—मनु० [२।११]॥

जो वेद और वेदानुकूल आप्त पुरुषों के किये शास्त्रों का अपमान करता है, उस वेदनिन्दक नास्तिक को जाति, पङ्क्ति और देश बाह्य कर देना चाहिए, क्योंकि—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

—मनु० [२।१२]॥

श्रुति=वेद; स्मृति=वेदानुकूल आप्तोक्त मनुस्मृत्यादि शास्त्र; सत्पुरुषों का आचार जो सनातन अर्थात् वेद द्वारा परमेश्वरोक्त-प्रतिपादित कर्म्म; और अपने आत्मा में प्रिय, अर्थात् जिसको आत्मा चाहता है, जैसा कि सत्यभाषण; ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से धर्म्माधर्म्म का निश्चय होता है। जो पक्षपातरहित न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का सर्वथा परित्यागरूप आचार है, उसी का नाम '**धर्म**' और इससे विपरीत जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण, सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहणरूप कर्म है, उसी को '**अधर्म**' कहते हैं।

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥

—मनु० [२।१३]॥

जो पुरुष (अर्थ) सुवर्णादि रत्न और (काम) स्त्रीसेवनादि में नहीं फसे हैं, उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है। जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें, वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें, क्योंकि धर्माऽधर्म का निश्चय

विना वेद के ठीक-ठीक नहीं होता।

इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करे। और विशेषकर राजा, इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें। क्योंकि जो ब्राह्मण हैं, वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें, तो विद्या, धर्म, राज्य और धन की बढ़ती कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने-पढ़ाने और क्षत्रियादि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं। जीविका के आधीन और क्षत्रियादि के आज्ञादाता और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण छल-कपट में फस के, विद्याभ्यास धर्म को छोड़ पाखण्ड ही में फस जाते हैं। और जब क्षत्रियादि विद्वान् होते हैं, तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड, झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते।

और जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं, तो वे जैसा अपने मन में आता है, वैसा ही करते-कराते हैं। इसलिए ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहैं तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्यशास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें। क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, धर्म, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि करनेहारे हैं, वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं करते, इसलिए वे विद्या व्यवहार में पक्षपाती भी नहीं हो सकते। और जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है, तब कोई भी पाखण्डरूप अधर्मयुक्त मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सकता। इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादि को नियम में चलानेवाले ब्राह्मण और संन्यासी, तथा ब्राह्मण और संन्यासी को सुनियम में चलानेवाले क्षत्रियादि ही होते हैं। इसलिए सब वर्णों के स्त्री-पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिए।

अब जो-जो पढ़ना-पढ़ाना हो वह-वह अच्छी प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है। परीक्षा पाँच प्रकार से होती है—

एक—जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो, वह-वह 'सत्य' और उससे विरुद्ध 'असत्य' है।

दूसरी—जो-जो सृष्टिक्रम से अनुकूल वह-वह 'सत्य' और जो-जो विरुद्ध है, वह सब 'असत्य' है। जो कोई कहे—''विना माता-पिता

के योग से लड़का उत्पन्न हुआ'', वह सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से असत्य है।

तीसरी—''आप्त'' अर्थात् जो धार्मिक, विद्वान्, सत्यवादी, निष्कपटियों का संग, उपदेश के अनुकूल है, वह-वह 'ग्राह्य' और जो-जो विरुद्ध है, वह-वह 'अग्राह्य' है।

चौथी—अपने आत्मा की पवित्रता, विद्या के अनुकूल, अर्थात् जैसा अपने को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है, वैसे सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूँगा, तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा।

और **पाँचवीं**—आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव। इनमें से प्रत्यक्ष के लक्षणादि में जो-जो नीचे सूत्र लिखेंगे, वे-वे सब न्यायशास्त्र के प्रथम और द्वितीय अध्याय के जानो—

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्॥

—न्याय० ॥ अध्याय १ ॥ आह्निक १ ॥ सूत्र ४ ॥

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण का शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के साथ अव्यवहित अर्थात् आवरणरहित सम्बन्ध होता है, इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्मा के संयोग से ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको 'प्रत्यक्ष' कहते हैं। परन्तु जो व्यपदेश्य अर्थात् संज्ञासंज्ञी के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है, वह वह ज्ञान न हो। जैसा किसी ने किसी से कहा कि ''तू जल ले-आ'' वह लाके, उसके पास धरके, बोला कि ''यह जल है''। परन्तु वहाँ 'जल' इस दो अक्षरों की संज्ञा, न लाने, न मंगवाने वाला देख सकता है। किन्तु जिस पदार्थ का नाम 'जल' है, वही प्रत्यक्ष होता है। और जो शब्द से ज्ञान उत्पन्न होता है, वह शब्दप्रमाण का विषय है। 'अव्यभिचारि' जैसे किसी ने रात्रि में खम्भे को देख के, पुरुष का निश्चय कर लिया, जब दिन में उसको देखा, तो रात्रि का पुरुषज्ञान नष्ट होकर, स्तम्भज्ञान रहा, ऐसे विनाशी ज्ञान का नाम व्यभिचारी है। 'व्यवसायात्मक' किसी ने दूर से नदी की बालू देख के कहा कि ''वहाँ वस्त्र सूख रहे हैं, जल है वा और कुछ

है''? ''वह देवदत्त खड़ा है वा यज्ञदत्त''? जब तक एक निश्चय न हो, तब तक वह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है। किन्तु जो अव्यपदेश्य, अव्यभिचारि और निश्चयात्मक ज्ञान है, उसी को '**प्रत्यक्ष**' कहते हैं।

दूसरा **अनुमान**—

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टञ्च॥

—न्याय० ॥ अ० १। आ० १। सू० ५॥

जो प्रत्यक्षपूर्वक अर्थात् जिसका कोई एक देश वा सम्पूर्ण द्रव्य किसी स्थान वा काल में प्रत्यक्ष हुआ हो, उसका दूर देश से सहचारी एक देश के प्रत्यक्ष होने से अदृष्ट अवयवी का ज्ञान होने को '**अनुमान**' कहते हैं। जैसे पुत्र को देख के पिता, पर्वतादि में धूम को देख के अग्नि, जगत् में सुख-दुःख देख के पूर्वजन्म का ज्ञान होता है।

वह अनुमान तीन प्रकार का है। एक '**पूर्ववत्**' जैसे बद्दलों को देख के वर्षा, विवाह को देख के सन्तानोत्पत्ति, पढ़ते हुए विद्यार्थियों को देख के विद्या होने का निश्चय होता है—इत्यादि। जहाँ-जहाँ कारण को देख के कार्य का ज्ञान हो वह 'पूर्ववत्'। दूसरा '**शेषवत्**' अर्थात् जहाँ कार्य को देख के कारण का ज्ञान हो। जैसे नदी के प्रवाह की बढ़ती देख के ऊपर हुई वर्षा का, पुत्र को देख के पिता का, सृष्टि को देख के अनादि कारण का, सृष्टि में रचनाविशेष देखके कर्त्ता ईश्वर का, दुःख-सुख देख के पाप-पुण्य के आचरण का ज्ञान होता है, इसी को 'शेषवत्' कहते हैं। तीसरा '**सामान्यतोदृष्ट**' जो कोई किसी का कार्य कारण न हो, परन्तु किसी प्रकार का साधर्म्य एक दूसरे के साथ हो, जैसे कोई भी विना चले दूसरे स्थान को नहीं जा सकता, वैसे ही दूसरों का भी स्थानान्तर में जाना; विना गमन के कभी नहीं हो सकता। अनुमान शब्द का अर्थ यही है कि अनु अर्थात् '**प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते ज्ञायते येन तदनुमानम्**' जो प्रत्यक्ष के पश्चात् उत्पन्न हो, जैसे धूम के प्रत्यक्ष देखे विना, अदृष्ट अग्नि का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।

तीसरा **उपमान**—

प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्॥

—न्याय० ॥ अ० १ ॥ आ० १ ॥ सू० ६ ॥

जो प्रसिद्ध=प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य ज्ञान की सिद्धि करने का साधन हो, उसको '**उपमान**' कहते हैं। '**उपमीयते येन तदुपमानम्**' जैसे किसी ने किसी भृत्य से कहा कि ''तू देवदत्त के सदृश विष्णुमित्र को बुला ला' वह बोला कि ''मैंने उसको कभी नहीं देखा''। उसके स्वामी ने उससे कहा कि ''जैसा यह देवदत्त है, वैसा ही विष्णुमित्र है;'' वा ''जैसी यह गाय है, वैसा ही गवय अर्थात् रोजा (नीलगाय) होता है''। जब वह वहाँ गया और देवदत्त के सदृश देखा, निश्चय जान लिया कि यही विष्णुमित्र है, उसको ले-आया। अथवा किसी जङ्गल में जिस पशु को गाय के तुल्य देखा, उसको जान लिया कि इसी का नाम गवय है।

चौथा **शब्दप्रमाण—**

आप्तोपदेशः शब्दः॥ —न्याय०। अ० १। आ० १। सू० ७॥

जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मा में जानता हो और जिससे सुख पाया हो, उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो। अर्थात् जितने पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्य्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होकर उपदेष्टा होता है, जो ऐसे पुरुष और पूर्ण आप्त परमेश्वर के उपदेश वेद हैं, उन्हीं को '**शब्दप्रमाण**' जानो।

पाँचवाँ **ऐतिह्य—**

न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात्॥

—न्याय०। अ० २। आ० २। सू० १॥

जो इति ह अर्थात् इस प्रकार का था; उसने इस प्रकार किया। अर्थात् किसी के जीवन-चरित्र का नाम '**ऐतिह्य**' है।

छठा **अर्थापत्ति—**

'**अर्थादापद्यते सा अर्थापत्तिः**' केनचिदुच्यते—'**सत्सु घनेषु वृष्टिः, सति कारणे कार्य्यं भवतीति**' किमत्र प्रसज्यते—'**असत्सु घनेषु वृष्टिरसति कारणे च कार्य्यं न भवतीति**' जैसे किसी ने किसी से कहा कि ''बद्दल के होने से वर्षा और कारण के होने से कार्य्य उत्पन्न होता है''। इससे, विना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि ''विना

बद्दल वर्षा और विना कारण कार्य्य कभी नहीं हो सकता।''

सातवाँ **सम्भव—**

'**सम्भवति यस्मिन् स सम्भवः**' कोई कहे कि ''माता-पिता के सङ्ग के विना सन्तानोत्पत्ति, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्र में पत्थर तराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखे और वन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया'' इत्यादि सब असम्भव हैं। क्योंकि ये सब बात सृष्टिक्रम के विरुद्ध हैं। और जो बात सृष्टिक्रम के अनुकूल हो, वही '**सम्भव**' है।

आठवाँ **अभाव—**

'**न भवति यस्मिन् सोऽभावः**' जैसे किसी ने किसी से कहा कि ''हाथी ले आ'' उसने वहाँ हाथी का अभाव देखकर, जहाँ हाथी था, वहाँ से ले आया।

ये आठ प्रमाण। इनमें से जो शब्द में ऐतिह्य और अनुमान में अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव की गणना करें, तो चार प्रमाण रह जाते हैं। इस पाँच प्रकार की परीक्षा से सत्यासत्य का निश्चय मनुष्य कर सकता है, अन्यथा नहीं।

धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्॥

—वै० अ० १। आ० १। सू० ४॥

जब मनुष्य धर्म के यथायोग्य अनुष्ठान करने से पवित्र होकर '**साधर्म्य**' अर्थात् जो तुल्य धर्म जैसा पृथिवी जड़ और जल भी जड़; '**वैधर्म्य**' अर्थात् पृथिवी कठोर और जल कोमल; इसी प्रकार से द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय छः पदार्थों के तत्त्वज्ञान अर्थात् स्वरूपज्ञान से '**निःश्रेयसम्**' मोक्ष को प्राप्त होता है।

पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।

—वै० अ० १। आ० १। सू० ५।

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव **द्रव्य** हैं।

क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्॥

—वै०। अ० १। आ० १। सू० १५॥

'क्रियाश्च गुणाश्च विद्यन्ते यस्मिँस्तत् क्रियागुणवत्' जिसमें क्रिया, गुण और केवल गुण भी रहैं, उसको **'द्रव्य'** कहते हैं। उनमें से पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य क्रिया और गुणवाले हैं। तथा आकाश, काल और दिशा ये तीन गुणवाले तो हैं, किन्तु क्रिया-वाले नहीं। (समवायि) **'समवेतुं शीलं यस्य तत् समवायि, प्राग्वृत्तित्वं कारणं, समवायि च तत्कारणं च समवायिकारणम्' 'लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्'** जो मिलने के स्वभावयुक्त, कार्य से कारण पूर्वकालस्थ हो, जिससे क्रियागुणयुक्त हो, उसको **द्रव्य** कहते हैं। जिससे लक्ष्य जाना जाय, जैसा आँख से रूप जाना जाता है, उसको **लक्षण** कहते हैं।

रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी॥

—वै०। अ० २। आ० १। सू० १॥

जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श है वह **'पृथिवी'** कहाती है।

व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः॥ –वै०। अ० २। आ० २। सू० २॥

पृथिवी में **गन्ध** गुण स्वाभाविक है। रूप, रस और स्पर्श अग्नि, जल और वायु के योग से हैं। जल में रस, अग्नि में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में शब्द स्वाभाविक है।

रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः॥

—वै०। अ० २। आ० १। सू० २॥

रूप, रस और स्पर्शवान्, द्रवीभूत और कोमल है, सो **'जल'** कहाता है। परन्तु स्वाभाविक गुण, जल का **रस** है, तथा रूप-स्पर्श, अग्नि और वायु के योग से है।

अप्सु शीतता॥ —वै०। अ० २। आ० २। सू० ५॥

और जल में **शीतलत्व** भी गुण स्वाभाविक है।

तेजो रूपस्पर्शवत्॥ —वै०। अ० २। आ० १। सू० ३॥

जो रूप और स्पर्शवाला है, वह **'तेज'** है। परन्तु इसमें रूप स्वाभाविक और स्पर्श वायु के योग से है।

स्पर्शवान् वायुः॥ —वै०। अ० २। आ० १। सू० ४॥

स्पर्श गुणवाला **'वायु'** है। परन्तु इसमें भी उष्णता शीतता, तेज और जल के योग से है।

त आकाशे न विद्यन्ते॥ —वै०। अ० २। आ० १। सू० ५॥

रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आकाश में नहीं हैं। किन्तु **'शब्द'** ही **आकाश** का गुण है।

निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम्॥

—वै०। अ० २। आ० १। सू० २०॥

जिसमें प्रवेश और निकलना होता है, वह 'आकाश' का लिङ्ग है।

कार्य्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः॥

—वै०। अ० २। आ० १। सू० २५।

अन्य पृथिवी आदि कार्यों से प्रकट न होने से शब्द; स्पर्शगुणवाले भूमि आदि का गुण नहीं है। किन्तु शब्द आकाश ही का गुण है।

अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि॥

—वै०। अ० २। आ० २। सू० ६॥

जिसमें अपर, पर, (युगपत्) एक वार, (चिरम्) विलम्ब, (क्षिप्रम्) शीघ्र इत्यादि प्रयोग होते हैं, उसको **'काल'** कहते हैं।

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति॥

—वै०। अ० २। आ० २। सू० ९॥

जो नित्य पदार्थों में न हो और अनित्यों में हो, इसीलिए कारण में ही काल संज्ञा है।

इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम्॥

—वै०। अ० २। आ० २। सू० १०॥

यहाँ से यह पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर, नीचे, जिसमें यह व्यवहार होता है, उसी को **'दिशा'** कहते हैं।

आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्यतो भूताच्च प्राची॥

—वै० अ० २। आ० २। सू० १४।

जिस ओर प्रथम आदित्य का संयोग हुआ, है, होगा, उसको 'पूर्व' दिशा कहते हैं। और जहाँ अस्त हो, उसको 'पश्चिम', पूर्वाभिमुख मनुष्य के दाहिनी ओर 'दक्षिण' और बांई ओर 'उत्तर' दिशा कहाती है।

एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि॥

—वै० अ० २। आ० २। सू० १६॥

इससे जो पूर्व-दक्षिण के बीच दिशा है उसको 'आग्नेयी', दक्षिण-पश्चिम के बीच को 'नैर्ऋति', पश्चिम-उत्तर के बीच को 'वायवी' और उत्तर-पूर्व के बीच को 'ऐशानी' दिशा कहते हैं।

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति ॥

—न्याय० अ० १। आ० १। सू० १०॥

जिसमें (इच्छा) राग, (द्वेष) वैर, (प्रयत्न) पुरुषार्थ; सुख; दुःख; (ज्ञान) जानना गुण हों, वह जीवात्मा। वैशेषिक में इतना विशेष है—

प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि॥

—वै० अ० ३। आ० २। सू० ४॥

(प्राण) भीतर से वायु को निकालना, (अपान) बाहर से वायु को भीतर लेना, (निमेष) आँख को नीचे ढांकना, (उन्मेष) आँख को ऊपर उठाना, (जीवन) प्राण का धारण करना, (मनः) मनन विचार अर्थात् ज्ञान, (गति) यथेष्ट गमन करना, (इन्द्रिय) इन्द्रियों को विषयों में चलाना, उनसे विषयों का ग्रहण करना, (अन्तर्विकार) क्षुधा, तृषा, ज्वर, पीडा आदि विकारों का होना, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब **आत्मा** के लिङ्ग अर्थात् कर्म और गुण हैं।

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्॥

—न्याय०। अ० १। आ० १। सू० १६॥

जिससे एक काल में दो पदार्थों का ग्रहण, ज्ञान नहीं होता, उसको '**मन**' कहते हैं।

यह द्रव्य का स्वरूप और लक्षण कहा। अब **गुण** कहते हैं—

रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोग-विभागौ परत्वाऽपरत्वे बुद्धयः सुखदुःखेच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः॥

—वै०। अ० १। आ० १। सू० ६॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म और शब्द ये २४ **गुण** कहाते हैं।

द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्॥ —वै०। अ० १। आ० १। सू० १६॥

गुण उसको कहते हैं कि जो द्रव्य के आश्रय रहै, अन्य गुण का धारण न करे, संयोग और विभागों में कारण न हो, (अनपेक्ष) अर्थात् एक दूसरे की अपेक्षा न करे, उनका नाम '**गुण**' है।

श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाऽभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः॥ —महाभाष्य [१।१।२।२]॥

जिसकी श्रोत्रों से प्राप्ति हो वह **शब्द,** और जिसका बुद्धि से ग्रहण हो वह **शब्द,** और जो प्रयोग से प्रकाशित हो वह **शब्द,** और आकाश जिसका देश हो, वह भी '**शब्द**' कहाता है।

नेत्र से जिसका ग्रहण हो वह 'रूप', जीभ से जिस मिष्टादि अनेक प्रकार का ग्रहण होता है वह 'रस', नासिका से जिसका ग्रहण हो वह 'गन्ध', त्वचा से जिसका ग्रहण होता है वह 'स्पर्श', एक-द्वि इत्यादि संख्या=जिससे पदार्थों की गणना होती है, (परिमाण) जिससे तोल अर्थात् हल्का वा भारी विदित होता है, (पृथक्त्व) एक दूसरे से अलग, (संयोग) एक दूसरे के साथ मिलना, (विभाग) एक मिले हुए के अनेक टुकड़े होना, (परत्व) इससे यह परे है, (अपर) उससे यह उरे है, (बुद्धि) ज्ञान, (सुख) आनन्द, (दुःख) क्लेश, (इच्छा) राग, (द्वेष) विरोध, वैर, (प्रयत्न) अनेक प्रकार का बल पुरुषार्थ, (गुरुत्व) भारीपन, (द्रवत्व) पिघल जाना, (स्नेह) प्रीति और चिकनापन, (संस्कार) दूसरे के योग से वासना का होना, (धर्म) न्यायाचरण और कठिनत्वादि, (अधर्म) अन्यायाचरण और कठिनता से विरुद्ध कोमलता, ये २४ चौबीस **गुण** हैं।

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि॥

—वै० अ० १। आ० १। सू० ७॥

(उत्क्षेपण) ऊपर को चेष्टा करना, (अवक्षेपण) नीचे को चेष्टा करना, (आकुञ्चन) सङ्कोच करना, (प्रसारण) फैलाना, (गमन) समभाग में गति करना अर्थात् चलना, आना-जाना, घूमना आदि होते हैं, इनको **कर्म** कहते हैं। इनका लक्षण—

एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम्॥ —वै० अ० १। आ० १। सू० १७॥

'एकं द्रव्यमाश्रय आधारो यस्य तदेकद्रव्यम्, न विद्यते गुणो यस्य यस्मिंस्तदगुणम्, संयोगेषु विभागेषु चाऽपेक्षारहितं कारणं तत्कर्मलक्षणम्' अथवा **'यत् क्रियते तत्कर्म, लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्, कर्मणो लक्षणं कर्मलक्षणम्'** एक द्रव्य के आश्रित, गुणों से रहित, संयोग और विभाग होने में अपेक्षारहित कारण हो, उसको '**कर्म**' कहते हैं।

द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम्॥

—वै० अ० १। आ० १। सू० १८॥

जो कार्य-द्रव्य, गुण और कर्म का कारण द्रव्य है, वह सामान्य द्रव्य है।

द्रव्याणां द्रव्यं कार्य्यं सामान्यम्॥

—वै० अ० १। आ० १। सू० २३॥

जो द्रव्यों का कार्यद्रव्य है, वह कार्यपन से सब कार्यों में सामान्य है।

द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वञ्च सामान्यानि विशेषाश्च॥

—वै० अ० १। आ० २। सू० ५॥

द्रव्यों में द्रव्यपन, गुणों में गुणपन, कर्मों में कर्मपन ये सब 'सामान्य' और 'विशेष' कहाते हैं। क्योंकि द्रव्यों में द्रव्यत्व सामान्य, और गुणत्व कर्मत्व से द्रव्यत्व विशेष है, इसी प्रकार सर्वत्र जानना।

सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम्॥

—वै० अ० १। आ० २। सू० ३॥

सामान्य और विशेष, बुद्धि की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं। जैसे—मनुष्य व्यक्तियों में मनुष्यत्व सामान्य और पशुत्वादि से विशेष तथा स्त्रीत्व और पुरुषत्व, इनमें ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, शूद्रत्व भी विशेष हैं। ब्राह्मण व्यक्तियों में ब्राह्मणत्व सामान्य और क्षत्रियादि से विशेष है, इसी प्रकार सर्वत्र जानो।

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः॥

—वै० अ० ७। आ० २। सू० २६॥

इसमें यह, जैसे द्रव्य में क्रिया, गुणी में गुण, व्यक्ति में जाति,

अवयवों में अवयवी, कार्यों में कारण अर्थात् क्रिया-क्रियावान्, गुण-गुणी, जाति-व्यक्ति, कार्य-कारण, अवयव-अवयवी, इनका नित्य सम्बन्ध होने से '**समवाय**' कहाता है। और जो दूसरा द्रव्यों का परस्पर सम्बन्ध होता है, वह संयोग अर्थात् अनित्य सम्बन्ध है।

द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम्॥

—वै० अ० १। आ० १। सू० ९॥

जो समानजातीयक द्रव्य और गुण के कार्य्य का आरम्भ होता है, उसको '**साधर्म्य**' कहते हैं। जैसे पृथिवी में जड़त्व धर्म और घटादि कार्योत्पादकत्व स्वसदृश धर्म है, वैसे जल में भी जड़त्व और हैम आदि स्वसदृश कार्य का आरम्भ, पृथिवी के साथ जल का और जल के साथ पृथिवी का तुल्य धर्म है। अर्थात् **'द्रव्यगुणयोर्विजातीयारम्भकत्वं वैधर्म्यम्'** यह विदित हुआ कि जो द्रव्य और गुण का विरुद्ध धर्म और कार्य का आरम्भ है, उसको '**वैधर्म्य**' कहते हैं, जैसे पृथिवी में कठिनत्व, शुष्कत्व और गन्धवत्त्व धर्म जल से विरुद्ध और जल का द्रवत्व, कोमलता और रसगुणयुक्तपन पृथिवी से विरुद्ध है।

कारणाऽभावात्कार्याऽभावः॥

—वै० अ० १। आ० २। सू० १॥

कारण के न होने से, कार्य कभी नहीं होता।

कारणभावात्कार्यभावः॥ —वै० अ० ४। आ० १। सू० ३॥

कारण के होने ही से कार्य्य होता है।

न तु कार्याभावात्कारणाभावः॥

—वै० अ० १। आ० २। सू० २॥

कार्य के अभाव से, कारण का अभाव नहीं होता।

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः॥

—वै० अ० २। आ० १। सू० २४॥

जैसे कारण में गुण होते हैं, वैसे ही कार्य में होते हैं।

परिमाण दो प्रकार का है—

अणुमहदिति तस्मिन्विशेषभावाद्विशेषाभावाच्च॥

—वै० अ० ७। आ० १। सू० ११॥

(अणु) सूक्ष्म, (महत्) बड़ा, सापेक्ष है। जैसे त्रसरेणु लिक्षा से छोटा और द्व्यणुक से बड़ा है, तथा पहाड़ पृथिवी से छोटे, वृक्षों से बड़े हैं।

सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता॥

—वै० अ० १। आ० २। सू० ७॥

जो द्रव्य, गुण और कर्मों में सत् शब्द अन्वित रहता है, अर्थात् (सद् द्रव्यम्—सन् गुणः—सत्कर्म) सत् द्रव्य, सत् गुण, सत् कर्म अर्थात् वर्त्तमान कालवाची शब्द का अन्वय सबके साथ रहता है।

भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुत्वात्सामान्यमेव॥

—वै०अ० १। आ० २। सू० ४॥

जो सबके साथ अनुवर्त्तमान होने से सत्तारूप भाव है, सो '**महासामान्य**' कहाता है। यह क्रम भावरूप द्रव्यों का है। और जो **अभाव** है, वह पाँच प्रकार का होता है।

क्रियागुणव्यपदेशाभावात्प्रागसत्॥

—वै० अ० ९। आ० १। सू० १॥

क्रिया और गुण के विशेष निमित्त के अभाव से प्राक् अर्थात् पूर्व (असत्) न था। जैसे घट, वस्त्रादि उत्पत्ति के पूर्व नहीं थे, इसका नाम '**प्रागभाव**'। दूसरा—

सदसत्॥ —वै० अ० ९। आ० १। सू० २॥

जो होके न रहै। जैसे घट उत्पन्न होके नष्ट हो जाय, यह 'प्रध्वंसाभाव' कहाता है। तीसरा—

सच्चासत्॥ —वै० अ० ९। आ० १। सू० ४॥

जो होवे और न होवे। जैसे '**अगौरश्वोऽनश्वो गौः**' यह घोड़ा गाय नहीं और गाय घोड़ा नहीं। अर्थात् घोड़े में गाय का और गाय में घोड़े का अभाव और गाय में गाय, घोड़े में घोड़े का भाव है। यह '**अन्योऽन्याभाव**' कहाता है। चौथा—

यच्चान्यदसदतस्तदसत्॥

—वै० अ० ९। आ० १। सू० ५॥

जो पूर्वोक्त तीनों अभावों से भिन्न है, उसको '**अत्यन्ताभाव**' कहते हैं। जैसे—'नरशृङ्ग' अर्थात् मनुष्य का सींग, 'खपुष्प' आकाश का

फूल और बन्ध्या का पुत्र, इत्यादि। पाँचवाँ—

नास्ति घटो गेह इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः॥

—वै० अ० ९। आ० १। सूत्र १०॥

घर में घड़ा नहीं अर्थात् अन्यत्र है, घर के साथ घड़े का सम्बन्ध नहीं है। ये पाँच **अभाव** कहाते हैं।

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या॥

—वै०अ० ९। आ० २। सू० १०॥

इन्द्रियों के और संस्कार के दोष से **अविद्या** उत्पन्न होती है।

तद्दुष्टं ज्ञानम्॥ —वै० अ० ९। आ० २। सू० ११॥

जो दुष्ट ज्ञान है अर्थात् विपरीत ज्ञान है, उसको '**अविद्या**' कहते हैं।

अदुष्टं विद्या॥ —वै० अ० ९। आ० २। सू० १२॥

जो अदुष्ट अर्थात् यथार्थ ज्ञान है, उसको '**विद्या**' कहते हैं।

पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्यानित्यत्वादनित्याश्च॥
एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम्॥

—वै० अ० ७। आ० १। सू० २-३॥

जो कार्यरूप पृथिव्यादि पदार्थ और उनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुण हैं, ये सब द्रव्यों के अनित्य होने से अनित्य हैं। और जो इससे कारणरूप पृथिव्यादि नित्य द्रव्यों में गन्धादि गुण हैं, वे नित्य हैं।

सदकारणवन्नित्यम्॥ —वै० अ० ४। आ० १। सू० १॥

जो विद्यमान हो और जिसका कारण कोई भी न हो, वह **नित्य** है अर्थात्—'**सत्कारणवदनित्यम्**' जो कारण वाले कार्यरूप द्रव्य गुण हैं, वे '**अनित्य**' कहाते हैं।

अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि समवायि चेति लैङ्गिकम्॥

—वै० अ० ९। आ० २। सू० १॥

इसका यह, कार्य वा कारण है, इत्यादि समवायि, संयोगि, एकार्थसमवायि और विरोधि यह चार प्रकार का लैङ्गिक अर्थात् लिङ्ग-लिङ्गी के सम्बन्ध से ज्ञान होता है। 'समवायि' जैसे आकाश परिमाण वाला है, 'संयोगि' जैसे शरीर त्वचा वाला है, इत्यादि का नित्य संयोग है, 'एकार्थसमवायि' एक अर्थ में दो का रहना, जैसे कार्यरूप—स्पर्श

कार्य का लिङ्ग अर्थात् जनाने वाला है, 'विरोधि'—जैसे हुई भई वृष्टि होने वाली वृष्टि का विरोधी लिङ्ग है।

'व्याप्ति'—

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः ॥
निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः ॥
आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः ॥

—सांख्यशास्त्र २९, ३१, ३२ ॥

जो दोनों साध्य साधन अर्थात् सिद्ध करने योग्य और जिससे सिद्ध किया जाए, उन दोनों अथवा एक, साधनमात्र का निश्चित धर्म का सहचार है, उसी को '**व्याप्ति**' कहते हैं। जैसे धूम और अग्नि का सहचार है॥ २९ ॥

तथा व्याप्य जो धूम उसकी निज शक्ति से उत्पन्न होता है अर्थात् जब देशान्तर में दूर धूम जाता है, तब विना अग्नि के योग के भी धूम स्वयं रहता है, उसी का नाम व्याप्ति है, अर्थात् अग्नि के छेदन, भेदन, सामर्थ्य से जलादि पदार्थ धूमरूप प्रकट होता है॥ ३१ ॥

जैसे महत्तत्त्वादि में प्रकृत्यादि की व्यापकता, बुद्ध्यादि में व्याप्यता धर्म के सम्बन्ध का नाम व्याप्ति है, जैसे शक्ति आधेयरूप और शक्तिमान् आधाररूप का सम्बन्ध है॥ ३२ ॥

इत्यादि शास्त्रों के प्रमाणादि से परीक्षा करके पढ़ें और पढ़ावें। अन्यथा विद्यार्थियों को सत्य बोध कभी नहीं हो सकता। जिस-जिस ग्रन्थ को पढ़ावें, उस-उसकी पूर्वोक्त प्रकार से परीक्षा करके जो सत्य ठहरे, वह-वह ग्रन्थ पढ़ावें। जो-जो इन परीक्षाओं से विरुद्ध हों, उन-उन ग्रन्थों को न पढ़ें, न पढ़ावें। क्योंकि—

लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः ॥

लक्षण जैसा कि '**गन्धवती पृथिवी**' [न्याय० वा० भा० ३।१।२८] जो पृथिवी है, वह गन्धवाली है। ऐसे लक्षण और प्रत्यक्षादि प्रमाण, इनसे सब सत्याऽसत्य और पदार्थों का निर्णय हो जाता है। इसके विना कुछ भी नहीं होता।

अथ पठनपाठनविधिः

अब पढ़ने-पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं—प्रथम पाणिनिमुनिकृतशिक्षा जो कि सूत्ररूप है, उसकी रीति अर्थात् इस अक्षर का यह स्थान, यह प्रयत्न, यह करण है। जैसे 'प' इसका ओष्ठ स्थान, स्पृष्ट प्रयत्न और प्राण तथा जीभ की क्रिया करनी 'करण' कहाता है। इसी प्रकार यथायोग्य सब अक्षरों का उच्चारण माता, पिता, आचार्य सिखलावें। तदनन्तर व्याकरण अर्थात् प्रथम अष्टाध्यायी के सूत्रों का पाठ, जैसे '**वृद्धिरादैच्**' [अष्टा० अ० १। पा० १। सू० १] फिर पदच्छेद जैसे 'वृद्धिः, आत्, ऐच्', पश्चात् समास '**आच्च ऐच्च आदैच्**', फिर अर्थ—'**आदैचां वृद्धिसंज्ञा क्रियते**' आ, ऐ, औ की वृद्धि संज्ञा है। '**तः परो यस्मात्स तपरस्तादपि परस्तपरः**'। तकार जिससे परे और जो तकार से भी परे हो, वह तपर कहाता है। इससे सिद्ध हुआ जो आकार से परे त् और त्कार से परे ऐच् दोनों तपर हैं। तपर का प्रयोजन यह है कि ह्रस्व और प्लुत की वृद्धि संज्ञा न हुई।

उदाहरण '**भागः**' यहाँ 'भज्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय के परे 'घ्, ञ्' की इत्संज्ञा, लोप, भकारस्थ अकार के स्थान में ''आ'' वृद्धि हुई तो 'भाज्'। पुनः 'ज्' को ग् हो, अकार के साथ मिलके 'भागः' ऐसा प्रयोग हुआ।

'**अध्यायः**' यहाँ अधिपूर्वक 'इङ्' धातु के ह्रस्व इकार के स्थान में 'घञ्' प्रत्यय के परे 'ऐ' वृद्धि हो, 'आय्' हो, मिलके 'अध्यायः'।

'**नायकः**' यहाँ 'नीञ्' धातु के दीर्घ ईकार के स्थान में 'ण्वुल्' प्रत्यय के परे 'ऐ' वृद्धि हो, 'आय्' मिलके 'नायकः'।

और '**स्तावकः**' यहाँ 'स्तु' धातु से 'ण्वुल्', ह्रस्व उकार को 'औ' वृद्धि, 'आव्' आदेश होकर अकार में मिल गया, तो 'स्तावकः'।

'**कृञ्**' धातु से आगे 'ण्वुल्' प्रत्यय, उसके 'ण्, ल्' की इत्संज्ञा होके लोप, 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और ऋकार के स्थान में 'आर्' वृद्धि होकर 'कारकः' सिद्ध हुआ। और जो-जो सूत्र आगे-पीछे के, प्रयोग में लगें, उनका कार्य सब बतलाता जाय और सिलेट अथवा लकड़ी के पट्टे पर दिखला-दिखला के कच्चारूप धरके, जैसे

'भज+घञ्+सु'। प्रथम धातु के अकार का लोप, पश्चात् घ्कार और ञ् का लोप होकर 'भज्+अ+सु' ऐसा रहा, फिर 'भाग्+अ+सु', 'भाग+सु' फिर 'भागरूँ', फिर 'भागर्', पुनः 'भागः'। जिस-जिस सूत्र से जो-जो कार्य होना है, उस-उस को पढ़के, लिख-लिखवा के कार्य्य करता-कराता जाय। इस प्रकार पढ़ने-पढ़ाने से बहुत दृढ़ बोध होता है।

एक वार इसी प्रकार अष्टाध्यायी पढ़ाके धातुपाठ, अर्थ और दश लकारों के रूप तथा प्रक्रियासहित सूत्रों के उत्सर्ग अर्थात् सामान्यसूत्र जैसे—'**कर्मण्यण्**' [अष्टा० ३।२।१] कर्म उपपद लगा हो तो सब धातुमात्र से अण् प्रत्यय हो, जैसे 'कुम्भकारः'। पश्चात् अपवाद सूत्र जैसे '**आतोऽनुपसर्गे कः**' [अष्टा० ३।२।३] उपसर्गभिन्न कर्म उपपद लगा हो तो आकारान्त धातु से 'क' प्रत्यय होवे। अर्थात् जो बहुव्यापक जैसा कि कर्मोपपद लगा हो तो सब धातुओं से 'अण्' प्राप्त होता है, उससे विशेष अर्थात् अल्प विषय उसी पूर्व सूत्र के विषय में से आकारान्त धातु को 'क' प्रत्यय ने ग्रहण कर लिया। जैसे उत्सर्ग के विषय में अपवाद सूत्र की प्रवृत्ति होती है, वैसे अपवाद के विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे चक्रवर्त्ति राजा के राज्य में माण्डलिक और भूमिदारों की प्रवृत्ति होती है, वैसे माण्डलिक राजादि के राज्य में चक्रवर्त्ति की प्रवृत्ति नहीं होती। इसी प्रकार पाणिनि महर्षि ने सहस्र श्लोकों के बीच में अखिल शब्द, अर्थ और सम्बन्धों की विद्या प्रतिपादित कर दी है।

धातुपाठ के पश्चात् उणादिगण के पढ़ाने में सर्व सुबन्त का विषय अच्छी प्रकार पढ़ा के, पुनः दूसरी वार शङ्का, समाधान, वार्त्तिक, कारिका, परिभाषा की घटनापूर्वक अष्टाध्यायी की द्वितीयानुवृत्ति पढ़ावें। तदनन्तर महाभाष्य पढ़ावें। अर्थात् जो बुद्धिमान्, पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्यावृद्धि के चाहनेवाले नित्य प्रति पढ़ें-पढ़ावें, तो डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़ के तीन वर्ष में पूर्ण वैय्याकरण होकर, वैदिक और लौकिक शब्दों का व्याकरण से बोध होकर, पुनः अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़-पढ़ा सकते हैं किन्तु जैसा बड़ा परिश्रम व्याकरण में होता है, वैसा श्रम अन्य शास्त्रों में करना नहीं पड़ता। और जितना बोध

इनके पढ़ने से तीन वर्ष में होता है, उतना बोध कुग्रन्थ सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमादि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता। क्योंकि जो महाशय महर्षि लोगों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है, वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्योंकर हो सकता है! महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे, इस प्रकार का होता है। और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने, वहाँ तक कठिन रचना करनी, जिसको बड़े परिश्रम से पढ़ के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना। और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

व्याकरण को पढ़ के यास्कमुनिकृत निघण्टु और निरुक्त छः वा आठ महीने में सार्थक पढ़ें और पढ़ावें। अन्य नास्तिककृत अमरकोशादि में अनेक वर्ष व्यर्थ न खोवें। तदनन्तर पिङ्गलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थ जिससे वैदिक लौकिक छन्दों का परिज्ञान, नवीन रचना और श्लोक बनाने की रीति भी यथावत् सीखें। इस ग्रन्थ और श्लोकों की रचना तथा प्रस्तार को चार महीनों में सीख पढ़-पढ़ा सकते हैं। और वृत्तरत्नाकर आदि अल्पबुद्धिप्रकल्पित ग्रन्थों में अनेक वर्ष न खोवें। तत्पश्चात् मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण और महाभारत के उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीति आदि अच्छे प्रकरण जिनसे दुष्ट व्यसन दूर हों और उत्तम सभ्यताप्राप्ति हो, वैसे काव्यरीति अर्थात् पदच्छेद, पदार्थोक्ति, अन्वय, विशेष्य, विशेषण और भावार्थ को अध्यापक लोग जनावें और विद्यार्थी लोग जानते जायें। इनको एक वर्ष के भीतर पढ़ लें।

तदनन्तर पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त अर्थात् जहाँ तक बन सके, वहाँ तक ऋषिकृत व्याख्यासहित अथवा उत्तम विद्वानों की सरल-व्याख्यायुक्त छः शास्त्रों को पढ़ें-पढ़ावें। परन्तु वेदान्त सूत्रों के पढ़ने के पूर्व ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेयी, तैत्तिरेयी, छान्दोग्य और बृहदारण्यक इन दश उपनिषदों को पढ़के छः शास्त्रों के भाष्य वृत्तिसहित सूत्रों को दो वर्ष के भीतर पढ़ावें

और पढ़ लेवें।

पश्चात् छः वर्षों के भीतर चारों ब्राह्मण अर्थात् ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथब्राह्मणों के सहित चारों वेदों को स्वर, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तथा क्रियासहित पढ़ना योग्य है।

इसमें प्रमाण—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥

—यह निरुक्त [१।१८] में मन्त्र है।

जो वेद को स्वर और पाठमात्र पढ़के अर्थ नहीं जानता, वह जैसा वृक्ष—डाली, पत्ते, फल, फूल और अन्य पशु—धान्य आदि का भार उठाता है, वैसे भारवाह अर्थात् भार का उठानेवाला है। और जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है, वही सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके देहान्त के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़, पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होता है।

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं१ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥

—ऋ० मं० १०। सू० ७१। मं० ४॥

जो अविद्वान् हैं, वे सुनते हुए नहीं सुनते, देखते हुए नहीं देखते, बोलते हुए नहीं बोलते अर्थात् अविद्वान् लोग इस विद्या वाणी के रहस्य को नहीं जान सकते। किन्तु जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध का जाननेवाला है, उसके लिए—जैसे सुन्दर वस्त्र, आभूषण धारती, अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने करती है, वैसे विद्या विद्वान् के लिए अपना स्वरूप प्रकाश करती है, अविद्वानों के लिए नहीं।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥

—ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० ३९॥

जिस व्यापक अविनाशी सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर में सब विद्वान् और पृथिवी, सूर्य आदि सब लोक स्थित हैं, कि जिसमें सब वेदों का मुख्य

तात्पर्य है, उस ब्रह्म को जो नहीं जानता, वह ऋग्वेदादि से क्या कुछ सुख को प्राप्त हो सकता है? नहीं-नहीं, किन्तु जो वेदों को पढ़के धर्मात्मा योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं, वे सब परमेश्वर में स्थित होके, मुक्तिरूपी परमानन्द को प्राप्त होते हैं। इसलिए जो कुछ पढ़ना वा पढ़ाना हो, वह अर्थज्ञानसहित चाहिए। इस प्रकार सब वेदों को पढ़के, 'आयुर्वेद' अर्थात् जो चरक, सुश्रुत आदि ऋषि-मुनि-प्रणीत वैद्यक शास्त्र है, उसको अर्थ, क्रिया, शस्त्र-छेदन-भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शारीर, देश, काल और वस्तु के गुण-ज्ञानपूर्वक ४ चार वर्ष के भीतर पढ़ें-पढ़ावें।

तदनन्तर 'धनुर्वेद' अर्थात् जो राज्यसम्बन्धी काम करना है, इसके दो भेद—एक निज राजपुरुषसम्बन्धी और दूसरा प्रजासम्बन्धी होता है। राजकार्य में सब सभा, सेना के अध्यक्ष, शस्त्रास्त्रविद्या, नाना प्रकार के व्यूहों का अभ्यास अर्थात् जिसको आजकल 'क़वायद' कहते हैं जो कि शत्रुओं से लड़ाई के समय में क्रिया करनी होती है, उनको यथावत् सीखें। और जो-जो प्रजा के पालन और वृद्धि करने का प्रकार है, उनको सीखके, न्यायपूर्वक सब प्रजा को प्रसन्न रक्खें, दुष्टों को यथायोग्य दण्ड और श्रेष्ठों के पालन का प्रकार सब प्रकार सीख लें।

इस राजविद्या को २ दो वर्ष में सीखकर 'गान्धर्ववेद' कि जिसको गानविद्या कहते हैं उसमें स्वर, राग, रागिणी, समय, ताल, ग्राम, तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदि को यथावत् सीखें, परन्तु मुख्य करके सामवेद का गान वादित्रवादनपूर्वक सीखें और नारदसंहिता आदि जो-जो आर्ष ग्रन्थ हैं, उनको पढ़ें, परन्तु भड़ुवे, वेश्या और विषयासक्तिकारक वैरागियों के गर्दभ शब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करें।

अर्थवेद कि जिसको शिल्पविद्या कहते हैं उसको पदार्थ गुण-विज्ञान-क्रियाकौशल, नानाविध पदार्थों का निर्माण, पृथिवी से लेके आकाशपर्यन्त की विद्या को यथावत् सीखके, अर्थ अर्थात् जो ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला है, उस विद्या को सीख के, दो वर्ष में ज्योतिषशास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अङ्क, भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या है, उसको यथावत् सीखें।

तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तक्रिया, यन्त्रकला आदि को सीखें,

परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि के फल के विधायक ग्रन्थ हैं, उनको झूठ समझके कभी न पढें और न पढ़ावें।

ऐसा प्रयत्न पढ़ने और पढ़ानेवाले करें कि जिससे बीस वा इक्कीस वर्ष के भीतर समग्र विद्या, उत्तम शिक्षा प्राप्त होके मनुष्य लोग कृतकृत्य होकर सदा आनन्द में रहैं। जितनी विद्या इस रीति से बीस वा इक्कीस वर्षों में हो सकती है, उतनी अन्य प्रकार से शतवर्ष में भी नहीं हो सकती।

ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिए पढ़ना चाहिए कि वे बड़े विद्वान्, सर्वशास्त्रवित् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्प शास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपातसहित है, उनके बनाये हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं।

पूर्वमीमांसा पर व्यासमुनिकृत व्याख्या, वैशेषिक पर गोतममुनिकृत प्रशस्तपादभाष्य, गोतममुनिकृत न्यायसूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य, पतञ्जलिमुनिकृत सूत्र पर व्यासमुनिकृत भाष्य, कपिलमुनिकृत सांख्यसूत्र पर भागुरिमुनिकृत भाष्य, व्यासमुनिकृत वेदान्तसूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य अथवा बौधायनमुनिकृत भाष्य वृत्तिसहित पढ़ें-पढ़ावें। इत्यादि सूत्रों को कल्प अङ्ग में भी गिनना चाहिए।

जैसे ऋग्, यजुः, साम और अथर्व चारों वेद ईश्वरकृत हैं, वैसे ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ चारों ब्राह्मण; शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु-निरुक्त, छन्द और ज्योतिष छः वेदों के अङ्ग, मीमांसादि छः शास्त्र वेदों के उपाङ्ग; आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद ये चार वेदों के उपवेद इत्यादि सब ऋषि-मुनि के किये ग्रन्थ हैं। इनमें भी जो-जो वेदविरुद्ध प्रतीत हो, उस-उस को छोड़ देना, क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त, स्वतःप्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है। ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतःप्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है। वेद की विशेष व्याख्या 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में देख लीजिए और इस ग्रन्थ में भी आगे लिखेंगे।

अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं उनका परिगणन संक्षेप से किया जाता है अर्थात् जो-जो नीचे ग्रन्थ लिखेंगे, वह-वह जालग्रन्थ

समझना चाहिए। व्याकरण में कातन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि। कोश में अमरकोशादि। छन्दोग्रन्थों में वृत्तरत्नाकरादि। शिक्षा में '**अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा**' इत्यादि। ज्योतिष में शीघ्रबोध, मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि। काव्य में नायिकाभेद कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि। मीमांसा में धर्मसिन्धु, व्रतार्कादि। वैशेषिक में तर्कसंग्रहादि। न्याय में जागदीशी आदि। योग में हठप्रदीपिकादि। सांख्य में सांख्यतत्त्वकौमुद्यादि। वेदान्त में योगवासिष्ठ, पञ्चदश्यादि। वैद्यक में शार्ङ्गधरादि। स्मृतियों में एक मनुस्मृति इसमें भी प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़, अन्य सब स्मृति, सब तन्त्र ग्रन्थ, सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदासकृत भाषारामायण, रुक्मिणीमङ्गलादि और सर्वभाषाग्रन्थ—ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं।

प्रश्न—क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं?

उत्तर—थोड़ा सत्य तो है, परन्तु इसके साथ बहुत-सा असत्य भी है। इससे '**विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्याः**' जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से, छोड़ने योग्य होता है, वैसे ये ग्रन्थ हैं।

प्रश्न—क्या आप पुराण, इतिहास को नहीं मानते?

उत्तर—हाँ मानते हैं, परन्तु सत्य को मानते हैं, मिथ्या को नहीं।

प्रश्न—कौन सत्य और कौन मिथ्या है?

उत्तर—**ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति॥** यह गृह्यसूत्रादि का वचन है।

[तुलना—आश्व० गृ० सू० अ० ३। कं० ३। मं० १-२; तै० आ० प्रपा० २। अनु० ९]

जो ऐतरेय, शतपथादि ब्राह्मण लिख आये उन्हीं के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी पाँच नाम हैं, श्रीमद्भागवतादि का नाम पुराण नहीं।

प्रश्न—जो त्याज्य ग्रन्थों में सत्य है, उसका ग्रहण क्यों नहीं करते?

उत्तर—जो-जो उनमें सत्य है, सो-सो वेदादि सत्य शास्त्रों का है और मिथ्या उनके घर का है। वेदादि सत्य शास्त्रों के स्वीकार में सब

सत्य का ग्रहण हो जाता है। जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे, तो मिथ्या भी उनके गले लिपट जाए। इसलिए '**असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति**' असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे छोड़ देना चाहिए जैसे विषयुक्त अन्न को।

प्रश्न—तुम्हारा मत क्या है?

उत्तर—वेद अर्थात् जो-जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है, उसको हम यथावत् करना, छोड़ना मानते हैं। जिसलिए वेद हमको मान्य है, इसलिए हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को, विशेष आर्यों को ऐकमत्य होकर रहना चाहिए।

प्रश्न—जैसा सत्यासत्य और एक-दूसरे ग्रन्थों का परस्पर विरोध है, वैसे अन्य शास्त्रों में भी है। जैसा सृष्टिविषय में छः शास्त्रों का विरोध है—मीमांसा कर्म, वैशेषिक काल, न्याय परमाणु, योग पुरुषार्थ, सांख्य प्रकृति और वेदान्तशास्त्र ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है, क्या यह विरोध नहीं है?

उत्तर—नहीं, प्रथम तो विना सांख्य और वेदान्त के, दूसरे चार शास्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं लिखी और इनमें विरोध भी नहीं, क्योंकि तुमको विरोधाविरोध का ज्ञान नहीं। मैं तुमसे पूछता हूँ कि विरोध किस स्थल में होता है? क्या एक विषय में अथवा भिन्न-भिन्न विषयों में?

प्रश्न—एक विषय में अनेकों का परस्पर विरुद्ध कथन हो, उसको विरोध कहते हैं। यहाँ भी सृष्टि एक ही विषय है।

उत्तर—क्या विद्या एक है वा दो? एक है। जो एक है, तो व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष आदि का भिन्न-भिन्न विषय क्यों है? जैसा एक विद्या में अनेक विद्या के अवयवों का, एक-दूसरे से भिन्न प्रतिपादन होता है, वैसे ही सृष्टिविद्या के भिन्न-भिन्न छः अवयवों का छः शास्त्रों में प्रतिपादन करने से इनमें कुछ भी विरोध नहीं। जैसे घड़े के बनाने में कर्म, समय, मट्टी, विचार, संयोग-वियोगादि का पुरुषार्थ, प्रकृति के गुण और कुम्भार कारण है, वैसे ही सृष्टि का जो कर्म कारण है, उसकी व्याख्या मीमांसा में, समय की व्याख्या वैशेषिक में, उपादानकारण की व्याख्या न्याय में,

पुरुषार्थ की व्याख्या योग में, तत्त्वों के अनुक्रम से परिगणन की व्याख्या सांख्य में और निमित्तकारण जो परमेश्वर है, उसकी व्याख्या वेदान्तशास्त्र में है। इससे कुछ भी विरोध नहीं। जैसे वैद्यकशास्त्र में निदान, चिकित्सा, ओषध-दान और पथ्य के प्रकरण भिन्न-भिन्न कथित हैं, परन्तु सबका सिद्धान्त रोग की निवृत्ति है, वैसे ही सृष्टि के छः कारण हैं। इनमें से एक-एक कारण की व्याख्या एक-एक शास्त्रकार ने कही है। इसलिए इनमें कुछ भी विरोध नहीं। इसकी विशेष व्याख्या सृष्टिप्रकरण में कहेंगे।

जो विद्या पढ़ने-पढ़ाने के विघ्न हैं, उनको छोड़ देवें। जैसा कुसङ्ग अर्थात् दुष्ट विषयी जनों का संग, दुष्टव्यसन जैसा मद्यादि सेवन और वेश्यागमनादि, बाल्यावस्था में विवाह अर्थात् पच्चीस वर्षों से पूर्व पुरुष और सोहलवें वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह हो जाना; पूर्ण ब्रह्मचर्य न होना; राजा, माता, पिता और विद्वानों का प्रेम वेदादि शास्त्रों के प्रचार में न होना; अतिभोजन, अति जागरण करना; पढ़ने-पढ़ाने; परीक्षा लेने वा देने में आलस्य वा कपट करना; सर्वोपरि विद्या का लाभ न समझना; ब्रह्मचर्य से वीर्य बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य, धन की वृद्धि न मानना; ईश्वर का ध्यान छोड़ अन्य पाषाणादि जड़ मूर्त्ति के दर्शन-पूजन में व्यर्थ काल खोना; माता, पिता, अतिथि और आचार्य, विद्वान् इन सत्यमूर्त्तिमानों की सेवा और सत्संग न करना; वर्णाश्रम के धर्म को छोड़ ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, तिलक, कंठी, मालाधारण, एकादशी, त्रयोदशी आदि व्रत करना; काश्यादि तीर्थ और राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती, गणेशादि के नामस्मरण से पाप दूर होने का विश्वास; पाखण्डियों के उपदेश से विद्या पढ़ने में अश्रद्धा का होना, विद्या, धर्म, योग, परमेश्वर की उपासना के विना, मिथ्या पुराणनामक भागवतादि की कथादि से मुक्ति का मानना; लोभ से धनादि में प्रवृत्ति होकर विद्या में प्रीति न रखना; इधर-उधर व्यर्थ घूमते रहना इत्यादि मिथ्या व्यवहारों में फसके ब्रह्मचर्य और विद्या के लाभ से रहित होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं।

आजकल के सम्प्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या-सत्संग से हठा और अपने जाल में फसाके उनका तन, मन, धन

नष्ट कर देते हैं, और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़कर विद्वान् हो जाएँगे, तो हमारे पाखण्डजाल से छूट और हमारे छल को जानकर, हमारा अपमान करेंगे इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके, अपने लड़कों और लड़कियों को विद्वान् करने के लिए तन, मन, धन से प्रयत्न किया करें।

प्रश्न—क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है, जैसा यह निषेध है—

स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः। [वेदान्तदर्शनशांकरभाष्य २.३.४]

स्त्री और शूद्र न पढ़ें—यह श्रुति है।

उत्तर—सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है। और तुम कुआ में पड़ो। और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनुष्यों के वेदादि पढ़ने-सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याᳬ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥

[यजुः अ० २६।२]॥

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिए, (इमाम्) इस, (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी, (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का, (आवदानि) उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो।

यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही के वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है; स्त्री और शूद्रादि का नहीं।

उत्तर—(ब्रह्मराजन्याभ्यां) इत्यादि। देखो! परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्य्याय) वैश्य, (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अतिशूद्रादि के लिए भी वेदों का प्रकाश किया है; अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़-पढ़ा और सुन-सुनाकर विज्ञान को बढ़ाके, अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी

बातों को त्याग करके दुःखों से छूटकर, आनन्द को प्राप्त हों। कहिए! अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वर की? परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है। इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा, वह नास्तिक कहावेगा, क्योंकि '**नास्तिको वेदनिन्दकः**' वेदों का निन्दक और न माननेवाला नास्तिक कहाता है। क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने-सुनने का शूद्रों के लिए निषेध और द्विजों के लिए विधि करे? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने-सुनाने का न होता, तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र-इन्द्रिय क्यों रचता? जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाये हैं, वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किये हैं। और जहाँ कहीं निषेध किया है, उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने-पढ़ाने से कुछ भी न आवे, वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है। उसका पढ़ना-पढ़ाना व्यर्थ है। और जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो, वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है। देखो! वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाण—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्॥

—अथर्व०॥ अनु० ३। प्र० २४। कां० ११। मं० १८

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य-सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवती, विदुषी, अपने अनुकूल, प्रिय, सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं, वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य-सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़, पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त, युवती होके, पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश, प्रिय, विद्वान् (युवानम्) और पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे, इसलिए स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिए।

प्रश्न—क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें?

उत्तर—अवश्य; देखो! श्रौतसूत्रादि में—

इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्।

अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े। जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी

होवे, तो यज्ञ में स्वरसहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृतभाषण कैसे कर सके? भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़के पूर्ण विदुषी हुई थीं—यह शतपथब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है। भला! जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति देवासुर-संग्राम घर में मचा रहे, फिर सुख कहाँ? इसलिए जो स्त्री न पढ़ें, तो कन्याओं की पाठशाला में अध्यापिका क्योंकर हो सकें तथा राजकार्य न्यायाधीशत्वादि; गृहाश्रम का कार्य जो पति को स्त्री और स्त्री को पति प्रसन्न रखना; घर के सब काम स्त्री के आधीन रहना, इत्यादि काम विना विद्या के अच्छे प्रकार कभी ठीक नहीं हो सकते।

देखो! आर्य्यावर्त्त के राजपुरुषों की स्त्रियाँ धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या भी अच्छी प्रकार जानती थीं, क्योंकि जो न जानती होती, तो कैकेयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध में क्योंकर जा सकती और युद्ध कर सकती? इसलिए ब्राह्मणी को सब विद्या, क्षत्रिया को सब विद्या और युद्ध तथा राजविद्याविशेष, वैश्या को व्यवहारविद्या और शूद्रा को पाकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिए। जैसे पुरुषों को भी व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या कम-से-कम अवश्य पढ़नी चाहिए। वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प विद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिये। क्योंकि इनके सीखे विना सत्याऽसत्य का निर्णय; पत्यादि से अनुकूल वर्त्तमान, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घर के सब कार्यों को जैसा चाहिए वैसा करना-कराना, वैद्यकविद्या से औषधवत् अन्न-पान बना और बनवाना नहीं कर सकती। जिससे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग सदा आनन्दित रहैं। शिल्पविद्या के जाने विना घर का बनवाना, वस्त्र-आभूषण आदि का बनाना-बनवाना, गणितविद्या के विना सब का हिसाब समझना-समझाना, वेदादि शास्त्रविद्या के विना ईश्वर और धर्म को न जानके, अधर्म से कभी नहीं बच सके।

इसलिए वे ही धन्य और कृतकृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को

बढ़ावें। जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सासु, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्टमित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्तें। यही कोश अक्षय है। इसको जितना व्यय करे, उतना ही बढ़ता जाए। अन्य सब कोश व्यय करने से घट जाते हैं और दायभागी भी निज भाग ले लेते हैं और विद्याकोश का चोर वा दायभागी कोई भी नहीं हो सकता। इस कोश का, रक्षा और वृद्धि करनेवाला विशेष राजा और प्रजा भी हैं।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

—मनु० [७।१५२]॥

राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखके विद्वान् कराना। जो कोई इस आज्ञा को न माने, तो उसके माता-पिता को दण्ड देना अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का वा लड़की किसी के घर में न रहने पावें, किन्तु आचार्य्यकुल में रहैं। जब तक समावर्त्तन का समय न आवे, तब तक विवाह न होने पावे।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्॥

—मनु० [४।२३३]॥

संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि इन सब दानों से वेदविद्या का दान अतिश्रेष्ठ है। इसलिए जिससे जितना बन सके उतना प्रयत्न, और धन का विद्या की वृद्धि में व्यय किया करें। जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है, वही देश सौभाग्यवान् होता है।

यह ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा संक्षेप से लिखी गई। इसके आगे चौथे समुल्लास में समावर्त्तन, विवाह और गृहाश्रम की शिक्षा लिखी जाएगी।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते शिक्षाविषये
तृतीयः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ३॥

अथ चतुर्थसमुल्लासारम्भः

अथ समावर्त्तनविवाहगृहाश्रमविधिं वक्ष्यामः

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्॥ १॥

—मनु० [३।२]

जब यथावत् ब्रह्मचर्य आचार्यानुकूल वर्त्तकर, धर्म से चारों वेद, तीन, दो वा एक वेद को साङ्गोपाङ्ग पढ़के जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो, वह पुरुष वा स्त्री गृहाश्रम में प्रवेश करे॥ १॥

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः।
स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा॥ २॥

—मनु० [३।३]

जो यथावत् स्वधर्म अर्थात् जो आचार्य और शिष्य का है, उससे युक्त पिता, जनक वा अध्यापक से ब्रह्मदाय अर्थात् विद्यारूप भाग का ग्रहण, माला का धारण करनेवाला, अपने पलङ्ग में बैठे हुए आचार्य को प्रथम गोदान से सत्कार करे। वैसे लक्षणयुक्त विद्यार्थी को भी कन्या का पिता गो देके सत्कृत करे॥ २॥

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥ ३॥

—मनु० [३।४]

गुरु की आज्ञा ले, स्नान कर, गुरुकुल से अनुक्रमपूर्वक आके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्या से विवाह करे॥ ३॥

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥ ४॥

—मनु० [३।५]

जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो, उस कन्या से विवाह करना उचित है॥ ४॥

इसका यह प्रयोजन है कि—

परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः॥

—शतपथ० [-तु०-श० ब्रा० ६।१।१।२; गो० ब्रा० पू० १।१]

यह निश्चित बात है कि जैसी परोक्ष पदार्थ में प्रीति होती है, वैसी प्रत्यक्ष में नहीं। जैसे किसी ने मिश्री के गुण सुने हों और खाई न हो तो उसका मन उसी में लगा रहता है, जैसे किसी परोक्ष वस्तु की प्रशंसा सुनकर मिलने की उत्कट इच्छा होती है, वैसे ही दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र वा माता के कुल में निकट सम्बन्ध की न हो, उसी कन्या से वर का विवाह होना चाहिए।

निकट [में दोष] और दूर विवाह करने में गुण ये हैं—

(१) एक—जो बालक बाल्यावस्था से निकट रहते, परस्पर क्रीड़ा, लड़ाई और प्रेम करते, एक दूसरे के गुण, दोष, स्वभाव, बाल्यावस्था के विपरीत आचरण जानते और जो नङ्गे भी एक दूसरे को देखते हैं, उनका परस्पर विवाह होने से प्रेम कभी नहीं हो सकता।

(२) दूसरा—जैसे पानी में पानी मिलाने से विलक्षण गुण नहीं होता, वैसे एक गोत्र पितृ वा मातृकुल में विवाह होने में धातुओं के अदल-बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती।

(३) तीसरा—जैसे दूध में मिश्री वा शुंठ्यादि ओषधियों के योग होने से उत्तमता होती है, वैसे ही भिन्न गोत्र पितृ मातृकुल से पृथक् वर्त्तमान स्त्री-पुरुषों का विवाह होना उत्तम है।

(४) चौथा—जैसे एक देश में रोगी हो, वह दूसरे देश में वायु और खान-पान के बदलने से रोगरहित होता है, वैसे ही दूर-देशस्थों के विवाह होने में उत्तमता है।

(५) पाँचवें—निकट सम्बन्ध करने में एक-दूसरे के निकट होने में सुख-दुःख का भान और विरोध होना भी सम्भव है, दूर-देशस्थों में नहीं। और दूरस्थों के विवाह में दूर-दूर प्रेम की डोरी लम्बी बढ़ जाती है, निकटस्थ विवाह में नहीं।

(६) छठे—दूर-दूर देश के वर्त्तमान और पदार्थों की प्राप्ति भी दूर सम्बन्ध होने में सहजता से हो सकती है, निकट विवाह होने में नहीं। इसीलिए—

दुहिता दुर्हिता दूरेहिता भवतीति॥

निरुक्त [३।४] में लिखा है कि कन्या का नाम 'दुहिता' इस कारण से है कि इसका विवाह दूर देश में होने से हितकारी होता है, निकट करने में नहीं।

(७) सातवें—कन्या के पितृकुल में दारिद्र्य होने का भी सम्भव है, क्योंकि जब-जब कन्या पितृकुल में आवेगी, तब-तब इसको कुछ-न-कुछ देना ही होगा।

(८) आठवें—कोई निकट होने से एक दूसरे को अपने-अपने पितृकुल से सहाय का घमण्ड और जब कुछ भी दोनों में वैमनस्य होगा, तब स्त्री झट ही पिता के कुल में चली जाएगी। एक दूसरे की निन्दा अधिक होगी और विरोध भी; क्योंकि प्रायः स्त्रियों का स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होता है, इत्यादि कारणों से पिता के एक गोत्र, माता की छः पीढ़ी और समीप देश में विवाह करना अच्छा नहीं।

महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्॥ १॥

—मनु० [३।६]

चाहे कितने ही धन, धान्य, गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज्य, श्री आदि से समृद्ध ये कुल हों, तो भी विवाह-सम्बन्ध में निम्नलिखित दश कुलों का त्याग कर दे॥ १॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च॥ २॥

—मनु० [३।७]

जो कुल सत्क्रिया से हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदाध्ययन से विमुख, शरीर पर बड़े-बड़े लोम, अथवा बवासीर, क्षयी, दम, खांसी, आमाशय, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलितकुष्ठयुक्त कुलों की कन्या वा वर के साथ विवाह न होना चाहिए, क्योंकि ये सब दुर्गुण और रोग विवाह करनेवाले

के कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं, इसलिए उत्तम कुल के लड़के और लड़कियों का आपस में विवाह होना चाहिए॥ २॥

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाऽधिकाङ्गीं न रोगिणीम्।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटान्न पिङ्गलाम्॥ ३॥

—मनु० [३।८]

न पीले वर्णवाली, न अधिकाङ्गी अर्थात् पुरुष से लम्बी-चौड़ी अधिक बलवाली, न रोगयुक्त, न लोमरहित, न बहुत लोमवाली, न बकवाद करनेहारी और न भूरे नेत्रवाली॥ ३॥

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्॥ ४॥

—मनु० [३।९]

न ऋक्ष अर्थात् अश्विनी, भरणी, रोहिणी आदि नक्षत्र नामवाली; पीपल, बड़ आदि वृक्ष नामवाली; गङ्गा, जमुना आदि नदी नामवाली; चाण्डाली आदि अन्त्य नामवाली; विन्ध्या, हिमालया, पार्वती आदि पर्वत नामवाली; काकी, श्येनी आदि पक्षी नामवाली; नागी, भुजङ्गा आदि सर्प नामवाली; दासी आदि प्रेष्य नामवाली और भीमा, भयङ्करी, काली, चण्डी आदि भीषण नामवाली कन्या के साथ विवाह न करना चाहिए, क्योंकि ये नाम कुत्सित और अन्य पदार्थों के भी हैं॥ ४॥ किन्तु—

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम्॥ ५॥

—मनु० [३।१०]

जिसके सरल सूधे अङ्ग हों, विरुद्ध न हों; जिसका नाम सुन्दर हो अर्थात् यशोदा, सुखदा आदि; हंस और हथिनी के तुल्य जिसकी चाल हो; सूक्ष्म लोम, केश और दाँतयुक्त और जिसके सब अङ्ग कोमल हों, वैसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिए॥ ५॥

प्रश्न—विवाह का समय और प्रकार कौन-सा अच्छा है?

उत्तर—सोलहवें वर्ष से लेके चौबीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से लेके अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय

उत्तम है। इसमें जो सोलह और पच्चीस में विवाह करे तो 'निकृष्ट', अठारह-बीस की स्त्री, तीस-पैंतीस वा चालीस वर्ष के पुरुष का 'मध्यम', चौबीस वर्ष की स्त्री और अड़तालीस वर्ष के पुरुष का विवाह 'उत्तम' है जिस देश में इसी प्रकार विवाह का विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य विद्याभ्यास अधिक होता है, वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्य-विद्याग्रहणरहित, बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है, वह देश दुःख में डूब जाता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्या के ग्रहणपूर्वक विवाह के सुधार ही से सब बातों का सुधार और बिगड़ने से बिगाड़ हो जाता है।

प्रश्न— अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २ ॥

—ये श्लोक पाराशरी [७।६८] और शीघ्रबोध [१।५४,६५] में लिखे हैं।

अर्थ—कन्या की आठवें वर्ष गौरी, नवें वर्ष रोहिणी, दशवें वर्ष कन्या और उसके आगे रजस्वला संज्ञा हो जाती है॥ १ ॥

दशवें वर्ष तक विवाह न करके, रजस्वला कन्या को माता, पिता और उसका बड़ा भाई ये तीनों देखके नरक में गिरते हैं॥ २ ॥

उत्तर— ब्रह्मोवाच

एकक्षणा भवेद् गौरी द्विक्षणेयन्तु रोहिणी।
त्रिक्षणा सा भवेत्कन्या ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला॥ १ ॥
माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी स्वका।
सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥ २ ॥

—यह सद्योनिर्मित ब्रह्मपुराण का वचन है।

अर्थ—जितने समय में परमाणु एक पलटा खावे, उतने समय को क्षण कहते हैं। जब कन्या जन्मे तब एक क्षण में गौरी, दूसरे क्षण में रोहिणी, तीसरे में कन्या और चौथे में रजस्वला हो जाती है॥ १ ॥

उस रजस्वला को देख के उसके माता, पिता, भाई, मामा और बहन सब नरक को जाते हैं॥ २ ॥

प्रश्न—ये श्लोक प्रमाण नहीं।

उत्तर—क्यों प्रमाण नहीं? जो ब्रह्माजी के श्लोक प्रमाण नहीं, तो तुम्हारे भी प्रमाण नहीं हो सकते।

प्रश्न—वाह-वाह! पराशर और काशीनाथ का भी प्रमाण नहीं करते।

उत्तर—वाह जी वाह! क्या तुम ब्रह्माजी का प्रमाण नहीं करते, पराशर काशीनाथ से ब्रह्माजी बड़े नहीं है? जो तुम ब्रह्माजी के श्लोकों को नहीं मानते, तो हम भी पराशर काशीनाथ के श्लोकों को नहीं मानते।

प्रश्न—तुम्हारे श्लोक असम्भव होने से प्रमाण नहीं, क्योंकि सहस्रों क्षण जन्म समय ही में बीत जाते हैं, तो विवाह कैसे हो सकता है? और उस समय विवाह करने का कुछ फल भी नहीं दीखता।

उत्तर—जो हमारे श्लोक असम्भव हैं, तो तुम्हारे भी असम्भव हैं। क्योंकि आठ, नौ और दसवें वर्ष विवाह करना निष्फल है, क्योंकि सोलहवें वर्ष के पश्चात् चौबीसवें वर्षपर्यन्त विवाह होने से पुरुष का वीर्य परिपक्व, शरीर बलिष्ठ, स्त्री का गर्भाशय पूरा और शरीर भी बलयुक्त होने से सन्तान उत्तम होते हैं*। जैसे आठवें वर्ष की कन्या में सन्तानोत्पत्ति का होना असम्भव है, वैसे ही गौरी, रोहिणी नाम देना भी

* उचित समय से न्यून आयुवाले स्त्री पुरुष को गर्भाधान में मुनिवर धन्वन्तरि जी सुश्रुत में निषेध करते हैं—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥ १ ॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥ २ ॥

अर्थ—सोलह वर्ष से न्यून वयवाली स्त्री में, पच्चीस वर्ष से न्यून आयु वाला पुरुष जो गर्भ को स्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता अर्थात् पूर्ण काल तक गर्भाशय में रहकर उत्पन्न नहीं होता॥ १ ॥
अथवा उत्पन्न हो तो चिरकाल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो। इस कारण से अतिबाल्यावस्थावाली स्त्री में गर्भ स्थापित न करे॥ २ ॥
ऐसे-ऐसे शास्त्रोक्त नियम और सृष्टिक्रम को देखने और बुद्धि से विचारने से यही सिद्ध होता है कि १६ वर्ष से न्यून स्त्री और २५ वर्ष से न्यून आयु वाला पुरुष कभी गर्भाधान करने के योग्य नहीं होता। इन नियमों से विपरीत जो करते हैं, वे दुःखभागी होते हैं।

अयुक्त है। यदि गौरी कन्या न हो, किन्तु काली हो, तो उसका नाम गौरी रखना व्यर्थ है। और गौरी महादेव की स्त्री, रोहिणी वसुदेव की स्त्री थी, उसको तुम पौराणिक लोग मातृसमान मानते हो। जब कन्यामात्र में गौरी आदि की भावना करते हो, तो फिर उनसे विवाह करना कैसे सम्भव और धर्मयुक्त हो सकता है? इसलिए तुम्हारे और हमारे दो-दो श्लोक मिथ्या ही हैं। क्योंकि जैसा हमने 'ब्रह्मोवाच' करके श्लोक बना लिये हैं, वैसे वे भी पराशर आदि के नाम से अपने मतलब-सिन्धु लोगों ने श्लोक बना लिये हैं। इसलिए इन सबका प्रमाण छोड़ के वेदों के प्रमाण से सब काम किया करो। देखो! मनु में—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥ —मनु० [९।१०]

कन्या रजस्वला होते हुए पीछे तीन वर्षपर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे। जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों में ३६ वार रजस्वला होते हुए, पश्चात् विवाह करना योग्य है, इससे पूर्व नहीं।

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥ —मनु० [९।८९]

चाहे लड़का-लड़की मरणपर्यन्त कुमारे रहैं, परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण-कर्म-स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिए। इससे सिद्ध हुआ कि न पूर्वोक्त समय से प्रथम, वा असदृशों का विवाह न होना योग्य है।

प्रश्न—विवाह करना माता-पिता के आधीन होना चाहिए वा लड़का-लड़की के आधीन रहै?

उत्तर—लड़का-लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता-पिता विवाह करना कभी विचारें, तो भी लड़का-लड़की की प्रसन्नता के विना न होना चाहिए। क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर कन्या का है, माता-पिता का नहीं। क्योंकि जो उनमें परस्पर

प्रसन्नता रहे, तो उन्हीं को सुख और विरोध में उन्हीं को दुःख होता है। और—

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ —मनु० [२।६०]

जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है, उसी कुल में आनन्द, लक्ष्मी और कीर्त्ति निवास करती है, और जहाँ विरोध, कलह होता है, वहाँ दुःख, दरिद्रता और निन्दा निवास करती है। इसलिए जैसी स्वयंवर की रीति आर्य्यावर्त्त में परम्परा से चली आती है, वही विवाह उत्तम है। जब स्त्री-पुरुष विवाह करना चाहैं, तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिए। जब तक इनका मेल नहीं होता, तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता और न बाल्यावस्था में विवाह करने से सुख होता।

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः॥ १॥
—ऋ० मं० ३। सू० ८। मं० ४

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥ २॥
—ऋ० मं० ३। सू० ५५। मं० १६

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्तीः।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः॥ ३॥
—ऋ० मं० १। सू० १७९। मं० १

जो पुरुष (परिवीतः) सब ओर से यज्ञोपवीत, ब्रह्मचर्य्य सेवन से उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त, (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र धारण किया हुआ ब्रह्मचर्य्ययुक्त, (युवा) पूर्ण ज्वान होके विद्याग्रहण कर गृहाश्रम में, (आगात्) आता है, (सः) वही दूसरे विद्याजन्म में, (जायमानः) प्रसिद्ध होकर, (श्रेयान्) अतिशय शोभायुक्त मङ्गलकारी, (भवति) होता है, (स्वाध्यः) अच्छे प्रकार ध्यानयुक्त, (मनसा) विज्ञान से, (देवयन्तः) विद्यावृद्धि की कामनायुक्त, (धीरासः) धैर्ययुक्त, (कवयः) विद्वान् लोग, (तम्) उसी पुरुष को, (उन्नयन्ति) उन्नतिशील करके प्रतिष्ठित करते

हैं। और जो ब्रह्मचर्य्यधारण, विद्या, उत्तम शिक्षा का ग्रहण किये विना अथवा बाल्यावस्था में विवाह करते हैं, वे स्त्री-पुरुष नष्ट-भ्रष्ट होकर विद्वानों में अप्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं॥ १॥

जो (अप्रदुग्धाः) किसी ने दुही न हों, उन (धेनवः) गौओं के समान, (अशिश्वीः) बाल्यावस्था से रहित, (सबर्दुघाः) सब प्रकार के उत्तम व्यवहारों को पूर्ण करनेहारी, (शशयाः) कुमारावस्था को उल्लङ्घन करनेहारी, (नव्यानव्याः) नवीन-नवीन शिक्षा और अवस्था से पूर्ण, (भवन्तीः) वर्त्तमान, (युवतयः) पूर्ण युवावस्थास्थ स्त्रियाँ, (देवानाम्) ब्रह्मचर्य्य सुनियमों से पूर्ण विद्वानों के, (एकम्) अद्वितीय, (महत्) बड़े, (असुरत्वम्) प्रज्ञाशास्त्रशिक्षायुक्त, प्रज्ञा में रमण के भावार्थ को प्राप्त होती हुई, जवान पतियों को प्राप्त होके, (आधुनयन्ताम्) गर्भधारण करें। कभी भूल के भी बाल्यावस्था में पुरुष का मन से भी ध्यान न करें, क्योंकि यही कर्म इस लोक और परलोक के सुख का साधन है। बाल्यावस्था में विवाह से जितना पुरुष का नाश, उससे अधिक स्त्री का नाश होता है॥ २॥

जैसे (नु) शीघ्र, (शश्रमाणाः) अत्यन्त श्रम करनेहारे (वृषणः) वीर्य सींचने में समर्थ पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष, (पत्नीः) युवावस्थास्थ, हृदय को प्रिय स्त्रियों को, (जगम्युः) प्राप्त होकर, पूर्ण शतवर्ष वा उससे अधिक आयु को आनन्द से भोगते और पुत्र-पौत्रादि से संयुक्त रहते रहैं, वैसे स्त्री-पुरुष सदा वर्त्तें, जैसे (पूर्वीः) पूर्व वर्त्तमान (शरदः) शरद् ऋतुओं, और (जरयन्तीः) वृद्धावस्था को प्राप्त करानेवाली, (उषसः) प्रातःकाल की वेलाओं को, (दोषाः) रात्री, और (वस्तोः) दिन, (तनूनाम्) शरीरों की, (श्रियम्) शोभा को, (जरिमा) अतिशय वृद्धपन, बल और शोभा को (मिनाति) दूर कर देता है, वैसे (अहम्) मैं स्त्री वा पुरुष, (उ) अच्छे प्रकार, (अपि) निश्चय करके ब्रह्मचर्य्य से विद्या, शिक्षा, शरीर और आत्मा के बल और युवावस्था को प्राप्त हो ही के, विवाह करूँ, इससे विरुद्ध करना, वेदविरुद्ध होने से, सुखदायक विवाह कभी नहीं होता॥ ३॥

जब तक इसी प्रकार सब ऋषि-मुनि, राजा-महाराजा आर्य्य-

लोग ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़ ही के, स्वयंवर विवाह करते थे, तब तक इस देश की सदा उन्नति होती जाती थी। जब से यह ब्रह्मचर्य्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता-पिता के आधीन विवाह होने लगा, तब से क्रमशः आर्य्यावर्त्त देश की हानि ही होती चली आई है। इससे इस दुष्ट काम को छोड़ के, सज्जन लोग पूर्वोक्त प्रकार से स्वयंवर विवाह किया करें। सो विवाह वर्णानुक्रम से करें और वर्णव्यवस्था गुण कर्म के आधीन होनी चाहिए।

प्रश्न—क्या जिसके माता-पिता ब्राह्मण हों, वह ब्राह्मणी-ब्राह्मण होते हैं और जिसके माता-पिता अन्यवर्णस्थ हों, वह कभी ब्राह्मण हो सकता है?

उत्तर—हाँ, बहुत से हो गये, होते हैं और होंगे भी। जैसे छान्दोग्य उपनिषद् में जाबाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातङ्ग ऋषि चाण्डाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे। अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाववाला है, वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है, और वैसा ही आगे भी होगा।

प्रश्न—भला जो रज-वीर्य्य से शरीर हुआ है, वह बदलकर दूसरे वर्ण के योग्य कैसे हो सकता है?

उत्तर—रज-वीर्य्य के योग से ब्राह्मण-शरीर नहीं होता। किन्तु—

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥ —मनु० [२।२८]

इसका अर्थ पूर्व कर आये हैं और यहाँ भी संक्षेप से करते हैं— (स्वाध्यायेन) पढ़ने-पढ़ाने, (जपैः) विचार करने-कराने, (होमैः) नानाविध होम के अनुष्ठान, (त्रैविद्येन) सम्पूर्ण वेदों को शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, स्वरोच्चारणसहित पढ़ने-पढ़ाने, (इज्यया) पौर्णमासी इष्टि आदि के करने, (सुतैः) पूर्वोक्त विधिपूर्वक धर्म से सन्तानोत्पत्ति, (महायज्ञैश्च) पूर्वोक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ, (यज्ञैश्च) अग्निष्टोमादियज्ञ, विद्वानों का संग, सत्कार, सत्यभाषण, परोपकारादि सत्कर्म और सम्पूर्ण शिल्पविद्यादि पढ़के, दुष्टाचार छोड़, श्रेष्ठाचार में वर्त्तने से (इयम्) यह (तनुः) शरीर (ब्राह्मी) ब्राह्मण का

(क्रियते) किया जाता है।

क्या इस श्लोक को तुम नहीं मानते?

मानते हैं।

फिर क्यों रज-वीर्य्य के योग से वर्णव्यवस्था मानते हो?

मैं अकेला नहीं मानता, किन्तु बहुत लोग परम्परा से ऐसा ही मानते हैं।

प्रश्न—क्या तुम परम्परा का भी खण्डन करोगे?

उत्तर—नहीं, परन्तु तुम्हारी उलटी समझ को नहीं मान के, खण्डन भी करते हैं।

प्रश्न—हमारी उलटी और तुम्हारी सूधी समझ है, इसमें क्या प्रमाण?

उत्तर—यही प्रमाण है कि जो तुम पाँच-सात पीढ़ियों के वर्त्तमान को सनातन व्यवहार मानते हो और हम वेद तथा सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त को परम्परा मानते हैं। देखो! जिसका पिता श्रेष्ठ उसका पुत्र दुष्ट और जिसका पुत्र श्रेष्ठ उसका पिता दुष्ट तथा कहीं दोनों श्रेष्ठ अथवा दुष्ट देखने में आते हैं। इसलिए तुम लोग भ्रम में पड़े हो। देखो! मनु महाराज ने क्या कहा है—

येनास्य पितरो याता येन याता पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते॥ —मनु० [४।१७८]

अर्थ—जिस मार्ग से इसके पिता, पितामह चले हों, उसी मार्ग में सन्तान भी चलें परन्तु (सताम्) जो सत्पुरुष पिता, पितामह हों उन के मार्ग में चलें और जो पिता, पितामह दुष्ट हों, तो उन के मार्ग में कभी न चलें। क्योंकि सत्पुरुष, धर्मात्मा पुरुषाओं के मार्ग में चलने से दुःख कभी नहीं होता, इसको तुम मानते हो वा नहीं?

हाँ-हाँ मानते हैं।

और देखो! जो परमेश्वर-प्रकाशित वेदोक्त बात है वही सनातन और उससे विरुद्ध है, वह सनातन कभी नहीं हो सकती। ऐसा ही सब लोगों को मानना चाहिए वा नहीं?

अवश्य चाहिए।

जो ऐसा न माने, उससे कहो कि किसी का पिता दरिद्र हो और

उसका पुत्र धनाढ्य होवे, तो क्या अपने पिता की दरिद्रावस्था के अभिमान से धन को फेंक देवे? क्या जिसका पिता अन्धा हो, उसका पुत्र आँखों को फोड़ डाले? जिसका पिता कुकर्मी हो, क्या उसका पुत्र भी कुकर्म ही करे? नहीं-नहीं, किन्तु जो-जो पुरुषों के उत्तम कर्म हों, उनका सेवन और दुष्ट कर्मों का त्याग कर देना सबको अत्यावश्यक है।

जो कोई रज-वीर्य्य के योग से वर्णाश्रम माने और गुणकर्मों के योग से न माने, तो उससे पूछना चाहिए कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कृश्चीन, मुसलमान हो गया हो, उसको ब्राह्मण क्यों नहीं गिनते? यहाँ यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये, इसलिए वह ब्राह्मण नहीं है। इससे यह भी सिद्ध होता है जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं, वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाववाला होवे, तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच कर्म करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिए।

प्रश्न— ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬशूद्रो अजायत॥

—यह यजुर्वेद के ३१वें अध्याय का ११वाँ मन्त्र है।

इसका यह अर्थ है कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य ऊरू और शूद्र पगों से उत्पन्न हुआ है। इसलिए जैसे मुख न बाहू आदि, और बाहू आदि न मुख होते हैं, इसी प्रकार ब्राह्मण न क्षत्रियादि और क्षत्रियादि न ब्राह्मण हो सकते।

उत्तर—इस मन्त्र का अर्थ जो तुमने किया, वह ठीक नहीं। क्योंकि यहाँ पुरुष अर्थात् निराकार, व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति आती है। जब वह निराकार है, तो उसके मुखादि अङ्ग नहीं हो सकते, जो मुखादि अङ्गवाला हो, वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक नहीं, वह सर्वशक्तिमान्, जगत् का स्रष्टा, धर्त्ता, प्रलयकर्त्ता, जीवों के पुण्य-पापों को जानके व्यवस्था करनेहारा, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषणवाला नहीं हो सकता। इसलिए इसका यह अर्थ है कि जो (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सबमें मुख्य उत्तम हो, वह (ब्राह्मण) ब्राह्मण (बाहू)—

'बाहुर्वै बलं बाहुर्वै वीर्यम्'

—शतपथब्राह्मण [तुलना—६।२।३।३३;
१३।१।११।५; ५।३।३।१७]

बल वीर्य का नाम बाहू है, वह जिसमें अधिक हो सो (राजन्यः) क्षत्रिय (ऊरू) कटि के अधोभाग और जानु के उपरिस्थ भाग का नाम है, जो सब पदार्थों, सब देशों में ऊरू के बल से जावे-आवे, प्रवेश करे, वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पग के, नीच [नीचे] अङ्ग के सदृश, मूर्खतादि गुणवाला हो, वह शूद्र है। अन्यत्र शतपथ ब्राह्मणादि में भी इस मन्त्र का ऐसा ही अर्थ किया है। जैसे—

'यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त।' —इत्यादि।

[तुलना—श० ब्रा० ६।१।१।१०; तै० सं० ७।१।१।४]

जिससे ये मुख्य हैं, इससे मुख से उत्पन्न हुए, ऐसा कथन संगत होता है। अर्थात् जैसा मुख सब अङ्गों में श्रेष्ठ है, वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण-कर्म-स्वभाव से युक्त होने से मनुष्यजाति में उत्तम ब्राह्मण कहाते हैं। जब परमेश्वर के निराकार होने से मुखादि अङ्ग ही नहीं हैं, तो मुख आदि से उत्पन्न होना असम्भव है। जैसाकि बन्ध्या स्त्री के पुत्र का विवाह होना! और जो मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते, तो उपादान कारण के सदृश ब्राह्मणादि की आकृति अवश्य होती। जैसे मुख का आकार गोलमाल है, वैसे ही उनके शरीर भी गोलमाल होने चाहियें। क्षत्रियों के शरीर भुजाओं के सदृश, वैश्यों के ऊरू के तुल्य और शूद्रों के शरीर पग के समान आकारवाले होते। ऐसे नहीं हैं। और जो कोई तुमसे प्रश्न करेगा कि जो-जो मुखादि से उत्पन्न हुए थे, उनकी ब्राह्मणादि संज्ञा हो, परन्तु तुम्हारी नहीं, क्योंकि जैसे सब लोग गर्भाशय से उत्पन्न होते हैं, वैसे तुम भी होते हो। तुम मुखादि से उत्पन्न न होकर ब्राह्मणादि संज्ञा का अभिमान करते हो, इसलिए तुम्हारा कहा अर्थ व्यर्थ है और जो हमने अर्थ किया है, वह सच्चा है। ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है, जैसा—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ —मनु० [१०।६५]

जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के सदृश

गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो, तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाये। वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के कुल में उत्पन्न हुये शूद्र के सदृश हों, तो शूद्र हो जायें। वैसे ही क्षत्रिय, वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण वा शूद्र के समान होने से, ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाते हैं। अर्थात् चारों वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदृश जो-जो पुरुष वा स्त्री हो, वह-वह उसी वर्ण में गिनी जावे।

धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥ १॥
अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥ २॥

—यह आपस्तम्ब का सूत्र है [प्रश्न २। प० ५। क० ११। सूत्र १०-११]

धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम-उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस-जिस के योग्य होवे॥ १॥

वैसे अधर्माचरण से पूर्व-पूर्व अर्थात् उत्तम-उत्तम वर्णवाला मनुष्य अपने से नीचेवाले वर्णों को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे॥ २॥

जैसे पुरुष जिस-जिस वर्ण के योग्य होता है, वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था समझनी चाहिए। इससे क्या सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने-अपने गुण, कर्म, स्वभावयुक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं, अर्थात् ब्राह्मणकुल में कोई क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के सदृश न रहे और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं। वर्णसंकरता प्राप्त न होगी। इससे किसी वर्ण की निन्दा वा अयोग्यता भी न होगी।

प्रश्न—जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो, वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाए तो उसके मा-बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायगा, इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये?

उत्तर—न किसी की सेवा का भङ्ग और न वंशच्छेदन होगा, क्योंकि उनको अपने लड़के-लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान, विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे, इसलिये कुछ भी अव्यवस्था नहीं होगी। यह गुण कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिये और इसी क्रम से अर्थात् ब्राह्मण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय का क्षत्रिया, वैश्य का वैश्या और शूद्र का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिए,

तभी अपने-अपने वर्णों के कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी। इन चारों वर्णों के कर्त्तव्य कर्म और गुण ये हैं—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ १ ॥

—मनु० [१।८८]

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्॥ २ ॥

—भगवद्गीता [१८।४२]

ब्राह्मण के पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना, ये छः कर्म हैं, परन्तु '**प्रतिग्रहः प्रत्यवरः**'—मनु० [१०.१०९], दान लेना नीच कर्म है॥ १ ॥

(शम) मन से बुरे काम की इच्छा भी न करनी और उसको अधर्म्म में कभी प्रवृत्त न होने देना, (दम) श्रोत्र और चक्षु आदि इन्द्रियों को अन्यायाचरण से रोक कर धर्म्म में चलाना, (तपः) सदा ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होके धर्मानुष्ठान करना। (शौच)—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

—मनु० [५।५०९]

जल से बाहर के अङ्ग, मन सत्याचार से, विद्या और धर्मानुष्ठान से जीवात्मा और बुद्धि ज्ञान से पवित्र होती है। भीतर रागद्वेषादि दोष और बाहर के मलों को दूर कर शुद्ध रहना, अर्थात् सत्याऽसत्य के विवेकपूर्वक सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग से निश्चय, पवित्र होता है। (क्षान्ति) अर्थात् निन्दा-स्तुति, सुख-दुःख, शीतोष्ण, क्षुधा-तृषा, हानि-लाभ, मानापमान आदि में हर्ष-शोक छोड़ के, धर्म्म में दृढ़ निश्चित रहना, (आर्जव) कोमलता निरभिमान सरलस्वभाव रखना, कुटिलतादि दोष छोड़ देना, (ज्ञानम्) सब वेदादि शास्त्रों को साङ्गोपाङ्ग पढ़के पढ़ाने का सामर्थ्य, विवेक सत्यासत्य का निर्णय, जो वस्तु जैसा हो अर्थात् जड़ को जड़, चेतन को चेतन जानना और मानना, (विज्ञान) पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्य्यन्त पदार्थों को विशेषता से जानकर उनसे यथायोग्य

उपयोग लेना, (आस्तिक्य) कभी वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व-परजन्म, धर्म, विद्या, सत्सङ्ग, माता, पिता, आचार्य्य और अतिथियों की सेवा को न छोड़ना और निन्दा कभी न करना, ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मणवर्ण मनुष्यों में अवश्य होने चाहियें॥ २ ॥ क्षत्रिय—

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ १ ॥

—मनु० [१।८९]

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥ २ ॥

—गीता [१८।४३]

न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड़ के, श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना, सब प्रकार से सब का पालन, (दान) विद्या धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना, (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञ करना वा कराना, (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना तथा पढ़वाना, और (विषयेष्वप्रसक्ति) विषयों में न फस कर, जितेन्द्रिय रह के, सदा शरीर और आत्मा से बलवान् रहना॥ १ ॥

(शौर्य्य) अकेला सैंकड़ों सहस्रों से भी युद्ध करने में भय न होना, (तेजः) सदा तेजस्वी दीनतारहित प्रगल्भ दृढ़ रहना, (धृति) धैर्यवान् होना, (दाक्ष्य) राज और प्रजासम्बन्धी व्यवहार और सब शास्त्रों में अति चतुर होना, (युद्धे) युद्ध में भी दृढ़ निःशङ्क रह के, उससे कभी न हटना, न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिससे निश्चित विजय होवे, आप बचे, जो भागने से, शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो, तो ऐसा ही करना, (दान) दानशीलता रखना, (ईश्वरभाव) पक्षपातरहित होके सबके साथ यथायोग्य वर्त्तना, विचारके, देके प्रतिज्ञा पूरी करना, उसको कभी भङ्ग होने न देना, ये ग्यारह क्षत्रिय वर्ण के कर्म और गुण हैं॥ २ ॥ वैश्य—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥ १ ॥

—मनु० [१।९०]

(पशुरक्षा) गाय आदि पशुओं का पालन, वर्द्धन करना, (दान) विद्या, धर्म की वृद्धि करने-कराने के लिये धनादि का व्यय करना, (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना, (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, (वणिक्पथ) सब प्रकार के व्यापार करना, (कुसीद) एक सैंकड़े में चार आना, छः, आठ, बारह, सोलह वा बीस आनों से अधिक ब्याज और मूल से दूना अर्थात् एक रुपया दिया हो तो सौ वर्ष में भी दो रुपये से अधिक न लेना और न देना, (कृषि) खेती करना, ये वैश्य के गुण कर्म हैं। शूद्र—

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥

—मनु० [१।९१]

शूद्र को योग्य है कि निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़ के, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा यथावत् करना और उसी से अपना जीवन करना, यही एक शूद्र का कर्म, गुण है।

ये संक्षेप से वर्णों के गुण और कर्म लिखे। जिस-जिस पुरुष में जिस-जिस वर्ण के गुण कर्म हों, उस-उस वर्ण का अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं। क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे, तो शूद्र हो जायेंगे और सन्तान भी डरते रहैंगे कि जो हम उत्तम चालचलन और विद्यायुक्त न होंगे, तो शूद्र होना पड़ेगा। और नीच वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने के लिए उत्साह बढ़ेगा।

विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना, क्योंकि वे पूर्णविद्यावान् और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं। क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से, कभी राज्य की हानि वा विघ्न नहीं हो सकता। पशुपालनादि का अधिकार वैश्यों ही को होना योग्य है, क्योंकि वे इस काम को अच्छे प्रकार कर सकते हैं। शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिये है कि वह विद्यारहित, मूर्ख होने से, विज्ञानसम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता, किन्तु शरीर के काम सब कर सकता है। इस प्रकार वर्णों को अपने-अपने अधिकार में

प्रवृत्त करना राजादि का काम है।

विवाह का लक्षण

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥

—मनु० [३।२१]

आठ प्रकार का विवाह होता है। एक ब्राह्म, दूसरा दैव, तीसरा आर्ष, चौथा प्राजापत्य, पांचवा आसुर, छठा गान्धर्व, सातवाँ राक्षस, आठवां पैशाच। इनमें से ब्राह्मविवाह वह है कि—वर कन्या दोनों यथावत् ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्वान्, धार्मिक और सुशील हों, उनका परस्पर प्रसन्नता से विवाह होना, '**ब्राह्म**' कहाता है। विस्तृतयज्ञ करके, ऋत्विक् के कर्म करते हुए जामाता को अलङ्कारयुक्त कन्या का देना '**दैव**'। वर से कुछ लेके, विवाह होना '**आर्ष**'। दोनों का विवाह धर्म की वृद्धि के अर्थ होना '**प्राजापत्य**'। वर और कन्या को कुछ देके विवाह होना '**आसुर**'। अनियम, असमय किसी कारण से दोनों की इच्छापूर्वक वर कन्या का परस्पर संयोग होना '**गान्धर्व**'। लड़ाई करके बलात्कार अर्थात् छीन, झपट वा कपट से कन्या का ग्रहण करना '**राक्षस**'। शयन वा नशा पी हुई पागल कन्या से बलात्कार संयोग करना '**पैशाच**'। इन सब विवाहों में ब्राह्मविवाह सर्वोत्कृष्ट, दैव [और प्राजापत्य] **मध्यम,** आर्ष, आसुर, और गान्धर्व **निकृष्ट,** राक्षस, अधम और पैशाच **महाभ्रष्ट** हैं। इसलिए यही निश्चय रखना चाहिए कि कन्या और वर का विवाह के पूर्व एकान्त में मेल न होना चाहिए, क्योंकि युवावस्था में स्त्री पुरुष का एकान्तवास दूषणकारक है।

परन्तु जब कन्या वा वर के विवाह का समय हो अर्थात् जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहैं, तब उन कन्या, और उन कुमारों का प्रतिबिम्ब अर्थात् जिसको 'फोटोग्राफ' कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतार के कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की और लड़कों के अध्यापकों के पास लड़कियों की प्रतिकृति भेज देवें। जिनके रूप मिल जायें, उस-उस के इतिहास अर्थात् जो जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्मचरित्र का पुस्तक हो, उनको अध्यापक

लोग मंगवा के देखें। जब दोनों के गुण-कर्म स्वसदृश हों, तब जिस-जिस के साथ जिस-जिस का विवाह होना योग्य समझें, उस-उस पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें और कहें कि इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो, हमको विदित कर देना। जब उन दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाय, तब उन दोनों का समावर्त्तन एक ही समय में होवे। जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहैं, तो वहाँ, नहीं तो कन्या के माता-पिता के घर में विवाह होना योग्य है। जब वे समक्ष हों, तब उन अध्यापकों वा कन्या के माता-पिता आदि भद्रपुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बातचीत, शास्त्रार्थ कराना और जो कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिखके, एक-दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें। जब दोनों का दृढ़ प्रेम विवाह करने में हो जाय, तब से उनके खान-पान का उत्तम प्रबन्ध होना चाहिए कि जिससे उनका शरीर जो पूर्व ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययनरूप तपश्चर्या और कष्ट से दुर्बल होता है, वह चन्द्रमा की कला के समान बढ़ के, पुष्ट थोड़े ही दिनों में हो जाए।

पश्चात् जिस दिन कन्या रजस्वला होकर जब शुद्ध हो, तब वेदी और मण्डप रचके, अनेक सुगन्ध्यादि द्रव्य और घृतादि का होम तथा अनेक विद्वान् पुरुष और स्त्रियों का यथायोग्य सत्कार करें। पश्चात् जिस दिन ऋतुदान देना योग्य समझें, उसी दिन 'संस्कारविधिस्थ' विवाह विधि के अनुसार सब कर्म करके, मध्यरात्रि वा दश बजे अति प्रसन्नता से सबके सामने पाणिग्रहणपूर्वक विवाह की विधि को पूरा करके, एकान्तसेवन करें। पुरुष जो वीर्यस्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण का विधि है उसी के अनुसार दोनों करें। जहाँ तक बने, वहाँ तक ब्रह्मचर्य के वीर्य्य को व्यर्थ न जाने दें, क्योंकि उस वीर्य्य-रज से जो शरीर उत्पन्न होता है, वह अपूर्व उत्तम सन्तान होता है। जब वीर्य्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो, उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न रहैं, डिगें नहीं। पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य्यप्राप्तिसमय अपान वायु को ऊपर खेंच, योनि को ऊपर संकोच

कर, वीर्य्य का ऊपर आकर्षण कर के, गर्भाशय में स्थित करे। पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें।*

गर्भ स्थित होने का परिज्ञान विदुषी स्त्री को तो उसी समय हो जाता है, परन्तु इस का निश्चय महीनाभर के पश्चात् रजस्वला न होने पर, सबको हो जाता है। सोंठ, केशर, असगन्ध, सफेद इलायची और सालममिश्री डाल के गर्म करके, प्रथम ही रक्खे हुए ठण्डे दूध को यथारुचि दोनों पी के, अलग-अलग अपनी-अपनी शय्या में शयन करें। यही विधि जब-जब गर्भाधान-क्रिया करें, तब-तब करना उचित है।

जब महीने भर में रजस्वला न होने से गर्भस्थिति का निश्चय हो जाय, तब से एक वर्ष पर्य्यन्त स्त्री पुरुष का समागम कभी न होना चाहिये। क्योंकि ऐसे न होने से सन्तान उत्तम और दूसरा सन्तान भी श्रेष्ठ नहीं होता, वीर्य्य व्यर्थ जाता, दोनों का आयु घट जाता और अनेक प्रकार के रोग होते हैं। परन्तु ऊपर से भाषणादि प्रेमयुक्त-व्यवहार अवश्य रखना चाहिये। पुरुष वीर्य्य की स्थिति, और स्त्री गर्भ की रक्षा और भोजन-छादन इस प्रकार का करे कि जिससे पुरुष का वीर्य स्वप्न में भी नष्ट न हो और गर्भ में बालक का शरीर अत्युत्तम रूप, लावण्य, पुष्टि, बल, पराक्रमयुक्त होकर दशवें महीने में जन्म होवे। विशेष उसकी रक्षा चौथे महीने से और अतिविशेष आठवें महीने से आगे करनी चाहिये। कभी गर्भवती स्त्री रेचक, रुक्ष, मादकद्रव्य, बुद्धि और बलनाशक पदार्थों के भोजनादि का सेवन न करे। किन्तु घी, दूध, उत्तम चावल, गेहूँ, मूंग, उर्द आदि अन्न, पान और देशकाल का भी सेवन युक्तिपूर्वक करे। गर्भ में दो संस्कार एक चौथे महीने में पुंसवन और दूसरा आठवें महीने में सीमन्तोन्नयन विधि के अनुकूल करे।

जब सन्तान का जन्म हो, तब स्त्री और लड़के के शरीर की रक्षा बहुत सावधानी से करे। अर्थात् शुण्ठीपाक अथवा सौभाग्यशुण्ठीपाक प्रथम ही बनवा रक्खे। उस समय सुगन्धियुक्त उष्ण जल, जो कि किञ्चित् उष्ण रहा हो, उसी से स्त्री स्नान करे और बालक को भी स्नान करावे।

* यह बात रहस्य की है इसलिए इतने ही से समग्र बातें समझ लेनी चाहिए, विशेष लिखना उचित नहीं। [दयानन्द सरस्वती]

तत्पश्चात् नाड़ीछेदन—बालक की नाभि के जड़ में एक कोमल सूत से बांध, चार अंगुल छोड़ के, ऊपर से काट डाले। उसको ऐसा बांधे कि जिससे शरीर से रुधिर का एक बिन्दु भी न जाने पावे। पश्चात् उस स्थान को शुद्ध करके उसके द्वार के भीतर सुगन्धादियुक्त घृतादि का होम करे। तत्पश्चात् सन्तान के कान में पिता '**वेदोऽसीति**' अर्थात् 'तेरा नाम वेद है' सुनाकर सोने की शलाका से घी और सहत को लेके, सन्तान के जीभ पर 'ओ३म्' अक्षर लिख कर, मधु और घृत को उसी शलाका से चटवावे। पश्चात् उसकी माता को दे देवे। जो दूध पीना चाहै, तो उसकी माता पिलावे। जो उसकी माता के दूध न हो, तो किसी और स्त्री की परीक्षा करके, उसका दूध पिलवावे। पश्चात् दूसरे शुद्ध कोठड़ी वा कमरे में कि जहाँ का वायु शुद्ध हो, उसमें सुगन्धित घी का होम प्रात: और सायं किया करे और उसी में प्रसूता स्त्री तथा बालक को रक्खे। छः दिन तक माता का दूध पिये और स्त्री भी अपने शरीर के पुष्टि के अर्थ अनेक प्रकार के उत्तम भोजन करे और योनिसंकोचादि भी करे।

छठे दिन स्त्री बाहर निकले और सन्तान के दूध पीने के लिये कोई धायी रक्खे। उसको खान-पान अच्छा करावे। वह सन्तान को दूध पिलाया करे और पालन भी करे। परन्तु उसकी माता लड़के पर पूर्ण दृष्टि रक्खे कि किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार उसके पालन में न हो। स्त्री दूध बन्ध करने के अर्थ स्तन के अग्रभाग पर ऐसा लेप करे कि जिससे दूध स्रवित न हो। उसी प्रकार खान-पान का व्यवहार भी यथायोग्य रक्खे। पश्चात् नामकरणादि 'संस्कारविधि' की रीति से यथाकाल करता जाय। पश्चात् जब दूसरे महीने में रजस्वला हो, तब शुद्धि होने पर उसी प्रकार ऋतुदान देवे।

ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा॥

—मनु० [३।४५]

ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्॥ —मनु० [३।५०]

जो अपनी ही स्त्री से प्रसन्न और ऋतुगामी होता है, वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारी के सदृश है।

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ १॥
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसन्न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते॥ २॥
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥ ३॥

—मनु० [३।६०-६२]

जिस कुल में भार्य्या से भर्त्ता और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है, उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहाँ कलह होता है, वहाँ दौर्भाग्य और दारिद्र्य स्थिर होता है॥ १॥

जो स्त्री पति से प्रीति और पति को प्रसन्न नहीं करती, तो पति के अप्रसन्न होने से काम उत्पन्न नहीं होता॥ २॥

जिस स्त्री की प्रसन्नता से सब कुल प्रसन्न होता और उसकी अप्रसन्नता में सब अप्रसन्न अर्थात् दु:खदायक हो जाता है॥ ३॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥ १॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः॥ २॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा॥ ३॥
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥ ४॥

—मनु० [३।५५-५७,५९]

पिता, भाई, पति और देवर इनको सत्कारपूर्वक भूषणादि से प्रसन्न रक्खें, जिनको बहुत कल्याण की इच्छा हो, वे ऐसा करें॥ १॥

जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है, उसमें विद्यायुक्त पुरुष होके देवसंज्ञा धरा के, आनन्द से क्रीडा करते हैं और जिस घर में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता, वहाँ सब क्रिया निष्फल हो जाती हैं॥ २॥

जिस घर वा कुल में स्त्रीलोग शोकातुर होकर दु:ख पाती हैं, वह

कुल शीघ्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और जिस घर वा कुल में स्त्रीलोग आनन्द से, उत्साह और प्रसन्नता से भरी हुई रहती हैं, वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है॥ ३॥

इसलिये ऐश्वर्य की कामना करनेहारे मनुष्यों को योग्य है कि सत्कार और उत्सव के समयों में भूषण, वस्त्र और भोजनादि से स्त्रियों का नित्यप्रति सत्कार करें॥ ४॥

यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिये कि 'पूजा' का अर्थ सत्कार है और दिन-रात में जब-जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों, तब-तब प्रीतिपूर्वक 'नमस्ते' एक दूसरे से करें।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया॥ —मनु० [५।१५०]

स्त्री को योग्य है कि अतिप्रसन्नता से घर के कामों में चतुराईयुक्त सब पदार्थों के उत्तम संस्कार, घर की शुद्धि, और व्यय में अत्यन्त उदार सदा [न] रहै अर्थात् सब चीजें पवित्र और पाक इस प्रकार का बनावे वा बनवावे जो औषधरूप होकर घर, शरीर वा आत्मा में रोग को न आने देवे। जो-जो व्यय हो उसका हिसाब यथावत् रखके, पति आदि को सुना दिया करे। घर के नौकर-चाकरों से यथायोग्य काम लेवे। घर के किसी काम को बिगड़ने न देवे।

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या सत्यं शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥
—मनु० [२।२४०]

उत्तम स्त्री, नाना प्रकार के रत्न, विद्या, सत्य, पवित्रता, श्रेष्ठभाषण और नाना प्रकार की शिल्पविद्या अर्थात् कारीगरी सब मनुष्य सब देश और मनुष्यों से ग्रहण करें।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥ १॥
भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह॥ २॥
—मनु० [४।१३८-१३९]

सदा प्रिय सत्य, दूसरे का हितकारक बोले, अप्रिय सत्य अर्थात् काणे को काणा न बोले, झूठ अर्थात् दूसरे को प्रसन्न करने के अर्थ, न बोले॥ १॥

सदा भद्र अर्थात् सबके हितकारी वचन बोला करे। शुष्कवैर अर्थात् विना अपराध किसी के साथ विरोध वा विवाद न करे॥ २॥

जो-जो दूसरे का हितकारक हो और बुरा भी माने, तथापि कहे विना न रहै।

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥
—महाभारत उद्योगपर्व—विदुरनीति [अ० ३७। श्लोक १४]

विदुरजी कहते हैं कि हे धृतराष्ट्र! इस संसार में दूसरे को निरन्तर प्रसन्न करने के लिए प्रिय बोलने वाले खुशामदी लोग बहुत हैं, परन्तु सुनने में अप्रिय विदित हो और वह कल्याण करने वाला वचन हो, उसको कहने और सुनने वाला पुरुष दुर्लभ है। क्योंकि सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना, परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना। और दुष्टों की यही रीति है कि सम्मुख में गुण कहना और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना। जब तक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं सुनता वा कहने वाला नहीं कहता तब तक मनुष्य दोषों से छूटकर, गुणी नहीं होता।

कभी किसी की निन्दा न करे। जैसे—

'**गुणेषु दोषारोपणमसूया**' अर्थात् '**दोषेषु गुणारोपणमप्यसूया**', '**गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः**' गुणों में दोष और दोषों में गुण लगाना निन्दा, और गुणों में गुण, दोषों में दोषों का कथन करना स्तुति कहाती है। अर्थात् मिथ्याभाषण का नाम 'निन्दा' और सत्यभाषण का नाम 'स्तुति' है।

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान्॥ १॥
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते॥ २॥
—मनु० [४।१९-२०]

जो बुद्धि, धन और हित की शीघ्र वृद्धि करनेहारे शास्त्र और वेद हैं, उनको नित्य सुनें और सुनावें, ब्रह्मचर्याश्रम में पढ़े हों, उनको स्त्री पुरुष नित्य विचारा और पढ़ाया करें॥ १ ॥

क्योंकि जैसे-जैसे मनुष्य शास्त्रों को यथावत् जानता है, वैसे-वैसे उस का विज्ञान बढ़ता जाता और उसी में रुचि भी बढ़ती रहती है॥ २ ॥

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत्॥ १ ॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्प्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ २ ॥

—मनु० [३।७०]

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पितृन् श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा॥ ३ ॥

—मनु० [३।८१]

दो यज्ञ ब्रह्मचर्य में लिख आये—वे अर्थात् **एक** [ब्रह्मयज्ञ] वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, सन्ध्योपासन, योगाभ्यास। **दूसरा देवयज्ञ**—विद्वानों का संग, सेवा, पवित्रता, दिव्य गुणों का धारण, दातृत्व, विद्या की उन्नति करना है। ये दोनों यज्ञ सायं-प्रातः करने होते हैं।

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्य दाता॥ १ ॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनस्य दाता॥ २ ॥

—अ० कां० १९। अनु० ७। मं० ३, ४॥ [—१९।५५।३-४]

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुपासीत।

[तुलना—षड्विंश ब्राह्मण प्रपा० ४ खं० ५]

उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन्॥ ३ ॥

[तै० आ० प्रपा० २। अनु० २]॥ ब्राह्मणे॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।
स साधुभिर्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ ४॥

—मनु० [२।१०३]

जो सन्ध्या-सन्ध्या काल में होम होता है, वह हुत द्रव्य प्रातःकाल

तक वायुशुद्धि द्वारा सुखकारी होता है॥ १ ॥

जो अग्नि में प्रातः-प्रातःकाल में होम किया जाता है, वह हुत द्रव्य सायंकाल पर्यन्त वायु के शुद्धि द्वारा बल, बुद्धि और आरोग्यकारक होता है॥ २ ॥

इसीलिये दिन और रात्रि के सन्धि में अर्थात् सूर्योदय और अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिये॥ ३ ॥

और जो ये दोनों काम सायं और प्रातःकाल में न करे, उसको सज्जन लोग सब द्विजों के कर्मों से बाहर निकाल देवें, अर्थात् उस को शूद्रवत् समझें॥ ४ ॥

प्रश्न—त्रिकाल सन्ध्या क्यों नहीं करना?

उत्तर—तीन समय में सन्धि नहीं होती, प्रकाश और अन्धकार की सन्धि भी सायं-प्रातः दो ही वेला में होती है। जो इसको न मानकर मध्याह्नकाल में तीसरी सन्ध्या करना माने, वह मध्यरात्रि में भी क्यों न करे? जो मध्यरात्रि में भी करना चाहै, तो प्रहर-प्रहर, घड़ी-घड़ी, पल-पल और क्षण-क्षण की सन्धि में सन्ध्योपासन किया करे। जो ऐसा भी चाहै, तो हो ही नहीं सकता। और किसी शास्त्र का मध्याह्नसन्ध्या में प्रमाण भी नहीं, इसलिये दोनों कालों में सन्ध्या और अग्निहोत्र करना, तीसरे काल में नहीं। और जो तीन काल होते हैं, वे भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान के भेद से हैं। सन्ध्योपासन के भेद से नहीं।

तीसरा 'पितृयज्ञ' अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान्, ऋषि जो पढ़ने-पढ़ानेहारे, पितर जो माता-पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परमयोगियों की सेवा करनी। पितृयज्ञ के दो भेद हैं—एक 'श्राद्ध' और दूसरा 'तर्पण'। श्राद्ध अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम है, **'श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्'** जिस से सत्य का ग्रहण किया जाय, उसको 'श्रद्धा' और जो-जो श्रद्धा से सेवारूप कर्म किये जायें, उसका नाम 'श्राद्ध' है। **'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृन् तत्तर्पणम्'** जिस-जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान मातादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायें, उसका नाम 'तर्पण' परन्तु यह कर्म जीवतों के लिए

है, मृतकों के लिये नहीं।

ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम्।

[पारस्कर और आश्वलायन गृह्यसूत्र]

इति देवतर्पणम्

'विद्वाꣳसो हि देवाः'

—यह शतपथ ब्राह्मण [३।५।६।१०] का वचन है।

जो विद्वान् हैं, उन्हीं को 'देव' कहते हैं। जो साङ्गोपाङ्ग चार वेदों के जानने वाले हों, उनका नाम 'ब्रह्मा' और जो उनसे न्यून पढ़े हों, उनका नाम भी 'देव' अर्थात् विद्वान् है। उनके सदृश विदुषी उनकी स्त्री 'ब्रह्माणी' और 'देवी', उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदृश उनके गण अर्थात् सेवक हों, उनकी सेवा करना है, उसका नाम 'श्राद्ध' और 'तर्पण' है।

अथर्षितर्पणम्

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम्॥

इति ऋषितर्पणम्।

जो ब्रह्मा के प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान् होकर पढ़ावें और जो उनके सदृश विद्यायुक्त उनकी स्त्रियाँ, कन्याओं को विद्यादान देवें, उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके समान उनके सेवक हों, उनका सेवन-सत्कार करना 'ऋषितर्पण' है।

अथ पितृतर्पणम्

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्। बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम्। आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम्। यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि। पित्रे स्वधा

नमः पितरं तर्पयामि। पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि। प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि। मात्रे स्वधा नमो मातरं तर्पयामि। पितामह्यै स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि। प्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामहीं तर्प्पयामि। स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि। सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्तर्पयामि। सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्राँस्तर्पयामि॥

इति पितृतर्पणम्॥

(सोमसदः) **'ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थविद्यायां च सीदन्ति ते सोमसदः'** जो परमात्मा और पदार्थ-विद्या में निपुण हों। **'यैरग्नेर्विद्युतो विद्या गृहीता ते अग्निष्वात्ताः'** जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थों के जाननेवाले हों। **'ये बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः'** जो उत्तम विद्यावृद्धियुक्त व्यवहार में स्थित हों। **'ये सोममैश्वर्यमोषधीरसं वा पान्ति पिबन्ति वा ते सोमपाः'** जो ऐश्वर्य के रक्षक और महौषधि रस का पान करने से रोगरहित और अन्य के ऐश्वर्य के रक्षक औषधों को देके रोगनाशक हों, वे 'सोमपा'। **'ये हविर्होतुमत्तुमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः'** जो मादक, हिंसाकारक द्रव्यों को छोड़ के, भोजन करनेहारे हों, वे 'हविर्भुजः'। **'य आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति ते'** जो जानने के योग्य वस्तु के रक्षक और घृत-दुग्धादि खाने और पीनेहारे हों, वे 'आज्यपा'। **'शोभनः कालो विद्यते येषान्ते सुकालिनः'** जिनका अच्छे धर्म के करने और सुखरूप समय हो। **'ये दुष्टान् यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशाः'** जो न्यायकारी-दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे हों। **'यः पाति सः पिता'** जो सन्तानों का अन्न और सत्कार से रक्षक, जनक हो। **'पितुः पिता पितामहः पितामहस्य पिता प्रपितामहः'** जो पिता का पिता हो, वह 'पितामह' और जो पितामह का पिता हो, वह 'प्रपितामह'। **'या मानयति सा माता'** जो अन्न और सत्कारों से सन्तानों का मान्य करे। **'या पितुर्माता पितामही, पितामहस्य च माता प्रपितामही'** जो पिता की माता हो, वह 'पितामही' और पितामह की माता हो, वह

'प्रपितामही'। अपनी स्त्री तथा भगिनी, सम्बन्धी और एक गोत्र के तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों, उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस-जिस कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहै, उस-उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी, वह 'श्राद्ध' और 'तर्पण' कहाता है॥

चौथा वैश्वदेव—अर्थात् जब भोजन तय्यार हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने, उसमें से खट्टा, लवणान्न और क्षार को छोड़के घृत-मिष्टयुक्त अन्न लेकर चूल्हे से अग्नि लेकर अलग धर निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति और भाग करे।

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्।
आभ्यः कुर्य्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्॥

—मनु० [३।८४]

जो पाकशाला में भोजनार्थ अन्न सिद्ध हो, उसका दिव्य गुणों के अर्थ, उसी पाकाग्नि में निम्नलिखित मन्त्रों से विधिपूर्वक होम नित्य करे।

होम के मन्त्र

ओं अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। धन्वन्तरये स्वाहा। कुह्वै स्वाहा। अनुमत्यै स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। स्विष्टकृते स्वाहा॥ [मनु० ३।८५-८६ के आधार पर]

एक-एक मन्त्र पढ़के एक-एक आहुति देवे। भाग अर्थात् थाली में वा भूमि में पूर्वादि दिशा के अनुक्रम से भाग रखना।

ओं सानुगायेन्द्राय नमः। सानुगाय यमाय नमः। सानुगाय वरुणाय नमः। सानुगाय सोमाय नमः। मरुद्भ्यो नमः। अद्भ्यो नमः। वनस्पतिभ्यो नमः। श्रियै नमः। भद्रकाल्यै नमः। ब्रह्मपतये नमः। वास्तुपतये नमः। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः। सर्वात्मभूतये नमः॥

[मनु० ३।८७-९१ के आधार पर]

एक-एक मन्त्र से पन्द्रह भाग रखना, फिर लवणान्न को भूमि में

रखना।

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि॥

—मनु० [३।९२]

एक कुत्ते, दूसरे पापी, तीसरा चांडाल, चौथा पाप रोगी, पांचवें कौवे, छठे कृमि का भाग धरके, कुत्ते आदि को देवे और उन पन्द्रह भागों को किसी अतिथि को देवे अथवा जो उस समय अतिथि उपस्थित न हो, तो अग्नि में रख देवे। यह मनुस्मृति आदि की विधि है। और भोजन के घर का वायु शुद्ध, और जो उसमें अदृष्ट जीवों की हत्या होती है, उसका प्रत्युपकार होता है।

पांचवी अतिथिसेवा—अतिथि-धार्मिक, सत्योपदेशक, सबके उपकारक, पूर्ण विद्वान्, सर्वत्र घूमने वाले, संन्यासी अतिथि होते हैं। उनका आसन, खान-पान, नम्रतादि से सत्कार करके, उनसे सत्सङ्ग कर, अपूर्व विद्याओं को जाने। समय पाके गृहस्थ और राजादि भी अतिथि हो सकते हैं। परन्तु—

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालवृत्तिकान् शठान्।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥

—मनु० [४।३०]

(पाषण्डी) वेदनिन्दक, वेदविरुद्ध आचरण करनेहारे (विकर्मस्थ) जो वेदविरुद्ध कर्म का कर्त्ता, मिथ्याभाषणादियुक्त, जैसे विडाला छिपके, स्थिर रह ताक, कूद, झपटके, मूषे आदि प्राणियों को मार, अपना पेट भरता है, वैसे जनों का नाम 'वैडालवृत्ति', (शठ) अर्थात् हठी, दुराग्रही, अभिमानी, आप जानें नहीं और दूसरे का माने नहीं, (हैतुक) कुतर्की व्यर्थ बकने वाले जैसे कि आज-कल के वेदान्ती "हम ब्रह्म हैं, जगत् मिथ्या है, वेदादि शास्त्र और ईश्वर भी कल्पित है" इत्यादि बकवाद करने वाले, (बकवृत्ति) जैसे बगुला मच्छी के प्राण लेकर अपने पेट भरने के लिये ध्यानावस्थित होता है, वैसे वर्त्तमान जटाजूट वैरागी आदि हों, उनका वाणीमात्र से भी सत्कार न करे। क्योंकि इनका सत्कार करने से वे बढ़ के सब संसार को अधर्मयुक्त कर देते हैं।

इन पाँच महायज्ञों का फल—ब्रह्मयज्ञ के करने से विद्या, शिक्षा, धर्म, सभ्यता की वृद्धि होती है।

'अग्निहोत्र' से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि होकर, औषधियाँ शुद्ध होती हैं। शुद्ध वायु का श्वासास्पर्श, खान-पान से आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के धर्मार्थ, काम, मोक्ष का अनुष्ठान निर्विघ्नता से पूरा होता है। इसीलिये इसको 'देवयज्ञ' कहते हैं कि यह वायु आदि पदार्थों को दिव्य कर देता है।

'पितृयज्ञ' का फल—जब वह माता-पिता और ज्ञानियों की सेवा करेगा, तब उसका ज्ञान बढ़ेगा। उससे सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग करके, सुखी रहेगा। दूसरा कृतज्ञता अर्थात् जैसी सेवा माता-पिता और आचार्य ने सन्तान और शिष्यों की की है, उसका बदला देना उचित ही है।

बलिवैश्वदेव का भी फल जो पूर्व कह आये, वही है।

जब तक उत्तम अतिथि जगत् में नहीं होते, तब तक उन्नति भी नहीं होती। उनके सब देशों में घूमने, सत्योपदेश करने से, पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती और सर्वत्र गृहस्थों को सहज से सत्य विज्ञान की प्राप्ति होती रहती है और मनुष्यमात्र में एक ही धर्म स्थिर रहता है। विना अतिथियों के सन्देहनिवृत्ति नहीं होती। इसके छूटे विना, दृढ़ निश्चय भी नहीं होता, निश्चय के विना सुख कहां!

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशाँश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥

—मनु० [४।९२]

चौथे प्रहर अथवा चार घड़ी रात से उठे। आवश्यक कार्य करके धर्म और अर्थ, शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा का ध्यान करे। कभी अधर्म का आचरण न करे। क्योंकि—

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति॥ —मनु० [४।१७२]

किया हुआ अधर्म निष्फल कभी नहीं होता, परन्तु जिस समय अधर्म करता है, उसी समय फल भी नहीं होता, इसलिये अज्ञानी लोग अधर्माचरण से नहीं डरते। परन्तु निश्चय जानो कि वह अधर्माचरण धीरे-धीरे तुम्हारे सुख के मूलों को काटता चला जाता है।

इस क्रम से—

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति॥ —मनु० [४।१७४]

जब मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़—जैसे तालाबबन्ध को तोड़ जल चारों ओर फैल जाता है, वैसे अधर्मात्मा भी मिथ्याभाषण, कपट, पाखण्ड अर्थात् रक्षा करने वाले वेदों का खण्डन और विश्वासघातादि कर्मों से पराये पदार्थों को लेकर प्रथम बढ़ता है, पश्चात् धनादि ऐश्वर्य से खान, पान, वस्त्र, आभूषण, यान, स्थान, मान, प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है, अन्याय से शत्रुओं को भी जीतता है, पश्चात् शीघ्र नष्ट हो जाता है। जैसे जड़ काटा हुआ वृक्ष नष्ट हो जाता है, वैसे अधर्मी नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिये—

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा।
शिष्याँश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः॥

—मनु० [४।१७५]

वेदोक्त 'सत्य धर्म' अर्थात् पक्षपातरहित होकर सत्य का ग्रहण और असत्य के परित्याग न्यायरूप वेदोक्त धर्मादि; 'आर्य' अर्थात् उत्तम पुरुषों के गुण, कर्म, स्वभाव; और पवित्रता ही में सदा रमण करे। वाणी, बाहू, उदर आदि अंगों का संयम अर्थात् धर्म में चलाता हुआ, धर्म से शिष्यों को शिक्षा किया करे।

ऋत्विक् पुरोहिताचार्य्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः।
बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ॥ १ ॥
मातापितृभ्यां यामिभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत्॥ २ ॥

—मनु० [४।१७९-१८०]

(ऋत्विक्) यज्ञ का करनेहारा, (पुरोहित) सदा उत्तम चालचलन की शिक्षाकर्त्ता, (आचार्य) विद्या पढ़ानेहारा, (मातुल) मामा, (अतिथि) अर्थात् जिसकी कोई आने-जाने की निश्चित तिथि न हो, (संश्रित)

अपने आश्रित, (बाल) बालक, (वृद्ध) बुड्ढे, (आतुर) पीडित, (वैद्य) आयुर्वेद का ज्ञाता, (ज्ञाति) स्वगोत्र वा स्ववर्णस्थ, (सम्बन्धी) सासु, श्वशुर आदि, (बान्धव) मित्र॥ १॥

(माता), (पिता), (यामि) बहिन, (भ्राता), (पुत्र) (भार्या) स्त्री, (दुहिता) कन्या और सेवक लोगों से विवाद अर्थात् विरुद्ध लड़ाई-बखेड़ा कभी न करे॥ २॥

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः।
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति॥ —मनु० [४।१९०]

एक (अतपाः) ब्रह्मचर्य्य, सत्यभाषणादि तपरहित, दूसरा (अनधीयानः) विना पढ़ा हुआ, तीसरा (प्रतिग्रहरुचिः) अत्यन्त धर्मार्थ दूसरों से दान लेनेवाला, ये तीनों जैसे पत्थर की नौका से समुद्र में तरने के समान, अपने दुष्ट कर्मों के साथ ही दुःख-सागर में डूबते हैं। वे तो डूबते ही हैं, परन्तु दाताओं को भी साथ डुबा लेते हैं—

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम्।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च॥ —मनु० [४।१९३]

जो धर्म से प्राप्त हुए धन का, इन तीनों को देना है, वह दान-दाता का नाश इसी जन्म और लेनेवाले का नाश परजन्म में करता है।

जो वे ऐसे हों तो क्या होय—

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन्।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ॥ —मनु० [४।१९४]

जैसे पत्थर की नौका में बैठ के जल में तरने वाला डूब जाता है, वैसे अज्ञानी दाता और ग्रहीता दोनों अधोगति अर्थात् दुःख को प्राप्त होते हैं।

पाखण्डियों के लक्षण

धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः।
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः॥ १॥
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः।
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः॥ २॥
—मनु० [४।१९५-१९६]

(धर्मध्वजी) धर्म कुछ भी न करे, परन्तु धर्म के नाम से लोगों को ठगे, (सदालुब्धः) सर्वदा लोभ से युक्त, (छाद्मिकः) कपटी, (लोकदम्भकः) संसारी मनुष्यों के सामने अपनी बड़ाई के गपोड़े मारा करे, (हिंस्रः) प्राणियों का घातक, अन्य से वैरबुद्धि रखनेवाला, (सर्वाभिसन्धकः) सब अच्छे और बुरों से भी मेल रक्खे, उसको वैडालव्रतिक अर्थात् विडाले के समान धूर्त्त, नीच समझो॥ १॥

(अधोदृष्टिः) कीर्ति के लिये नीचे दृष्टि रक्खे, (नैष्कृतिकः) ईर्ष्यक किसी ने उसका पैसाभर अपराध किया हो, तो उसका बदला प्राण तक लेने को तत्पर रहै, (स्वार्थसाधनतत्परः) चाहै कपट, अधर्म विश्वासघात क्यों न हो, अपना प्रयोजन साधने में चतुर, (शठः) चाहै अपनी बात झूठी क्यों न हो, परन्तु हठ कभी न छोड़े, (मिथ्याविनीतः) झूठ-मूठ ऊपर से शील, सन्तोष और साधुता दिखलावे, उसको (बकव्रत०) बगुले के समान नीच समझो। ऐसे-ऐसे लक्षण वाले पाखण्डी होते हैं, उनका विश्वास वा सेवा कभी न करें॥ २॥

धर्मं शनैः सञ्चिनुयाद् वल्मीकमिव पुत्तिकाः।
परलोकसहायार्थं सर्वलोकान्यपीडयन्॥ १॥
नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥ २॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एको नु भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥ ३॥
[मनु० ४।२३८।२४०]

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते॥ ४॥
[महाभारत उद्योगपर्व प्रजागरपर्व १, अ० ३३, श्लोक ४१]

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥ ५॥
—मनु० [४।२४१]

स्त्री और पुरुष को चाहिये कि जैसे पुत्तिका अर्थात् दीमक, वल्मीक अर्थात् बांबी को बनाती है, वैसे सब भूतों को पीड़ा न देकर, परलोक

अर्थात् परजन्म के सुखार्थ धीरे-धीरे धर्म का संचय करे॥ १॥

क्योंकि परलोक में न माता, न पिता, न पुत्र, न स्त्री, न ज्ञाति सहाय कर सकते हैं, किन्तु एक धर्म ही सहायक होता है॥ २॥

देखिये! अकेला ही जीव जन्म पाता, मरण को प्राप्त होता, एक ही धर्म का फल सुख और अधर्म के दुःखरूप फल को भोगता है॥ ३॥

यह भी समझ लो कि कुटुम्ब में एक पुरुष पाप करके पदार्थ लाता है, और महाजन अर्थात् सब कुटुम्ब उसको भोगता है, भोगनेवाले दोषभागी नहीं होते, किन्तु अधर्म का कर्त्ता ही दोष का भागी होता है॥ ४॥

जब कोई किसी का सम्बन्धी मर जाता है, उसको लकड़े, मट्टी के ढेले के समान भूमि में छोड़कर, पीठ दे, बन्धुवर्ग विमुख होकर चले जाते हैं, कोई उसके साथ जानेवाला नहीं होता, किन्तु एक धर्म ही उसका सङ्गी होता है॥ ५॥

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः।
धर्म्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्॥ १॥
धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्विषम्।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम्॥ २॥

—मनु० [४।२४२-२४३]

उस हेतु से परलोक, अर्थात् परमसुख और परजन्म के सहायार्थ नित्य धर्म का सञ्चय धीरे-धीरे करता जाय; क्योंकि धर्म ही के सहाय से बड़े-बड़े दुस्तर दुःखसागर को जीव तर सकता है॥ १॥

किन्तु जो पुरुष धर्म ही को प्रधान समझता, जिसका धर्म के अनुष्ठान से कर्त्तव्य [= सम्भावित] पाप दूर हो गया, उसको प्रकाशस्वरूप और आकाश जिसका शरीरवत् है, उस परलोक अर्थात् परमदर्शनीय परमात्मा को, धर्म ही शीघ्र प्राप्त कराता है॥ २॥ इसलिये—

दृढ़कारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन्।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः॥ १॥
वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः।
तां तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः॥ २॥

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥ ३॥

—मनु० [४।२४६, २५६, १५६]

सदा दृढ़कारी, कोमलस्वभाव, जितेन्द्रिय, हिंसक-क्रूर-दुष्टाचारी पुरुषों से पृथक् रहनेहारा धर्मात्मा मन को जीत और विद्यादि दान से, सुख को प्राप्त होवे॥ १॥

परन्तु यह भी ध्यान में रक्खे कि जिस वाणी में सब अर्थ, अर्थात् व्यवहार निश्चित, वाणी ही उनका मूल, और वाणी ही से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं; उस वाणी को जो चोरता अर्थात् मिथ्याभाषण करता है, वह सब चोरी आदि पापों का करनेवाला है॥ २॥

इसलिये मिथ्याभाषणादिरूप अधर्म को छोड़, जिस धर्माचार अर्थात् ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियता से पूर्ण आयु, और धर्माचार से उत्तम प्रजा; धर्माचार से अक्षय धन को प्राप्त होता और जो धर्माचार दुष्ट-लक्षणों का नाश करता है, उसके आचरण को सदा किया करे॥ ३॥

क्योंकि—

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥

—मनु० [४।१५७]

जो दुष्टाचारी पुरुष है, वह संसार में सज्जनों के मध्य में निन्दा को प्राप्त, निरन्तर दुःख का भोगनेहारा और अनेक प्रकार के रोगों से अल्पायु होकर शीघ्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करे—

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।
यद्यदात्मवशं तु स्यात् तत्तत्सेवेत यत्नतः॥ १॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥ २॥

—मनु० [४।१५९, १६०]

जो-जो पराधीन कर्म हो, उस-उस का प्रयत्न से त्याग; और जो-जो स्वाधीन कर्म हो, उस-उस का प्रयत्न के साथ सेवन करे॥ १॥

क्योंकि जो-जो पराधीनता है, वह-वह सब दुःख और जो-जो

स्वाधीनता है, वह-वह सब सुख; यही संक्षेप से सुख और दुःख का लक्षण जानना चाहिये॥ २॥

परन्तु जो एक-दूसरे के आधीन काम है, वह-वह आधीनता से ही करना चाहिये, जैसा कि स्त्री और पुरुष का एक-दूसरे के आधीन व्यवहार। अर्थात् स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री का परस्पर प्रियाचरण, अनुकूल रहना, व्यभिचार वा विरोध कभी न करना। पुरुष की आज्ञानुकूल घर के काम स्त्री और बाहर के काम पुरुष के आधीन रहना। दुष्ट व्यसन में फसने से एक दूसरे को रोकना, अर्थात् यही निश्चय जानना—जब विवाह होवे तब स्त्री के हाथ पुरुष और पुरुष के हाथ स्त्री बिक चुकी, अर्थात् स्त्री और पुरुष के साथ हाव, भाव, नखशिखाग्रपर्यन्त जो कुछ हैं, वह वीर्यादि एक दूसरे के आधीन हो जाता है। स्त्री वा पुरुष की प्रसन्नता के विना कोई भी व्यवहार न करें। इनमें बड़े अप्रियकारक व्यभिचार, वेश्यापरपुरुषगमनादि काम हैं, इनको दोनों छोड़ के, अपने पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति सदा प्रसन्न रहैं। स्त्री का पूजनीय देव पति और पुरुष की पूजनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य देवी स्त्री है।

जो ब्राह्मणवर्णस्थ हों, तो पुरुष लड़कों को पढ़ावे और सुशिक्षा करें तथा लड़कियों को स्त्री पढ़ावे। नानाविध उपदेश और वक्तृत्व करके उनको विद्वान् करें। जब तक गुरुकुल में रहैं, तब तक माता-पिता के समान अध्यापकों को समझें और अध्यापक अपने सन्तानों के समान शिष्यों को समझें।

पढ़ानेहारे अध्यापक और अध्यापिका कैसे होने चाहियें—

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते॥ १॥
निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत्पण्डितलक्षणम्॥ २॥
क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति, विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।
नासम्पृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थे, तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य॥ ३॥
नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः॥ ४॥

प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते॥ ५॥
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असंभिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः॥ ६॥

—ये सब महाभारत उद्योगपर्व विदुरप्रजागर [अध्याय ३३] के श्लोक हैं।

अर्थ—जिसको आत्मज्ञान; सम्यक् आरम्भ अर्थात् जो निकम्मा आलसी कभी न रहे; सुख, दुःख, हानि, लाभ, मानापमान, निन्दा, स्तुति में हर्ष, शोक कभी न करे; धर्म ही में नित्य निश्चित रहै; जिसके मन को उत्तम-उत्तम पदार्थ अर्थात् विषय-सम्बन्धी वस्तु आकर्षण न कर सकें, वही पण्डित कहाता है॥ १॥

उसके कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म—सदा धर्मयुक्त कर्मों का सेवन; अधर्मयुक्त कामों का त्याग; ईश्वर, वेद, सत्याचार की निन्दा न करनेहारा; ईश्वर आदि में अत्यन्त श्रद्धालु हो; यही पण्डित का कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म है॥ २॥

वह कैसा हो—जो कठिन विषय को भी शीघ्र जान सके; बहुत कालपर्यन्त शास्त्रों को पढ़े, सुने और विचारे; जो कुछ जाने उसको परोपकार में प्रयुक्त करे, अपने स्वार्थ के लिये कोई काम न करे; विना पूछे वा विना योग्य समय के, विना जाने दूसरे के अर्थ में सम्मति न दे; वही प्रथम प्रज्ञान पण्डित को होना चाहिये॥ ३॥

वह कैसा हो—जो प्राप्ति के अयोग्य की इच्छा कभी न करे; नष्ट हुये पदार्थ पर शोक न करे; आपत्काल में मोह को [प्राप्त न हो] अर्थात् व्याकुल न हो; वही बुद्धिमान् पण्डित है॥ ४॥

उसकी रीति कैसी होनी चाहिये—जिसकी वाणी सब विद्याओं और प्रश्नोत्तर करने में अतिनिपुण; विचित्र शास्त्रों के प्रकरणों का वक्ता; यथायोग्य तर्क और स्मृतिमान्; ग्रन्थों के यथार्थ अर्थ का शीघ्र वक्ता हो; वही पण्डित कहाता है॥ ५॥

जिसकी प्रज्ञा सुने हुए सत्य अर्थ के अनुकूल और जिसका श्रवण बुद्धि के अनुसार हो; जो कभी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषों की

मर्यादा का छेदन न करे, वही पण्डितसंज्ञा को प्राप्त होवे॥ ६॥

जहाँ ऐसे-ऐसे सज्जन स्त्री-पुरुष पढ़ानेवाले होते हैं, वहाँ विद्या, धर्म और उत्तमाचार की वृद्धि होकर, प्रतिदिन आनन्द ही बढ़ता रहता है।

पढ़ाने में अयोग्य और मूर्ख के लक्षण

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाऽकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः॥ १॥
अनाहूतः प्रविशति ह्यपृष्टो बहु भाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः॥ २॥

—ये श्लोक भी महाभारत उद्योगपर्व विदुरप्रजागर [अध्याय ३३] के हैं।

अर्थ—जिसने कोई शास्त्र न पढ़ा, न सुना; और अतीव घमण्डी, दरिद्र होकर बड़े-बड़े मनोरथ करनेहारा; विना कर्म से पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा करने वाला हो; उसी को बुद्धिमान् लोग 'मूढ़' कहते हैं॥ १॥

जो विना बुलाये सभा वा किसी के घर में प्रविष्ट हो, उच्च आसन पर बैठना चाहे, विना पूछे सभा में बहुत-सा बके; विश्वास के अयोग्य वस्तु वा मनुष्य में विश्वास करे, वही 'मूढ़' और सब मनुष्यों में 'नीच मनुष्य' कहाता है॥ २॥

जहां ऐसे पुरुष अध्यापक, उपदेशक, गुरु और माननीय होते हैं, वहां अविद्या, अधर्म, असभ्यता, कलह, विरोध और फूट बढ़के दुःख ही बढ़ता जाता है।

अब विद्यार्थियों के लक्षण

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः॥ १॥
सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम्॥ २॥

—ये भी विदुरप्रजागर [अध्याय ४०] के श्लोक हैं।

(आलस्य) शरीर और बुद्धि में जड़ता; नशा-मोह=किसी वस्तु में फसावट; चपलता; और इधर-उधर की व्यर्थ कथा करना-सुनना; पढ़ते-

पढ़ाते रुक जाना; अभिमानी; अत्यागी होना; ये सात दोष विद्यार्थियों में होते हैं॥ १॥

जो ऐसे हैं उनको विद्या कभी नहीं आती।

सुख भोगने की इच्छा करने वाले को विद्या कहां? और विद्या पढ़नेवाले को सुख कहां? क्योंकि विषयसुखार्थी विद्या को और विद्यार्थी विषयसुख को छोड़ दें॥ २॥

ऐसे किये विना विद्या कभी नहीं हो सकती।

और ऐसे को विद्या होती है—

सत्ये रतानां सततं दान्तानामूर्ध्वरेतसाम्।
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम्॥ १॥

[महाभारत अनुशासन पर्व अ० ७५, श्लोक ३८]

जो सदा सत्याचार में प्रवृत्त, जितेन्द्रिय और जिनका वीर्य अधःस्खलित कभी न हो, उन्हीं का ब्रह्मचर्य सच्चा और वे ही विद्वान् होते हैं॥ १॥

इसलिये शुभलक्षणयुक्त अध्यापक और विद्यार्थियों को होना चाहिये। अध्यापक लोग ऐसा यत्न किया करें, जिससे विद्यार्थी लोग सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी, सभ्य, जितेन्द्रिय, सुशीलतादि शुभगुणयुक्त, शरीर और आत्मा का पूर्ण बल बढ़ाके समग्र वेदादि शास्त्रों में विद्वान् हों, सदा उनकी कुचेष्टा छुड़ाने और विद्या पढ़ाने में चेष्टा किया करें और विद्यार्थी लोग सदा जितेन्द्रिय, शान्त, पढ़ानेहारों में प्रेमी, विचारशील, परिश्रमी होकर ऐसा पुरुषार्थ करें, जिससे पूर्ण विद्या, पूर्ण आयु, पूर्ण धर्मात्मता और पुरुषार्थ करना आ जाय, इत्यादि ब्राह्मण-वर्ण के काम हैं।

क्षत्रियों का कर्म्म राजधर्म में कहेंगे।

जो वैश्य हों, वे ब्रह्मचर्यादि से वेदादि विद्या पढ़, विवाह करके, नाना देशों की भाषा, नाना प्रकार के व्यापार की रीति, उनके भाव जानना, बेचना, खरीदना, द्वीप-द्वीपान्तरों में लाभार्थ जाना-आना, लाभार्थ काम का आरम्भ करना, पशुपालन और खेती की उन्नति चतुराई से करनी-करानी, धन को बढ़ाना, विद्या और धर्म की उन्नति में व्यय करना, सत्यवादी, निष्कपटी होकर सत्यता से सब व्यापार करना, सब

वस्तुओं की रक्षा ऐसी करनी, जिससे कोई नष्ट न होने पावे।

शूद्र सब सेवाओं में चतुर, पाकविद्या में निपुण, अतिप्रेम से द्विजों की सेवा और उन्हीं से अपनी उपजीविका करे। और द्विज-लोग इसके खान, पान, वस्त्र, स्थान, विवाहादि में जो कुछ व्यय हो, सब कुछ देवें, अथवा मासिक कर देवें। चारों वर्ण परस्पर प्रीति, उपकार, सज्जनता, सुख, दु:ख, हानि, लाभ में ऐकमत्य रहकर राज्य और प्रजा की उन्नति में तन, मन, धन व्यय करते रहें।

स्त्री और पुरुष का वियोग कभी न होना चाहिये। क्योंकि—

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसन्दूषणानि षट्॥ १॥

[मनु० ९।१३]

मद्य, भाँग आदि मादक द्रव्यों का पीना; दुष्ट पुरुषों का सङ्ग; पति से वियोग; अकेली जहां-तहां व्यर्थ पाखण्डी आदि के दर्शन-मिस से फिरती रहना और पराये घर में शयन वा वास करना; ये छ: स्त्री को दूषित करनेवाले दुर्गुण हैं। और ये पुरुषों के भी हैं। पति और स्त्री का वियोग दो प्रकार का होता है—कहीं कार्यार्थ देशान्तर में जाना और दूसरा मृत्यु से वियोग होना। इनमें से प्रथम का उपाय यही है कि दूर देश में यात्रार्थ जावे तो स्त्री को भी साथ रक्खे। इसका प्रयोजन यह है कि बहुत समय तक वियोग न रहना चाहिये।

प्रश्न—स्त्री और पुरुष का बहुविवाह होना योग्य है वा नहीं?

उत्तर—युगपत् न अर्थात् एक समय में नहीं।

प्रश्न—क्या समयान्तर में अनेक विवाह भी होना चाहिये?

उत्तर—हां, जैसे—

या स्त्री त्वक्षतयोनिःस्याद् गतप्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥ १॥ [मनु० ९।१७६]

जिस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहणमात्र संस्कार हुआ हो और संयोग [न हुआ हो] अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष हो तो उस स्त्री वा पुरुष का अन्य पुरुष वा स्त्री से पुनर्विवाह होना चाहिये। और शूद्रवर्ण में भी चाहे कैसा ही हो पुनर्विवाह हो सकता है। किन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्णों में क्षतयोनि स्त्री, क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये।

प्रश्न—पुनर्विवाह में क्या दोष है?

उत्तर—(पहिला) स्त्री पुरुष में प्रेम न्यून होना। क्योंकि जब चाहै तब पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष छोड़ कर, दूसरे के साथ सम्बन्ध कर ले।

(दूसरा) जब स्त्री वा पुरुष, पति [वा] स्त्री [के] मरने के पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहें, तब पूर्व पति वा प्रथम स्त्री के पदार्थों को उड़ा ले जाना अच्छा समझेंगे और उनके कुटुम्ब वाले उससे झगड़ा करेंगे।

(तीसरा) बहुत-से भद्रकुल का नाम वा चिह्न भी न रह कर, उसके पदार्थ छिन्न-भिन्न हो जाना।

(चौथा) पातिव्रत्य और स्त्रीव्रत धर्म नष्ट होना, इत्यादि दोषों के अर्थ द्विजों में पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होना चाहिये।

प्रश्न—जब वंशच्छेदन हो जाये, तब भी उसका कुल नष्ट हो जाएगा और स्त्री पुरुष व्याभिचारादि कर्म करके गर्भपातनादि बहुत-से दुष्ट कर्म करेंगे, इसलिये पुनर्विवाह का होना अच्छा है।

उत्तर—नहीं। क्योंकि जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य में स्थित रहना चाहैं, तो कोई भी उपद्रव न होगा। और जो कुल की परम्परा रखने के लिये किसी अपने स्वजाति का लड़का गोद ले लेंगे, उससे कुल चलेगा और व्यभिचार भी न होगा। और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लें।

प्रश्न—पुनर्विवाह और नियोग में क्या भेद है?

उत्तर—(पहिला) जैसे विवाह करने में कन्या अपने पिता का घर छोड़ पति के घर को प्राप्त होती है और पिता से विशेष सम्बन्ध नहीं रहता। और विधवा स्त्री उसी विवाहित पति के घर में रहती है।

(दूसरा) उसी विवाहिता स्त्री के लड़के उसी विवाहित पति के दायभागी होते हैं। और विधवा स्त्री के लड़के वीर्यदाता के न पुत्र कहलाते, न उसका गोत्र होता और [न] उसका स्वत्व उन लड़कों पर

रहता, किन्तु वे मृतपति के पुत्र बजते, उसी का गोत्र रहता और उसी के पदार्थों के दायभागी होकर उसी घर में रहते हैं।

(तीसरा) विवाहित स्त्री-पुरुष को परस्पर सेवा और पालन करना अवश्य है, और नियुक्त स्त्री-पुरुष का कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता।

(चौथा) विवाहित स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध मरणपर्यन्त रहता है और नियुक्त स्त्री-पुरुष का कार्यसिद्धि के पश्चात् छूट जाता है।

(पांचवां) विवाहित स्त्री-पुरुष आपस में गृह के कार्यों की सिद्धि करने में यत्न किया करते हैं और नियुक्त स्त्री-पुरुष अपने-अपने घर के काम किया करते हैं।

प्रश्न—विवाह और नियोग के नियम एकसे हैं, वा पृथक्-पृथक्?

उत्तर—कुछ थोड़ा-सा भेद है, जितने पूर्व कह आये और दूसरा यह कि विवाहित स्त्री-पुरुष एक पति और एक ही स्त्री मिलके दश सन्तान तक उत्पन्न कर सकते हैं और नियुक्त स्त्री-पुरुष दो वा चार से अधिक सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते। अर्थात् जैसा कुमार-कुमारी ही का विवाह होता है, वैसा जिसकी स्त्री वा पुरुष मर जाता है, उन्हीं का नियोग होता है, कुमार-कुमारी का नहीं। जैसे विवाहित स्त्री-पुरुष सदा सङ्ग में रहते हैं, वैसे नियुक्त स्त्री-पुरुष का व्यवहार नहीं, किन्तु विना ऋतुदान समय के एकत्र न हों। जो स्त्री अपने लिये नियोग करे, तो जब दूसरा गर्भ रहै, उसी दिन से स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध छूट जाय। और जो पुरुष अपने लिये करे तो भी दूसरे गर्भ रहने से सम्बन्ध छूट जाय। परन्तु वही नियुक्त स्त्री दो-तीन वर्ष पर्यन्त उन लड़कों का पालन करके नियुक्त पुरुष को दे देवे। ऐसे एक विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो-दो अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिये सन्तान कर सकती और एक मृतस्त्री[क] पुरुष भी दो अपने लिये और दो-दो अन्य-अन्य चार विधवाओं के लिये पुत्र उत्पन्न कर सकता है। ऐसे मिलकर दश-दश सन्तानोत्पति की आज्ञा वेद में है। जैसे—

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि॥

—ऋ०। मं० १०। सू० ८५। मं० ४५॥

हे (मीढ्व, इन्द्र) वीर्यसेचन में समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष! तू इस विवाहित स्त्री वा विधवा स्त्रियों को श्रेष्ठपुत्र और सौभाग्युक्त कर। इस विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्री को मान। हे स्त्रि! तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषों से दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवाँ पति को समझ।

इस वेद की आज्ञा से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यवर्णस्थ स्त्री और पुरुष दश-दश सन्तान से अधिक उत्पन्न न करें। क्योंकि अधिक करने से सन्तान निर्बल, निर्बुद्धि, अल्पायु होते हैं और स्त्री तथा पुरुष भी निर्बल, अल्पायु और रोगी होकर वृद्धावस्था में बहुत-से दुःख पाते हैं।

प्रश्न—यह नियोग की बात व्यभिचार के समान दीखती है।

उत्तर—जैसे विना विवाहितों का व्यभिचार होता है, वैसे विना नियुक्तों का व्यभिचार कहाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसा नियम से विवाह होने पर व्यभिचार नहीं कहाता, तो नियमपूर्वक नियोग होने से व्यभिचार न कहावेगा। जैसे दूसरे की लड़की और दूसरे के लड़के का शास्त्रोक्त विधि से विवाहपूर्वक समागम में व्यभिचार वा पाप, लज्जा नहीं होता, वैसे ही वेदशास्त्रोक्त नियोग में व्यभिचार, पाप, लज्जा न मानना चाहिये।

प्रश्न—है तो ठीक, परन्तु यह वेश्या के सदृश कर्म दीखता है।

उत्तर—नहीं, क्योंकि वेश्या के समागम में किसी निश्चित पुरुष वा कोई नियम नहीं है और नियोग में विवाह के समान नियम हैं। जैसे दूसरे को लड़की देने, दूसरे के साथ समागम करने में विवाहपूर्वक लज्जा नहीं होती, वैसे ही नियोग में भी न होनी चाहिये। क्या जो व्यभिचारी पुरुष वा स्त्री होती हैं, वह विवाह होने पर भी कुकर्म से बचते हैं?

प्रश्न—हमको नियोग की बात में पाप मालूम पड़ता है।

उत्तर—जो नियोग की बात में पाप मानते हो तो विवाह में पाप क्यों नहीं मानते? पाप तो नियोग के रोकने में है। क्योंकि ईश्वर के सृष्टिक्रमानुकूल स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक व्यवहार रुक ही नहीं सकते, सिवाय वैराग्यवान्, पूर्णविद्वान् योगियों के। क्या गर्भपातनरूप भ्रूणहत्या

और विधवा स्त्री और मृतस्त्री[क] पुरुषों के महासन्ताप को पाप नहीं गिनते हो? क्योंकि जबतक वे युवावस्था में हैं, मन में सन्तानोत्पत्ति और विषय की चाहना होनेवालों को किसी राजव्यवहार वा जातिव्यवहार से रुकावट होने से, गुप्त-गुप्त कुकर्म बुरी चाल से होते रहते हैं। इस व्यभिचार और कुकर्म के रोकने का एक यही श्रेष्ठ उपाय है कि जो जितेन्द्रिय रह सकें, वे विवाह वा नियोग भी न करें तो ठीक है। परन्तु जो ऐसे नहीं हैं, उनका विवाह और आपत्काल में नियोग अवश्य होना चाहिये। इससे व्यभिचार का न्यून होना, प्रेम से उत्तम सन्तान होकर मनुष्यों की वृद्धि होना सम्भव है, और गर्भहत्या सर्वथा छूट जाती है। नीच पुरुषों से उत्तम स्त्री और वेश्यादि नीच स्त्रियों से उत्तम पुरुषों का व्यभिचाररूप कुकर्म, उत्तम कुल में कलंक, वंश का उच्छेद, स्त्री-पुरुषों को सन्ताप और गर्भहत्यादि कुकर्म विवाह और नियोग से निवृत्त होते हैं, इसलिये नियोग करना चाहिये।

प्रश्न—नियोग में क्या-क्या बात होनी चाहिये?

उत्तर—जैसे प्रसिद्धि से विवाह, वैसे ही प्रसिद्धि से नियोग। जैसे विवाह में भद्र पुरुषों की अनुमति और कन्या वर की प्रसन्नता होती है, वैसे नियोग में भी। अर्थात् जब स्त्री-पुरुष का नियोग होना हो, तब अपने कुटुम्ब में पुरुषस्त्रियों के सामने [कहें कि] हम दोनों नियोग सन्तानोत्पत्ति के लिये करते हैं। जब नियोग का नियम पूरा होगा, तब हम संयोग न करेंगे। जो अन्यथा करें, तो पापी और जाति वा राज के दण्डनीय हों। महीने-महीने में एकवार गर्भाधान का कर्म करेंगे, गर्भ रहे पश्चात् एक वर्ष दिन तक पृथक् रहेंगे।

प्रश्न—नियोग अपने वर्ण में होना चाहिये वा अन्य वर्णस्थ के साथ भी?

उत्तर—अपने वर्ण में वा अपने से उत्तमवर्णस्थ पुरुष के साथ। अर्थात् वैश्या स्त्री वैश्य क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ, क्षत्रिया क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ, ब्राह्मणी ब्राह्मण के साथ नियोग कर सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि वीर्य सम वा उत्तम वर्ण का चाहिये, अपने से नीचे के वर्ण का नहीं। स्त्री और पुरुष की सृष्टि का यही प्रयोजन है कि

धर्म से अर्थात् वेदोक्त रीति से विवाह वा नियोग से सन्तानोत्पत्ति करना।

प्रश्न—पुरुष को नियोग करने की क्या आवश्यकता है, क्योंकि वह दूसरा विवाह करेगा।

उत्तर—हम लिख आये हैं, द्विजों में स्त्री और पुरुष का एकवार ही विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है, द्वितीयवार नहीं। कुमार और कुमारी का ही विवाह होने में न्याय और विधवा स्त्री के साथ कुमार पुरुष और कुमारी स्त्री के साथ मृतस्त्री[क] पुरुष का विवाह होने में अन्याय अर्थात् अधर्म है। जैसे विधवा स्त्री के साथ पुरुष विवाह नहीं किया चाहता, वैसे ही विवाह और स्त्री से समागम किये हुए पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा कुमारी भी न करेगी। जब विवाह किये हुए पुरुष को कोई कुमारी कन्या, और विधवा स्त्री का ग्रहण कोई कुमार पुरुष न करेगा, तब पुरुष और स्त्री को नियोग करने की आवश्यकता होगी। और यही धर्म है कि जैसे के साथ वैसे का ही सम्बन्ध होना चाहिये।

प्रश्न—जैसे विवाह में वेदादि-शास्त्रों का प्रमाण है, वैसे नियोग में प्रमाण है वा नहीं?

उत्तर—इस विषय में बहुत प्रमाण हैं, देखो और सुनो—

कुहस्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्य्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ॥ १॥

—ऋ० मं० १०। सू० ४०। मं० २॥

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ॥ २॥

—ऋ० मं० १०। सू० १८। मं० ८॥

हे (अश्विना) स्त्री-पुरुषो! जैसे (देवरं विधवेव) देवर को विधवा और (योषा मर्यन्न) विवाहिता स्त्री अपने पति को (सधस्थे) समान स्थान शय्या में एकत्र होकर सन्तानोत्पत्ति को (आ कृणुते) सब प्रकार से उत्पन्न करती है, वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष (कुहस्विद्दोषा) कहां रात्रि और (कुह वस्तः) कहां दिन में वसे थे? (कुहाभिपित्वम्) कहां पदार्थों की प्राप्ति (करतः) की? और (कुहोषतुः) किस समय कहां वास

करते थे? (को वां शयुत्रा) तुम्हारा शयनस्थान कहां है? तथा कौन वा किस देश के रहने वाले हो? इससे यह सिद्ध हुआ कि देश-विदेश में स्त्री-पुरुष सङ्ग ही में रहें। और विवाहित पति के समान नियुक्त पति को ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पत्ति कर लेवे।

प्रश्न—यदि किसी का छोटा भाई ही न हो तो विधवा नियोग किसके साथ करे?

उत्तर—देवर के साथ। परन्तु देवर शब्द का अर्थ जैसा तुम समझे हो, वैसा नहीं। देखो! निरुक्त में—

देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते॥

—निरु० ॥ अ० ३। खण्ड १५॥

देवर उसको कहते हैं कि जो विधवा का दूसरा पति होता है, चाहे छोटा भाई वा बड़ा भाई, अथवा अपने वर्ण वा अपने से उत्तम वर्ण वाला हो, जिससे नियोग करे, उसी का नाम 'देवर' है॥ १॥

हे (नारि) विधवे! तू (एतं गतासुम्) इस मरे हुए पति की आशा छोड़ के (शेषे) बाकी पुरुषों में से (अभिजीवलोकम्) जीते हुए दूसरे पति को (उपैहि) प्राप्त हो और (उदीर्ष्व) इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो (हस्तग्राभस्य दिधिषोः) तुझ विधवा के पुनः पाणिग्रहण करने वाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिये नियोग होगा तो (इदम्) यह (जनित्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पति का होगा और जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान (तव) तेरा होगा; ऐसे निश्चययुक्त (अभि सम् बभूथ) हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे॥ २॥

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य॥

—अथर्व०। कां० १४। [प्रपा० २९] अनु० २। मं० १८॥

हे (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) पति और देवर को दुःख न देने वाली स्त्रि! तू (इह) इस गृहाश्रम में, (पशुभ्यः) पशुओं के लिये, (शिवा) कल्याण करनेहारी, (सुयमा) अच्छे प्रकार धर्म नियम में चलने, (सुवर्चाः) रूप और सर्वशास्त्रविद्यायुक्त, (प्रजावती) उत्तम-पुत्र पौत्रादि से सहित, (वीरसूः) शूरवीर पुत्रों को जनने, (देवृकामा) देवर की कामना करने, (स्योना) और सुख देनेहारी, पति वा देवर को, (एधि) प्राप्त होके, (इमम्) इस, (गार्हपत्यम्) गृहस्थसम्बन्धी, (अग्निम्) अग्निहोत्र को, (सपर्य) सेवन किया कर।

तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥ —मनु० [९।६९]

जो अक्षतयोनि स्त्री विधवा हो जाय, तो पति का निज छोटा भाई भी उससे विवाह कर सकता है।

प्रश्न—एक स्त्री वा पुरुष कितने नियोग कर सकते हैं? और विवाहित नियुक्त पतियों का नाम क्या होता है?

उत्तर— **सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।**
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥

—ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४०॥

हे स्त्रि! जो (ते) तेरा (प्रथमः) पहिला विवाहित (पतिः) पति तुझ को (विविदे) प्राप्त होता है, उसका नाम (सोमः) सुकुमारतादि गुणयुक्त होने से 'सोम'; जो दूसरा नियोग होने से (विविदे) वह (गन्धर्वः) एक स्त्री से सम्भोग करने से 'गन्धर्व'; जो (तृतीय उत्तरः) दो के पश्चात् तीसरा पति होता है, वह (अग्निः) अत्युष्णतायुक्त होने से 'अग्नि' संज्ञक; और जो (ते) तेरे (तुरीयः) चौथे से लेके ग्यारहवें तक नियोग से पति होते हैं, वे (मनुष्यजाः) 'मनुष्य' नाम से कहाते हैं। जैसा (इमां त्वमिन्द्र०) इस मन्त्र में ग्यारहवें पुरुष तक स्त्री नियोग कर सकती है, वैसे पुरुष भी ग्यारहवीं स्त्री तक नियोग कर सकता है।

प्रश्न—'एकादश' शब्द से दश पुत्र और ग्यारहवें पति को क्यों न गिनें?

उत्तर—जो ऐसा अर्थ करोगे तो **'विधवेव देवरम्' 'देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते' 'अदेवृघ्नि'** और **'गन्धर्वो विविद उत्तरः'** इत्यादि वेदप्रमाणों से विरुद्धार्थ होगा। क्योंकि तुम्हारे अर्थ से दूसरा भी पति प्राप्त नहीं हो सकता।

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये॥ १॥

ज्येष्ठो यवीयसो भार्य्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम्।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि॥ २॥
औरसः क्षेत्रजश्चैव०॥ ३॥ —मनु० [९।५९, ५८, १५९]

इत्यादि मनुजी ने लिखा है कि (सपिण्ड), अर्थात् पति की छः पीढ़ियों में पति का छोटा वा बड़ा भाई अथवा स्वजातीय तथा अपने से उत्तम जातिस्थ पुरुष से विधवा स्त्री का नियोग होना चाहिये। परन्तु जो वह मृतस्त्री[क]-पुरुष और विधवा स्त्री सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करती हो, तो नियोग होना उचित है। और जब सन्तान का सर्वथा क्षय हो, तब नियोग होवे॥ १॥

जो आपत्काल, अर्थात् सन्तानों के होने की इच्छा न होने में, बड़े भाई की स्त्री से छोटे का और छोटे की स्त्री से बड़े भाई का नियोग होकर सन्तानोत्पत्ति हो जाने पर भी, पुनः वे नियुक्त आपस में समागम करें, तो पतित हो जायें अर्थात् एक नियोग में दूसरे पुत्र के गर्भ रहने तक नियोग की अवधि है, इसके पश्चात् समागम न करें॥२॥

और जो दोनों के लिये नियोग हुआ हो, तो चौथे गर्भ तक, अर्थात् पूर्वोक्त रीति से दस सन्तान तक हो सकते हैं। पश्चात् विषयासक्ति गिनी जाती है, इससे वे पतित गिने जाते हैं। और जो विवाहित स्त्री पुरुष भी दशवें गर्भ से अधिक समागम करें, तो कामी और निन्दित होते हैं। अर्थात् विवाह वा नियोग सन्तानों ही के अर्थ किये जाते हैं, पशुवत् कामक्रीड़ा के लिये नहीं।

प्रश्न—नियोग मरे पीछे ही होता है वा जीते पति के भी?

उत्तर—जीते भी होता है—

अ॒न्यमि॑च्छस्व सुभगे॒ पतिं॒ मत्॥ —ऋ०। मं० १०। सू० १०॥

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे, तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे सुभगे! सौभाग्य की इच्छा करनेहारी स्त्री तू (मत्) मुझ से (अन्यम्) दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छा कर, क्योंकि अब मुझ से सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी। तब स्त्री दूसरे से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करे, परन्तु उस विवाहित महाशय पति की सेवा में तत्पर रहै। वैसे ही स्त्री भी जब रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे,

तब अपने पति को आज्ञा देवे कि हे स्वामी! आप मुझसे सन्तानोत्पत्ति की इच्छा छोड़ के, किसी दूसरी विधवा स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कीजिये। जैसा कि पाण्डु राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री आदि ने किया। और जैसा व्यासजी ने चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य के मर जाने पश्चात् उन अपने भाइयों की स्त्रियों से नियोग करके अम्बिका में धृतराष्ट्र और अम्बालिका में पाण्डु और दासी में विदुर की उत्पत्ति की, इत्यादि इतिहास भी इस बात में प्रमाण हैं।

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥ १॥
वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजाः।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥ २॥
—मनु० [९।७६, ८१]

विवाहित स्त्री; जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो, तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिये गया हो तो छः, और धनादि कामना के लिये गया हो, तो तीन वर्ष तक वाट देख के, पश्चात् नियोग करके, सन्तानोत्पत्ति कर ले। जब विवाहित पति आवे, तब नियुक्त पुरुष छूट जावे॥ १॥

वैसे ही पुरुष के लिये भी नियम है, जब विवाह से आठ वर्ष तक स्त्री को गर्भ भी न रहै, वन्ध्या हो, तो आठवें, सन्तान होकर मर जायें तो दशवें, जब-जब हो तब-तब कन्या, पुत्र न होवे तो ग्यारहवें, और जो स्त्री अप्रिय बोलने वाली होवे, तो तुरन्त उस को छोड़ के, दूसरी स्त्री से नियोग करके, सन्तानोत्पत्ति कर लेवे॥ २॥

वैसे ही जो पुरुष अत्यन्त दुःखदायक हो तो स्त्री को उचित है कि तुरन्त उसको छोड़के दूसरे पुरुष से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करके, उसी विवाहित पति के दायभागी सन्तान कर लेवे। इत्यादि प्रमाण और युक्तियों से स्वयंवर विवाह और नियोग से अपने-अपने कुल की उन्नति करे।

जैसा 'औरस' अर्थात् विवाहित पति से उत्पन्न हुआ पुत्र, पिता के पदार्थों का स्वामी होता है, वैसे ही 'क्षेत्रज' अर्थात् नियोग से उत्पन्न हुए

पुत्र भी मृतपिता के दायभागी होते हैं।

अब इस पर स्त्री और पुरुष को ध्यान रखना चाहिये कि वीर्य और रज को अमूल्य समझें। जो कोई इस अमूल्य पदार्थ को परस्त्री, वेश्या वा दुष्ट पुरुषों के सङ्ग में खोते हैं, वे महामूर्ख कहाते हैं। क्योंकि किसान वा माली मूर्ख होकर भी, अपने खेत वा वाटिका के विना, अन्यत्र बीज नहीं बोते। जो कि साधारण बीज का और मूर्ख का यह वर्त्तमान है, तो जो सर्वोत्तम मनुष्यशरीररूप वृक्ष के बीज को कुक्षेत्र में खोता है, वह महामूर्ख कहाता है, क्योंकि उसका फल उसको नहीं मिलता। और **'आत्मा वै जायते पुत्रः'** यह ब्राह्मणग्रन्थों [तुलना—शत० कां० १४। प्रपा० ७। ब्रा० ५। कं० २६] का वचन है—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधि जायसे।
आत्मासि पुत्र मा मृथाः स जीव शरदः शतम्॥ १॥

—यह सामवेद [के ब्राह्मण] का मन्त्र है॥

[साम० ब्रा० मन्त्रपर्व प्रपा० १। खं० ५। कं० १७ का पूर्वार्द्ध और १८ का उत्तरार्द्ध]

हे पुत्र! तू अङ्ग-अङ्ग से उत्पन्न हुए वीर्य से उत्पन्न और हृदय से उत्पन्न होता है, इसलिये तू मेरा आत्मा है, मुझ से पूर्व मत मरे, किन्तु सौ वर्ष तक जी। जिससे ऐसे-ऐसे महात्मा महाशयों का शरीर उत्पन्न होता है, उसको वेश्यादि दुष्टक्षेत्र में बोना, वा दुष्टबीज अच्छे क्षेत्र में बुवाना, महापाप का काम है।

प्रश्न—विवाह क्यों करना? क्योंकि इससे स्त्री और पुरुष को बन्धन में पड़के बहुत संकोच करना और दुःख भोगना पड़ता है, इसलिये जिसके साथ जिसकी प्रीति हो तब तक वे मिले रहैं, जब प्रीति छूट जाय तो छोड़ देवें।

उत्तर—यह पशु-पक्षियों का व्यवहार है, मनुष्यों का नहीं। जो मनुष्यों में विवाह का नियम न रहै, तो गृहाश्रम के अच्छे व्यवहार सब नष्ट-भ्रष्ट हो जायें। कोई किसी से भय वा लज्जा न करे। वृद्धावस्था में कोई किसी की सेवा भी नहीं करे और महाव्यभिचार बढ़कर सब रोगी, निर्बल और अल्पायु होकर शीघ्र-शीघ्र मर जायें। कोई किसी के पदार्थ

का स्वामी वा दायभागी न हो सके और न किसी का किसी पदार्थ पर दीर्घकाल-पर्यन्त स्वत्व रहे। इत्यादि दोषों के निवारणार्थ विवाह अवश्य होना चाहिये।

प्रश्न—जब एक विवाह होगा, एक पुरुष को एक स्त्री और एक स्त्री का एक पुरुष रहेगा, तब स्त्री गर्भवती होवे, स्थिररोगिणी अथवा पुरुष दीर्घरोगी हो और दोनों की युवावस्था हो; उनसे न रहा जाय, तो फिर क्या करें?

उत्तर—इसका प्रत्युत्तर नियोग विषय में दे चुके हैं। और जब गर्भवती स्त्री से एक वर्ष पर्यन्त समागम न करने के समय में पुरुष से न रहा जाय, तो किसी विधवा से नियोग कर, उसके लिये पुत्रोत्पत्ति कर दें, परन्तु वेश्यागमन वा व्यभिचार कभी न करें।

जहाँ तक हो सके वहाँ तक, अप्राप्त वस्तु की इच्छा, प्राप्त का रक्षण और रक्षित की वृद्धि और बढ़े हुए धन का व्यय देशोपकार में किया करें। सब प्रकार के, अर्थात् पूर्वोक्त रीति से अपने-अपने वर्णाश्रम के व्यवहारों को अत्युत्साह, प्रयत्न, तन, मन, धन से किया करें। अपने माता, पिता, सासु, श्वशुर की अत्यन्त शुश्रूषा किया करें। मित्र, पड़ोसी, राजा, विद्वान्, वैद्य और सत्पुरुषों से प्रीति रखे। और दुष्टों से उपेक्षा रखके, उनके सुधारने में प्रयत्न किया करें। जहां तक बने, वहां तक, प्रेम से अपने सन्तानों के विद्वान् और सुशिक्षा करने-कराने में धनादि को लगावें। धर्म से सब व्यवहार करके मोक्ष का साधन भी किया करें कि जिसकी प्राप्ति से परमानन्द होवे। ऐसे श्लोकों को न मानें—

पतितोऽपि द्विजः श्रेष्ठो न च शूद्रो जितेन्द्रियः।
निर्दुग्धा चापि गौः पूज्या न च दुग्धवती खरी॥ १॥

[तुलना—भाषा पाराशरी अ० ८। श्लो० ३३ पराशरस्मृति अ० ८। श्लो० ३२]

अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैत्रिकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥ २॥

[तुलना—पारस्कर गृ० सू० कां० १। कं० ३ के गदाधर भाष्य में उद्धृत श्लोक से]

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥ ३॥

[भाषा पाराशरी अ० ४। श्लो० ३०]

—ये कपोलकल्पित पाराशरी के श्लोक हैं।

जो दुष्ट कर्मकारी द्विज को श्रेष्ठ, और श्रेष्ठ कर्मकारी शूद्र को नीच मानें तो इससे परे पक्षपात, अन्याय, अधर्म दूसरा अधिक कौनसा होगा! क्या दूध देने वाली वा न देने वाली गाय गोपालों को पालनीय होती है, वैसे कुम्हार आदि को गधही पालनीय नहीं होती? और यह दृष्टान्त भी विषम है, क्योंकि द्विज और शूद्र मनुष्य जाति, गाय और गधही भिन्न जाति हैं। कथञ्चित् पशु जाति से दृष्टान्त का एकदेश दार्ष्टान्त में मिल भी जावे, तो भी इसका आशय अयुक्त होने से यह श्लोक विद्वानों के माननीय कभी नहीं हो सकता॥ १॥

जब अश्वालम्भ अर्थात् घोड़े को मारके अथवा गाय को मार के होम करना वेदविहित नहीं है, तो उसका कलियुग में निषेध करना वेदविरुद्ध क्यों नहीं? जो कलियुग में इस नीच कर्म का निषेध माना जाय, तो त्रेता आदि में विधि आ जाय। तो इससे ऐसे दुष्ट काम का श्रेष्ठ युग में होना सर्वथा असंभव है और संन्यास का वेदादि में विधि है, उसका निषेध करना निर्मूल है। जब मांस का निषेध है तो सर्वदा ही निषेध है। जब देवर से पुत्रोत्पत्ति करनी वेदों में लिखी है तो यह श्लोककर्ता क्यों भूंषता है?॥ २॥

यदि (नष्टे) अर्थात् पति किसी देश-देशान्तर को चला गया हो, घर में स्त्री नियोग कर लेवे, उसी समय विवाहित पति आ जाय, तो वह किसकी स्त्री हो? कोई कहे कि विवाहित पति की। हमने माना, परन्तु ऐसी व्यवस्था पाराशरी में तो नहीं लिखी। क्या स्त्री के पांच ही आपत्समय हैं? रोगी पड़ा हो, लड़ाई हो गई हो, इत्यादि आपत्काल पाँच से भी अधिक हैं इसलिये ऐसे-ऐसे श्लोकों को कभी न मानना चाहिये॥ ३॥

प्रश्न—क्योंजी! तुम पराशर मुनि के वचन को भी नहीं मानते?

उत्तर—चाहे किसी का वचन हो, परन्तु वेद के विरुद्ध होने से नहीं मानते। और यह पराशर का वचन भी नहीं है। क्योंकि जैसे

'ब्रह्मोवाच, वसिष्ठ उवाच, राम उवाच, शिव उवाच, देव्युवाच' इत्यादि श्रेष्ठों का नाम लिख के, ग्रन्थरचना इसलिये करते हैं कि सर्वमान्य के नाम से इन ग्रन्थों को सब संसार मान लेवे और हमारी पुष्कल जीविका होवे। कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़के मनुस्मृति ही वेदानुकूल है, अन्य स्मृति नहीं। ऐसे ही अन्य जालग्रन्थों की भी व्यस्था समझ लो।

प्रश्न—गृहाश्रम सबसे छोटा, वा बड़ा है?

उत्तर—अपने कर्म में सब बड़े हैं। परन्तु—

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥ १॥

—मनु० [६।९०]

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः॥ २॥
यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्य्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥ ३॥
स संधार्य्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः॥ ४॥

—मनु० [३।७७-७९]

अर्थ—जैसे नदी और बड़े-बड़े नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं, जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं, विना इस आश्रम के किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता॥ १॥

[जैसे वायु के आश्रय से सब जीवों का वर्त्तमान सिद्ध होता है, वैसे ही गृहस्थ के आश्रय से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी, अर्थात् सब आश्रमों का निर्वाह होता है॥ २॥]

जिससे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमों को दान और अन्नादि देके प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है, इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है, अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है [॥ ३॥]

इसलिये जो अक्षय मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता हो,

वह प्रयत्न से गृहाश्रम का धारण करे, जो गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरु और निर्बल पुरुषों से धारण करने अयोग्य है, उसको अच्छे प्रकार धारण करे॥ ४॥

इसलिए जितना कुछ व्यवहार संसार में है उसका आधार गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता, तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहाँ से हो सकते? जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है, वही निन्दनीय है, और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है। परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है कि जब स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों। इसलिए गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है।

यह संक्षेप से समावर्त्तन, विवाह और गृहाश्रम के विषय में शिक्षा लिख दी। इसके आगे वानप्रस्थ और संन्यास के विषय में लिखा जाएगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते समावर्त्तनविवाहगृहाश्रमविषये चतुर्थः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ४॥

अथ पञ्चमसमुल्लासारम्भः

अथ वानप्रस्थसंन्यासविधिं वक्ष्यामः

ब्रह्मचर्य्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्॥ —शत० कां० १४॥

[तुलना—जाबालोपनिषद् खण्ड ४]

मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्य्याश्रम समाप्त करके गृहस्थ, गृहस्थ होकर वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होके संन्यासी होवें, अर्थात् यह अनुक्रम से आश्रम का विधान है।

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः॥ १॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्॥ २॥
संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निःक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा॥ ३॥
अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः॥ ४॥
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम्॥ ५॥

—मनु० [६।१-५]

इस प्रकार स्नातक अर्थात् ब्रह्मचर्य्यपूर्वक गृहाश्रम का कर्त्ता द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गृहाश्रम में ठहर कर निश्चितात्मा और यथावत् इन्द्रियों को जीत के वन में वसे॥ १॥

परन्तु जब गृहस्थ शिर के श्वेत केश और त्वाचा ढीली हो जाय, और लड़के का लड़का भी होवे, तब वन में वसे॥ २॥

ग्राम के आहार, वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़, पुत्रों के

पास स्त्री को रख, वा अपने साथ लेके वन में निवसे॥ ३॥

साङ्गोपाङ्ग अग्निहोत्र को लेके ग्राम से निकल, दृढ़ेन्द्रिय होकर, अरण्य में जाके वसे॥ ४॥

नाना प्रकार के सामा आदि अन्न, सुन्दर शाक, मूल, फल, कन्दादि से पूर्वोक्त पञ्चमहायज्ञों को करे और उसी से अतिथिसेवा और आप भी निर्वाह करे॥ ५॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः॥ १॥
अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः॥ २॥ —मनु० [६।८, २६]

स्वाध्याय अर्थात् पढ़ने-पढ़ाने में नित्ययुक्त, जितात्मा, सबका मित्र, इन्द्रियों का दमनशील, विद्यादि का दान देनेहारा और सबपर दयालु, किसी से कुछ भी पदार्थ न लेवे, इस प्रकार सदा वर्त्तमान करे॥ १॥

शरीर के सुख के लिये अति प्रयत्न न करे किन्तु ब्रह्मचारी रहे अर्थात् अपनी स्त्री साथ हो तथापि उससे विषयचेष्टा कुछ न करे, भूमि में सोवे, अपने आश्रित वा स्वकीय पदार्थों में ममता न करे, वृक्ष के मूल में वसे॥ २॥

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये,
शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्य्यां चरन्तः।
सूर्य्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति,
यत्राऽमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥ १॥

—मुण्ड० १। खं० २। मं० ११

जो शान्त, विद्वान् लोग वन में तप, धर्म्मानुष्ठान और सत्य की श्रद्धा करके भिक्षाचरण करते हुए जङ्गल में वसते हैं, जहाँ नाशरहित पूर्ण पुरुष हानि-लाभ रहित परमात्मा है, वहाँ वे निर्मल होकर प्राणद्वार से उस परमात्मा को प्राप्त होके आनन्दित हो जाते हैं॥ १॥

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि।
व्रतञ्च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम्॥ १॥

—यजुर्वेदे॥ अध्याये २०। मं० २४॥

वानप्रस्थ को उचित है कि—मैं अग्नि में होम करके दीक्षित होकर व्रत, सत्याचरण और श्रद्धा को प्राप्त होऊं—ऐसी इच्छा करके वानप्रस्थ होवे, नाना प्रकार की तपश्चर्या, सत्सङ्ग, योगाभ्यास और सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करे। पश्चात् जब संन्यास के ग्रहण की इच्छा हो तब स्त्री को पुत्रों के पास भेज देवे, फिर संन्यास ग्रहण करे॥ १॥

इति संक्षेपेण वानप्रस्थविधिः

अथ संन्यासविधिः

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत्॥ १॥

—मनु० [६।३३]

इस प्रकार वनों में आयु का तीसरा भाग अर्थात् पचासवें वर्ष से पचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ होके, आयु के चौथे भाग में सङ्गों को छोड़ के परिव्राट् अर्थात् संन्यासी हो जावे।

प्रश्न—गृहाश्रम और वानप्रस्थाश्रम न करके, संन्यासाश्रम करे, उसको पाप होता है, वा नहीं?

उत्तर—होता है, और नहीं भी होता।

प्रश्न—यह दो प्रकार की बात क्यों कहते हो?

उत्तर—दो प्रकार की नहीं। क्योंकि जो बाल्यावस्था में विरक्त होकर विषयों में फसे वह महापापी, और जो न फसे वह महापुण्यात्मा सत्पुरुष है।

यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्॥ –ये ब्राह्मणग्रन्थ के वचन हैं।

[तुलना—अथर्ववेदीयजाबालोपनिषत् खं० ४]

जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो, उसी दिन घर वा वन से संन्यास ग्रहण कर लेवे। पहिला पक्ष क्रमसंन्यास का कहा। और [यह द्वितीय पक्ष] इसमें विकल्प अर्थात् वानप्रस्थ न करे, गृहस्थाश्रम ही से संन्यास ग्रहण करे और तृतीय पक्ष यह है कि जो पूर्ण विद्वान्, जितेन्द्रिय, विषय-भोग की कामना से रहित, परोपकार करने की इच्छा से युक्त पुरुष हो, वह

ब्रह्मचर्याश्रम ही से संन्यास लेवे।

और वेदों में भी—

यतयः [ऋ० ८।६।१८]

ब्राह्मणस्य [ऋ० १०।१०९।४]

विजानतः [यजुः० ४०।७]

इत्यादि पदों से संन्यास का विधान है, परन्तु—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥

—कठ० वल्ली २। मं० २३

जो दुराचार से पृथक् नहीं, जिसको शान्ति नहीं, जिसका आत्मा योगी नहीं, और जिसका मन शान्त नहीं है, वह संन्यास लेके भी प्रज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता। इससे—

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेद् ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि॥

—कठ० वल्ली ३। मं० १३॥

संन्यासी बुद्धिमान् वाणी और मन को अधर्म से रोके, उनको ज्ञान और आत्मा में लगावें, और उस ज्ञान स्वात्मा को परमात्मा में लगावें और उस विज्ञान को शान्तस्वरूप आत्मा में स्थिर करे।

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥ —मुण्ड० [१] खंड २। मं० १२॥

सब लौकिक भोगों को कर्म से संचित हुए देखकर ब्राह्मण अर्थात् संन्यासी वैराग्य को प्राप्त होवे। क्योंकि 'अकृत' अर्थात् न किया हुआ परमात्मा, 'कृत' अर्थात् केवल कर्म से प्राप्त नहीं होता, इसलिये कुछ अर्पण के अर्थ हाथ में लेके वेदवित् और परमेश्वर को जानने वाले उस गुरु के पास विज्ञान के लिये जावे, जाके सब सन्देहों की निवृत्ति करे। परन्तु सदा इनका संग छोड़ देवे कि—

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥ १॥

अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥ २॥

—मुण्ड० [१] खण्ड २। मं० ८-९॥

जो अविद्या के भीतर खेल रहे हैं अपने को धीर और पंडित मानते और नीच गति को जानेहारे जैसे अंधे के पीछे अन्धे दुर्दशा को प्राप्त होते हैं, इससे मूढ दुःखों को प्राप्त होते हैं॥ १॥

जो बहुधा अविद्या में रमण करने वाले बाल बुद्धि "हम कृतार्थ हैं" वैसे मानते हैं, जिनको केवल कर्मकाण्डी-लोग राग से मोहित होकर नहीं जान और जना सकते, वे आतुर होके जन्ममरणरूप दुःख में गिरे रहते हैं॥ २॥ इसलिये—

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः, संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले, परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे॥

—मुण्ड० ३ खण्ड २। मं० ६॥

जो वेदान्त अर्थात् परमेश्वर प्रतिपादक वेदमन्त्रों के अर्थज्ञान और आचार में अच्छे प्रकार निश्चित संन्यासयोग से शुद्धान्तःकरण संन्यासी होते हैं, वे परमेश्वर में मुक्ति-सुख को प्राप्त हो, भोग के पश्चात् जब मुक्ति में सुख की अवधि पूरी हो जाती है, तब वहाँ से छूट कर संसार में आते हैं। मुक्ति के विना दुःख का नाश नहीं होता। क्योंकि—

न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः॥ —छान्दो० [प्रपा० ८। खं० १२। प्रवाक १]

जो देहधारी है, वह सुख-दुःख की प्राप्ति से पृथक् कभी नहीं रह सकता और जो शरीररहित जीवात्मा मुक्ति में सर्वव्यापक परमेश्वर के साथ, शुद्ध होकर रहता है, तब उसको सांसारिक सुख-दुःख प्राप्त नहीं होता। इसलिये—

लोकैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च पुत्रैषणायाश्चोत्थायाथ भैक्षचर्यं चरन्ति॥ [तुलना]—शत० कां० १४ [प्रपा० ५। ब्रा० २। कं० १]॥

लोक में प्रतिष्ठा वा लाभ, धन से भोग वा मान्य, पुत्रादि के मोह से अलग होके, संन्यासी लोग भिक्षुक होकर रात-दिन मोक्ष के साधनों में

तत्पर रहते हैं।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं हुत्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेत्॥ १॥

—यजुर्वेदब्राह्मणे [न्याय सू० ४।१।६२ पर वात्स्यायन भाष्य]

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्॥ २॥
यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः॥ ३॥

—मनु० [६।३८-३९]

प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति के अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके उसमें यज्ञोपवीत शिखादि चिह्नों को छोड़, आहवनीयादि पांच अग्नियों को प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पांच प्राणों में आरोपण करके ब्राह्मण ब्रह्मवित् घर से निकल कर संन्यासी हो जावे॥ १-२॥

जो सब भूत=प्राणिमात्र को अभयदान देकर घर से निकल के संन्यासी होता है, उस ब्रह्मवादी अर्थात् परमेश्वरप्रकाशित वेदोक्त धर्मादि विद्याओं के उपदेश करनेवाले संन्यासी के लिये प्रकाशमय अर्थात् मुक्ति का आनन्दस्वरूप लोक प्राप्त होता है॥ ३॥

प्रश्न—संन्यासियों का क्या धर्म है?

उत्तर—धर्म तो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग, वेदोक्त ईश्वर की आज्ञापालन, परोपकार, सत्यभाषणादि-लक्षण सब आश्रमियों का अर्थात् सब मनुष्यमात्र का एक ही है, परन्तु संन्यासी का विशेष धर्म यह है कि—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥ १॥
क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत्।
सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत्॥ २॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह॥ ३॥
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान्।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन्॥ ४॥

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते॥ ५॥
दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम्॥ ६॥
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम्।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति॥ ७॥
प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः॥ ८॥
दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥ ९॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥ १०॥
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः।
ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः॥ ११॥
अहिंसयेन्द्रियासङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्म्मभिः।
तपसश्चरणैश्चोग्रैस्साधयन्तीह तत्पदम्॥ १२॥
यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम्॥ १३॥
चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः॥ १४॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ १५॥
अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा सङ्गाञ्छनैः शनैः।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते॥ १६॥

—मनु० अ० ६। [श्लोक ४६, ४८, ४९, ५२, ६०, ६६, ६७, ७०-७३, ७५, ८०, ९१, ९२, ८१]

जब संन्यासी मार्ग में चले, तब इधर-उधर न देख कर, नीचे पृथिवी पर दृष्टि रख के चले। सदा वस्त्र से छान के जल पिये, निरन्तर सत्य ही बोले, सर्वदा मन से विचार के सत्य का ग्रहण कर असत्य को छोड़ देवे॥ १॥

जब कहीं उपदेश वा संवादादि में कोई संन्यासी पर क्रोध करे अथवा निन्दा करे, उस पर कभी क्रोध न करे किन्तु सदा उसके कल्याण का उपदेश करे। मुख के दो नासिका के, दो आंख के और दो कान के छिद्रों में बिखरी हुई वाणी को, किसी कारण से मिथ्या कभी न बोले॥ २॥

अपने आत्मा और परमात्मा में स्थिर, अपेक्षारहित, मद्यमांसादि वर्जित होकर, आत्मा ही के सहाय से सुखार्थी होकर, इस संसार में धर्म और विद्या के बढ़ाने में उपदेश के लिये सदा विचरता रहे॥ ३॥

केश, नख, डाढ़ी, मूंछ को छेदन करवावे, सुन्दर पात्र, दण्ड और कुसुम्भ आदि से रंगे हुए वस्त्रों को ग्रहण करके निश्चितात्मा, सब भूतों को पीड़ा न देकर सर्वत्र विचरे॥ ४॥

इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक, राग-द्वेष को छोड़, सब प्राणियों से निर्वैर वर्त्तकर, मोक्ष के लिये सामर्थ्य बढ़ाया करे॥ ५॥

कोई संसार में उसको दूषित वा भूषित करे तो भी जिस किसी आश्रम में वर्त्तता हुआ पुरुष अर्थात् संन्यासी सब प्राणियों में पक्षपातरहित होकर, स्वयं धर्मात्मा और अन्यों को धर्मात्मा करने में प्रयत्न किया करे और यह अपने मन में निश्चित जाने कि दण्ड, कमण्डलु और काषायवस्त्र आदि चिह्न धारण धर्म का कारण नहीं है, सब मनुष्यादि प्राणियों की सत्योपदेश और विद्यादान से उन्नति करना संन्यासी का मुख्य कर्म है॥ ६॥

क्योंकि—यद्यपि निर्मली वृक्ष का फल पीसके गदरे जल में डालने से जल का शोधक होता है, तदपि विना डाले उसके नामकथन वा श्रवणमात्र से उसका जल शुद्ध नहीं होता॥ ७॥

इसलिये ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवित् संन्यासी को उचित है कि ओङ्कारपूर्वक सप्तव्याहृतियों से विधिपूर्वक प्राणायाम जितनी शक्ति हो, उतने करे, परन्तु तीन से न्यून कभी न करे, यही संन्यासी का परमतप है॥ ८॥

क्योंकि—जैसे अग्नि में तपाने और गलाने से धातु के मल नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही प्राण के निग्रह से मन आदि इन्द्रियों के दोष भस्मीभूत हो जाते हैं॥ ९॥

इसलिये संन्यासी लोग नित्यप्रति प्राणायामों से आत्मा, अन्त:करण और इन्द्रियों के दोष; धारणाओं से पाप; प्रत्याहार से संगदोष; ध्यान से

अनीश्वर के गुणों को अर्थात् हर्ष, शोक और अविद्यादि जीव के दोषों को भस्मीभूत करें॥ १०॥

इसी ध्यानयोग से जो अयोगी अविद्वानों के दु:ख से जानने योग्य, छोटे-बड़े पदार्थों में परमात्मा की व्याप्ति को और अपने आत्मा और अन्तर्यामी परमेश्वर की गति को देखे॥ ११॥

सब भूतों से निर्वैर, इन्द्रियों के दुष्ट विषयों का त्याग, वेदोक्त कर्म और अत्युग्रतपश्चरण से इस संसार में मोक्षपद को पूर्वोक्त संन्यासी ही सिद्ध कर और करा सकते हैं, अन्य कोई नहीं॥ १२॥

जब संन्यासी सब भावों में अर्थात् पदार्थों में नि:स्पृह कांक्षारहित और सब बाहर-भीतर के व्यवहारों में भाव से पवित्र होता है, तभी इस देह में और मरण पाके निरन्तर सुख को प्राप्त होता है॥ १३॥

इसलिये ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासियों को योग्य है कि प्रयत्न से दशलक्षणयुक्त निम्नलिखित धर्म का सेवन नित्य करें॥ १४॥

एक—(धृति) अर्थात् सदा धैर्य रखना। दूसरा—(क्षमा) जोकि निन्दा-स्तुति, मानाऽपमान, हानि-लाभ, आदि दु:खों में भी सहनशील रहना। तीसरा—(दम) मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर, अधर्म से रोक देना अर्थात् अधर्म करने की इच्छा भी न उठे। चौथा—(अस्तेय) चोरीत्याग अर्थात् विना आज्ञा वा छल, कपट, विश्वासघात वा किसी व्यवहार तथा वेदविरुद्ध उपदेश से परपदार्थ का ग्रहण करना 'चोरी' और इसको छोड़ देना 'साहूकारी' कहाती है। पांचवां—(शौच) रागद्वेष पक्षपात छोड़ के भीतर, और जल मृत्तिका मार्जन आदि से बाहर की पवित्रता रखनी। छठा—(इन्द्रियनिग्रह) अर्थात् अधर्माचरणों से रोक के, इन्द्रियों को धर्म ही में सदा चलाना। सातवाँ—(धी:) मादकद्रव्य बुद्धिनाशक अन्य-पदार्थ, दुष्टों का संग, आलस्य, प्रमाद आदि को छोड़ के, श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन, सत्पुरुषों का संग, योगाभ्यास, धर्माचरण, ब्रह्मचर्य आदि शुभकर्मों से बुद्धि का बढ़ाना। आठवाँ—(विद्या) पृथिवी से लेके परमेश्वर-पर्यन्त यथार्थज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना, इससे विपरीत अविद्या है। नववाँ—(सत्य) जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वाणी [में], जैसा वाणी में वैसा कर्म में

वर्त्तना सत्य, जैसा जो पदार्थ हो उसको वैसा ही समझना, बोलना, करना। तथा दशवां—(अक्रोध) क्रोधादि दोषों को छोड़के शान्त्यादि, गुण ग्रहण करना, दशवां लक्षण धर्म का है। इस दशलक्षणयुक्त पक्षपातरहित न्यायाचरण धर्म का सेवन चारों आश्रम वाले करें और इसी वेदोक्त धर्म ही में आप चलना संन्यासियों का और दूसरों को समझा कर चलाना विशेष धर्म है॥ १५॥

इसी प्रकार से धीरे-धीरे सब संगदोषों को छोड़, हर्ष-शोकादि सब द्वन्द्वों से विमुक्त होकर, संन्यासी ब्रह्म ही में अवस्थित होता है॥ १६॥

संन्यासियों का मुख्य कर्म यही है कि गृहस्थादि आश्रमों को सब प्रकार के व्यवहारों का सत्य निश्चय करा, अधर्म व्यवहारों से छुड़ा, सब संशयों का छेदन कर, सत्यधर्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त कराया करें॥

प्रश्न—संन्यासग्रहण करना ब्राह्मण ही का धर्म है, वा क्षत्रियादि का भी?

उत्तर—ब्राह्मण ही को अधिकार है। क्योंकि जो सब वर्णों में पूर्ण विद्वान्, धार्मिक, परोपकारप्रिय मनुष्य है, उसी का 'ब्राह्मण' नाम है। विना पूर्णविद्या, धर्म, परमेश्वर की निष्ठा और वैराग्य के संन्यास-ग्रहण करने में संसार का विशेष उपकार नहीं हो सकता। इसीलिये लोकश्रुति है कि ब्राह्मण को संन्यास का अधिकार है, अन्य को नहीं। यह मनु का प्रमाण भी है कि—

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः।
पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राजधर्मं निबोधत॥ —मनु० [६।९७]

यह मनुजी कहते हैं कि हे ऋषियो! यह चार प्रकार अर्थात् ब्रह्मचर्य, [गृहस्थ], वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम करना ब्राह्मण का धर्म है। यहां वर्त्तमान में पुण्यस्वरूप और शरीर छोड़े पश्चात् मुक्तिरूप अक्षय आनन्द का देने वाला संन्यास धर्म है, इसके आगे राजाओं का धर्म तुम मुझसे सुनो। इससे यह सिद्ध हुआ कि संन्यासग्रहण का अधिकार मुख्य करके ब्राह्मण का है, और क्षत्रियादि का ब्रह्मचर्याश्रम है।

प्रश्न—संन्यासग्रहण की आवश्यकता क्या है?

उत्तर—जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है, वैसे आश्रमों में

संन्यास की आवश्यकता है। क्योंकि इसके विना विद्या, धर्म कभी नहीं बढ़ सकता और दूसरे आश्रमों को विद्याग्रहण, गृहकृत्य और तपश्चर्यादि का सम्बन्ध होने से अवकाश बहुत कम मिलता है। पक्षपात छोड़कर वर्त्तना दूसरे आश्रमों को दुष्कर है। जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत् का उपकार कर सकता है, वैसा अन्य आश्रम नहीं कर सकता। क्योंकि संन्यासी को जितना अवकाश सत्यविद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति का मिलता है, उतना अन्य आश्रम को नहीं मिल सकता। परन्तु जो ब्रह्मचर्य्य से संन्यासी होकर जगत् को सत्यशिक्षा करके जितनी उन्नति कर सकता है, उतनी गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम करके संन्यासाश्रमी नहीं कर सकता।

प्रश्न—संन्यास ग्रहण करना ईश्वर के अभिप्राय से विरुद्ध है, क्योंकि ईश्वर का अभिप्राय मनुष्यों की बढ़ती करने में है। जब गृहाश्रम नहीं करेगा तो उससे सन्तान ही न होंगे। जब संन्यासाश्रम ही मुख्य है और सब मनुष्य करें तो मनुष्यों का मूलच्छेदन हो जाये।

उत्तर—अच्छा, विवाह करके भी बहुतों के सन्तान नहीं होते, अथवा होकर शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, फिर वह भी ईश्वर के अभिप्राय से विरुद्ध करने वाला हुआ। जो तुम कहो कि—

'यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः'

—यह किसी कवि का वचन है। [पञ्चतन्त्र, मित्रभेद कथा ४, श्लोक २१७]

जो यत्न करने से भी कार्य्य सिद्ध न हो तो इसमें कोई भी दोष नहीं, तो हम तुम से पूछते हैं कि गृहाश्रम से बहुत से सन्तान होकर, आपस में विरुद्धाचरण कर, लड़ मरें तो हानि कितनी बड़ी होती है? समझ के विरोध से लड़ाई बहुत होती है। जब संन्यासी एक वेदोक्तधर्म के उपदेश से परस्पर प्रीति उत्पादन करावेगा तो लाखों मनुष्यों को बचा देगा। सहस्रों गृहस्थ के तुल्य मनुष्यों की बढ़ती करेगा। सब मनुष्य संन्यासग्रहण कर ही नहीं सकते, क्योंकि सब की विषयासक्ति कभी नहीं छूट सकेगी। जो-जो संन्यासियों के उपदेश से धार्मिक मनुष्य होंगे, वे सब जानो संन्यासी के पुत्र-तुल्य हैं।

प्रश्न—संन्यासी लोग कहते हैं कि हमको कुछ कर्त्तव्य नहीं। अन्न-

वस्त्र लेकर आनन्द में रहना, अविद्यारूप संसार से माथापच्ची क्यों करना। अपने को ब्रह्म मानकर सन्तुष्ट रहना, कोई आकर पूछे तो उसको भी वैसा ही उपदेश करना कि तू भी ब्रह्म है। तुझको पाप-पुण्य नहीं लगता, क्योंकि शीतोष्ण शरीर, क्षुधा-तृषा प्राण, और सुख-दुःख मन का धर्म है। जगत् मिथ्या है और जगत् के व्यवहार भी सब कल्पित अर्थात् झूठे हैं, इसलिये इनमें फसना बुद्धिमानों का काम नहीं। जो कुछ पाप-पुण्य होता है, वह देह और इन्द्रियों का धर्म है, आत्मा का नहीं, इत्यादि उपदेश करते हैं। और आपने और ही संन्यास का धर्म कहा। अब हम किसको सच्चा मानें?

उत्तर—क्या उनको अच्छे कर्म भी कर्त्तव्य नहीं? देखो! **'वैदिकैश्चैव कर्मभिः'** मनु० [६।७५] मनुजी ने 'वैदिक कर्म' जो कि धर्मयुक्त सत्य-कर्म हैं, संन्यासियों को भी अवश्य करना लिखा है। क्या भोजन-छादनादि कर्म वे छोड़ सकेंगे? जब ये कर्म नहीं छुटते तो उत्तम कर्म छोड़ने से वे पतित नहीं होंगे? जब गृहस्थों से अन्न-वस्त्रादि लेते हैं और उनका उपकार नहीं करते तो क्या वे महापापी नहीं होंगे? जैसे आंख से देखना, कान से सुनना न हो तो आंख और कान का होना व्यर्थ है, वैसे ही जो संन्यासी सत्योपदेश और वेदादि-सत्यशास्त्रों का विचार-प्रचार नहीं करते तो वे भी जगत् में व्यर्थ भाररूप हैं। और जो अविद्यारूप संसार से माथापच्ची क्यों करना आदि लिखते और कहते हैं, वैसे उपदेश करने वाले ही मिथ्यारूप और पाप के बढ़ानेहारे पापी हैं। जो कुछ शरीरादि से कर्म्म किये जाते हैं; वे सब आत्मा ही के और उनका फल भोगने वाला भी आत्मा है। जो जीव को ब्रह्म बतलाते हैं, वे अविद्यानिद्रा में सोते हैं। क्योंकि 'जीव' अल्प, अल्पज्ञ और 'ब्रह्म' सर्वव्यापक, सर्वज्ञ है। ब्रह्म नित्य-शुद्ध-मुक्तस्वभावयुक्त है, और जीव कभी बद्ध, कभी मुक्त रहता है। ब्रह्म को सर्वव्यापक सर्वज्ञ होने से भ्रम वा अविद्या कभी नहीं होती, और जीव को कभी विद्या और कभी अविद्या होती है। ब्रह्म जन्ममरण दुःख को कभी नहीं प्राप्त होता और जीव प्राप्त होता है, इसलिये वह उनका उपदेश मिथ्या है।

प्रश्न—**''संन्यासी सर्वकर्म्मविनाशी''** और अग्नि तथा धातु को स्पर्श नहीं करते। यह बात सच्ची है वा नहीं?

उत्तर—नहीं। **''सम्यङ् नित्यमास्ते यस्मिन् यद्वा सम्यङ् न्यस्यन्ति दुःखानि कर्माणि येन स संन्यासः, स प्रशस्तो विद्यते यस्य स संन्यासी''** जो ब्रह्म और उसकी आज्ञा में उपविष्ट अर्थात् स्थित और जिससे दुष्ट-कर्मों का त्याग किया जाय, वह उत्तम स्वभाव जिसमें हो, वह **'संन्यासी'** कहाता है। इसमें सुकर्म का कर्त्ता और दुष्ट-कर्मों का विनाश करने वाला 'संन्यासी' कहाता है।

प्रश्न—अध्यापन और उपदेश गृहस्थ किया करते हैं, पुनः संन्यासी का क्या प्रयोजन है?

उत्तर—सत्योपदेश सब आश्रमी करें और सुनें, परन्तु जितना अवकाश और निष्पक्षपातता संन्यासी को होती है, उतनी गृहस्थों को नहीं। हां, जो ब्राह्मण हैं, उनका यही काम है कि पुरुष पुरुषों को और स्त्री स्त्रियों को सत्योपदेश और पढ़ाया करें। जितना भ्रमण का अवकाश संन्यासी को मिलता है, उतना गृहस्थ ब्राह्मणादिकों को कभी नहीं मिल सकता। जब ब्राह्मण वेदविरुद्ध आचरण करें तब उनका नियन्ता संन्यासी ही होता है। इसलिये संन्यास का होना उचित है।

प्रश्न—'एकरात्रिं वसेद् ग्रामे'

[तुलना—नारदपरिव्राजकोपनिषद् उपदेश ४।१४]

इत्यादि वचनों से संन्यासी को एकत्र एक रात्रिमात्र रहना; अधिक निवास न करना चाहिये।

उत्तर—यह बात थोड़े-से अंश में तो अच्छी है कि एकत्र वास करने से जगत् का उपकार अधिक नहीं हो सकता और स्थानान्तर का भी अभिमान होता है, राग-द्वेष भी अधिक होता है, परन्तु जो विशेष उपकार एकत्र रहने से होता हो तो रहे। जैसे जनक राजा के यहां चार-चार महीने तक पञ्चशिखादि और अन्य संन्यासी कितने ही वर्षों तक निवास करते थे। और 'एकत्र न रहना' यह बात आजकल के पाखण्डी सम्प्रदायियों ने बनाई है क्योंकि जो संन्यासी एकत्र अधिक रहेगा तो हमारा पाखण्ड खण्डित होकर, अधिक न बढ़ सकेगा।

प्रश्न— **यतीनां काञ्चनं दद्यात्ताम्बूलं ब्रह्मचारिणाम्।**
चौराणामभयं दद्यात्स नरो नरकं व्रजेत्॥

[तुलना—लघु पराशर स्मृति अ० १। श्लोक ५१]

इत्यादि वचनों का अभिप्राय यह है कि संन्यासियों को जो सुवर्ण दान दे तो दाता को नरक प्राप्त होवे।

उत्तर—यह बात भी वर्णाश्रमविरोधी, सम्प्रदायी और स्वार्थसिन्धु-वाले पौराणिकों की कल्पी हुई है, क्योंकि संन्यासियों को धन मिलेगा तो वे हमारा खण्डन बहुत कर सकेंगे और हमारी हानि होगी तथा वे हमारे आधीन भी न रहेंगे। और जब भिक्षादि-व्यवहार हमारे आधीन रहेगा तो डरते रहेंगे। जब मूर्ख और स्वार्थियों को दान देने में अच्छा समझते हैं तो विद्वान् और परोपकारी संन्यासियों को देने में कुछ भी दोष नहीं हो सकता। देखो—

विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्॥

—मनु० [तुलना—अ० ११। श्लोक ६]

नाना प्रकार के रत्न सुवर्णादि धन (विविक्त) अर्थात् संन्यासियों को देवे।

और वह श्लोक भी अनर्थक है। क्योंकि संन्यासी को सुवर्ण देने से यजमान नरक को जावे तो चांदी, मोती, हीरा आदि देने से स्वर्ग को जायगा।

प्रश्न—यह पण्डितजी इसका पाठ बोलते भूल गया। यह ऐसा है कि ''**यतिहस्ते धनं दद्यात्**'' अर्थात् जो संन्यासियों के हाथ में धन देता है, वह नरक में जाता है।

उत्तर—यह भी वचन अविद्वान् ने कपोलकल्पना से रचा है। क्योंकि जो हाथ में धन देने से दाता नरक को जाय, तो पग पर धरने वा गठरी बांधकर देने से स्वर्ग को जायगा। इसलिये ऐसी कल्पना मानने योग्य नहीं। हां, यह बात तो है कि जो संन्यासी योगक्षेम से अधिक रक्खेगा तो चोरादि से पीडित और मोहित भी हो जायगा। परन्तु जो विद्वान् है, वह अयुक्त व्यवहार कभी न करेगा, न मोह में फसेगा, क्योंकि वह प्रथम गृहाश्रम में अथवा ब्रह्मचर्य में सब भोग कर वा सब देख चुका है। और जो ब्रह्मचर्य से होता है, वह पूर्ण वैराग्ययुक्त होने से कभी कहीं नहीं फसता।

प्रश्न—लोग कहते हैं कि श्राद्ध में संन्यासी आवे वा जिमावे तो

उसके पितर भाग जायें और नरक में गिरें।

उत्तर—प्रथम तो मरे हुए पितरों का आना और किया हुआ श्राद्ध मरे हुए पितरों को पहुँचना ही असम्भव, वेद और युक्तिविरुद्ध होने से मिथ्या है। और जब आते ही नहीं तो भाग कौन जायेंगे? जब अपने पाप-पुण्य के अनुसार ईश्वर की व्यवस्था से मरण के पश्चात् जीव जन्म लेते हैं तो उनका आना कैसे हो सकता है? इसलिये यह भी बात पेटार्थी, पुराणी और वैरागियों की मिथ्या कल्पी हुई है। हां, यह तो ठीक है कि जहां संन्यासी जायेंगे, वहां यह मृतक-श्राद्ध करना वेदादि-शास्त्रों से विरुद्ध होने से पाखण्ड दूर भाग जायगा।

प्रश्न—जो ब्रह्मचर्य्य से संन्यास लेवेगा, उसका निर्वाह कठिनता से होगा और काम का रोकना भी अति कठिन है, इसलिये गृहाश्रम, वानप्रस्थ होकर जब वृद्ध हो जाय, तभी संन्यास लेना अच्छा है।

उत्तर—जो निर्वाह न कर सके, इन्द्रियों को न रोक सके, वह ब्रह्मचर्य्य से संन्यास न लेवे; परन्तु जो रोक सके वह क्यों न लेवे? जिस पुरुष ने विषय के दोष और वीर्यसंरक्षण के गुण जाने हैं, वह विषयासक्त कभी नहीं हो सकता, और उसका वीर्य्य विचाराग्नि का ईन्धनवत् है, अर्थात् उसी में व्यय हो जाता है। जैसे वैद्य और औषधों की आवश्यकता रोगी के लिये है, नीरोगों के लिये नहीं। वैसे जिस पुरुष वा स्त्री को विद्या, धर्मवृद्धि और सब संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो, वह विवाह न करे। जैसे पञ्चशिखादि पुरुष और गार्गी आदि स्त्रियां हुई थीं। इसलिये संन्यासी का होना अधिकारियों के लिये अच्छा है। और जो अनधिकारी संन्यास ग्रहण करेगा तो आप डूबेगा, औरों को भी डुबावेगा। जैसे 'सम्राट्' सर्वोपरि चक्रवर्ती राजा होता है, वैसे ही 'परिव्राट्' संन्यासी होता है। प्रत्युत राजा अपने देश में वा सम्बन्धियों में सत्कार पाता है, और संन्यासी सर्वत्र पूजित होता है।

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥ १॥

—यह चाणक्यशतक का श्लोक है।

विद्वान् और राजा कभी तुल्य नहीं होते। क्योंकि राजा अपने ही

देश में मान पाता है और विद्वान् सर्वत्र प्रतिष्ठा पाता है॥ १॥

इसलिये विद्या पढ़ने, सुशिक्षा लेने और बलवान् होने आदि के लिये ब्रह्मचर्य; सब प्रकार के उत्तम व्यवहार सिद्ध करने के अर्थ गृहस्थ; विचार, ध्यान और ज्ञान बढ़ाने और तपश्चर्या करने के लिये वानप्रस्थ; और वेदादि-सत्यशास्त्रों का प्रचार, धर्म-व्यवहार का ग्रहण और दुष्टव्यवहार के त्याग, सत्योपदेश और सबको नि:संदेह करने आदि के लिये संन्यास आश्रम है। परन्तु जो इस संन्यास के मुख्य-धर्म सत्योपदेशादि नहीं करते, वे पतित और नरकगामी हैं। इससे संन्यासियों को उचित है कि सदा सत्योपदेश, शङ्कासमाधान, वेदादि-सत्यशास्त्रों का अध्यापन और वेदोक्त धर्म की वृद्धि प्रयत्न से करके सब संसार की उन्नति किया करें।

प्रश्न—जो संन्यासी से अन्य साधु, वैरागी, गुसाईं आदि हैं, वे भी संन्यासाश्रम में गिने जायेंगे, वा नहीं?

उत्तर—नहीं, क्योंकि उनमें संन्यास का लक्षण नहीं। वे वेदविरुद्ध मार्ग में प्रवृत्त होकर वेद से [अधिक] अपने सम्प्रदाय के आचार्य्यों के वचन मानते और अपने ही मत की प्रशंसा करते, मिथ्या-प्रपञ्च में फसकर अपने स्वार्थ के लिये दूसरों को अपने-अपने मत में फसाते हैं। सुधार करना तो दूर रहा, उसके बदले संसार को बहका कर अधोगति को प्राप्त कराते और अपना प्रयोजन साधते हैं, इसलिये इनको संन्यासाश्रम में नहीं गिन सकते। किन्तु ये स्वार्थाश्रमी तो पक्के हैं, इसमें कुछ संदेह नहीं।

संन्यासी आप धर्म में चलें और सब संसार को चलाते रहैं, जिससे आप और सब संसार इस लोक अर्थात् इस जन्म, परलोक अर्थात् परजन्म में स्वर्ग अर्थात् सुख का भोग किया करें।

यह संन्यास की शिक्षा संक्षेप से लिखी और इसके आगे राजप्रजाधर्म लिखेंगे।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामीकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते वानप्रस्थसंन्यासाश्रमविषये पञ्चमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ५॥

अथ षष्ठसमुल्लासारम्भः

अथ राजप्रजाधर्मान् व्याख्यास्यामः

राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः।
संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा॥ १॥
ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम्॥ २॥

—मनु० [७।१-२]॥

अब मनुजी ऋषियों से कहते हैं कि चारो वर्ण और चार आश्रमों के व्यवहार-कथन के पश्चात् राजधर्मों को कहेंगे, कि जिस प्रकार का राजा होना चाहिये, और जैसे इसके होने का सम्भव और जैसे इसको परमसिद्धि प्राप्त होवे, वह प्रकार सब कहते हैं॥ १॥

कि जैसा परम विद्वान् ब्राह्मण होता है, वैसा विद्वान् सुशिक्षित होकर क्षत्रिय को योग्य है कि इस सब राज्य की रक्षा न्याय से यथावत् करे॥ २॥

कैसे कर सकता है—

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि॥

—ऋ० मं० ३। सू० ३८। मं० ६॥

ईश्वर उपदेश करता है कि (राजाना) राजा और प्रजा के पुरुष मिलके (विदथे) सुखप्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा-प्रजा के सम्बन्धरूप व्यवहार में (त्रीणि सदांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्य्यसभा, धर्मार्य्यसभा और राजार्य्यसभा नियत करके (पुरूणि) बहुत प्रकार के (विश्वानि) समग्र प्रजासम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को (परिभूषथः) सब ओर से विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।

तं सभा च समितिश्च सेना च॥ १॥

—अथर्व० कां० १५। अनु० २। व० ९। मं० २॥

सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः॥ २॥

—अथर्व० कां० १९। अनु० ७। व० ५५। मं० ६॥

(तम्) उस राजधर्म को (सभा च) तीनों सभा (समितिश्च) संग्रामादि की व्यवस्था, और (सेना च) सेना मिलकर पालन करें॥ १॥

सभासद् और राजा को योग्य है कि राजा सब सभासदों को आज्ञा दे कि—हे (सभ्य) सभा के योग्य मुख्य सभासद्! तू (मे) मेरी (सभाम्) सभा की धर्मयुक्त व्यवस्था की (पाहि) रक्षाकर, और (ये च) जो (सभ्याः) सभा के योग्य (सभासदः) सभासद् हैं, वे भी सभा की व्यवस्था का पालन किया करें॥ २॥

इसका अभिप्राय यह है कि एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए किन्तु राजा जो सभापति तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन, और प्रजा राजसभा के आधीन रहे। यदि ऐसा न करोगे तोः—

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः। विशमेव राष्ट्रायाद्यां तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यत इति॥ १॥

—शत०। का० १३। [प्रपा०] २। ब्रा० ३। [कं० ७-८]॥

जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे तो राजपुरुष (राष्ट्रमेव विश्याहन्ति) राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें। जिसलिये अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होके (राष्ट्री विशं घातुकः) प्रजा का नाशक होता है अर्थात् (विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति) वह राजा प्रजा को खाये जाता (अत्यन्त पीड़ा करता) है, इसलिये किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिए। जैसे—सिंह वा मांसाहारी पुष्ट पशु को मार कर खा लेते हैं, वैसे (राष्ट्री विशमत्ति) स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है, अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता। श्रीमान् को लूट, खूँच, अन्याय से दण्ड देके अपना प्रयोजन पूरा करेगा। इसलिए—

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्योऽभवेह॥ १॥

—अथर्व० कां० ६। अनु० १०। व० ९८। मं० १॥

हे मनुष्यो! जो (इह) इस मनुष्य के समुदाय में (इन्द्रः) परम

ऐश्वर्य का कर्त्ता, शत्रुओं को (जयाति) जीत सके (न पराजयातै) जो शत्रुओं से पराजित न हो (राजसु) राजाओं में (अधिराजः) सर्वोपरि विराजमान (राजयातै) प्रकाशमान हो (चर्कृत्यः) सभापति होने को अत्यन्त योग्य (ईड्यः) प्रशंसनीय गुणकर्मस्वभावयुक्त (वन्द्यः) सत्करणीय (चोपसद्यः) समीप जाने और शरण लेने योग्य (नमस्यः) सबका माननीय (भव) होवे, उसी को सभापति राजा करें।

इमं देवाऽअसपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय
महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय०॥ १॥

—यजुः० अ० ९। मं० ४०॥

हे (देवाः) विद्वानो! राजप्रजाजनो! तुम (इमम्) इस प्रकार के पुरुष को (महते क्षत्राय) बड़े चक्रवर्त्तिराज्य (महते ज्यैष्ठ्याय) सबसे बड़े होने (महते जानराज्याय) बड़े-बड़े विद्वानों से युक्त राज्य पालने, और (इन्द्रस्येन्द्रियाय) परम ऐश्वर्ययुक्त राज्य और धन के पालने के लिए (असपत्नꣳसुवध्वम्) सम्मति करके सर्वत्र पक्षपातरहित, पूर्णविद्या-विनययुक्त सबके मित्र सभापति राजा को सर्वाधीश मानके सब भूगोल को शत्रुरहित करो। और—

स्थिराः वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः॥ १॥

—ऋ० मं० १। सू० ३९। मं० २॥

ईश्वर उपदेश करता है कि हे राजपुरुषो! (वः) तुम्हारे (आयुधा) आग्नेयादि अस्त्र 'शतघ्नी' तोप, 'भुशुण्डी' बन्दूक, धनुष-बाण, 'असि' तलवार आदि शस्त्र; शत्रुओं के (पराणुदे) पराजय करने (उत प्रतिष्कभे) और रोकने के लिए (वीळू) प्रशंसित और (स्थिरा) दृढ़ (सन्तु) हों (युष्माकम्) और तुम्हारी (तविषी) सेना (पनीयसी) प्रशंसनीय (अस्तु) होवे कि जिससे तुम सदा विजयी होओ, परन्तु (मा मर्त्यस्य मायिनः) जो निन्दित अन्यायरूप काम करता है, उसके लिये पूर्व चीजें मत हों।

अर्थात् जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। महाविद्वानों को विद्यासभाऽधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्मसभा के अधिष्ठाता

और प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद् और सब के बीच में जो उत्तम पुरुष हो, उसको राजा सभा का पतिरूप मानके सब प्रकार से उन्नति करें। तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के आधीन सब लोग वर्तें, सब के हितकारक कामों में सम्मति करें। सर्वहित करने के लिए परतन्त्र और धर्मयुक्त कामों में जो-जो निज के काम हैं, उन-उन में स्वतन्त्र रहैं।

पुनः उस सभापति के गुण कैसे हों—

इन्द्राऽनिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः॥ १॥
तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्॥ २॥
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः॥ ३॥

— मनु० [७।४,६-७]॥

वह सभेश राजा 'इन्द्र' विद्युत् के तुल्य शीघ्र ऐश्वर्यकर्त्ता, 'वायु' के समान सब के प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जाननेहारा, 'यम' पक्षपातरहित-न्यायाधीश के समान वर्त्तनेवाला, 'सूर्य्य' के समान न्याय, धर्म, विद्या का प्रकाशक, अन्धकार अर्थात् अविद्या-अन्याय का निरोधक, 'अग्नि' के समान दुष्टों को भस्म करनेहारा, 'वरुण' अर्थात् बांधने वाले के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से बाँधने वाला 'चन्द्र' के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्ददाता, 'धनाध्यक्ष' के समान कोशों का पूर्ण करने वाला सभापति होवे॥ १॥

जो सूर्यवत् प्रतापी सबके बाह्य और भीतर मनों को अपने तेज से तपानेहारा, जिसको पृथिवी में करड़ी दृष्टि से देखने को कोई भी समर्थ न हो॥ २॥

और जो अपने प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य्य, सोम, धर्मप्रकाशक, धनवर्द्धक, दुष्टों का बन्धनकर्त्ता, बड़े ऐश्वर्यवाला होवे, वही 'सभाध्यक्ष' 'सभेश' होवे॥ ३॥

सच्चा राजा कौन है

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः॥ १॥
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः॥ २॥
समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः॥ ३॥
दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्॥ ४॥
यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति॥ ५॥
तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम्।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम्॥ ६॥
तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते॥ ७॥
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः।
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम्॥ ८॥
सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च॥ ९॥
शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता॥ १०॥

—मनु० अ० ७। [१७-१९, २४-२८, ३०-३१]॥

जो दण्ड है वही पुरुष राजा, वही न्याय का प्रचारकर्त्ता, और सबका शासनकर्त्ता, वही चार वर्ण और चार आश्रमों के धर्म का 'प्रतिभू' अर्थात् जामिन है॥ १॥

वही प्रजा का शासनकर्त्ता, सब प्रजा का रक्षक, सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है, इसीलिये बुद्धिमान् लोग दण्ड ही को 'धर्म' कहते हैं॥ २॥

जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह सब

प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो विना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है॥ ३॥

विना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न-भिन्न हो जायें। दण्ड के यथावत् न होने से सब लोगों का प्रकोप हो जावे॥ ४॥

जहाँ कृष्णवर्ण रक्तनेत्र भयङ्कर पुरुष के समान पापों का नाश करनेहारा दण्ड विचरता है, वहां प्रजा मोह को प्राप्त न होके आनन्दित होती है, परन्तु जो दण्ड का चलानेवाला पक्षपातरहित विद्वान् हो तो॥ ५॥

जो उस दण्ड का चलानेवाला सत्यवादी; विचार के करनेहारा; बुद्धिमान्; धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि करने में पण्डित राजा है; उसी को उस दण्ड का चलानेहारा विद्वान् लोग कहते हैं॥ ६॥

जो दण्ड को अच्छे प्रकार राजा चलाता है; वह धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि से बढ़ता है; और जो विषय में लम्पट, टेढ़ा, ईर्ष्या करनेहारा, क्षुद्र, नीचबुद्धि न्यायाधीश, राजा होता है; वह दण्ड से ही मारा जाता है॥ ७॥

जब दण्ड बड़ा तेजोमय है, उसको अविद्वान् अधर्मात्मा धारण नहीं कर सकता, तब वह दण्ड धर्म से रहित कुटुम्बसहित राजा ही का नाश कर देता है॥ ८॥

क्योंकि जो आप्त पुरुषों के सहाय, विद्या, सुशिक्षा से रहित, विषयों में आसक्त मूढ़ है; वह न्याय से दण्ड को चलाने में समर्थ कभी नहीं हो सकता॥ ९॥

और जो पवित्र आत्मा, सत्याचार और सत्पुरुषों का सङ्गी, यथावत् नीतिशास्त्र के अनुकूल चलनेहारा, श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय से युक्त बुद्धिमान् है, वही न्यायरूपी दण्ड को चलाने में समर्थ होता है॥ १०॥ इसलिये—

सैन्यापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥ १॥
दशावरा वा परिषद् यं धर्मं परिकल्पयेत्।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत्॥ २॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा॥ ३॥

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये॥ ४॥
एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः॥ ५॥
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते॥ ६॥
यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्मतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति॥ ७॥

—मनु० [१२।१००, ११०-११५]॥

सब सेना और सेनापतियों के ऊपर राज्याधिकार, दण्ड देने की व्यवस्था के सब कार्यों का आधिपत्य, और सबके ऊपर वर्त्तमान सर्वाधीश राजाधिकार, इन चारों अधिकारों में सम्पूर्ण वेद-शास्त्रों में प्रवीण, पूर्ण विद्यावाले, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सुशील जनों को स्थापित करना चाहिये। अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, प्रधान और राजा ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान् होने चाहियें॥ १॥

न्यून से न्यून दश विद्वानों अथवा बहुत न्यून हों तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे, उस 'धर्म' अर्थात् व्यवस्था का उल्लङ्घन कोई भी न करे॥ २॥

इस सभा में चारों वेद, न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता विद्वान् सभासद् हों परन्तु वे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हों तब वह सभा कि जिसमें दश विद्वानों से न्यून न होने चाहियें॥ ३॥

और जिस सभा में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के जानने वाले तीन सभासद् होके व्यवस्था करें, उस सभा की की हुई व्यवस्था को भी कोई उल्लङ्घन न करे॥ ४॥

यदि एक अकेला सब वेदों का जाननेहारा द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे, वही श्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों लाखों और क्रोड़ों मिलके जो कुछ व्यवस्था करें, उसको कभी न मानना चाहिये॥ ५॥

जो ब्रह्मचर्य-सत्यभाषणादि-व्रत, वेदविद्या वा विचार से रहित,

जन्ममात्र से शूद्रवत् वर्त्तमान हैं उन सहस्रों मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती॥ ६॥

अविद्यायुक्त मूर्ख, वेदों के न जानने वाले मनुष्य जिस धर्म को कहें, उसको कभी न मानना चाहिये। क्योंकि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं तो उनके पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं॥ ७॥

इसलिये तीनों अर्थात् विद्यासभा, धर्मसभा और राजसभाओं में मूर्खों को कभी भरती न करें। किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों का स्थापन करे। और सब लोग ऐसे—

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्त्तारम्भाँश्च लोकतः॥ १॥
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः॥ २॥
दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ ३॥
कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु॥ ४॥
मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥ ५॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥ ६॥
द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ॥ ७॥
पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे॥ ८॥
दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा॥ ९॥
सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद् व्यसनमात्मवान्॥ १०॥

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः॥ ११॥

—मनु० [७।४३-५३]॥

राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते हैं कि जब चारों वेदों की कर्मोपासना-ज्ञान-विद्याओं के जानने वालों से तीनों विद्या, सनातन दण्डनीति, न्यायविद्या, आत्मविद्या अर्थात् परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव-स्वरूप को यथावत् जाननेरूप ब्रह्मविद्या और लोक से वार्ताओं का आरम्भ कहना और पूछना सीखकर सभासद् वा सभापति हो सकें॥ १॥

सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों के जीतने अर्थात् अपने वश में रखके सदा धर्म में वर्तें और अधर्म से हठे-हठाये रहें। इसलिये रात-दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहें। क्योंकि जो जितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (मन, प्राण और शरीर प्रजा है, इस) को जीते विना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता॥ २॥

दृढ़ोत्साही होकर जो काम से दश और क्रोध से आठ दुष्ट व्यसन कि जिनमें फसा हुआ मनुष्य कठिनता से निकल सके, उनको प्रयत्न से छोड़ और छुड़ा देवे॥ ३॥

क्योंकि जो राजा काम से उत्पन्न हुए दश दुष्ट व्यसनों में फसता है, वह अर्थ अर्थात् राज्य, धनादि और धर्म से रहित हो जाता है। और जो क्रोध से उत्पन्न हुए आठ बुरे व्यसनों में फसता है, वह शरीर से भी रहित हो जाता है॥ ४॥

काम से उत्पन्न हुए व्यसन—मृगया करना; चौपड़ खेलना, (द्यूत) अर्थात् जुवा करना; दिन में सोना; कामकथा वा दूसरे की निन्दा किया करना; स्त्रियों का अति सङ्ग; मादकद्रव्य मद्य, अफीम, भाँग, गांजा आदि का सेवन; गाना, बजाना, नाचना, नाच करना वा करवाना वा सुनना, देखना; वृथा इधर-उधर घूमते फिरना ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं॥ ५॥

क्रोध से उत्पन्न व्यसन—'पैशुन्यम्' अर्थात् चुग़ली करना; विना

विचारे बलात्कार किसी की स्त्री से बुरा काम करना; द्रोह रखना; 'ईर्ष्या' अर्थात् दूसरे की बड़ाई वा उन्नति देख-सुन जला करना; 'असूया' दोषों में गुण, गुणों में दोषारोपण करना; 'अर्थदूषण' अर्थात् अधर्मयुक्त बुरे कामों में धनादि का व्यय करना; कठोर वचन बोलना और विना अपराध करड़ा वा अधिक दण्ड देना; ये आठ दुर्गुण क्रोध से उत्पन्न होते हैं॥ ६ ॥

जिसे सब विद्वान् लोग कामज और क्रोधजों का मूल जानते हैं कि जिससे ये सब दुर्गुण मनुष्य को प्राप्त होते हैं, उस लोभ को प्रयत्न से छोड़े॥ ७ ॥

काम व्यसनों में बड़े दुर्गुण एक मद्यादि मादक द्रव्यों का सेवन, दूसरा पासों आदि से खेलना, तीसरा स्त्रियों का विशेष सङ्ग, चौथा मृगया करना, ये चार महादुष्ट व्यसन हैं और कामजों में अत्यन्त दुःखदायक दोष हैं॥ ८ ॥

विना अपराध दण्ड का निपातन, कठोर वचन बोलना और धनादि का अन्याय में खर्च करना, ये तीन क्रोध से उत्पन्न हुए बड़े दुःखदायक दोष हैं॥ ९ ॥

जो ये सात दुर्गुण दोनों कामज और क्रोधज दोषों में से गिने हैं, इनमें से पूर्व-पूर्व अर्थात् व्यर्थ व्यय से कठोर वचन, कठोर वचन से अन्याय से दण्ड देना, इससे मृगया खेलना, इससे स्त्रियों का अत्यन्त सङ्ग, इससे जुआ अर्थात् द्यूत करना और इससे भी मद्यादि सेवन करना बड़ा भारी दुष्ट व्यसन है॥ १० ॥

इसमें यह निश्चय है कि दुष्ट व्यसन में फसने से मर जाना अच्छा है। क्योंकि जो दुष्टाचारी पुरुष है, वह अधिक जियेगा तो अधिक-अधिक पाप करके नीच-नीच गति अर्थात् अधिक-अधिक दुःख को प्राप्त होता जायगा और जो किसी व्यसन में नहीं फसा, वह मर भी जायगा तो भी सुख को प्राप्त होता है। इसलिये विशेष राजा और सब मनुष्यों को उचित है कि कभी मृगया और मद्यपानादि दुष्ट कामों में न फसें और दुष्ट व्यसनों से पृथक् होकर, धर्मयुक्त गुण-कर्म-स्वभावों में सदा वर्त्तके अच्छे-अच्छे काम किया करें॥ ११ ॥

राजसभासद् और मन्त्री कैसे होने चाहियें—

मौलान्शास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्ष्यान्कुलोद्गतान्।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्॥ १ ॥
अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।
विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम्॥ २ ॥
तैः सार्द्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम्।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च॥ ३ ॥
तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक्।
समस्तानाञ्च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः॥ ४ ॥
अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन् प्राज्ञानवस्थितान्।
सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान्सुपरीक्षितान् ॥ ५ ॥
निवर्त्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः।
तावतोऽतन्द्रितान् दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान्॥ ६ ॥
तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान् दक्षान् कुलोद्गतान्।
शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने॥ ७ ॥
दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम्॥ ८ ॥
अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित्।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते॥ ९ ॥

—मनु० ७। [५४-५७, ६०-६४]॥

स्वराज्य स्वदेश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रों के जाननेहारे, शूरवीर, जिनों का लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो, और कुलीन, अच्छे प्रकार परीक्षित, सात वा आठ उत्तम धार्मिक चतुर 'सचिवान्' अर्थात् मन्त्री करे॥ १ ॥

क्योंकि विशेषकर सहाय के विना जो सुगम कर्म है, वह भी एक के करने में कठिन हो जाता है, जब ऐसा है तो महान् राज्यकर्म एक से कैसे हो सकता है? इसलिये एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य्य का निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है॥ २ ॥

इससे सभापति को उचित है कि नित्यप्रति उन राज्यकर्मों में कुशल

विद्वान् मन्त्रियों के साथ सामान्य करके किसी से (सन्धि) मित्रता, किसी से (विग्रह) विरोध, (स्थान) स्थिति समय को देखके चुपचाप रहना, अपने राज्य की रक्षा करके बैठे रहना, (समुदयम्) जब अपना उदय अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना, (गुप्तिम्) मूल राज, सेना, कोश आदि की रक्षा, (लब्धप्रशमनानि) जो-जो देश प्राप्त हो, उस-उसमें शान्तिस्थापन उपद्रवरहित करना, इन छः गुणों का विचार नित्यप्रति किया करे॥ ३॥

विचार ऐसे करना कि उन सभासदों का पृथक्-पृथक् अपना-अपना विचार और अभिप्राय को सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों में जो कार्य अपना और अन्य का हितकारक हो, वह करने लगना॥ ४॥

अन्य भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान्, निश्चितबुद्धि, पदार्थों के संग्रह करने में अतिचतुर, सुपरीक्षित मन्त्री करे॥ ५॥

जितने मनुष्यों से राज्यकार्य्य सिद्ध होसके, उतने आलस्यरहित, बलवान् और बड़े चतुर प्रधान पुरुषों को अधिकारी अर्थात् नौकर रक्खे॥ ६॥

इनके आधीन शूरवीर, बलवान्, कुलोत्पन्न, पवित्र भृत्यों को बड़े-बड़े कर्मों में नियुक्त करे और भीरु डरपुकनों को भीतर के कर्मों में नियुक्त करे॥ ७॥

प्रशंसित कुल में उत्पन्न, चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय, और भविष्यत् में होने वाली बात को जाननेहारा, सब शास्त्रों में विशारद चतुर दूत को भी रक्खे॥ ८॥

वह ऐसा हो—राजकाम में अत्यन्त उत्साह-प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पवित्रात्मा, चतुर, बहुत समय की बात को भी न भूलने वाला, देश और कालानुकूल वर्त्तमान का कर्त्ता, सुन्दररूपयुक्त, निर्भय और बड़ा वक्ता हो, वही राजा का 'दूत' होने में प्रशस्त है॥ ९॥

किस-किस को क्या-क्या अधिकार देना योग्य है—

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ॥ १॥

दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान्।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन मानवाः॥ २॥
बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम्।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत्॥ ३॥
धनुर्दुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्॥ ४॥
एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः।
शतं दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं विधीयते॥ ५॥
तत्स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च॥ ६॥
तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद् गृहमात्मनः।
गुप्तं सर्वर्त्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम्॥ ७॥
तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।
कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम्॥ ८॥
पुरोहितं प्रकुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम्।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्य्युर्वैतानिकानि च॥ ९॥

—मनु० [७।६५-६६, ६८, ७०, ७४-७८]॥

अमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में विनय-क्रिया अर्थात् जिससे अन्यायरूप दण्ड न होने पावे, राजा के आधीन कोश और राजकार्य्य तथा सभा के आधीन सब कार्य्य और दूत के आधीन किसी से मेल वा विरोध करना अधिकार देवे॥ १॥

दूत उसको कहते हैं जो फूट में मेल और मिले हुए दुष्टों को फोड़-तोड़ देवे। दूत वह कर्म करे जिससे शत्रुओं में फूट पड़े॥ २॥

वह सभापति और सब सभासद् वा दूत आदि यथार्थ से दूसरे विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जानके वैसा प्रयत्न करें कि जिससे अपने को पीडा न हो॥ ३॥

इसकेलिये सुन्दर जङ्गल धन-धान्ययुक्त देश में (धनुर्दुर्गम्) धनुर्धारी पुरुषों से गहन (महीदुर्गम्) मट्टी से किया हुआ (अब्दुर्गम्) जल से घेरा हुआ (वार्क्षम्) अर्थात् चारों ओर वन (नृदुर्गम्) चारों ओर सेना

रहे (गिरिदुर्गम्) अर्थात् चारों ओर पहाड़ों के बीच में कोट बनाके इसके मध्य में नगर बनावे॥४॥

और नगर के चारों ओर (प्राकार) प्रकोट बनावे, क्योंकि उसमें स्थित हुआ एक वीर धनुर्धारी शस्त्रयुक्त पुरुष सौ के साथ, और सौ दश हजार के साथ युद्ध कर सकते हैं, इसलिये दुर्ग का बनाना उत्तम है॥५॥

वह दुर्ग शस्त्रास्त्र, धन, धान्य, वाहन, ब्राह्मण जो पढ़ानेहारे उपदेशक हों (शिल्पी) कारीगर, यन्त्र, नाना प्रकार की कला, (यवसेन) चारा घास और जल आदि से सम्पन्न अर्थात् परिपूर्ण हो॥६॥

उसके मध्य में जल वृक्ष पुष्पादियुक्त, सब प्रकार से रक्षित, सब ऋतुओं में सुखकारक, श्वेतवर्ण अपने लिये घर जिसमें सब राजकार्य्य का निर्वाह हो, वैसा बनवावे॥७॥

इतना अर्थात् ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़के, यहाँ तक राजकाम करके, रूप गुण सौन्दर्य युक्त, हृदय को प्रिय, बड़े उत्तम कुल में उत्पन्न, सुन्दर लक्षणयुक्त, अपने क्षत्रियकुल की कन्या जोकि अपने सदृश विद्यादि गुण-कर्म-स्वभाव में हो, उस एक ही स्त्री से विवाह करे। दूसरी सब स्त्रियों को अगम्य समझ कर दृष्टि से भी न देखे॥८॥

पुरोहित और ऋत्विज् का स्वीकार इसलिये करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब राजघर के कर्म किया करें, और आप सर्वदा राजकार्य में रहे अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है, जो रात-दिन राजकार्य्य में प्रवृत्त रहना और कोई राजकाम बिगड़ने न देना॥९॥

साँवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद् बलिम्।
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्त्तेत पितृवन्नृषु॥१॥
अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात् तत्र तत्र विपश्चितः।
तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन् नृणां कार्याणि कुर्वताम्॥२॥
आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत्।
नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मो विधीयते॥३॥
समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः।
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन्॥४॥

आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः॥५॥
न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम्।
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम्॥६॥
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम्॥७॥
नायुधव्यसनं प्राप्तं नार्त्तं नातिपरिक्षतम्।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन्॥८॥
यस्तु भीतः परावृत्तः सङ्ग्रामे हन्यते परैः।
भर्त्तुर्यद्दुष्कृतं किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते॥९॥
यच्चास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपार्जितम्।
भर्त्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु॥१०॥
रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून्स्त्रियः।
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत्॥११॥
राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः।
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम्॥१२॥

—मनु० [७।८०-८२, ८७, ८९, ९१-९७]

प्रजा से वार्षिक कर आप्तपुरुषों के द्वारा ग्रहण करे और जो सभापतिरूप राजा आदि प्रधान पुरुष हैं वे सब, सभा वेदानुकूल होकर, प्रजा के साथ पिता के समान वर्तें॥१॥

उस राज्यकार्य्य में विविध प्रकार के विद्वान् अध्यक्षों को सभा नियत करे। इनका यही काम है कि जितने-जितने जिस-जिस काम में राजपुरुष हों, वे नियमानुसार वर्त्त कर, यथावत् काम करते हैं वा नहीं; जो यथावत् करें तो उनका सत्कार और जो विरुद्ध करें तो उनको यथावत् दण्ड किया करें॥२॥

सदा जो राजाओं का वेदप्रचाररूप अक्षय-कोश है, इसके प्रचार के लिये जो कोई यथावत् ब्रह्मचर्य से वेदादि शास्त्रों को पढ़कर गुरुकुल से आवें, उसका सत्कार राजसभा यथावत् करें, और उनका भी जिनके पढ़ाये हुए विद्वान् होवें॥३॥

इस बात के करने से राज्य में विद्या की उन्नति होकर अत्यन्त उन्नति होती है॥

जब कभी प्रजा का पालन करने वाले राजा को कोई अपने से छोटा, तुल्य और उत्तम संग्राम में आह्वान करे तो क्षत्रियों के धर्म का स्मरण करके, संग्राम से कभी निवृत्त न हो। अर्थात् बड़ी चतुराई के साथ उनसे युद्ध करे, जिससे अपना विजय हो॥४॥

जब संग्रामों में एक दूसरे को हनन करने की इच्छा करते हुए राजा लोग; जितना अपना सामर्थ्य हो विना डर, पीठ न दिखा, युद्ध करते हैं, वे सुख को प्राप्त होते हैं, इससे विमुख कभी न हो, किन्तु कभी-कभी शत्रु को जीतने के लिये उनके सामने से छिप जाना उचित है, क्योंकि जिस प्रकार से शत्रु को जीत सके, वैसे काम करें, जैसा सिंह क्रोध से सामने आकर शस्त्राग्नि में शीघ्र भस्म हो जाता है, वैसे मूर्खता से नष्ट-भ्रष्ट न हो जावें॥५॥

युद्ध समय में न इधर-उधर खड़े, न नपुंसक, न हाथ जोड़े हुए, न जिसके शिर के बाल खुल गये हों, न बैठे हुए, न ''मैं तेरे शरण में हू'' ऐसे को॥६॥ न सोए, न मूर्च्छा को प्राप्त हुए, न नग्न हुए, न आयुध से रहित, न युद्ध करते हुओं को देखनेवालों, युद्ध न करते हुए, न शत्रु के साथी॥७॥ न आयुध के प्रहार से पीड़ा को प्राप्त हुए, न दुःखी, न अत्यन्त घायल, न डरे हुए और न पलायन करते हुए पुरुषों को सत्पुरुषों के धर्म का स्मरण करते हुए योद्धा लोग कभी मारें; किन्तु उनको पकड़ कर जो अच्छे हों बन्धीगृह में रखे और भोजन-आच्छादन यथावत् देवे, और जो घायल हुए हों, उनकी औषधादि विधिपूर्वक करे। न उनको चिड़ावे, न दुःख देवे। जो उनके योग्य काम हो करावे। विशेष इसपर ध्यान रक्खे कि स्त्री, बालक, वृद्ध और आतुर तथा शोकयुक्त पुरुषों पर शस्त्र कभी न चलावे। उनके लड़केबालों को अपने सन्तानों के सदृश पाले और स्त्रियों को भी पाले। उनको स्वसन्तान, मा, बहिन और कन्या के समान समझे, कभी विषयासक्ति की दृष्टि से भी न देखे। जब राज्य अच्छे प्रकार जम जाय और जिसमें पुनः युद्ध करने की शङ्का न हो, उनको सत्कारपूर्वक छोड़कर अपने-अपने घर वा देश को भेज देवे

और जिनसे भविष्यत् काल में विघ्न होना सम्भव हो, उनको सदा कारागार में भी रक्खे॥८॥

और जो पलायन अर्थात् भागा और डरा हुआ भृत्य शत्रुओं से मारा जाय; वह उसके स्वामी के अपराध को प्राप्त होकर दण्डनीय होवे॥९॥

और जो उसकी प्रतिष्ठा है, जिससे इस लोक और परलोक में सुख होने वाला था; उसको उसका स्वामी प्राप्त होवे जो भागा हुआ मारा जाय, उसका सब पुण्यफल उसके स्वामी को प्राप्त होता है और भागे हुये की जो प्रतिष्ठा वह सब नष्ट हो जाय। और उस प्रतिष्ठा को वह प्राप्त हो, जिसने धर्म से यथावत् युद्ध किया हो॥१०॥

इस व्यवस्था को कभी न तोड़े कि जो-जो लड़ाई में जिस-जिस सैनिक ने रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन, धान्य, अन्न, गाय आदि पशु और स्त्रियां तथा अन्य प्रकार के सब द्रव्य और घी, तैल आदि के कुप्पे जीते हों, वही उसका ग्रहण करे॥११॥

परन्तु सेनास्थजन भी उन जीते हुए पदार्थों में से सोलहवां भाग राजा को देवें और राजा भी योद्धाओं को उस धन में से जो कि सबने मिलकर जीता हो, सोलहवां भाग सेनास्थ पुरुषों को अवश्य देवे। और जो कोई युद्ध में मर गया हो, उसकी स्त्री और सन्तान को उसका भाग देवे और उसकी स्त्री तथा असमर्थ लड़कों का यथावत् पालन करे। जब उसके लड़के समर्थ हो जायें तब उनको यथायोग्य अधिकार देवे। जो कोई अपने राज्य की रक्षा, वृद्धि, प्रतिष्ठा, विजय और आनन्द-वृद्धि की इच्छा रखता हो, वह इस मर्यादा का उल्लङ्घन कभी न करे॥१२॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः।
रक्षितं वर्द्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत्॥१॥
एतच्चतुर्विधं विद्यात् पुरुषार्थप्रयोजनम्।
अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः॥२॥
अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया।
रक्षितं वर्द्धयेद् वृद्ध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत्॥३॥
अमाययैव वर्तेत न कथञ्चन मायया।
बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः॥४॥

नास्य छिद्रं परो विद्याच्छिद्रं विद्यात्परस्य तु।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः॥ ५॥
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत्॥ ६॥
एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः।
तानानयेद्वशं सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः॥ ७॥
[यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः।
दण्डेनैव प्रसह्यैताँश्छनकैर्वशमानयेत्॥ ८॥]
यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः॥ ९॥
मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।
सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥ १०॥
शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्॥ ११॥
राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत्।
सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते॥ १२॥
द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्।
तथा ग्रामशतानां च कुर्य्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम्॥ १३॥
ग्रामस्याधिपतिं कुर्य्याद्दशग्रामपतिं तथा।
विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च॥ १४॥
ग्रामदोषान्त्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम्।
शंसेद् ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम्॥ १५॥
विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत्।
शंसेद् ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम्॥ १६॥
तेषां ग्राम्याणि कार्य्याणि पृथक्कार्य्याणि चैव हि।
राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः॥ १७॥
नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम्।
उच्चैः स्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम्॥ १८॥

स ताननुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम्।
तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः॥ १९॥
राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः।
भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः॥ २०॥
ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम्॥ २१॥

—मनु० ७। [९९-[१००], १०१, १०४-१०७-[१०८], ११०-११७, १२०-१२४]॥

राजा और राजसभा अलब्ध की प्राप्ति की इच्छा, प्राप्त की प्रयत्न से रक्षा करे; रक्षित को बढ़ावे और बढ़े हुए धन को वेदविद्या, धर्म का प्रचार, विद्यार्थी, वेदमार्गोपदेशक तथा असमर्थ अनाथों के पालन में लगावे॥ १॥

इस चार प्रकार के 'पुरुषार्थ' के प्रयोजन को जाने और आलस्य छोड़कर इसका भलीभाँति नित्य अनुष्ठान करे॥ २॥

दण्ड से अप्राप्त की प्राप्ति की इच्छा, नित्य देखने से प्राप्त की रक्षा, रक्षित को वृद्धि अर्थात् ब्याजादि से बढ़ावे और बढ़े हुए धन को पूर्वोक्त मार्ग में नित्य व्यय करे॥ ३॥

कदापि किसी के साथ छल से न वर्ते किन्तु निष्कपट होकर सबसे वर्त्ताव रक्खे और नित्यप्रति अपनी रक्षा करके, शत्रु के किये हुए छल को जानके निवृत्त करे॥ ४॥

कोई शत्रु अपने छिद्र अर्थात् निर्बलता को न जान सके और स्वयं शत्रु के छिद्रों को जानता रहे, जैसे कछुआ अपने अङ्गों को गुप्त रखता है, वैसे शत्रु के प्रवेश करने के छिद्र को गुप्त रक्खे॥ ५॥

जैसे बगुला मच्छी पकड़ने को ध्यानावस्थित होकर ताकता है, वैसे अर्थसंग्रह का विचार किया करे, जिस प्रकार द्रव्य और बल की वृद्धि हो। शत्रु को जीतने के लिये सिंह के समान पराक्रम करे, चीता के समान छिप कर शत्रुओं को पकड़े और समीप में आये बलवान् शत्रुओं से सस्सा के समान दूर भाग जाय और पश्चात् उनको छल से पकड़े॥ ६॥

इस प्रकार विजय करनेवाले सभापति के राज्य में जो परिपन्थी

अर्थात् डाकू-लुटेरे हों, उनको (साम) अर्थात् मिला लेना, (दाम) कुछ देकर (भेद) फोड़-तोड़ करके वश में करे॥ ७॥

और जो इनसे वश में न हो तो अतिकठिन दण्ड से वश में करे॥ ८॥

जैसे धान्य का निकालने वाला छिलकों को अलगकर धान्य की रक्षा करता अर्थात् टूटने नहीं देता है, वैसे राजा, डाकू-चोरों को मारे और राज्य की रक्षा करे॥ ९॥

जो राजा मोह से, अविचार से अपने राज्य को दुर्बल करता है, वह राज्य और अपने बन्धुसहित जीवने से शीघ्र भ्रष्ट हो जाता है॥ १०॥

जैसे प्राणियों के प्राण शरीरों को कृश करने से क्षीण हो जाते हैं, वैसे प्रजा को दुर्बल करने से राजाओं के 'प्राण' अर्थात् बलादि, बन्धुसहित नष्ट हो जाते हैं॥ ११॥

इसलिये राजा और राजसभा राजकार्य्य की सिद्धि के लिये ऐसा यत्न करें जिससे राजकार्य्य यथावत् सिद्ध हों। जो राजा राज्यपालन में तत्पर रहता है, उसको सुख सदा बढ़ता जाता है॥ १२॥

इसलिये दो तीन, पांच और सौ ग्रामों के बीच में एक राज-स्थान रक्खे, जिसमें यथायोग्य भृत्य और कामदार रखके सब राज्य के कार्य पूरे करे॥ १३॥

एक-एक ग्राम में एक-एक पुरुष रक्खे, उन्हीं दश ग्रामों के ऊपर दूसरा, उन्हीं बीस ग्रामों के ऊपर तीसरा, उन्हीं सौ ग्रामों के ऊपर चौथा और उन्हीं सहस्र ग्रामों के ऊपर पांचवां पुरुष रक्खे। अर्थात् जैसे आजकल एक ग्राम में एक पटवारी, उन्हीं दश ग्रामों में एक थाना और उन दो थानों पर एक बड़ा थाना और उन पांचों थानों पर एक तहसील और दश तहसीलों पर एक ज़िला नियत किया है, यह वही अपने मनु आदि धर्मशास्त्र से राजनीति का प्रकार लिया है॥ १४॥

इसी प्रकार प्रबन्ध करके आज्ञा देवे कि वह एक-एक ग्रामों का पति ग्रामों में नित्यप्रति जो-जो दोष उत्पन्न हों, उनको गुप्तता से दश ग्राम के पति को विदित कर दे और वह दश ग्रामाधिपति उसी प्रकार बीस ग्राम के स्वामी को दश ग्रामों का वर्त्तमान नित्यप्रति जना देवे॥ १५॥

और बीस ग्रामों के अधिपति बीस ग्रामों के वर्त्तमान को

शतग्रामाधिपति को नित्यप्रति निवेदन करें, वैसे ही सौ ग्रामों के पति सौ-सौ ग्रामों के वर्त्तमान को आप सहस्राधिपति अर्थात् हजार ग्राम के स्वामी को प्रतिदिन जनाया करें। और दस-दस ग्राम के दोनों अधिपति बीस ग्राम के स्वामी को और बीस-बीस ग्राम के पांच अधिपति सौ ग्राम के अध्यक्ष को सौ-सौ ग्राम के दश अधिपति सहस्रग्रामों के अधिष्ठाता को दिन-दिन का वर्त्तमान जनावें और वे सहस्र-सहस्र के दश अधिपति दशसहस्र के अधिपति को और वे दश-दश हजार के दश अधिपति लक्षग्रामों की राजसभा को प्रतिदिन का वर्त्तमान जनाया करें और वे सब राजसभा महाराजसभा अर्थात् सार्वभौमचक्रवर्त्ति-महाराजसभा में सब भूगोल का वर्त्तमान जनाया करें॥ १६॥

और एक-एक दश-दश सहस्र ग्रामों पर दो-दो सभापति वैसे करें जिनमें एक राजसभा में और दूसरा अध्यक्ष बनावे कि वे आलस्य छोड़कर सब न्यायाधीशादि राजपुरुषों के कामों को सदा घूमकर देखते रहैं॥ १७॥

बड़े-बड़े नगरों में एक-एक विचार करने वाली सभा का सुन्दर उच्च और विशाल जैसा कि चन्द्रमा है, वैसा घर एक-एक बनावें, उसमें बड़े-बड़े विद्यावृद्ध कि जिन्होंने विद्या से सब प्रकार की परीक्षा की हो, वे बैठकर विचार किया करें। जिन नियमों से राजा और प्रजा की उन्नति हो, वैसे-वैसे नियम और विद्या प्रकाशित किया करें॥ १८॥

जो नित्य घूमनेवाला सभापति हो, उसके आधीन सब गुप्तचर अर्थात् दूतों को रक्खे जो राजपुरुष और प्रजापुरुषों के साथ नित्य सम्बन्ध रखते हों और वे भिन्न-भिन्न जाति के रहैं, उनसे सब राज और प्रजापुरुषों के सब दोष और गुण गुप्तरीति से जाना करे, जिसका अपराध हो, उनको दण्ड और जिनका गुण हो, उनकी प्रतिष्ठा सदा किया करे॥ १९॥

राजा जिनको प्रजा की रक्षा का अधिकार देवे, वे धार्मिक, सुपरीक्षित, विद्वान्, कुलीन हों, उनके आधीन प्रायः शठ और परपदार्थ हरनेवाले चोर-डाकुओं को भी नौकर रख के, उनको दुष्टकर्म से बचाने के लिये राज के नौकर करके, उन्हीं की रक्षा करने वाले विद्वानों के स्वाधीन करके, उनसे इस प्रजा की रक्षा यथावत् करे॥ २०॥

जो राजपुरुष अन्याय से वादी-प्रतिवादी से गुप्त धन लेके पक्षपात से अन्याय करे, उनका सर्वस्वहरण करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देश में रक्खे कि पुनः वे और इस बात को देख-सुन के दूसरे राजपुरुष भी इस दुष्ट काम से बचे रहैं। क्योंकि यदि उसको दण्ड न दिया जाये तो उसको देख के अन्य लोग भी ऐसे दुष्ट कर्म करने लग जायें। परन्तु जितने से उन राजपुरुषों का योगक्षेम भलीभाँति हों और जिससे वे धनाढ्य भी हों, उतना धन वा भूमि राज की ओर से मासिक वा एक वार मिला करे और जब वृद्ध हों, उनको भी आधा मिला करे परन्तु यह ध्यान में रक्खे कि जब तक वे जियें तब तक वह जीविका बनी रहै, पश्चात् नहीं, परन्तु इनके सन्तानों का सत्कार वा नौकरी उनके गुण के अनुसार अवश्य देवे। और जिसके बालक जब तक असमर्थ हों और उनकी स्त्री जीती हो तो उस के निर्वाहार्थ राज की ओर से यथायोग्य, पालन के लिये धन मिला करे। परन्तु जो उसकी स्त्री वा लड़के कुकर्मी हो जायें तो कुछ भी न मिले, ऐसी नीति राजा बराबर रक्खे॥ २१॥

यथा फलेन युज्येत राजा कर्त्ता च कर्मणाम्।
तथाऽवेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान्॥ १॥
यथाऽल्पाऽल्पमदन्त्याद्यं वार्य्योकोवत्सषट्पदाः।
तथाऽल्पाऽल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः॥ २॥
नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया।
उच्छिन्दन्ह्यात्मनो मूलमात्मानं ताँश्च पीडयेत्॥ ३॥
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात् कार्यं वीक्ष्य महीपतिः।
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति सम्मतः॥ ४॥
एवं सर्वं विधायेदमितिकर्त्तव्यमात्मनः।
युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः॥ ५॥
विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद् ध्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः।
सम्पश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति॥ ६॥
क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम्।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते॥ ७॥

—मनु० अ० ७। [१२८-१२-, १३९-१४०, १४२-१४४]॥

जैसे राजा और कर्मों का कर्त्ता राजपुरुष वा प्रजाजन सुखरूप फल से युक्त होवे, वैसे विचार करके राजा तथा राजसभा राज्य में 'कर' स्थापन करे॥ १॥

जैसे जोंक, बछड़ा और भमरा थोड़े-थोड़े भोग्य पदार्थ को ग्रहण करते हैं, वैसे राजा प्रजा से थोड़ा-थोड़ा वार्षिक कर लेवे॥ २॥

अतिलोभ से अपने वा दूसरों के सुख के मूल को उच्छिन्न अर्थात् नष्ट कदापि न करे क्योंकि जो व्यवहार और सुख के मूल का छेदन करता है, वह अपने और उनको पीड़ा ही देता है॥ ३॥

जो महीपति कार्य्य को देख कर तीक्ष्ण और कोमल भी होवे, वह दुष्टों पर तीक्ष्ण और श्रेष्ठों पर कोमल रहने से राजा अतिमाननीय होता है॥ ४॥

इस प्रकार सब राज्य का प्रबन्ध करके सदा इस में युक्त और प्रमादरहित होकर अपनी प्रजा का पालन निरन्तर करे॥ ५॥

जिस भृत्यसहित देखते हुए राजा के राज्य से डाकू लोग रोती विलाप करती प्रजा के पदार्थ और प्राणों को हरते रहते हैं, वह जानो भृत्य, अमात्यसहित मृतक है जीता नहीं, और महादुःख को पानेवाला है॥ ६॥

इसलिये राजाओं का प्रजा का पालन ही करना परमधर्म है। और जो मनुस्मृति के सप्तमाध्याय में 'कर' लेना लिखा है और जैसा सभा नियत करे, उसका भोक्ता राजा धर्म से युक्त होकर सुख पाता है, इससे विपरीत दुःख को प्राप्त होता है॥ ७॥

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः।
हुताग्निर्ब्राह्मणाँश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम्॥ १॥
तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत्।
विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः॥ २॥
गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः।
अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः॥ ३॥
यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः।
स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः॥ ४॥

—मनु० अ० ७ [१४५-१४८]॥

जब पिछली प्रहर रात्रि रहै तब उठ शौच और सावधान होकर परमेश्वर का ध्यान, अग्निहोत्र, धार्मिक विद्वानों का सत्कार और घूम, भोजन करके भीतर सभा में प्रवेश करे॥ १॥

वहाँ खड़ा रहकर जो प्रजाजन उपस्थित हों, उनको मान्य दे, छोड़कर, मुख्यमन्त्री के साथ राज्यव्यवस्था का विचार करे ॥ २॥

पश्चात् उसके साथ घूमने को चला जाय, पर्वत के शिखर अथवा एकान्त घर वा जङ्गल जिसमें एक शलाका भी न हो वैसे एकान्त स्थान (मैदान) में बैठकर विरुद्ध भावना को छोड़ मंत्री के साथ विचार करे॥ ३॥

जिस राजा के गूढ़ विचार को अन्य जन मिलकर नहीं जान सकते अर्थात् जिसका विचार गम्भीर शुद्ध परोपकारार्थ सदा गुप्त रहै, वह धनहीन भी राजा सब पृथिवी का राज्य करने में समर्थ होता है, इसलिये अपने मन से एक भी काम न करे कि जब तक सभासदों की अनुमति न हो॥ ४॥

आसनं चैव यानं च सन्धिं विग्रहमेव च।
कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च॥ १॥
सन्धिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च।
उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः॥ २॥
समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च।
तथा त्वायतिसंयुक्तः सन्धिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः॥ ३॥
स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा।
मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः॥ ४॥
एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया।
संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते॥ ५॥
क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन वा।
मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम्॥ ६॥
बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये।
द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः॥ ७॥
अर्थसम्पादनार्थं च पीड्यमानस्य शत्रुभिः।
साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः॥ ८॥

यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः।
तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा सन्धिं समाश्रयेत्॥ ९॥
यदा प्रहृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम्।
अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम्॥ १०॥
यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम्।
परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपुं प्रति॥ ११॥
यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च।
तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सान्त्वयन्नरीन्॥ १२॥
मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम्।
तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्य्यमात्मनः॥ १३॥
यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत्।
तदा तु संश्रयेत् क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम्॥ १४॥
निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद् योऽरिबलस्य च।
उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा॥ १५॥
यदि तत्रापि सम्पश्येद् दोषं संश्रयकारितम्।
सुयुद्धमेव तत्राऽपि निर्विशङ्कः समाचरेत्॥ १६॥

—मनु० [७।१६१-१७६]॥

सब राजादि राजपुरुषों को यह बात लक्ष्य में रखने योग्य है—जो (आसन) स्थिरता, (यान) शत्रु से लड़ने के लिये जाना, (सन्धि) उनसे मेल कर लेना, (विग्रह) दुष्ट शत्रुओं से लड़ाई करना, (द्वैध०) दो प्रकार की सेना करके स्वविजय कर लेना, (संश्रय) और निर्बलता में दूसरे प्रबल राजा का आश्रय लेना, ये छः प्रकार के कर्म यथायोग्य कार्य्य को विचार कर उसमें युक्त करना चाहिये॥ १॥

राजा जो सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय दो-दो प्रकार के होते है, उनको यथावत् जाने॥ २॥

जब (सन्धि) अर्थात् शत्रु से मेल करना हो तब उसके तुल्य सवारी कर्म करे अथवा उससे विपरीतता करे, परन्तु वर्त्तमान और भविष्यत् में करने के काम बराबर करता जाय, यह दो प्रकार का **मेल** कहाता है॥ ३॥

(विग्रह) कार्य्य सिद्धि के लिये उचित समय वा अनुचित समय में स्वयं किया वा मित्र के अपराध करने वाले शत्रु के साथ, विरोध दो प्रकार से करना चाहिये॥ ४॥

(यान) अकस्मात् कोई कार्य्य प्राप्त होने में एकाकी वा मित्र के साथ मिल के शत्रु की ओर जाना, यह दो प्रकार का **'गमन'** कहाता है॥ ५॥

स्वयं किसी प्रकार क्रम से क्षीण होजाय अर्थात् निर्बल हो जाय, अथवा मित्र के रोकने से अपने स्थान में बैठ रहना, यह दो प्रकार का **'आसन'** कहाता है॥ ६॥

कार्यसिद्धि के लिये सेनापति और सेना के दो विभाग करके विजय करना, दो प्रकार का **'द्वैध'** कहाता है॥ ७॥

एक किसी अर्थ की सिद्धि के लिये किसी बलवान् राजा वा किसी महात्मा का शरण लेना, जिससे शत्रु से पीडित न हो, इसलिये दो प्रकार का **आश्रय** लेना कहाता है॥ ८॥

जब यह जान ले कि इस समय युद्ध करने से थोड़ी पीड़ा प्राप्त होगी, और पश्चात् करने से अपनी वृद्धि और विजय अवश्य होगा, तब शत्रु से मेल करके उचित समय तक धीरज करे॥ ९॥

जब अपनी सब प्रजा वा सेना अत्यन्त प्रसन्न उन्नतिशील, और श्रेष्ठ जाने, वैसे अपने को भी समझे, तभी शत्रु से विग्रह=युद्ध कर लेवे॥ १०॥

जब अपने बल अर्थात् सेना को हर्ष और पुष्टियुक्त प्रसन्न भाव से जाने, और शत्रु का बल अपने से विपरीत निर्बल हो जावे, तब शत्रु की ओर युद्ध करने के लिये जावे॥ ११॥

जब सेना बल वाहन से क्षीण हो जाय तब शत्रुओं को धीरे-धीरे प्रयत्न से शान्त करता हुआ अपने स्थान में बैठा रहै॥ १२॥

जब राजा शत्रु को अत्यन्त बलवान् जाने तब द्विगुणा वा दो प्रकार की सेना करके अपना कार्य सिद्ध करे॥ १३॥

जब आप समझ लेवे कि अब शीघ्र शत्रुओं की चढ़ाई मुझ पर होगी, तभी किसी धार्मिक बलवान् राजा का आश्रय शीघ्र ले लेवे॥ १४॥

जो प्रजा और अपनी सेना और शत्रु के बल का निग्रह करे अर्थात् रोके, उसकी सेवा सब यत्नों से गुरु के सदृश नित्य किया करे॥ १५॥

जिसका आश्रय लेवे, उस सेवित पुरुष के कर्मों में दोष देखे तो वहां भी अच्छे प्रकार युद्ध ही को निःशङ्क होकर करे॥ १६॥

जो धार्मिक राजा हो, उससे विरोध कभी न करे किन्तु उससे सदा मेल रक्खे और जो दुष्ट प्रबल हो, उसी के जीतने के लिये ये पूर्वोक्त प्रयोग करना उचित है।

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः।
यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः॥ १॥
आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत्।
अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः॥ २॥
आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः।
अतीते कार्य्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते॥ ३॥
यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः।
तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः॥ ४॥

—मनु० ७। [१७७-१८०]॥

नीति का जानने वाला पृथिवीपति राजा जिस प्रकार इसके मित्र उदासीन और शत्रु अधिक न हों, ऐसे सब उपायों से वर्ते॥ १॥

सब कार्य्यों का वर्त्तमान में कर्त्तव्य, और भविष्यत् में जो-जो करना चाहिये, और जो काम कर चुके उन सब के यथार्थता से गुण-दोषों को विचारे॥ २॥

पश्चात् दोषों के निवारण और गुणों की स्थिरता में यत्न करे। जो राजा भविष्यत् अर्थात् आगे करने वाले कर्मों में गुण-दोषों का ज्ञाता, वर्त्तमान में तुरन्त निश्चय का कर्त्ता, और किये हुए कार्यों में शेष कर्त्तव्य को जानता है, वह शत्रुओं से पराजय को प्राप्त कभी नहीं होता॥ ३॥

सब प्रकार से राजपुरुष, विशेष सभापति राजा ऐसा प्रयत्न करे कि जिस प्रकार राजादि जनों के मित्र, उदासीन और शत्रु वश में करके अन्यथा न करावे, ऐसे मोह में कभी न फसे, यही संक्षेप से 'विनय' अर्थात् राजनीति कहाती है॥ ४॥

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि।
उपगृह्यास्पदं चैव चारान् सम्यग्विधाय च॥ १॥

संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम्।
सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः॥ २॥
शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत्।
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः॥ ३॥
दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा।
वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा॥ ४॥
यतश्च भयमाशङ्केत् ततो विस्तारयेद् बलम्।
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम्॥ ५॥
सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत्।
यतश्च भयमाशङ्केत् प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम्॥ ६॥
गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान् समन्ततः।
स्थाने युद्धे कुशलानभीरूनविकारिणः॥ ७॥
संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून्।
सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत्॥ ८॥
स्यन्दनाश्वैः समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा।
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले॥ ९॥
प्रहर्षयेद् बलं व्यूह्य ताँश्च सम्यक् परीक्षयेत्।
चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि॥ १०॥
उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्।
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम्॥ ११॥
भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा।
समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा॥ १२॥
प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान्यथोदितान्।
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह॥ १३॥
आदानमप्रियकरं दानञ्च प्रियकारकम्।
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते॥ १४॥

—मनु० ७ [१८४, १९२, १९४-१९६, २०३-२०४]॥

जब राजा शत्रुओं के साथ युद्ध करने को जावे तब अपने राज्य की रक्षा का प्रबन्ध और यात्रा की सब सामग्री यथाविधि करके, सब सेना,

यान, वाहन, शस्त्रास्त्रादि पूर्ण लेकर, सर्वत्र दूतों अर्थात् चारों ओर के समाचारों को देने वाले पुरुषों को गुप्त स्थापन करके, शत्रुओं की ओर युद्ध करने को जावे॥ १॥

तीन प्रकार के मार्ग अर्थात् एक स्थल (भूमि) में, दूसरा जल समुद्र वा नदियों में, तीसरा आकाशमार्गों को शुद्ध बनाकर; भूमिमार्ग में रथ, अश्व, हाथी; जल में नौका और आकाश में विमानादि यानों से जावे। और पैदल, रथ, हाथी, घोड़े, शस्त्र, अस्त्र और खानपानादि सामग्री को यथावत् साथ ले बलयुक्त पूर्ण करके किसी निमित्त को प्रसिद्ध करके शत्रु के नगर के समीप धीरे-धीरे जावे॥ २॥

जो भीतर से शत्रु से मिला हो, और अपने साथ भी ऊपर से मित्रता रक्खे, गुप्तता से शत्रु को भेद देवे, उसके आने-जाने में, उससे बात करने में अत्यन्त सावधानी रक्खे क्योंकि भीतर शत्रु ऊपर मित्र पुरुष को बड़ा शत्रु समझना चाहिये॥ ३॥

सब राजपुरुषों को युद्ध करने की विद्या सिखावे और आप सीखे, तथा अन्य प्रजाजनों को सिखावे। जो पूर्व शिक्षित योद्धा होते हैं, वे ही अच्छे प्रकार लड़-लड़ा जानते हैं। जब शिक्षा करे तब (दण्डव्यूह) दण्डा के समान सेना को चलावे, (शकट०) जैसा शकट अर्थात् गाड़ी के समान, (वराह०) जैसे सूअर एक दूसरे के पीछे दौड़ते जाते और कभी-कभी सब मिलकर झुण्ड हो जाते हैं, वैसे (मकर०) जैसे मगर पानी में चलते हैं, वैसे सेना को बनावे, (सूचीव्यूह) जैसे सूई का अग्रभाग सूक्ष्म पश्चात् स्थूल और उससे सूत्र स्थूल होता है, वैसी शिक्षा से सेना को बनावे, और जैसे नीलकण्ठ ऊपर नीचे झपट मारता है, इस प्रकार सेना को बनाकर लड़ावे॥ ४॥

जिधर से भय विदित हो उसी ओर सेना को फैलावे, सब सेना के पतियों को चारों ओर रखके (पद्मव्यूह) अर्थात् पद्म के आकार चारों ओर से सेनाओं को रखके मध्य में आप रहै॥ ५॥

सेनापति और बलाध्यक्ष अर्थात् आज्ञा का देने और सेना के साथ लड़ने-लड़ानेवाले वीरों को आठों दिशाओं में रक्खे। जिस ओर से शत्रु से लड़ाई होती हो, उसी ओर सब सेना का मुख करावे, परन्तु दूसरी

ओर भी पक्का प्रबन्ध रक्खे। नहीं तो पीछे वा पार्श्व से शत्रु की घात होने का सम्भव है॥ ६॥

जो गुल्म अर्थात् दृढ़ स्तम्भों के तुल्य युद्धविद्या से सुशिक्षित, धार्मिक, स्थित होने और युद्ध करने में चतुर, भयरहित, और जिनके मन में किसी प्रकार का विकार न हो, उनको चारों ओर रक्खे॥ ७॥

जो थोड़े पुरुषों से बहुतों के साथ युद्ध करना हो तो मिलकर लड़ावें और काम पड़े तो उन्हीं को झट फैला दे। जब नगर दुर्ग वा शत्रु की सेना में प्रविष्ट होकर युद्ध करना हो तब 'सूचीव्यूह' अथवा 'वज्रव्यूह' जैसा दुधारा खड्ग, दोनों ओर युद्ध करते जायँ और प्रविष्ट भी होते चलें वैसे अनेक प्रकार के व्यूह अर्थात् सेना को बनाकर लड़ावें। जो सामने शतघ्नी तोप, वा (भुशुण्डी) बन्दूकें छूट रही हों तो 'सर्पव्यूह' अर्थात् सर्प के तुल्य सोते-सोते चले जायें, जब तोपों के पास पहुंचें तब उनको मार वा पकड़ तोपों का मुख शत्रुओं की ओर फेर उन्हीं तोपों और बन्दूकों से उन को मारें अथवा वृद्ध पुरुषों को तोप के मुख के सामने घोड़े पर सवार करा दौड़ावें और बीच में अच्छे सवार रहैं। एक वार धावा कर शत्रु की सेना को छिन्न-भिन्न कर पकड़ लें अथवा भगा दें॥ ८॥

जो समभूमि में युद्ध करना हो तो रथ, घोड़े और पदातियों से, और जो समुद्र में युद्ध करना हो तो नौका; और थोड़े जल में हाथियों पर; वृक्ष और झाड़ी में बाण; तथा स्थल बालू में तलवार और ढाल से युद्ध करें-करावें॥ ९॥

जिस समय युद्ध होता हो, उस समय लड़नेवालों को उत्साहित और हर्षित करें। और जब युद्ध बन्ध हो जाय तब जिससे शौर्य और युद्ध में उत्साह हो, वैसे वक्तृत्वों से सब के चित्त को बढ़ावे। अपने से भी अधिक लड़ने वालों को खान-पान, अस्त्र-शस्त्र-सहाय और औषधादि से प्रसन्न रक्खें। व्यूह से विना लड़ाई न करे, न करावे, लड़ती हुई अपनी सेना की चेष्टा को देखा करे कि ठीक-ठीक लड़ती है, वा कपट रखती है॥ १०॥

किसी समय उचित समझे तो शत्रु को चारों ओर से घेर कर रोक रक्खे और इसके राज्य को पीडित करे, शत्रु के चारा, अन्न, जल, और इन्धन को दूषित, नष्ट कर दे॥ ११॥

शत्रु के तालाब, नगर के प्रकोट और खाई को तोड़-फोड़ दे, रात्रि में उनको (त्रास) भय देकर जीतने का उपाय करे॥ १२॥

जीत कर उनके साथ प्रमाण अर्थात् प्रतिज्ञादि लिखा लेवे और जो उचित समझे तो उसी के वंशस्थ किसी धार्मिक पुरुष को राजा करदे और उससे लिखवा लेवे कि तुमको हमारी आज्ञा के अनुकूल अर्थात् जैसी धर्मयुक्त राजनीति है, उनके अनुसार चल के न्याय से प्रजा का पालन करना होगा, ऐसे उपदेश करे और ऐसे पुरुष उनके पास रक्खे कि जिससे पुनः उपद्रव न हो। और जो हार जाय उसका सत्कार प्रधान पुरुषों के साथ मिलकर रत्नादि उत्तम पदार्थों के दान से करे और ऐसा न करे कि जिससे उसका योगक्षेम भी न हो। जो उसको कैद करे तो भी उस राजा का सत्कार यथायोग्य रक्खे। जिससे वह हारने के शोक से रहित होकर आनन्द में रहे॥ १३॥

क्योंकि संसार में दूसरे का पदार्थ ग्रहण करना अप्रीति और देना प्रीति का कारण है। और विशेष करके समय पर उचित क्रिया करना और उस पराजित के मनोवाञ्छित पदार्थों का देना बहुत उत्तम है और कभी उसको चिड़ावे नहीं, न ठट्ठा करे, न उसके सामने ''हमने तुझको पराजित किया है'' ऐसा कहै। किन्तु ''आप हमारे भाई हैं'' इत्यादि मान्य प्रतिष्ठा सदा रक्खे॥ १४॥

हिरण्यभूमिसम्प्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम्॥ १॥
धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते॥ २॥
प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च।
कृतज्ञं धृतिमन्तञ्च कष्टमाहुररिं बुधाः॥ ३॥
आर्य्यता पुरुषज्ञानं शौर्य्यं करुणवेदिता।
स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः॥ ४॥

—मनु० [७।२०८-२११]

मित्र का लक्षण—राजा सुवर्ण और भूमि की प्राप्ति से वैसे नहीं बढ़ता कि जैसे निश्चल प्रेमयुक्त भविष्यत् की बातों को सोचने और कार्य सिद्ध

करनेवाले समर्थ मित्र अथवा दुर्बल मित्र को भी प्राप्त होके बढ़ता है॥ १॥

धर्म को जानने, 'कृतज्ञ' किये हुए उपकार को सदा मानने वाले, प्रसन्नस्वभाव, अनुरागी, स्थिरारम्भी, लघु छोटे भी मित्र को प्राप्त होकर प्रशंसित होता है॥ २॥

सदा इस बात को दृढ़ रक्खे कि बुद्धिमान्, कुलीन, शूरवीर, चतुर, दाता, किये हुए को जाननेहारे और धैर्यवान् पुरुष को शत्रु कभी न बनावे; क्योंकि जो ऐसे को शत्रु बनावेगा, वह दु:ख पावेगा॥ ३॥

उदासीन का लक्षण—जिसमें प्रशंसित गुणयुक्त, अच्छे-बुरे मनुष्यों का ज्ञान, शूरवीरता और करुणा भी; स्थूललक्ष्य अर्थात् ऊपर-ऊपर की बातों को निरन्तर सुनाया करे, वह 'उदासीन' कहाता है॥ ४॥

एवं सर्वमिदं राजा सह संम्मन्त्र्य मन्त्रिभिः।
व्यायाम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत्॥ १॥

मनु० [७।२१६]॥

पूर्वोक्त प्रात:काल समय उठ, शौचादि सन्ध्योपासन अग्निहोत्र कर वा करा, सब मन्त्रियों से विचार कर, सेना में जा, सब भृत्य और सेनाध्यक्षों के साथ मिल, उनको हर्षित कर, नाना प्रकार की व्यूहशिक्षा अर्थात् कवायद कर करा, सब घोड़े, हाथी, गाय आदि [का] स्थान, शस्त्र और अस्त्र का कोश तथा वैद्यालय, धन के कोशों को देख, सब पर दृष्टि नित्यप्रति देकर जो कुछ उनमें खोट हो उनको निकाल, व्यायामशाला में जा व्यायाम करके, भोजन के लिये 'अन्त:पुर' अर्थात् पत्नी आदि के निवासस्थान में प्रवेश करे। और भोजन सुपरीक्षित, बुद्धिबलपराक्रमवर्द्धक, रोगविनाशक, अनेक प्रकार के अन्न-व्यञ्जन पान आदि सुगन्धित मिष्टादि अनेक रसयुक्त उत्तम करे कि जिससे सदा सुखी रहै। इस प्रकार सब राज्य के कार्यों की उन्नति किया करे।

प्रजा से कर लेने का प्रकार—

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा॥

—मनु० अ० ७। [१३०]

व्यापार करनेवाले वा शिल्पी को सुवर्ण और चांदी का जितना

लाभ हो उसमें से पचासवां भाग, चावल आदि अन्नों में छठा, आठवां वा बारहवां भाग लिया करे और जो धन लेवे तो भी उस प्रकार से लेवे कि जिससे किसान आदि खाने-पीने और धन से रहित होकर दु:ख न पावे। क्योंकि प्रजा के धनाढ्य, आरोग्य, खान-पान आदि से सम्पन्न रहने पर राजा की बड़ी उन्नति होती है। प्रजा को अपने सन्तान के सदृश सुख देवे और प्रजा अपने पिता के सदृश राजा और राजपुरुषों को जाने। यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा उनका रक्षक है। जो प्रजा न हो तो राजा किसका? और राजा न हो तो प्रजा किसकी कहावे? दोनों अपने-अपने काम में स्वतन्त्र और मिले हुए काम में प्रीति से परतन्त्र रहैं। प्रजा की साधारण सम्मति के विरुद्ध राजा वा राजपुरुष न हों, राजा की आज्ञा के विरुद्ध राजपुरुष वा प्रजा न चले, यह राजा का राजकीय निज काम अर्थात् जिसको 'पोलिटिकल' कहते हैं, संक्षेप से कह दिया।

जो विशेष देखना चाहै, वह वेद और मनुस्मृति आदि शास्त्रों में देख कर निश्चय करे। और जो प्रजा का न्याय करना है, वह व्यवहार मनुस्मृति के अष्टम और नवमाध्याय आदि की रीति से करना चाहिये। परन्तु यहां भी संक्षेप से लिखते हैं—

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः।
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक्॥ १॥
तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः।
संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च॥ २॥
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः।
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः॥ ३॥
सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके।
स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसङ्ग्रहणमेव च॥ ४॥
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च।
पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह॥ ५॥
तेषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम्।
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम्॥ ६॥

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते।
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः॥ ७॥
सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समञ्जसम्।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी॥ ८॥
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः॥ ९॥
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥ १०॥
वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्।
वृषं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत्॥ ११॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति॥ १२॥
पादोऽधर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति।
पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति॥ १३॥
राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्त्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते॥ १४॥

—मनु० ८। [३-८, १२-१९]॥

सभा राजा और राजपुरुष सब लोग देशाचार और शास्त्रव्यवहार हेतुओं से निम्नलिखित अठारह विवादास्पद मार्गों में विवादयुक्त कर्मों का निर्णय प्रतिदिन किया करें। और जो-जो नियम शास्त्रोक्त न पावें और उनके होने की आवश्यकता जानें तो उत्तमोत्तम नियम बांधें कि जिससे राजा और प्रजा की उन्नति हो॥ १॥

अठारह मार्ग ये हैं—उनमें से १—(ऋणादान) किसी से ऋण लेने-देने में विवाद। २—(निक्षेप) धरावट अर्थात् किसी ने किसी के पास पदार्थ धरा हो और मांगे पर न देना। ३—(अस्वामिविक्रयः) दूसरे के पदार्थ को दूसरा बेंच लेवे। ४—(संभूय च समुत्थानम्) मिल-मिला के किसी पर अत्याचार करना। ५—(दत्तस्यानपकर्म च) दिये हुए पदार्थ का न देना॥ २॥

६—(वेतनस्यैव चादानम्) वेतन अर्थात् किसी की नौकरी में से

ले लेना वा कम देना अथवा न देना। ७—(संविदश्च व्यतिक्रमः) प्रतिज्ञा से विरुद्ध वर्त्तना। ८—(क्रयविक्रयानुशय) अर्थात् लेन-देन में झगड़ा होना। ९—[(विवादः स्वामिपालयोः)] पशु के स्वामी और पालने वाले का झगड़ा॥ ३॥

१०—सीमा का विवाद। ११—किसी को कठोर दण्ड देना। १२—कठोर वाणी का बोलना। १३—चोरी वा डाका मारना। १४—किसी काम को बलात्कार से करना। १५—किसी की स्त्री वा पुरुष का व्यभिचार होना॥ ४॥

१६—स्त्री और पुरुष के धर्म में व्यतिक्रम होना। १७—(विभाग) अर्थात् दायभाग में वाद उठना। १८—द्यूत अर्थात् जड़पदार्थ और समाह्वय अर्थात् चेतन को दाव में धर के जुआ खेलना। ये अठारह प्रकार के परस्पर विरुद्ध व्यवहार के स्थान हैं॥ ५॥

इन व्यवहारों में बहुत से विवाद करने वाले पुरुषों के न्याय को सनातनधर्म के आश्रय करके किया करे, अर्थात् किसी का पक्षपात कभी न करे॥ ६॥

जिस सभा में अधर्म से घायल होकर धर्म उपस्थित होता है; जो उसका शल्य अर्थात् तीरवत् धर्म के कलङ्क अधर्म का छेदन नहीं करते, अर्थात् धर्मी को मान, अधर्मी को दण्ड नहीं मिलता, उस सभा में जितने सभासद् हैं, वे सब घायल के समान समझे जाते हैं॥ ७॥

धार्मिक मनुष्य को योग्य है कि सभा में कभी प्रवेश न करे, और जो प्रवेश किया हो तो सत्य ही बोले; जो कोई सभा में अन्याय होते हुए को देखकर मौन रहे, अथवा सत्य न्याय के विरुद्ध बोले, वह महापापी होता है॥ ८॥

जिस सभा में अधर्म से धर्म, असत्य से सत्य; सब सभासदों के देखते हुए मारा जाता है, उस सभा में सब मृतक के समान हैं, जानो उनमें कोई भी नहीं जीता॥ ९॥

मरा हुआ धर्म मारनेवाले का नाश, और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है; इसलिये धर्म का हनन कभी न करना, इस डर से कि मारा हुआ धर्म कभी भी हमको न मार डाले॥ १०॥

जो सब ऐश्वर्यों के देने और सुखों की वर्षा करने वाला धर्म है, उसका लोप करता है; उसी को विद्वान् लोग 'वृषल' अर्थात् शूद्र और नीच जानते हैं, इसलिये किसी मनुष्य को धर्म का लोप करना उचित नहीं॥ ११ ॥

इस संसार में एक धर्म ही सुहृद् है, जो मृत्यु के पश्चात् भी साथ चलता है; और सब पदार्थ वा संगी, शरीर के नाश के साथ ही नाश को प्राप्त होते हैं, अर्थात् सबका संग छूट जाता है परन्तु धर्म का संग कभी नहीं छूटता॥ १२ ॥

जब राजसभा में पक्षपात से अन्याय किया जाता है, वहां अधर्म के चार विभाग हो जाते हैं। उनमें से एक अधर्म के कर्त्ता, दूसरा साक्षी; तीसरा सभासदों और चौथा पाद अधर्मी सभा के सभापति राजा को प्राप्त होता है॥ १३ ॥

जिस सभा में निन्दा के योग्य की निन्दा, स्तुति के योग्य की स्तुति, दण्ड के योग्य को दण्ड और मान्य के योग्य का मान्य होता है, वहां राजा और सब सभासद् पाप से रहित और पवित्र हो जाते हैं, पाप के कर्त्ता ही को पाप प्राप्त होता है॥ १४॥

अब साक्षी कैसे करने चाहियें—

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्य्याः कार्येषु साक्षिणः।
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत्॥ १ ॥
स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः॥ २ ॥
साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसङ्ग्रहणेषु च।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः॥ ३ ॥
बहुत्वं परिगृह्णीयात् साक्षिद्वैधे नराधिपः।
समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान्॥ ४॥
समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति।
तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते॥ ५ ॥
साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्य्यसंसदि।
अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते॥ ६ ॥

स्वभावेनैव यद् ब्रूयुस्तद् ग्राह्यं व्यावहारिकम्।
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम्॥ ७ ॥
सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिनाऽनेन सान्त्वयन्॥ ८ ॥
यद् द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिँश्चेष्टितं मिथः।
तद् ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता॥ ९ ॥
सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान्।
इह चानुत्तमां कीर्त्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता॥ १० ॥
सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः॥ ११ ॥
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम्॥ १२ ॥
यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते।
तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः॥ १३ ॥
एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः॥ १४॥

—मनु० [८।६३, ६८, ७२-७५, ७८-८१, ८३-८४, ९६, ९१]

सब वर्णों में धार्मिक, विद्वान्, निष्कपटी, सब प्रकार धर्म को जाननेवाले, लोभरहित, सत्यवादियों को न्यायव्यवस्था में साक्षी करे, इनसे विपरीतों को कभी न करे॥ १ ॥

स्त्रियों की साक्षी स्त्री, द्विजों के द्विज; शूद्रों के शूद्र और अन्त्यजों के अन्त्यज साक्षी हों॥ २ ॥

जितने बलात्कार काम, चोरी, व्यभिचार; कठोर वचन, दण्डनिपातन रूप अपराध हैं, उन में साक्षी की विशेष परीक्षा न करे। और अत्यावश्यक भी न समझे, क्योंकि ये काम सब गुप्त होते हैं॥ ३ ॥

दोनों ओर के साक्षियों में से बहुपक्षानुसार, तुल्य साक्षियों में उत्तम गुणी पुरुष की साक्षी के अनुकूल, और दोनों के साक्षी उत्तम गुणी और तुल्य हों तो 'द्विजोत्तम' अर्थात् ऋषि, महर्षि और यतियों की साक्षी के अनुसार न्याय करे॥ ४॥

दो प्रकार से साक्षी होना सिद्ध होता है—एक साक्षात् देखने और दूसरा सुनने से; जब सभा में पूछें तब जो साक्षी सत्य बोलें वे धर्महीन और दण्ड के योग्य न होवें और जो साक्षी मिथ्या बोलें, वे यथायोग्य दण्डनीय हों॥ ५ ॥

जो राजसभा वा किसी उत्तम पुरुषों की सभा में साक्षी देखने और सुनने से विरुद्ध बोले; तो वह (अवाङ्नरक) अर्थात् जिह्वा के छेदन से दु:खरूप नरक को वर्त्तमान समय में प्राप्त होवे, और मरे पश्चात् सुख से हीन हो जाय॥ ६ ॥

साक्षी के उस वचन को मानना कि जो स्वभाव ही से उस व्यवहार-सम्बन्धी वचन बोले; इससे भिन्न सिखाये हुए जो-जो वचन बोले, उसको न्यायाधीश व्यर्थ समझे॥ ७ ॥

अर्थी (वादी) और प्रत्यर्थी (प्रतिवादी) के सामने सभा के समीप प्राप्त हुए साक्षियों को शान्तिपूर्वक न्यायाधीश और प्राड्विवाक अर्थात् वकील वा बैरिस्टर इस प्रकार से पूछें॥ ८ ॥

—हे साक्षिलोगो! इस कार्य्य में इन दोनों के परस्पर कर्मों में जो तुम जानते हो; उसको सत्य के साथ बोलो, क्योंकि तुम्हारी इस कार्य्य में साक्षिता है॥ ९ ॥

क्योंकि जो साक्षी सत्य बोलता है, वह जन्मान्तर में उत्तम जन्म और उत्तम लोकान्तरों में जन्म को प्राप्त होके सुख भोगता है; इस जन्म वा परजन्म में उत्तम कीर्ति को प्राप्त होता है, क्योंकि जो यह वाणी है, वही वेदों में सत्कार और तिरस्कार का कारण लिखी है। जो सत्य बोलता है वह प्रतिष्ठित और मिथ्यावादी निन्दित होता है॥ १० ॥

सत्य बोलने से साक्षी पवित्र होता, और सत्य ही बोलने से धर्म बढ़ता है; इससे सब वर्णों में साक्षियों को, सत्य ही बोलना योग्य है॥ ११ ॥

आत्मा का साक्षी आत्मा, और आत्मा की गति आत्मा है; इसको जान के हे पुरुष! तू सब मनुष्यों के उत्तम साक्षी अपने आत्मा का अपमान मत कर अर्थात् यही सत्यभाषण है कि जो तेरे आत्मा, मन, और वाणी में एक सी बात है, वह सत्य और जो इससे विपरीत है वह मिथ्याभाषण है॥ १२ ॥

जिस बोलते हुए पुरुष का विद्वान् 'क्षेत्रज्ञ' अर्थात् शरीर का जानने हारा आत्मा भीतर भीतर शङ्का को प्राप्त नहीं होता; उससे भिन्न विद्वान् लोग किसी को उत्तम पुरुष नहीं जानते॥ १३ ॥

हे कल्याण की इच्छा करने वाले पुरुष! जो तू ''मैं अकेला हूं'' इस प्रकार अपने आत्मा को समझता है, सो ठीक नहीं है; किन्तु जो दूसरा तेरे हृदय में अन्तर्यामीरूप से परमेश्वर पुण्य-पाप का देखने वाला मुनि स्थित है, उस से डरकर सदा सत्य बोला कर॥ १४ ॥

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च।
अज्ञानाद् बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते॥ १ ॥
एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत्।
तस्य दण्डविशेषाँस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः॥ २ ॥
लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वन्तु साहसम्।
भयाद् द्वौ मध्यमौ दण्ड्यौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम्॥ ३ ॥
कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम्।
अज्ञानाद् द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु॥ ४ ॥
उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम्।
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च॥ ५ ॥
अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः।
साराऽपराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत्॥ ६ ॥
अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्त्तिनाशनम्।
अस्वर्ग्यञ्च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥ ७ ॥
अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति॥ ८ ॥
वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम्।
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम्॥ ९ ॥

—मनु० ८। [११८-१२१, १२५-१२९]॥

जो लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और बालकपन से साक्षी कहे वह सभी मिथ्या समझा जावे॥ १ ॥

इन से भिन्न स्थान में साक्षी झूठ बोले उसको वक्ष्यमाण अनेकविध

दण्ड किया करे॥ २॥

जो लोभ से झूठी साक्षी देवे तो उससे १५ ॥=) (पन्द्रह रुपये दस आने) दण्ड लेवे, और मोह से झूठी साक्षी देवे उससे ३=) (तीन रुपये दो आने) दण्ड लेवे, जो भय से मिथ्या साक्षी देवे उससे ६।) (सवा छः रुपये) दण्ड लेवे, जो मित्रता से झूठी साक्षी देवे उससे १२॥) (साढ़े बारह रुपये) दण्ड लेवे॥ ३॥

जो कामना से मिथ्या साक्षी देवे उससे २५) (पच्चीस रुपये) दण्ड लेवे और जो क्रोध से मिथ्या साक्षी दे तो उससे ४६॥।=) (छयालीस रुपये चौदह आने) दण्ड लेवे, अज्ञान से मिथ्या साक्षी देवे तो उससे ६।) (सवा छः रुपये) दण्ड लेवे और बालकपन से मिथ्या साक्षी देवे तो १॥-) (एक रुपया नौ आने) दण्ड लेवे॥ ४॥

दण्ड के उपस्थेन्द्रिय, उदर, जिह्वा, हाथ, पग, आंख, नाक, कान, धन और देह ये दश स्थान हैं कि जिन पर दण्ड दिया जाता है॥ ५॥

परन्तु जो-जो दण्ड लिखा है और लिखेंगे, जैसे लोभ से साक्षी देने में पन्द्रह रुपये दस आने दण्ड लिखा है परन्तु जो वह अत्यन्त निर्धन हो तो उससे कम और जो धनाढ्य हो तो उससे दूना, तिगुना और चौगुना तक भी ले लेवे। अर्थात् जैसा देश, जैसा काल, जैसा पुरुष हो, उसका जैसा अपराध हो, वैसा ही दण्ड करे॥ ६॥

क्योंकि इस संसार में जो अधर्म से दण्ड करना है, वह पूर्व प्रतिष्ठा, वर्त्तमान और भविष्यत् में होने वाली कीर्ति का नाश करनेहारा है; और परजन्म में भी दुःखदायक होता है, इसलिये अधर्मयुक्त दण्ड किसी पर न करे॥ ७॥

जो राजा दण्डनीयों को न दण्ड और अदण्डनीयों को दण्ड देता है अर्थात् दण्ड देने योग्य को छोड़ देता है; वह जीता हुआ बड़ी निन्दा को और मरे पीछे बड़े दुःख को प्राप्त होता है, इसलिए जो अपराध करे उसको सदा दण्ड देवे और अनपराधी को दण्ड कभी न देवे॥ ८॥

प्रथम वाणी का दण्ड अर्थात् उसकी 'निन्दा', दूसरा 'धिक्' अर्थात् तुझको धिक्कार है कि तूने ऐसा बुरा काम क्यों किया? तीसरा 'धनदण्ड' अर्थात् उससे 'धन लेना' और 'वध' दण्ड अर्थात् उसको कोड़ा वा बेंत

से मारना वा शिर काट देना॥ ९॥

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचष्टेते।
तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः॥ १॥
पिताचार्य्यः सुहृन्माता भार्य्या पुत्रः पुरोहितः।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति॥ २॥
कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा॥ ३॥
अष्टापाद्यन्तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम्।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च॥ ४॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः॥ ५॥
ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम्।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम्॥ ६॥
वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः।
साहसस्य नरः कर्त्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः॥ ७॥
साहसे वर्त्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति॥ ८॥
न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्।
समुत्सृजेत् साहसिकान्सर्वभूतभयावहान्॥ ९॥
गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥ १०॥
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तन्मन्युमृच्छति॥ ११॥
यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक्॥ १२॥

—मनु० [८।३३४-३३८, ३४४-३४७, ३५०-३५१, ३८६]

चोर जिस प्रकार जिस-जिस अङ्ग से मनुष्यों में विरुद्ध चेष्टा करता है; उस-उस अङ्ग को सबकी शिक्षा के लिये राजा हरण अर्थात् छेदन कर दे॥ १॥

चाहे पिता, आचार्य, मित्र, माता, स्त्री, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो; जो स्वधर्म में स्थित नहीं रहता, वह राजा का अदण्ड्य नहीं होता। अर्थात् जब वह न्यायासन पर बैठ न्याय करे तब किसी का पक्षपात न करे किन्तु यथायोग्य दण्ड देवे॥ २॥

जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो; उसी अपराध में राजा पर सहस्र पैसा दण्ड होवे। अर्थात् साधारण मनुष्य से राजा पर सहस्र गुणा दण्ड होना चाहिये। दीवान अर्थात् राजा के मन्त्री को आठ सौ गुणा, उससे न्योक को सात सौ गुणा और उससे न्यून को छः सौ गुणा, वैसे ही उतरते-उतरते एक चपरासी अर्थात् भृत्य जो कि छोटे से छोटा राजपुरुष हो, उसको आठ-गुणे से कम दण्ड न होना चाहिये। क्योंकि यदि प्रजापुरुष से राजपुरुषों को अधिक दण्ड न होवे तो राजपुरुष प्रजापुरुषों का नाश कर देवें। जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े-से ही दण्ड से वश में आ जाती है, इसलिये राजा से लेकर छोटे-से-छोटे भृत्य तक राजपुरुषों को अपराध में प्रजा से अधिक दण्ड होना चाहिये॥ ३॥

वैसे ही जो कुछ विवेकी होकर चोरी करे, उस शूद्र को चोरी से आठ गुणा, वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बत्तीस गुणा॥ ४॥

ब्राह्मण को चौंसठ गुणा वा सौ गुणा अथवा एक सौ अट्ठाईस गुणा दण्ड होना चाहिये। अर्थात् जिसका जितना ज्ञान और प्रतिष्ठा अधिक हो, उसको अपराध में उतना ही अधिक दण्ड होना चाहिये॥ ५॥

राज्य के अधिकारी, धर्म्म और ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाला राजा बलात्कार-काम करने वाले डाकुओं को दण्ड देने में एक क्षण भी देर न करे॥ ६॥

साहसिक पुरुष के लक्षण—

दुष्ट वचन बोलने, चोरी करने, विना अपराध से दण्ड देने वाले से भी साहस बलात्कार-काम करने वाला अतीव पापी दुष्ट है॥ ७॥

जो राजा साहस में वर्त्तमान पुरुष को न दण्ड देकर सहन करता है, वह राजा शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है और राज्य में द्वेष उठता है॥ ८॥

न मित्रता, न पुष्कल धन की प्राप्ति से भी, राजा सब प्राणियों को

दुःख देने वाले साहसिक मनुष्य को बंधन-छेदन किये विना कभी छोड़े॥ ९॥

चाहे गुरु हो, चाहे पुत्रादि बालक हों, चाहे पिता आदि वृद्ध, चाहे ब्राह्मण और चाहे बहुत शास्त्रों का श्रोता क्यों न हो; जो धर्म को छोड़ अधर्म में वर्त्तमान दूसरे को विना अपराध मारनेवाले हैं, उनको विना विचारे मार डालना, अर्थात् मार के पश्चात् विचार करना चाहिये॥ १०॥

दुष्ट पुरुषों के मारने में हन्ता को पाप नहीं होता; चाहे प्रसिद्ध मारे चाहे अप्रसिद्ध, क्योंकि क्रोधी को क्रोध से मारना जानो क्रोध से क्रोध की लड़ाई है॥ ११॥

जिस राजा के राज्य में न चोर, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वचन का बोलनेहारा, न साहसिक डाकू, और न दण्डघ्न अर्थात् राजा की आज्ञा का भङ्ग करने वाला नहीं है, वह राजा अतीव श्रेष्ठ है॥ १२॥

भर्त्तारं लङ्घयेद्या स्त्री स्वज्ञातिगुणदर्पिता।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते॥ १॥
पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत्॥ २॥
दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत्।
नदीतीरेषु तद्विद्यात् समुद्रे नास्ति लक्षणम्॥ ३॥
अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च।
आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोषमेव च॥ ४॥
एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान्समापयन्।
व्यपोह्य किल्विषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम्॥ ५॥

—मनु० [८। ३७१-३७२, ४०६, ४१९-४२०]॥

जो स्त्री अपनी जाति गुण के घमण्ड से पति को छोड़ व्यभिचार करे, उसको बहुत स्त्री और पुरुषों के सामने जीती हुई कुत्तों से राजा कटवा कर मरवा डाले॥ १॥

उसी प्रकार अपनी स्त्री को छोड़ के परस्त्री वा वेश्यागमन करे, उस पापी को लोहे के पर्यङ्क (पलंग) को अग्नि से तपा, लाल सुर्ख कर उस पर सुला के, जीते को बहुत पुरुषों के सम्मुख भस्म कर

देवे॥ २॥

प्रश्न—जो राजा वा राणी अथवा न्यायाधीश वा उसकी स्त्री व्याभिचारादि कुकर्म करे तो उनको कौन दण्ड देवे?

उत्तर—सभा। अर्थात् उनको प्रजापुरुषों से भी अधिक दण्ड होना चाहिये।

प्रश्न—राजादि उनसे दण्ड क्यों ग्रहण करेंगे?

उत्तर—राजा भी एक पुण्यात्मा भाग्यशाली मनुष्य है। जब उसी को दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड ग्रहण न करे तो दूसरे मनुष्य दण्ड को क्यों मानेंगे? और जब सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभा धार्मिकता से दण्ड देना चाहैं तो अकेला राजा क्या कर सकता है! जो ऐसी व्यवस्था न हो तो राजा प्रधान और सब समर्थ पुरुष अन्याय में डूबकर न्याय-धर्म को डुबा के सब प्रजा का नाश कर आप भी नष्ट हो जायें। अर्थात् उस श्लोक के अर्थ का स्मरण करो कि न्याययुक्त दण्ड ही का नाम राजा और धर्म है, जो उसका लोप करता है, उससे नीच दूसरा कौन होगा!

प्रश्न—ऐसा करड़ा दण्ड होना उचित नहीं, क्योंकि मनुष्य किसी अङ्ग का बनानेहारा और जिलानेवाला नहीं है, इसलिये ऐसा दण्ड न देना चाहिये?

उत्तर—जो इसको करड़ा दण्ड जानते हैं, वे राजनीति को नहीं समझते, क्योंकि एक को इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग बुरे काम करने से अलग रहेंगे और बुरे काम को छोड़कर धर्म मार्ग में स्थित रहेंगे। इससे सच पूछो तो यही है कि एक राई भर भी यह दण्ड सब के भाग में न आवेगा। और जो सुगम दण्ड दिया जाय तो दुष्ट काम बहुत बढ़कर होने लगें। जिसको तुम सुगम दण्ड कहते हो वह क्रोड़ों गुणा अधिक होने से क्रोड़ों गुणा कठिन होता है, क्योंकि जब बहुत मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तब थोड़ा-थोड़ा दण्ड भी देना पड़ेगा। अर्थात् जैसे एक को मनभर दण्ड हुआ और दूसरे को पाव-पावभर तो पावभर अधिक, एक मन दण्ड होता है तो प्रत्येक मनुष्य के भाग में आधपाव बीससेर दण्ड होता है, सुगम दण्ड को दुष्ट लोग क्या समझते हैं? जैसे एक को एक

मन और १००० (सहस्र) मनुष्यों को पाव-पाव दण्ड हुआ तो ६। सवा छः मन मनुष्य जाति पर दण्ड होने से अधिक और यही करड़ा, तथा वह मन दण्ड न्यून और सुगम होता है।

लम्बे मार्ग में समुद्र की खाड़ियां वा नदी तथा बड़े नदों में जितना लम्बा देश हो, उतना 'कर' स्थापन करे और महासमुद्र में निश्चित 'कर' स्थापन नहीं हो सकता किन्तु जैसा अनुकूल देखे कि जिससे राजा और बड़े-बड़े नौकाओं के समुद्र में चलानेवाले दोनों लाभयुक्त हों, वैसी व्यवस्था करे। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि जो कहते हैं कि प्रथम जहाज नहीं चलते थे, वे झूठे हैं। और देश-देशान्तर द्वीप-द्वीपान्तरों में नौका से जानेवाले अपने प्रजास्थ पुरुषों की सर्वत्र रक्षा कर उनको किसी प्रकार का दु:ख न होने देवे॥ ३॥

[राजा प्रतिदिन कर्मों की समाप्तियों को, हाथी-घोड़े आदि वाहनों को, नियत आय और व्यय (आकर) रत्नादिकों की खानें और (कोष) खजाने को देखा करे॥ ४॥]

राजा इस प्रकार सब व्यवहारों की यथावत् समाप्ति करता-कराता हुआ सब पापों को छुड़ा के परमगति मोक्ष को प्राप्त होता है॥ ५॥

प्रश्न—संस्कृत में पूरी राजनीति है वा अधूरी?

उत्तर—पूरी है। क्योंकि जो-जो भूगोल में राजनीति चली और चलेगी वह-वह सब संस्कृत विद्या से ली है। और जिनका प्रत्यक्ष लेख नहीं है, उनके लिये—

प्रत्यहं लोकदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः॥

—मनु० [८।३]॥

जो-जो नियम राजा और प्रजा के सुखकारक और धर्मयुक्त समझें, उन-उन नियमों को पूर्ण विद्वानों की राजसभा बांधा करे। परन्तु इस पर नित्य ध्यान रक्खे जहां तक बन सके, वहां तक बाल्यावस्था में और दोनों की प्रसन्नता के विना विवाह न करना, न कराना, न करने देना। ब्रह्मचर्य का यथायोग्य सेवन करना-कराना। व्यभिचार और बहुविवाह को बन्ध करें कि जिससे शरीर और आत्मा में पूर्ण बल सदा रहे। क्योंकि जो केवल आत्मा का बल अर्थात् विद्या ज्ञान बढ़ाये जायें और

शरीर का बल नहीं तो एक शरीर से बली सैकड़ों विद्वानों को जीत सकता है। और जो शरीर ही का बल बढ़ाया जाय, आत्मा का नहीं, तो भी राज्य की उत्तम व्यवस्था विना विद्या के कभी नहीं हो सकती। विना व्यवस्था के सब आपस में ही फूट, विरोध और लड़ाई करके नष्ट-भ्रष्ट हो जायें। इसलिये शरीर और आत्मा के बल को सदा बढ़ाते रहना चाहिये। जैसा बल और बुद्धि का नाशक व्यवहार व्यभिचार और अतिविषयासक्ति है, वैसा और कोई भी नहीं। विशेषकर क्षत्रियों को दृढ़ाङ्ग और बलयुक्त होना चाहिये। क्योंकि जब वे ही विषयासक्त होंगे तो राजधर्म नष्ट ही हो जायगा।

और इसपर भी ध्यान रक्खें कि '**यथा राजा तथा प्रजाः**' [चाणक्यनीति १३.८] जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है। इसलिये राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें, किन्तु सब दिन धर्म न्याय से वर्त्तकर सब के सुधार का दृष्टान्त बनें।

यह संक्षेप से राजधर्म का वर्णन यहां किया गया है। विशेष वेद, मनुस्मृति के सप्तम-अष्टम और नवम अध्याय, शुक्रनीति, विदुरप्रजागर और महाभारत शान्तिपर्व के राजधर्म और आपद्धर्म आदि पुस्तकों में देखकर पूर्ण राजनीति को धारण कर माण्डलिक अथवा सार्वभौम चक्रवर्त्ति राज्य करें। और यही समझें कि—

वयं प्रजापतेः प्रजाऽअभूम

—यह यजुर्वेद [१८।२९] का वचन है।

हम 'प्रजापति' अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और परमात्मा हमारा राजा और हम उसके किंकर भृत्यवत् हैं। वह कृपा करके अपनी सृष्टि में हम को राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्य-न्याय की प्रवृत्ति करावे। अब आगे ईश्वर और वेदविषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामीकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते राजधर्मविषये
षष्ठः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ६॥

अथ सप्तमसमुल्लासारम्भः

[अथेश्वरवेदविषयं व्याख्यास्यामः]

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥ १॥

—ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० ३९॥

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥ २॥

—यजुः० अ० ४०। मं० १॥

अहम्भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः। मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम्॥ ३॥

—ऋ० मं० १०। सू० ४८। मं० १॥

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽवतस्थे कदा चन। सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन॥ ४॥

—ऋ० मं० १०। सू० ४८। मं० ५॥

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम्। अहं भुवं यजमानस्य चोदिताऽयज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे॥ ५॥

—ऋ० मं० १०। सू० ४९। मं० १॥

(ऋचो अक्षरे०) इस मन्त्र का अर्थ ब्रह्मचर्य्याश्रम की शिक्षा में लिख चुके हैं अर्थात् जो सब दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव-विद्यायुक्त और जिसमें पृथिवी सूर्य्यादि लोक स्थित हैं और जो आकाश के समान व्यापक, सब देवों का देव परमेश्वर है; उसको जो मनुष्य न जानते, न मानते और न उसका ध्यान करते, वे नास्तिक और दुःखी होते हैं। इसलिये उसी को जानकर मनुष्य सुखी होते हैं।

प्रश्न—वेद में ईश्वर अनेक हैं, इस बात को तुम मानते हो वा नहीं?

उत्तर—नहीं मानते। क्योंकि चारों वेदों में कहीं यह नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों। किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है।

प्रश्न—वेद में जो अनेक देवता लिखे हैं, उसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर—'देवता' दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं जैसी कि पृथिवी, परन्तु कहीं इसको ईश्वर वा उपासनीय नहीं माना है। देखो! इसी मन्त्र में कि 'जिसमें सब देवता स्थित हैं, वह जानने और उपासना करने योग्य ईश्वर है।' यह उनकी भूल है जो देवता शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं। परमेश्वर देवों का देव होने से 'महादेव' इसीलिये कहाता है कि वही सब जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलयकर्त्ता, न्यायाधीश, अधिष्ठाता है। जो '**त्रयस्त्रिंशत्त्रिंशता०**' [तु०—यजुः १४।३१] इत्यादि वेद में प्रमाण है, इसकी व्याख्या शतपथ [कां० १४। प्रपा० ५। ब्रा० ७। कं० ४] में की है कि तेंतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवासस्थान होने से आठ 'वसु'। प्राण, अपान, व्यान, [उदान], समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह 'रुद्र' इसलिये कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन करानेवाले होते हैं। संवत्सर के बारह महीने बारह 'आदित्य' इसलिये हैं कि ये सब केआयु को लेते जाते हैं। बिजुली का नाम 'इन्द्र' इस हेतु से है कि जो परम ऐश्वर्य्य का हेतु है। यज्ञ को 'प्रजापति' कहने का कारण यह है कि जिससे वायु, वृष्टि, जल, ओषधी की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्पविद्या से प्रजा का पालन होता है। ये तेंतीस पूर्वोक्त गुणों के योग से 'देव' कहाते हैं। इनका स्वामी और सब से बड़ा होने से परमात्मा चौंतीसवां उपास्यदेव शतपथ के चौदहवें काण्ड में स्पष्ट लिखा है। इसी प्रकार अन्यत्र भी लिखा है। जो ये इन शास्त्रों को देखते तो वेदों में अनेक ईश्वर माननेरूप भ्रमजाल में गिरकर झूठा क्यों बकते?॥ १ ॥

हे मनुष्य! जो कुछ इस संसार में जगत् है, उस सब में व्याप्त होकर नियन्ता है, वह ईश्वर कहाता है; उससे डर कर तू अन्याय से किसी के

धन की आकांक्षा मत कर, उस अन्याय के त्याग और न्यायाचरणरूप धर्म से अपने आत्मा से आनन्द को भोग॥ २ ॥

ईश्वर सबको उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! मैं ईश्वर सबके पूर्व विद्यमान, सब जगत् का पति हूँ, मैं सनातन जगत्कारण और सब धनों का विजय करनेवाला और दाता हूँ; मुझ ही को सब जीव जैसे पिता को सन्तान पुकारते हैं, वैसे पुकारें, मैं सबको सुख देनेहारे जगत् के लिये नाना प्रकार के भोजनों का विभाग पालन के लिये करता हूँ॥ ३ ॥

मैं परमैश्वर्य्यवान् सूर्य के समान सब जगत् का प्रकाशक हूँ, कभी पराजय को प्राप्त नहीं होता और न कभी मृत्यु को प्राप्त होता हूँ, मैं ही जगत् रूप धन का निर्माता हूँ, सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाले मुझ ही को जानो; हे जीवो! ऐश्वर्य्यप्राप्ति के यत्न करते हुए तुम लोग विज्ञानादि धन को मुझसे मांगो और तुम लोग मेरी मित्रता से अलग मत हो॥ ४ ॥

हे मनुष्यो! मैं सत्यभाषणरूप स्तुति करनेवाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि धन को देता हूं, मैं ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रकाश करनेहारा और मुझको वह वेद यथावत् कहता, उससे सब के ज्ञान को मैं बढ़ाता; मैं सत्पुरुष का प्रेरक, यज्ञ करनेहारे को फलप्रदाता और इस विश्व में जो कुछ है, उस सब कार्य्य का बनाने और धारण करने वाला हूं, इसलिये तुम लोग मुझ को छोड़ किसी दूसरे को मेरे स्थान में मत पूजो, मत मानो और मत जानो॥ ५ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ६ ॥

—यह यजुर्वेद [१३।४] का मन्त्र है॥

हे मनुष्यो! जो सृष्टि के पूर्व सब सूर्य्यादि तेजवाले लोकों का उत्पत्ति-स्थान, आधार और जो कुछ उत्पन्न हुआ था, है और होगा, उसका स्वामी था, है और रहेगा; वह पृथिवी से लेके सूर्य्यलोक-पर्य्यन्त सृष्टि को बना के धारण कर रहा है, उस सुखस्वरूप परमात्मा ही की भक्ति जैसे हम करें, वैसे तुम लोग भी करो॥ ६ ॥

प्रश्न—आप ईश्वर-ईश्वर कहते हो, उसकी सिद्धि किस प्रकार करते हो?

उत्तर—सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

प्रश्न—ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण कभी नहीं घट सकता।

उत्तर—इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि-व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्॥

—यह गौतमकृत न्यायदर्शन [१।१।४] का सूत्र है।

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मन का; शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख-दु:ख, सत्यासत्य विषयों के साथ सम्बन्ध होने से ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको 'प्रत्यक्ष' कहते हैं, परन्तु वह निर्भ्रम हो।

अब विचारना चाहिये कि इन्द्रिय और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं। जैसे चारों त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होने से गुणी जो पृथिवी उसका आत्मायुक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है, वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि, ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है।

और जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता अथवा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय जीव के इच्छा-ज्ञानादि, उसी इच्छित विषय पर झुक जाते हैं। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शङ्का और लज्जा तथा अच्छे कर्मों के करने में अभय, नि:शङ्कता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं, किन्तु परमात्मा की ओर से है।

और जब जीवात्मा शुद्ध होके शुद्धान्त:करण से युक्त योगी समाधिस्थ होकर आत्मा और परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है, तब उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या सन्देह है? क्योंकि कार्य्य को देख के कारण का, नियमों को देखके नियन्ता का, सृष्टि को देखकर स्रष्टा का अनुमान होता है।

प्रश्न—ईश्वर व्यापक है, वा किसी देश विशेष में रहता है?

उत्तर—व्यापक है। क्योंकि जो एकदेश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सब का स्रष्टा, सब का धर्त्ता और प्रलयकर्त्ता नहीं

हो सकता। अप्राप्त देश में कर्त्ता की क्रिया का [होना] असम्भव है।

प्रश्न—परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है, वा नहीं?

उत्तर—है।

प्रश्न—ये दोनों गुण परस्पर विरुद्ध हैं। जो न्याय करे तो दया और दया करे तो न्याय छूट जाय। क्योंकि 'न्याय' उसको कहते हैं कि जो कर्त्ता के कर्मों के अनुसार न अधिक, न न्यून सुख-दु:ख पहुंचाना। और 'दया' उसको कहते हैं जो अपराधी को विना दण्ड दिये छोड़ देना।

उत्तर—न्याय और दया का नाममात्र ही भेद है। क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है, वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्ध होकर दु:खों को प्राप्त न हों। वही दया कहाती है जो पराये दु:खों का छुड़ाना। और जैसा अर्थ दया और न्याय का तुमने किया, वह ठीक नहीं। क्योंकि जिसने जैसा, जितना बुरा कर्म किया हो, उसको उतना वैसा ही दण्ड देना 'न्याय', और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाय तो दया का नाश हो जाय। क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दु:ख देना है। जब एक के छोड़ने में सहस्रों मनुष्यों को दु:ख प्राप्त होता है, वह दया किस प्रकार हो सकती है? 'दया' वही है कि उस डाकू को कैद कर पाप करने से बचाना डाकू पर दया और उस डाकू को मार सकने से अन्य सहस्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित होती है।

प्रश्न—फिर दया और न्याय दो शब्द क्यों हुए? क्योंकि जब दोनों का अर्थ एक ही है तो दो शब्दों का होना व्यर्थ है, कोई एक शब्द रहता तो अच्छा होता। इसलिये दया और न्याय का एक प्रयोजन नहीं।

उत्तर—क्या एक अर्थ के अनेक नाम और एक नाम के अनेक अर्थ नहीं होते?

प्रश्न—होते हैं।

उत्तर—फिर तुमको शङ्का क्यों हुई?

प्रश्न—संसार में सुनते हैं, इसलिये।

उत्तर—संसार में सच्चा और झूठा दोनों सुने जाते हैं, उसका विचार से निश्चय करना अपना काम है। ईश्वर की दया पूरी यह है कि जिसने

सब जीवों के प्रयोजन सिद्ध होने के सब पदार्थ जगत् में उत्पन्न करके दान दे रक्खे हैं, उससे बड़ी दया दूसरी कौनसी है? न्याय का फल जगत् में सुख-दुःख की व्यवस्था अधिक-न्यूनता से दिखला रही है। इन दोनों का इतना ही भेद है जो मन में सबको सुख होने और दुःख छूटने की इच्छा और क्रिया करना है, [वह 'दया'] और बाह्य चेष्टा अर्थात् बन्धन-छेदनादि यथायोग्य दण्ड देना 'न्याय' कहाता है। दोनों का एक प्रयोजन यह है कि सब को पाप और दुःखों से पृथक् करना।

प्रश्न—ईश्वर साकार है, वा निराकार?

उत्तर—निराकार। क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक न हो सकता। जब व्यापक न होता, तो सर्वज्ञादि गुण भी न हो सकते। क्योंकि परिमित वस्तु में गुण-कर्म्म-स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा और रोग, दोष, छेदन-भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता। इससे यह निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। और जो साकार होता, तो उसके आकार बनाने वाला दूसरा होना चाहिये। क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है, उसको संयुक्त करने वाला निराकार चेतन अवश्य चाहिये। जो कोई कहै कि ईश्वर ने अपना शरीर बना लिया, तो वही सिद्ध हुआ कि शरीर के बनने के पूर्व निराकार था। इसलिये वह परमात्मा न शरीर धारण करता, निराकार होकर सब जगत् को सूक्ष्म आकार से स्थूलाकार बनाता है।

प्रश्न—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, वा नहीं?

उत्तर—है। परन्तु 'सर्वशक्तिमान्' शब्द का अर्थ इतना ही है कि ईश्वर को अपने पालन [आदि] काम करने में दूसरे के सामर्थ्य का सहाय नहीं लेना पड़ता किन्तु स्वसामर्थ्य ही से सब अपना काम पूरा कर लेता है।

प्रश्न—हम तो ऐसा जानते हैं कि ईश्वर जो चाहै सो करे।

उत्तर—वह क्या और कैसा चाहता है? जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता और कर सकता है तो हम तुम से पूछते हैं कि परमेश्वर अपने को मार, अनेक ईश्वर बना, स्वयं अविद्वान्, चोरी आदि पाप कर और दुःखी भी हो सकता है? जैसे ये काम ईश्वर के गुण-कर्म्म-

स्वभाव से विरुद्ध हैं तो जो तुम्हारा कहना "वह सब कुछ कर सकता है" यह कभी नहीं घट सकता। इसलिये सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जो हमने कहा, वही ठीक है।

प्रश्न—परमेश्वर सादि है, वा अनादि?

उत्तर—अनादि। अर्थात् जिसका आदि कोई कारण वा समय न हो, उसको 'अनादि' कहते हैं, इत्यादि सब अर्थ प्रथम समुल्लास में कर दिया है, देख लीजिये।

प्रश्न—परमेश्वर क्या चाहता है?

उत्तर—सबकी भलाई और सबके लिये सुख चाहता है, परन्तु स्वतन्त्रता के साथ। किसी को विना पाप किये पराधीन नहीं करता।

प्रश्न—परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये, वा नहीं?

उत्तर—करनी चाहिये।

प्रश्न—क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति, प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—तो फिर स्तुति, प्रार्थना क्यों करना?

उत्तर—उनके करने का फल अन्य ही है।

प्रश्न—क्या है?

उत्तर—स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव का सुधरना; प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना; उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।

प्रश्न—इनको स्पष्ट करके समझाओ।

उत्तर—जैसे—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ १॥ —यजुः अ० ४०। मं० ८॥

ईश्वर की स्तुति—वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और

अनन्त बलवान् जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सबका अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध, परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है, यह 'सगुण-स्तुति' अर्थात् जिस-जिस गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना वह सगुण और (अकाय) अर्थात् वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता, जिसमें छिद्र नहीं होता और जो नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता, और कभी पापाचरण नहीं करता, जिसमें क्लेश, दुःख, अज्ञान कभी नहीं होता, इत्यादि जिस-जिस राग द्वेषादि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है, वह 'निर्गुण-स्तुति' कहाती है। इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं, वैसे गुण-कर्म-स्वभाव अपना भी करना। जैसे वह न्यायकारी है, तो आप भी न्यायकारी होवे। और जो केवल भाँड के समान परमेश्वर के गुणकीर्त्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता, उसका स्तुति करना व्यर्थ है।

प्रार्थना—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ १॥

—यजुः अ० ३२। मं० १४॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि॥ २॥

—यजुः० अ० १९। मं० ९॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ३॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ४॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ५॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ६॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ७॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥ ८॥

—यजुः अ० ३४। मं० १-६॥

हे 'अग्ने' स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप स्वकृपा से जिस बुद्धि की विद्वान्, ज्ञानी और योगी लोग उपासना करते हैं—उसी बुद्धि से युक्त हमको इसी वर्त्तमान समय में बुद्धिमान् कीजिये॥ १॥

आप प्रकाशस्वरूप हैं, कृपा कर मुझ में भी प्रकाश स्थापन कीजिये। आप अनन्त पराक्रमयुक्त हैं, मुझ में कृपा-कटाक्ष से पूर्ण पराक्रम को धरिये। आप अनन्त बलयुक्त हैं, इसलिये मुझ में भी बल धारण कीजिये। आप अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं, मुझको भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिये। आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं, मुझको भी वैसा ही कीजिये। आप निन्दा, स्तुति और स्व अपराधियों का सहन करनेवाले हैं, कृपा से मुझको भी वैसा ही कीजिये॥ २॥

हे दयानिधे! आपकी कृपा से—'जो मेरा मन जागते हुए का दूर-दूर जाता, दिव्यगुणयुक्त रहता है, और वही सोते हुए मेरा मन सुषुप्ति को प्राप्त होता वा स्वप्न में दूर-दूर जाने के समान व्यवहार करता, सब प्रकाशकों का प्रकाशक, एक वह' मेरा मन 'शिवसङ्कल्प' अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियों के अर्थ कल्याण का सङ्कल्प करनेहारा होवे। किसी की हानि करने की इच्छायुक्त कभी न होवे॥ ३॥

हे सर्वान्तर्यामी! जिससे कर्म करनेहारे धैर्य्ययुक्त विद्वान् लोग यज्ञ और युद्धादि में कर्म करते हैं; जो अपूर्व सामर्थ्ययुक्त, पूजनीय और प्रजा के भीतर रहनेवाला है, वह मेरा मन धर्म करने की इच्छायुक्त होकर अधर्म को सर्वथा छोड़ देवे॥ ४॥

जो उत्कृष्ट ज्ञान और दूसरे को चितानेहारा निश्चयात्मकवृत्ति है, और जो प्रजाओं में भीतर प्रकाशयुक्त और नाशरहित है; जिसके विना कोई कुछ भी कर्म नहीं कर सकता, वह मेरा मन शुभ गुणों की इच्छा करके दुष्ट गुणों से पृथक् रहै॥ ५॥

हे जगदीश्वर! जिससे सब योगी लोग इन सब भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान व्यवहारों को जानते, जो नाशरहित जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिल के सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है, जिसमें ज्ञान और क्रिया है; पाँच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि और आत्मायुक्त रहता है, उस योगरूप यज्ञ को जिससे बढ़ाते हैं, वह मेरा मन योग-विज्ञानयुक्त होकर अविद्यादि क्लेशों से अलग रहै॥ ६ ॥

हे परमविद्वन् परमेश्वर! आप की कृपा से जिस मेरे मन में जैसे रथ के मध्य धुरा में आरा लगे रहते हैं, वैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और जिसमें अथर्ववेद भी प्रतिष्ठित होता है; और जिसमें सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, प्रजा का साक्षी चित्त चेतन विदित होता है, वह मेरा मन अविद्या का अभाव कर विद्याप्रिय सदा रहै॥ ७ ॥

हे सर्वनियन्तः ईश्वर! जो मेरा मन रस्सी से घोड़े के समान अथवा घोड़ों के नियन्ता सारथि के तुल्य मनुष्यों को अत्यन्त इधर-उधर डुलाता है; जो हृदय में प्रतिष्ठित, गतिमान् और अत्यन्त वेगवाला है, वह मेरा मन सब इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक के धर्मपथ में सदा चलाया करे, ऐसी कृपा मुझपर कीजिये॥ ८ ॥

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम॥ १ ॥

—यजुः अ० ४०। मं० १६॥

हे सुख के दाता, स्वप्रकाशस्वरूप, सबको जाननेहारे परमात्मन्! आप हमको श्रेष्ठ मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये; और जो हम में कुटिल पापाचरणरूप मार्ग है, उससे पृथक् कीजिये, इसीलिये हम लोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुत सी स्तुति करते हैं कि आप हमको पवित्र करें। और—

मा नो महान्तमुत मा नोऽअर्भकं मा नऽउक्षन्तमुत मा नऽउक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः॥ १ ॥

—यजुः० अ० १६। मं० १५॥

हे 'रुद्र' दुष्टों को पाप के दुःखरूप फल को देके रुलानेवाले परमेश्वर! आप हमारे छोटे बड़े जन, गर्भ, माता, पिता और प्रिय बन्धुवर्ग तथा

शरीरों का हनन करने के लिये प्रेरित मत कीजिये, ऐसे मार्ग से हमको चलाइये कि जिससे हम आपके दण्डनीय न हों॥ १ ॥

असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमयेति॥ —यह शतपथ ब्राह्मण [१४.३.१.३०] का वचन है॥

हे परमगुरो परमात्मन्! आप हमको असत् मार्ग से पृथक् कर सन्मार्ग में प्राप्त कीजिये। अविद्यान्धकार को छुड़ा के विद्यारूप सूर्य को प्राप्त कीजिये और मृत्युरोग से पृथक् करके मोक्ष के आनन्दरूप अमृत को प्राप्त कीजिये।

अर्थात् जिस-जिस दोष वा दुर्गुण से परमेश्वर को पृथक् मान के अपने को भी अलग करने के लिए प्रार्थना की जाती है वह विधि-निषेधमुख होने से सगुण-निर्गुण प्रार्थना। जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है, उसको वैसा ही वर्त्तमान करना चाहिये अर्थात् जैसे सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करे, उसके लिये जितना अपने से प्रयत्न हो सके, उतना किया करे। अर्थात् अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है। ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उसका स्वीकार करता है जैसे—'हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझको सब से बड़ा, मेरी ही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब हो जायँ' इत्यादि। क्योंकि जब दोनों शत्रु एक दूसरे के नाश के लिये प्रार्थना करें तो क्या परमेश्वर दोनों का नाश कर दे? जो कोई कहै जिसका प्रेम अधिक, उसकी प्रार्थना सफल हो जावे, तब हम कह सकते हैं कि जिसका प्रेम न्यून हो, उसके शत्रु का भी न्यून नाश होना चाहिये। ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते-करते कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा—''हे परमेश्वर! आप हमको रोटी बना कर खिलाइये, मकान में झाड़ू लगाइये, कपड़े धोइये और खेती बाड़ी भी कीजिये''। इस प्रकार जो परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठते हैं, वे महामूर्ख हैं, क्योंकि जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है, उसको जो कोई तोड़ेगा, वह सुख कभी न पावेगा॥ जैसे—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतंꣳ समाः॥ २ ॥

—यजुः० अ० ४०। मं० २॥

परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ वर्ष पर्य्यन्त अर्थात् जब तक जीवे, तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे, आलसी कभी न हो।

देखो! सृष्टि के बीच में जितने प्राणी हैं अथवा अप्राणी, वे सब अपने-अपने कर्म और यत्न करते ही रहते हैं। जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते और वृक्ष आदि सदा बढ़ते-घटते रहते हैं, वैसे यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय दूसरा भी करता है, वैसे धर्म से पुरुषार्थी का सहाय परमेश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले को भृत्य रखते हैं, अन्य को नहीं। देखने की इच्छा करने और नेत्रवाले को दिखलाते है, अन्धे को नहीं। इसी प्रकार परमेश्वर भी सबके उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है, हानिकारक कर्म में नहीं। जो कोई ''गुड़ मीठा है'' कहता रहै, उसको गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता, और जो यत्न करता है, उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है।

अब तीसरी उपासना—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा, स्वयन्तदन्तःकरणेन गृह्यते॥ १॥

—यह [मैत्रायणी] उपनिषद् [४।४।९] का वचन है॥

जिस पुरुष का समाधियोग से अविद्यादि मल नष्ट हो गया है, आत्मस्थ होकर परमात्मा में चित्त जिसने लगाया है, उसको जो परमात्मा के योग का सुख होता है; वह वाणी से कहा नहीं जा सकता, क्योंकि उस आनन्द को जीवात्मा अपने अन्तःकरण से ग्रहण करता है। 'उपासना' शब्द का अर्थ समीप होना है। अष्टाङ्गयोग से परमात्मा के समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामीरूप से प्रत्यक्ष करने के लिये जो-जो काम करना होता है, वह-वह सब करना चाहिये। अर्थात्—

तत्र—अहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः॥

—इत्यादि सूत्र पातञ्जल-योगशास्त्र [साधनपाद। सू० ३०] के हैं॥

जो उपासना का आरम्भ करना चाहै, उसके लिये यही आरम्भ है कि वह किसी से वैर न रक्खे, सर्वदा प्रीति करे। सत्य बोले, मिथ्या न

बोले। चोरी न करे, सत्यव्यवहार करे। जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो। और निरभिमानी हो, अभिमान कभी न करे। ये पांच प्रकार के 'यम' मिल के उपासनायोग का प्रथम अङ्ग है।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥

—योगसूत्र [साधनपाद। सू० ३२]॥

राग-द्वेष छोड़ भीतर, और जलादि से बाहर पवित्र रहै। धर्म से पुरुषार्थ करने से लाभ में न प्रसन्नता और हानि में न अप्रसन्नता करे। प्रसन्न होकर, आलस्य छोड़, सदा पुरुषार्थ किया करे। सदा दुःख-सुखों का सहन और धर्म ही का अनुष्ठान करे, अधर्म का नहीं। सदा सत्यशास्त्रों को पढे-पढ़ावे, सत्पुरुषों का संग करे। और 'ओङ्कार' का जप और अर्थ विचार किया करे। अपने आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे। इन पांच प्रकार के 'नियमों' को मिला के उपासनायोग का दूसरा अङ्ग कहाता है।

इसके आगे छः अङ्ग योगशास्त्र वा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में देख लेवें।[1]

जब उपासना करना चाहें, तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर, बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभि, हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा, पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर, अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके, परमात्मा में मग्न होकर संयमी होवें।

जब इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से भरपूर हो जाता है। नित्यप्रति ज्ञान-विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुँच जाता है। जो आठ प्रहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है, वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है। वहां सर्वज्ञादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी 'सगुण' और द्वेष, रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि गुणों से पृथक् मान, अतिसूक्ष्म आत्मा के भीतर-बाहर व्यापक परमेश्वर में दृढ़ स्थित हो जाना 'निर्गुणोपासना' कहाती है।

---

१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासना विषय में इनका वर्णन है।

इसका फल—जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष, दु:ख छूट कर परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण-कर्म-स्वाभाव पवित्र हो जाते है। इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये। इससे इसका फल पृथक् होगा, परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा [कि] वह पर्वत के समान दु:ख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सब को सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है? और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता, वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है। क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रक्खे हैं, उसका गुण-भूल जाना, ईश्वर ही को न मानना 'कृतघ्नता' और 'मूर्खता' से कम नहीं है।

प्रश्न—जब परमेश्वर के श्रोत्र, नेत्रादि इन्द्रियाँ नहीं हैं, फिर वह इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है?

उत्तर—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥

—यह [श्वेताश्वतर] उपनिषत् [३।१९] का वचन है।

परमेश्वर के हाथ नहीं, परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथ से सब का रचन, ग्रहण करता; पग नहीं, परन्तु व्यापक होने से सबसे अधिक वेगवान्; चक्षु का गोलक नहीं, परन्तु सब को यथावत् देखता; श्रोत्र नहीं, तथापि सब की बातें सुनता; अन्त:करण नहीं, परन्तु सब जगत् को जानता है और उसको अवधिसहित जाननेवाला कोई भी नहीं; उसी को सनातन, सबसे श्रेष्ठ, सबमें पूर्ण होने से 'पुरुष' कहते हैं। वह इन्द्रियों और अन्त:करण के विना अपने सब काम अपने सामर्थ्य से करता है।

प्रश्न—उसको बहुत से मनुष्य निष्क्रिय और निर्गुण कहते हैं?

उत्तर— **न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते,**
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते,
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

—यह [श्वेताश्वतर] उपनिषद् [६।८] का वचन है।

परमात्मा से कोई तद्रूप कार्य्य और उसको करण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं। न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। सर्वोत्तमशक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अनन्त क्रिया है, वह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनी जाती है। जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय न कर सकता, इसलिये वह 'विभू' तथापि 'चेतन' होने से उसमें क्रिया भी है।

प्रश्न—जब वह क्रिया करता होगा तब अन्त वाली क्रिया होती है, वा अनन्त?

उत्तर—जितने देश, काल में क्रिया करनी उचित समझता है उतने ही देश, काल में क्रिया करता है, न अधिक न न्यून, क्योंकि वह विद्वान् है।

प्रश्न—परमेश्वर अपना अन्त जानता है वा नहीं? जानता है तो अनन्त और जो नहीं जानता तो पूर्ण ज्ञानी नहीं?

उत्तर—परमात्मा पूर्ण ज्ञानी है। क्योंकि ज्ञान उसको कहते हैं कि जिससे ज्यों का त्यों पदार्थ जाना जाय। जब परमेश्वर अनन्त है तो उसको अनन्त ही जानना ज्ञान, और अनन्त को सान्त और सान्त को अनन्त जानना अज्ञान अर्थात् 'भ्रम' कहाता है। '**यथार्थदर्शनं ज्ञानमिति**' [तुलना—भ० गी० १३।११] जो जैसा पदार्थ है, उस को वैसा ही जानना 'ज्ञान', उससे उलटा 'अज्ञान' है। इसलिये—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः॥

—योग सू० [समाधिपाद सू० २४]॥

जो अविद्यादि क्लेश, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है, वह सब जीवों से विशेष 'ईश्वर' कहाता है।

प्रश्न—चेतन एक है, वा अनेक?

उत्तर—ईश्वर चेतन एक। और जीव चेतन अनेक।

प्रश्न— **ईश्वरासिद्धेः॥ १॥** [सां० सू० १।९२]
प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः॥ २॥ [सां० सू० ५।१०]
सम्बन्धाभावान्नानुमानम्॥ ३॥ [सां० सू० ५।११]
—ये सांख्यशास्त्र के सूत्र हैं॥

प्रत्यक्ष से ईश्वर की सिद्धि नहीं होती॥ १॥

क्योंकि जब उसकी सिद्धि में प्रत्यक्ष ही नहीं तो अनुमानादि प्रमाण नहीं घट सकते॥ २॥

और व्याप्ति-सम्बन्ध न होने से अनुमान भी नहीं हो सकता। पुनः प्रत्यक्षानुमान के न होने से शब्द-प्रमाण भी नहीं घट सकता॥ ३॥

उत्तर—यहाँ ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, और न ईश्वर जगत् का उपादान कारण है। और पुरुष से विलक्षण अर्थात् सर्वत्र पूर्ण होने से परमात्मा का नाम 'पुरुष' और शरीर में शयन करने से जीव का भी नाम 'पुरुष' है। क्योंकि इसी प्रकरण में कहा है—

प्रधानशक्तियोगाच्चेत्सङ्गापत्तिः॥ १॥
सत्तामात्राच्चेत्सर्वैश्वर्य्यम्॥ २॥
श्रुतिरपि प्रधानकार्य्यत्वस्य॥ ३॥
—सांख्य सू० [५।८-९, १२]

यदि पुरुष को प्रधानशक्ति का योग हो तो पुरुष में सङ्गापत्ति हो जाय। अर्थात् जैसे प्रकृति सूक्ष्म से मिलकर कार्यरूप में सङ्गत हुई है, वैसे परमेश्वर भी स्थूल हो जाय। इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं, किन्तु निमित्त कारण है॥ १॥

जो चेतन से जगत् की उत्पत्ति हो तो जैसा परमेश्वर समग्रैश्वर्ययुक्त है, वैसा संसार में भी सर्वैश्वर्य का योग होना चाहिये, सो नहीं है। इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं, किन्तु निमित्त कारण है॥ २॥

क्योंकि उपनिषद् भी प्रधान को ही जगत् का उपादान कारण कहती है॥ ३॥ जैसे—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः॥ —यह श्वेताश्वतर उप० [अ० ४। मं० ५] का वचन है।

जो जन्मरहित सत्त्व, रज, तमोगुणरूप प्रकृति है वही स्वरूपाकार से बहुत प्रजारूप हो जाती है। अर्थात् प्रकृति परिणामिनी होने से अवस्थान्तर हो जाती है और पुरुष अपरिणामी होने से वह अवस्थान्तर होकर दूसरे रूप में कभी नहीं प्राप्त होता, सदा कूटस्थ निर्विकार रहता है। और प्रकृति सृष्टि में सविकार और प्रलय में निर्विकार रहती है।

इसलिये जो कोई कपिलाचार्य को अनीश्वरवादी कहता है, वही अनीश्वरवादी है, कपिलाचार्य्य नहीं। तथा मीमांसा का धर्म-धर्मी से ईश्वर। वैशेषिक और न्याय भी 'आत्म' शब्द से अनीश्वरवादी नहीं, क्योंकि सर्वज्ञत्वादि धर्मयुक्त और '**अतति सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा**' जो सर्वज्ञादि धर्मयुक्त सर्वत्र व्यापक सब जीवों का आत्मा है, उसको मीमांसा, वैशेषिक और न्याय 'ईश्वर' मानते हैं।

प्रश्न—ईश्वर अवतार लेता है, वा नहीं?

उत्तर—नहीं, क्योंकि—

'अज एकपात्'॥ 'सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्'
—ये दोनों यजुर्वेद [३४।५३ और ४०।८] के वचन है।

इत्यादि वचनों से परमेश्वर न जन्म लेता और न कभी शरीरवाला होता है।

प्रश्न— **यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
—भगवद् गीता [४।७]॥

श्रीकृष्णजी कहते हैं कि जब-जब धर्म का लोप होता है तब-तब मैं शरीर धारण करता हूँ।

उत्तर—यह बात वेदविरुद्ध होने से प्रमाण नहीं। और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग-युग में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि '**परोपकाराय सतां विभूतयः**' परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है, तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।

प्रश्न—जो ऐसा है तो संसार में चौबीस ईश्वर के अवतार होते हैं,

और इनको अवतार क्यों मानते हैं?

उत्तर—वेदार्थ के न जानने, सम्प्रदायी लोगों के बहकाने और अपने आप अविद्वान् होने से भ्रमजाल में फसते हैं और मानते हैं।

प्रश्न—जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस-रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके?

उत्तर—प्रथम तो जो जन्मा है, वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये विना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है, उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस-रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहै उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। इस अनन्त-गुण-कर्म-स्वभावयुक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव के मारने के लिये जन्म-मरणयुक्त कहना महामूर्खता का काम है।

और जो कोई कहे कि भक्तों के उद्धार के लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं, क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं, उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर के पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् का बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से पुत्रोत्पत्ति, कंस-रावणादि का वध और गोवर्धनादि उठाना बड़े कर्म हैं? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो '**न भूतो न भविष्यति**' ईश्वर के सदृश न कोई हुआ, न है और न होगा।

और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहै कि गर्भ में आया वा मूठी में धर लिया, यह सच कभी नहीं हो सकता, क्योंकि आकाश सब में व्यापक है। न वह बाहर आता, न भीतर जाता, वैसे परमेश्वर के सर्वव्यापक होने से उसका आना-जाना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि जाना वा आना वहां हो सकता है, जब वहां वह न हो। और आना भी वहां हो सकता है, जहाँ परमेश्वर न हो। क्या वह गर्भ में व्यापक नहीं था, जो कहीं से आया? और बाहर नहीं है, जो भीतर से बाहर निकले? इसलिये परमेश्वर का जन्म कभी नहीं हो सकता। इसी प्रकार 'ईसा' के भी ईश्वर का जन्म न होना समझ लेना चाहिये।

प्रश्न—ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है, वा नहीं?

उत्तर—नहीं। क्योंकि जो पाप क्षमा करे, तो उसका न्याय नष्ट हो जाय और सब मनुष्य महापापी हो जायें। क्योंकि उनको पाप करने में उत्साह और निर्भयता हो। जैसे कोई राजा अपराधियों के पाप की क्षमा करे तो वे अधिक-अधिक अपराध पाप करने लगें। और जो अपराध नहीं करता है, वह भी अपराध करने से न डरेगा। इसलिये सब कर्मों का यथावत् फल देना ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं।

प्रश्न—जीव स्वतन्त्र है, वा परतन्त्र?

उत्तर—अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है।

'स्वतन्त्रः कर्त्ता'

—यह पाणिनीय व्याकरण [अष्टा० १।४।५४] का सूत्र है॥

जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है, वही कर्त्ता है।

प्रश्न—स्वतन्त्र किसको कहते हैं?

उत्तर—जिसके आधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरणादि हों, वह स्वतन्त्र है। जो स्वतन्त्र न हो तो उसको पाप-पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जैसे भृत्य स्वामी; और सेना, सेनाध्यक्ष की आज्ञा से अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों को मारके अपराधी नहीं होते, वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और आधीनता से काम सिद्ध हों, तो जीव को पाप वा पुण्य न लगे। उस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर होवे। स्वर्ग-नरक अर्थात् सुख-दुःख की प्राप्ति भी परमेश्वर को होवे। जैसे किसी मनुष्य ने शस्त्रविशेष से किसी को मार डाला, तो वही मारनेवाला पकड़ा जाता है, दण्ड पाता है, शस्त्र नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप-पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसलिये अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र, परन्तु जब वह पाप कर चुकता है, तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप भोगता है। इसलिये कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप के दुःख रूप फल भोगने में परतन्त्र होता है।

प्रश्न—जो परमेश्वर जीव को न बनाता, सामर्थ्य न देता तो जीव कुछ न कर सकता। इसलिये परमेश्वर की प्रेरणा ही से जीव कर्म करता है।

उत्तर—जीव उत्पन्न कभी न हुआ; अनादि है। जैसा ईश्वर और जगत् का उपादान कारण नित्य है। और जीव का शरीर तथा इन्द्रियों के गोलक परमेश्वर के बनाये हुए हैं, परन्तु वे सब जीव के आधीन हैं। जो कोई मन, कर्म, वचन से पाप-पुण्य करता है, वही भोक्ता है, ईश्वर नहीं। जैसे किसी कारीगर ने पहाड़ से लोहा निकाला, उस लोहे को किसी व्यापारी ने लिया, उसकी दुकान से लोहार ने ले तलवार बनाई, उससे किसी सिपाही ने तलवार ली, उससे किसी को मार डाला। अब यहां जैसे वह लोहे को उत्पन्न करने, उससे लेने, तलवार बनानेवाले और तलवार को पकड़ कर राजा दण्ड नहीं देता, किन्तु जिसने तलवार से मारा, वही दण्ड पाता है। इसी प्रकार शरीरादि की उत्पत्ति करनेवाला परमेश्वर उसके कर्मों का भोक्ता नहीं होता, किन्तु जीव भोक्ता होता है। और जो परमेश्वर कर्म कराता होता तो कोई जीव पाप नहीं करता, क्योंकि परमेश्वर पवित्र और धार्मिक होने से किसी जीव को पाप करने में प्रेरणा नहीं करता। इसलिये जीव अपने काम करने में स्वतन्त्र है। जैसे जीव अपने कामों में स्वतन्त्र हैं, वैसे ही परमेश्वर भी अपने कामों में स्वतन्त्र है।

प्रश्न—जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है?

उत्तर—दोनों चेतनस्वरूप हैं। स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है। परन्तु परमेश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, सब को नियम में रखना, जीवों का पाप-पुण्यों के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं। और जीव के सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, शिल्पविद्या आदि अच्छे और बुरे कर्म हैं। ईश्वर के नित्यज्ञान, आनन्द, अनन्त बल आदि गुण हैं। और जीव के—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति॥

—न्याय सू० [१।१।१०]॥

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि॥

—वैशेषिक सू० [३।२।४। द्र० चन्द्रानन्दवृत्ति सूत्रपाठ॥]

दोनों सूत्रों में—(इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा, (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा, वैर, (प्रयत्न) पुरुषार्थ बल, (सुख) आनन्द, (दुःख) विलाप, अप्रसन्नता, (ज्ञान) विवेक, पहिचानना ये तुल्य हैं। परन्तु वैशेषिक में (प्राण) प्राण को बाहर निकालना, (अपान) प्राण को बाहर से भीतर को लेना, (निमेष) आंख मीचना, (उन्मेष) आंख का खोलना, (जीवन) प्राण का धारण करना, (मन) निश्चय, स्मरण और अहङ्कार करना, (गति) चलना, (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों को चलाना, (अन्तर्विकार) भिन्न-भिन्न क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोकादि का होना। ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी, क्योंकि वह स्थूल नहीं है।

जब तक आत्मा देह में होता है, तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं। और जब शरीर छोड़, चला जाता है, तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। जिसके होने से जो हों, और न होने से न हों, वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप और सूर्य्यादि के होने से प्रकाशादि का होना, और न होने से न होना है, वैसे ही जीव और परमात्मा का विज्ञान गुण द्वारा होता है।

प्रश्न—परमेश्वर त्रिकालदर्शी है, इससे भविष्यत् की बातें जानता है। वह अपने ज्ञान से जैसा निश्चय करेगा, जीव वैसा ही करेगा। इससे जीव स्वतन्त्र नहीं। और जीव को ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता। क्योंकि जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है, वैसा ही जीव करता है।

उत्तर—ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है, क्योंकि जो होके न रहै, वह 'भूतकाल' और न होके होवे, वह 'भविष्यत्काल' कहाता है। क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके होता है? इसलिये परमेश्वर का ज्ञान सदा एकरस, अखण्डित वर्त्तमान रहता है। भूत, भविष्यत् जीवों के लिये हैं। हां, जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वतः नहीं। जैसा स्वतन्त्रता से कर्म जीव करता है, वैसा ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है। और जैसा ईश्वर जानता है, वैसा जीव करता है। अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान के ज्ञान और फल देने में ईश्वर स्वतन्त्र और जीव किञ्चित् वर्त्तमान और कर्म करने में स्वतन्त्र

है। ईश्वर का अनादि ज्ञान होने से जैसा कर्म का ज्ञान है, वैसा ही उसके दण्ड देने का भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उस के सत्य हैं। क्या 'कर्मज्ञान' सच्चा और 'दण्डज्ञान' मिथ्या कभी हो सकता है? इसलिये इसमें कोई भी दोष नहीं आता।

प्रश्न—जीव शरीर में भिन्न विभु है, वा परिच्छिन्न?

उत्तर—परिच्छिन्न। जो विभु होता तो जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, जन्म, संयोग, वियोग, जाना, आना कभी नहीं हो सकता। इसलिये जीव का स्वरूप अल्पज्ञ, अल्प अर्थात् सूक्ष्म है और परमेश्वर का अति सूक्ष्म, अनन्त, सर्वज्ञ और सर्वव्यापकस्वरूप है। इसलिये जीव और परमेश्वर का 'व्याप्य-व्यापक' सम्बन्ध है।

प्रश्न—जिस जगह में एक वस्तु होती है, उस जगह में दूसरी वस्तु नहीं रह सकती। इसलिये जीव और ईश्वर का संयोग सम्बन्ध हो सकता है, व्याप्य-व्यापक नहीं।

उत्तर—यह नियम समान आकार वाले पदार्थों में घट सकता है, असमानाकृति में नहीं। जैसे लोहा स्थूल, अग्नि सूक्ष्म होता है, इस कारण से लोहे में विद्युत् अग्नि व्यापक होकर एक ही अवकाश में दोनों रहते हैं, वैसे जीव परमेश्वर से स्थूल और परमेश्वर-जीव से सूक्ष्म होने से परमेश्वर व्यापक और जीव व्याप्य है। जैसा यह व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध जीव-ईश्वर का है, वैसे ही सेव्य-सेवक, आधाराधेय, स्व-स्वामी, राजा-प्रजा और पिता-पुत्र आदि भी सम्बन्ध हैं।

प्रश्न—ब्रह्म और जीव जुदे हैं वा एक?

उत्तर—अलग-अलग हैं।

प्रश्न—जो पृथक्-पृथक् हैं तो—

प्रज्ञानं ब्रह्म॥ १॥ [ऐतरेय उप० ३।५।३]

अहं ब्रह्मास्मि॥ २॥ [बृ० आ० उ १।४।१०; शत० ४।३।२।२१]

तत्त्वमसि॥ ३॥ [छां० उप० ६।८।७]

और **अयमात्मा ब्रह्म॥ ४॥**

[माण्डूक्योप० २; शत० ब्रा० १४।४।५।१४]

वेदों के इन 'महावाक्यों' का अर्थ क्या है?

उत्तर—ये वेदवाक्य ही नहीं हैं, किन्तु ब्राह्मण-ग्रन्थों के वचन हैं, और इनका नाम 'महावाक्य' कहीं सत्यशास्त्रों में नहीं लिखा।

अर्थ—अर्थात् ब्रह्म प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप है॥ १॥

(अहम्) मैं (ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्मस्थ (अस्मि) हूँ। यहां 'तात्स्थ्योपाधि' है, जैसे '**मञ्चाः क्रोशन्ति**' मचान पुकारते हैं। मचान जड़ हैं, उनमें पुकारने का सामर्थ्य नहीं, इसलिये मञ्चस्थ मनुष्य पुकारते हैं। इसी प्रकार यहां भी जानना। कोई कहै कि ब्रह्मस्थ सब पदार्थ हैं, पुनः जीव को ब्रह्मस्थ कहने में क्या विशेष है? इसका उत्तर यह है कि सब पदार्थ ब्रह्मस्थ हैं, परन्तु जैसा साधर्म्ययुक्त निकटस्थ जीव है, वैसा अन्य नहीं। और जीव को ब्रह्म का ज्ञान और मुक्ति में वह ब्रह्म के साक्षात्सम्बन्ध में रहता है, इसलिये जीव का ब्रह्म के साथ 'तात्स्थ्य' वा 'तत्सहचरितोपाधि' अर्थात् ब्रह्म का सहचारी जीव है। इससे जीव और ब्रह्म एक नहीं। जैसे कोई किसी से कहै कि मैं और यह एक हैं अर्थात् अविरोधी हैं, वैसे जो जीव समाधिस्थ, परमेश्वर में प्रेमबद्ध होकर निमग्न होता है, वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एक अवकाशस्थ हैं। जो जीव परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल अपने गुण-कर्म-स्वभाव करता है, वही साधर्म्य से ब्रह्म के साथ एकता कह सकता है॥ २॥

प्रश्न—अच्छा तो इसका अर्थ कैसा करोगे (तत्) ब्रह्म (त्वं) तू जीव (असि) है। हे जीव! (त्वम्) तू (तत्) वह ब्रह्म (असि) है।

उत्तरपक्ष—तुम 'तत्' शब्द से क्या लेते हो?

पूर्वपक्ष—'ब्रह्म'।

उत्तरपक्ष—ब्रह्म पद की अनुवृत्ति कहां से लाये?

पूर्वपक्ष—'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म॥'

इस पूर्व वाक्य से।

उत्तरपक्ष—तुमने इस छान्दोग्य उपनिषद् का दर्शन भी नहीं किया, जो वह देखी होती तो ऐसा झूठ क्यों कहते? वहां 'ब्रह्म' शब्द का पाठ ही नहीं है। किन्तु छान्दोग्य में तो—

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्॥

ऐसा पाठ है, वहां 'ब्रह्म' शब्द नहीं।

प्रश्न—तो आप तच्छब्द से क्या लेते हैं?

उत्तर—स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति॥ —छान्दो० [६।८।७]॥

वह परमात्मा जानने योग्य है, जो यह अत्यन्त सूक्ष्म और इस सब जगत् और जीव का आत्मा है। वही सत्यस्वरूप और अपना आत्मा आप ही है। हे श्वेतकेतो! प्रिय पुत्र! '**तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि**' उस परमात्मा अन्तर्य्यामी से तू युक्त है। यही सब अर्थ उपनिषदों से अविरुद्ध है। क्योंकि—

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्।
य आत्मानमन्तरो यमयति स तऽआत्मान्तर्याम्यमृतः॥

—यह बृहदारण्यक का वचन है [शत० ब्रा० १४।५।५।३०॥
तुलना—काण्व बृ० आ० उप० ३।७।२२]॥

महर्षि याज्ञवल्क्य उद्दालक से कहते हैं कि "हे उद्दालक! जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीव में स्थित और जीवात्मा से भिन्न है, जिसको मूढ़ जीवात्मा नहीं जानता कि वह परमात्मा मेरे में व्यापक है। जिस परमेश्वर का जीवात्मा शरीर अर्थात् जैसे शरीर में जीव रहता है, वैसे जीव में परमेश्वर व्यापक है। जीवात्मा से भिन्न रहकर जीव के पाप-पुण्यों का साक्षी होकर उनके फल जीव को देकर नियम में रखता है, वही अविनाशीस्वरूप तेरा भी अन्तर्य्यामी आत्मा अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है, उसको तू जान"। इत्यादि वचनों का क्या कोई अन्यथा अर्थ कर सकता है?॥ ३॥

'**अयमात्मा ब्रह्म**' अर्थात् समाधिदशा में जब योगी को परमेश्वर प्रत्यक्ष होता है तब वह कहता है कि "यह जो मेरे में व्यापक है, वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है"। इसलिये जो आजकल के वेदान्ती जीव-ब्रह्म की एकता करते हैं, वे वेदान्तशास्त्र को नहीं जानते।

प्रश्न—

अनेनात्मना जीवेनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि॥ १॥

—छान्दोग्य० [उप० ६।३।२]

तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्॥ –तैत्तिरीय० [ब्रह्मान० अनु० ६]॥

परमेश्वर कहता है कि मैं जगत् और शरीर को रच कर जगत् में व्यापक और जीवरूप होके शरीर में प्रविष्ट होता हुआ नाम और रूप की व्याख्या करूं॥ १॥

परमेश्वर ने उस जगत् और शरीर को बना कर, उसमें वही प्रविष्ट हुआ। इत्यादि श्रुतियों का अर्थ दूसरा कैसे कर सकोगे॥ २॥

उत्तर—जो तुम पद, पदार्थ और वाक्यार्थ जानते तो ऐसा अनर्थ कभी न करते। क्योंकि यहां ऐसा समझो—एक 'प्रवेश' और दूसरा 'अनुप्रवेश' अर्थात् पश्चात् प्रवेश कहाता है। परमेश्वर शरीर में प्रविष्ट हुए जीवों के साथ अनुप्रविष्ट के समान होकर वेद द्वारा सब नामरूपादि की विद्या को प्रकट करता है। और शरीर में जीव को प्रवेश करा, आप जीव के भीतर अनुप्रविष्ट हो रहा है। जो तुम 'अनु' शब्द का अर्थ जानते, तो वैसा विपरीत अर्थ कभी न करते।

प्रश्न—'**सोऽयं देवदत्तो य उष्णकाले काश्यां दृष्टः, स इदानीं प्रावृट्समये मथुरायां दृश्यते**' अर्थात् जो देवदत्त मैंने उष्णकाल में काशी में देखा था, उसको वर्षा समय में मथुरा में देखता हूं। यहां वह काशी देश उष्णकाल, यह मथुरा देश और वर्षाकाल को छोड़ कर शरीरमात्र में लक्ष्य करने से ही देवदत्त लक्षित होता है, वैसे इस भागत्यागलक्षणा से ईश्वर का परोक्ष देश, काल, माया, उपाधि और जीव का यह देश, काल, अविद्या और अल्पज्ञता उपाधि छोड़ चेतनमात्र में लक्ष्य देने से एक ही ब्रह्म वस्तु दोनों में लक्षित होता है। इस 'भागत्यागलक्षणा' अर्थात् कुछ ग्रहण करना और कुछ छोड़ देना—जैसा सर्वज्ञत्वादि वाच्यार्थ ईश्वर का और अल्पज्ञत्वादि वाच्यार्थ जीव का छोड़ कर चेतनमात्र लक्ष्यार्थ का ग्रहण करने से 'अद्वैत' सिद्धि होती है, यहां क्या कह सकोगे?

उत्तर—प्रथम तुम जीव और ईश्वर को नित्य मानते हो, वा अनित्य।

प्रश्न—इन दोनों को उपाधिजन्य कल्पित होने से अनित्य मानते हैं।

उत्तर—उस उपाधि को नित्य मानते हो, वा अनित्य?

प्रश्न—हमारे मत में—

जीवेशौ च विशुद्धाचिद् विभेदस्तु तयोर्द्वयोः।
अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः॥ १ ॥

[विद्यारण्य विरचित 'अनुभूतिप्रकाश' अ० १। श्लो० ६१]

कार्य्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः।
कार्य्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते॥ २ ॥

—ये 'संक्षेपशारीरक' और 'शारीरकभाष्य' में कारिका हैं।

[अप्पयदीक्षित रचित नारायणयन्त्र-कलकत्तामुद्रित-सिद्धान्तलेशसंग्रह]

हम वेदान्ती छः पदार्थों अर्थात् एक जीव, दूसरा ईश्वर, तीसरा ब्रह्म, चौथा जीव और ईश्वर का विशेष भेद, पाँचवां अविद्या अज्ञान, और छठा अविद्या और चेतन का योग इनको अनादि मानते हैं। परन्तु एक ब्रह्म अनादि, अनन्त और अन्य पांच अनादि सान्त हैं, जैसाकि प्रागभाव होता है। जब तक अज्ञान रहता है, तब तक ये पाँच रहते हैं। और इन पाँच की आदि विदित नहीं होती, इसलिये 'अनादि' और ज्ञान होने के पश्चात् नष्ट हो जाते हैं, इसलिये 'सान्त' अर्थात् नाशवाले कहाते हैं।

उत्तर—यह तुम्हारे दोनों श्लोक शुद्ध नहीं, क्योंकि अविद्या के योग के विना जीव और माया के योग के विना ईश्वर तुम्हारे मत में सिद्ध नहीं हो सकता। इससे '**तच्चितोर्योगः**' जो छठा पदार्थ तुमने गिना है, वह नहीं रहा। क्योंकि वह अविद्या माया जीव ईश्वर में चरितार्थ हो गया और ब्रह्म तथा माया और अविद्या के योग के विना ईश्वर नहीं बनता, फिर ईश्वर को अविद्या और ब्रह्म से पृथक् गिनना व्यर्थ है। इसलिये दो ही पदार्थ अर्थात् ब्रह्म और अविद्या तुम्हारे मत में सिद्ध हो सकते हैं, छः नहीं॥ १ ॥

तथा आपका प्रथम कार्योपाधि और कारणोपाधि से जीव और ईश्वर का सिद्ध करना तब हो सकता कि जब अनन्त, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक ब्रह्म में अज्ञान सिद्ध करें। जो उसके एक देश में स्वाश्रय और स्वविषयक अज्ञान अनादि सर्वत्र मानोगे तो सब ब्रह्म शुद्ध नहीं हो सकता। और जब एक देश में अज्ञान मानोगे

तो वह परिच्छिन्न होने से इधर-उधर आता-जाता रहेगा। जहां-जहां जायेगा, वहां-वहां का ब्रह्म अज्ञानी और जिस-जिस देश को छोड़ता जायेगा, उस-उस देश का ब्रह्म ज्ञानी होता रहेगा तो किसी देश के ब्रह्म को अनादि शुद्ध ज्ञानयुक्त न कह सकोगे और जो अज्ञान की सीमा में ब्रह्म है, वह अज्ञान को जानेगा। बाहर और भीतर के ब्रह्म के टुकड़े हो जायेंगे।

जो कहो कि टुकड़ा हो जाओ ब्रह्म की क्या हानि? तो अखण्ड नहीं। और जो अखण्ड है तो अज्ञानी नहीं। तथा ज्ञान के अभाव वा विपरीत ज्ञान भी गुण होने से किसी द्रव्य के साथ नित्य सम्बन्ध से रहेगा। यदि ऐसा है तो समवायसम्बन्ध होने से अनित्य कभी नहीं हो सकता। और जैसे शरीर के एक देश में फोड़ा होने से सर्वत्र दुःख फैल जाता है, वैसे ही एक देश में अज्ञान, सुख-दुःख, क्लेशों की उपलब्धि होने से सब ब्रह्म दुःखादि के अनुभवयुक्त होगा और सब ब्रह्म को शुद्ध न कह सकोगे। वैसे ही 'कार्योपाधि' अर्थात् अन्तःकरण की उपाधि के योग से ब्रह्म को जीव मानोगे, तो हम पूछते हैं कि ब्रह्म व्यापक है, वा परिच्छिन्न? जो कहो व्यापक और उपाधि 'परिच्छिन्न' है अर्थात् एकदेशी और पृथक्-पृथक् है, तो अन्तःकरण चलता-फिरता है, वा नहीं?

उत्तर—चलता-फिरता है।

प्रश्न—अन्तःकरण के साथ ब्रह्म भी चलता-फिरता है, वा स्थिर रहता है?

उत्तर—स्थिर रहता है।

प्रश्न—जब अन्तःकरण जिस-जिस देश को छोड़ता है, उस-उस देश का ब्रह्म अज्ञानरहित और जिस-जिस देश को प्राप्त होता है उस-उस देश का शुद्ध ब्रह्म अज्ञानी होता होगा। वैसे क्षण में ज्ञानी और अज्ञानी ब्रह्म होता रहेगा। इससे मोक्ष और बन्ध भी क्षणभङ्ग होगा। और जैसे अन्य के देखे का अन्य स्मरण नहीं कर सकता, वैसे कल की देखी-सुनी हुई वस्तु वा बात का ज्ञान नहीं रह सकता। क्योंकि जिस समय देखा-सुना था, वह दूसरा देश और दूसरा काल, जिस समय स्मरण करता है, वह दूसरा देश और काल है। जो कहो कि ब्रह्म एक

है। तो सर्वज्ञ क्यों नहीं? जो कहो कि अन्त:करण भिन्न-भिन्न हैं, इससे वह भी भिन्न-भिन्न हो जाता होगा। तो वह जड़ है, उसमें ज्ञान नहीं हो सकता। जो कहो कि न केवल ब्रह्म और न केवल अन्त:करण को ज्ञान होता है, किन्तु अन्त:करणस्थ चिदाभास को ज्ञान होता है। तो भी चेतन ही को अन्त:करण द्वारा ज्ञान हुआ, तो वह नेत्रद्वारा अल्प अल्पज्ञ क्यों है? इसलिये कारणोपाधि और कार्योपाधि के योग से ब्रह्म, जीव और ईश्वर नहीं बना सकोगे। किन्तु 'ईश्वर' नाम ब्रह्म का है और ब्रह्म से भिन्न अनादि, अनुत्पन्न और अमृतस्वरूप जीव का नाम जीव है। जो तुम कहो कि जीव 'चिदाभास' का नाम है, तो वह क्षणभङ्ग होने से वही 'प्रत्यभिज्ञा' का भङ्ग दोष आया और 'अनिर्मोक्षापत्ति' भी आती है, क्योंकि जीव उत्पन्न होने से नष्ट हो जायगा, तो मोक्ष का सुख कौन भोगेगा? इसलिये ब्रह्म जीव और जीव ब्रह्म कभी एक न हुआ, न है और न होगा॥ २॥

प्रश्न—तो '**सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्**'॥

—छान्दोग्य० ॥

अद्वैतसिद्धि कैसे होगी? हमारे मत में तो ब्रह्म से पृथक् कोई सजातीय, विजातीय वस्तु और स्वगत अवयवों के भेद न होने से एक ब्रह्म ही सिद्ध होता है। जब जीव दूसरा है तो अद्वैतसिद्धि कैसे हो सकती है?

उत्तर—इस भ्रम में पड़ क्यों डरते हो? विशेष्य-विशेषण विद्या का विचार करो कि उसका क्या फल है। जो कहो कि '**व्यावर्त्तकं विशेषणं**' विशेषण भेदकारक होता है, तो इतना और भी मानो कि '**प्रवर्त्तकं प्रकाशकमपि विशेषणं भवतीति**' विशेषण प्रवर्त्तक और प्रकाशक धर्मवाला भी होता है। तो कहिये कि अद्वैत विशेषण ब्रह्म का है। इसमें व्यावर्त्तक धर्म यह है कि 'द्वैत वस्तु' अर्थात् जैसे अनेक जीव और तत्त्व हैं, उनसे ब्रह्म को पृथक् करता है और विशेषण का प्रवर्त्तक और प्रकाशक धर्म यह है कि ब्रह्म के एक होने की प्रवृत्ति कराता और प्रकाशक है। जैसे "**अस्मिन्नगरेऽद्वितीयो धनाढ्यो देवदत्तः, अस्यां सेनायामद्वितीयः शूरवीरो विक्रमसिंहः।**" किसी ने किसी से कहा

कि "इस नगर में अद्वितीय धनाढ्य देवदत्त और इस सेना में अद्वितीय शूरवीर विक्रमसिंह है।" इससे क्या सिद्ध हुआ कि देवदत्त के सदृश इस नगर में दूसरा धनाढ्य और इस सेना में विक्रमसिंह के समान दूसरा शूरवीर नहीं है। न्यून तो हैं। और पृथिवी आदि जड़ पदार्थ, पश्वादि और वृक्षादि भी हैं, उनका निषेध नहीं हो सकता। वैसे ही ब्रह्म के सदृश जीव वा प्रकृति नहीं है, किन्तु न्यून तो हैं।

इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म सदा एक है और जीव तथा प्रकृतिस्थ तत्त्व अनेक हैं। उनसे भिन्न कर ब्रह्म के एकत्व का सिद्ध करनेहारा 'अद्वैत' वा 'अद्वितीय' विशेषण है। इससे जीव वा प्रकृति का और कार्य्यरूप जगत् का अभाव और निषेध नहीं हो सकता किन्तु ये सब हैं, परन्तु ब्रह्म के तुल्य नहीं। इससे न अद्वैतसिद्धि और न द्वैतसिद्धि की हानि होती है। घबड़ाहट में मत पड़ो, सोचो और समझो।

प्रश्न—ब्रह्म के सत्, चित्, आनन्द और जीव के अस्ति, भाति, प्रियरूप से एकता होती है। फिर क्यों खण्डन करते हो?

उत्तर—किञ्चित् साधर्म्य मिलने से एकता नहीं हो सकती। जैसे पृथिवी जड़, दृश्य है, वैसे जल और अग्नि आदि भी जड़ और दृश्य हैं, इतने से एकता नहीं होती। इनमें वैधर्म्य भेदकारक अर्थात् विरुद्ध धर्म जैसे गन्ध, रूक्षता, काठिन्य आदि गुण पृथिवी, और रस, द्रवत्व, कोमलत्वादि धर्म जल, और रूप, दाहकत्वादि धर्म अग्नि के होने से एकता नहीं। जैसे मनुष्य और कीड़ी आंख से देखते, मुख से खाते, पग से चलते हैं तथापि मनुष्य की जाति, आकृति, दो पग और कीड़ी की जाति, आकृति, अनेक पग आदि भिन्न होने से एकता नहीं होती, वैसे परमेश्वर के अनन्त ज्ञान, आनन्द, बल, क्रिया, निर्भ्रान्तित्व और व्यापकता जीव से और जीव के अल्पज्ञान, अल्पबल, अल्पस्वरूप, सभ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण ब्रह्म से भिन्न होने से जीव और परमेश्वर एक नहीं, क्योंकि इनका स्वरूप भी, परमेश्वर अतिसूक्ष्म और जीव उससे कुछ स्थूल होने से, भिन्न है।

प्रश्न—अथोदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयं भवति।

—यह बृहदारण्यक का वचन है [तु०—तै० उप० ब्र० व० अनु० ७]

द्वितीयाद्वै भयं भवति॥

—यह बृहदारण्यक [उप० १।४।२] का वचन है।

जो ब्रह्म और जीव में थोड़ा भी भेद करता है, उसको भय प्राप्त होता है, क्योंकि दूसरे ही से भय होता है।

उत्तर—इसका अर्थ यह नहीं है। किन्तु जो जीव परमेश्वर का निषेध वा किसी एक देश-काल में परिच्छिन्न परमात्मा को माने, वा उसकी आज्ञा और गुण-कर्म-स्वभाव से विरुद्ध होवे, अथवा किसी दूसरे मनुष्य से वैर करे, उसको भय प्राप्त होता है, क्योंकि 'द्वितीय बुद्धि' अर्थात् ईश्वर से मुझसे कुछ सम्बन्ध नहीं, तथा किसी मनुष्य से कहे कि "तुझको मैं कुछ भी नहीं समझता, तू मेरा कुछ भी नहीं कर सकता", वा किसी की हानि करता और दुःख देता जाय, तो उसको उनसे भय होता है। और सब प्रकार अविरोध हो तो वे एक कहाते हैं। जैसा संसार में कहते हैं कि देवदत्त, यज्ञदत्त और विष्णुमित्र एक हैं, अर्थात् अविरुद्ध हैं अर्थात् विरोध न रहने से सुख और विरोध से दुःख प्राप्त होता है।

प्रश्न—ब्रह्म और जीव की सदा एकता अनेकता रहती है, वा कभी दोनों मिलके एक भी होते हैं, वा नहीं?

उत्तर—अभी इसके पूर्व कुछ उत्तर दे दिया है, परन्तु साधर्म्य अन्वयभाव से एकता होती है। जैसे आकाश से मूर्त्त द्रव्य जड़त्व होने से और कभी पृथक् न रहने से एकता और आकाश के विभु, सूक्ष्म, अरूप, अनन्त आदि गुण और मूर्त्त के परिच्छिन्न, दृश्यत्व आदि वैधर्म्य से भेद होता है, अर्थात् जैसे पृथिव्यादि-द्रव्य आकाश से भिन्न कभी नहीं रहते। क्योंकि 'अन्वय' अर्थात् अवकाश के विना मूर्त्त-द्रव्य कभी नहीं ठहर सकता और 'व्यतिरेक' अर्थात् स्वरूप से भिन्न होने से पृथक्ता है। वैसे ब्रह्म के व्यापक होने से जीव और पृथिवी आदि द्रव्य उससे अलग नहीं रहते और स्वरूप से एक भी नहीं होते। जैसे घर के बनाने के पूर्व भिन्न-भिन्न देश में मट्टी, लकड़ी, लोहा आकाश ही में रहते हैं, जब घर बन गया तब भी आकाश में हैं और जब वह नष्ट हो गया अर्थात् उसके सब अवयव भिन्न-भिन्न देश में प्राप्त हो गये, तब भी

आकाश में हैं। अर्थात् तीन काल में आकाश से भिन्न नहीं हो सकते और स्वरूप से भिन्न होने से न कभी एक थे, [न] हैं और [न] होंगे। इसी प्रकार जीव तथा सब संसार के पदार्थ परमेश्वर में व्याप्य होने से परमात्मा से तीनों कालों में न भिन्न और स्वरूप से भिन्न होने से एक भी कभी नहीं होते। आजकल के वेदान्तियों की दृष्टि काणे पुरुष के समान अन्वय की ओर पड़ के व्यतिरेकभाव से छूट विरुद्ध हो गई है। कोई भी ऐसा द्रव्य नहीं है कि जिसमें सगुणनिर्गुणता, अन्वय-व्यतिरेक, साधर्म्य-वैधर्म्य और विशेष्य-विशेषण भाव न हो।

प्रश्न—परमेश्वर सगुण है, वा निर्गुण?

उत्तर—दोनों प्रकार है।

प्रश्न—भला एक मियान में दो तलवार कभी रह सकती हैं! एक पदार्थ में सगुण और निर्गुणता कैसे रह सकती हैं?

उत्तर—जैसे जड़ के रूपादि गुण हैं और चेतन के ज्ञानादि गुण जड़ में नहीं हैं, वैसे चेतन में इच्छादि गुण हैं और रूपादि जड़ के गुण नहीं हैं। इसलिये **'यद्गुणैस्सह वर्त्तमानं तत्सगुणम्' 'गुणेभ्यो यन्निर्गतं पृथग्भूतं तन्निर्गुणम्'** जो गुणों से सहित वह 'सगुण' और जो गुणों से रहित वह 'निर्गुण' कहाता है। अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिसमें केवल निर्गुणता वा केवल सगुणता हो, किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्तज्ञान-बलादि गुणों से सहित होने से 'सगुण' और रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर 'निर्गुण' कहाता है।

प्रश्न—संसार में निराकार को निर्गुण और साकार को सगुण कहते हैं। अर्थात् जब परमेश्वर जन्म नहीं लेता, तब 'निर्गुण' और जब अवतार लेता है, तब 'सगुण' कहाता है?

उत्तर—यह कल्पना केवल अज्ञानियों की है। जिनको विद्या नहीं होती, वे पशु के समान यथा-तथा बर्ड़ाया करते हैं। जैसे सन्निपात-ज्वरयुक्त मनुष्य अण्डबण्ड बकता है, वैसे ही अविद्वानों के कहे वा

लेख को व्यर्थ समझना चाहिये।

प्रश्न—परमेश्वर रागी है, वा विरक्त?

उत्तर—दोनों नहीं। क्योंकि राग अपने से भिन्न उत्तम पदार्थों में होता है, सो परमेश्वर से कोई पदार्थ पृथक् वा उत्तम नहीं है, इसलिये उसमें 'राग' का सम्भव नहीं। और जो प्राप्त को छोड़ देवे, उसको 'विरक्त' कहते हैं। ईश्वर व्यापक होने से किसी पदार्थ को छोड़ नहीं सकता, इसलिये विरक्त भी नहीं है।

प्रश्न—ईश्वर में इच्छा है, वा नहीं?

उत्तर—वैसी इच्छा नहीं। क्योंकि इच्छा भी अप्राप्त, उत्तम और जिसकी प्राप्ति से सुख-विशेष होवे, तो ईश्वर में इच्छा हो सके। न उससे कोई अप्राप्त पदार्थ, न कोई उससे उत्तम, और पूर्ण सुखयुक्त होने से सुख की अभिलाषा भी नहीं है। इसलिये ईश्वर में इच्छा का तो सम्भव नहीं, किन्तु 'ईक्षण' अर्थात् सब प्रकार की विद्या का दर्शन और सब सृष्टि का करना कहाता है, वह ईक्षण है। इत्यादि संक्षिप्त विषय ही से सज्जन लोग बहुत विस्तरण कर लेंगे।

अब संक्षेप से ईश्वर का विषय लिखकर वेद का विषय लिखते हैं—

यस्मा॒दृचो॑ अ॒पात॑क्षन् यजु॒र्यस्मा॑द॒पाक॑षन्। सामा॑नि॒ यस्य॒ लोमा॑न्यथर्वाङ्गि॒रसो॒ मुखं॑ स्क॒म्भन्तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः॥

—अथर्व० कां० १०। प्रपा० २३। अनु० ४। मं० २०

जिस परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद प्रकाशित हुए हैं, वह कौन-सा देव है?

इसका **उत्तर**—जो सबको उत्पन्न करके धारण कर रहा है, वह परमात्मा है।

स्व॒य॒म्भूर्या॑थातथ्य॒तोऽर्था॒न् व्य॒दधाच्छाश्व॒तीभ्य॒ः समा॑भ्यः॥

—यजुः० अ० ४०। मं० ८॥

जो स्वयम्भू, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है, वह सनातन जीवरूप प्रजा के कल्याणार्थ यथावत् रीतिपूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है।

प्रश्न—परमेश्वर को आप निराकार मानते हो वा साकार?

उत्तर—निराकार मानते हैं।

प्रश्न—जब निराकार है तो वेदविद्या का उपदेश विना मुख के वर्णोच्चारण कैसे हो सका होगा? क्योंकि वर्णों के उच्चारण में ताल्वादि स्थान, जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिये।

उत्तर—परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से जीवों को अपनी विद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है। क्योंकि मुख-जिह्वा से उच्चारण दूसरे भिन्न मनुष्य के लिये किया जाता है, अपने लिये नहीं। विना मुख और जिह्वा के मन में अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। कानों को अंगुलियों से मूंद देखो, सुनो कि विना मुख-जिह्वा-ताल्वादि स्थानों के कैसे-कैसे शब्द हो रहे हैं, वैसे जीवों को अन्तर्यामीरूप से उपदेश किया है। किन्तु केवल दूसरे को समझाने के लिये उच्चारण किया जाता है। जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है तो अपनी विद्या का उपदेश जीवस्थ स्वरूप से जीवात्मा में प्रकाशित कर देता है। फिर वह मनुष्य अपने मुख से उच्चारण करके दूसरे को सुनाता है, इसलिये यहां दोष नहीं आता।

प्रश्न—किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया?

उत्तर—अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः॥

—शत० [तुलना—११।४।२।३]॥

प्रथम अर्थात् सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा ऋषियों के आत्माओं में एक-एक वेद का प्रकाश किया।

प्रश्न—यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै॥ —यह उपनिषद् का वचन है [तु०—श्वे० उप० ६।१८]॥

इस वचन से ब्रह्माजी के हृदय में वेदों का उपदेश किया है। फिर अग्न्यादि ऋषियों के आत्माओं में क्यों कहा?

उत्तर—ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया। देखो! मनु में क्या लिखा है?

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥ —मनु० [१।२३]

जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों ऋषियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये और उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और [तु अर्थात्] अङ्गिरा से ऋग् यजुः, साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया।

प्रश्न—उन चारों ही में वेदों का प्रकाश किया, अन्य में नहीं। इससे ईश्वर पक्षपाती होता है।

उत्तर—वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्रात्मा थे। अन्य उनके सदृश नहीं थे। इसलिये पवित्र विद्या का उन्हीं में प्रकाश किया।

प्रश्न—किसी देश-भाषा में वेदों का प्रकाश न करके संस्कृत में क्यों किया?

उत्तर—जो किसी देश-भाषा में प्रकाश करता तो ईश्वर पक्षपाती होता, क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाश करता, उनको सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने-पढ़ाने की होती। इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं, और अन्य सब देशभाषाओं का कारण है, उसी में वेदों का प्रकाश किया। जैसे ईश्वर की पृथिवी आदि सृष्टि सब देश और देशवालों के लिये एकसी और सब शिल्पविद्या का कारण है, वैसे परमेश्वर की विद्या की भाषा भी एकसी होनी चाहिये कि सब देशवालों को पढ़ने-पढ़ाने में तुल्य परिश्रम होने से ईश्वर पक्षपाती नहीं होता। और सब भाषाओं का कारण भी है।

प्रश्न—वेद ईश्वरकृत हैं, अन्यकृत नहीं, इसमें क्या प्रमाण?

उत्तर—(१) जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्धगुणकर्म-स्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुणवाला है, वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो, वह ईश्वरकृत; अन्य नहीं।

(२) और जिसमें सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण, आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो, वह ईश्वरोक्त।

(३) जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्तिरहित ज्ञान का प्रतिपादन हो, वह ईश्वरोक्त।

(४) जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टिक्रम रक्खा है वैसा ही ईश्वर, सृष्टि, कार्य, कारण और जीव का प्रतिपादन जिसमें होवे, वह

परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है।

(५) और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण-विषयों से अविरुद्ध, शुद्धात्मा के स्वभाव से विरुद्ध न हो।

इस प्रकार के वेद ही हैं, अन्य बायबिल, कुरान आदि नहीं। इसकी स्पष्ट व्याख्या बायबिल और कुरान के तेरहवें और चौदहवें समुल्लास में की जायगी।

प्रश्न—वेद की ईश्वर से होने की आवश्यकता कुछ भी नहीं, क्योंकि मनुष्य लोग क्रमशः ज्ञान बढ़ाते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना लेंगे।

उत्तर—कभी नहीं बना सकते। क्योंकि विना कारण के कार्योत्पत्ति का होना असम्भव है। जैसे जङ्गली मनुष्य सृष्टि को देखकर भी विद्वान् नहीं होते और जब उनको कोई शिक्षक मिल जाये तो विद्वान् हो जाते हैं और अब भी किसी से पढ़े विना कोई भी विद्वान् नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा उन ऋषियों को वेदविद्या न पढ़ाता और वे अन्य को न पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते। जैसे किसी के बालक को जन्म से एकान्त, अविद्वानों वा पशुओं में रख देवे तो वह जैसा संग है, वैसा ही हो जायगा। इसका दृष्टान्त जङ्गली भील आदि हैं।

जबतक आर्यावर्त्त से शिक्षा नहीं गई थी, तबतक मिश्र, यवन (यूनान) और यूरोप देश आदिस्थ मनुष्यों में कुछ भी विद्या नहीं हुई थी। और इंग्लैण्ड के कुलुम्बस आदि पुरुष अमेरिका में जब तक नहीं गये थे, तब तक वे भी सहस्रों, लाखों, क्रोड़ों वर्षों से मूर्ख थे। अब शिक्षा पाने से विद्वान् हो गये हैं। वैसे ही परमात्मा से सृष्टि की आदि में विद्या-शिक्षा की प्राप्ति से उत्तरोत्तर काल में विद्वान् होते आये।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥

—यह योग सूत्र [समाधिपाद सू० २६] है॥

जैसे वर्त्तमान समय में हम लोग अध्यापकों से पढ़ के ही विद्वान् होते हैं, वैसे परमेश्वर सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए अग्नि आदि ऋषियों का 'गुरु' अर्थात् पढ़ानेहारा है। क्योंकि जैसे जीव सुषुप्ति और प्रलय में ज्ञानरहित हो जाते हैं, वैसा परमेश्वर नहीं होता। उसका ज्ञान नित्य है। इसलिये यह निश्चित जानना चाहिये कि विना निमित्त से

नैमित्तिक अर्थ सिद्ध कभी नहीं होता।

प्रश्न—वेद संस्कृतभाषा में प्रकाशित हुए और वे अग्नि आदि ऋषि लोग उस संस्कृतभाषा को नहीं जानते थे, फिर वेदों का अर्थ उन्होंने कैसे जाना?

उत्तर—परमेश्वर ने जनाया। और धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब-जब जिस-जिस के अर्थ की जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुए, तब-तब परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये। जब बहुतों के आत्माओं में वेदार्थप्रकाश हुआ, तब ऋषि-मुनियों ने वह अर्थ और ऋषि-मुनियों के इतिहासपूर्वक ग्रन्थ बनाये। उनका नाम ब्राह्मण अर्थात् 'ब्रह्म' जो वेद उसका व्याख्यानग्रन्थ होने से 'ब्राह्मण' नाम हुआ। और—

ऋषयो मन्त्रदृष्टयः मन्त्रान्सम्प्रादुः।

निरु० [तुलना—अ० ७। खं० ३]; [अ० १। खं० २०]॥

जिस-जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस-जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरों को पढ़ाया भी, इसलिये अद्यावधि उस-उस मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा लिखाया आता है। जो कोई ऋषियों को मन्त्रकर्त्ता बतलावे, उनको मिथ्यावादी समझें। वे तो मन्त्रों के अर्थप्रकाशक हैं।

प्रश्न—वेद किन ग्रन्थों का नाम है?

उत्तर—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व मन्त्रसंहिताओं का, अन्य का नहीं।

प्रश्न—मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्॥

[—कात्यायनपरिशिष्ट प्रतिज्ञासूत्र १।१]

इत्यादि कात्यायनादिकृत प्रतिज्ञासूत्रादि का अर्थ क्या करोगे?

उत्तर—देखो! संहिता पुस्तक के आरम्भ, अध्याय की समाप्ति में वेद शब्द सनातन से लिखा आता है और ब्राह्मण पुस्तकों के आरम्भ वा अध्याय की समाप्ति में कहीं नहीं लिखा। और निरुक्त में—

इत्यपि निगमो भवति॥ [निरु० ५।३] **इति ब्राह्मणम्॥**

[तु०-निरु० ५।४]

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि॥

—यह पाणिनीय सूत्र है [अष्टा० ४।२।६५]

इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि 'वेद' मन्त्रभाग और 'ब्राह्मण' व्याख्याभाग है। इसमें जो विशेष देखना चाहो तो मेरी बनाई 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' में देख लीजिये। वहां अनेकशः प्रमाणों से, विरुद्ध होने से यह कात्यायन का वचन माननीय नहीं हो सकता है। क्योंकि जो मानें तो वेद सनातन कभी नहीं हो सकें। क्योंकि ब्राह्मण-पुस्तकों में बहुत से ऋषि, महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिसका हो, उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उनके जन्मे पश्चात् होता है ऐसा सिद्ध हो जावे। वेदों में किसी का इतिहास नहीं; किन्तु जिस-जिस शब्द से विद्या का बोध होवे, उस-उस शब्द का प्रयोग किया है। किसी विशेष मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं।

प्रश्न—वेदों की कितनी शाखा हैं?

उत्तर—एक हजार एक सौ सत्ताईस।

प्रश्न—शाखा क्या कहाती हैं?

उत्तर—व्याख्यान को 'शाखा' कहते हैं।

प्रश्न—संसार में विद्वान् लोग वेद के अवयवभूत विभाग को शाखा मानते हैं?

उत्तर—तनिक-सा विचार करो तो ठीक, क्योंकि जितनी शाखा हैं वे आश्वलायन आदि ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं और मन्त्रसंहिता परमेश्वर के नाम से प्रख्यात हैं। जैसे चारों वेदों को परमेश्वरकृत मानते हैं, वैसे आश्वलायनी आदि शाखाओं को उस-उस ऋषिकृत मानते हैं और सब शाखाओं में मन्त्रों की प्रतीक धर के व्याख्या करते हैं। जैसे तैत्तिरीय शाखा में '**इषे त्वोर्जे त्वा**' **इति,** इत्यादि प्रतीकें धर के व्याख्यान किया है और वेदसंहिताओं में किसी की प्रतीक नहीं धरी। इसलिये परमेश्वरकृत चारों वेद मूल-वृक्ष और आश्वलायनादि सब शाखा ऋषि-मुनिकृत हैं, परमेश्वरकृत नहीं। इसकी विशेष व्याख्या देखना चाहै, वह 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' में देख लेवे। जैसे माता-पिता अपने

सन्तानों पर कृपादृष्टि कर उन्नति चाहते हैं, वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है। जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार भ्रमजाल से छूटकर विद्या विज्ञानरूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहैं और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जायें।

प्रश्न—वेद नित्य हैं, वा अनित्य?

उत्तर—'नित्य' हैं। क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव नित्य और अनित्य द्रव्य के 'अनित्य' होते हैं।

प्रश्न—क्या यह पुस्तक भी नित्य है?

उत्तर—नहीं। क्योंकि पुस्तक तो कागज और स्याही का बना है, वह नित्य कैसे हो सकता है? किन्तु जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध हैं, वे नित्य हैं।

प्रश्न—ईश्वर ने उन ऋषियों को ज्ञान दिया होगा और उस ज्ञान से उन लोगों ने वेद बना लिये होंगे?

उत्तर—ज्ञान ज्ञेय के विना नहीं होता। गायत्र्यादि छन्द, षड्जादि और उदात्ताऽनुदात्तादि स्वर के ज्ञानपूर्वक गायत्र्यादि छन्दों का निर्माण करना, विना सर्वज्ञ के किसी का सामर्थ्य नहीं है कि इस प्रकार का सर्वज्ञानयुक्त शास्त्र बना सके। हाँ, वेद को पढने के पश्चात् व्याकरण, निरुक्त और छन्द आदि ग्रन्थ ऋषि-मुनियों ने विद्याओं के प्रकाश के लिये किये हैं। जो परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे, तो कोई कुछ भी न बना सके। इसलिए वेद परमेश्वरोक्त हैं। इसी के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिये और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा मत क्या है? तो यही उत्तर देना कि हमारा मत 'वेद' अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है, हम उस सब को मानते हैं।

इसके आगे सृष्टि के विषय में लिखेंगे। यह संक्षेप से ईश्वर और वेदविषय में व्याख्यान किया है॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामीकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषित ईश्वरवेदविषये
सप्तमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥७॥

अथाष्टमसमुल्लासारम्भः

अथ सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयविषयान् व्याख्यास्यामः

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥१॥

—ऋ०। म० १०। सू० १२९। मं० ७॥

तम आसीत्तमसा गूहळमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्॥२॥

—ऋ०। मं० [१०]। सू० [१२९]। मं० [३]॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥३॥

—ऋ०। म० १०। सू० १२१। मं० १॥

पुरुषऽएवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥४॥

—यजुः० अ० ३१। मं० २॥

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति॥५॥

—तैत्तिरीयोपनि० [भृगुवल्ली। अनु० १]॥

हे (अङ्ग) मनुष्य! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो धारण और प्रलयकर्त्ता है, जो इस जगत् का स्वामी, जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है, सो परमात्मा है, उसको तू जान और दूसरे को सृष्टिकर्त्ता मत मान॥१॥

यह सब जगत् सृष्टि के पहिले अन्धकार से आवृत, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाशरूप सब जगत्, तथा 'तुच्छ' अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सामने एकदेशी आच्छादित था, पश्चात् परमेश्वर ने अपने महिमा (सामर्थ्य) से कारणरूप से कार्यरूप कर दिया है॥२॥

हे मनुष्यो! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का आधार और जो यह जगत् हुआ था, है और होगा, उसका एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था, और जिसने पृथिवी से लेके सूर्य्यपर्यन्त जगत् को उत्पन्न किया है, उस परमात्मा देव की प्रेम से भक्ति किया करें॥ ३॥

हे मनुष्यो! जो सब में पूर्ण पुरुष और जो नाशरहित कारण और जीव का स्वामी, जो पृथिव्यादि जड़ और जीव से अतिरिक्त है, वही पुरुष इस सब भूत, भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगत् को बनाने वाला है॥ ४॥

जिस परमात्मा की रचना से ये सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं, जिससे जीवते और जिसमें प्रलय को प्राप्त होते हैं, वह 'ब्रह्म' है, उसके जानने की इच्छा करो॥ ५॥

जन्माद्यस्य यतः॥ —शारीरक सू० अ० १। [पा० १]। सू० २॥

जिससे इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है, वही 'ब्रह्म' जानने के योग्य है।

प्रश्न—यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है, वा अन्य से?

उत्तर—निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है, परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है।

प्रश्न—क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की?

उत्तर—नहीं। वह अनादि है।

प्रश्न—अनादि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं?

उत्तर—ईश्वर, जीव और जगत् का कारण, ये तीन 'अनादि' हैं?

प्रश्न—इसमें क्या प्रमाण है?

उत्तर—**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥ १॥**

—ऋ०। म० १। सू० १६४। मं० २०॥

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ २॥ —यजुः० अ० ४०। मं ८॥

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से कुछ सदृश (सयुजा) व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त, सनातन अनादि हैं; और (समानम्) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न-भिन्न हो जाता है, वह तीसरा अनादि पदार्थ; इन तीनों के गुण, कर्म, स्वभाव भी अनादि हैं। इन (तयोरन्यः) जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसार में पापपुण्यरूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोगता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोगता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर-बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न-स्वरूप, तीनों '**अनादि**' हैं॥ १॥

(शाश्वती०) अर्थात् अनादि सनातन जीवरूप प्रजा के लिये वेद द्वारा परमात्मा ने सब विद्याओं का बोध किया है॥ २॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां,
बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते,
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥

—उपनि० [श्वे० उप०। अ० ४। मं० ५]॥

प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों 'अज' अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता, कभी ये जन्म नहीं लेते, अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं, इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फसता है और उसमें परमात्मा न फसता और न उसका भोग करता है।

ईश्वर और जीव का लक्षण ईश्वर-विषय में कह आये। अब प्रकृति का लक्षण लिखते हैं—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः॥

—यह सांख्यसूत्र है [अ० १। सू० ६१]

(सत्त्व) शुद्ध, (रजः) मध्य, (तमः) जाड्य अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है, उसका नाम 'प्रकृति' है। उससे 'महत्तत्व'

बुद्धि, उससे 'अहङ्कार', अहंकार से पांच 'तन्मात्रा', सूक्ष्म-भूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन, पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पांच भूत, ये चौबीस और पच्चीसवां 'पुरुष' अर्थात् जीव और परमेश्वर है। इनमें से प्रकृति अविकारिणी; और महत्तत्व, अहङ्कार तथा पांच सूक्ष्म-भूत प्रकृति का कार्य्य और इन्द्रियां मन तथा स्थूल-भूतों का कारण हैं। और पुरुष न किसी की प्रकृति, उपादानकारण और न किसी का कार्य्य है।

प्रश्न—सदेव सोम्येदमग्र आसीत्॥ १॥

[छां० उप०। प्र० ६। खं० २]

असद्वा इदमग्र आसीत्॥ २॥

[तै० उप०। ब्र० वल्ली। अनु० ७]

आत्मा वा इदमग्र आसीत्॥ ३॥

[तु०—बृ० उप०। अ० १। ब्रा० ४। कं० १]

ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्॥ ४॥

—ये उपनिषदों के वचन हैं [शत० ११।१।११।१]॥

हे श्वेतकेतो! यह जगत् सृष्टि के पूर्व—

सत्॥ १॥ असत्॥ २॥ आत्मा॥ ३॥ और ब्रह्मरूप था॥ ४॥ पश्चात्—

तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति॥ १॥

[छां० उप० प्र० ६। खं० २। मं० ३]

सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति॥ २॥

—यह तैत्तिरीयोपनिषद् [ब्र० वल्ली। अनु० ६] का वचन है॥

वही परमात्मा अपनी इच्छा से बहुरूप हो गया है॥ १-२॥

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन॥

—यह उपनिषद् का वचन है॥

जो यह जगत् है, वह सब निश्चय करके ब्रह्म है। उसमें दूसरे नाना प्रकार के पदार्थ कुछ भी नहीं किन्तु सब ब्रह्मरूप है।

उत्तर—क्यों इन वचनों का अनर्थ करते हो? क्योंकि उन्हीं उपनिषदों में—

सोम्यान्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिस्सोम्य शुङ्गेन तेजो-मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः॥

—छान्दोग्य उपनि० [प्र० प्र० ६। खं० ८। मं० ४]॥

हे श्वेतकेतो! अन्नरूप पृथिवी कार्य्य से जलरूप मूल कारण को तू जान। कार्यरूप जल से तेजोरूप मूल और तेजोरूप कार्य से सद्रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उसको जान। यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत् का मूल घर और स्थिति का स्थान है। यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा, ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्त्तमान था, अभाव न था।

और जो (**सर्वं खलु०**) यह वचन '**कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुड़वां जोड़ा**' ऐसी लीला का है। क्योंकि—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत॥

—छान्दोग्य० [प्र० ३। खं० १४। मं० १]

और—

नेह नानास्ति किंचन॥ —कठवल्ली का वचन है॥

जैसे शरीर के अङ्ग जब तक शरीर के साथ रहते हैं, तब तक काम के और अलग होने से निकम्मे हो जाते हैं, वैसे ही प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक और प्रकरण से अलग करने वा किसी अन्य के साथ जोड़ने से अनर्थक हो जाते हैं। सुनो! इसका अर्थ यह है—

हे जीव! तू उस ब्रह्म की उपासना कर, जिस ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और जीवन होता है; जिसके बनाने और धारण से यह सब जगत् विद्यमान हुआ है, वा ब्रह्म से सहचरित है, उसको छोड़ दूसरे की उपासना न करनी। इस चेतनमात्र अखण्डैकरस ब्रह्मस्वरूप में नाना वस्तुओं का मेल नहीं है, किन्तु ये सब पृथक्-पृथक् स्वरूप में परमेश्वर के आधार में स्थित हैं।

प्रश्न—जगत् के कारण कितने होते हैं?

उत्तर—तीन। एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण। 'निमित्त कारण' उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से कुछ बने, न

बनाने से न बने, आप स्वयं बने नहीं, दूसरे को प्रकारान्तर बना देवे। दूसरा 'उपादान कारण' उसको कहते हैं जिसके विना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर रूप होके बने और बिगड़े भी। तीसरा 'साधारण कारण' उसको कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो।

निमित्त कारण दो हैं। एक—सब सृष्टि को कारण से बनाने, धारने और प्रलय करने तथा सबकी व्यवस्था रखनेवाला 'मुख्य निमित्त कारण' **परमात्मा**। दूसरा—परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेकविध कार्य्यान्तर बनानेवाला 'साधारण निमित्त कारण' **जीव**।

उपादानकारण—'प्रकृति' 'परमाणु' जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। वह जड़ होने से आपसे आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और दूसरे के बिगाड़ने से बिगड़ती है। कहीं-कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है, जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं। परन्तु इनका नियमपूर्वक बनना वा बिगड़ना परमेश्वर और जीव के आधीन है।

जब कोई वस्तु बनाई जाती है, तब जिन-जिन साधनों से अर्थात् ज्ञान, दर्शन, बल, हाथ और नाना प्रकार के औजार और दिशा, काल और आकाश 'साधारण कारण'। जैसे घड़े को बनाने वाला कुम्हार निमित्त, मिट्टी उपादान; और दण्ड, चक्र आदि सामान्य निमित्त; दिशा, काल, आकाश, प्रकाश, आंख, हाथ, ज्ञान, क्रिया आदि निमित्त साधारण और निमित्त कारण भी होते हैं। इन तीन कारणों के विना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती।

प्रश्न—नवीन वेदान्ती केवल परमेश्वर ही को जगत् का 'अभिन्न-निमित्तोपादानकारण' मानते हैं—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च।

—यह [मुण्डक] उपनिषद् का वचन है [मु० १। ख० १। मं० ७]

जैसे मकरी बाहर से कोई पदार्थ नहीं लेती, अपने ही में से तन्तु निकाल जाला बनाकर आप ही उसमें खेलती है, वैसे ब्रह्म अपने में से

जगत् को बना, आप जगदाकार बन, आप ही क्रीडा कर रहा है। सो ब्रह्म इच्छा और कामना करता हुआ कि मैं 'बहुरूप' अर्थात् जगदाकार हो जाऊं। सङ्कल्पमात्र से सब जगद्रूप बन गया। क्योंकि—

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा॥

—यह माण्डूक्योनिषद् पर कारिका है [गौड़पादीयकारिका वैतथ्याख्य प्रकरण २। ६, अलातशान्ताख्य प्रकरण ४। ३१]

जो प्रथम न हो, अन्त में न रहै, वह वर्त्तमान में भी नहीं है। किन्तु सृष्टि की आदि में जगत् न था, ब्रह्म था। प्रलय के अन्त में संसार न रहेगा, ब्रह्म रहेगा तो वर्त्तमान में सब जगत् ब्रह्म क्यों नहीं?

उत्तर—जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादान कारण ब्रह्म होवे तो वह परिणामी, अवस्थान्तरयुक्त विकारी होजावे। और उपादानकारण के गुण-कर्म-स्वभाव कार्य में भी आते हैं—

कारणगुणपूर्वकः कार्य्यगुणो दृष्टः॥

—वैशेषिक सू० [अ० २। आ० १। सू० २४]॥

उपादानकारण के सदृश कार्य में गुण होते हैं। तो ब्रह्म सच्चिदानन्द-स्वरूप; जगत् कार्य्यरूप से असत्, जड़ और आनन्दरहित; ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है, ब्रह्म अखण्ड और जगत् खण्डरूप है, जो ब्रह्म से पृथिव्यादि कार्य्य उत्पन्न होवे तो पृथिव्यादि कार्य के जड़ादि गुण ब्रह्म में भी होवें। अर्थात् जैसे पृथिव्यादि जड़ हैं, वैसा ब्रह्म भी जड़ हो जाय और जैसा परमेश्वर चेतन है, वैसा पृथिव्यादि कार्य्य भी चेतन होना चाहिये। और जो मकरी का दृष्टान्त दिया, वह तुम्हारे मत का साधक नहीं किन्तु बाधक है क्योंकि वह जड़रूप-शरीर तन्तु का उपादान और जीवात्मा निमित्तकारण है। और यह भी परमात्मा की अद्भुत रचना का प्रभाव है क्योंकि अन्य जन्तु के शरीर से जीव तन्तु नहीं निकाल सकता। वैसे ही व्यापक ब्रह्म ने अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणुकारण से स्थूल जगत् को बना कर, बाहर स्थूलरूप कर, आप उसी में व्यापक रहके साक्षीभूत आनन्दमय हो रहा है।

और जो परमात्मा ने 'ईक्षण' अर्थात् दर्शन, विचार और कामना

की कि मैं सब जगत् को बनाकर प्रसिद्ध होऊं, अर्थात् जब जगत् उत्पन्न होता है तभी जीवों के विचार, ज्ञान, ध्यान, उपदेश श्रवण में परमेश्वर प्रसिद्ध और बहुत स्थूल पदार्थों से सह वर्त्तमान होता है। जब प्रलय होता है तब परमेश्वर और मुक्तजीवों को छोड़के उसको कोई नहीं जानता। और जो वह कारिका है वह भ्रममूलक है। क्योंकि सृष्टि की आदि अर्थात् प्रलय में जगत् प्रसिद्ध नहीं था और सृष्टि के अन्त अर्थात् प्रलय के आरम्भ से जब तक दूसरी वार सृष्टि न होगी तब तक भी जगत् का कारण सूक्ष्म होकर अप्रसिद्ध रहता है। क्योंकि—

तम॑ आसी॒त्तम॑सा गू॒ळ्हमग्रे॑॥ १ ॥

—ऋग्वेद [म० १०। सू० १२९। मं० ३] का वचन है।

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥ २ ॥ —मनु० [१।५]॥

यह सब जगत् सृष्टि के पहिले प्रलय में अन्धकार से आवृत्त आच्छादित था और प्रलयारम्भ के पश्चात् भी वैसा ही होता है। उस समय न किसी के जानने, न तर्क में लाने और न प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त इन्द्रियों से जानने योग्य था, और न होगा, किन्तु वर्त्तमान में जाना जाता है और प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त जानने के योग्य होता और यथावत् उपलब्ध है॥ १-२॥

पुनः उस कारिकाकार ने वर्त्तमान में भी जगत् का अभाव लिखा सो सर्वथा अप्रमाण है, क्योंकि जिसको प्रमाता प्रमाणों से जानता और प्राप्त होता है, वह अन्यथा कभी नहीं हो सकता।

प्रश्न—जगत् के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है?

उत्तर—नहीं बनाने में क्या प्रयोजन है?

प्रश्न—जो न बनाता तो आनन्द में बना रहता और जीवों को भी सुख-दुःख प्राप्त न होता।

उत्तर—यह आलसी और दरिद्र लोगों की बातें हैं, पुरुषार्थी की नहीं। और जीवों को प्रलय में क्या सुख वा दुःख है? जो सृष्टि के सुख-दुःख की तुलना की जाय तो सुख कई गुना अधिक होता और बहुत-से पवित्रात्मा जीव मुक्ति के साधन कर मोक्ष के आनन्द को भी

प्राप्त होते हैं। प्रलय में निकम्मे जैसे सुषुप्ति में पड़े रहते हैं, वैसे रहते हैं और प्रलय के पूर्व सृष्टि में जीवों के किये पाप-पुण्य कर्मों का फल ईश्वर कैसे दे सकता और जीव क्योंकर भोग सकते? जो तुमसे कोई पूछे कि आँख के होने में क्या प्रयोजन है? तुम यही कहोगे कि देखना। तो जो ईश्वर में जगत् की रचना करने का विज्ञान, बल और क्रिया है, उसका क्या प्रयोजन? विना जगत् की उत्पत्ति करने के दूसरा कुछ भी न कह सकोगे। और परमात्मा के न्याय, धारण, दया आदि गुण भी तभी सार्थक हो सकते हैं कि जब जगत् को बनावे। उसका अनन्त सामर्थ्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने ही से सफल है। जैसा नेत्र का स्वाभाविक गुण देखना है, वैसा परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।

प्रश्न—बीज पहले है वा वृक्ष?

उत्तर—बीज। क्योंकि बीज, हेतु, निदान, निमित्त और कारण इत्यादि शब्द एकार्थवाचक हैं। कारण का नाम बीज होने से कार्य के प्रथम ही होता है।

प्रश्न—जब परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है तो वह कारण और जीव को भी उत्पन्न कर सकता है। जो नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमान् भी नहीं रह सकता?

उत्तर—सर्वशक्तिमान् शब्दार्थ पूर्व लिख आये हैं। परन्तु क्या सर्वशक्तिमान् वह कहाता है कि जो असम्भव बात को भी कर सके? जो असम्भव बात अर्थात् जैसा कारण के विना कार्य्य को कर सकता है तो विना कारण दूसरे ईश्वर की उत्पत्ति कर और स्वयं मृत्यु को प्राप्त, जड, दुःखी, अन्यायकारी, अपवित्र और कुकर्मी आदि हो सकता है, वा नहीं? जो स्वाभाविक नियम, अर्थात् जैसा अग्नि उष्ण, जल शीतल और पृथिव्यादि सब जड़ों को विपरीत गुणवाले ईश्वर भी नहीं कर सकता। जैसे आप जड़ नहीं हो सकता, वैसे जड़ को चेतन भी नहीं कर सकता। और ईश्वर के नियम सत्य और पूरे हैं इसलिये परिवर्त्तन नहीं कर सकता। इसलिये 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा

विना किसी के सहाय के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है।

प्रश्न—ईश्वर साकार है वा निराकार? जो निराकार है तो विना हाथ आदि साधनों के जगत् को न बना सकेगा और जो साकार है तो कोई दोष नहीं आता।

उत्तर—ईश्वर निराकार है। जो साकार अर्थात् शरीरयुक्त है, वह ईश्वर ही नहीं। क्योंकि वह परिच्छिन्न, परिमित शक्तियुक्त, देश काल वस्तुओं में परिच्छिन्न, क्षुधा, तृषा, छेदन, भेदन, शीतोष्ण, ज्वर, पीडादि सहित होवे। उसमें सिवाय जीव के, ईश्वर के गुण कभी नहीं घट सकते। जैसे तुम और हम 'साकार' अर्थात् शरीरधारी हैं, इससे त्रसरेणु, अणु, परमाणु और प्रकृति को अपने वश में नहीं ला सकते और न उन सूक्ष्म पदार्थों को पकड़ कर स्थूल बना सकते हैं, वैसे ही स्थूल देहधारी परमेश्वर भी उन सूक्ष्म पदार्थों से स्थूल जगत् नहीं बना सकता। जो परमेश्वर भौतिक—इन्द्रियगोलक हस्त-पादादि अवयवों से रहित है, परन्तु उसकी अनन्त शक्ति बल पराक्रम हैं, उनसे सब काम करता है, जो जीव और प्रकृति से कभी न हो सकते। जब वह प्रकृति से भी सूक्ष्म और उनमें व्यापक है, तभी उनको पकड़ कर जगदाकार कर देता है। और सर्वगत होने से सबका धारण और प्रलय भी कर सकता है।

प्रश्न—जैसे मनुष्यादि के मा-बाप साकार हैं, उनका सन्तान भी साकार होता है, जो ये निराकार होते, तो इनके लड़के भी निराकार होते, वैसे परमेश्वर निराकार हो, तो उसका बनाया जगत् भी निराकार होना चाहिये।

उत्तर—यह तुम्हारा प्रश्न अविद्या के=लड़के के समान है। क्योंकि हम अभी कह चुके हैं कि परमेश्वर जगत् का उपादानकारण नहीं, किन्तु निमित्तकारण है। और जो स्थूल होता है, वह प्रकृति और परमाणु जगत् का उपादानकारण है। और वे सर्वथा निराकार नहीं, किन्तु परमेश्वर से स्थूल और अन्य कार्य्य से सूक्ष्म आकार रखते हैं।

प्रश्न—क्या कारण के विना परमेश्वर कार्य्य को नहीं कर सकता?

उत्तर—नहीं। क्योंकि जिसका 'अभाव' अर्थात् जो वर्त्तमान नहीं है, उसका 'भाव' वर्त्तमान होना सर्वथा असम्भव है। जैसा कोई गपोड़ा

हाँक दे कि "मैंने वन्ध्या के पुत्र और वन्ध्या की पुत्री का विवाह देखा, वह नरशृङ्ग का धनुष् और वे दोनों खपुष्प की माला पहिरे हुए थे, मृगतृष्णिका के जल में स्नान करते और गन्धर्वनगर में रहते थे, वहां बद्दल के विना वर्षा, पृथिवी के विना सब अन्नों की उत्पत्ति आदि होती थी।" वैसा ही कारण के विना कार्य्य का होना असम्भव है। जैसे कोई कहे कि—

"**मम मातापितरौ न स्तोऽहमेवमेव जातः। मम मुखे जिह्वा नास्ति वदामि च**" अर्थात् मेरे माता-पिता न थे, ऐसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूं। मेरे मुख में जीभ नहीं है, परन्तु बोलता हूँ। "बाम्बी में सर्प न था, निकल आया।" "मैं कहीं नहीं था, ये भी कहीं नहीं थे और हम सब जने आये हैं।" ऐसी असम्भव बात प्रमत्तगीत अर्थात् पागल लोगों की है।

प्रश्न—जो कारण के विना कार्य्य नहीं होता तो कारण का कारण कौन है?

उत्तर—जो केवल कारणरूप ही हैं, वे कार्य्य किसी के नहीं होते। और जो किसी का कारण और किसी का कार्य्य होता है, वह दूसरा कहाता है। जैसे पृथिवी घट और घर आदि का कारण और जल आदि का कार्य्य होता है। परन्तु जो आदिकारण प्रकृति है, वह अनादि है।

मूले मूलाभावादमूलं मूलम्॥

—सांख्य सू० [अ० १। सू० ६७]॥

मूल का मूल अर्थात् कारण का कारण नहीं होता। इससे अकारण सब कार्य्यों का कारण होता है। क्योंकि किसी कार्य्य के आरम्भ समय के पूर्व तीनों कारण अवश्य होते हैं। जैसे कपड़े बनाने के पूर्व तन्तुवाय, रूई का सूत और नलिका आदि पूर्व वर्त्तमान होने से वस्त्र बनता है, वैसे जगत् की उत्पत्ति के पूर्व परमेश्वर, प्रकृति, काल और आकाश तथा जीवों के अनादि होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है। यदि इन में से एक भी न हो तो जगत् भी न हो।

अत्र नास्तिका आहुः—

शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य॥ १॥

—सांख्य सू० [अ० १। सू० ४४]॥

अभावाद् भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य प्रादुर्भावात् ॥ २ ॥
ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात् ॥ ३ ॥
अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात् ॥ ४ ॥
सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात् ॥ ५ ॥
सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात् ॥ ६ ॥
सर्वं पृथग् भावलक्षणपृथक्त्वात् ॥ ७ ॥
सर्वमभावो भावेष्वितरेतराभावसिद्धेः ॥ ८ ॥
[न स्वभावसिद्धिरापेक्षिकत्वात्] ॥ ९ ॥

—न्याय सू० ॥ अ० ४। आह्नि० १ [सू० १४, १९, २२, २५, २९, ३४, ३७, ३९] ॥

यहां नास्तिक लोग ऐसा कहते हैं कि—'शून्य' ही एक पदार्थ है। सृष्टि के पूर्व शून्य था, अन्त में शून्य होगा। क्योंकि जो 'भाव' है अर्थात् वर्त्तमान पदार्थ है, उसका अभाव होकर शून्य हो जायगा।

उत्तर—शून्य आकाश, अदृश्य, अवकाश और बिन्दु को भी कहते हैं। शून्य जड़ पदार्थ, इस शून्य में सब पदार्थ अदृश्य रहते हैं। जैसे एक बिन्दु से रेखा, रेखाओं से वर्तुलाकार करने से भूमि-पर्वतादि ईश्वर की रचना से बनते हैं। और शून्य का जानने वाला शून्य नहीं होता ॥ १ ॥

दूसरा नास्तिक—अभाव से भाव की उत्पत्ति होती है। जैसे बीज का मर्दन किये विना अंकुर उत्पन्न नहीं होता और बीज को तोड़ कर देखें तो अंकुर का अभाव है। जब प्रथम अंकुर नहीं दीखता था तो अभाव से उत्पत्ति हुई।

उत्तर—जो बीज का उपमर्दन करता है, वह प्रथम ही बीज में था। जो न होता तो उत्पन्न कभी नहीं होता ॥ २ ॥

तीसरा नास्तिक कहता है—कि कर्मों का फल पुरुष के कर्म करने से नहीं प्राप्त होता। कितने ही कर्म निष्फल दीखने में आते हैं। इसलिये अनुमान किया जाता है कि कर्मों का फल प्राप्त होना ईश्वर के अधीन है। जिस कर्म का फल ईश्वर देना चाहै, देता है। जिस कर्म का फल देना नहीं चाहता, नहीं देता। इस बात से कर्मफल ईश्वराधीन है।

उत्तर—जो कर्म का फल ईश्वराधीन हो तो विना कर्म किये ईश्वर फल क्यों नहीं देता? इसलिये जैसा कर्म मनुष्य करता है, वैसा ही फल ईश्वर देता है। इससे ईश्वर स्वतन्त्र पुरुष को कर्म का फल नहीं दे सकता। किन्तु जैसा कर्म जीव करता है, वैसा ही फल ईश्वर देता है ॥ ३ ॥

चौथा नास्तिक कहता है कि—विना निमित्त के पदार्थों की उत्पत्ति होती है। जैसा बबूल आदि वृक्षों के काँटे तीक्ष्ण अणिवाले देखने में आते हैं। इससे विदित होता है कि जब-जब सृष्टि का आरम्भ होता है, तब-तब शरीरादि पदार्थ विना निमित्त के होते हैं।

उत्तर—जिससे पदार्थ उत्पन्न होता है, वही उसका निमित्त है। विना बीज, कण्टकी वृक्ष के काँटे उत्पन्न क्यों नहीं होते? ॥ ४ ॥

पांचवा नास्तिक कहता है कि—सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाशवाले हैं, इसलिये सब अनित्य हैं।

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥

—यह किसी ग्रन्थ का श्लोक है॥

नवीन वेदान्ती लोग पांचवें नास्तिक की कोटि में हैं, क्योंकि वे ऐसा कहते हैं कि क्रोड़ों ग्रन्थों का यह सिद्धान्त है—"ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं।"

उत्तर—जो सबकी नित्यता नित्य है तो सब अनित्य नहीं हो सकता।

प्रश्न—सबकी नित्यता भी अनित्य है, जैसे अग्नि काष्ठों को नष्टकर आप भी नष्ट हो जाता है।

उत्तर—जो यथावत् उपलब्ध होता है, उसका वर्त्तमान में अनित्यत्व और परमसूक्ष्म कारण को अनित्य कहना कभी नहीं हो सकता। जो वेदान्ती लोग ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं, तो ब्रह्म के सत्य होने से, उसका कार्य्य असत्य कभी नहीं हो सकता। जो स्वप्न, रज्जू-सर्प्पादिवत् कल्पित कहें तो भी ठीक नहीं बन सकता। क्योंकि कल्पना गुण है, गुण से द्रव्य कभी नहीं, और गुण द्रव्य से पृथक् नहीं रह सकता। जब कल्पना का कर्त्ता नित्य है तो उसकी कल्पना भी नित्य होनी चाहिये, नहीं तो उसको भी अनित्य मानो। जैसे स्वप्न विना देखे-सुने कभी नहीं आता। जो जागृत अर्थात् वर्त्तमान समय में सत्य पदार्थ हैं, उनके साक्षात्

सम्बन्ध से प्रत्यक्षादि ज्ञान होने पर 'संस्कार' अर्थात् उनका वासनारूप ज्ञान आत्मा में स्थित होता है, स्वप्न में उन्हीं को प्रत्यक्ष देखता है। जैसे सुषप्ति होने से बाह्य पदार्थों के ज्ञान के अभाव में भी बाह्य पदार्थ विद्यमान रहते हैं, वैसे प्रलय में भी कारण द्रव्य वर्त्तमान रहता है। जो संस्कार के विना स्वप्न होवे, तो जन्मान्ध को भी रूप का स्वप्न होवे। इसलिये वहां उनका ज्ञानमात्र है और बाहर सब पदार्थ वर्त्तमान हैं।

प्रश्न—जैसे जागृत के पदार्थ स्वप्न और दोनों के सुषुप्ति में अनित्य हो जाते हैं, वैसे जागृत के पदार्थों को भी स्वप्न के तुल्य मानना चाहिये।

उत्तर—ऐसा कभी नहीं मान सकते। क्योंकि स्वप्न और सुषुप्ति में बाह्य पदार्थों का अज्ञानमात्र होता है, अभाव नहीं। जैसे किसी के पीछे की ओर बहुत-से पदार्थ अदृष्ट रहते हैं, उनका अभाव नहीं होता, वैसे ही स्वप्न और सुषुप्ति की बात है। इसलिये जो पूर्व कह आये कि ब्रह्म, जीव और जगत्-कारण अनादि नित्य हैं, वही सत्य है॥ ५॥

छठा नास्तिक कहता है कि—पांच भूतों के नित्य होने से सब जगत् नित्य है।

उत्तर—यह बात सत्य नहीं। क्योंकि जिन पदार्थों का उत्पत्ति और विनाश का कारण देखने में आता है वे सब नित्य हों तो सब स्थूल जगत् तथा शरीर घटपटादि पदार्थों को उत्पन्न और विनष्ट होते देखते ही हैं, इससे कार्य को नित्य नहीं मान सकते॥ ६॥

सातवां नास्तिक कहता है कि—सब पृथक्-पृथक् हैं, कोई एक पदार्थ नहीं है, जिस-जिस पदार्थ को हम देखते हैं कि उनमें दूसरा एक पदार्थ कोई भी नहीं दीखता।

उत्तर—अवयवों में अवयवी, वर्त्तमानकाल, आकाश, परमात्मा और जाति पृथक्-पृथक् पदार्थ-समूहों में एक-एक हैं उनसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं हो सकता। इसलिये सब पृथक् पदार्थ नहीं, किन्तु स्वरूप से पृथक्-पृथक् हैं और पृथक्-पृथक् पदार्थों में एक पदार्थ भी है॥ ७॥

आठवां नास्तिक कहता है कि—सब पदार्थों में इतरेतराभाव की सिद्धि होने से सब अभावरूप हैं। जैसे '**अनश्वो गौः। अगौरश्वः**'

गाय घोड़ा नहीं और घोड़ा गाय नहीं, इसलिये सबको अभावरूप मानना चाहिये।

उत्तर—सब पदार्थों में इतरेतराभाव का योग हो, परन्तु '**गवि गौरश्वेऽश्वो भावरूपो वर्तत एव**' गाय में गाय और घोड़े में घोड़े का भाव ही है, अभाव कभी नहीं हो सकता। जो पदार्थ का भाव न हो, तो 'इतरेतराभाव' भी किस में कहा जावे?॥ ८॥

नववां नास्तिक कहता है कि—स्वभाव से सब जगत् की उत्पत्ति होती है। जैसे पानी, अन्न एकत्र हो सड़ने से कृमि उत्पन्न होते हैं और बीज पृथिवी जल मिलने से घास वृक्षादि और पाषाणादि उत्पन्न होते हैं। जैसे समुद्र वायु के योग से तरङ्ग; और तरङ्गों से समुद्रफेन; हल्दी, चूना और नींबू के रस मिलने से रोरी बनती है, वैसे सब जगत् तत्त्वों के स्वभाव गुणों से उत्पन्न हुआ है। इसका बनानेवाला कोई भी नहीं।

उत्तर—जो स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति होवे तो विनाश कभी न होवे। और जो विनाश भी स्वभाव से मानो, तो उत्पत्ति न होगी। और जो दोनों स्वभाव युगपत् द्रव्यों में मानोगे तो उत्पत्ति और विनाश की व्यवस्था कभी न हो सकेगी। और जो निमित्त के होने से उत्पत्ति और नाश मानोगे तो 'निमित्त' से उत्पत्ति और विनाश होने वाले द्रव्यों से पृथक् मानना पड़ेगा। जो स्वभाव से उत्पत्ति और विनाश होता तो एक समय ही में उत्पत्ति और विनाश का होना सम्भव नहीं। जो स्वभाव से उत्पन्न होता हो, तो इस भूगोल के निकट में दूसरा भूगोल, चन्द्र-सूर्य्य आदि उत्पन्न क्यों नहीं होते? और जिस-जिस के योग से जो-जो उत्पन्न होता है, वह-वह ईश्वर के उत्पन्न किये हुए बीज, अन्न-जलादि के संयोग से घास-वृक्ष और कृमि आदि उत्पन्न होते हैं, विना उनके नहीं। जैसे हल्दी, चूना और नींबू का रस दूर-दूर देश से आकर आप नहीं मिलते, किसी के मिलाने से मिलते हैं, उसमें भी यथायोग्य मिलाने से रोरी होती है, अधिक, न्यून वा अन्यथा करने से रोरी नहीं होती; वैसे ही प्रकृति, परमाणुओं को ज्ञान और युक्ति से परमेश्वर के मिलाये विना जड़ पदार्थ स्वयं कुछ भी कार्यसिद्धि के लिये विशेष पदार्थ नहीं बन सकते। इसलिये स्वभावादि से सृष्टि नहीं होती, किन्तु परमेश्वर की

रचना से होती है॥ ९॥

प्रश्न—इस जगत् का कर्ता न था, न है और न होगा किन्तु अनादि काल से यह जैसा का वैसा बना है। न कभी इसकी उत्पत्ति हुई, न कभी विनाश होगा।

उत्तर—विना कर्त्ता के कोई भी क्रिया वा क्रियाजन्य पदार्थ नहीं बन सकता। जिन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग-विशेष से रचना दीखती है, वे अनादि कभी नहीं हो सकते। और जो संयोग से बनता है, वह संयोग के पूर्व नहीं होता और वियोग के अन्त में नहीं रहता। जो तुम इसको न मानो तो कठिन से कठिन पाषाण, हीरा और फोलाद आदि तोड़ के, टुकड़े कर, गला वा भस्म कर देखो कि इनमें परमाणु पृथक्-पृथक् मिले हैं वा नहीं? जो मिले हैं तो वे समय पाकर अलग-अलग भी अवश्य होते हैं॥ १०॥

प्रश्न—अनादि ईश्वर कोई नहीं किन्तु जो योगाभ्यास से अणिमादि ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सर्वज्ञादिगुणयुक्त केवल-ज्ञानी होता है, वही जीव 'ईश्वर' 'परमेश्वर' कहाता है।

उत्तर—जो अनादि ईश्वर जगत् का स्रष्टा न हो, तो साधनों से सिद्ध होने वाले जीवों का आधार जीवनरूप जगत्, शरीर और इन्द्रियों के गोलक कैसे बनते? इनके विना जीव साधन ही न कर सकता। जब साधन न होते, तो सिद्ध कहां से होता? जीव चाहै जैसा साधन कर सिद्ध होवे, तो भी 'ईश्वर' के—जो कि स्वयं सनातन अनादि सिद्ध है, जिसमें अनन्त सिद्धि हैं,—उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं हो सकता। क्योंकि जीव का परम अवधि तक ज्ञान बढ़े, तो भी परिमित ज्ञान और सामर्थ्यवाला होता है। अनन्त ज्ञान और सामर्थ्यवाला कभी नहीं हो सकता। देखो! कोई भी योगी आज तक ईश्वरकृत सृष्टिक्रम को बदलनेहारा नहीं हुआ है, और न होगा। जैसा अनादि-सिद्ध परमेश्वर ने नेत्र से देखने और कानों से सुनने का निबन्ध किया है, इसको कोई भी योगी बदल नहीं सका है। जीव 'ईश्वर' कभी नहीं हो सकता।

प्रश्न—कल्प-कल्पान्तर में ईश्वर सृष्टि विलक्षण-विलक्षण बनाता है, अथवा एकसी जैसी कि अब है, वैसी पहले थी और आगे होगी, भेद नहीं करता?

उत्तर—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ १॥

—ऋ० म० १०। सू० १९०। मं० ३॥

(धाता) परमेश्वर [ने] जैसे पूर्व-कल्प में सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, पृथिवी, अन्तरिक्ष, आदित्य बनाये थे, वैसे ही अब बनाये हैं और आगे भी वैसे ही बनावेगा॥ १॥

इसलिये परमेश्वर के काम विना भूल-चूक के होने से सदा एक से ही हुआ करते हैं। जो अल्पज्ञ और जिसका ज्ञान वृद्धि-क्षय को प्राप्त होता है, उसी के काम में भूल-चूक होती है, ईश्वर के काम में नहीं।

प्रश्न—सृष्टि-विषय में वेदादि-शास्त्रों का अविरोध है, वा विरोध?

उत्तर—अविरोध है।

प्रश्न—जो अविरोध है तो—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः॥

—यह तैत्तिरीय उपनिषद् [ब्र० व०। अनु० १] का वचन है॥

उस परमेश्वर और प्रकृति से आकाश 'अवकाश' अर्थात् जो कारणरूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था, उसको इकट्ठा करने से आकाश उत्पन्न-सा होता है, वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि विना आकाश के प्रकृति और परमाणु कहाँ ठहर सकें? आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथिवी, पृथिवी से ओषधि, ओषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य्य, वीर्य्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है।

यहां आकाशादि क्रम से, और छान्दोग्य में अग्न्यादि, ऐतरेय में जलादि क्रम से सृष्टि हुई। वेदों में कहीं पुरुष, कहीं हिरण्यगर्भ आदि से, मीमांसा में कर्म, वैशेषिक में काल, न्याय में परमाणु, योग में पुरुषार्थ,

सांख्य में प्रकृति और वेदान्त में ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानी है। अब किसको सच्चा और किसको झूठा मानें?

उत्तर—इसमें सब सच्चे, कोई झूठा नहीं। झूठा वह है जो विपरीत समझता है। क्योंकि परमेश्वर निमित्त और प्रकृति जगत् का उपादान कारण है। जब महाप्रलय होता है, उसके पश्चात् आकाशादि क्रम अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादि का होता है अग्न्यादि क्रम से, और जब विद्युत् अग्नि का भी प्रलय (नाश) नहीं होता तब जलादि क्रम से सृष्टि होती है, अर्थात् जिस-जिस प्रलय में जहाँ-जहाँ तक प्रलय होता है, वहाँ-वहाँ से सृष्टि की उत्पति होती है। पुरुष और हिरण्यगर्भादि वे सब नाम परमेश्वर ही के हैं, प्रथम समुल्लास में लिख भी आये हैं।

शास्त्रों के अविरोध के विषय में पूर्व लिख भी आये हैं। परन्तु विरोध उसको कहते हैं कि एक-कार्य्य में एक ही विषय पर विरुद्ध वाद होवे। छः शास्त्रों में अविरोध देखो इस प्रकार है—

मीमांसा में—ऐसा कोई भी कार्य्य जगत् में नहीं होता कि जिसके बनाने में कर्मचेष्टा न की जाय।

वैशेषिक में—समय न लगे विना, बने ही नहीं।

न्याय में—उपादानकारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता।

योग में—विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाय, तो नहीं बन सकता।

सांख्य में—तत्त्वों का मेल न होने से, नहीं बन सकता।

और वेदान्त में—बनाने वाला न बनावे, तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न हो न सके।

इसलिये सृष्टि छः कारणों से बनती है। उन छः कारणों की व्याख्या एक-एक की एक-एक शास्त्र में है। इसलिये उनमें विरोध कुछ भी नहीं। जैसे छः पुरुष मिलके एक छप्पर उठा कर भित्तियों पर धरें वैसे ही सृष्टिरूप कार्य्य की व्याख्या छः शास्त्रकारों ने मिलकर पूरी की है।

परन्तु जैसे पांच अन्धे और एक मन्ददृष्टि को किसी ने हाथी का एक-एक देश बतलाया। उनसे पूछा कि हाथी कैसा है? उनमें से एक ने कहा—खम्भे, दूसरे ने कहा—सूप, तीसरे ने कहा—मूसल, चौथे ने

कहा—झाड़ू, पांचवें ने कहा—चौतरा और छठे ने कहा—काला-काला चार खम्भों के ऊपर कुछ भैंसा-सा आकारवाला है। इसी प्रकार आज कल के अनार्ष, नवीन ग्रन्थों के पढ़ने और प्राकृत भाषावालों ने ऋषिप्रणीत ग्रन्थ न पढ़कर, नवीन क्षुद्रबुद्धिकल्पित संस्कृत और भाषाओं के ग्रन्थ पढ़ कर, एक दूसरे की निन्दा में तत्पर होके झूठा झगड़ा मचाया है। इनका कथन बुद्धिमानों के वा अन्य के मानने योग्य नहीं। क्योंकि जो अन्धों के पीछे अन्धे चलें तो दुःख क्यों न पावें? वैसे ही आज-कल के अल्प-विद्यायुक्त, स्वार्थी, इन्द्रियाराम पुरुषों की लीला संसार का नाश करनेवाली है।

प्रश्न—जब कारण के विना कार्य्य नहीं होता तो कारण का कारण क्यों नहीं?

उत्तर—अरे भोले भाइयो! कुछ अपनी बुद्धि को काम में क्यों नहीं लाते? देखो! संसार में दो ही पदार्थ होते हैं, एक कारण दूसरा कार्य्य। जो कारण है, वह कार्य्य नहीं, और जो जिस समय कार्य्य है, वह कारण नहीं। जब तक मनुष्य सृष्टि को यथावत् नहीं समझता, तब-तक उसको यथावत् ज्ञान प्राप्त नहीं होता—

नित्यायाः सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृतेरुत्पन्नानां परम-सूक्ष्माणां पृथक् पृथग्वर्त्तमानानां तत्त्वपरमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः संयोग-विशेषादवस्थान्तरस्य स्थूलाकारप्राप्तिः सृष्टिरुच्यते॥

अनादि नित्यस्वरूप सत्त्व, रजस् और तमोगुणों की एकावस्थारूप प्रकृति से उत्पन्न जो परमसूक्ष्म पृथक्-पृथक् वर्तमान तत्त्वावयव विद्यमान हैं, उन्हीं का प्रथम ही जो संयोग का आरम्भ है, और संयोग विशेषों से अवस्थान्तर दूसरी-दूसरी अवस्था को सूक्ष्म स्थूल-स्थूल बनते-बनाते विचित्ररूप बनी है, इसी से यह संसर्ग होने से 'सृष्टि' कहाती है।

भला जो प्रथम संयोग में मिलने और मिलाने वाला पदार्थ है, जो संयोग का आदि और वियोग का अन्त अर्थात् जिसका विभाग नहीं हो सकता, उसको 'कारण' और जो संयोग के पीछे बनता और वियोग के पश्चात् वैसा नहीं रहता, वह 'कार्य्य' कहाता है। जो उस कारण का कारण, कार्य्य का कार्य्य, कर्त्ता का कर्त्ता, साधन का साधन और साध्य का साध्य

कहता है, वह देखता अन्धा, सुनता बहिरा और जानता हुआ मूढ़ है। क्या आँख की आँख, दीपक का दीपक और सूर्य का सूर्य कभी हो सकता है? जो जिससे उत्पन्न होता है वह '**कारण**', और जो उत्पन्न होता है वह '**कार्य्य**', और जो कारण को कार्यरूप बनानेहारा है, वह '**कर्त्ता**' कहाता है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

—भगवद्गीता [अ० २। श्लो० १७]॥

कभी 'असत्' का भाव वर्त्तमान और 'सत्' का अभाव अवर्त्तमान नहीं होता, इन दोनों का निर्णय तत्त्वदर्शी लोगों ने जाना है अन्य पक्षपाती, आग्रही, मलीनात्मा, अविद्वान् लोग इस बात को सहज में कैसे जान सकते हैं? क्योंकि जो मनुष्य विद्वान्, सत्सङ्गी होकर पूरा विचार नहीं करता, वह सदा भ्रमजाल में पड़ा रहता है। धन्य वे पुरुष हैं कि सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानते हैं और जानने के लिये परिश्रम करते हैं, जानकर अन्यों को निष्कपटता से जनाते हैं। इससे जो कोई कारण के विना सृष्टि मानता है, वह कुछ भी नहीं जानता।

जब सृष्टि का समय आता है, तब परमात्मा उन परमसूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है। उसकी प्रथम अवस्था में जो परमसूक्ष्म प्रकृतिरूप कारण से कुछ स्थूल होता है, उसका नाम महत्तत्त्व, और जो उससे कुछ स्थूल होता है, उसका नाम अहङ्कार, और अहङ्कार से भिन्न-भिन्न पांच सूक्ष्मभूत; श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण पांच ज्ञानेन्द्रियाँ; वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा ये पांच कर्म इन्द्रिय हैं और ग्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है। और उन पञ्चतन्मात्राओं से अनेक स्थूलावस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पांच स्थूलभूत जिनको हमलोग प्रत्यक्ष देखते हैं, उत्पन्न होते हैं। उनसे नाना प्रकार की औषधियां, वृक्ष आदि, उनसे अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होता है। परन्तु आदि सृष्टि मैथुनी सृष्टि नहीं होती। क्योंकि जब स्त्री-पुरुषों के शरीर परमात्मा बना कर, उनमें जीवों का संयोग कर देता है, तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है।

देखो! शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों

का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन, प्लीहा, यकृत्, फेफड़ा, पंखा कला का स्थापन, रुधिरशोधन, प्रचालन, विद्युत् का स्थापन, जीव का संयोजन, शिरोरूप मूलरचन, लोम नखादि का स्थापन, आंख की अतीव सूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन, जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिये स्थानविशेषों का निर्माण, सब धातु का विभागकरण, कला-कौशल-स्थापनादि अद्भुत सृष्टि को विना परमेश्वर के कौन कर सकता है? इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के रत्न धातु से जड़ित भूमि, विविध प्रकार वटवृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्मरचना, असंख्य रक्त, हरित, श्वेत, पीत, कृष्ण, चित्र, मध्यरूपों से युक्त पत्र, पुष्प, फल, मूल निर्माण, मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस, सुगन्धादियुक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्द, मूलादि-रचन, अनेकानेक क्रोड़ों भूगोल, सूर्य, चन्द्रादि लोकनिर्माण, धारण, भ्रामण, नियमों में रखना आदि परमेश्वर के विना कोई भी नहीं कर सकता। जब कोई किसी पदार्थ को देखता है, तो दो प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। एक जैसा वह पदार्थ और दूसरा उसमें रचना देखकर बनानेवाले का ज्ञान है। जैसे किसी पुरुष ने सुन्दर आभूषण जंगल में पाया, देखा तो विदित हुआ कि यह सुवर्ण का है और किसी बुद्धिमान् कारीगर ने बनाया है। इसी प्रकार यह नाना प्रकार सृष्टि में विविध रचना, बनानेवाले परमेश्वर को सिद्ध करती है।

प्रश्न—मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई, वा पृथिवी आदि की?

उत्तर—पृथिवी आदि की। क्योंकि पृथिव्यादि के विना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता।

प्रश्न—सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे, वा क्या?

उत्तर—अनेक। क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरी सृष्टि में उत्पन्न होने के थे, उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता है। क्योंकि—

'मनुष्या ऋषयश्च ये'॥

[तु०—यजुः अ० ३१, मुंडकोप० ९, मुं० २।७।१]

'ततो मनुष्या अजायन्त'

—यह यजुर्वेद [के शत० ब्रा० कां० १४। प्रपा० ३। ब्रा० २। कं० ५] में लिखा है।

इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए। और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक मा-बाप के सन्तान हैं।

प्रश्न—आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्य, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी, अथवा तीनों में?

उत्तर—युवावस्था में। क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता, तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते। जो वृद्धावस्था में बनाता, तो मैथुनी-सृष्टि न होती। इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है।

प्रश्न—कभी सृष्टि का प्रारम्भ है, वा नहीं?

उत्तर—नहीं। जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है, इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि अनादिकाल से चक्र चला आता है। इसकी आदि वा अन्त नहीं। किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है, उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि-अन्त होता रहता है क्योंकि जैसे परमात्मा, जीव, जगत् का कारण तीन स्वरूप से अनादि हैं, वैसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय प्रवाह से अनादि हैं। जैसे नदी का प्रवाह वैसा ही दीखता है, कभी सूख जाता, कभी नहीं दीखता, फिर बरसात में दीखता और उष्णकाल में नहीं दीखता, ऐसे व्यवहारों को प्रवाहरूप जानना चाहिये। जैसे परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं, वैसे ही उसके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि हैं। जैसे कभी ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं, इसी प्रकार उसके कर्तव्य-कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं।

प्रश्न—ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंहादि क्रूर जन्म, किन्हीं को हिरण, गाय आदि पशु, किन्हीं को वृक्षादि कृमि कीट पतङ्गादि जन्म दिये हैं, इससे परमात्मा में पक्षपात आता है।

उत्तर—पक्षपात नहीं आता, क्योंकि उन जीवों के पूर्व सृष्टि में किये हुए कर्मानुसार व्यवस्था करने से। जो कर्म के विना जन्म देता तो पक्षपात आता।

प्रश्न—मनुष्यों की आदि-सृष्टि किस स्थल में हुई?

उत्तर—'त्रिविष्टप' अर्थात् जिसको 'तिब्बत' कहते हैं।

प्रश्न—आदि सृष्टि में एक जाति थी, वा अनेक?

उत्तर—एक मनुष्यजाति थी। पश्चात्—

विजा॑नी॒ह्यार्य्या॒न् ये च॒ दस्य॑वः।

—यह ऋग्वेद [१।५१।८] का वचन है॥

श्रेष्ठों का नाम आर्य्य, विद्वान्, देव और दुष्टों के 'दस्यु' अर्थात् डाकू, मूर्ख और अनाड़ी नाम होने से 'आर्य्य' और 'दस्यु' दो नाम हुए।

'उ॒त शू॒द्र उ॒तार्ये॑' —अथर्ववेद [१९.६२.१] का वचन है।

आर्य्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। द्विज विद्वानों का नाम 'आर्य्य' और मूर्खों का नाम 'शूद्र' और 'अनार्य' अर्थात् 'अनाड़ी' हुआ।

प्रश्न—फिर वे यहां कैसे आये?

उत्तर—जब आर्य्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव, अविद्वान् जो असुर, उनमें सदा लड़ाई-बखेड़ा हुआ किया। जब बहुत उपद्रव होने लगा, तब आर्य्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमि के खण्ड को जानकर यहीं आकर बसे। इसी से इस देश का नाम '**आर्यावर्त्त**' हुआ।

प्रश्न—आर्यावर्त्त की अवधि कहां तक है?

उत्तर—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥ १॥
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते॥ २॥

—मनु० [२।२२; तु०—२२।१७]॥

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र॥ १॥

तथा सरस्वती पश्चिम में 'अटक' नदी, जो उत्तर के पहाड़ों से निकल के दक्षिण के समुद्र की खाड़ी में मिली है। और पूर्व में 'दृषद्वती' जो नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकल के, बङ्गाले के, आसाम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम ओर होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है जिसको 'ब्रह्मपुत्र' कहते हैं। हिमालय की मध्यरेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर-पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं, उन सबको **आर्य्यावर्त्त** कहते हैं। यह देश देवनिर्मित आर्यावर्त्त इसलिये कहाता है कि 'देव' नाम विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से '**आर्यावर्त्त**' कहाया है॥ २॥

प्रश्न—प्रथम इस देश का नाम क्या था और इसमें कौन बसते थे?

उत्तर—इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्य्यों के पूर्व इस देश में बसते थे। क्योंकि आर्य्य लोग सृष्टि की आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सूधे इसी देश में आकर बसे थे।

प्रश्न—कोई कहते हैं कि ये लोग ईरान से आये। इसी से इन लोगों का नाम 'आर्य' हुआ है। इनके पूर्व यहां जंगली लोग बसते थे कि जिनको असुर' और 'राक्षस' कहते थे। आर्य लोग अपने को देवता बतलाते थे और उनका जब संग्राम हुआ, उसका नाम 'देवासुरसंग्राम' कथाओं में ठहराया।

उत्तर—यह बात सर्वथा झूठ है। क्योंकि—

वि जा॑नी॒ह्यार्या॑न् ये च॒ दस्य॑वो ब॒र्हिष्म॑ते रन्धया॒ शास॑दव्र॒तान्॥

—ऋ० म० १। सू० ५१। मं० ८॥

उ॒त शू॒द्र उ॒तार्ये॑॥

—यह भी अथर्ववेद [कां० १९। सू० ६२। मं० १] का प्रमाण है॥

हम लिख चुके हैं कि 'आर्य' नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्त पुरुषों का और इनसे विपरीत जनों का नाम 'दस्यु' अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम 'आर्य्य' और शूद्र का नाम 'अनार्य्य' अर्थात् 'अनाड़ी' है। जब वेद यह कहता है तो दूसरे विदेशियों के कपोलकल्पित को बुद्धिमान् लोग कभी नहीं

मान सकते। और देवासुर-संग्राम में आर्य्यावर्त्तीय अर्जुन तथा महाराजे दशरथ आदि जो कि हिमालय पहाड़ में आर्य विद्वान् और दस्यु, म्लेच्छ असुरों का जो युद्ध हुआ था, उसमें 'देव' अर्थात् आर्य्यों की रक्षा और असुरों के पराजय करने को सहायक हुए थे। इससे यही सिद्ध होता है कि आर्य्यावर्त्त [के] बाहर चारों ओर जो हिमालय के पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान देश में मनुष्य रहते हैं उन्हीं का नाम 'असुर' सिद्ध होता है। क्योंकि जब-जब हिमालय-प्रदेशस्थ आर्य्यों पर लड़ने को चढ़ाई करते थे, तब-तब यहां के राजे महाराजे लोग उन्हीं उत्तर आदि देशों में आर्य्यों के सहायक होते थे। और जो श्रीरामचन्द्रजी से दक्षिण में युद्ध हुआ है, उसका नाम 'देवासुर संग्राम' नहीं है, किन्तु उसको राम-रावण अथवा आर्य्य और राक्षसों का संग्राम कहते हैं। किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य्य लोग ईरान से आये और यहां के जङ्गलियों को लड़ कर, जय पाके, निकाल के, इस देश के राजा हुए, पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है? और—

आर्यवाचो म्लेच्छवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥ १॥

—मनु० [तु०—१०।४५]॥

म्लेच्छदेशस्त्वतः परः॥ २॥ —मनु० [२।२३]॥

जो आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न देश हैं, वे 'दस्युदेश' और 'म्लेच्छदेश' कहाते हैं। इससे भी यह सिद्ध होता है कि आर्य्यावर्त्त से भिन्न पूर्व देश से लेकर ईशान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम देशों में रहने वालों का नाम 'दस्यु' और 'म्लेच्छ' तथा 'असुर' है। और नैर्ऋत, दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न रहने वाले मनुष्यों का नाम 'राक्षस' है।

अब भी देख लो! हबशी लोगों का स्वरूप भयङ्कर जैसाकि राक्षसों का वर्णन किया है, वैसा ही दीख पड़ता है। और आर्य्यावर्त्त की सूध पर नीचे रहने वालों का नाम 'नाग' और उस देश का नाम 'पाताल' इसलिये कहते हैं कि वह देश आर्य्यावर्त्तीय मनुष्यों के 'पाद' अर्थात् पग के तले में है। और उनको 'नागवंशी', अर्थात् नाग नाम वाले पुरुष के वंश के

राजा होते थे। उसी की उलोपी राजकन्या से अर्जुन का विवाह हुआ था, अर्थात् इक्ष्वाकु से लेकर कौरव-पाण्डव तक सर्व-भूगोल में आर्यों का राज्य और वेदों का थोड़ा-थोड़ा प्रचार आर्य्यावर्त्त से भिन्न देशों में भी रहता था। इसमें यह प्रमाण है कि ब्रह्मा का पुत्र विराट्, विराट् का मनु, मनु के मरीच्यादि दश, इनके स्वायंभवादि सात राजा और उनके सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्य्यावर्त्त के प्रथम राजा हुए, जिन्होंने यह आर्य्यावर्त्त बसाया है।

अब अभाग्योदय से और आर्य्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्य्यावर्त्त में भी आर्य्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।

परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है, विना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिये जो कुछ वेदादिशास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं, उसी का मान्य करना भद्रपुरुषों का काम है।

प्रश्न—जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ?

उत्तर—एक अर्ब, छानवें क्रोड़, कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने में हुए हैं। इसका स्पष्ट व्याख्यान मेरी बनाई 'भूमिका'[१] में लिखा है, देख लीजिये।

इत्यादि प्रकार सृष्टि के बनाने और बनने में है और यह भी है कि

१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति विषय को देखो।

सबसे सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात् जो काटा नहीं जाता, उसका नाम परमाणु, साठ परमाणुओं के मिले हुए का नाम अणु, इसको इंगलिशभाषा में 'एटम' कहते हैं, दो अणु का एक द्व्यणुक जो कि स्थूल वायु है, तीन द्व्यणुक का अग्नि, चार द्व्यणुक का जल, पाँच द्व्यणुक की पृथिवी अर्थात् तीन द्व्यणुक का त्रसरेणु और उसका दूना होने से पृथिवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार क्रम से मिलाकर भूगोलादि परमात्मा ने बनाये हैं।

प्रश्न—इसका धारण कौन करता है? कोई कहता है—'शेष' अर्थात् सहस्र फणवाले सर्प्प के शिर पर पृथिवी है। दूसरा कहता है कि—बैल के सींग पर। तीसरा कहता है कि किसी पर नहीं। चौथा कहता है कि वायु के आधार। पाँचवाँ कहता है कि सूर्य के आकर्षण से खैंची हुई अपने ठिकाने पर स्थित। छठा कहता है कि—पृथिवी भारी होने से नीचे-नीचे आकाश में चली जाती है, इत्यादि में किस बात को सत्य मानें?

उत्तर—जो "शेष सर्प्प और बैल के सींग पर धरी हुई पृथिवी स्थित है" कहता है, उसको पूछना चाहिये कि सर्प्प और बैल के मा-बाप के जन्म समय किस पर थी तथा सर्प्प और बैल आदि किस पर हैं? बैलवाले मुसलमान तो चुप ही कर जायेंगे, परन्तु सर्प्प वाले कहेंगे कि सर्प्प कूर्म पर, कूर्म जल पर, जल अग्नि पर, अग्नि वायु पर और वायु आकाश में ठहरा है। उनसे पूछना चाहिये कि सब किस पर हैं? तो अवश्य कहेंगे कि परमेश्वर पर। जब उनसे कोई पूछेगा कि शेष और बैल किसका बच्चा है? तो कहेंगे कि कश्यप कद्रू और बैल गाय का। कश्यप मरीची, मरीची मनु, मनु विराट् और विराट् ब्रह्मा का पुत्र, ब्रह्मा आदि सृष्टि का था। जब शेष का जन्म न हुआ था, उसके पहले पाँच पीढ़ी हो चुकी हैं, तब किसने धारण किया था? अर्थात् कश्यप के जन्म-समय में पृथिवी किस पर थी? तो 'तेरी चुप मेरी भी चुप' और लड़ने लग जायेंगे। अर्थात् इसका सच्चा अभिप्राय यह है कि जो 'बाकी' रहता है, उसको 'शेष' कहते हैं। सो किसी कवि ने '**शेषाधारा पृथिवीत्युक्तम्**' पृथिवी 'शेष के आधार है' ऐसा कहा—दूसरे ने उसके

अभिप्राय को न समझकर सर्प्प की मिथ्या कल्पना कर ली। परन्तु जिसलिये परमेश्वर उत्पत्ति और प्रलय से बाकी अर्थात् पृथक् रहता है, इसी से उसको 'शेष' कहते हैं और उसी के आधार पृथिवी है—

सत्येनोत्तभिता भूमिः॥

—यह ऋग्वेद [१०।८५।१] के मन्त्र का भाग है।

(सत्य) अर्थात् जो त्रैकाल्याबाध्य, जिसका कभी नाश नहीं होता, उस परमेश्वर ने भूमि आदि सब लोकों का धारण किया है।

उक्षा दाधार पृथिवीमुत द्याम्॥

—यह भी ऋग्वेद का वचन है

[तुलना—ऋ० १०।३१।८; अथर्व० ४।११।१]॥

इसी 'उक्षा' शब्द को देखकर किसी ने बैल का ग्रहण किया होगा, क्योंकि उक्षा बैल का भी नाम है। परन्तु उस मूढ़ को यह विदित न हुआ कि इतने बड़े भूगोल के धारण करने का सामर्थ्य बैल में कहां से आवेगा! इसलिये 'उक्षा' वर्षा द्वारा भूगोल के सेचन करने से 'सूर्य्य' का नाम है। उसने अपने आकर्षण से पृथिवी को धारण किया है। परन्तु सूर्य्यादि का धारण करनेवाला विना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं है।

प्रश्न—इतने-इतने बड़े भूगोलों को परमेश्वर कैसे धारण कर सकता होगा?

उत्तर—जैसे अनन्त आकाश के सामने बड़े-बड़े भूगोल कुछ भी अर्थात् समुद्र के आगे जल के छोटे कणके के तुल्य भी नहीं, वैसे अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक एक परमाणु के तुल्य भी नहीं कह सकते। वह बाहर-भीतर सर्वत्र व्यापक अर्थात्—

विभुः प्रजासु —यह यजुर्वेद [३२.८] का वचन है।

वह परमात्मा सब प्रजाओं में व्यापक होकर सबका धारण कर रहा है। जो वह ईसाई, मुसलमान, पुराणियों के कथनानुसार विभु न होता तो इस सब सृष्टि का धारण कभी न कर सकता। क्योंकि विना प्राप्ति के किसी को कोई धारण नहीं कर सकता। कोई कहे कि ये सब लोक परस्पर आकर्षण से धारण होंगे, पुनः परमेश्वर के धारण करने की क्या अपेक्षा है? उनको यह उत्तर देना चाहिये कि यह सृष्टि अनन्त है,

वा सान्त? जो अनन्त कहैं तो आकारवाला वस्तु अनन्त कभी नहीं हो सकता और जो सान्त कहैं तो उनके पर-भाग 'सीमा' अर्थात् जिसके परे कोई भी दूसरा लोक नहीं है, वहां किसके आकर्षण से धारण होगा? जैसे समष्टि और व्यष्टि अर्थात् जब सब समुदाय का नाम वन रखते हैं तो 'समष्टि' कहाता है और एक-एक वृक्षादि को भिन्न-भन्न गणना करें, तो 'व्यष्टि' कहाता है, वैसे सब भूगोलों को समष्टि गिन कर जगत् कहैं, तो सब जगत् का धारण और आकर्षण का कर्त्ता विना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं। इसलिये जो सब जगत् को रचता है, वही—

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्॥

—यह यजुर्वेद [१३।४] का वचन है।

पृथिव्यादि प्रकाशरहित लोक-लोकान्तर और पदार्थ तथा सूर्य्यादि प्रकाशसहित लोक और पदार्थों का रचन-धारण वही परमात्मा करता है जो सबमें व्यापक हो रहा है।

प्रश्न—पृथिव्यादि लोक घूमते हैं, वा स्थिर हैं?

उत्तर—घूमते हैं।

प्रश्न—कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य्य घूमता है और पृथिवी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं कि पृथिवी घूमती है, सूर्य्य नहीं घूमता। इसमें सत्य क्या माना जाय?

उत्तर—ये दोनों आधे झूठे हैं। क्योंकि वेद में लिखा है कि-

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः॥

—यजुः० अ० ३। मं० ६॥

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य्य के चारों ओर आकाश में घूमता जाता है, अर्थात् सूर्य के चारों ओर भूमि घूमा करती है—

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

—यजुः०। अ० ३३। मं० ४३॥

जो 'सविता' अर्थात् सूर्य, वर्षादि का कर्त्ता, प्रकाशस्वरूप, तेजोमय, रमणीयस्वरूप के साथ वर्त्तमान, सब प्राणि-अप्राणियों में अमृतरूप वृष्टि वा किरण द्वारा अमृत का प्रवेश करा और सब मूर्त्तिमान् द्रव्यों को

दिखलाता हुआ, सब लोकों के साथ आकर्षण गुण से सह वर्त्तमान, अपनी परिधि में घूमता रहता है, किन्तु किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता। वैसे ही एक-एक ब्रह्माण्ड में एक सूर्य प्रकाशक और दूसरे सब लोक-लोकान्तर प्रकाश्य हैं, जैसे—

दिवि सोमो अधि श्रितः॥

—अथर्व० कां० १४। अनु० १। मं० १॥

जैसे यह चन्द्रलोक सूर्य से प्रकाशित होता है, वैसे ही पृथिव्यादि लोक भी सूर्य के प्रकाश ही से प्रकाशित होते हैं। परन्तु रात और दिन सर्वदा वर्त्तमान रहते हैं, क्योंकि पृथिव्यादि लोक घूम कर जितना भाग सूर्य के सामने आता जाता है, उतने में दिन और जितना पृष्ठ में अर्थात् आड़ में होता जाता है, उतने में रात। अर्थात् उदय, अस्त, संध्या, मध्याह्न, मध्यरात्रि आदि जितने कालावयव हैं, वे देशदेशान्तरों में सदा वर्त्तमान रहते हैं। अर्थात् जब आर्य्यावर्त्त में सूर्योदय होता है, उसी समय 'पाताल' अर्थात् 'अमेरिका' में अस्त होता है और जब आर्य्यावर्त्त में अस्त होता है, तब पाताल-देश में उदय होता है। जब आर्य्यावर्त्त में मध्य दिन वा मध्य रात है, उसी समय पाताल-देश में मध्य रात और मध्य दिन रहता है।

जो लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता और पृथिवी नहीं घूमती, वे सब अज्ञ हैं, क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्ष के दिन और रात होते। अर्थात् सूर्य का नाम (ब्रध्नः) पृथिवी से लाखों गुना बड़ा और क्रोड़ों कोश दूर है। जैसे राई के सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती और राई के घूमने में बहुत समय नहीं लगता, वैसे ही पृथिवी के घूमने से यथायोग्य रात-दिन होते हैं, सूर्य के घूमने से नहीं। और जो सूर्य को स्थिर कहते हैं, वे भी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं। क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक राशि स्थान से दूसरी 'राशि' अर्थात् स्थान को प्राप्त न होता। और गुरु पदार्थ विना घूमे आकाश में नियत स्थान पर कभी नहीं रह सकता। और जो जैन आदि कहते हैं कि पृथिवी घूमती नहीं, किन्तु नीचे चली जाती है और दो सूर्य और दो चन्द्र केवल जम्बूद्वीप में बतलाते हैं, वे तो बारह लोटा गहरी भांग के नशे में निमग्न हैं। क्योंकि जो नीचे-नीचे चलती जाती तो चारों ओर वायु के चक्र न बनने से

पृथिवी छिन्न-भिन्न होती और निम्न-स्थल पृथिवी में रहनेवालों को वायु का स्पर्श न होता, नीचेवालों को अधिक होता और एक-सी वायु की गति होती। दो सूर्य चन्द्र होते, तो रात और कृष्णपक्ष का होना ही नष्ट-भ्रष्ट होता। इसलिये एक भूमि के पास एक चन्द्र और अनेक चन्द्र, अनेक भूमियों के मध्य में एक सूर्य रहता है।

प्रश्न—सूर्य, चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है, वा नहीं?

उत्तर—ये सब भूगोल लोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती हैं, क्योंकि—

एतेषु हीदꣳ सर्वं वसु हितमेते हीदꣳ सर्वं वासयन्ते तद्यदिदꣳ सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति॥

—शत० कां० १४ [प्रपा० ६। ब्रा० ७। कं० ४]

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इनका वसु नाम इसलिये है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजा वसती हैं और ये ही सबको वसाते हैं। जिसलिये वास के, निवास करने के घर हैं, इसलिये इनका नाम '**वसु**' है। जब पृथिवी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं, पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह? और जैसे परमेश्वर का यह छोटा-सा लोक मनुष्यादि सृष्टि से भरा हुआ है, तो क्या ये सब लोक शून्य होंगे? परमेश्वर का कोई भी काम निष्प्रयोजन नहीं होता, तो क्या इतने असंख्य लोकों में मनुष्यादि सृष्टि न हो, तो सफल कभी हो सकता है? इसलिये सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है।

प्रश्न—जैसे इस देश में मनुष्यादि सृष्टि की आकृति अवयव है, वैसे ही अन्य लोकों में होंगे वा विपरीत?

उत्तर—कुछ-कुछ आकृति में भेद होने का सम्भव है, जैसे इस देश में चीने, हबशी और आर्य्यावर्त्त, यूरोप में अवयव और रङ्ग-रूप और आकृति का भी थोड़ा-थोड़ा भेद होता है, इसी प्रकार लोक-लोकान्तरों में भी भेद होते हैं। परन्तु जिस जाति की जैसी सृष्टि इस देश में है, वैसी जाति ही की सृष्टि अन्य लोकों में भी है। जिस-जिस शरीर के प्रदेश में नेत्रादि अङ्ग हैं, उसी-उसी प्रदेश में लोकान्तर में भी उसी

जाति के अवयव भी वैसे ही होते हैं। क्योंकि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

—ऋ०। म० १०। सू० १९० [मं० ३]॥

'धाता' परमात्मा ने जिस प्रकार के सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि, अन्तरिक्ष और तत्रस्थ सुख विशेष पदार्थ पूर्वकल्प में रचे थे, वैसे ही इस कल्प अर्थात् इस सृष्टि में रचे हैं, तथा सब लोक-लोकान्तरों में भी बनाये हैं। भेद किंचित्-मात्र नहीं होता।

प्रश्न—जिन वेदों का इस लोक में प्रकाश है, उन्हीं वेदों का उन लोकों में भी प्रकाश है, वा नहीं?

उत्तर—उन्हीं का है। जैसे एक राजा की राज्यव्यवस्था, नीति सब देशों में समान होती है, उसी प्रकार परमात्मा राजराजेश्वर की वेदोक्त नीति अपने सृष्टिरूप सब राज्य में एक-सी है।

प्रश्न—जब ये जीव और प्रकृतिस्थ तत्त्व अनादि और ईश्वर के बनाये नहीं हैं, तो ईश्वर का अधिकार भी इन पर न होना चाहिये, क्योंकि सब स्वतन्त्र हुए?

उत्तर—जैसे राजा और प्रजा समकाल में होते हैं और राजा के आधीन प्रजा होती है, वैसे ही परमेश्वर के आधीन जीव और जड़ पदार्थ हैं। जब परमेश्वर सब सृष्टि का बनाने, जीवों के कर्मफलों के देने, सबका यथावत् रक्षक और अनन्त सामर्थ्य वाला है, तो अल्प सामर्थ्य [जीव] भी और जड़ पदार्थ उसके आधीन क्यों न हो? इसलिये जीव कर्म करने में स्वतन्त्र, परन्तु कर्मों के फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र हैं, वैसे ही सर्वशक्तिमान् सृष्टि, संहार और पालन सब विश्व का कर रहा है।

इसके आगे विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष-विषय में लिखा जायगा। यह आठवां समुल्लास पूरा हुआ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलय-विषयेऽष्टमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥८॥

अथ नवमसमुल्लासारम्भः

अथ विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषयान् व्याख्यास्यामः

विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

—यजुः० अ० ४०। मं० १४॥

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है, वह '**अविद्या**' अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तरके '**विद्या**' अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है। अविद्या का लक्षण—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या॥

—यह योगसूत्र का वचन है [यो० द० साधनपाद सू० ५]

जो 'अनित्य' संसार और देहादि में, नित्य—अर्थात् जो कार्य जगत् देखा-सुना जाता है, सदा रहेगा, सदा से है और योगबल से यही देवों का शरीर सदा रहता है—वैसी विपरीत बुद्धि होना, अविद्या का प्रथमभाग है। अशुचि अर्थात् मलमय स्त्र्यादि के और मिथ्याभाषण, चोरी आदि अपवित्र में पवित्र बुद्धि-दूसरा। अत्यन्त विषयसेवनरूप 'दुःख' में सुखबुद्धि आदि तीसरा। 'अनात्मा' में आत्मबुद्धि करना अविद्या का चौथा भाग है। इस चार प्रकार के विपरीत ज्ञान को 'अविद्या' कहते हैं। इससे विपरीत अर्थात् अनित्य में अनित्य और नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र और पवित्र में पवित्र और दुःख में दुःख, सुख में सुख, अनात्मा में अनात्मा और आत्मा में आत्मा का ज्ञान होना 'विद्या' है। अर्थात् '**वेत्ति यथावत् तत्त्वं पदार्थस्वरूपं यया सा विद्या, यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चिनोति साऽविद्या**' जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह 'विद्या' और जिससे तत्त्वस्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्य बुद्धि होवे, वह 'अविद्या' कहाती है। अर्थात् कर्म और उपासना 'अविद्या' इसलिये है कि यह बाह्य और

अन्तर् क्रियाविशेष नाम है, ज्ञानविशेष नहीं। इसी से मन्त्र में कहा है कि विना शुद्ध कर्म और परमेश्वर की उपासना के मृत्यु दु:ख से पार कोई नहीं होता। अर्थात् पवित्र कर्म, पवित्रोपासना और पवित्र ज्ञान ही से मुक्ति और अपवित्र मिथ्याभाषणादि कर्म, पाषाणमूर्त्यादि की उपासना और मिथ्याज्ञान से बन्ध होता है। कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म, उपासना और ज्ञान से रहित नहीं होता। इसलिये धर्मयुक्त सत्य-भाषणादि कर्म करना और मिथ्याभाषणादि अधर्म को छोड़ देना मुक्ति का साधन है।

प्रश्न—मुक्ति किसको प्राप्त नहीं होती?

उत्तर—जो बद्ध है!

प्रश्न—बद्ध कौन है?

उत्तर—जो अधर्म अज्ञान में फसा हुआ जीव है।

प्रश्न—बन्ध और मोक्ष स्वभाव से होता है, वा निमित्त से?

उत्तर—निमित्त से। क्योंकि जो स्वभाव से होता तो बन्ध और मुक्ति की निवृत्ति कभी नहीं होती।

प्रश्न— **न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।**
न मुमुक्षुर्न वै मुक्तिरित्येषा परमार्थता॥

— यह माण्डूक्योपनिषद् पर श्लोक है
[गौडपादीयकारिका। प्रकरण २। कां० ३२]॥

जीव ब्रह्म होने से वस्तुत: जीव का 'निरोध' अर्थात् न कभी आवरण में आया, न जन्म लेता, न बन्धा है और न 'साधक' अर्थात् न कुछ साधना करनेहारा है, न छूटने की इच्छा करता और न इसकी कभी मुक्ति है। क्योंकि जब परमार्थ से बन्ध ही नहीं हुआ तो मुक्ति क्या?

उत्तर—यह नवीन वेदान्तियों का कहना सत्य नहीं। क्योंकि जीव का स्वरूप अल्प होने से आवरण में आता, शरीर के साथ प्रगट होनेरूप जन्म लेता, पापरूप कर्मों के फल-भोगरूप बन्धन में फसता, उसके छुड़ाने का साधन करता, दु:ख से छूटने की इच्छा करता और दु:खों से छूट कर परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति को भी भोगता है।

प्रश्न—ये सब धर्म देह और अन्त:करण के हैं, जीव के नहीं। क्योंकि जीव तो पाप-पुण्य से रहित साक्षीमात्र है। शीतोष्णादि शरीरादि के धर्म हैं, क्षुधा-तृषा प्राण का और हर्ष-शोक मन का धर्म्म है, आत्मा निर्लेप है।

उत्तर—देह और अन्त:करण जड़ हैं, उनको शीतोष्ण की प्राप्ति और भोग नहीं है, जैसे पत्थर को शीत और उष्ण का भान वा भोग नहीं है। जो चेतन मनुष्यादि प्राणी उसको स्पर्श करता है, उसी को शीत-उष्ण का भान और भोग होता है। वैसे प्राण भी जड़ हैं, न उनको भूख और न पिपासा, किन्तु प्राणवाले जीव को क्षुधा-तृषा लगती है। वैसे ही मन भी जड़ है, न उसको हर्ष और न शोक हो सकता है, किन्तु मन से हर्ष-शोक, सुख-दु:ख का भोग जीव करता है। जैसे बहिष्करण श्रोत्रादि इन्द्रियों से अच्छे-बुरे शब्दादि विषयों का ग्रहण करके जीव सुखी-दु:खी होता है, वैसे ही 'अन्त:करण' अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार से सङ्कल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण और अभिमान का करनेवाला जीव है। जैसे तलवार आदि किसी शस्त्र से किसी को मारने वा रक्षा करने वाला दण्ड और मान्य का भागी कर्म का कर्त्ता होता है, तलवार नहीं होती, वैसे ही देहेन्द्रिय, अन्त:करण और प्राणरूप साधनों से अच्छे-बुरे कर्मों का कर्त्ता जीव सुख-दु:ख का भोक्ता होता है। जीव कर्मों का साक्षी नहीं, किन्तु कर्त्ता है। कर्मों का साक्षी तो एक परमात्मा है। जो कर्म का करने वाला जीव है, वही कर्मों में लिप्त होता है; वह ईश्वर साक्षी नहीं।

प्रश्न—जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है। जैसे दर्प्पण के टूटने-फूटने से बिम्ब की कुछ हानि नहीं होती, इसी प्रकार अन्त:करण में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव तब तक है कि जब तक वह अन्त:करणोपाधि है। जब अन्त:करण नष्ट हो गया, तब वह जीव मुक्त है।

उत्तर—यह बालकपन की बात है। क्योंकि प्रतिबिम्ब साकार का साकार में होता है। जैसे मुख और दर्प्पण आकारवाले हैं और पृथक् भी हैं। जो पृथक् न हो, तो भी प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। ब्रह्म निराकार, सर्वव्यापक होने से, उसका प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता।

प्रश्न—देखो! गम्भीर स्वच्छ स्थिर जल में निराकार और व्यापक

आकाश का आभास पड़ता है। इसी प्रकार स्वच्छ अन्त:करण में परमात्मा का आभास है। इसलिये इसको 'चिदाभास' कहते हैं।

उत्तर—यह बालबुद्धि का मिथ्या प्रलाप है, क्योंकि आकाश दृश्य नहीं, तो उसको आंख से कोई भी नहीं देख सकता। जब आकाश से स्थूल वायु को आँख से नहीं देख सकता, तो आकाश को क्यों कर देख सकेगा?

प्रश्न—यह जो ऊपर को नीला और धूंधला दीखता है वह आकाश नीला दीखता है, वा नहीं?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—तो वह क्या है?

उत्तर—अलग-अलग पृथिवी, जल और अग्नि के त्रसरेणु दीखते हैं। उसमें जो नीलता दीखती है वह अधिक जल, जो वर्षता है सो वही नील, जो धूंधला दीखता है वह पृथिवी से धूली उड़ कर वायु में घूमती है वह दीखती, और उसी का प्रतिबिम्ब जल वा दर्प्पण में दीखता है; आकाश का कभी नहीं।

प्रश्न—जैसे घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश और महदाकाश के भेद व्यवहार में होते हैं, वैसे ही ब्रह्म के ब्रह्माण्ड और अन्त:करण उपाधि के भेद से ईश्वर और जीव नाम होता है। जब घटादि नष्ट हो जाते हैं, तब महाकाश ही कहाता है।

उत्तर—यह भी बात अविद्वानों की है। क्योंकि आकाश कभी छिन्न-भिन्न नहीं होता। व्यवहार में भी 'घड़ा लाओ' इत्यादि व्यवहार होते हैं, कोई नहीं कहता कि घड़े का आकाश लाओ। इसलिये यह बात ठीक नहीं।

प्रश्न—जैसे समुद्र के बीच में मच्छी, कीड़े और आकाश के बीच में पक्षी आदि घूमते हैं, वैसे ही चिदाकाश ब्रह्म में सब अन्त:करण घूमते हैं। वे स्वयं तो जड़ हैं, परन्तु सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसाकि अग्नि से लोहा, वैसे चेतन हो रहे हैं। जैसे वे चलते-फिरते और आकाश तथा ब्रह्म स्थिर है, वैसे जीव को ब्रह्म मानने में कोई भी दोष नहीं आता।

उत्तर—यह भी तुम्हारा दृष्टान्त सत्य नहीं, क्योंकि जो सर्वव्यापी ब्रह्म सब अन्त:करणों में प्रकाशमान होकर जीव होता है, तो सर्वज्ञादि गुण उसमें होते हैं वा नहीं? जो कहो कि आवरण होने से सर्वज्ञता नहीं होती, तो कहो कि ब्रह्म आवृत और खण्डित है वा अखण्डित? जो कहोगे कि अखण्डित है, तो बीच में कोई भी पड़दा नहीं हो सकता। जब पड़दा नहीं, तो सर्वज्ञता क्यों नहीं? जो कहो कि अपने स्वरूप को भूलकर अन्त:करण में ब्रह्म फस गया है, तो ब्रह्म नित्य मुक्त नहीं। और ब्रह्म अन्त:करण के साथ चलता है वा नहीं? तो यही कहोगे कि नहीं। जब स्वयं नहीं चलता, तो अन्त:करण जितना-जितना पूर्व प्राप्त देश छोड़ता और आगे-आगे जहां-जहां सरकता जायगा, वहां-वहां का ब्रह्म भ्रान्त, अज्ञानी हो जायगा और जितना-जितना छूटता जायगा, वहां-वहां का ज्ञानी, पवित्र और मुक्त होता जायगा। इसी प्रकार सर्वत्र सृष्टि के ब्रह्म को अन्त:करण बिगाड़ा करेंगे और बन्ध-मुक्ति भी क्षण-क्षण में हुआ करेगी। तुम्हारे कहे प्रमाणे जो वैसा होता, तो किसी जीव को पूर्व देखे-सुने का स्मरण न होता। क्योंकि जिस ब्रह्म ने देखा वह पृथक् रहा और दूसरे देश में दूसरे ब्रह्म का सम्बन्ध होता है। जैसे लोहे में अग्नि ही का दाह प्रकाश है लोहे का नहीं, वैसे चेतनता अन्त:करण में ब्रह्म की है अपनी नहीं, तो ब्रह्म ही कर्ता, भोक्ता, बद्ध और मुक्त हो जायगा। इसलिये जीव सब पृथक्-पृथक् हैं। ब्रह्म जीव वा जीव ब्रह्म एक कभी नहीं होता, सदा पृथक्-पृथक् हैं।

प्रश्न—यह सब अध्यारोपमात्र है। अर्थात् अन्य वस्तु में अन्य वस्तु का स्थापन करना 'अध्यारोप' कहाता है, वैसे ही ब्रह्म वस्तु में सब जगत् और इसके व्यवहार का अध्यारोप करने से जिज्ञासु को बोध कराना होता है, वास्तव में सब ब्रह्म ही है।

[प्रति] प्रश्न—अध्यारोप का करने वाला कौन है?

उत्तर—जीव।

प्रश्न—जीव किसको कहते हैं?

उत्तर—अन्त:करणावच्छिन्न चेतन को।

प्रश्न—अन्त:करणावच्छिन्न चेतन से दूसरा है, वा वही ब्रह्म है?

उत्तर—वही ब्रह्म है।

प्रश्न—तो क्या ब्रह्म ही ने अपने में जगत् की झूठी कल्पना कर ली?

उत्तर—हो, ब्रह्म की इससे क्या हानि?

प्रश्न—जो मिथ्या कल्पना करता है, क्या वह झूठा नहीं होता?

उत्तर—नहीं। क्योंकि जो मन, वाणी से कल्पित वा कथित है, वह सब झूठा है।

प्रश्न—फिर मन, वाणी से झूठी कल्पना करने और मिथ्या बोलनेवाला ब्रह्म कल्पित और मिथ्यावादी हुआ वा नहीं?

उत्तर—हो, हमको इष्टापत्ति है।

वाह रे झूठे वेदान्तियो! तुमने सत्यस्वरूप, सत्यकाम, सत्यसङ्कल्प परमात्मा को भी मिथ्याचारी कर दिया। क्या यह तुम्हारी दुर्गति का कारण नहीं है? किस उपनिषद्, सूत्र वा वेद में लिखा है कि परमेश्वर मिथ्यासङ्कल्प और मिथ्यावादी है? क्योंकि जैसे किसी चोर ने कोतवाल को दण्ड दिया अर्थात् **'उलटि चोर कोतवाल को दण्डे'** इस कहानी के सदृश तुह्मारी बात हुई। यह तो बात उचित है कि कोतवाल चोर को दण्डे। परन्तु यह बात विपरीत है कि चोर कोतवाल को दण्ड देवे। वैसे ही तुम मिथ्यासङ्कल्प और मिथ्यावादी होकर वही अपना दोष ब्रह्म में व्यर्थ लगाते हो। जो ब्रह्म मिथ्याज्ञानी, मिथ्यावादी, मिथ्याकारी होवे तो सब अनन्त ब्रह्म वैसा ही हो जाय, क्योंकि वह एकरस है, सत्यस्वरूप, सत्यमानी, सत्यवादी और सत्यकारी है। ये सब दोष तुम्हारे हैं, ब्रह्म के नहीं। जिसको तुम विद्या कहते हो वह अविद्या और झूठा अध्यारोप है, क्योंकि आप ब्रह्म न होकर अपने को ब्रह्म और ब्रह्म को जीव मानना यह अविद्या और मिथ्याज्ञान नहीं तो क्या है? जो सर्वव्यापक है वह परिच्छिन्न, अज्ञान और बन्ध में कभी नहीं गिरता, क्योंकि अज्ञान परिच्छिन्न, एकदेशी, अल्प, अल्पज्ञ जीव में होता है, सर्वज्ञ सर्वव्यापी ब्रह्म में नहीं।

अब मुक्ति बन्ध का वर्णन करते हैं—

प्रश्न—मुक्ति किसको कहते हैं?

उत्तर—**'मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः'** जिसमें छूट जाना हो, उसका नाम मुक्ति है।

प्रश्न—किससे छूट जाना?

उत्तर—जिससे छूटने की इच्छा सब जीव करते हैं।

प्रश्न—किससे छूटने की इच्छा करते हैं?

उत्तर—जिससे छूटना चाहते हैं।

प्रश्न—किससे छूटना चाहते हैं?

उत्तर—दुःख से।

प्रश्न—छूट कर किसको प्राप्त होते और कहां रहते हैं?

उत्तर—सुख को प्राप्त होते और ब्रह्म में रहते हैं।

प्रश्न—मुक्ति और बन्ध किन-किन बातों से होता है?

उत्तर—परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म्म, अविद्या, कुसङ्ग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या, पक्षपातरहित न्याय-धर्म की वृद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और 'उपासना' अर्थात् योगाभ्यास करने; विद्या पढ़ने-पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने; सबसे उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्यायधर्मानुसार ही करे, इत्यादि साधनों से **'मुक्ति'** और इनसे विपरीत ईश्वराज्ञाभङ्ग करने आदि काम से **'बन्ध'** होता है।

प्रश्न—मुक्ति में जीव का लय होता है, वा विद्यमान रहता है?

उत्तर—विद्यमान रहता है।

प्रश्न—कहां रहता है?

उत्तर—ब्रह्म में।

प्रश्न—ब्रह्म कहां है और वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है, वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरता है?

उत्तर—जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है, उसी में मुक्त जीव 'अव्याहतगति' अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं, विज्ञान आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विचरता है।

प्रश्न—मुक्त जीव का स्थूल शरीर रहता है, वा नहीं?

उत्तर—नहीं रहता।

प्रश्न—फिर वह सुख और आनन्द भोग कैसे करता है?

उत्तर—उसके सत्य-सङ्कल्पादि स्वाभाविक गुण-सामर्थ्य सब रहते हैं, भौतिकसङ्ग नहीं रहता। जैसे—

शृण्वन् श्रोत्रं भवति, स्पर्शयन् त्वग्भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसना भवति, जिघ्रन् घ्राणं भवति, मन्वानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयँश्चित्तम्भवत्यहङ्कुर्वाणोऽहङ्कारो भवति॥ [तुलना]—शतपथ कां० १४। [३। २। १७]॥

[—छां० उप० प्रपा० ८। खं० १२। प्रवाक ४-५]

मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीव के साथ नहीं रहते, किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं। जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखने के सङ्कल्प से चक्षु, स्वाद के अर्थ रसना, गन्ध के लिये घ्राण, सङ्कल्प-विकल्प करने समय मन, निश्चय करने के लिये बुद्धि, स्मरण करने के लिये चित्त और अहङ्कार करने में अहङ्काररूप अपनी स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है और सङ्कल्प इच्छामात्र शरीर होता है। जैसे शरीर के आधार रह कर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य्य करता है, वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है।

प्रश्न—उसकी शक्ति कै प्रकार की और कितनी है?

उत्तर—मुख्य एक प्रकार की शक्ति है। परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन और गन्धग्रहण तथा ज्ञान इन २४ चौबीस प्रकार के सामर्थ्ययुक्त जीव है। इससे मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति भोग करता है। जो मुक्ति में जीव का लय होता, तो मुक्ति का सुख कौन भोगता? और जो जीव का लय मानते हैं, वे जीव के नाश ही को मुक्ति समझते हैं, वे तो महामूढ़ हैं। क्योंकि मुक्ति जीव की यह है कि दुःखों से छूटकर आनन्दस्वरूप, सर्वव्यापक, अनन्त परमेश्वर में जीव का आनन्द में

रहना। देखो वेदान्त शारीरक सूत्रों में—

अभावं बादरिराह ह्येवम्।

[वे० द० अ० ४। पा० ४। सू० १०]

जो बादरि व्यास जी का पिता है, वह मुक्ति में जीव और उसके साथ मन का भाव मानता है। अर्थात् जीव और मन का लय पराशरजी नहीं मानते हैं, वैसे ही—

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्॥

[वेदान्त० अ० ४। पा० ४। सू० ११]॥

और जैमिनि आचार्य्य मुक्त पुरुष का मन के समान सूक्ष्म शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण आदि को भी विद्यमान मानते हैं, अभाव नहीं।

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः॥

[वेदान्त० अ० ४। पा० ४। सू० १२]॥

व्यास मुनि मुक्ति में भाव और अभाव दोनों मानते हैं। अर्थात् दोष अविद्यादि क्लेशादि का अभाव और जीव, अन्तःकरण, आनन्द, प्राण, इन्द्रियों का शुद्ध भाव रहता है अर्थात् शुद्ध सामर्थ्ययुक्त जीव मुक्ति में बना रहता है। अपवित्रता, पापाचरण, दुःख, अज्ञानादि का अभाव मानते हैं।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्॥

—यह [कठ] उपनिषद् का श्लोक है [अ० २। वल्ली० ६। मं० १०]

जब शुद्ध मनयुक्त पाँच ज्ञानेन्द्रिय जीव के साथ रहती हैं और बुद्धि का निश्चय स्थिर होता है, उसको 'परमगति' अर्थात् मोक्ष कहते हैं।

य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति॥ [छां० उप० प्रपा० ८। खं० ७। प्रवाक १]॥

स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते॥

[छां० उप० प्रपा० ८। खं० १२। प्रवाक ५]

य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषांꣳ

सर्वे च लोका आप्ताः सर्वे च कामाः स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति॥

[छां० उप० प्रपा० ८। खं० १२। प्रवाक ६]॥

मघवन्मर्त्यं वा इदꣳ शरीरमात्तं मृत्युना तदस्याऽमृतस्याऽशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः॥

—छान्दो० [उप० प्रपा० ८। खं० १२। प्रवाक १]॥

जो परमात्मा अपहतपाप्मा, सर्वपाप, जरा, मृत्यु, शोक, क्षुधा, पिपासा से रहित, सत्यकाम, सत्यसंकल्प है, उसकी खोज और उसी की जानने की इच्छा करनी चाहिये। जिस परमात्मा के सम्बन्ध से मुक्त जीव सब लोकों और सब कामों को प्राप्त होता है, जो परमात्मा को जानके मोक्ष के साधन और अपने को शुद्ध करना जानता है॥

सो यह मुक्ति को प्राप्त जीव शुद्ध दिव्य नेत्र और शुद्ध मन से कामों को देखता, प्राप्त होता हुआ रमण करता है॥

जो ये ब्रह्मलोक अर्थात् दर्शनीय परमात्मा में स्थित होके मोक्ष सुख को भोगते हैं और इसी परमात्मा का जोकि सब का अन्तर्यामी आत्मा है, उसकी उपासना मुक्ति की प्राप्ति करनेवाले विद्वान् लोग करते हैं, उससे उनको सब लोक और सब काम प्राप्त होते हैं। अर्थात् जो-जो संकल्प करते हैं, वह-वह लोक और वह-वह काम प्राप्त होता है और वे मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़ कर सङ्कल्पमय शरीर से आकाश में परमेश्वर में विचरते हैं। क्योंकि जो शरीरवाले होते हैं, वे सांसारिक दुःख से रहित नहीं हो सकते॥

जैसे इन्द्र से प्रजापति ने कहा है कि—हे परमपूजित धनयुक्त पुरुष! यह स्थूल शरीर मरणधर्मा है और जैसे सिंह के मुख में बकरी होवे, वैसे यह शरीर मृत्यु के मुख के बीच है। सो शरीर इस 'मरण और शरीर-रहित' जीवात्मा का निवासस्थान है। इसीलिये यह जीव सुख और दुःख से सदा ग्रस्त रहता है। क्योंकि शरीरसहित जीव की सांसारिक प्रसन्नता-अप्रसन्नता की निवृत्ति नहीं होती और जो शरीररहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्म में रहता है, उसको सांसारिक सुख-दुःख का स्पर्श भी

नहीं होता, किन्तु सदा आनन्द में रहता है।

प्रश्न—जीव मुक्ति को प्राप्त होकर पुनः जन्म-मरणरूप दुःख में कभी आते हैं, वा नहीं? क्योंकि—

न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तत इति॥

—उपनिषद्वचनम् [छां० उप० प्र० ८। खं० १५]॥

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्॥

—शारीरक सूत्र [वे० द० अ० ४। पा० ४। सू० २२]॥

यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

—भगवद्गीता [अ० १५। श्लो० ६]॥

इत्यादि वचनों से विदित होता है कि मुक्ति वही है जिससे निवृत्त होकर पुनः संसार में कभी नहीं आता।

उत्तर—यह बात ठीक नहीं। क्योंकि वेद में इस बात का निषेध किया है—

कस्य॑ नू॒नं क॑त॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑।
को नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात् पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च॥ १॥
अ॒ग्नेर्व॒यं प्र॑थ॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑।
स नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात् पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च॥ २॥

—ऋ० म० १। सू० २४। मं० १-२॥

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः॥ ३॥

—सांख्यसूत्र [अ० १। सू० १५९]॥

प्रश्न—हम लोग किसका नाम पवित्र जानें? कौन नाशरहित पदार्थों के मध्य में वर्त्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है, हमको मुक्ति का सुख भुगाकर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता है?॥ १॥

उत्तर—हम इस स्वप्रकाशस्वरूप, अनादि, सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें, जो हमको मुक्ति में आनन्द भुगाकर पृथिवी में पुनः माता-पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है। वही परमात्मा इस प्रकार मुक्ति की व्यवस्था करता और सबका स्वामी है॥ २॥

जैसे इस समय बन्ध मुक्त जीव हैं, वैसे ही सर्वदा रहते हैं। अत्यन्त विच्छेद बन्ध वा मुक्ति का कभी नहीं होता, किन्तु बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहती॥ ३॥

प्रश्न—

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः।

[न्याय सू० अ० १। आ० १। सू० २२]

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः॥

—न्यायसूत्र [अ० १। आ० १। सू० २]॥

जो दुःख का अत्यन्त विच्छेद होता है, वही 'मुक्ति' कहाती है।

क्योंकि जब मिथ्या ज्ञान, अविद्या, लोभादि दोष, विषय, दुष्ट-व्यसनों में प्रवृत्ति, जन्म और दुःख का उत्तर-उत्तर के छूटने से पूर्व-पूर्व के निवृत्त होने ही से 'मोक्ष' है, जो कि सदा बना रहता है।

उत्तर—यह आवश्यक नहीं है कि अत्यन्त शब्द अत्यन्ताभाव ही का नाम होवे। जैसे '**अत्यन्तं दुःखमत्यन्तं सुखं चास्य वर्त्तते**' बहुत दुःख और बहुत सुख इस मनुष्य को है। इससे यही विदित होता है कि इसको बहुत दुःख वा सुख है। इसी प्रकार यहां भी 'अत्यन्त' शब्द का अर्थ जानना चाहिये।

प्रश्न—जो मुक्ति से भी जीव फिर आता है तो वह कितने समय तक मुक्ति में रहता है?

उत्तर—ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे।

—यह मुण्डक उपनिषद् का वचन है [तुलना—तैत्ति० आरण्यक प्रपा० १०। अनुवाक १०। प्रवाक ३। ऋचा २२; मुण्डकोप० मुं० ३। खं० २। मं० ६]॥

वे मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति-सुख को छोड़ के संसार में आते हैं। इसकी संख्या यह है कि—तेंतालीस लाख बीस सहस्र वर्षों की एक 'चतुर्युगी', दो सहस्र चतुर्युगियों का एक 'अहोरात्र', ऐसे तीस अहोरात्रों का एक 'महीना', ऐसे बारह महीनों का एक 'वर्ष', ऐसे शत-वर्षों का

'**परान्तकाल**' होता है। इसको गणित की रीति से यथावत् समझ लीजिये। इतना समय मुक्ति में सुख भोगने का है।

प्रश्न—सब संसार और ग्रन्थकारों का यही मत है कि जिससे पुनः जन्म-मरण में कभी न आवें।

उत्तर—यह बात कभी नहीं हो सकती। क्योंकि प्रथम तो जीव का सामर्थ्य, शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित हैं, पुनः उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है? अनन्त आनन्द को भोगने का असीम सामर्थ्य, कर्म और साधन जीव में नहीं, इसलिये अनन्त सुख नहीं भोग सकता। जिनके साधन अनित्य हैं, उनका फल नित्य कभी नहीं हो सकता। और जो मुक्ति में से कोई भी लौटकर जीव इस संसार में न आवे, तो संसार का 'उच्छेद' अर्थात् जीव निश्शेष हो जाने चाहियें।

प्रश्न—ईश्वर, जितने जीव मुक्त होते हैं, उतने नये उत्पन्न करके संसार में रख देता है, इसलिये निश्शेष नहीं होते।

उत्तर—जो ऐसा होवे तो जीव अनित्य हो जायें। क्योंकि जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका नाश अवश्य होता है। फिर तुम्हारे मतानुसार मुक्ति पाकर भी विनष्ट हो जायेंगे। मुक्ति अनित्य हो गई। और मुक्ति के स्थान में बहुत-सा भीड़-भड़क्का हो जायगा। क्योंकि वहां आगम अधिक और व्यय कुछ भी नहीं होने से बढ़ती का पारावार न रहेगा।

और दुःख के अनुभव के विना, सुख कुछ भी नहीं हो सकता। जैसे कटु न हो, तो मधुर क्या। जो मधुर न हो, तो कटु क्या कहावे? क्योंकि एक स्वाद के एक रस के विरुद्ध होने से दोनों की परीक्षा होती है। जैसे कोई मनुष्य मीठा मधुर ही खाता-पीता जाय, उसको वैसा सुख नहीं होता, जैसा सब प्रकार के रसों के भोगनेवाले को होता है।

और जो ईश्वर अन्तवाले कर्मों का अनन्त फल देवे, तो उसका न्याय नष्ट हो जाय। जो जितना भार उठा सके, उतना उसपर धरना, बुद्धिमानों का काम है। जैसे एक मनभर उठानेवाले के शिर पर दस मन धरने से भार धरनेवाले की निन्दा होती है, वैसे अल्पज्ञ अल्प-सामर्थ्य वाले जीव पर अनन्त सुख का भार धरना, ईश्वर के लिये ठीक नहीं।

और जो परमेश्वर नये जीव उत्पन्न करता है, तो जिस कारण से

उत्पन्न होते हैं, वह चुक जायगा। क्योंकि चाहे कितना ही बड़ा धनकोश हो, परन्तु जिसमें व्यय है और आय नहीं, उसका कभी न कभी दिवाला निकल ही जाता है। इसलिये यही व्यवस्था ठीक है कि मुक्ति में जाना, वहां से आना ही अच्छा है। क्या थोड़े कारागार से 'जन्म-कैद' वा 'कालेपानी' अथवा 'फांसी' को कोई अच्छा मानता है? जब वहां से आना ही न हो, तो 'जन्म-कारागार' से इतना ही अन्तर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती। और ब्रह्म में लय होना समुद्र में डूब मरना है।

प्रश्न—जैसे परमेश्वर नित्यमुक्त, पूर्ण-सुखी है, वैसे ही जीव भी नित्यमुक्त और सुखी रहेगा तो कोई भी दोष न आवेगा।

उत्तर—परमेश्वर अनन्त स्वरूप, सामर्थ्य, गुण, कर्म, स्वभाववाला है इसलिये वह कभी अविद्या और दुःख बन्धन में नहीं गिर सकता। जीव मुक्त होकर भी शुद्धस्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित गुण-कर्म-स्वभाववाला रहता है, परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता।

प्रश्न—जब ऐसा; तो मुक्ति भी जन्म-मरण के सदृश हुई। इसके लिये परिश्रम करना व्यर्थ है।

उत्तर—मुक्ति जन्म-मरण के सदृश नहीं। क्योंकि जब-तक ३६००० (छत्तीस सहस्र) वार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है, उतने समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द में रहना, दुःख का न होना, क्या छोटी बात है? जब आज खाते-पीते हो, कल भूख लगनेवाली है, पुनः इसका उपाय क्यों करते हो? जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य, प्रतिष्ठा, स्त्री, सन्तान आदि के लिये उपाय करना आवश्यक है, तो मुक्ति के लिये क्यों न करना? जैसे मरना अवश्य है, तो भी जीवन का उपाय किया जाता है, वैसे ही मुक्ति से लौट कर जन्म में आना है, तथापि उसका उपाय करना अत्यावश्यक है?

प्रश्न—मुक्ति के क्या-क्या साधन हैं?

उत्तर—कुछ साधन तो प्रथम लिख आये हैं परन्तु विशेष उपाय ये हैं—जो मुक्ति चाहै वह 'जीवन्मुक्त' अर्थात् जिन मिथ्याभाषणादि पाप-कर्मों का फल दुःख है, उनको छोड़ सुखरूप फल को देनेवाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करे। जो कोई दुःख को छुड़ाना और

सुख को प्राप्त होना चाहै, वह अधर्म को छोड़, धर्म अवश्य करे। क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है।

सत्पुरुषों के संग से '**विवेक**' अर्थात् सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निश्चय अवश्य करें, पृथक्-पृथक् जानें और 'शरीर' अर्थात् जीव पंचकोशों का विवेचन करें। **एक—'अन्नमय'** जो त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है। **दूसरा—'प्राणमय'** जिसमें 'प्राण' अर्थात् जो भीतर से बाहर जाता, 'अपान' जो बाहर से भीतर आता, 'समान' जो नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुँचाता, 'उदान' जिससे कंठस्थ अन्न-पान खैंचा जाता और बल-पराक्रम होता है, 'व्यान' जिससे सब शरीर में चेष्टा आदि कर्म जीव करता है। **तीसरा—'मनोमय'** जिसमें मन के साथ अहङ्कार, वाक्, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ पांच कर्म इन्द्रियाँ हैं। **चौथा—'विज्ञानमय'** जिसमें बुद्धि, चित्त, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये पांच ज्ञान इन्द्रियाँ, जिनसे जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है। **पाँचवाँ—'आनन्दमयकोश'** जिसमें प्रीति-प्रसन्नता, न्यून आनन्द, अधिकानन्द, आनन्द और साधारण कारणरूप प्रकृति है, ये 'पांच कोष' कहाते हैं। इन्हीं से जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है। **तीन अवस्था**—एक '**जागृत**' दूसरी '**स्वप्न**' और तीसरी '**सुषुप्ति**' अवस्था कहाती है। **तीन शरीर** हैं—**एक 'स्थूल'** जो यह दीखता है। **दूसरा—पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच सूक्ष्म-भूत** और **मन** तथा **बुद्धि** इन सत्तरह तत्त्वों का समुदाय '**सूक्ष्मशरीर**' कहाता है। यह सूक्ष्मशरीर जन्ममरणादि में भी जीव के साथ रहता है। इसके **दो भेद** हैं—**एक 'भौतिक'** अर्थात् जो सूक्ष्म-भूतों के अंशों से बना है। **दूसरा 'स्वाभाविक'** जो जीव के स्वाभाविक गुण रूप हैं। यह दूसरा 'अभौतिक' शरीर मुक्ति में भी रहता है। इसी से जीव मुक्ति में सुख को भोगता है। **तीसरा कारण**—जिसमें सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है, वह प्रकृतिरूप होने से सर्वत्र विभु और सब जीवों के लिये एक है। **चौथा 'तुरीय'** शरीर वह कहाता है—जिसमें समाधि से परमात्मा के आनन्दरूप में मग्न जीव होते हैं। इसी समाधि संस्कारजन्य शुद्ध शरीर का पराक्रम मुक्ति में भी यथावत्

सहायक रहता है। इन सब कोष, अवस्थाओं से जीव पृथक् है। क्योंकि जब मृत्यु होता, तब सब कोई कहते हैं कि जीव निकल गया। यही जीव सबका प्रेरक, सबका धर्त्ता, साक्षी, कर्त्ता, भोक्ता कहाता है। जो कोई ऐसा कहे कि जीव कर्त्ता-भोक्ता नहीं, तो उसको जानो कि वह अज्ञानी, अविवेकी है। क्योंकि विना जीव के जो ये सब जड़ पदार्थ हैं इनको सुख-दुःख का भोग वा पाप-पुण्य-कर्तृत्व कभी नहीं हो सकता। हां, इनके सम्बन्ध से जीव पाप-पुण्यों का कर्त्ता और सुख-दुःखों का भोक्ता है। जब इन्द्रियां अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगता है, तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्त्तता है, वह मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है। और जो विपरीत वर्त्तता है, वह बन्धजन्य दुःख भोगता है।

दूसरा साधन—‘**वैराग्य**’ अर्थात् जो विवेक से सत्यासत्य को जाना हो, उसमें से सत्याचरण का ग्रहण और असत्याचरण का त्याग करना। विवेक यह है—जो पृथिवी से लेकर परमेश्वर-पर्यन्त पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव से जानकर—उसकी आज्ञा-पालन और उपासना में तत्पर होना, उससे विरुद्ध न चलना, सृष्टि से उपकार लेना विवेक कहाता है।

तत्पश्चात् **तीसरा साधन**—‘**षट्क सम्पत्ति**’ अर्थात् छः प्रकार के कर्म करना। **एक**—‘**शम**’ जिससे अपने आत्मा और अन्तःकरण को अधर्माचरण से हटाकर, धर्माचरण में सदा प्रवृत्त रखना। **दूसरा**—‘**दम**’ जिससे श्रोत्रादि इन्द्रियों और शरीर को व्यभिचारादि बुरे कर्मों से हटाकर, जितेन्द्रियत्वादि शुभ कर्मों में प्रवृत्त रखना। **तीसरा**—‘**उपरति**’ जिससे दुष्ट कर्म करनेवाले पुरुषों से सदा दूर रहना। **चौथा**—‘**तितिक्षा**’ चाहे निन्दा, स्तुति, हानि, लाभ कितना ही क्यों न हो, परन्तु हर्ष-शोक को छोड़, मुक्तिसाधनों में सदा लगे रहना। **पाँचवाँ**—‘**श्रद्धा**’ जो वेदादि सत्य-शास्त्र और इनके बोध से पूर्ण आप्त विद्वान् सत्योपदेष्टा महाशयों

के वचनों पर विश्वास करना। **छठा**—‘**समाधान**’ चित्त की एकाग्रता; ये छः मिल कर एक साधन तीसरा कहाता है।

चौथा—‘**मुमुक्षुत्व**’ अर्थात् जैसे क्षुधा-तृषातुर को सिवाय अन्न-जल के दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता, वैसे विना मुक्ति के साधन और मुक्ति के, दूसरे में प्रीति न होना; ये चार साधन। और **चार**‘**अनुबन्ध**’ अर्थात् साधनों के पश्चात् ये कर्म करने होते हैं—इनमें से जो इन चार साधनों से युक्त पुरुष होता है, वही मोक्ष का ‘**अधिकारी**’ होता है। दूसरा—‘**सम्बन्ध**’ ब्रह्म की प्राप्तिरूप मुक्ति प्रतिपाद्य और वेदादि-शास्त्र-प्रतिपादक को यथावत् समझ कर अन्वित करना। तीसरा—‘**विषयी**’ सब शास्त्रों का प्रतिपादन-विषय ब्रह्म उसकी प्राप्तिरूप विषयवाले पुरुष का नाम विषयी है। चौथा—‘**प्रयोजन**’ सब दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द को प्राप्त होकर मुक्ति-सुख का होना, ये चार ‘**अनुबन्ध**’ कहाते हैं।

तदन्तर ‘**श्रवणचतुष्टयम्**’

एक ‘**श्रवण**’ जब कोई विद्वान् उपदेश करे तब शान्त, ध्यान देकर सुनना, विशेष ब्रह्मविद्या के सुनने में अत्यन्त ध्यान देना चाहिये कि यह सब विद्याओं में से सूक्ष्म विद्या है। सुनकर दूसरा—‘**मनन**’ एकान्त देश में बैठके सुने हुए का विचार करना, जिस बात में शङ्का हो पुनः पूछना और सुनते समय भी वक्ता और श्रोता उचित समझें तो पूछना और समाधान करना। तीसरा—‘**निदिध्यासन**’ जब सुनने और मनन करने से निःसन्देह हो जाय तब समाधिस्थ होकर उस बात को ध्यान योग से देखना-समझना कि वह जैसा सुना था, विचारा था, वैसा है वा नहीं। चौथा—‘**साक्षात्कार**’ अर्थात् जैसा पदार्थ का स्वरूप, गुण और स्वभाव हो, वैसा यथातथ्य जान लेना,—‘**श्रवणचतुष्टय**’ कहाता है।

सदा तमोगुण अर्थात् क्रोध, मलिनता, आलस्य, प्रमाद, आदि; रजोगुण अर्थात् ईर्ष्या, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप आदि दोषों से अलग होके सत्त्व अर्थात् शान्त प्रकृति, पवित्रता, विद्या, विचार आदि गुणों को धारण करे। (मैत्री) सुखी जनों में मित्रता, (करुणा) दुःखी

जनों पर दया, (मुदिता) पुण्यात्माओं से हर्षित होना, (उपेक्षा) दुष्टात्माओं में न प्रीति और न वैर करना।

नित्यप्रति न्यून से न्यून दो घण्टा-पर्यन्त मुमुक्षु ध्यान अवश्य करे, जिससे भीतर के मन आदि पदार्थ साक्षात् हों। देखो! अपने चेतनस्वरूप हैं, इसी से ज्ञानस्वरूप और मन के साक्षी हैं। क्योंकि जब मन शान्त, चञ्चल, आनन्दित वा विषादयुक्त होता है, उस को यथावत् देखते हैं। वैसे ही इन्द्रियां-प्राण आदि का ज्ञाता, पूर्वदृष्ट का स्मरणकर्त्ता और एक काल में अनेक पदार्थों के वेत्ता, धारणाकर्षणकर्त्ता और सबसे पृथक् हैं। जो पृथक् न होते तो स्वतन्त्र, कर्त्ता, इनका प्रेरक, अधिष्ठाता कभी नहीं हो सकते।

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।

—योगशास्त्रे पाद २। सू० ३॥

इनमें से '**अविद्या**' का स्वरूप कह आये। पृथक् वर्त्तमान बुद्धि को आत्मा से भिन्न न समझना '**अस्मिता**'। सुख में प्रीति '**राग**'। दुःख में अप्रीति '**द्वेष**'। और सब प्राणिमात्र को यह इच्छा सदा रहती है कि मैं सदा शरीरस्थ रहूं, मरूं नहीं। मृत्यु दुःख से त्रास '**अभिनिवेश**' कहाता है। इन पांच क्लेशों को योगाभ्यास, विज्ञान से छुड़ा देने पर ब्रह्म को प्राप्त होके, मुक्ति के परमानन्द को भोगना चाहिये।

प्रश्न—जैसी मुक्ति आप मानते हैं, वैसी अन्य कोई नहीं मानता। देखो! जैनी लोग मोक्षशिला और शिवपुर में जाके चुप-चाप बैठे रहना; ईसाई चौथा आसमान, जिसमें विवाह लड़ाई बाजे-गाजे वस्त्रादि-धारण से आनन्द भोगना; वैसे ही मुसलमान सातवें आसमान; वाममार्गी श्रीपुर; शैव कैलाश; वैकुण्ठ और गोकुलिये गोसाई गोलोक आदि में जाकर उत्तम स्त्री, अन्न, पान, वस्त्र, स्थान आदि को प्राप्त होकर आनन्द में रहने को मुक्ति मानते हैं। पौराणिक लोग **(सालोक्य)** ईश्वर के लोक में निवास, **(सानुज्य)** छोटे भाई के सदृश ईश्वर के साथ रहना, (सारूप्य) जैसी उपासनीय देव की आकृति है, वैसा बन जाना, **(सामीप्य)** सेवक के समान ईश्वर के समीप रहना, **(सायुज्य)** ईश्वर से संयुक्त हो जाना; ये चार प्रकार की मुक्ति मानते हैं।

वेदान्ती लोग ब्रह्म में लय होने को मोक्ष समझते हैं।

उत्तर—जैनी (१२) बारहवें, ईसाई (१३) तेरहवें और (१४) चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों की मुक्ति आदि विषय विशेषकर लिखेंगे। जो वाममार्गी श्रीपुर में जाकर लक्ष्मी के सदृश स्त्रियाँ, मद्य-मांसादि खाना-पीना, रंग-राग भोग करना मानते हैं, वह यहाँ से कुछ विशेष नहीं। वैसे ही महादेव और विष्णु के सदृश आकृति वाले पार्वती और लक्ष्मी के सदृश स्त्रीयुक्त होकर आनन्द भोगना, यहां के धनाढ्य राजाओं से अधिक, इतना ही लिखते हैं कि ''वहां रोग न होंगे और युवावस्था रहेगी,'' यह उनकी बात मिथ्या है। क्योंकि जहां भोग, वहां रोग, जहां रोग वहाँ वृद्धावस्था अवश्य होती है। और पौराणिकों से पूछना चाहिये कि जैसी तुम्हारी चार प्रकार की मुक्ति है, वैसी तो कृमि-कीट-पतङ्ग-पश्वादिकों की भी स्वतःसिद्ध प्राप्त है, क्योंकि ये जितने लोक हैं वे सब ईश्वर के हैं, इन्हीं में सब जीव रहते हैं, इसलिये '**सालोक्य**' मुक्ति अनायास प्राप्त है। **सामीप्य**—ईश्वर सर्वत्र व्याप्त होने से सब उसके समीप हैं, इसलिये 'सामीप्य' मुक्ति स्वतःसिद्ध है। जीव ईश्वर से सब प्रकार छोटा और चेतन होने से स्वतः बन्धुवत् है, इससे '**सानुज्य**' मुक्ति भी विना प्रयत्न के सिद्ध है। और सब जीव सर्वव्यापक परमात्मा में व्याप्य होने से संयुक्त हैं, इससे '**सायुज्य**' मुक्ति भी स्वतःसिद्ध है। और जो अन्य साधारण नास्तिक लोग मरने से तत्वों में तत्त्व मिल कर मुक्ति मानते हैं, वह तो कुत्ते, गधे आदि को भी प्राप्त है।

ये मुक्तियां नहीं है किन्तु एक प्रकार का बन्धन है। क्योंकि ये लोग शिवपुर, मोक्षशिला, चौथे आसमान, सातवें आसमान, श्रीपुर, कैलाश, वैकुण्ठ, गोलोक को एकदेश में स्थान-विशेष मानते हैं। जो वे उन स्थानों से पृथक् हों, तो मुक्ति छूट जाय। इसीलिये जैसे १२ पत्थर के भीतर दृष्टिबन्ध होते हैं, उसके समान बन्धन में होंगे। मुक्ति तो यही है कि जहां इच्छा हो वहां विचरे, कहीं अटके नहीं। न भय, न शङ्का, न दुःख होता है। जो जन्म है वह 'उत्पत्ति' और मरना 'प्रलय' कहा है। समय पर जन्म लेते हैं।

प्रश्न—जन्म एक है वा अनेक?

उत्तर—अनेक।

प्रश्न—जो अनेक हों, तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं?

उत्तर—जीव अल्पज्ञ है, त्रिकालदर्शी नहीं, इसलिये स्मरण नहीं रहता। और जिस मन से ज्ञान करता है, वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला पूर्व जन्म की बात तो दूर रहने दीजिये, इसी देह में जब गर्भ में जीव था, शरीर बना, पश्चात् जन्मा, पाँचवें वर्ष से पूर्व तक जो-जो बातें हुई हैं, उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता? और जागृत वा स्वप्न में बहुत सा व्यवहार प्रत्यक्ष करके जब 'सुषुप्ति' अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है, तब जागृतादि व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं कर सकता? और तुम से कोई पूछे कि बारह वर्ष के पूर्व तेरहवें वर्ष के पाँचवें महीने के नवमें दिन दस बजे पर पहिली मिनट में तुमने क्या किया था? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, शरीर किस ओर किस प्रकार का था? और मन में क्या विचार था? जब इसी शरीर में ऐसा है तो पूर्व-जन्म की बातों के स्मरण में शङ्का करनी केवल लड़केपन की बात है। और जो स्मरण नहीं होता है, इसी से जीव सुखी है, नहीं तो सब जन्मों के दु:खों को देख-देखकर दु:खित होकर मर जाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्म के वर्त्तमान को जानना चाहै, तो भी नहीं जान सकता, क्योंकि जीव का ज्ञान और स्वरूप अल्प है। यह बात ईश्वर के जानने योग्य है, जीव के नहीं।

प्रश्न—जब जीव को पूर्व का ज्ञान नहीं और ईश्वर इसको दण्ड देता है, तो जीव का सुधार नहीं हो सकता। क्योंकि जब उनके पापकर्मों को जनाकर दण्ड देवे अर्थात् उनको ज्ञान हो कि हमने अमुक काम किया था, उसी का यह फल है, तभी वे जीव उन बुरे कर्मों से बच सकें?

उत्तर—तुम ज्ञान कै प्रकार का मानते हो?

प्रश्न —प्रत्यक्षादि प्रमाणों से आठ प्रकार का।

उत्तर —तो जब तुम जन्म से लेकर समय-समय में राज, धन,

बुद्धि, विद्या, दारिद्र्य, निर्बुद्धि, मूर्खता आदि सुख-दु:ख संसार में देख कर पूर्व-जन्म का ज्ञान क्यों नहीं करते? जैसे एक अवैद्य और एक वैद्य को कोई रोग हो, उसका निदान अर्थात् कारण वैद्य जान लेता और अविद्वान् नहीं जान सकता। उसने वैद्यकविद्या पढ़ी है और दूसरे ने नहीं। परन्तु ज्वरादि रोग के होने से अवैद्य भी इतना जान सकता है कि मुझ से कोई कुपथ्य हो गया है, जिससे मुझे यह रोग हुआ है। वैसे ही जगत् में विचित्र सुख-दु:ख आदि की घटती-बढ़ती देख के पूर्वजन्म का अनुमान क्यों नहीं जान लेते? और जो पूर्वजन्म को न मानोगे, तो परमेश्वर पक्षपाती हो जाता है। क्योंकि विना पाप के दारिद्र्यादि दु:ख और विना पूर्वसञ्चित पुण्य के राज्य, धनाढ्यता और बुद्धि उसको क्यों दी? और पूर्वजन्म के पाप-पुण्य के अनुसार दु:ख-सुख के देने से परमेश्वर न्यायकारी यथावत् रहता है।

प्रश्न—एक जन्म होने से भी परमेश्वर न्यायकारी हो सकता है। जैसे सर्वोपरि राजा जो करे सो न्याय। जैसे माली अपने उपवन में छोटे और बड़े वृक्ष लगाता, किसी को काटता, उखाड़ता और किसी की रक्षा करता, बढ़ाता है। जिसकी जो वस्तु है, उसको वह चाहै जैसे रक्खे। उसके ऊपर कोई भी दूसरा न्याय करने वाला नहीं, जो उसको दण्ड दे सके, वा ईश्वर किसी से डरे।

उत्तर—परमात्मा जिसलिये न्याय चाहता करता, अन्याय कभी नहीं करता, इसीलिये वह पूजनीय और बड़ा है। जो न्यायविरुद्ध करे, वह ईश्वर ही नहीं। जैसे माली युक्ति के विना, सड़क में अथवा अस्थान में वृक्ष लगाने, न काटने योग्य को काटने, अयोग्य को बढ़ाने, योग्य को न बढ़ाने से दूषित होता है, इसी प्रकार विना कारण के करने से ईश्वर को दोष लगे। परमेश्वर के ऊपर न्याययुक्त काम करना अवश्य है, क्योंकि वह स्वभाव से पवित्र और न्यायकारी है। जो उन्मत्त के समान काम करे तो जगत् के श्रेष्ठ न्यायाधीश से भी न्यून और अप्रतिष्ठित होवे। क्या इस जगत् में विना योग्यता के, उत्तम काम किये प्रतिष्ठा और दुष्ट काम किये विना दण्ड देने वाला निन्दनीय अप्रतिष्ठित नहीं होता? इसलिये ईश्वर अन्याय नहीं करता, इसी से किसी से नहीं डरता।

प्रश्न—परमात्मा ने प्रथम ही से जिसके लिये जितना देना विचारा है, उतना देता और जितना कम करना है, उतना कम करता है।

उत्तर—उसका विचार जीवों के कर्मानुसार होता है, अन्यथा नहीं। जो अन्यथा हो, तो वही अपराधी अन्यायकारी होवे।

प्रश्न—बड़े छोटों को एक सा ही सुख-दु:ख है। बड़ों को बड़ी चिन्ता और छोटों को छोटी। जैसे—किसी साहूकार का विवाद राजघर में लाख रुपये का हो, तो वह अपने घर से पालकी में बैठकर कचहरी में उष्णकाल में जाता हो। बाजार में होके उसको जाता देखकर अज्ञानी लोग कहते हैं कि—"देखो पूर्वजन्म के पुण्य और पाप का प्रत्यक्ष फल यही है कि एक पालकी में आनन्दपूर्वक बैठा है और दूसरे विना जूते पहिरे ऊपर-नीचे से तप्यमान होते हुए पालकी को उठा कर ले जाते हैं।" परन्तु बुद्धिमान् लोग इसमें यह जानते हैं कि जैसे-जैसे कचहरी निकट आती जाती है, वैसे-वैसे साहूकार को बड़ा शोक और सन्देह बढ़ता जाता और कहारों को आनन्द होता है। जब कचहरी में पहुंचते हैं तब सेठजी इधर-उधर जाने का विचार करते हैं कि प्राड्विवाक् (वकील) के पास जाऊं वा सरिश्तेदार के पास। आज हारूंगा वा जीतूंगा, न जाने क्या होगा? और कहार लोग तमाखू पीते, और प्रसन्न होकर आनन्द में सोते हैं। जो वह जीत जाय तो कुछ सुख और जो हार जाय तो सेठजी दु:खसागर में डूब जाय, कहार जैसे के वैसे रहते हैं। इसी प्रकार जब राजा सुन्दर कोमल बिछौने में सोता है तो भी शीघ्र निद्रा नहीं आती और मजूर कङ्कर, पत्थर और मट्टी, ऊंचे-नीचे स्थल पर सोता है, उसको झट निद्रा आती है। वैसे सर्वत्र समझ लो।

उत्तर—यह समझ अज्ञानियों की है। क्या किसी साहूकार से कहें कि तू कहार बन जा और कहार से कहें कि तू साहूकार बन जा, तो साहूकार कभी कहार बनता नहीं और कहार साहूकार बनना चाहते हैं। जो सुख-दु:ख बराबर होता तो अपनी-अपनी अवस्था छोड़ नीच और ऊँच बनना दोनों न चाहते। देखो! एक जीव विद्वान्, पुण्यात्मा, श्रीमान् राजा की राणी के गर्भ में आता और दूसरा महादरिद्र घसियारी के गर्भ में आता है। एक को गर्भ से लेकर सर्वथा सुख और दूसरे को सब

प्रकार दु:ख मिलता है। एक जब जन्मता है, तब सुन्दर सुगन्धियुक्त जलादि से स्नान, युक्ति से नाड़ी-छेदन, दुग्धपानादि यथायोग्य प्राप्त होते हैं। जब वह दूध पीना चाहता तो उसके साथ मिश्री आदि मिलाकर यथेष्ट मिलता है। उसको प्रसन्न रखने के लिये नौकर-चाकर, खिलौना, सवारी उत्तम स्थानों में लाड़ से आनन्द होता है। दूसरे का जन्म जङ्गल में होता, स्नान के लिये जल भी नहीं मिलता, जब दूध पीना चाहता, तब दूध के बदले में घुरकाया और घूंसा-थपेड़ा आदि से पीटा जाता है। अत्यन्त आर्तस्वर से रोता है, कोई नहीं पूछता, इत्यादि जीवों को विना पुण्य-पाप के सुख-दु:ख होने से परमेश्वर पर दोष आता है।

दूसरा जैसे विना किये कर्मों के सुख-दु:ख मिलते हैं, तो आगे नरक-स्वर्ग भी न होना चाहिये। क्योंकि जैसे परमेश्वर ने इस समय विना कर्मों के सुख-दु:ख दिया है, वैसे मरे पीछे भी जिसको चाहेगा उसको स्वर्ग में और जिसको चाहे नरक में भेज देगा। पुन: सब जीव अधर्मयुक्त हो जायेंगे, धर्म क्यों करें? क्योंकि धर्म का फल मिलने में सन्देह है। परमेश्वर के हाथ है। जैसी उसकी प्रसन्नता होगी, वैसा करेगा तो पाप-कर्मों में भय न होकर संसार में पाप की वृद्धि और धर्म का क्षय हो जायगा। इसलिये पूर्वजन्म के पुण्य-पाप के अनुसार वर्त्तमान जन्म और वर्त्तमान तथा पूर्वजन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म होते हैं।

प्रश्न—मनुष्य और अन्य पश्वादि के शरीर में जीव एक सा है, वा भिन्न-भिन्न जाति के?

उत्तर—जीव एक से हैं। परन्तु पाप-पुण्य के योग से मलिन और पवित्र होते हैं।

प्रश्न—मनुष्य का जीव पश्वादि और पश्वादि का जीव मनुष्य के शरीर में और स्त्री का पुरुष के, पुरुष का स्त्री के शरीर में जाता-आता है, वा नहीं?

उत्तर—हां! जाता-आता है।

प्रश्न—किस प्रकार जाता-आता है?

उत्तर—जब पाप बढ़ जाता, पुण्य न्यून होता है, तब मनुष्य का जीव पश्वादि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता

है तब 'देव' अर्थात् विद्वानों का शरीर मिलता और जब पुण्य-पाप बराबर होता है, तब साधारण मनुष्य-जन्म होता है। इसमें भी पुण्य-पाप के उत्तम, मध्यम और निकृष्ट होने से मनुष्यादि में भी उत्तम, मध्यम, निकृष्ट शरीरादि सामग्रीवाले होते हैं और जब अधिक पाप का फल पश्वादि शरीर में भोग लेता है, पुनः पाप-पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता और पुण्य के फल भोग कर फिर भी मध्यस्थ मनुष्य के शरीर में आता है।

जब शरीर से निकलता है उसी का नाम 'मृत्यु ' और शरीर के साथ संयोग होने का नाम 'जन्म' है। जब शरीर छोड़ता तब 'यमालय' अर्थात् आकाशस्थ वायु में रहता है। क्योंकि '**यमेन** [ऋ० १०।१४।८] **वायुना**' [अथर्व० २०।१४१।२] वेद में लिखा है कि 'यम' नाम वायु का है, गरुड़पुराण का कल्पित यम नहीं। इसका विशेष खण्डन-मण्डन ग्यारहवें समुल्लास में लिखेंगे। पश्चात् 'धर्मराज' अर्थात् परमेश्वर उस जीव के पाप-पुण्यानुसार जन्म देता है।

वह वायु, अन्न, जल अथवा शरीर के छिद्र द्वारा दूसरे के शरीर में ईश्वर की प्रेरणा से प्रविष्ट होता है। जो प्रविष्ट होकर क्रमशः वीर्य्य में जा, गर्भ में स्थित हो, शरीर धारण कर, बाहर आता है। जो स्त्री के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो स्त्री, और पुरुष के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों, तो पुरुष के शरीर में प्रवेश करता है। और नपुंसक गर्भ की स्थिति समय स्त्री-पुरुष के शरीर में सम्बन्ध करके रज-वीर्य के बराबर होने से होता है। इसी प्रकार नाना प्रकार के जन्म-मरण में तब-तक जीव पड़ा रहता है कि जब-तक उत्तम कर्मोपासना-ज्ञान को करके मुक्ति को नहीं पाता। क्योंकि उत्तम कर्मादि करने से मनुष्यों में उत्तम जन्म और मुक्ति में महाकल्प पर्यन्त जन्म-मरण-दुःखों से रहित होकर आनन्द में रहता है।

प्रश्न—मुक्ति एक जन्म में होती है, वा अनेक जन्मों में?

उत्तर—अनेक जन्मों में। क्योंकि—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे पराऽवरे॥ १॥

—मुण्डक [२। खं० २। मं० ८]॥

जब इस जीव के हृदय की अविद्या-अज्ञानरूपी गांठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं, तभी उस परमात्मा जोकि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है, उसमें निवास करता है।

प्रश्न—मुक्ति में परमेश्वर में जीव मिल जाता है, वा पृथक् रहता है?

उत्तर—पृथक् रहता है। क्योंकि जो मिल जाय तो मुक्ति का सुख कौन भोगे और मुक्ति के जितने साधन हैं, वे सब निष्फल हो जावें। वह मुक्ति तो नहीं, किन्तु जीव का प्रलय जानना चाहिये। जब जीव परमेश्वर की आज्ञापालन, उत्तम कर्म, सत्सङ्ग, योगाभ्यास, पूर्वोक्त सब साधन करता है, वही मुक्ति को पाता है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति॥

—तैत्तिरी० [उपनि० ब्रह्मा० वल्ली०। अनु० १]॥

जो जीवात्मा अपनी बुद्धि और आत्मा में स्थित सत्य ज्ञान और अनन्त आनन्दस्वरूप परमात्मा को जानता है, वह उस व्यापकरूप ब्रह्म में स्थित होके उस '**विपश्चित्**' अनन्तविद्यायुक्त ब्रह्म के साथ सब कामों को प्राप्त होता है। अर्थात् जिस-जिस आनन्द की कामना करता है, उस-उस आनन्द को प्राप्त होता है। यही '**मुक्ति**' कहाती है।

प्रश्न—जैसे शरीर के विना सांसारिक सुख नहीं भोग सकता, वैसे मुक्ति में विना शरीर आनन्द कैसे भोग सकेगा?

उत्तर—इसका समाधान पूर्व कर आये हैं और इतना अधिक सुनो—जैसे सांसारिक सुख शरीर के आधार से भोगता है, वैसे परमेश्वर के आधार मुक्ति के आनन्द को जीवात्मा भोगता है। वह मुक्त जीव अनन्त व्यापक ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमता, शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्तों के साथ मिलता, सृष्टिविद्या को क्रम से देखता हुआ सब लोक-लोकान्तरों में अर्थात् जितने ये लोक दीखते हैं और नहीं दीखते, उन सबमें घूमता है। वह सब पदार्थों को—जो कि उसके ज्ञान के सामने हैं—सबको देखता है। जितना ज्ञान अधिक होता है, उसको

उतना ही आनन्द अधिक होता है। मुक्ति में जीवात्मा निर्मल होने से पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थों का भान यथावत् होता है। यही सुखविशेष **स्वर्ग** और विषय-तृष्णा में फस कर दुःखविशेष भोग करना **नरक** कहाता है। '**स्वः**' सुख का नाम है। '**स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः**' '**अतो विपरीतो दुःखभोगो नरक इति**' जो सांसारिक सुख है, वह '**सामान्य स्वर्ग**' और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है वही '**विशेष स्वर्ग**' कहाता है। सब जीव स्वभाव से सुखप्राप्ति की इच्छा और दुःख का वियोग होना चाहते हैं, परन्तु जब-तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोड़ते, तब-तक उनको सुख का मिलना और दुःख का छूटना न होगा। क्योंकि जिसका 'कारण' अर्थात् मूल होता है, वह नष्ट कभी नहीं होता। जैसे—

छिन्ने मूले वृक्षो नश्यति तथा पापे क्षीणे दुःखं नश्यति।

जैसे मूल कट जाने से वृक्ष नष्ट होता है, वैसे पाप को छोड़ने से दुःख नष्ट होता है। देखो! मनुस्मृति में पाप और पुण्य की बहुत प्रकार की गति—

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाऽशुभम् ।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥ १ ॥
शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः ।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥ २ ॥
यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते ।
स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम् ॥ ३ ॥
सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजःस्मृतम् ।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥ ४ ॥
तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत् ।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥ ५ ॥
यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ।
तद्रजोऽप्रतिघं विद्यात् सततं हारि देहिनाम् ॥ ६ ॥
यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ ७ ॥

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः ।
अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ८ ॥
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥ ९ ॥
आरम्भरुचिताऽधैर्य्यमसत्कार्यपरिग्रहः ।
विषयोपसेवा चाजस्त्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥ १० ॥
लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥ ११ ॥
यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति ।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥ १२ ॥
येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम् ।
न च शोचत्यसम्पत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥ १३ ॥
यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ।
येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम् ॥ १४ ॥
तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥ १५ ॥

—मनु० अ० १२ [श्लो० ८-९, २५-३३, ३५-३८]॥

मनुष्य इस प्रकार अपने श्रेष्ठ, मध्य और निकृष्ट स्वभाव को जानकर उत्तम स्वभाव का ग्रहण; मध्य और निकृष्ट का त्याग करे और यह भी निश्चय जानें कि जो जीव मन से शुभ वा अशुभ कर्म को करता है उसको मन से, वाणी से किये को वाणी और शरीर से किये को शरीर से सुख-दुःख को भोगता है॥ १ ॥

जो नर शरीर से चोरी, परस्त्रीगमन, श्रेष्ठों को मारने आदि दुष्ट कर्म करता है, उसको वृक्षादि स्थावर का जन्म, वाणी से किये पाप कर्मों से पक्षी और मृगादि, तथा मन से किये दुष्ट कर्मों से चाण्डाल आदि का शरीर मिलता है॥ २ ॥

जो गुण इन जीवों के देह में अधिकता से वर्त्तता है, वह गुण उस जीव को अपने सदृश कर देता है॥ ३ ॥

जब आत्मा में ज्ञान हो तब 'सत्त्व', जब अज्ञान रहे तब 'तम',

और जब राग-द्वेष में आत्मा लगे तब 'रजोगुण' जानना चाहिये। ये तीन प्रकृति के गुण सब संसारस्थ पदार्थों में व्याप्त होकर रहते हैं॥ ४॥

उसका विवेक इस प्रकार करना चाहिये कि जब आत्मा में प्रसन्नता, मन प्रसन्न, प्रशान्त के सदृश शुद्धभानयुक्त वर्त्ते, तब समझना कि सत्त्वगुण प्रधान और रजोगुण तथा तमोगुण अप्रधान है॥ ५॥

जब आत्मा और मन दुःखसंयुक्त, प्रसन्नतारहित, विषय में इधर-उधर गमन-आगमन में लगे, तब समझना कि रजोगुण प्रधान; सत्त्वगुण और तमोगुण अप्रधान है॥ ६॥

जब 'मोह' अर्थात् सांसारिक पदार्थों में फसा हुआ आत्मा और मन हो, जब आत्मा और मन में कुछ विवेक न रहै, विषयों में आसक्त, तर्क-वितर्क-रहित, जानने के योग्य न हो, तब निश्चय समझना चाहिये कि इस समय मुझमें तमोगुण प्रधान और सत्त्वगुण तथा रजोगुण अप्रधान हैं॥ ७॥

अब जो इन तीनों गुणों का उत्तम, मध्यम और निकृष्ट फलोदय होता है, उसको पूर्णभाव से कहते हैं॥ ८॥

जब सत्त्वगुण का उदय होता है, तब वेदों का अभ्यास, धर्मानुष्ठान, ज्ञान की वृद्धि, पवित्रता की इच्छा, इन्द्रियों का निग्रह, धर्म-क्रिया और आत्मा का चिन्तन होता है, यही सत्त्वगुण का लक्षण है॥ ९॥

जब रजोगुण का उदय; सत्त्व और तमोगुण का अस्तभाव होता है, तब आरम्भ में रुचिता, धैर्यत्याग, असत् कर्मों का ग्रहण, निरन्तर विषयों की सेवा में प्रीति होती है, तभी समझना कि रजोगुण प्रधानता से मुझमें वर्त्त रहा है॥ १०॥

जब तमोगुण का उदय; और दोनों का आन्तर्भाव होता है, तब अत्यन्त 'लोभ' अर्थात् सब पापों का मूल बढ़ता, अत्यन्त आलस्य और निद्रा, धैर्य्य का नाश, क्रूरता का होना, 'नास्तिक्य' अर्थात् वेद और ईश्वर में श्रद्धा का न रहना, भिन्न-भिन्न अन्तःकरण की वृत्ति और एकाग्रता का अभाव, जिस किसी से 'याचना' अर्थात् मांगना, 'प्रमाद' अर्थात् मद्यपानादि दुष्ट व्यसनों में फसना होवे, तब समझना कि तमोगुण मुझ में बढ़ कर वर्त्तता है॥ ११॥

यह सब तमोगुण का लक्षण विद्वान् को जानने योग्य है कि जब अपना आत्मा जिस कर्म को करके, करता हुआ और करने की इच्छा से लज्जा, शङ्का और भय को प्राप्त होवे, तब जानो कि मुझ में प्रवृद्ध तमोगुण है॥ १२॥

जिस कर्म से इस लोक में जीवात्मा पुष्कल प्रसिद्धि चाहता, दरिद्रता होने पर भी चारण, भाट आदि को दान देना नहीं छोड़ता तब, समझना कि मुझमें रजोगुण प्रबल है॥ १३॥

और जब मनुष्य का आत्मा सब से जानने को चाहै, गुण ग्रहण करता जाय, अच्छे कर्मों में लज्जा न करे और जिस कर्म्म से आत्मा प्रसन्न होवे अर्थात् धर्माचरण ही में रुचि रहे, तब समझना कि मुझमें सत्त्वगुण प्रबल है॥ १४॥

तमोगुण का लक्षण काम, रजोगुण का अर्थ-संग्रह की इच्छा और सत्त्वगुण का लक्षण धर्मसेवा करना है, परन्तु तमोगुण से रजोगुण और रजोगुण से सत्त्वगुण श्रेष्ठ है॥ १५॥

अब जिस-जिस गुण से जिस-जिस गति को जीव प्राप्त होता है, सो-सो आगे लिखते हैं—

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वञ्च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥ १ ॥
स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाश्च कच्छपाः ।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः ॥ २ ॥
हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः ।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः ॥ ३ ॥
चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः ।
रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः ॥ ४ ॥
झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः ।
द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः ॥ ५ ॥
राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः ।
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥ ६ ॥

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये ।
तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमा गतिः ॥ ७ ॥
तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः ।
नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्त्विकी गतिः ॥ ८ ॥
यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः ।
पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्त्विकी गतिः ॥ ९ ॥
ब्रह्मा विश्वसृजो धर्म्मो महानव्यक्तमेव च ।
उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ १० ॥
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्यासेवनेन च ।
पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥ ११ ॥

[मनु० अ० १२। श्लो० ४०, ४२-५०, ५२]

जो मनुष्य सात्त्विक हैं वे 'देव' अर्थात् विद्वान्; जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम मनुष्य; और जो तमोगुणयुक्त होते हैं, वे नीच गति को प्राप्त होते हैं॥ १ ॥

जो अत्यन्त तमोगुणी हैं वे स्थावर वृक्षादि, कृमि, कीड़े, मत्स्य, सर्प्प, कच्छप, पशु और मृग के जन्म को प्राप्त होते हैं॥ २ ॥

जो मध्यम तमोगुणी हैं वे हाथी, घोड़ा, शूद्र, म्लेच्छ, निन्दित काम करने वाले, सिंह, व्याघ्र, 'वराह' अर्थात् सुअर के जन्म को प्राप्त होते हैं॥ ३ ॥

जो उत्तम तमोगुणी हैं वे 'चारण' जो कवित्त दोहा आदि बनाकर मनुष्यों की प्रशंसा करते हैं, सुन्दर पक्षी और 'दांभिक' पुरुष अर्थात् अपने मुख से अपनी प्रशंसा करनेहारे, 'राक्षस' जो हिंसक, 'पिशाच' और अनाचारी अर्थात् मद्यादि के आहारकर्त्ता और मलिन रहते हैं, वह उत्तम तमोगुण के कर्म का फल है॥ ४ ॥

'झल्ला' अर्थात् कुद्दाले आदि से तलाब आदि के खोदनेहारे, 'मल्ला' अर्थात् नौका आदि के चलाने वाले, 'नट' जो बांस आदि पर कला कूदना-चढ़ना-उतारना आदि करते हैं, शस्त्रधारी भृत्य, द्यूत, और मद्यपान में आसक्त हों, ऐसे जन्म नीच रजोगुण का फल है॥ ५ ॥

जो मध्यम रजोगुणी होते हैं वे राजा, क्षत्रियवर्णस्थ राजाओं के

पुरोहित, वादविवाद करनेवाले, दूत, प्राड्विवाक (वकील, वारिष्टर), युद्ध-विभाग के अध्यक्ष के जन्म पाते हैं॥ ६ ॥

जो उत्तम रजोगुणी हैं वे (गन्धर्व) गानेवाले, (गुह्यक) वादित्र बजानेहारे, (यक्ष) धनाढ्य, विद्वानों के सेवक और 'अप्सरा' अर्थात् उत्तम रूपवाली स्त्री का जन्म पाते हैं॥ ७ ॥

जो तपस्वी, यति-संन्यासी, वेदपाठी, विमान के चलानेवाले, ज्योतिषी और 'दैत्य' अर्थात् देहपोषक मनुष्य होते हैं, उनको प्रथम सत्त्वगुण के कर्म का फल जानो॥ ८ ॥

जो मध्यम सत्त्वगुण युक्त होकर कर्म करते हैं वे जीव यज्ञकर्त्ता, वेदार्थवित्, विद्वान्, वेद, विद्युत् आदि, और काल-विद्या के ज्ञाता, रक्षक, ज्ञानी और 'साध्य' कार्यसिद्धि के लिये सेवन करने योग्य अध्यापक का जन्म पाते हैं॥ ९ ॥

जो उत्तम सत्त्वगुणयुक्त होके उत्तम कर्म्म करते हैं वे 'ब्रह्मा' सब वेदों का वेत्ता, 'विश्वसृज्' सब सृष्टिक्रम विद्या को जानकर विविध विमानादि यानों को बनानेहारे, धार्मिक, सर्वोत्तम बुद्धियुक्त और अव्यक्त के जन्म और प्रकृतिवशित्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं॥ १० ॥

जो इन्द्रियों के वश होकर विषयी, धर्म को छोड़कर अधर्म करनेहारे अविद्वान् हैं, वे मनुष्यों में 'नीच-जन्म' बुरे-बुरे दुःखरूप जन्म को पाते हैं॥ ११ ॥

इस प्रकार सत्त्व, रज और तमोगुणयुक्त वेग से जिस-जिस प्रकार का कर्म जीव करता है, उस-उस को उसी-उसी प्रकार फल प्राप्त होता है।

जो मुक्त होते हैं, वे 'गुणातीत' अर्थात् सब गुणों के स्वभावों में न फसकर, महायोगी होके मुक्ति का साधन करें। क्योंकि—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥ १ ॥ —योगशास्त्र [समाधिपाद सू० १]॥

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्॥ २ ॥ [समाधिपाद सू० ३]

मनुष्य रजोगुण-तमोगुण-युक्त कर्मों से मन को रोक, शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त हो पश्चात् उसका निरोध कर 'एकाग्र' अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त का ठहरा रखना, 'निरुद्ध'

अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना॥ १ ॥

जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सबके 'द्रष्टा' ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है [॥ २ ॥]

इत्यादि साधन मुक्ति के लिये करे। और—

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः॥

—सांख्यसूत्र [अ० १। सू० १]॥

जो 'आध्यात्मिक' अर्थात् शरीर-सम्बन्धी पीडा, 'जो आधिभौतिक' दूसरे प्राणियों से दुःखित होना, 'आधिदैविक' जो अतिवृष्टि, अतिताप, अतिशीत, मन इन्द्रियों की चञ्चलता से होता है, इस 'त्रिविध दुःख' को छुड़ा कर मुक्ति पाना 'अत्यन्त' पुरुषार्थ' है।

इसके आगे आचार, अनाचार और भक्ष्याऽभक्ष्य का विषय लिखेंगे॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषये नवमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ९ ॥

अथ दशमसमुल्लासारम्भः

अथाऽऽचाराऽनाचारभक्ष्याऽभक्ष्यविषयान् व्याख्यास्यामः

अब जो धर्मयुक्त कर्मों का आचरण, सुशीलता, सत्पुरुषों का सङ्ग और सद्विद्या के ग्रहण में रुचि आदि 'आचार' और इनसे विपरीत 'अनाचार' कहाता है, उसको लिखते हैं—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत॥ १ ॥
कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः॥ २ ॥
सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः॥ ३ ॥
अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम्॥ ४ ॥
वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥ ५ ॥
सर्वन्तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै॥ ६ ॥
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्॥ ७ ॥
[श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥ ८ ॥]
योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥ ९ ॥

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥ १०॥
अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥ ११॥
वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्य्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥ १२॥
केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः॥ १३॥

—मनु० अ० २। [श्लो० १-४, ६, ८, ९, [१०], ११-१३, २६, ६५]॥

मनुष्यों को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जिसका सेवन राग-द्वेष रहित विद्वान् लोग नित्य करें, जिसको 'हृदय' अर्थात् आत्मा से सत्य-कर्त्तव्य जानें, वही धर्म माननीय और करणीय समझें॥ १॥

क्योंकि इस संसार में अत्यन्त कामात्मता और निष्कामता श्रेष्ठ नहीं है। वेदार्थ-ज्ञान और वेदोक्त-कर्म ये सब कामना ही से सिद्ध होते हैं॥ २॥

जो कोई कहे कि मैं निरिच्छ और निष्काम हूं, वा हो जाऊं तो वह कभी नहीं हो सकता। क्योंकि सब 'काम' अर्थात् यज्ञ, सत्यभाषणादि-व्रत, यम, नियमरूपी धर्म सब संकल्प ही से बनते हैं॥ ३॥

क्योंकि जो-जो हस्त, पाद, नेत्र, मन आदि चलाये जाते हैं, वे सब कामना ही से चलते हैं। जो इच्छा न हो, तो आंख का खोलना और मीचना भी नहीं हो सकता॥ ४॥

इसलिये सम्पूर्ण वेद, मनुस्मृति तथा ऋषिप्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार और जिस-जिस कर्म में अपने आत्मा प्रसन्न रहें अर्थात् भय, शङ्का, लज्जा जिसमें न हो, उन कर्मों का सेवन करना उचित है। देखो! जब कोई मनुष्य मिथ्याभाषण, चोरी आदि की इच्छा करता है, तभी उसके आत्मा में भय, शङ्का, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है, इसलिये वह कर्म करने योग्य नहीं॥ ५॥

मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्र, वेद, सत्पुरुषों के आचार, अपने आत्मा के अविरुद्ध अच्छे प्रकार विचार कर ज्ञाननेत्र करके श्रुति-प्रमाण से

स्वात्मानुकूल धर्म में प्रवेश करे॥ ६॥

क्योंकि जो मनुष्य वेदोक्त धर्म और जो वेद से अविरुद्ध स्मृत्युक्त धर्म का अनुष्ठान करता है, वह इस लोक में कीर्त्ति और मरके सर्वोत्तम सुख को प्राप्त होता है॥ ७॥

'श्रुति' वेद और 'स्मृति' धर्मशास्त्र को कहते हैं, इनसे सब कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य का निश्चय करना चाहिये॥ ८॥

जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्तग्रन्थ का अपमान करे, उसको श्रेष्ठ लोग जातिबाह्य कर दें। क्योंकि जो **वेद** की निन्दा करता है, वही '**नास्तिक**' कहाता है॥ ९॥

इसलिये वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार और अपने आत्मा के ज्ञान से अविरुद्ध प्रियाचरण, ये चार धर्म के 'लक्षण' अर्थात् इन्हीं से धर्म लक्षित होता है॥ १०॥

परन्तु जो द्रव्यों के लोभ और 'काम' अर्थात् विषयसेवा में फसा हुआ नहीं होता, उसी को धर्म का ज्ञान होता है। जो धर्म को जानने की इच्छा करें, उनके लिये वेद ही परम प्रमाण है॥ ११॥

इसीसे सब मनुष्यों को उचित है कि वेदोक्त पुण्यरूप कर्मों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने सन्तानों का निषेकादि संस्कार करें, जो इस जन्म वा परजन्म में पवित्र करनेवाला है॥ १२॥

ब्राह्मण वर्ण के सोलहवें, क्षत्रिय का बाईसवें और वैश्य का चौबीसवें वर्ष में 'केशान्त-कर्म' और मुण्डन हो जाना चाहिये अर्थात् इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रखके अन्य डाढ़ी, मूंछ और शिर के बाल सदा मुँडवाते रहना चाहिये अर्थात् पुनः कभी न रखना। और जो शीतप्रधान देश हो तो कामचार है, चाहे पंचकेश रक्खे। और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा-सहित भी छेदन करा देना चाहिये, क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है। डाढ़ी-मूंछ रखने से भोजन-पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालों में रह जाता है॥ १३॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥ १॥

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥ २॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥ ३॥
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥ ४॥
वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम्॥ ५॥
श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः॥ ६॥
नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्॥ ७॥
वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्॥ ८॥
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम्॥ ९॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्॥ १०॥
विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः॥ ११॥
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥ १२॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥ १३॥
अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥ १४॥

—मनु० अ० २। [श्लो० ८८, ९३, ९४, ९७, १००, ९८। ११०, १३६, १५३-१५७, १५९]॥

मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियाँ चित्त को हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं, उनको रोकने में प्रयत्न करे। जैसे घोड़ों को सारथि रोककर शुद्ध मार्ग में चलाता है, इस प्रकार इनको अपने वश में करके अधर्ममार्ग से हटाके धर्ममार्ग में सदा चलाया करे॥ १॥

क्योंकि इन्द्रियों को विषयासक्ति और अधर्म में चलाने से मनुष्य निश्चित दोष को प्राप्त होता है। और जब इनको जीतकर धर्म में चलाता है तभी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त होता है॥ २॥

यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में इन्धन और घी डालने से बढ़ता जाता है, वैसे ही कामों के उपभोग से काम शान्त कभी नहीं होता, किन्तु बढ़ता ही जाता है, इसलिये मनुष्य को विषयासक्त कभी न होना चाहिये॥ ३॥

जो अजितेन्द्रिय पुरुष है, उसको **'विप्रदुष्ट'** कहते हैं। उसके करने से न वेदज्ञान, न त्याग, न यज्ञ, न नियम और न धर्माचरण सिद्धि को प्राप्त होते हैं, किन्तु ये सब जितेन्द्रिय, धार्मिकजन को सिद्ध होते हैं॥ ४॥

इसलिये पांच कर्म, पांच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारहवें मन को अपने वश में करके युक्ताहारविहार योग से शरीर की रक्षा करता हुआ सब अर्थों को सिद्ध करे॥ ५॥

'जितेन्द्रिय' उसको कहते हैं कि जो स्तुति सुनके हर्ष और निन्दा सुनके शोक, अच्छा स्पर्श करके सुख और दुष्ट स्पर्श से दुःख, सुन्दर रूप देखके प्रसन्न और दुष्टरूप देखके अप्रसन्न, उत्तम भोजन करके आनन्दित और निकृष्ट भोजन करके दुःखित, सुगन्ध में रुचि और दुर्गन्ध में अरुचि नहीं करता॥ ६॥

कभी विना पूछे वा अन्याय से पूछनेवाले को कि जो कपट से पूछता हो, उसको उत्तर न देवे। उनके सामने बुद्धिमान् जड़ के समान रहे। हां, जो निष्कपट और जिज्ञासु हों, उनको विना पूछे भी उपदेश करे॥ ७॥

एक धन, दूसरे बन्धु कुटुम्ब कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पांचवीं श्रेष्ठ विद्या, ये पांच मान्य के स्थान हैं। परन्तु धन से उत्तम बन्धु, बन्धु से अधिक अवस्था, अवस्था से श्रेष्ठ कर्म और कर्म

से पवित्र विद्यावाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं॥ ८॥

क्योंकि चाहै सौ वर्ष का भी हो परन्तु जो विद्या, विज्ञानरहित है, वह बालक और विद्या, विज्ञान का दाता है, उस बालक को भी वृद्ध मानना चाहिये। क्योंकि सब शास्त्र, आप्त विद्वान् अज्ञानी को 'बालक' और ज्ञानी को 'पिता' कहते हैं॥ ९॥

अधिक वर्षों के बीतने, श्वेत बाल के होने, अधिक धन से और बड़े कुटुम्ब से वृद्ध नहीं होता, किन्तु ऋषि-महात्माओं का यही निश्चय है कि जो हमारे बीच में विद्या, विज्ञान में अधिक है, वही 'वृद्ध' पुरुष कहाता है॥ १०॥

ब्राह्मण ज्ञान, क्षत्रिय बल, वैश्य धनधान्य और शूद्र 'जन्म' से अर्थात् अधिक आयु से वृद्ध होता है॥ ११॥

शिर के बाल श्वेत होने से बुड्ढा नहीं होता, किन्तु जो युवा विद्या पढ़ा हुआ है, उसी को विद्वान् लोग बड़ा जानते हैं॥ १२॥

और जो विद्या नहीं पढ़ा है, वह जैसा लकड़े का हाथी, चमड़े का मृग होता है, वैसा अविद्वान् मनुष्य जगत् में नाममात्र मनुष्य कहाता है॥ १३॥

इसलिये विद्या पढ़ विद्वान्, धर्मात्मा होकर, निर्वैरता से सब प्राणियों के कल्याण का उपदेश करे। उपदेश में वाणी मधुर और कोमल बोले। जो सत्योपदेश से धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करते हैं, वे पुरुष धन्य हैं॥ १४॥

नित्य स्नान, वस्त्र, अन्न, पान, स्थान सब शुद्ध रक्खे। क्योंकि इनके शुद्ध होने में चित्त की शुद्धि और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है। शौच उतना करना योग्य है कि जितने से मल-दुर्गन्ध दूर हो जाय।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च॥

—मनु० [१।१०८]॥

जो सत्यभाषणादि कर्मों का आचरण करना है, वही वेद और स्मृति में कहा हुआ '**आचार**' है।

मा [नो] वधीः पितरं मोत मातरम्॥

[यजुः अ० १६। मं० १५]

आचार्य्य उपनयमानो....ब्रह्मचारिणमिच्छते॥

[देखिये—अथर्व० कां० ११। सू० ५। मं० ३;
अथर्व० कां० ११। सू० ५। मं० १७]॥

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य्यदेवो भव।
अतिथिदेवो भव॥ —तैत्तिरी० [आरण्यक प्र० ७। अनु० ११;
तै० उप० शि० व० अनु० ११]॥

माता, पिता, आचार्य्य और अतिथि की सेवा करना '**देवपूजा**' कहाती है और जिस-जिस कर्म से जगत् का उपकार हो, वह-वह करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्म है। कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, चोर, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मनुष्यों का सङ्ग न करे। '**आप्त**' जो सत्यवादी, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय जन हैं, उनका सङ्ग करना '**श्रेष्ठाचार**' है।

प्रश्न—आर्यावर्त्तवासियों का आर्यावर्त्त से भिन्न देशों में जाने से आचार नष्ट हो जाता है, वा नहीं?

उत्तर—यह बात मिथ्या है। क्योंकि जो बाहर-भीतर की पवित्रता करनी, सत्यभाषणादि आचरण करना है, वह जहां कहीं करेगा, आचार और धर्मभ्रष्ट कभी न होगा। और जो आर्य्यावर्त्त में रहकर भी दुष्टाचार करेगा, वही धर्म[-भ्रष्ट] और आचारभ्रष्ट कहावेगा। जो ऐसा होता तो—

मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं ततः।
क्रमेणैव समागम्य भारतं वर्षमासदत्॥ १॥
स दृष्ट्वा विविधान् देशान् चीनहूणनिषेवितान्॥ २॥

—यह महाभारत शान्तिपर्व मोक्षधर्म में व्यास-शुकसंवाद का वचन है
[तु०—महाभारत, कलकत्ता मिशन प्रेस संस्करण सन् १८३९,
अ० ३२७। श्लोक० १४-१५]॥

अर्थात् एक समय में व्यासजी अपने पुत्र शुक और शिष्य-सहित 'पाताल' अर्थात् जिसको इस समय 'अमेरिका' कहते हैं, उसमें निवास करते थे। शुकाचार्य्य ने पिता से एक प्रश्न पूछा कि आत्मविद्या इतनी ही है वा अधिक? व्यासजी ने जानकर उस का उत्तर न दिया, क्योंकि

पूर्व उस बात का उपदेश कर चुके थे। दूसरे की साक्षी के लिये अपने पुत्र शुक से कहा कि—"तू मिथिला में जाकर यही प्रश्न जनक राजा से कर। वह इसका यथायोग्य उत्तर देगा।" पिता का वचन सुनकर शुकाचार्य्य पाताल से 'मिथिला' की ओर चले। प्रथम 'मेरु' अर्थात् हिमालय से ईशान, उत्तर और वायव्य दिशा में जो देश बसते हैं, उनका नाम हरिवर्ष था। अर्थात् हरि कहते हैं बन्दर को, उस देश के मनुष्य अब भी '**रक्तमुख**' बन्दर के कुछ-कुछ समान भूरे नेत्रयुक्त होते हैं। जिन देशों का नाम इस समय 'यूरोप' है, उन्हीं को संस्कृत में 'हरिवर्ष' कहते थे। उन देशों को देखते हुए और जिनको 'हूण' यहूदी भी कहते हैं, उन देशों को देखकर 'चीन' में आये। चीन से हिमालय और हिमालय से मिथिलापुरी को आये।

और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पाताल में 'अश्वतरी' अर्थात् जिसको अग्नियान नौका कहते हैं, [उस पर] बैठ के पाताल में जाके महाराजे युधिष्ठिर के यज्ञ में उद्दालक ऋषि को ले आये थे। धृतराष्ट्र का विवाह 'गान्धार' जिसको 'कंधार' कहते हैं वहां की राजपुत्री से हुआ। माद्री जो कि पाण्डु की स्त्री थी 'ईरान' के राजा की कन्या थी और अर्जुन का विवाह पाताल में जिसको 'अमेरिका' कहते हैं वहां के राजा की लड़की उलोपी के साथ हुआ था। जो देशदेशान्तर, द्वीपद्वीपान्तर में न जाते होते, तो ये सब बातें क्योंकर हो सकतीं? मनुस्मृति में जो समुद्र में जाने वाली नौका पर 'कर' लेना लिखा है, वह भी आर्य्यावर्त्त से द्वीपान्तर में जाने के कारण है। और जब महाराजे युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ किया था, उसमें सब भूगोल के राजाओं को बुलाने को निमन्त्रण देने के लिये भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गये थे। जो दोष मानते होते तो कभी न जाते। सो प्रथम आर्य्य लोग व्यापार, राजकार्य्य और भ्रमण के लिये सब भूगोल में घूमते थे। और जो आजकल छूतछात और धर्म नष्ट होने की शङ्का है, वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है। जो मनुष्य देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में जाने-आने में शङ्का नहीं करते, वे देश-देशान्तर के अनेकविध मनुष्यों के समागम, रीति-भाँति देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय शूरवीर

होने लगते और अच्छे व्यवहार का ग्रहण, बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके, बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो महाभ्रष्ट म्लेच्छकुलोत्पन्न वेश्या आदि के समागम से आचारभ्रष्ट, धर्महीन नहीं होते, किन्तु देश-देशान्तर के उत्तम पुरुषों के साथ समागम में छूत और दोष मानना केवल मूर्खता की बात है।

हाँ, इतना कारण तो है कि जो लोग मांसभक्षण और मद्यपान करते हैं उनके शरीर और वीर्य्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं, इसलिये उनके सङ्ग करने से आर्य्यों को भी ये कुलक्षण न लग जायें, यह तो बात ठीक है। परन्तु इनसे व्यवहार और गुणग्रहण करने में कोई भी दोष नहीं है, किन्तु इनके मद्यपानादि दोषों को छोड़, गुणों को ग्रहण करें, तो कुछ भी हानि नहीं। जब इनके स्पर्श और देखने में भी मूर्ख-जन पाप गिनते हैं, इसी से उनसे युद्ध कभी नहीं कर सकते; क्योंकि युद्ध में उनको देखना और स्पर्श होना अवश्य है।

सज्जन लोगों को राग, द्वेष, अन्याय, मिथ्याभाषणादि छोड़; निर्वैर, प्रीति, परोपकार, सज्जनतादि का धारण करना उत्तम आचार है। और यह भी समझ लें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्त्तव्य के साथ है। जब हम अच्छे काम करते हैं तो हमको देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नहीं लग सकता। दोष तो पाप के काम करने में लगते हैं। हाँ, इतना अवश्य चाहिये कि वेदोक्त-धर्म का निश्चय और पाखण्डमत का खण्डन करना अवश्य सीख लें, जिससे कोई हमको झूठा निश्चय न करा सके। क्या देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में राज्य वा व्यापार किये विना स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है? जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो सिवाय दारिद्र्य और दु:ख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। पाखण्डी लोग यह समझते हैं कि जो हम इनको विद्या पढ़ावेंगे, देश-देशान्तर में जाने की आज्ञा देंगे, तो ये बुद्धिमान् होकर हमारे पाखण्ड-जाल में न फसने से हमारी प्रतिष्ठा और जीविका का नाश करेंगे। इसीलिये भोजन-छादन में बखेड़ा डालते हैं कि वे दूसरे देश में न जा सकें। हां, इतना अवश्य चाहिये कि मद्य-मांस का ग्रहण न करें।

क्या सब बुद्धिमानों ने यह निश्चय नहीं किया है कि जो राजपुरुषों में युद्ध समय में भी चौका लगाकर रसोई बनाके खाना अवश्य पराजय का हेतु है? किन्तु क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते, जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को घोड़े, हाथी, रथ पर चढ़ वा पैदल होके मारते जाना, अपना विजय करना ही आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढ़ता से ये लोग चौका लगाते-लगाते, विरोध करते-कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगाकर बैठे हैं। इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पका कर खावें। परन्तु वैसा न होने पर जानो सब देश भर में चौका लगाके सर्वथा नाश कर दिया है। हां, जहां भोजन करें उस स्थान को धोने, लेपन करने, झाड़ू लगाने, कूड़ा-कर्कट दूर करने में प्रयत्न अवश्य करना चाहिये, न कि मुसलमान वा ईसाइयों के समान भ्रष्ट पाकशाला करना।

प्रश्न—सखरी निखरी क्या है?

उत्तर—'**सखरी**' जो जल आदि में अन्न पकाये जाते; और जो घी-दूध में पकाते हैं, वह '**निखरी**'। अर्थात् यह भी इन धूर्तों का पाखण्ड है, क्योंकि जिसमें घी दूध अधिक लगे, उसको खाने में उदर में चिकना पदार्थ अधिक जावे इसीलिये यह प्रपञ्च रचा है। नहीं तो जो अग्नि वा काल से पका हुआ 'पक्का', और न पका हुआ 'कच्चा' है। जो पक्के का खाना और कच्चा न खाना है, यह भी सर्वत्र ठीक नहीं। क्योंकि चणे आदि कच्चे भी खाये जाते हैं।

प्रश्न—द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावें, वा शूद्र के हाथ की बनाई खावें?

उत्तर—शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यवर्णस्थ स्त्री-पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्यपालने और पशुपालन, खेती और व्यापार के काम में तत्पर रहें और शूद्र के पात्र [में] तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के विना न खावें। सुनो प्रमाण—

आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः।

—यह आपस्तम्ब का सूत्र है [आपस्तम्ब धर्मसूत्र। प्रश्न २। पटल २। खण्ड ३। सूत्र ४]॥

आर्यों के घर में 'शूद्र' अर्थात् मूर्ख स्त्री-पुरुष पाकादिसेवा करें परन्तु वे शरीर, वस्त्र आदि से पवित्र रहैं। आर्यों के घर में जब रसोई बनावें तब मुख बांध के बनावें। क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वासा[दि] भी अन्न में न पड़े, आठवें दिन क्षौर नखच्छेदन करावें। स्नान करके पाक बनाया करें। आर्यों को खिलाके आप खावें।

प्रश्न—शूद्र के छुए हुए पके अन्न के खाने में जब दोष लगाते हैं, तो उसके हाथ का बनाया कैसे खा सकते हैं?

उत्तर—यह बात कपोलकल्पित झूठी है। क्योंकि जिन्होंने गुड़, चीनी, घृत, दूध, पिसान, शाक, फल, मूल खाया उन्होंने जानो सब जगत् भर के हाथ का बनाया और उच्छिष्ट खा लिया। क्योंकि जब शूद्र, चमार, भङ्गी, मुसलमान, ईसाई आदि लोग खेतों में से ईख को काटते, छीलते, पीलकर रस निकालते हैं, तब मल-मूत्रोत्सर्ग कर, उन्हीं विना धोये हाथों से छूते, उठाते, धरते, आधा सांठा चूंस, रस पीके, आधा उसी में डाल देते और रस पकाते समय उस रस में रोटी भी पकाकर खाते हैं। जब चीनी बनाते हैं, तब पुराने जूते कि जिसके तले में विष्ठा, मूत्र, गोबर, धूली लगी रहती है, उन जूतों से रगड़ते हैं। दूध में अपने घर के उच्छिष्ट पात्रों का जल डालते, उसी में घृतादि रखते और आटे पीसने समय भी वैसे ही उच्छिष्ट हाथों से उठाते और पसीना भी आटे में टपकता है। शाक, फल, फूल, कन्द में भी ऐसी ही लीला होती है। जब इन पदार्थों को खाया, तो जानो सबके हाथ का खा लिया।

प्रश्न—रस, फल, फूल, कन्द मूल और अदृष्ट में दोष नहीं मानते।

उत्तर—वाहजी वाह! सत्य है कि जो ऐसा उत्तर न देते तो क्या धूड़-राख खाते? गुड़-शक्कर मीठी लगती, दूध-घी पुष्टि करता है, इसीलिये यह मतलबसिन्धु क्या नहीं रचा है? अच्छा जो अदृष्ट में दोष नहीं, तो भङ्गी वा मुसलमान अपने हाथों से दूसरे स्थान में बनाकर तुमको आके देवे तो खा लोगे वा नहीं? जो कहो कि नहीं, तो अदृष्ट में भी दोष है। हाँ, मुसलमान, ईसाई आदि मद्य-मांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यों को भी मद्य-मांसादि खाना-पीना अपराध पीछे लग पड़ता है, परन्तु आपस में आर्यों का एक भोजन होने में कोई भी दोष

नहीं दीखता। जब-तक एक मत, एक हानि-लाभ, एक सुख-दु:ख परस्पर न मानें, तब-तक उन्नति होना बहुत कठिन है। परन्तु केवल खाना-पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता, किन्तु जब-तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते, तब-तक बढ़ती के बदले हानि होती है।

विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने के कारण—आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़नी-पढ़ानी, बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेदविद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं, तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पाँच सहस्र वर्ष के पहले हुई थीं, उनको भी भूल गये? देखो! महाभारत युद्ध में सब लोग लड़ाई में सवारियों पर खाते-पीते थे। आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया, सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयङ्कर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दु:खसागर में डुबा मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्रहत्यारे, स्वदेशविनाशक, नीच के दुष्ट-मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दु:ख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह महाराजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय।

भक्ष्याऽभक्ष्य दो प्रकार के होते हैं। एक धर्मशास्त्रोक्त, दूसरा वैद्यकशास्त्रोक्त। जैसे धर्मशास्त्र में—

अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च॥

—मनु० [५।५]॥

'**द्विज**' अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य; और शूद्रों को मलीन, विष्ठा-मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक, फल, मूलादि न खाना।

वर्जयेन्मधु मांसं च॥ —मनु० [२।१७७]

जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गाँजा, भाँग, अफीम आदि जो-जो—

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते॥

[शार्ङ्गधर प्रथम खण्ड। अ० ४। श्लो० २१]॥

बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं, उनका सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्यमांस के परमाणुओं ही से पूरित है, उनके हाथ का न खावें। जिसमें उपकारक प्राणियों की हिंसा अर्थात् जैसे एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में कुछ कम चार लाख मनुष्यों को सुख पहुँचता है, वैसे पशुओं को न मारें, न मारने दें।

जैसे किसी गाय से बीस सेर और किसी से दो सेर दूध प्रतिदिन होवे, उसका मध्यभाग ग्यारह सेर प्रत्येक गाय से दूध होता है। कोई गाय अठारह और कोई छ: महीने तक दूध देती है, उसका मध्य भाग बारह महीने हुए। अब प्रत्येक गाय के जन्म भर के दूध से २४९६० (चौबीस सहस्र नौ सौ साठ) मनुष्य एक वार तृप्त होते हैं। उसके छ: बछियाँ छ: बछड़े होते हैं, उनमें से दो मर जायें, तो भी दश रहे। उनमें से पांच बछड़ियों के जन्म भर के दूध को मिलाकर १२४८०० (एक लाख चौबीस सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त हो सकते हैं। अब रहे पांच बैल, वे जन्म भर में ५००० (पाँच सहस्र) मन अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न करते हैं। उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य के भोजनार्थ ६० रुपये भर [=६० तोले]= तीन पाव अन्न खाने का भाग देने से २५०००० (अढ़ाई लाख) मनुष्यों की तृप्ति होती है। दूध और अन्न मिला ३७४८०० (तीन लाख चौहत्तर सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त होते हैं। दोनों संख्या मिला के एक गाय की एक पीढ़ी में ३९९७६० (तीन लाख निन्यानवे सहस्र सात सौ साठ) मनुष्य एक वार पालित होते हैं और पीढ़ी-परपीढ़ी बढ़ा कर लेखा करें तो असंख्य मनुष्यों का पालन होता है। इससे भिन्न [बैल] गाड़ी, सवारी, भार उठाने आदि कर्मों से मनुष्यों के बड़े उपकारक होते हैं। तथा भैंसें गाय से दूध [की मात्रा] में अधिक उपकारक होती हैं, परन्तु जैसे बैल उपकारक होते हैं, वैसे भैंसे भी हैं। परन्तु गाय के दूध-घी से जितने बुद्धिवृद्धि से लाभ होते हैं, उतने भैंस के दूध से नहीं। इससे मुख्य उपकारक आर्यों ने गाय को गिना है। और जो कोई अन्य विद्वान् होगा, वह भी इसी प्रकार समझेगा।

बकरी के दूध से २५९२० (पच्चीस सहस्र नौ सौ बीस) आदमियों

का पालन होता है, वैसे हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़, गदहे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं। इन पशुओं को मारनेवालों को सब मनुष्यों की हत्या करनेवाले जानियेगा।

देखो! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तब आर्य्यावर्त्त वा अन्य भूगोल-देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणी वर्त्तते थे। क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न, रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गो आदि पशुओं के मारनेवाले मद्याहारी राज्याऽधिकारी हुए हैं, तब से क्रमशः आर्य्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है। क्योंकि—

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम्।

[चाणक्यनीति अ० १०। श्लो० १३]॥

जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाय तो फल-फूल कहाँ से हों?

प्रश्न—जो सभी अहिंसक हो जायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायें कि सब गाय आदि पशुओं को मार खायें। तुम्हारा पुरुषार्थ व्यर्थ कर दें।

उत्तर—यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों, उनको दण्ड देवें और प्राण भी वियुक्त कर दें।

प्रश्न—फिर क्या उनका मांस फेंक देंवे?

उत्तर—चाहें फेंक दें, चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें, वा जला देवें। चाहे कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की हानि नहीं होती, किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है। जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छल आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है, वह '**अभक्ष्य**' और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना '**भक्ष्य**' है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाश, बुद्धि, बल, पराक्रम और आयु की वृद्धि होवे, उन तण्डुल, गोधूम, फूल, मूल, कन्द, दूध, घी, मिष्टादि का सेवन, उन पदार्थों का यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब '**भक्ष्य**' कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार

करनेवाले हैं, जिस-जिस के लिये जो-जो पदार्थ वैद्यकशास्त्र में वर्जित किये हैं, उन-उन का त्याग और जो-जो जिस-जिसके लिये विहित हैं, उन-उन का ग्रहण करना '**भक्ष्य**' है।

प्रश्न—एक साथ खाने में कुछ दोष है, वा नहीं?

उत्तर—दोष है। क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव नहीं मिलता। जैसे कुष्ठी आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ता है, वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है, सुधार नहीं। इसलिए—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्॥

—मनु० [२।५६]॥

न किसी को अपना उच्छिष्ट दे और न किसी के भोजन के बीच में आप खावे, न अधिक भोजन करे और न उच्छिष्ट अर्थात् भोजन किये पश्चात् मुख-हाथ धोये विना कहीं इधर-उधर जाय।

प्रश्न—'**गुरोरुच्छिष्टभोजनम्**' इस वाक्य का क्या अर्थ होगा?

उत्तर—इसका यह अर्थ है कि गुरु के भोजन के पश्चात् जो पृथक् अन्न शुद्ध स्थित है, उसका भोजन करना, अर्थात् प्रथम गुरु को भोजन कराके पश्चात् शिष्य भोजन करे।

प्रश्न—जो उच्छिष्टमात्र का निषेध है तो मक्खियों का उच्छिष्ट सहत, बछड़े का उच्छिष्ट दूध और एक ग्रास लेने के पश्चात् अपना भी उच्छिष्ट होता है, इनको भी न खाना चाहिये।

उत्तर—सहत कहने मात्र उच्छिष्ट है। वह बहुत ओषधियों का सार ग्राह्य, बछड़ा बाहिर का दूध पीता है, भीतर के दूध को नहीं छू सकता, इसलिये उच्छिष्ट नहीं, परन्तु बछड़े के पिये पश्चात् जल से उसकी मा के स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दोहना चाहिए और अपना उच्छिष्ट, अपने को विकारकारक नहीं होता। और देखो! स्वभाव से यह बात सिद्ध है कि किसी का उच्छिष्ट कोई भी न खावे, जैसे अपने मुख, नाक, कान, आँख, उपस्थ और गुह्य इन्द्रियों के मलमूत्रादि के स्पर्श में घृणा नहीं होती, वैसे किसी दूसरे के मल-मूत्र के स्पर्श में होती है।

इसलिये सिद्ध होता है कि यह व्यवहार सृष्टिक्रम से विपरीत नहीं है, इसलिये मनुष्यमात्र को उचित है कि किसी का उच्छिष्ट कोई भी न खावे।

प्रश्न—क्या स्त्री-पुरुष भी साथ और उच्छिष्ट न खावें?

उत्तर—नहीं। क्योंकि उनके भी शरीरों का स्वभाव भिन्न-भिन्न है।

प्रश्न—चाहे ब्राह्मण वा चाण्डाल हो, सब के हाथ चमड़े के हैं और जैसा रुधिरादि ब्राह्मण के शरीर में होते हैं, वैसा ही चाण्डाल के; पुनः भंगी के हाथ के खाने में क्या दोष है?

उत्तर—दोष है। क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के खान-पान से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के शरीर में दुर्गन्धादि रहित शुद्धरज वीर्य होता है, वैसा चाण्डाल, चाण्डाली के शरीर में नहीं। क्योंकि चाण्डाल का शरीर दुर्गन्ध के परमाणुओं से भरा हुआ होता है, वैसा ब्राह्मणादि का नहीं। इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और भंगी का नहीं। जब तुमसे कोई पूछेगा कि जैसा चमड़े का शरीर माता, सास, बहिन, कन्या, पुत्रवधू का है, वैसा ही अपनी स्त्री का है, तो क्या माता आदि के साथ भी स्वस्त्री के समान वर्तोगे? जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुख से खाया जाता है, वैसे दुर्गन्ध भी खाया जा सकता है तो क्या मल भी खाओगे? क्या ऐसा भी कोई हो सकता है?

प्रश्न—जो गाय के गोबर से चौका लगाते हो, तो अपने गोबर से क्यों नहीं लगाते? और गोबर के चौके में जाने से चौका अशुद्ध क्यों नहीं होता?

उत्तर—गाय के गोबर से वैसा दुर्गन्ध नहीं होता जैसा कि मनुष्य के मल से [गोबर] चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता, न कपड़ा बिगड़ता, न मलीन होता है। जैसा मिट्टी से मैल चढ़ता है, वैसा सूखे गोबर से नहीं होता। मट्टी और गोबर से जिस स्थान को लेपन करते हैं, वह देखने में अतिसुन्दर होता है। और जहां रसोई बनती है वहां भोजनादि करने से घी, मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है, उससे मक्खी, कीड़ी आदि बहुत आते हैं। जब उसको झाड़ू लगा के लेपन कर दिया जाये वा पक्का मकान हो तो धो दिया जाता है तो वे दोष नहीं रहते, जैसा मियाँजी के चौके में कहीं कोयले, कहीं राख, कहीं लकड़ी और कहीं फूटी हाँडी

के टुकड़े, कहीं जूंठे पत्तल, कहीं हाड़-गोड़ पड़े रहने से देखने में बुरा लगता और सहस्रों मक्खी और कीड़ियों से भरा हुआ होता है। यदि गोबर से अशुद्ध मानते हो तो जब चूल्हे में छाने (कंडे) रखने, उसीकी आगी से तमाखू पीने, घर की भीत्ति पर लेपन करने आदि से मियाँजी का भी चौका भ्रष्ट हो जाता होगा?

प्रश्न—चौके में खाना अच्छा, वा बाहर?

उत्तर—जहाँ अच्छा दीखे, वहां भोजन करना चाहिये, परन्तु आवश्यक युद्धादि कर्मों में तो घोड़े आदि यानों पर बैठे वा खड़े-खड़े भी खाना अत्यन्त उचित है।

प्रश्न—क्या अपने ही हाथ का खाना, दूसरे के हाथ का नहीं?

उत्तर—जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ हानि नहीं। क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री-पुरुष रसोई बनाने, चौका देने, बर्तन-मांजने आदि बखेड़ों में पड़े रहैं तो विद्यादि शुभगुणों की वृद्धि कभी न हो। देखो! महाराजे युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा, ऋषि-महर्षि आये थे। एक ही पाकशाला से भोजन किया करते थे। जब से ईसाई मुसलमान आदि के मतमतान्तर चले, आपस में वैर-विरोध हुआ, उन्होंने मद्य गोमांसादि का खाना स्वीकार किया, उसी समय से भोजनादि में बखेड़ा हो गया। देखो! क़ाबुल, कन्धार, ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि के देशों के राजाओं की कन्या गान्धारी, माद्री, उलोपी आदि के साथ आर्य्यावर्त्तदेशीय राजा-लोग विवाह करते थे। शकुनि आदि कौरव-पाण्डवों के साथ खाते-पीते थे, कुछ विरोध नहीं करते थे, क्योंकि उस समय सर्व-भूगोल में वेदोक्त एक मत था, उसी में सबकी निष्ठा थी और एक दूसरे का सुख-दुःख हानि-लाभ आपस में अपने समझते थे, तभी भूगोल में सुख था। अब तो बहुत मत वाले होने से बहुत-सा दुःख और विरोध बढ़ गया है। इसका निवारण करना बुद्धिमानों का काम है। परमात्मा सबके मन में सत्य-मत का ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्या मत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हों। इसमें सब विद्वान् लोग विचारकर विरोध छोड़ के अविरुद्धमत के स्वीकार से सब जने मिलकर सब के आनन्द को बढ़ावें।

यह थोड़ा-सा आचार-अनाचार, भक्ष्याभक्ष्य विषय में लिखा। इस ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध इसी दशमे समुल्लास पर्यन्त पूरा हो गया। इन समुल्लासों में विशेष खण्डन-मण्डन इसलिये नहीं लिखा कि जब-तक मनुष्य सत्यासत्य के विचार में कुछ भी सामर्थ्य न बढ़ाते, तब-तक स्थूल और सूक्ष्म खण्डनों के अभिप्राय को नहीं समझ सकते। इसलिये प्रथम सबको सत्य-शिक्षा का उपदेश करके अब 'उत्तरार्द्ध' अर्थात् जिसमें चार समुल्लास हैं, उसमें विशेष खण्डन-मण्डन लिखेंगे।

इन चारों में से प्रथम समुल्लास में आर्य्यावर्त्तीय मतमतान्तर, दूसरे में जैनियों के, तीसरे में ईसाइयों और चौथे में मुसलमानों के मतमतान्तरों के खण्डन-मण्डन के विषय में लिखेंगे। और पश्चात् चौदहवें समुल्लास के अन्त में स्वमत भी दिखलाया जायगा। जो कोई विशेष खण्डन-मण्डन देखना चाहें, वे इन चारों समुल्लासों में देखें। परन्तु सामान्य करके कहीं-कहीं दश समुल्लासों में भी कुछ थोड़ा-सा खण्डन-मण्डन किया है। इन चौदह समुल्लासों को पक्षपात छोड़ न्यायदृष्टि से देखेगा, उसके आत्मा में सत्य अर्थ का प्रकाश होकर आनन्द होगा। और जो हठ, दुराग्रह और ईर्ष्या से देखे-सुनेगा, उसको इस ग्रन्थ का अभिप्राय यथार्थ विदित होना बहुत कठिन है। इसलिये जो कोई इसको यथावत् विचारेगा वह इस ग्रन्थ को सुभूषित, और न विचारेगा वह इसका अभिप्राय न पाकर गोता खाया करेगा। विद्वानों का यही काम है कि सत्याऽसत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग करके परम आनन्दित होते हैं। वे ही गुणग्राहक पुरुष विद्वान् होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फलों को प्राप्त होकर प्रसन्न रहते हैं॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामीकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषित आचाराऽनाचारभक्ष्याऽभक्ष्य-विषये दशमः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ १०॥
समाप्तोऽयम्पूर्वार्द्धः॥

उत्तरार्द्धः
अनुभूमिका (१)

यह सिद्ध बात है कि पांच सहस्र वर्षों के पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था, क्योंकि वेदोक्त सब बातें विद्या से अविरुद्ध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने का कारण महाभारत युद्ध हुआ। इनकी अप्रवृत्ति से अविद्याऽन्धकार के भूगोल में विस्तृत होने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया, वैसा मत चलाया।

उन सब मतों में ४ चार मत अर्थात् जो वेदविरुद्ध पुराणी, जैनी, किरानी, और कुरानी सभी मतों के मूल हैं, वे क्रम से एक के पीछे दूसरा तीसरा चौथा चला है। अब इन चारों की शाखा एक सहस्र से कम नहीं हैं। इन सब मतवादियों, इनके चेलों और अन्य सबको परस्पर सत्याऽसत्य के विचार करने में अधिक परिश्रम न हो, इसलिये यह ग्रन्थ बनाया है। जो-जो इसमें सत्य-मत का मण्डन और असत्य का खण्डन लिखा है, वह सबको जनाना ही प्रयोजन समझा गया है। इसमें जैसी मेरी बुद्धि, जितनी विद्या और जितना इन चारों मतों के मूल ग्रन्थ देखने से बोध हुआ है, उसको सबके आगे निवेदित कर देना मैंने उत्तम समझा है, क्योंकि विज्ञान गुप्त हुए का पुनर्मिलना सहज नहीं है। पक्षपात छोड़कर इसको देखने से सत्याऽसत्य मत सबको विदित हो जायगा। पश्चात् सबको अपनी-अपनी समझ के अनुसार सत्य मत का ग्रहण करना और असत्य मत को छोड़ना सहज होगा। इनमें से जो पुराणादि ग्रन्थों से शाखा-शाखान्तररूप मत आर्य्यावर्त्त देश में चले हैं, उनका संक्षेप से गुण-दोष इस ११वें समुल्लास में दिखाया जाता है।

इस मेरे कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें। क्योंकि मेरा तात्पर्य्य किसी की हानि वा विरोध करने में नहीं किन्तु सत्याऽसत्य का निर्णय करने-कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्यायदृष्टि से वर्तना अति उचित है। मनुष्य-जन्म का होना सत्याऽसत्य के निर्णय करने-कराने के लिये है, न कि वादविवाद, विरोध करने-कराने के

लिये।

इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो-जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपातरहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब-तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब-तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्याद्वेष छोड़ सत्याऽसत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना-कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है।

यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सबको विरोध-जाल में फसा रक्खा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फसकर सबके प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐक्यमत हो जायें। इसके होने की युक्ति इस ग्रन्थ की पूर्त्ति में लिखेंगे। सर्वशक्तिमान् परमात्मा एक मत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करे।

॥ अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु॥

अथैकादशसमुल्लासारम्भः

अथाऽऽर्य्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डने विधास्यामः

अब आर्य्य लोगों के जो कि आर्य्यावर्त्त देश में वसनेवाले हैं, उनके मत का खण्डन तथा मण्डन का विधान करेंगे।

यह आर्य्यावर्त्त देश ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसीलिये इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है, क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिये सृष्टि की आदि में आर्य्य लोग इसी देश में आकर वसे। इसलिये हम सृष्टिविषय में कह आये हैं कि आर्य्य नाम उत्तम पुरुषों का है और आर्य्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है। जितने भूगोल में देश हैं, वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं। पारसमणि पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्य्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही 'सुवर्ण' अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

—मनु० [२।२०]॥

सृष्टि से ले के पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का 'सार्वभौम चक्रवर्ती' अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देश में 'माण्डलिक' अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे क्योंकि कौरव-पाण्डव पर्यन्त यहां के राजा और राजशासन में सब भूगोल के सब राजा और प्रजा चलते थे, क्योंकि यह मनुस्मृति जो सृष्टि की आदि में हुई है, उसका प्रमाण है—'इसी आर्य्यावर्त्त में उत्पन्न हुए 'ब्राह्मण' अर्थात् विद्वानों से भूगोल के सब मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दस्यु, म्लेच्छ आदि अपने-अपने अनुकूल विद्या, चरित्रों की शिक्षा और विद्याभ्यास करें। और महाराजे युधिष्ठिरजी के राजसूय-यज्ञ और

महाभारतयुद्धपर्यन्त यहां के राज्याधीन सब राज्य थे। सुनो! चीन का 'भगदत्त', अमेरिका का 'बब्रुवाहन', यूरोप के 'विडालाक्ष' अर्थात् मार्जार के सदृश आँखवाले, 'यवन' जिसको यूनान कह आये और ईरान का 'शल्य' आदि सब राजा राजसूय-यज्ञ और महाभारत युद्ध में आज्ञाऽनुसार आये थे। जब रघुगण राजा थे, तब रावण भी यहां के आधीन था। जब रामचन्द्र के समय में विरुद्ध हो गया, तो उसको रामचन्द्र ने दण्ड देकर राज्य से नष्ट कर उसके भाई विभीषण को राज्य दिया।

स्वायंभुव राजा से लेकर पाण्डवपर्यन्त आर्य्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़कर नष्ट हो गये। क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता। और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत-सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुषार्थरहितता, ईर्ष्या-द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इससे देश में विद्या सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन देश में बढ़ जाते हैं, जैसे कि मद्य-मांस सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं। और जब युद्धविभाग में युद्धविद्या का कौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करने वाला भूगोल में दूसरा न हो, तब उन लोगों में पक्षपात, अभिमान बढ़ कर अन्याय बढ़ जाता है। जब ये दोष हो जाते हैं तब आपस में विरोध होकर अथवा उनसे अधिक दूसरे छोटे कुलों में से कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उनका पराजय करने में समर्थ होवे। जैसे मुसलमानों की बादशाही के सामने 'शिवाजी', 'गोविन्दसिंहजी' ने खड़े होकर मुसलमानों के राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया।

अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्त्तिनः केचित् सुद्युम्न-भूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्नकुवलयाश्वयौवनाश्ववद्ध्र्यश्वाश्वपतिशशविन्दु-हरिश्चन्द्राऽम्बरीषननक्तुशर्यातिययात्यनरण्याक्षसेनादयः। अथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजानः॥ —मैत्र्युपनि० [प्रपा० १। खं० ४]

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि सृष्टि से लेकर महाभारतपर्यन्त चक्रवर्त्ती सार्वभौम राजा आर्य्यकुल में ही हुए थे। अब इनके सन्तानों

का अभाग्योदय होने से राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं। जैसे यहां सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलायाश्व, यौवनाश्व, वद्ध्र्यश्व, अश्वपति, शशविन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, शर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त और भरत 'सार्वभौम' सब भूमि में प्रसिद्ध चक्रवर्त्ती राजाओं के नाम लिखे हैं, वैसे स्वायम्भुवादि चक्रवर्त्ती राजाओं के नाम स्पष्ट मनुस्मृति, महाभारतादि ग्रन्थों में लिखे हैं। इसको मिथ्या करना अज्ञानी और पक्षपातियों का काम है।

प्रश्न—जो आग्नेयास्त्र आदि विद्या लिखी हैं, सो सत्य हैं वा नहीं? और तोप तथा बन्दूक उस समय में थीं, वा नहीं?

उत्तर—यह बात सच्ची है, ये शस्त्र भी थे। क्योंकि पदार्थविद्या से इन सब बातों का सम्भव है।

प्रश्न—क्या ये देवताओं के मन्त्रों से सिद्ध होते थे?

उत्तर—नहीं। ये सब अस्त्र पदार्थों से सिद्ध करते थे। वे 'मन्त्र' अर्थात् विचार से सिद्ध करते और चलाते थे। 'मन्त्र' शब्दमय होता है, उससे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता। और जो कोई कहे कि मन्त्र से अग्नि उत्पन्न होता है तो वह मन्त्र के जप करने वाले के हृदय और जिह्वा को भस्म कर देवे। 'मारने जाय शत्रु को और मर रहे आप'। इसलिये 'मन्त्र' नाम है विचार का, जैसा 'राजमन्त्री' अर्थात् राजकर्मों का विचार करने वाला कहाता है, वैसा 'मन्त्र' अर्थात् विचार से सब सृष्टि के पदार्थों का प्रथम ज्ञान और पश्चात् क्रिया करने से अनेक प्रकार के पदार्थ और क्रियाकौशल उत्पन्न होते हैं।

जैसे कोई एक लोहे का बाण वा गोला बनाकर उसमें ऐसे पदार्थ रक्खे कि जो अग्नि के लगाने से वायु में धुआं फैलने और सूर्य की किरण वा वायु के स्पर्श होने से अग्नि जल उठे, इसी का नाम 'आग्नेयास्त्र' है। जब दूसरा इसका निवारण करना चाहे तो उसी पर 'वारुणास्त्र' छोड़ दे। अर्थात् जैसे शत्रु ने शत्रु की सेना पर आग्नेयास्त्र छोड़कर नष्ट करना चाहा, वैसे ही अपनी सेना के रक्षार्थ सेनापति वारुणास्त्र से आग्नेयास्त्र का निवारण करे। वह ऐसे द्रव्यों के योग से होता है जिसका धुआं वायु के स्पर्श होते ही बद्दल होके झट बर्षने लग जावे, अग्नि को

बुझा देवे। ऐसे ही 'नागपाश' अर्थात् जो शत्रु पर छोड़ने से उसके अङ्गों को जकड़ के बांध लेता है। वैसे ही एक 'मोहनास्त्र' अर्थात् जिसमें नशे की चीज डालने से जिसके धुएँ के लगने से, सब शत्रु की सेना 'निद्रास्थ' अर्थात् मूर्छित हो जाय। इसी प्रकार सब शस्त्रास्त्र होते थे। और एक तार से, वा शीशे से अथवा किसी और पदार्थ से विद्युत् उत्पन्न करके शत्रुओं का नाश करते थे, उसको भी 'आग्नेयास्त्र' तथा 'पाशुपतास्त्र' कहते हैं। 'तोप' और 'बन्दूक' नाम अन्य देश का है, यह संस्कृत और आर्य्यावर्त्तीय भाषा के नहीं। किन्तु जिसको विदेशी लोग तोप कहते हैं, संस्कृत और भाषा में उसका नाम 'शतघ्नी', और जिसको बन्दूक कहते हैं, उसका नाम संस्कृत और आर्य्यभाषा में 'भुशुण्डी' कहते हैं। जो संस्कृत विद्या को नहीं पढ़े और इस देश की भाषा को भी ठीक-ठीक नहीं जानते, वे भ्रम में पड़ कर कुछ का कुछ लिखते और कुछ का कुछ बकते हैं। उसका बुद्धिमान् लोग प्रमाण नहीं कर सकते।

और जितनी विद्या भूगोल में फैली है, वह सब आर्य्यावर्त्त देश से मिश्रवालों, उनसे यूनानी, उनसे रोम और उनसे यूरोप देश में, उनसे अमेरिका आदि में फैली है। अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्या का आर्य्यावर्त्त देश में है उतना किसी अन्य देश में नहीं। जो लोग कहते हैं कि जर्मनदेश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा, यह बात कहनेमात्र है। क्योंकि '**यस्मिन्देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते**' अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता, उस देश में एरण्ड ही को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं। वैसे ही यूरोप देश में संस्कृत विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोगों और मोक्षमूलर साहब ने थोड़ा-सा पढ़ा, वही उस देश के लिए अधिक है। परन्तु आर्य्यावर्त्त देश की ओर देखें, तो उनकी बहूत न्यून गणना है। क्योंकि मैंने जर्मन देशनिवासी के—एक 'प्रिन्सिपल' के पत्र से जाना कि जर्मन देश में संस्कृत-चिट्ठी का अर्थ करनेवाले भी बहुत कम हैं। और मोक्षमूलर साहेब के संस्कृत-साहित्य और थोड़ी-सी वेद की व्याख्या देखकर मुझको विदित होता है कि मोक्षमूलर साहब ने इधर-उधर आर्य्यावर्त्तीय लोगों की की हुई टीका देखकर कुछ-कुछ

यथा-तथा लिखा है। जैसा कि—

'युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि॥'

इस मन्त्र का अर्थ 'घोड़ा' किया है। इससे तो जो सायणाचार्य्य ने 'सूर्य्य' अर्थ किया है सो अच्छा है। परन्तु इसका ठीक अर्थ 'परमात्मा' है, सो मेरी बनाई 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में देख लीजिये। उसमें इस मन्त्र का अर्थ यथार्थ किया है। इतने से जान लीजिये कि जर्मन देश और मोक्षमूलर साहब में संस्कृत-विद्या का कितना पाण्डित्य है।

यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं, वे सब आर्य्यावर्त्त देश ही से प्रचरित हुए हैं। देखो! एक जैकालियट साहब पैरस अर्थात् फ्रांस देश निवासी अपनी 'बायबिल इन इण्डिया' में लिखते हैं कि—''सब विद्या और भलाइयों का भण्डार आर्य्यावर्त्त देश है और सब विद्या तथा मत इसी देश से फैले हैं'' और परमात्मा की प्रार्थना करते हैं कि ''हे परमेश्वर! जैसी उन्नति आर्य्यावर्त्त देश की पूर्व काल में थी, वैसी ही हमारे देश की कीजिये'', सो उस ग्रन्थ में देख लो। तथा 'दाराशिकोह' बादशाह ने भी यही निश्चय किया था कि जैसी पूरी विद्या संस्कृत में है, वैसी किसी भाषा में नहीं। वे ऐसा उपनिषदों के भाषान्तर में लिखते हैं कि—''मैंने अरबी आदि बहुत सी भाषा पढ़ीं, परन्तु मेरे मन का सन्देह छूट कर आनन्द न हुआ। जब संस्कृत देखा और सुना तब निःसन्देह होकर मुझको बड़ा आनन्द हुआ है।'' देखो, काशी के 'मानमन्दिर' में शशिमालचक्र को कि जिसकी पूरी रक्षा भी नहीं रही है, तो भी कितना उत्तम है कि जिसमें अब तक भी खगोल का बहुत सा वृत्तान्त विदित होता है। जो 'सवाई जयपुराधीश' उसकी सम्भाल और फूटे-टूटे को बनवाया करेंगे तो बहुत अच्छा होगा। परन्तु ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया। क्योंकि जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह?

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः॥

[चाणक्यनीतिदर्पण अ० १६। श्लो० ५]॥

यह किसी कवि का वचन है कि—जब नाश होने का समय निकट आता है तब उल्टी बुद्धि होकर उल्टे काम करते हैं। कोई उनको सूधा समझावे तो उल्टा मानें और उल्टी समझावें उसको सूधी मानें। जब बड़े-बड़े विद्वान्, राजे, महाराजे, ऋषि, महर्षि लोग महाभारत युद्ध में बहुत से मारे गये और बहुत से मर गये, तब विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला। ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान आपस में करने लगे। जो बलवान् हुआ वह देश को दाब कर राजा बन बैठा। वैसे ही सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में खण्ड-बण्ड राज्य हो गया। पुनः द्वीप-द्वीपान्तर के राज्य की व्यवस्था कौन करे?

जब ब्राह्मण लोग विद्याहीन हुए तब क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अविद्वान् होने में कथा ही क्या कहनी? जो परम्परा से वेदादि शास्त्रों का अर्थसहित पढ़ने का प्रचार था, वह भी छूट गया। केवल जीविकार्थ पाठमात्र ब्राह्मण लोग पढ़ते रहे, सो पाठमात्र भी क्षत्रिय आदि को न पढ़ाया। क्योंकि जब अविद्वान् हुए गुरु बन गये, तब छल, कपट, अधर्म भी उनमें बढ़ता चला। ब्राह्मणों ने विचारा कि अपनी जीविका का प्रबन्ध बाँधना चाहिये। सम्मति करके यही निश्चय कर क्षत्रिय आदि को उपदेश करने लगे कि हम ही तुम्हारे पूज्यदेव हैं। विना हमारी सेवा किये तुमको स्वर्ग वा मुक्ति न मिलेगी। किन्तु जो तुम हमारी सेवा न करोगे, तो घोर नरक में पड़ोगे। जो-जो पूर्ण विद्यावाले धार्मिकों का नाम ब्राह्मण और पूजनीय वेद और ऋषि-मुनियों के शास्त्र में लिखा था, उनको अपने मूर्ख, विषयी, कपटी, लम्पट, अधर्मियों पर घटा बैठे। भला वे आप्त विद्वानों के लक्षण इन मूर्खों में कब घट सकते हैं? परन्तु जब क्षत्रियादि यजमान संस्कृत-विद्या से अत्यन्त रहित हुए, तब उनके सामने जो-जो गप्प मारे, सो-सो बिचारों ने सब मान लिये। जब मान लिये, तब इन नाममात्र ब्राह्मणों की बन पड़ी। सबको अपने वचन-जाल में बाँध कर वशीभूत कर लिये और कहने लगे कि—

ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः॥

अर्थात् जो ब्राह्मणों के मुख में से वचन निकलता है, वह जानो साक्षात् भगवान् के मुख से निकला है। जब क्षत्रियादि वर्ण '**आंख के**

अन्धे और गांठ के पूरे' अर्थात् भीतर विद्या की आँख फूटी हुई और जिनके पास धन पुष्कल है, ऐसे-ऐसे चेले मिले, फिर इन व्यर्थ ब्राह्मण नाम वालों को विषयानन्द का उपवन मिल गया। यह भी उन लोगों ने प्रसिद्ध किया कि जो कुछ पृथिवी में उत्तम पदार्थ हैं, वे सब ब्राह्मणों के लिये हैं। अर्थात् जो गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मणादि वर्णव्यवस्था थी, उसको नष्ट कर जन्म पर रखी और मृतक तथा स्त्री पर्यन्त का भी दान यजमानों से लेने लगे। जैसी अपनी इच्छा हुई वैसा करते चले। यहां तक किया कि 'हम भूदेव हैं' हमारी सेवा के विना देवलोक किसी को नहीं मिल सकता। इनसे पूछना चाहिये कि तुम किस लोक में पधारोगे? तुम्हारे काम तो घोर नरक भोगने के हैं; कृमि, कीट बनोगे। तब तो बड़े क्रोधित होकर कहते हैं—''हम 'शाप' देंगे, तुम्हारा नाश हो जाएगा, क्योंकि लिखा है '**ब्रह्मद्वेषी विनश्यति**' ब्राह्मणों से द्वेष करने वाला नष्ट हो जाता है।'' हाँ, यह बात तो सच्ची है कि सम्पूर्ण वेद, और परमात्मा को जाननेवाले, धर्मात्मा, सब जगत् के उपकारक पुरुषों से जो कोई द्वेष करेगा, वह अवश्य नष्ट होगा। परन्तु जो ब्राह्मण नहीं हों, उनका न ब्राह्मण नाम और न उनकी सेवा करनी योग्य है। परन्तु तुम तो ब्राह्मण नहीं हो।

प्रश्न—तो हम कौन हैं?

उत्तर—तुम 'पोप' हो।

प्रश्न—'पोप' किसको कहते हैं?

उत्तर—असल इसकी [=वास्तव में] रूमन् भाषा में तो बड़ा और पिता का नाम 'पोप' है, परन्तु अब छल-कपट से दूसरे को ठग कर अपना प्रयोजन साधनेवाले को 'पोप' कहते हैं।

प्रश्न—हम तो ब्राह्मण और साधु हैं। क्योंकि हमारा पिता ब्राह्मण और माता ब्राह्मणी तथा हम अमुक साधु के चेले हैं।

उत्तर—यह सच है, परन्तु सुनो भाई! मा-बाप ब्राह्मणी-ब्राह्मण होने से और किसी साधु के शिष्य होने पर ब्राह्मण वा साधु नहीं हो सकते, किन्तु ब्राह्मण और साधु अपने उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव से होते हैं, जो कि परोपकारी हों।

सुना है कि जैसे रूम के 'पोप' अपने चेलों को कहते थे कि तुम

अपने पाप हमारे सामने कहोगे, तो हम क्षमा कर देंगे। विना हमारी सेवा और आज्ञा के कोई भी स्वर्ग में नहीं जा सकता। जो तुम स्वर्ग में जाना चाहो तो हमारे पास जितने रुपये जमा करोगे उतनी ही सामग्री स्वर्ग में तुमको मिलेगी। जब कोई लाख रुपया स्वर्ग की इच्छा करके 'पोपजी' को देता था, तब वह 'पोपजी' ईसा और मरियम की मूर्त्ति के सामने हुण्डी लिखकर ऐसी देता था—

''हे खुदावन्द ईसामसी! अमुक मनुष्य ने तेरे नाम पर लाख रुपये स्वर्ग में आने के लिये हमारे पास जमा कर दिये हैं। जब वह स्वर्ग में आवे तब तू अपने पिता के स्वर्ग के राज्य में पच्चीस सहस्र रुपयों में बाग-बगीचे, मकान; पच्चीस सहस्र में सवारी, नौकर-चाकर; पच्चीस सहस्र में खाने-पीने, कपड़ा, सोने-बैठने का सब सराजाम और पच्चीस सहस्र इसके इष्ट मित्रों की जियाफ़त (=खातरी) आदि के वास्ते दिला देना। वैसे हुंडी सिकार देना।'' —सही पोपजी की।

फिर उस हुण्डी के नीचे पोप जी आप सही करके हुण्डी उसको देकर कहते थे कि—जब तू मरे तब यह हुण्डी भी कबर में अपने सिराने गाड़ने के लिये अपने कुटुम्ब को कह रखना। जब फरिश्ते आवेंगे तब तुझको और हुण्डी को ले जायेंगे और लिखे प्रमाणे चीजें तुझे दिला लेंगे।

जानो स्वर्ग के ठेकेदार पोपजी ही हैं। जब-तक यूरोप में मूर्खता थी, तब तक वहां पोपलीला चलती थी। अब विद्या के होने से झूठी लीला बहुत करके नहीं चलती, किन्तु निर्मूल भी नहीं हुई।

वैसे ही आर्य्यावर्त्त देश में भी पोपजी जानो लाखों अवतार लेकर लीला फैला रहे हैं अर्थात् राजा और प्रजा को विद्या न पढ़ने, अच्छे पुरुषों का सत्सङ्ग होने न देने, रात-दिन बहकाने के सिवाय दूसरा कुछ भी काम नहीं करते। परन्तु यह ध्यान में रखना कि जो-जो कपट छल की लीला करते हैं, वे ही पोप कहाते हैं। जो उनमें भी धार्मिक विद्वान् परोपकारी हैं, वे सच्चे ब्राह्मण और साधु हैं। अब उन्हीं पोपों अर्थात् छली-कपटी स्वार्थी लोगों, ''मनुष्यों को ठग कर अपने प्रयोजन सिद्ध करने वालों'', ही का ग्रहण '**पोप**' शब्द से करना और '**ब्राह्मण**' तथा

'**साधु**' नाम से उत्तम पुरुषों का स्वीकार करना योग्य है।

देखो! जो कोई भी उत्तम ब्राह्मण वा साधु न होता, तो वेदादिशास्त्रों के पुस्तक स्वरसहित का पठन-पाठन, जैन, मुसलमान और ईसाई आदि से बचाकर आर्यों को वेदादि शास्त्र में प्रीतियुक्त और वर्णाश्रम में रखना कौन कर सकता?

'**विषादप्यमृतं ग्राह्यम्।**' —मनु० [२।२३९]॥

विष से भी अमृत के ग्रहण करने के समान पोपलीला से बहकाने में से भी आर्यों का जैन आदि मतों से बच रहना विष में अमृत के समान गुण समझना चाहिये।

जब यजमान विद्याहीन हुए और आप कुछ पाठ-पूजा पढ़ कर, अभिमान में आके, सब लोगों ने सम्मति करके राजा आदि से कहा कि ब्राह्मण और साधु अदण्ड्य हैं, देखो! '**ब्राह्मणो न हन्तव्यः**' '**साधुर्न हन्तव्यः**' ऐसे-ऐसे वचन जो कि सच्चे ब्राह्मण और सच्चे साधुओं के विषय में थे, सो पोपों ने अपने पर घटा लिये। और बहुत से झूठे-झूठे वचनयुक्त ग्रन्थ बना कर उनमें ऋषि-मुनियों के नाम धर के, उन्हीं के नाम से सुनाते रहे। उन प्रतिष्ठित ऋषि-महर्षियों के नाम से अविद्वान् लोग मानने लगे। पश्चात् जब अपने पर से दण्ड की व्यवस्था उठवा दी, पुनः यथेष्टाचार करने लगे, अर्थात् ऐसे कड़े नियम चलाये कि उन पोपों की आज्ञा के विना सोना, आना, जाना आदि भी नहीं कर सकते थे। राजाओं को ऐसा निश्चय कराया कि पोपसंज्ञक कहनेमात्र के ब्राह्मण साधु चाहे सो करें, कभी दण्ड न देना अर्थात् उन पर मन में दण्ड देने की इच्छा न करनी चाहिये। जब ऐसी मूर्खता हुई, तब जैसी पोपों की इच्छा हुई, वैसा करने लगे। अर्थात् इस बिगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। क्योंकि उस समय में ऋषि-मुनि भी थे तथापि कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृक्ष हो गये। जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्य्यावर्त्त में अविद्या फैलकर आपस में लड़ने लगे। क्योंकि—

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः॥ इतरथान्धपरम्परा॥

—सांख्यसूत्र [अ० ३। सू० ७९, ८१] है॥

जब उत्तम-उत्तम उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं। और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्धपरम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष होकर सत्योपदेश होता है, तभी अन्धपरम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है। पुनः वे पोप लोग अपनी, अपने चरणों की पूजा कराने लगे और कहने लगे कि इसी में तुम्हारा कल्याण है। जब ये लोग इनके वश में हो गये, तब प्रमाद और विषयासक्ति में निमग्न होकर गड़रिये के समान झूठे गुरु और चेले फसे। विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम, शूरवीरतादि शुभगुण सब नष्ट होते चले। पश्चात् एक वाममार्ग खड़ा किया। '**शिव उवाच**' '**पार्वत्युवाच**' '**भैरव उवाच**' इत्यादि नाम लिखकर उनका तन्त्र नाम धरा। उनमें ऐसी-ऐसी बातें लिखीं कि—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे॥ १॥

[—महानिर्वाणतन्त्र पञ्चमोल्लास; कालीतन्त्रादि]॥

प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक्-पृथक्॥ २॥

[कुलार्णव तन्त्र ८।९६]॥

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले।
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥ ३॥

[—कुलार्णव तन्त्र ७।१००]॥

मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु॥ ४॥
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव।
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव॥ ५॥

[—ज्ञानसंकलनी तन्त्र; हठयोग प्रदीपिका उपदेश ४।३५]॥

देखो इन गवर्गण्ड पोपों की लीला कि जो वेदविरुद्ध महा अधर्म के काम हैं उन्हीं को श्रेष्ठ, वाममार्गियों ने माना। मद्य, मांस, मीन अर्थात् मच्छी, मुद्रा पूरी, बड़े, रोटा आदि चर्वण, योनि और पात्राधार मुद्रा और पांचवां मैथुन अर्थात् पुरुष सब शिव और स्त्री सब पार्वती के समान मान कर—

अहं भैरवस्त्वं भैरवी ह्यावयोरस्तु सङ्गमः॥

[—कुलार्णवतन्त्र उल्लास ८।९७, १०२]॥

चाहे कोई पुरुष वा स्त्री हो इस ऊट-पटांग वचन को पढ़ के समागम करने में वे वाममार्गी दोष नहीं मानते। अर्थात् जिन नीच स्त्रियों को छूना नहीं, उनको अतिपवित्र उन्होंने माना है। जैसे शास्त्रों में रजस्वला आदि स्त्रियों के स्पर्श का निषेध है, उनको वाममार्गियों ने अतिपवित्र माना है। सुनो! इनका श्लोक खण्ड बण्ड—

रजस्वला पुष्करं तीर्थं चाण्डाली तु स्वयं काशी
चर्मकारी प्रयागः स्याद्रजकी मथुरा मता।
अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता॥ —इत्यादि [—रुद्रयामल तन्त्र]॥

रजस्वला के साथ समागम करने से जानो पुष्कर का स्नान, चाण्डाली से समागम में काशी की यात्रा, चमारी से समागम करने से मानो प्रयागस्नान, धोबी की स्त्री के साथ मेल में मथुरायात्रा और कंजरी के साथ लीला करने से मानो अयोध्या-तीर्थ कर आये। मद्य का नाम 'तीर्थ', मांस का नाम 'शुद्धि' और 'पुष्प', मच्छी का नाम 'तृतीया' और 'जलतुम्बिका', मुद्रा का नाम 'चतुर्थी', मैथुन का नाम 'पञ्चमी'। इसलिये ये नाम रक्खे हैं कि जिससे दूसरा न समझ सके। अपने नाम कौल, आर्द्र, वीर, शाम्भव और गण आदि रक्खे हैं। और जो वाममार्ग मत में नहीं हैं, उनका 'कण्टक', 'विमुख', 'शुष्कपशु' आदि नाम धरा है॥ १॥

और कहते हैं कि जब भैरवीचक्र हो तब उसमें ब्राह्मण से लेकर चाण्डालपर्यन्त का नाम द्विज हो जाता है और जब भैरवी चक्र से अलग हों तो, तब सब अपने-अपने वर्णस्थ हो जायें। भैरवीचक्र में वाममार्गी लोग भूमि वा पट्टे पर एक बिन्दु, त्रिकोण, चतुष्कोण, वर्त्तुलाकार बनाकर उसपर मद्य का घड़ा रखके उसकी पूजा करते हैं, फिर ऐसा मन्त्र पढ़ते हैं—

'ब्रह्मशापं विमोचय'

हे मद्य! तू ब्रह्मा आदि के शाप से रहित हो। एक गुप्त स्थान में कि जहां सिवाय वाममार्गी के दूसरे को नहीं आने देते, वहां स्त्री और पुरुष इकट्ठे होते हैं। एक स्त्री को नङ्गी कर पूजते और स्त्री लोग किसी पुरुष को नङ्गा कर पूजती हैं। पुनः कोई किसी की स्त्री, कोई अपनी वा दूसरे

की कन्या, कोई किसी की वा अपनी माता, भगिनी, पुत्रवधू आदि आती हैं। पश्चात् एक पात्र में मद्य भरके मांस और बड़े आदि एक स्थाली में धर रखते हैं। उस मद्य के प्याले को जो कि उनका आचार्य्य होता है, हाथ में लेकर '**भैरवोऽहम्**' '**शिवोऽहम्**' 'मैं भैरव वा शिव हूँ' बोल के पीता है। उसी जूंठे पात्र से सब पीते हैं। और जब किसी की स्त्री वा वेश्या नङ्गी कर अथवा किसी पुरुष को नङ्गा कर हाथ में तलवार दे के उसका नाम देवी और पुरुष का नाम महादेव धरते हैं, उनके उपस्थ इन्द्रिय की पूजा करते हैं, तब उस देवी वा शिव को मद्य का प्याला पिलाकर, उसी जूंठे पात्र से सब लोग एक-एक प्याला पीते। फिर उसी प्रकार क्रम से पी-पी उन्मत्त होकर, चाहे कोई किसी की बहिन, कन्या वा माता हो, जिसके साथ जिसकी इच्छा हो, कुकर्म करते हैं। कभी-कभी बहुत नशा चढ़ने से जूते, लात, मुष्टा-मुष्टि, केशा-केशि आपस में लड़ते हैं। किसी-किसी को वहीं वमन होता है। उनमें जो पहुँचा हुआ 'अघोरी' अर्थात् सब में सिद्ध गिना जाता है, वह वमन हुई चीज को भी खा लेता है। अर्थात् इनके सबसे बड़े सिद्ध की ये बातें हैं कि—

हालां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे, सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु।
विराजते कौलवचक्रवर्ती॥ [—कुलार्णवतन्त्र, उल्लास ९]॥

जो 'दीक्षित' अर्थात् कलार के घर में जाके बोतल पर बोतल चढ़ावे। रण्डियों के घर में जाके उनसे कुकर्म करके सोवे, जो इत्यादि कर्म निर्लज्ज, निःशङ्क होकर करे, वही वाममार्गियों में सर्वोपरि मुख्य चक्रवर्ती राजा के समान माना जाता है। अर्थात् जो बड़ा कुकर्मी वही उनमें बड़ा, और जो अच्छे काम करे और बुरे कामों से डरे वही छोटा। क्योंकि—

पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदा शिवः॥

[—ज्ञानसंकलनी तन्त्र, श्लो० ४३]॥

ऐसा तन्त्र में कहते हैं कि जो लोकलज्जा, शास्त्रलज्जा, कुललज्जा, देशलज्जा आदि पाशों में बँधा है वह 'जीव', और जो निर्लज्ज होकर बुरे काम करे, वही सदा 'शिव' है॥ २॥

'उड्डीस' तन्त्र आदि में एक प्रयोग लिखा है कि एक घर में चारों ओर आलय हों। उनमें मद्य के बोतल भरके धर देवे। इस आलय से

एक बोतल पीके, दूसरे आलय पर जावे। उसमें से पी तीसरे और तीसरे में से पीके, चौथे आलय में जावे। खड़ा-खड़ा तब तक मद्य पीवे कि जब तक लकड़ी के तुल्य पृथिवी में न गिर पड़े। फिर जब नशा उतरे तब उसी प्रकार पीके, गिर पड़े। और पुनः तीसरी वार इसी प्रकार पीके, गिरके उठे, तो उसका पुनर्जन्म न हो, अर्थात् सच तो यह है कि ऐसे मनुष्यों का पुनः मनुष्यजन्म होना ही कठिन है, किन्तु नीच योनि में बहुकालपर्यन्त पड़ा रहेगा॥ ३॥

वामियों के तन्त्र-ग्रन्थों में यह नियम है कि एक माता को छोड़ के किसी स्त्री को न छोड़ना चाहिये अर्थात् चाहे कन्या हो वा भगिनी आदि क्यों न हो, सबके साथ संगम करना चाहिये। इन वाममार्गियों में दश महाविद्या प्रसिद्ध हैं, उनमें से एक मातङ्गी विद्यावाला कहता है कि **'मातरमपि न त्यजेत्'** अर्थात् माता को भी समागम किये विना न छोड़ना चाहिये। और स्त्री पुरुष के समागम समय में मन्त्र जपते हैं कि हमको सिद्धि प्राप्त हो जायें। ऐसे पागल मनुष्य भी संसार में बहुत न्यून होंगे॥ ४॥

जो मनुष्य झूठ चलाना चाहता है, वह सत्य की निन्दा अवश्य ही करता है। देखो! ये वाममार्गी क्या कहते हैं? वेद शास्त्र, और पुराण ये सब सामान्य वेश्याओं के तुल्य हैं और जो यह शाम्भवी वाममार्ग की मुद्रा है, वह गुप्त कुल की स्त्री के तुल्य है॥ ५॥

इसीलिये इन लोगों ने सर्वथा वेदविरुद्ध मत खड़ा किया है। पश्चात् इन लोगों का मत बहुत चला। तब धूर्त्तता करके वेदों के नाम से भी वाममार्ग की लीला थोड़ी-थोड़ी चलाई। अर्थात्—

सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्।

[तु० शत० ब्रा० कां० १२।३।५।२ तथा ब० ४। कं० ५]॥

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसम्। [मनु० ५।२७]॥

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति॥ १॥ [तुलना—मनु० ५।४४]॥

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।

प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥ २॥ —मनु० [५।५६]

'सौत्रामणी' यज्ञ में मद्य पीवे, इसका अर्थ तो यह है कि सौत्रामणी यज्ञ में 'सोमरस' अर्थात् सोमवल्ली का रस पीये।

'प्रोक्षित' अर्थात् यज्ञ में मांस खाने में दोष नहीं, ऐसी पामरपन की बातें वाममार्गियों ने चलाई हैं।

उनसे पूछना चाहिये कि जो वैदिकी हिंसा हिंसा न हो तो तुझ और तेरे कुटुम्ब को मार के होम कर डालें तो क्या चिन्ता है?॥ १॥

मांसभक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्रीगमन करने आदि में दोष नहीं है, यह कहना छोकरपन है। क्योंकि विना प्राणियों को पीड़ा दिये मांस प्राप्त ही नहीं होता, और विना अपराध के पीड़ा देना धर्म का काम नहीं। मद्यपान का तो सर्वथा निषेध ही है, क्योंकि अब तक वाममार्गियों के विना किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा, किन्तु सर्वत्र निषेध है। और विना विवाह के मैथुन में भी दोष है, इसको निर्दोष कहनेवाला सदोष है॥ २॥

ऐसे-ऐसे वचन भी ऋषियों के ग्रन्थ में भी डालके कितने ही ऋषि-मुनियों के नाम से ग्रन्थ बनाकर 'गोमेध', 'अश्वमेध' नाम के यज्ञ भी कराने लगे थे। अर्थात् 'इन पशुओं को मारके होम करने से यजमान और पशु को स्वर्ग की प्राप्ति होती है' ऐसी प्रसिद्धि की। निश्चय तो यह है कि जो ब्राह्मणग्रन्थों में अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्द हैं, उनका ठीक-ठीक अर्थ नहीं जाना है। क्योंकि जो जानते तो ऐसा अनर्थ क्यों करते?

प्रश्न—अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दों का अर्थ क्या है?

उत्तर—इसका अर्थ यह है कि—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः॥ [१३।१।६।३]॥

अन्नꣳहि गौः॥ [४।३।१।२५]॥

अग्निर्वा अश्वः॥ [३।५।१।५]॥

आज्यं मेधः॥ —शतपथब्राह्मणे [तु०—१३।२।११।२]॥

घोड़े, गाय आदि पशु तथा मनुष्य मारके होम करना कहीं नहीं लिखा। किन्तु यह भी बात वाममार्गियों ने चलाई और जहां-जहां लेख है, वह-वह भी वाममार्गियों ने प्रक्षेप किया है। देखो! राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि का देनेहारा यजमान और अग्नि में घी आदि का होम करना 'अश्वमेध'; अन्न, इन्द्रियाँ, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना 'गोमेध'; जब मनुष्य मर जाय, तब उनके शरीर का

विधिपूर्वक दाह करना 'नरमेध' कहाता है।

प्रश्न—यज्ञकर्त्ता कहते हैं कि यज्ञ करने से यजमान और पशु स्वर्गगामी; तथा होम करके फिर पशु को जीता करते थे, यह बात सच्ची है वा नहीं?

उत्तर—नहीं! जो स्वर्ग को जाते हों तो ऐसी बात कहनेवाले को मार, होमकर, स्वर्ग में पहुँचाना चाहिये वा उसके प्रिय माता, पिता, स्त्री और पुत्रादि को मार होमकर स्वर्ग में क्यों नहीं पहुँचाते? वा वेदी में से पुनः क्यों नहीं जिलाते?

प्रश्न—जब यज्ञ करते हैं तब वेदों के मन्त्र पढ़ते हैं। जो वेद में न होता तो कहां से पढ़ते?

उत्तर—मन्त्र किसी को कहीं पढ़ने से नहीं रोकता, क्योंकि वह एक शब्द है। परन्तु उनका अर्थ ऐसा नहीं है कि पशु को मारके होम करना। जैसे **'अग्नये स्वाहा'** इत्यादि मन्त्रों का अर्थ-'अग्नि में हवि, पुष्ट्यादिकारक घृतादि उत्तम पदार्थों के होम करने से वायु, वृष्टि, जल शुद्ध होकर जगत् को सुखकारक होते हैं', परन्तु इन सत्य अर्थों को वे मूढ़ नहीं समझते थे। क्योंकि जो स्वार्थबुद्धि होते हैं, वे अपने स्वार्थ करने के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं जानते, मानते। जब इन पोपों का ऐसा अनाचार देखा और दूसरा मरे का तर्पण, श्राद्धादि करने को देखकर एक महाभयङ्कर वेदादि-शास्त्रनिन्दक, बौद्ध और जैन मत प्रचलित हुआ है। सुनते हैं कि इसी देश में गोरखपुर का राजा था, उससे पोपों ने यज्ञ कराया। उसकी प्रिय राणी का समागम घोड़े के साथ कराने से मरने पर, वैराग्यवान् होकर अपने पुत्र को राज्य दे, साधु हो, पोपों की पोल निकालने लगा। इसी की शाखारूप 'चारवाक' और 'आभाणक' मत भी हुआ था। उन्होंने इस प्रकार श्लोक बनाये हैं—

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कथं न हिंस्यते॥
मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्॥

[सर्वदर्शनसंग्रह—चारवाक दर्शन, श्लो० ४-५]॥

जो मारकर अग्नि में होम करने से पशु स्वर्ग को जाता है तो यजमान अपने पिता आदि को मारके स्वर्ग में क्यों नहीं भेजता॥ १॥

जो मरे हुए मनुष्यों की तृप्ति के लिये श्राद्ध और तर्प्पण होता है तो विदेश में जानेवाले मनुष्य को मार्ग का खर्च खाने-पीने के लिये बाँधना व्यर्थ है। क्योंकि जब मृतक को श्राद्ध-तर्पण से अन्न-जल पहुंचता है, तो जीते हुए परदेश में रहनेवाले वा मार्ग में चलनेहारों को घर में रसोई बनी हुई का पत्तल परोस, लोटा भरके उसके नाम पर रखने से क्यों नहीं पहुंचता? जो जीते हुए दूर देश अथवा दश हाथ पर दूर बैठे हुये को दिया हुआ नहीं पहुंचता तो मरे हुए के पास किसी प्रकार नहीं पहुँच सकता॥ २॥

उनके ऐसे युक्तिसिद्ध उपदेशों को मानने लगे और उनका मत बढ़ने लगा। जब बहुत से राजा रईस उनके मत में हुए, तब पोपजी भी उनकी ओर झुके, क्योंकि इनको जिधर गप्फा अच्छा मिले, वहीं चले जायें। झट जैन बनते चले। जैन में भी और प्रकार की पोपलीला बहुत है, सो १२वें समुल्लास में लिखेंगे। बहुतों ने इनका मत स्वीकार किया परन्तु कितनेक ही जो पर्वत, काशी, कन्नौज, पश्चिम, दक्षिण देशवाले थे, उन्होंने जैनों का मत स्वीकार नहीं किया था। वे जैनी वेद का अर्थ न जानकर बाहर की पोपलीला को भ्रान्ति से वेद पर मानकर, वेदों की भी निन्दा करने लगे। उसके पठनपाठन, यज्ञोपवीतादि और ब्रह्मचर्य्यादि नियमों को भी नाश किया। जहाँ जितने पुस्तक वेदादि के पाये, नष्ट किये। आर्य्यों पर बहुत-सी राजसत्ता भी चलाई, दुःख दिया। जब उनको भय, शङ्का न रही, तब अपने मतवाले गृहस्थ और साधुओं की प्रतिष्ठा और वेदमार्गियों का अपमान और पक्षपात से दण्ड भी देने लगे। और आप ऐश-आराम और घमण्ड में आ, फूलकर फिरने लगे। ऋषभदेव से लेके महावीर-पर्यन्त अपने तीर्थङ्करों की बड़ी-बड़ी मूर्त्तियाँ बनाकर पूजा करने लगे अर्थात् पाषाणादि मूर्त्तिपूजा की जड़ जैनियों से चली। परमेश्वर का मानना न्यून हुआ, पाषाणादि मूर्तिपूजा में लगे। ऐसा तीन सौ वर्ष पर्यन्त आर्यावर्त्त में जैनों का राज रहा। प्रायः आर्य लोग उनमें मिलकर शूद्रप्राय वेदार्थ-ज्ञान से शून्य हो गये थे। इस बात को अनुमान

से कोई अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हुए होंगे।

बाइस सौ वर्ष हुए कि एक 'शङ्कराचार्य' द्रविणदेशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़ कर सोचने लगे कि अहह! सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना, बड़ी ही हानि की बात हुई है, इनको हठाना चाहिये। शङ्कराचार्य्य शास्त्र तो पढ़े ही थे। परन्तु जैन मत के भी पुस्तक पढ़े थे और उनकी युक्ति भी बहुत प्रबल थी। उन्होंने विचारा कि इनको किस प्रकार हठावें? निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करने से ये लोग हठेंगे। ऐसा विचार कर उज्जैन में आये। वहाँ उस समय 'सुधन्वा' राजा था, जो जैनियों के ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढ़ा था। वहाँ जाकर वेद का उपदेश करने लगे और राजा से मिलकर कहा कि आप संस्कृत और जैनियों के भी ग्रन्थों को पढ़े हो, जैन मत को मानते हो, इसलिये मैं आपको कहता हूँ कि जैनियों के पण्डितों के साथ मेरा शास्त्रार्थ कराइये, इस प्रतिज्ञा पर—'जो हारे सो जीतनेवाले का मत स्वीकार करले और आप भी जीतनेवाले का मत स्वीकार कीजियेगा।'

यद्यपि सुधन्वा जैन मत में थे तथापि संस्कृत ग्रन्थ पढ़ने से उनकी आँख कुछ खुली थी। इससे उनके मन में अत्यन्त पशुता नहीं छाई थी क्योंकि जो विद्वान् होता है, वह सत्य और असत्य की परीक्षा करके, सत्य को मानता और असत्य को छोड़ देता है। जब तक सुधन्वा राजा को बड़ा विद्वान् उपदेशक नहीं मिला था, तब तक सन्देह में थे कि इनमें कौन-सा सत्य और कौन-सा असत्य है? जब शङ्कराचार्य्य की यह बात सुनी, बड़ी प्रसन्नता के साथ बोले कि हम शास्त्रार्थ कराके सत्याऽसत्य का निर्णय अवश्य करावेंगे। जैनियों के पण्डितों को दूर-दूर से बुलाकर सभा कराई। उसमें शङ्कराचार्य का वेदमत और जैनियों का वेदविरुद्ध मत था। अर्थात् शङ्कराचार्य्य का पक्ष वेदमत का स्थापन और जैनियों का खण्डन; जैनियों का अपने मत का स्थापन और वेद का खण्डन पक्ष था। शास्त्रार्थ कई दिनों तक हुआ। जैनियों का मत यह था कि—'सृष्टि का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं; यह जगत् और जीव अनादि हैं, इन दोनों की उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता।' इससे विरुद्ध शङ्कराचार्य्य

का मत था कि—'अनादि सिद्ध परमात्मा ही जगत् का कर्त्ता है; यह जगत् और जीव झूठा है; क्योंकि उसी परमेश्वर ने अपनी माया से जगत् बनाया; वही धारण और प्रलयकर्त्ता है; और यह जीव और प्रपञ्च स्वप्नवत् हैं; परमेश्वर आप ही सब रूप होकर लीला कर रहा है।'

बहुत दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। परन्तु अन्त में युक्ति और प्रमाण से जैनियों का मत खण्डित और शङ्कराचार्य्य का मत अखण्डित रहा। तब उन जैनियों के पण्डित और सुधन्वा राजा ने वेदमत का स्वीकार कर लिया, जैनमत को छोड़ दिया। पुनः बड़ा हल्ला हुआ और सुधन्वा ने अपने मित्र राजाओं को लिखकर शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ कराया। परन्तु जैन का पराजय समय होने से पराजित होते गये।

पश्चात् शङ्कराचार्य्य के सर्वत्र आर्यावर्त्त में घूमने का प्रबन्ध सुधन्वादि राजाओं ने कर दिया और उनकी रक्षा के लिये साथ नौकर-चाकर भी रख दिये। उसी समय से सबके यज्ञोपवीत होने लगे और वेदों का पठनपाठन भी चला। दस वर्ष के भीतर सर्वत्र आर्यावर्त्त में घूमकर जैनियों का खण्डन और वेदों का मण्डन किया। परन्तु शंकराचर्य्य के समय में 'जैन-विध्वंस' अर्थात् जितनी मूर्तियाँ जैनियों की टूटी हुई निकलती हैं, वे शङ्कराचार्य्य के समय में टूटी थीं। और जो विना टूटी निकलती हैं, वे जैनियों ने भूमि में गाड़ दी थीं कि तोड़ी न जायें। वे अब तक कहीं भूमि में से निकलती हैं।

शङ्कराचार्य्य के पूर्व शैवमत भी थोड़ा सा था, उसका भी खण्डन किया। वाममार्गी का खण्डन किया। उस समय इस देश में धन बहुत था और स्वदेशभक्ति भी थी। जैनियों के मन्दिर शङ्कराचार्य्य और सुधन्वा ने नहीं तुड़वाये थे क्योंकि उनमें वेदादि की पाठशाला करने की इच्छा थी। जब वेदमत का स्थापन हो चुका, और विद्या-प्रचार करने का विचार करते ही थे, उतने में दो जैन ऊपर से वेदमत और भीतर से कट्टर जैन थे, अर्थात् कपटमुनि थे, शंकराचार्य्य उन पर अति प्रसन्न थे, उन दोनों ने अवसर पाकर शंकराचार्य्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी भूख मन्द हो गई। पश्चात् शरीर में बहुत-से फोड़े-फुन्सी होकर छः महीने के भीतर शरीर छूट गया। तब सब निरुत्साहित हो गये और

जो विद्या का प्रचार होनेवाला था, वह भी न होने पाया।

जो-जो उन्होंने शारीरक-भाष्यादि बनाये थे, उनका प्रचार शंकराचार्य्य के शिष्य करने लगे। अर्थात् जो जैनियों के खण्डन के लिये 'ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म की एकता' कथन की थी, उसका उपदेश करने लगे। दक्षिण में शृङ्गेरी, पूर्व में भूगोवर्धन, उत्तर में जोशी और द्वारिका में सारदामठ बाँध कर शंकराचार्य के शिष्य महान्त बन कर और श्रीमान् होकर आनन्द करने लगे, क्योंकि शंकराचार्य के पश्चात् उनके शिष्यों की बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी।

अब इसमें विचार करना चाहिए कि जो 'जीव ब्रह्म की एकता, जगत् मिथ्या' शङ्कराचार्य्य का निज मत था, तो वह अच्छा मत नहीं। और जो जैनियों के खण्डन के लिये उस मत का स्वीकार किया हो, तो कुछ अच्छा है।

नवीन वेदान्तियों का मत ऐसा है—

प्रश्न—जगत् स्वप्नवत्, रज्जू में सर्प, सीप में चाँदी, मृगतृष्णिका में जल, गन्धर्वनगर, इन्द्रजालवत् यह संसार झूठा है। एक ब्रह्म ही सच्चा है।

सिद्धान्ती—'झूठा' तुम किसको कहते हो?

नवीन वेदान्ती—जो वस्तु न हो और प्रतीत होवे।

सिद्धान्ती—जो वस्तु ही नहीं, उसकी प्रतीति कैसे हो सकती है?

नवीन०—अध्यारोप से।

सिद्धान्ती—अध्यारोप किसको कहते हो?

नवीन०—'**वस्तुन्यवस्त्वारोपणमध्यासः**'

[तु०—सदानन्दविरचित वेदान्तसार खण्ड ६]

'**अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते**'।

[विद्यारण्यविरचित अनुभूतिप्रकाश अ० १। श्लो० १८]

पदार्थ कुछ और हो, उसमें अन्य वस्तु का आरोपण करना अध्यास, अध्यारोप; और उसका निराकरण करना अपवाद कहाता है। इन दोनों से प्रपञ्चरहित ब्रह्म में प्रपञ्चरूप जगत् विस्तार करते हैं।

सिद्धान्ती—तुम रज्जू को वस्तु और सर्प को अवस्तु मान कर इस भ्रमजाल में पड़े हो। क्या सर्प वस्तु नहीं है? जो कहो कि रज्जू में नहीं तो देशान्तर में और उसका संस्कारमात्र हृदय में है। फिर वह सर्प भी अवस्तु नहीं रहा। वैसे ही स्थाणु में पुरुष, सीप में चांदी आदि की व्यवस्था समझ लेना। और स्वप्न में भी जिनका भान होता है, वे देशान्तर में हैं और उनके संस्कार आत्मा में भी हैं। इसलिये वह स्वप्न भी वस्तु में अवस्तु के आरोपण के समान नहीं।

नवीन०—जो कभी न देखा, न सुना, जैसा कि अपना शिर कटा है और आप रोता है, जल की धारा ऊपर चली जाती है, जो कभी नहीं हुआ था, देखा जाता है, वह सत्य क्योंकर हो सके?

सिद्धान्ती—यह भी दृष्टान्त तुम्हारे पक्ष को सिद्ध नहीं करता, क्योंकि विना देखे सुने संस्कार नहीं होता। संस्कार के विना स्मृति और स्मृति के विना साक्षात् अनुभव नहीं होता। जब किसी से सुना वा देखा कि अमुक का शिर कटा और उसके भाई वा बाप आदि को लड़ाई में प्रत्यक्ष रोते देखा और फौहारे का जल ऊपर चढ़ते देखा वा सुना उसका संस्कार उसी के आत्मा में होता है। जब यह जागृत के पदार्थ से अलग होके देखता है तब अपने आत्मा में उन्हीं पदार्थों को, जिनको देखा वा सुना होता, देखता है। जब अपने ही में देखता है तब जानो अपना शिर कटा, आप रोता और ऊपर जाती जल की धारा को देखता है। यह भी वस्तु में अवस्तु के आरोपण के सदृश नहीं, किन्तु जैसे नक़्शा निकालनेवाले पूर्व दृष्ट, श्रुत वा किये हुओं को आत्मा में से निकालकर कागज पर लिख देते हैं अथवा प्रतिबिम्ब का उतारनेवाला बिम्ब को देख, आत्मा में आकृति को धर, बराबर लिख देता है।

हां! इतना है कि कभी-कभी स्वप्न में स्मरणयुक्त प्रतीति जैसा कि अपने अध्यापक को देखता है और कभी बहुत काल देखने और सुनने में अतीत ज्ञान को साक्षात्कार करता है, तब स्मरण नहीं रहता कि जो मैंने उस समय देखा, सुना वा किया था उसीको देखता, सुनता वा करता हूं। जैसा जागृत में स्मरण करता है, वैसा स्वप्न में नियमपूर्वक नहीं होता। देखो! जन्मान्ध को रूप का स्वप्न नहीं आता। इसलिये तुम्हारा अध्यास और आरोप का लक्षण झूठा है। और जो वेदान्ती लोग 'विवर्त्तवाद' अर्थात् रज्जू में सर्पादि के भान होने का दृष्टान्त, ब्रह्म में

जगत् के भान होने में देते हैं, वह भी ठीक नहीं।

नवीन०—अधिष्ठान के विना अध्यस्त प्रतीत नहीं होता। जैसे रज्जू न हो तो सर्प का भी भान नहीं हो सकता। जैसे रज्जू में सर्प्प तीन काल में नहीं है परन्तु अन्धकार और कुछ प्रकाश के मेल में अकस्मात् रज्जू को देखने से सर्प का भ्रम होकर भय से कँपता है। जब उसको दीप आदि से देख लेता है, उसी समय भ्रम और भय निवृत्त हो जाता है। वैसे ब्रह्म में जो जगत् की मिथ्या प्रतीति हुई है, उस की निवृत्ति और ब्रह्म की प्रतीति, जैसी कि सर्प की निवृत्ति और रज्जू की प्रतीति होती है।

सिद्धान्ती—इन वेदान्तियों से पूछना चाहिये कि ब्रह्म में जगत् का भान किसको हुआ?

नवीन०—जीव को।

सिद्धान्ती—जीव कहाँ से हुआ?

नवीन०—अज्ञान से।

सिद्धान्ती—अज्ञान कहां से हुआ और कहां रहता है?

नवीन०—अज्ञान अनादि और ब्रह्म में रहता है।

सिद्धान्ती—ब्रह्म में ब्रह्म का अज्ञान हुआ वा किसी अन्य का? और वह अज्ञान किसको हुआ?

नवीन०—चिदाभास को।

सिद्धान्ती—चिदाभास का स्वरूप क्या है?

नवीन०—ब्रह्म। ब्रह्म को ब्रह्म का अज्ञान अर्थात् अपने स्वरूप को आप ही भूल जाता है।

सिद्धान्ती—उसके भूलने में निमित्त क्या है?

नवीन०—अविद्या।

सिद्धान्ती—अविद्या सर्वव्यापी सर्वज्ञ का गुण है, वा अल्पज्ञ का?

नवीन०—अल्पज्ञ का।

सिद्धान्ती—तो तुम्हारे मत में विना एक अनन्त सर्वज्ञ चेतन के दूसरा कोई चेतन है वा नहीं? और अल्पज्ञ कहां से आया? हां, जो अल्पज्ञ चेतन ब्रह्म से भिन्न मानो तो ठीक है। जब एक ठिकाने ब्रह्म को अपने स्वरूप का अज्ञान हो तो सर्वत्र अज्ञान फैल जाये। जैसे शरीर में

फोड़े की पीड़ा सब शरीर के अवयवों को निकम्मा कर देती है, इसी प्रकार ब्रह्म भी एकदेश में अज्ञानी और क्लेशयुक्त हो तो सब ब्रह्म अज्ञानी और पीडा के अनुभवयुक्त हो जाय।

नवीन०—यह सब उपाधि का धर्म है, ब्रह्म का नहीं।

सिद्धान्ती—उपाधि जड़ है वा चेतन? और सत्य है वा असत्य?

नवीन०—अनिर्वचनीय है। अर्थात् जिसको जड़ वा चेतन, सत्य वा असत्य नहीं कह सकते।

सिद्धान्ती—यह तुम्हारा कहना **'वदतो व्याघातः'** के तुल्य है क्योंकि कहते हो अविद्या है जिसको जड़, चेतन, सत्, असत् नहीं कह सकते। यह ऐसी बात है कि जैसे सोने में पीतल मिला हो, उसको सर्राफ के पास परीक्षा करावे कि यह सोना है वा पीतल। तब यही कहेगा कि इसको हम न सोना न पीतल कह सकते हैं किन्तु इसमें दोनों धातु मिली हैं।

नवीन०—देखो! जैसे घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश और महदाकाशोपाधि अर्थात् घड़ा, घर और मेघ के होने से भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, वास्तव में महदाकाश ही है; ऐसे ही माया, अविद्या, समष्टि, व्यष्टि और अन्त:करणों की उपाधियों से ब्रह्म अज्ञानियों को पृथक्-पृथक् प्रतीत हो रहा है; वास्तव में एक ही है। देखो! अग्रिम प्रमाण में क्या कहा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

[कठ उ० वल्ली ५। मं० ९]॥

जैसे अग्नि लम्बे, चौड़े, गोल, छोटे, बड़े सब आकृतिवाले पदार्थों में व्यापक होकर तदाकार दीखता है और उनसे पृथक् है, वैसे सर्वव्यापक परमात्मा अन्त:करणों में व्यापक होके अन्त:करणाऽऽकार हो रहा है, परन्तु उनसे अलग है।

सिद्धान्ती—यह भी तुम्हारा कहना व्यर्थ है। क्योंकि जैसे घट, मठ, मेघों और आकाश को भिन्न मानते हो, वैसे कारणकार्य्यरूप जगत् और जीव को ब्रह्म से और ब्रह्म को इनसे भिन्न मान लो।

नवीन०—जैसा अग्नि सब में प्रविष्ट होकर देखने में तदाकार दीखता है, इसी प्रकार परमात्मा जड़ और जीव में व्यापक होकर जड़ और जीवाकारयुक्त अज्ञानियों को दीखता है। वास्तव में ब्रह्म न जड़ और न जीव है। जैसे सहस्र जल के कूंडे धरे हों, उनमें सूर्य्य के सहस्र प्रतिबिम्ब दीखते हैं, वस्तुतः सूर्य्य एक है। कूंडों के नष्ट होने से, जल के चलने वा फैलने से सूर्य्य न नष्ट होता, न चलता और न फैलता; इसी प्रकार अन्तःकरणों में ब्रह्म का आभास जिसको चिदाभास कहते हैं, पड़ा है। जब तक अन्तःकरण है, तभी तक जीव है। जब अन्तःकरण ज्ञान से नष्ट होता है, तब जीव ब्रह्मस्वरूप है, इस चिदाभास को अपने ब्रह्मस्वरूप का अज्ञान-कर्त्ता-भोक्ता, सुखी-दुःखी, पापी-पुण्यात्मा, जन्म-मरण अपने में आरोपित करता है, तब-तक संसार के बन्धनों से नहीं छूटता।

सिद्धान्ती—यह दृष्टान्त तुम्हारा व्यर्थ है। क्योंकि सूर्य आकारवाला, जल-कूंडे भी आकारवाले हैं। सूर्य्य जल-कूंडे से भिन्न और सूर्य से जल-कूंडे भिन्न हैं, तभी प्रतिबिम्ब पड़ता है। यदि निराकार होते तो उनका प्रतिबिम्ब कभी न होता। और जैसे परमेश्वर निराकार, सर्वत्र आकाशवत् व्यापक होने से ब्रह्म से कोई पदार्थ वा पदार्थों से ब्रह्म पृथक् नहीं हो सकता और व्याप्यव्यापक सम्बन्ध से एक भी नहीं हो सकते। अर्थात् अन्वयव्यतिरेकभाव से देखने से व्याप्यव्यापक मिले हुए और सदा पृथक् रहते हैं। जो एक हो तो अपने में व्याप्यव्यापकभाव सम्बन्ध कभी नहीं घट सकता। सो बृहदारण्यक के अन्तर्यामी ब्राह्मण [अ० ३। ब्रा० ७। कं० ३-२३] में स्पष्ट लिखा है। और ब्रह्म का आभास भी नहीं पड़ सकता, क्योंकि विना आकार के आभास का होना असम्भव है।

जो अन्तःकरणोपाधि से ब्रह्म को जीव मानते हो, सो तुम्हारी बात बालक के समान है, क्योंकि अन्तःकरण चलायमान, खण्ड-खण्ड और ब्रह्म अचल और अखण्ड है। यदि तुम ब्रह्म और जीव को पृथक्-पृथक् न मानोगे तो इसका उत्तर दीजिये कि जहाँ-जहाँ अन्तःकरण चलता जायेगा, वहाँ का ब्रह्म अज्ञानी और जिस-जिस देश को छोड़ेगा, वहाँ के ब्रह्म को ज्ञानी कर देवेगा वा नहीं? जैसे छाता प्रकाश के बीच

में जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ-वहाँ के प्रकाश को आवरणयुक्त और जहाँ-जहाँ से हठता है वहाँ-वहाँ का प्रकाश आवरणरहित कर देता है, वैसे ही अन्तःकरण ब्रह्म को क्षण-क्षण में ज्ञानी, अज्ञानी, बद्ध और मुक्त करता जायगा। अखण्ड ब्रह्म के एकदेश में आवरण का प्रभाव सर्वदेश में होने से सब ब्रह्म आज्ञानी हो जायगा, क्योंकि वह चेतन है।

और मथुरा में अन्तःकरणस्थ जिस ब्रह्म ने जो वस्तु देखी उसका स्मरण उसी अन्तःकरणस्थ से काशी में नहीं हो सकता। क्योंकि—

'अन्यदृष्टमन्यो न स्मरतीति न्यायात्'।

[योगदर्शन विभूतिपाद सूत्र १४ व्यासभाष्य]

और के देखे का स्मरण और को नहीं होता। जिस चिदाभास ने मथुरा में देखा वही चिदाभास काशी में नहीं रहता, किन्तु जो मथुरास्थ अन्तःकरण का प्रकाशक है, वह काशीस्थ ब्रह्म नहीं होता। जो ब्रह्म ही जीव है, पृथक् नहीं; तो सब जीव को सर्वज्ञ होना चाहिये। यदि ब्रह्म का प्रतिबिम्ब पृथक् है तो 'प्रत्यभिज्ञा' अर्थात् पूर्व दृष्ट, श्रुत का ज्ञान किसी को नहीं हो सकेगा। जो कहो कि ब्रह्म एक है इसलिये स्मरण होता है तो एक ठिकाने अज्ञान वा दुःख होने से सब ब्रह्म को अज्ञान वा दुःख हो जाना चाहिये। और ऐसे दृष्टान्तों से नित्य-शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वभाव ब्रह्म को तुमने अशुद्ध, अज्ञानी और बद्ध कर दिया है, और अखण्ड को खण्ड-खण्ड कर दिया।

नवीन०—निराकार का भी आभास होता है, जैसा कि दर्पण वा जलादि में आकाश का आभास पड़ता है। वह नीला वा किसी अन्य प्रकार गम्भीर गहरा दीखता है, वैसे ब्रह्म का भी सब अन्तःकरणों में आभास पड़ता है।

सिद्धान्ती—जब आकाश में रूप ही नहीं है तो उसको आँख से कोई भी नहीं देख सकता। जो पदार्थ दीखता ही नहीं, वह दर्पण और जलादि में कैसे दीखेगा? गहरा वा छिदरा साकार वस्तु दीखता है, निराकार नहीं।

नवीन०—तो फिर जो यह ऊपर नीला सा दीखता है, वही आदर्श वा जल में भान होता है, वह क्या पदार्थ है?

सिद्धान्ती—वह पृथिवी से उड़कर जल, पृथिवी और अग्नि के त्रसरेणु हैं। जहाँ से वर्षा होती है, वहाँ जल न हो तो वर्षा कहाँ से होवे? इसलिये जो दूर-दूर तम्बू के समान दीखता है, वह जल का चक्र है। जैसे कुहिर दूर से घनाकार दीखता है और निकट से छिदिरा और डेरे के समान भी दीखता है, वैसा आकाश में जल दीखता है।

नवीन०—क्या हमारे रज्जु, सर्प और स्वप्नादि के दृष्टान्त मिथ्या हैं?

सिद्धान्ती—नहीं। तुम्हारी समझ मिथ्या है, सो हमने पूर्व लिख दिया। भला यह तो कहो कि प्रथम अज्ञान किसको होता है?

नवीन०—ब्रह्म को।

सिद्धान्ती—ब्रह्म अल्पज्ञ है वा सर्वज्ञ?

नवीन०—न सर्वज्ञ और न अल्पज्ञ। क्योंकि सर्वज्ञता और अल्पज्ञता उपाधिसहित में होती है।

सिद्धान्ती—उपाधि से सहित कौन है?

नवीन०—ब्रह्म।

सिद्धान्ती—तो ब्रह्म ही सर्वज्ञ और अल्पज्ञ हुआ। तो तुमने सर्वज्ञ और अल्पज्ञ का निषेध क्यों किया था? जो कहो कि उपाधि कल्पित अर्थात् मिथ्या है तो 'कल्पक' अर्थात् कल्पना करने वाला कौन है?

नवीन०—जीव ब्रह्म है, वा अन्य?

सिद्धान्ती—अन्य है। क्योंकि जो ब्रह्मस्वरूप है तो जिसने मिथ्या कल्पना की, वह ब्रह्म ही नहीं हो सकता। जिसकी कल्पना मिथ्या है, वह सच्चा कब हो सकता है?

नवीन०—हम सत्य और असत्य को झूठ मानते हैं और वाणी से बोलना भी मिथ्या है।

सिद्धान्ती—जब तुम झूठ कहने और माननेवाले हो, तो झूठे क्यों नहीं?

नवीन०—रहो। झूठ और सच हमारे ही में कल्पित है और हम दोनों के साक्षी अधिष्ठान हैं।

सिद्धान्ती—जब तुम सत्य और झूठ के आधार हुए तो साहूकार

और चोर के सदृश तुम्हीं हुए। इससे तुम प्रामाणिक भी नहीं रहे। क्योंकि प्रामाणिक वह होता है, जो सर्वदा सत्य माने, सत्य बोले, सत्य करे; झूठ न माने, झूठ न बोले, झूठ न करे। जब तुम अपनी बात को आप ही झूठ करते हो तो तुम अनाप्त मिथ्यावादी हो।

नवीन०—अनादि माया जो कि ब्रह्म के आश्रय और ब्रह्म ही का आवरण करती है, उसको मानते हो, वा नहीं?

सिद्धान्ती—नहीं मानते। क्योंकि तुम माया का अर्थ ऐसा करते हो कि जो वस्तु न हो और भासे है, तो इस बात को वह मानेगा जिसके हृदय की आँख फूट गई हो। क्योंकि जो वस्तु नहीं, उसका भासमान होना सर्वथा असम्भव है, जैसा वन्ध्या के पुत्र का प्रतिबिम्ब कभी नहीं हो सकता। और यह '**सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः**' [प्रपा० ६। खं० ८। प्रवाक ४] इत्यादि छान्दोग्य उपनिषद् के वचनों से विरुद्ध कहते हो।

नवीन०—क्या तुम वसिष्ठ, शङ्कराचार्य आदि और निश्चलदास पर्य्यन्त से अधिक पण्डित हो? उनने जो लिखा है, सो विचार करके लिखा है, वे तुम से बड़े पण्डित थे।

सिद्धान्ती—तुमको क्या दीखता है?

नवीन०—हमको तो वसिष्ठ, शङ्कराचार्य और निश्चलदास आदि अधिक दीखते हैं।

सिद्धान्ती—तुम विद्वान् हो वा अविद्वान्?

नवीन०—हम भी कुछ विद्वान् हैं।

सिद्धान्ती—अच्छा तो आओ वसिष्ठ, शङ्कराचार्य आदि और निश्चलदास के पक्ष का हमारे सामने स्थापन करो, हम खण्डन करते हैं। जिसका पक्ष सिद्ध हो, वही बड़ा है। जो उनकी और तुम्हारी बात अखण्डनीय होती तो तुम उनकी युक्तियाँ लेकर हमारी बात को खण्डन क्यों न कर सकते? तब तुम्हारी और उनकी बात माननीय होवे। अनुमान है कि शङ्कराचार्य आदि ने तो जैनमत का खण्डन करने ही के लिये यह मत स्वीकार किया हो, क्योंकि देश-काल के अनुकूल अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये बहुत से स्वार्थी विद्वान् अपने आत्मा के ज्ञान से विरुद्ध भी कर लेते हैं। और जो इन बातों को अर्थात् जीव ईश्वर की

एकता, जगत् मिथ्या आदि व्यवहार सच्चा ही मानते थे, तो उनकी बात सच्ची नहीं हो सकती।

और निश्चलदास का पाण्डित्य देखो ऐसा है **'जीवो ब्रह्माऽभिन्नश्चेतनत्वात्'** उन्होंने 'वृत्तिप्रभाकर' [२।९] में जीव ब्रह्म की एकता के लिये अनुमान लिखा है कि 'चेतन होने से जीव ब्रह्म से अभिन्न है'। यह बहुत कम समझ पुरुष की बात के सदृश बात है। क्योंकि साधर्म्यमात्र से एक दूसरे के साथ एकता नहीं होती, वैधर्म्य भेदक होता है। जैसे कोई कहे कि **'पृथिवी जलाऽभिन्ना जडत्वात्'** 'जड़ के होने से पृथिवी जल से अभिन्न है।' जैसे यह वाक्य सङ्गत कभी नहीं हो सकता, वैसे निश्चलदासजी का भी लक्षण व्यर्थ है। क्योंकि जो अल्प, अल्पज्ञता और भ्रान्तिमत्त्वादि धर्म्म जीव में ब्रह्म से और सर्वगत, सर्वज्ञता और निर्भ्रान्तित्वादि वैधर्म्य ब्रह्म में जीव से विरुद्ध है, इससे जीव और ब्रह्म भिन्न-भिन्न हैं। जैसे गन्धवत्त्व, कठिनत्व आदि भूमि के धर्म, रसवत्त्व, द्रवत्वादि जल के धर्म से विरुद्ध होने से पृथिवी और जल एक नहीं, वैसे जीव और ब्रह्म के वैधर्म्य होने से जीव और ब्रह्म एक न कभी थे, न हैं और न कभी होंगे। इतने ही से निश्चलदासादि को समझ लीजिये कि उनमें कितना पाण्डित्य था।

और जिसने योगवासिष्ठ बनाया है, वह कोई आधुनिक वेदान्ती था; न वाल्मीकि, वसिष्ठजी, और न रामचन्द्र का बनाया वा कहा सुना है। क्योंकि वे सब वेदानुयायी थे, वेद से विरुद्ध न बना सकते और न कह सुन सकते थे।

प्रश्न—व्यासजी ने जो शारीरकसूत्र बनाये हैं, उनमें भी जीव ब्रह्म की एकता दीखती है? देखो—

सम्पद्याऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात्॥ १॥
ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः॥ २॥
चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलौमिः॥ ३॥
एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः॥ ४॥
अत एव चानन्याधिपतिः॥ ५॥

[वेदान्त अ० ४। पा० ५। सू० १, ५-७, ९]॥

अर्थ—जीव अपने स्व-स्वरूप को प्राप्त होकर प्रकट होता है जोकि पूर्व ब्रह्मस्वरूप था, क्योंकि 'स्व' शब्द से अपने ब्रह्मस्वरूप का ग्रहण होता है॥ १॥

'अयमात्मा अपहतपाप्मा' [तुलना छां० उप० ८।७।१] इत्यादि 'उपन्यास' ऐश्वर्यप्राप्ति पर्य्यन्त हेतुओं से जीव स्थित होता है, ऐसा जैमिनि आचार्य्य का मत है॥ २॥

और औडुलोमि आचार्य्य तदात्मकस्वरूप-निरूपणादि बृहदारण्यक [३।७।३-२३; ४।५।१३] के हेतुरूप के वचनों से चैतन्यमात्र स्वरूप से जीव मुक्ति में स्थित रहता है॥ ३॥

व्यासजी इन्हीं पूर्वोक्त उपन्यासादि ऐश्वर्यप्राप्तिरूप हेतुओं से जीव का ब्रह्मस्वरूप होने में अविरोध मानते हैं॥ ४॥

योगी ऐश्वर्यसहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर 'अन्य अधिपति से रहित' अर्थात् स्वयं आप अपना और सबका अधिपतिरूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है॥ ५॥

उत्तर—इन सूत्रों का अर्थ इस प्रकार का नहीं, किन्तु इनका यथार्थ यह है, सुनिये! जब तक जीव अपने स्वकीय शुद्धस्वरूप को प्राप्त, सब मलों से रहित होकर पवित्र नहीं होता, तब तक योग से ऐश्वर्य को प्राप्त होकर अपने अन्तर्यामी ब्रह्म को प्राप्त होके आनन्द में स्थित नहीं हो सकता॥ १॥

इसी प्रकार जब पापादिरहित ऐश्वर्ययुक्त योगी होता है तभी ब्रह्म के साथ मुक्ति के आनन्द को भोग सकता है, ऐसा जैमिनि आचार्य का मत है॥ २॥

जब अविद्यादि दोषों से छूट शुद्ध चैतन्यमात्र स्वरूप से जीव स्थिर होता है, तभी 'तदात्मकत्व' अर्थात् ब्रह्मस्वरूप के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होता है [ऐसा औडुलोमि आचार्य का मत है।]॥ ३॥

जब ब्रह्म के साथ ऐश्वर्य और शुद्ध विज्ञान को जीते ही जीवन्मुक्त होता है, तब अपने निर्मलज पूर्व स्वरूप को प्राप्त होकर आनन्दित होता है ऐसा व्यासमुनि का मत है॥ ४॥

जब योगी का सत्य संकल्प होता है, तब स्वयं परमेश्वर को प्राप्त

होकर मुक्तिसुख को पाता है। वहाँ स्वाधीन स्वतन्त्र रहता है। जैसा संसार में एक प्रधान, दूसरा अप्रधान होता है, वैसा मुक्ति में नही। किन्तु सब मुक्त जीव एक से रहते हैं॥५॥

जो ऐसा न हो तो—

नेतरोनुपपत्तेः॥१॥ [१।१।१६]

भेदव्यपदेशाच्च॥२॥ [१।१।१७]

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ॥३॥ [१।२।२२]

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति॥४॥ [१।१।१९]

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्॥५॥ [१।१।२०]

भेदव्यपदेशाच्चान्यः॥६॥ [१।१।२१]

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्॥७॥ [१।२।११]

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः॥८॥ [१।२।३]

अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्॥९॥ [१।२।१८]

शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते॥१०॥

—वेदान्तसूत्र [१।२।२०]॥

अर्थ—ब्रह्म से इतर जीव सृष्टिकर्त्ता नहीं है। क्योंकि इस अल्पज्ञ, अल्प सामर्थ्यवाले जीव में सृष्टिकर्तृत्व नहीं घट सकता, इससे जीव ब्रह्म नहीं॥१॥

'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' [तैत्तिरीय उप० ब्र० वल्ली अनु० ७] यह उपनिषद् का वचन है।

जीव और ब्रह्म भिन्न हैं, क्योंकि इन दोनों का भेद प्रतिपादन किया है। जो ऐसा न होता तो 'रस' अर्थात् आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होकर जीव आनन्दस्वरूप होता है, यह प्राप्तिविषय ब्रह्म और प्राप्त होनेवाले जीव का निरूपण नहीं घट सकता, इसलिये जीव और ब्रह्म एक नहीं॥२॥

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः॥

—मुण्डक उप० [२।१।२]

'दिव्य' शुद्ध, मूर्त्तिमत्त्वरहित, सबमें पूर्ण, बाहर-भीतर निरन्तर व्यापक, 'अज' जन्म-मरण-शरीरधारणादि रहित, श्वास-प्रश्वास, शरीर और मन के सम्बन्ध से रहित, प्रकाशस्वरूप इत्यादि परमात्मा के विशेषण; और 'अक्षर' नाशरहित प्रकृति से परे अर्थात् सूक्ष्म जीव, उससे भी परमेश्वर परे अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म है। प्रकृति और जीवों से ब्रह्म का भेद प्रतिपादनरूप हेतुओं से प्रकृति और जीवों से ब्रह्म भिन्न है॥३॥

इसी सर्वव्यापक ब्रह्म में जीव का योग वा जीव में ब्रह्म का योग प्रतिपादन करने से जीव और ब्रह्म भिन्न हैं, क्योंकि योग भिन्न पदार्थों का हुआ करता है॥४॥

इस ब्रह्म के अन्तर्यामी आदि धर्म कथन किये हैं और जीव के भीतर व्यापक होने से व्याप्य जीव व्यापक ब्रह्म से भिन्न है, क्योंकि व्याप्यव्यापक सम्बन्ध भी भेद में संघटित होता है॥५॥

जैसे परमात्मा जीव से भिन्नस्वरूप है, वैसे इन्द्रिय, अन्तःकरण, पृथिवी आदि भूत, दिशा, वायु, सूर्यादि दिव्यगुणों के योग से देवतावाच्य विद्वानों से भी परमात्मा भिन्न है॥६॥

'गुहां प्रविष्टौ सुकृतस्य लोके' [तुलना—कठोप० अ० १।३।१] इत्यादि उपनिषदों के वचनों से जीव और परमात्मा भिन्न हैं। वैसा ही उपनिषदों में बहुत ठिकाने दिखलाया है॥७॥

'शरीरे भवः शारीरः' शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं हैं, क्योंकि ब्रह्म के गुण कर्म, स्वभाव जीव में नहीं घटते॥८॥

(अधिदैव) सब दिव्य मन आदि इन्द्रियादि पदार्थों (अधिभूत) पृथिव्यादि भूत (अध्यात्म) सब जीवों में परमात्मा अन्तर्यामीरूप से स्थित है, क्योंकि उसी परमात्मा के व्यापकत्वादि धर्म सर्वत्र उपनिषदों में व्याख्यात हैं॥९॥

शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है, क्योंकि ब्रह्म से जीव का भेद स्वरूप से सिद्ध है॥१०॥

इत्यादि शारीरक सूत्रों से भी स्वरूप से ब्रह्म और जीव का भेद सिद्ध है।

वैसे ही वेदान्तियों का उपक्रम और उपसंहार भी नहीं घट सकता, क्योंकि 'उपक्रम' अर्थात् आरम्भ ब्रह्म से और 'उपसंहार' अर्थात् प्रलय भी ब्रह्म ही में करते हैं। जब दूसरा कोई वस्तु नहीं मानते तो उत्पत्ति

और प्रलय भी ब्रह्म के धर्म हो जाते हैं। और उत्पत्ति विनाशरहित ब्रह्म का प्रतिपादन वेदादि सत्यशास्त्रों में किया है, वह नवीन वेदान्तियों पर कोप करेगा। क्योंकि निर्विकार, अपरिणामी, शुद्ध, सनातन, निर्भ्रान्तत्वादि विशेषणयुक्त ब्रह्म में विकार, उत्पत्ति और अज्ञान आदि का सम्भव किसी प्रकार नहीं हो सकता। तथा उपसंहार (प्रलय) के होने पर भी ब्रह्म, कारणात्मक जड़ और जीव बराबर बने रहते हैं। इसलिये उपक्रम और उपसंहार भी इन वेदान्तियों का ठीक नहीं है। इसी प्रकार की इन नवीन वेदान्तियों की कल्पना झूठी है। ऐसी अन्य बहुत सी अशुद्ध बातें हैं कि जो शास्त्र और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध हैं।

इसके पश्चात् कुछ जैनियों और कुछ शङ्कराचार्य्य के अनुयायी लोगों के उपदेश के संस्कार आर्यावर्त्त में फैले थे और आपस में खण्डन-मण्डन भी चलता था। शङ्कराचार्य्य के तीन सौ वर्ष के पश्चात् उज्जैन नगरी में विक्रमादित्य राजा कुछ प्रतापी हुआ, जिसने सब राजाओं के मध्य प्रवृत्त हुई लड़ाई को मिटा कर शान्ति स्थापन की। तत्पश्चात् भर्तृहरि राजा काव्यादि-शास्त्र और अन्य में भी कुछ-कुछ विद्वान् हुआ, उसने वैराग्यवान् होकर राज्य को छोड़ दिया। विक्रमादित्य के पांच सौ वर्ष के पश्चात् राजा भोज हुआ। उसने थोड़ा सा व्याकरण और काव्यालङ्कारादि का इतना प्रचार किया कि जिसके राज्य में कालिदास बकरी चरानेवाला भी 'रघुवंश' काव्य का कर्त्ता हुआ। राजा 'भोज' के पास जो कोई अच्छा श्लोक बना कर ले जाता था उसको बहुत-सा धन देते और प्रतिष्ठा करते थे। उसके पश्चात् राजाओं और श्रीमानों ने पढ़ना ही छोड़ दिया।

यद्यपि शङ्कराचार्यजी के पूर्व, वाममार्गियों के पश्चात् शैव आदि सम्प्रदायस्थ मतवादी भी हुए थे, परन्तु उनका बहुत-सा बल नहीं हुआ था। महाराजे विक्रमादित्य से लेके शैवों का बल बढ़ता आया। शैवों में पाशुपतादि बहुत सी शाखा हुई थीं, जैसे वाममार्गियों में दश महाविद्यादि की शाखा हैं। लोगों ने शङ्कराचार्य को शिव का अवतार ठहराया। उनके अनुयायी संन्यासी भी शैवमत में प्रवृत्त हो गये और वाममार्गियों को भी मिलते रहे। वाममार्गी—'देवी' जो शिव की पत्नी है उसके उपासक,

और शैव 'महादेव' के उपासक हुए। ये दोनों रुद्राक्ष और भस्म अद्यावधि धारण करते हैं, परन्तु जितने वाममार्गी वेदविरोधी हैं, उतने शैव वेदविरोधी नहीं है। इन लोगों ने—

धिग् धिक् कपालं भस्मरुद्राक्षविहीनम्॥ १॥
रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे,
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलगतान् द्वादशान्द्वादशैव।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिः पृथगिति गदितमेकमेवं शिखायाम्,
वक्षस्यष्टाऽधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः॥ २॥

[तुलना शिवपुराण विद्येश्वर संहिता १। अ० २५। श्लो० ३७-३८]॥

इत्यादि बहुत प्रकार के श्लोक बनाये और कहने लगे कि जिसके कपाल में भस्म और कण्ठ में रुद्राक्ष नहीं है, उसको धिक्कार है। '**तं त्यजेदन्त्यजं यथा**' [तुलना शिवपुराण विद्येश्वर संहिता १। अ० २३। श्लो० १३] उसको चाण्डाल के तुल्य त्याग करना चाहिये॥ १॥

जो कण्ठ में ३२, शिर में ४०, छः-छः कानों में, कर में बारह-बारह, भुजा में सोलह-सोलह, शिखा में एक और हृदय में एक सौ आठ रुद्राक्ष धारण करता है, वह साक्षात् महादेव के सदृश है॥ २॥ ऐसा ही शाक्त भी मानते हैं।

पश्चात् इन वाममार्गी और शैवों ने सम्मति करके भग-लिङ्ग का स्थापन किया, जिसको जलाधारी और लिङ्ग कहते हैं और उसकी पूजा करने लगे। उन निर्लज्जों को लज्जा भी न आई कि यह पामरपन का काम हम क्यों करते हैं? किसी कवि ने कहा है कि '**स्वार्थी दोषं न पश्यति**' [चाणक्यनीति ६।८] स्वार्थी लोग अपने काम-सिद्धि करने में दुष्ट कामों को भी श्रेष्ठ मान, दोष को नहीं देखते हैं। उसी पाषाणादि मूर्त्ति और भग-लिङ्ग की पूजा ही में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मानने लगे।

जब राजा भोज के पश्चात् जैनी लोग अपने-अपने मन्दिरों में मूर्त्तिस्थापन करने और दर्शन को आने-जाने लगे, तब तो इन पोपों के चेले भी जैनमन्दिर में जाने-आने लगे और उधर पश्चिम में कुछ दूसरों

के मत और यवन लोग भी आर्य्यावर्त्त में आने-जाने लगे। तब पोपों ने यह श्लोक बनाया—

न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि।
हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्॥

[तुलना—भविष्यपुराण प्रतिसर्ग पर्व ३। खं० ३। अध्याय २८। श्लो० ५३]

चाहे कितना ही दुःख हो, प्राण कण्ठगत अर्थात् मृत्यु का भी समय आवे, तो भी म्लेच्छ अर्थात् यवनों की भाषा मुख से न बोलनी और उन्मत्त हाथी मारने को दौड़ा आता हो, जैन के मन्दिर में जाने से बचता हो तो भी जैन के मन्दिर में प्रवेश न करे। किन्तु जैन मन्दिर में प्रवेश कर बचने से, हाथी के सामने जाकर मरना उससे अच्छा है।

ऐसे-ऐसे अपने चेलों को उपदेश करने लगे। जब उनसे कोई प्रमाण पूछता था कि तुम्हारे मत में किसी माननीय ग्रन्थ का भी प्रमाण है? तो कहते थे कि हाँ है। जब वे पूछते थे कि दिखलाओ? तब मार्कण्डेय पुराणादि के वचन पढ सुनाते थे जैसा कि दुर्गापाठ में देवी का वर्णन लिखा है।

राजा भोज के राज्य में व्यासजी के नाम से मार्कण्डेय और शिवपुराण किसी ने बना कर खड़ा किया था, उसका समाचार राजा भोज को होने से उन पण्डितों को हस्तच्छेदनादि दण्ड दिया और उनसे कहा कि जो कोई काव्यादि ग्रन्थ बनावे तो अपने नाम से बनावे, ऋषि-मुनियों के नाम से नहीं। यह बात '**राजा भोज का बनाया संजीवनी नामक इतिहास**' में लिखी है कि जो ग्वालियर राज्य के 'भिंड' नामक नगर के तिवाड़ी ब्राह्मणों के घर में है जिसको लखुना के रावसाहेब और उनके गुमाश्ते रामदयाल चौबेजी ने अपनी आँख से देखा है, उसमें स्पष्ट लिखा है कि व्यासजी ने चार सहस्र चार सौ और उनके शिष्यों ने पांच सहस्र छः सौ अर्थात् दस सहस्र श्लोकों के प्रमाण 'भारत' बनाया था। वह महाराजे विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्र, महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिता के समय में पच्चीस और मेरी आधी उमर में तीस सहस्र श्लोकयुक्त 'महाभारत' का पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता

चला तो महाभारत का पुस्तक एक ऊंट का बोझ हो जायगा और ऋषि-मुनियों के नाम से पुराणादि ग्रन्थ बनावेंगे तो आर्यावर्त्तीय लोग भ्रमजाल में पड़ के वैदिकधर्मविहीन होकर भ्रष्ट हो जायेंगे। इससे विदित होता है कि राजा भोज को कुछ-कुछ वेदों का संस्कार था। इनके भोजप्रबन्ध में लिखा है कि—

घट्यैकया क्रोशदशैकमश्वः सुकृत्रिमो गच्छति चारुगत्या।
वायुं ददाति व्यजनं सुपुष्कलं विना मनुष्येण चलत्यजस्रम्॥

राजा भोज के राज्य में और पास ऐसे शिल्पीलोग थे कि जिन्होंने घोड़े के आकार एक यान कलायन्त्रयुक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घड़ी में ग्यारह कोश और एक घण्टे में साढ़े सत्ताईस कोश जाता था। वह भूमि और अन्तरिक्ष में भी चलता था। और दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि विना मनुष्य के चलाये कलायन्त्र के बल से नित्य चला करता और पुष्कल वायु देता था। जो ये दोनों पदार्थ आज तक बने रहते तो यूरोपियन इतने अभिमान में न चढ़ जाते।

जब पोपजी अपने चेलों को जैनियों से रोकने लगे तो भी मन्दिरों में जाने से न रुक सके और जैनियों की कथा में भी लोग जाने लगे। जैनियों के पोप इन पुराणी पोपों के चेलों को बहकाने लगे। तब पुराणी पोपों ने विचारा कि इसका कोई उपाय करना चाहिये, नहीं तो अपने चेले जैनी हो जायेंगे। पश्चात् पोपों ने यही सम्मति की कि जैनियों के सदृश अपने भी अवतार, मन्दिर, मूर्त्ति और कथा के पुस्तक बनावें। इन लोगों ने जैनियों के चौबीस तीर्थङ्करों के सदृश चौबीस अवतार, मन्दिर और मूर्त्तियाँ बनाईं और जैसे जैनियों के आदि और उत्तर-पुराणादि हैं वैसे अठारह पुराण बनाने लगे।

राजा भोज के डेढ़ सौ वर्ष के पश्चात् वैष्णवमत का आरम्भ हुआ। एक शठकोप नामक कञ्जरवर्ण में उत्पन्न हुआ था, उससे थोड़ा सा चला। उसके पश्चात् मुनिवाहन भंगी कुलोत्पन्न और तीसरा यावनाचार्य्य यवनकुलोत्पन्न आचार्य्य हुआ। तत्पश्चात् ब्राह्मण कुलज चौथा रामानुज हुआ, उनने अपना मत फैलाया।

शैवों ने शिवपुराणादि, शाक्तों ने देवीभागवतादि, वैष्णवों ने

विष्णुपुराणादि बनाये। उनमें अपना नाम इसलिये नहीं धरा कि हमारे नाम से बनेंगे तो कोई प्रमाण न करेगा। इसलिये व्यास आदि ऋषि-मुनियों के नाम धरके पुराण बनाये। नाम भी इनका वास्तव में नवीन रखना चाहिये था, परन्तु जैसे कोई दरिद्र अपने बेटे का नाम महाराजाधिराज और आधुनिक पदार्थ का नाम सनातन रख दे तो क्या आश्चर्य है? अब इनके आपस के जैसे झगड़े हैं, वैसे ही पुराणों में भी धरे हैं।

देखो! देवीभागवत में 'श्री' नामा एक देवी स्त्री जो श्रीपुर की स्वामिनी लिखी है, उसी ने सब जगत् को बनाया और ब्रह्मा, विष्णु, महादेव को भी उसी ने रचा है। जब उस देवी की इच्छा हुई तब उसने अपना हाथ घिसा। उससे हाथ में छाला हुआ। उसमें से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उससे देवी ने कहा कि तू मुझसे विवाह कर। ब्रह्मा ने कहा कि तू मेरी माता लगती है, मैं तुझसे विवाह नहीं कर सकता। माता को क्रोध चढ़ा, लड़के को भस्म कर दिया और फिर हाथ घिसके उसी प्रकार दूसरा लड़का उत्पन्न करके उसका नाम विष्णु रक्खा। उससे भी उसी प्रकार कहा। उसने न माना, उसको भी भस्म कर दिया। पुनः उसी प्रकार तीसरे लड़के को उत्पन्न करा। उसका नाम महादेव रक्खा और उससे कहा कि तू मुझ से विवाह कर। महादेव बोला कि मैं तुझसे विवाह नहीं कर सकता, तू दूसरा स्त्री का शरीर धारण कर। वैसा ही देवी ने किया। तब महादेव बोला कि यह दो ठिकाने राख क्या पड़ी है? देवी ने कहा कि ये दोनों तेरे भाई हैं, इन्होंने मेरी आज्ञा न मानी, इसलिये भस्म कर दिये। महादेव ने कहा कि मैं अकेला क्या करूँगा, इनको जिला दे और दो स्त्री और उत्पन्न कर, तीनों का विवाह तीनों से होगा। ऐसा ही देवी ने किया। फिर तीनों का तीनों के साथ विवाह हुआ, वाहरे! माता से विवाह न किया और बहिन से कर लिया! क्या इसी को उचित समझना चाहिये?

पश्चात् इन्द्रादि को उत्पन्न किया। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र इनको पालकी के उठानेवाले कहार बनाया, इत्यादि गपोड़े लम्बे-चौड़े मनमाने लिखे हैं। कोई उनसे पूछे कि उस देवी का शरीर और उस श्रीपुर का बनानेवाला और देवी का पिता-माता कौन थे? जो कहो कि

देवी अनादि है तो जो संयोगजन्य वस्तु है, वह अनादि कभी नहीं हो सकता। जो माता-पुत्र के विवाह करने में डरे तो भाई-बहिन के विवाह में कौन सी अच्छी बात निकलती है? जैसी इस देवीभागवत में महादेव, विष्णु और ब्रह्मादि की क्षुद्रता और देवी की बड़ाई लिखी है, इसी प्रकार शिवपुराण में देवी आदि की बहुत क्षुद्रता लिखी है। अर्थात् ये सब महादेव के दास और महादेव सब का ईश्वर है। जो 'रुद्राक्ष' अर्थात् एक वृक्ष के फल की गोठली और राख धारण करने से मुक्ति मानते हैं, तो राख में लोटनेहारे गदहा आदि पशु और घुंघुंची आदि के धारण करने वाले भील, कञ्जर आदि मुक्ति को जावें और सूअर, कुत्ते, गधा आदि पशु राख में लोटनेवालों की मुक्ति क्यों नहीं होती?

प्रश्न—कालाग्निरुद्रोपनिषद् में भस्म लगाने का विधान लिखा है। वह क्या झूठा है? और **'त्र्यायुषं जमदग्नेः०'** —यजुर्वेद [३।६२] इत्यादि वेदमन्त्रों से भी भस्म धारण का विधान और पुराणों में रुद्र की आँख के अश्रुपात से जो वृक्ष हुआ उसी का नाम रुद्राक्ष है। इसीलिये उसके धारण में पुण्य लिखा है। एक भी रुद्राक्ष धारण करे, तो सब पापों से छूट स्वर्ग को जाय। यमराज और नरक का डर न रहै।

उत्तर—कालाग्निरुद्रोपनिषद् किसी 'रखोड़िया' मनुष्य अर्थात् राख धारण करने वाले ने बनाई है। क्योंकि **'यास्य प्रथमा रेखा सा भूर्लोकः'** इत्यादि वचन उसमें अनर्थक हैं। जो प्रतिदिन हाथ से बनाई रेखा है, वह भूलोक वा इसका वाचक कैसे हो सकती हैं? और जो—

त्र्यायुषं जमदग्नेः। —यजुः [३।६२]

इत्यादि मन्त्र हैं, वे भस्म वा त्रिपुण्ड्र धारण के वाची नहीं किन्तु

चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिः

—शतपथ [८।१।२।३]

हे परमेश्वर! मेरे नेत्र की ज्योति (त्र्यायुषम्) तिगुणी अर्थात् तीन सौ वर्ष पर्यन्त रहै और मैं भी ऐसे धर्म के काम करूं कि जिससे दृष्टि-नाश न हो।

भला यह कितनी बड़ी मूर्खता की बात है कि आँख के अश्रुपात से कभी वृक्ष उत्पन्न होता है? क्या परमेश्वर के सृष्टिक्रम को कोई

अन्यथा कर सकता है? जैसा जिस वृक्ष का बीज परमात्मा ने रचा है, उसी से वह वृक्ष उत्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं। इससे जितना रुद्राक्ष, भस्म, तुलसी, कमलाक्ष, घास, चन्दन आदि को कण्ठ में धारण करना है, वह सब जंगली पशुवत् मनुष्य का काम है। ऐसे वाममार्गी और शैव बहुत मिथ्याचारी, विरोधी और कर्त्तव्य कर्म के त्यागी होते हैं। उनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष है, वह इन बातों का विश्वास न करके, अच्छे कर्म करता है। जो रुद्राक्ष भस्म-धारण से यमराज के दूत डरते हैं, तो पुलिस के सिपाही भी डरते होंगे! जब रुद्राक्ष भस्म-धारण करने वालों से कुत्ता, सिंह, सर्प्प, बिच्छू, मक्खी और मच्छर आदि भी नहीं डरते, तो न्यायाधीश के गण क्यों डरेंगे?

प्रश्न—वाममार्गी और शैव तो अच्छे नहीं, परन्तु वैष्णव तो अच्छे हैं?

उत्तर—ये भी वेदविरोधी होने से उनसे भी अधिक बुरे हैं।

प्रश्न—'नम॑स्ते रुद्र म॒न्यवे॑' [यजुः १६।१], **'शिवाय च शिवतराय च'** [यजुः १६।४१], **'वै॒ष्ण॒वम॑सि॒'** [यजुः ५।२१], **'वाम॒नाय॑ च॒'** [यजुः १६।३०], **'ग॒णानां॑ त्वा ग॒णप॑तिꣳ हवामहे'** [यजुः १६।१९], **'भग॑वती॒ भूयाः'** [अथर्व० ९।१०।२०] **'सूर्य आ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च'** [यजुः १३।४६]॥

इत्यादि वेद प्रमाणों से शैवादि मत सिद्ध होते हैं, पुनः क्यों खण्डन करते हो?

उत्तर—इन वचनों से शैवादि सम्प्रदाय सिद्ध नहीं होते, क्योंकि 'रुद्र' परमेश्वर, प्राणादि वायु, जीव, अग्नि आदि का नाम है। जो क्रोधकर्त्ता रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलानेवाले परमात्मा को नमस्कार करना, प्राण और जाठराग्नि को अन्न देना।

नम इति अन्ननाम। —निघण्टु [२।७]

जो मङ्गलकारी सब संसार का अत्यन्त कल्याण करनेवाला है, उस परमात्मा को नमस्कार करना चाहिये। **'शिवस्य परमेश्वरस्यायं भक्तः शैवः'**। **'विष्णोः परमात्मनोऽयं भक्तो वैष्णवः'**। **'गणपतेः सकलजगत्स्वामिनोऽयं सेवको गाणपतः'**। **'भगवत्या वाण्या अयं**

सेवको भागवतः'। **'सूर्यस्य चराचरात्मनोऽयं सेवकः सौरः'** ये सब रुद्र, शिव, विष्णु, गणपति, सूर्यादि परमेश्वर के और भगवती सत्यभाषणयुक्त वाणी का नाम है। इसमें विना समझे ऐसा झगड़ा मचाया है, जैसे—

एक किसी वैरागी के दो चेले थे। वे गुरु के पग दाबा करते थे। एक ने दक्षिण पग और दूसरे ने बायें पग की सेवा करना बाँट लिया था। एक दिन एक चेला कहीं गया था और एक अपने सेव्य पग की सेवा कर रहा था। इतने में गुरु ने करवट फेरा, तो उसके पग पर दूसरे गुरुभाई का सेव्य पग पड़ा। उसने ले डण्डा पग पर धर मारा। गुरु ने कहा कि अरे दुष्ट! यह क्या किया? चेला बोला—मेरे पग के ऊपर यह पग क्यों चढ़ा? इतने में दूसरा चेला आया। वह भी सेवा करने लगा। देखा कि यह पग सूज गया। गुरु से पूछा कि यह मेरे सेव्य पग में क्या हुआ? गुरु ने सब वृत्तान्त सुना दिया। वह भी मूर्ख न बोला न चाला। चुपचाप डण्डा उठा कर बड़े बल से दूसरे पग में मारा। गुरु पुकारता रहा। फिर दोनों चेले डण्डे लेके गुरु के पग को पीटने लगे। बड़ी पुकार मची। तब किसी बुद्धिमान् पुरुष ने आके छुड़ाया। उन दोनों मूर्खों को उपदेश किया "देखो! ये दोनों पग तुम्हारे गुरु के हैं। दोनों की सेवा करने से उसी को सुख और दुःख देने से उसी एक को दुःख होता है।"

जैसे एक गुरु की सेवा में चेलाओं ने लीला की, वैसे हीन, पामर, महामूर्ख, सम्प्रदायी लोगों ने—परमेश्वर के विष्णु रुद्रादि सब नाम हैं, जैसा कि प्रथम समुल्लास में लिख आये हैं, उनको न जानकर शाक्त, शैव और वैष्णवादि परस्पर एक दूसरे के नाम की निन्दा करते है।

अब देखिये चक्राङ्कित वैष्णवों की अद्भुत माया—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम माला मन्त्रस्तथैव च।
अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्तहेतवः॥ १॥

[भरद्वाज संहिता परिशिष्ट, अ० २।२॥ रामानुजपटलपद्धति]

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते। इति श्रुतेः॥

ऋ० ९.८३.१

अर्थात् (तापः) शंख, चक्र, गदा और पद्म के चिह्नों को अग्नि में तपा, भुजा के मूल में दाग देकर, दूध के पात्र में बुझाते हैं, फिर कोई-कोई उस दूध को भी पी लेते हैं, अर्थात् उसमें कुछ मनुष्य के शरीर के मांस का भी अंश आता होगा। ऐसे कर्मों से परमेश्वर को प्राप्त होने की आशा करते हैं और कहते हैं कि विना शंख, चक्रादि से शरीर तपाये जीव परमेश्वर को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वह (आमः) अर्थात् कच्चा है। और जैसे राज्य के चपरास आदि चिह्न के होने से राजपुरुष जान, उससे सब लोग डरते हैं, वैसे ही विष्णु के चक्रादि आयुधों के चिह्न देखकर यम और यम के गण डरते हैं, और कहते हैं कि—

दोहा— **बाना बड़ा दयाल का, तिलक छाप अरु माल।**
यम डरपै कालू कहे, भय माने भूपाल॥

[भक्तमाल निष्ठा ६]

भगवान् का बाना बड़ा है। तिलक, छाप और माला धारण करना बड़ा है। जिससे यमराज और राजा भी डरता है। (पुण्ड्रम्) त्रिशूल के सदृश ललाट में चित्र निकालना, (नाम) नारायणदास, विष्णुदास दासशब्दान्त नाम, कमलगट्टे आदि की माला और पांचवा (मन्त्र) अर्थात्—

ओं नमो नारायणाय॥ १॥

[पद्मपुराण भाग ६। उत्तर खण्ड अ० ७२। श्लोक० ११७]

यह इन्होंने साधारण मनुष्यों के लिये। दूसरा—

श्रीमन्नारायणचरणं शरणं प्रपद्ये॥ २॥

श्रीमते नारायणाय नमः॥ ३॥ [भक्तमाल]

इत्यादि मन्त्र धनाढ्य और माननीयों के लिये। क्योंकि यह भी एक दुकान ठहरी! जैसा मुख वैसा तिलक! इन पाँच संस्कारों को चक्राङ्कित मुक्ति के हेतु मानते हैं।

इन मन्त्रों का अर्थ—मैं नारायण को नमस्कार करता हूं॥ १॥

और मैं लक्ष्मीयुक्त नारायण के चरणारविन्द के शरण को प्राप्त होता हूं॥ २॥

और श्रीयुत नारायण को नमस्कार करता हूं अर्थात् जो शोभायुक्त

नारायण है, उसको मेरा नमस्कार होवे॥ ३॥

जैसे वाममार्गी पाँच मकार मानते हैं, वैसे चक्राङ्कित पाँच संस्कार मानते हैं जो वेद का वचन लिखा है, उसका इस प्रकार का पाठ और अर्थ है—

पवित्रं ते वितंतं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत॥ १॥
तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे॥ २॥

—ऋ० म० ९। सू० ८३। मन्त्र १, २॥

हे ब्रह्माण्ड और वेदों के पालन करने वाले प्रभु सर्वसामर्थ्ययुक्त सर्वशक्तिमान्! आपने अपनी व्याप्ति से संसार के सब अवयवों को व्याप्त कर रक्खा है। उस आपका जो व्यापक पवित्र स्वरूप है उसको ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण, शम, दम, योगाभ्यास, जितेन्द्रिय, सत्सङ्गादि तपश्चर्य्या से रहित जो अपरिपक्व आत्मा अन्तःकरणयुक्त है, वह उस तेरे स्वरूप को प्राप्त नहीं होता और जो पूर्वोक्त तप से शुद्ध हैं, वे ही इस का आचरण करते हुए, उस तेरे शुद्धस्वरूप को अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं॥ १॥

जो प्रकाशरूप परमेश्वर की सृष्टि में विस्तृत पवित्राचरण रूप तप करते हैं, वे ही परमात्मा को प्राप्त होने में योग्य होते हैं॥ २॥

अब विचार कीजिये कि रामानुजीयादि लोग इस मन्त्र से 'चक्राङ्कित' होना क्योंकर निकालते हैं? वे विद्वान् थे वा अविद्वान्? जो विद्वान् होते तो ऐसा असम्भावित अर्थ इस मन्त्र का क्यों करते? क्योंकि इस मन्त्र में '**अतप्ततनूः**' शब्द है किन्तु '**अतप्तभुजैकदेशः**' शब्द नहीं। जो '**अतप्ततनूः**' यह नखशिखाग्रपर्यंत समुदाय अर्थ है, इस प्रमाण करके अग्नि ही से तपाना चक्राङ्कित लोग स्वीकार करें, तो अपने-अपने शरीर को भाड़ में झोंकके सब शरीर को जला लेवें, तो भी इस मन्त्र के अर्थ से विरुद्ध है, क्योंकि इस मन्त्र में सत्यभाषणादि पवित्र कर्म करना तप लिया है।

ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः॥

—तैत्तिरीय० [शिक्षावल्ली अनु० ९। तैत्ति० आरण्यक १०।८]

इत्यादि तप कहाता है। अर्थात् (ऋतं तपः) यथार्थ शुद्धभाव, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अन्यायाचरण में जाने से रोक रखना अर्थात् शरीर, इन्द्रिय और मन से शुभ कर्मों का आचरण करना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना-पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कर्मों का नाम '**तप**' है। धातु को तपाके चमड़ी को जलाना तप नहीं कहाता।

देखो! चक्राङ्कित लोग अपने को बड़े वैष्णव मानते हैं, परन्तु अपनी परम्परा और कुकर्म की ओर ध्यान नहीं देते कि प्रथम इनका मूलपुरुष 'शठकोप' हुआ कि जो चक्राङ्कितों ही के ग्रन्थों में और भक्तमाल ग्रन्थ जो नाभा डूम ने बनाया है, उनमें—

विक्रीय शूर्पं विचचार योगी॥ [दिव्यसूरिचरितकाव्य सर्ग २]

इत्यादि वचन लिखे हैं। अर्थात् शठकोप योगी सूप को बना, बेचकर, विचरता था अर्थात् कंजर जाति में उत्पन्न हुआ था। जब उसने ब्राह्मणों से पढ़ना वा सुनना चाहा होगा, तब ब्राह्मणों ने तिरस्कार किया होगा। उसने ब्राह्मणों के विरुद्ध सम्प्रदाय तिलक, चक्राङ्क आदि चलाये होंगे। उसका चेला 'मुनिवाहन' जो कि चाण्डाल वर्ण में उत्पन्न हुआ था। उसका 'यावनाचार्य' जो यवनकुलोत्पन्न था, जिसको नाम बदला के कोई-कोई 'यामुनाचार्य' भी कहते हैं।

उनके पश्चात् 'रामानुज' ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होकर चक्राङ्कित हुआ। उसके पूर्व कुछ भाषा के ग्रन्थ बनाते थे। रामानुज ने कुछ संस्कृत पढ़के संस्कृत में श्लोकबद्ध ग्रन्थ और शारीरकसूत्र और उपनिषदों की टीका शङ्कराचार्य की टीका से विरुद्ध बनाये और शङ्कराचार्य की बहुत सी निन्दा की। जैसा शङ्कराचार्य का मत जीव ब्रह्म की एकता, जगत् प्रपञ्च, सब मिथ्या मायारूप अनित्य है। इससे विरुद्ध रामानुज का—जीव और ब्रह्म और माया तीनों नित्य हैं। शङ्कराचार्य का अद्वैत अर्थात् जीव ब्रह्म एक, ब्रह्म एक ही है, दूसरा कोई वस्तु वास्तविक नहीं है। यहाँ शङ्कराचार्य का मत ब्रह्म से अतिरिक्त जीव और कारण वस्तु का न मानना, अच्छा नहीं। रामानुज का इस अंश में, जो कि विशिष्टाद्वैत-जीव और मायासहित परमेश्वर एक है। भला, तीन का मानना और

अद्वैत का कहना सर्वथा व्यर्थ है। जीव को सर्वथा ईश्वर के आधीन परतन्त्र मानना, कण्ठी, तिलक, माला मूर्त्तिपूजादि पाखण्ड-मत चलाने आदि बुरी बातें चक्राङ्कित आदि में हैं। जैसे चक्राङ्कित आदि वेदविरोध करते हैं, वैसे शङ्कराचार्य के मत के नहीं।

प्रश्न—मूर्त्तिपूजा कहाँ से चली?

उत्तर—जैनियों से।

प्रश्न—जैनियों ने कहाँ से चलाई?

उत्तर—अपनी मूर्खता से।

प्रश्न—जैनी लोग कहते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्त्ति देखके अपने जीव का भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है।

उत्तर—जीव चेतन, मूर्त्ति जड़। क्या मूर्त्ति के सदृश जीव भी जड़ हो जायगा? यह मूर्त्तिपूजा केवल पाखण्ड मत है, जैनियों ने चलाई है। इसलिये इनका खण्डन १२वें समुल्लास में करेंगे।

प्रश्न—शाक्त आदि ने मूर्त्तियों में जैनियों का अनुकरण नहीं किया है, क्योंकि जैनियों की मूर्त्तियों के सदृश वैष्णवादि की मूर्त्तियाँ नहीं हैं।

उत्तर—हाँ, यह ठीक है। जो जैनियों के तुल्य बनाते तो जैनमत में मिल जाते। इसलिये जैन की मूर्त्तियों से विरुद्ध बनाईं, क्योंकि जैन से विरोध करना इनका और इनसे विरोध करना जैनियों का मुख्य काम था। जैसे जैनियों की मूर्त्ति नंगी, ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्य के समान बनाई हैं। वैष्णवादि ने खूब शृङ्गारित, खड़ी, स्त्री के सहित रङ्ग राग भोग विषयासक्ति सहिताकार मूर्त्तियां बनाई हैं। जैनी लोग बहुत से शंख, घंटा घड़ियार नहीं बजाते। ये लोग बड़े कोलाहल करते हैं। तब तो इन वैष्णवादि पोपों के चेले जैनियों से बचे और बहुतों ने व्यासादि के नाम से बहुतेरे ग्रन्थ बनाये। उनका नाम 'पुराण' रखके कथा भी सुनाने लगे। और मूर्त्तियों को बना, कहीं पहाड़, जंगल में धर आये वा भूमि में गाड़ आये। और अपने चेलों से प्रसिद्धि की कि—''मुझको स्वप्न में महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम वा लक्ष्मी, नारायण, भैरव, हनुमान् आदि ने कहा कि हम फलाने ठिकाने हैं। हमको वहाँ से ला, मन्दिर में स्थापन कर, तू ही पुजारी होवे तो हम मनोवाञ्छित फल

देवें।'' जब **आँख के अन्धे गाँठ के पूरे** लोगों ने सुनकर सच माना और उनसे कहा कि ऐसी वह मूर्त्ति कहाँ है? वह उनको ले जाके दिखलाई। तब तो वे मूर्ख उस धूर्त्त के पग में गिरे और कहा कि ''तेरे पर इस देवता की बड़ी कृपा है। चलो हम मन्दिर बनवा देंगे। और उसमें इस देवता की पूजा तू किया करना। और हम लोग इस के दर्शन करके मनोवाञ्छित फल पावेंगे।''

इसी प्रकार जब एक ने किया, पुनः सब पोप-लोगों ने अपने-अपने जीविकार्थ इसी प्रकार कपट-छल से मूर्त्तियाँ स्थापन कीं।

प्रश्न—परमेश्वर निराकार है, वह ध्यान में नहीं आ सकता, इसलिये मूर्त्ति का होना अवश्य है। भला कुछ भी नहीं करे तो मूर्त्ति के सामने जाते हैं तब कुछ परमेश्वर का स्मरण करते और नाम लेते हैं।

उत्तर—जब परमेश्वर निराकार है, तब उसकी मूर्त्ति ही नहीं बन सकती। जो मूर्त्ति के देखने से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर की बनाई पृथिवी, जल, अग्नि, वनस्पति आदि रचनायुक्त पृथिवी पहाड़ आदि परमेश्वर-रचित महामूर्त्तियाँ कि जिन पहाड़ आदि से ये मनुष्यकृत मूर्त्तियाँ बनती हैं, देखकर परमेश्वर स्मरण क्या नहीं आ सकता? जो किसी दूसरे को देख दूसरे का स्मरण करे, तो जब वह सामने न रहै, तब परमेश्वर को भी भूल जायें और जब परमेश्वर को मनुष्य भूल जाता है, तभी वह एकान्त पाकर अन्याय कर लेता है कि यहाँ मुझको कोई नहीं देखता।

जो मूर्त्ति को न मान परमेश्वर को व्यापक माने तो वह उसके डर से कि मुझ को परमेश्वर देखता है, पाप न करे। नामस्मरण मात्र से कुछ भी फल नहीं होता। जैसा कि मिश्री कहने से मुख न मीठा और नीम कहने से कडुवा नहीं होता, किन्तु उनको जीभ से चाखने से मीठा वा कडुवा होता है।

प्रश्न— क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है, जो सर्वत्र पुराणों में नामस्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है?

उत्तर— नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं। जिस प्रकार तुम नाम स्मरण करते हो, वह रीति झूठी है।

प्रश्न— हमारी कैसी रीति है?

उत्तर—वेदविरुद्ध।

प्रश्न—भला अब आप हमको वेदोक्त नामस्मरण की रीति बतलाइये?

उत्तर—नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिये—जैसे 'न्यायकारी' ईश्वर का नाम है कि जैसे पक्षपातरहित होकर परमात्मा सब का यथावत् न्याय करता है, वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना।

प्रश्न—हम भी जानते हैं कि परमेश्वर निराकार है, परन्तु उसने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य, देवी आदि के शरीर धारण करके राम, कृष्णादि अवतार लेने से उसकी मूर्त्ति बनती है, क्या यह भी बात झूठी है?

उत्तर—हाँ-हाँ झूठी। क्योंकि—

'अज एकपात्' [ऋ० ७।३५।१३]

'अकायम्' [यजुः ४०।८]

इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म और शरीरधारणरहित वेद में कहा है, तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जो आकाशवत् सर्वत्र व्यापक, अनन्त और सुख, दुःख, दृश्यादि गुणरहित है, वह एक छोटे से वीर्य्य, गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आ सकता है? आता-जाता वह है कि जो एकदेशी हो। जो अचल, अदृश्य, जिसके विना एक परमाणु भी खाली नहीं है, उसका अवतार कहना जानो बन्ध्या के पुत्र का विवाह कर, उसके पौत्र के दर्शन करने की बात कहना है।

प्रश्न—जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्त्ति में भी है। पुनः चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं? देखो—

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्॥

[तुलना—गरुड़पुराण, ध० कां० प्रेतखण्ड ३८।१३॥ चाणक्य० ८।११]

परमेश्वर देव न काष्ठ, न पाषाण, न मृत्तिका के बनाये पदार्थों में है

किन्तु परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है। जहाँ भाव करें, वहीं परमेश्वर प्रसिद्ध होता है।

उत्तर—जब व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना, अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ाके एक छोटी सी कुटी का स्वामी मानना देखो यह कितना बड़ा अपमान है! वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्प-पत्र तोड़ ला के क्यों चढ़ाते? चन्दन को घिस क्यों लगाते? धूप को जला, क्यों देते? घण्टा, घरियाल, झाँज, पखाजों को लट्ठ आदि से क्यों ठोकते? तुम्हारे हाथ में है, क्यों जोड़ते? शिर में है, क्यों नमाते? अन्न-जलादि में है, क्यों नैवेद्य धरते? जल में है, स्नान क्यों कराते? क्योंकि उन सब में व्यापक परमात्मा है। और तुम व्यापक की पूजा करते हो वा व्याप्य की? जो व्यापक की करते हो तो पाषाण, लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो? और जो व्याप्य की करते हो तो 'हम परमेश्वर की पूजा करते हैं', ऐसा झूठ क्यों बोलते हो? 'हम पाषाणादि के पुजारी हैं', ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते?

'भाव' सच्चा है वा झूठा? जो कहो सच्चा है, तो तुम्हारे भाव के आधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायगा। और तुम मट्टी में सुवर्ण, पाषाण में हीरा-पन्ना, समुद्रफेन में मोती, जल में घी-दूध, बर्फ में दही आदि, धूल में मैदा शक्कर की भावना करके उनको वैसे क्यों नहीं बना लेते हो? दुःख की भावना कोई नहीं करते, फिर दुःख क्यों होता है? और सुख की भावना करते हो, वह क्यों नहीं होता? अन्धा नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता? मरने की भावना नहीं है, क्यों मर जाते हो? इसलिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं। क्योंकि '**भावना**' जैसे में वैसा भाव करने को कहते हैं, जैसे अग्नि में अग्नि, जल में जल जानना। और जल में अग्नि, अग्नि में जल समझना अभावना है। क्योंकि जैसे को वैसा जानना '**ज्ञान**' और अन्यथा जानना '**अज्ञान**' है। इसलिये तुम अभावना को भावना और भावना को अभावना कहते हो।

प्रश्न—अजी! जब तक वेदमन्त्रों से आवाहन नहीं करते, देवता

नहीं आता और आवाहन करने से झट आता और विसर्जन करने से चला जाता है।

उत्तर—जो मन्त्र के आवाहन करने से परमेश्वर आ जाता है तो मूर्त्ति चेतन क्यों नहीं होती? और विसर्जन करने से चला जाता है तो वह कहाँ से आता और कहाँ जाता है?

सुनो अन्धो! पूर्ण परमात्मा न आता, न जाता है। जो तुम मन्त्र से परमेश्वर को बुला लेते हो, तो उन्हीं मन्त्रों से अपने मरे हुए पुत्र के शरीर में जीव को क्यों नहीं बुला लेते? और शत्रु के जीवात्मा का विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते?

सुनो भाई! भोले लोगो! यह पोपजी तुमको ठगकर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वेदों में पाषाणादि मूर्त्तिपूजा और परमेश्वर के आवाहन-विसर्जन करने का एक अक्षर भी नहीं है।

प्रश्न— **प्राणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।**
आत्मेहागच्छतु सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा।
इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा॥

[प्रतिष्ठामयूख ग्रन्थ, तन्त्रग्रन्थ]

इत्यादि वेद के मन्त्र हैं, क्यों कहते हो नहीं है?

प्रश्न—अरे भाई! बुद्धि को थोड़ी सी तो अपने काम में लाओ। ये सब कपोलकल्पित वाममार्गियों के वेदविरुद्ध तन्त्रग्रन्थों की पोपरचित पंक्तियाँ हैं, वेदवचन नहीं।

प्रश्न—क्या तन्त्र झूठा है?

उत्तर—हां! सर्वथा झूठा है। जैसे आवाहन, प्राणप्रतिष्ठादि, पाषाण मूर्त्तिविषयक वेदों में एक मन्त्र भी नहीं, वैसे '**स्नानं समर्पयामि**' इत्यादि वचन भी नहीं। अर्थात् इतना भी नहीं है कि '**पाषाणादिमूर्त्तिं रचयित्वा मन्दिरेषु संस्थाप्य गन्धादिभिरर्चयेत्**' पाषाण की मूर्त्ति बना, मन्दिरों में स्थापन कर चन्दन-अक्षतादि से पूजे, ऐसा लेशमात्र भी नहीं।

प्रश्न—जो वेदों में विधि नहीं तो खण्डन भी नहीं है। और जो खण्डन है तो '**प्राप्तौ सत्यां निषेधः**' मूर्त्ति के होने ही से खण्डन संगत हो सकता है।

उत्तर—विधि तो नहीं, परन्तु परमेश्वर के स्थान में किसी अन्य पदार्थ को पूजनीय न मानना और सर्वथा निषेध किया है। क्या अपूर्वविधि नहीं होता? सुनो! यह है—

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्याꣳ रताः॥ [१॥]

—यजुः० अ० ४०। मं० ९॥

न तस्य प्रतिमाऽअस्ति॥ [२॥] —यजुः० अ० ३२। मं० ३॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ १॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ २॥
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यन्ति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ३॥
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ४॥
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ५॥

—केनोपनि० [खं० १। मं० ४-८]॥

जो '**असम्भूति**' अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की, ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं, वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं। और '**सम्भूति**' जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथिवी आदि भूत, पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं, वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक में गिरके महाक्लेश भोगते हैं॥ १॥

जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा, परिमाण, सादृश्य वा मूर्त्ति नहीं है॥ २॥

जो वाणी का '**इदंता**' अर्थात् यह जल है लीजिये, वैसा विषय नहीं। और जिसके धारण और सत्ता से वाणी की प्रवृत्ति होती है, उसी को ब्रह्म

जान और उपासना कर। और जो उससे भिन्न है, वह उपासनीय नहीं॥ १॥

जो मन से '**इयत्ता**' करके मनन में नहीं आता, जो मन को जानता है, उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर। जो उससे भिन्न जीव और अन्तःकरण है, उसकी उपासना ब्रह्म के स्थान में मत कर॥ २॥

जो आँख से नहीं दीख पड़ता और जिससे सब आँखें देखती हैं उसी को तू ब्रह्म जान और उसीकी उपासना कर। और जो उससे भिन्न सूर्य, विद्युत् और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं, उनकी उपासना मत कर॥ ३॥

जो श्रोत्र से नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत्र सुनता है, उसीको तू ब्रह्म जान और उसीकी उपासना कर। उससे भिन्न शब्दादि की उपासना उसके स्थान में मत कर॥ ४॥

जो प्राणों से चलायमान नहीं होता, जिससे प्राण गमन को प्राप्त होता है, उसी ब्रह्म को तू जान और उसीकी उपासना कर। जो यह उससे भिन्न वायु है, उसकी उपासना मत कर॥ ५॥ इत्यादि बहुत से निषेध हैं।

निषेध प्राप्त और अप्राप्त का भी होता है। 'प्राप्त' का—जैसे कोई कहीं बैठा हो, उसको वहाँ से उठा देना। 'अप्राप्त' का—जैसे हे पुत्र! तू चोरी कभी मत करना, कुवे में मत गिरना, दुष्टों का सङ्ग मत करना, विद्याहीन मत रहना, इत्यादि अप्राप्त का भी निषेध होता है। सो मनुष्यों के ज्ञान में अप्राप्त, परमेश्वर के ज्ञान में प्राप्त का निषेध किया है। इसलिये पाषाणादि मूर्त्तिपूजा अत्यन्त निषिद्ध है।

प्रश्न—मूर्त्तिपूजा में पुण्य नहीं तो पाप तो नहीं है?

उत्तर—कर्म दो ही प्रकार के होते हैं—विहित—जो कर्त्तव्यता से वेद में सत्यभाषणादि प्रतिपादित हैं। दूसरा निषिद्ध—जो अकर्त्तव्यता से मिथ्याभाषणादि वेद में निषिद्ध हैं। जैसे विहित का अनुष्ठान करना वह धर्म, उसका न करना अधर्म है, वैसे ही निषिद्ध कर्म का करना अधर्म और न करना धर्म है। जब वेद से निषिद्ध मूर्त्तिपूजादि कर्म तुम करते हो, तो पापी क्यों नहीं?

प्रश्न—देखो! वेद अनादि हैं। उस समय मूर्त्ति का क्या काम था? क्योंकि पहिले तो देवता प्रत्यक्ष थे। यह रीति तो पीछे से तन्त्र और

पुराणों से चली है। जब मनुष्यों का ज्ञान और सामर्थ्य न्यून हो गया, परमेश्वर को ध्यान में नहीं ला सकते, मूर्त्ति का ध्यान कर सकते हैं, इस कारण अज्ञानियों के लिये मूर्त्तिपूजा है। क्योंकि सीढ़ी-सीढ़ी से चढ़े तो भवन पर पहुँच जाय। पहिली सीढ़ी छोड़कर ऊपर जाना चाहे तो नहीं जा सकता, इसलिये मूर्त्ति प्रथम सीढ़ी है। इसको पूजता-पूजता जब ज्ञानी होगा और अन्त:करण पवित्र होगा, तब परमात्मा का ध्यान कर सकेगा। जैसे लक्ष्य के मारनेवाला प्रथम स्थूल लक्ष्य में तीर, गोली वा गोला मारता-मारता पश्चात् सूक्ष्म निशाना भी मार सकता है, वैसे स्थूल मूर्त्ति की पूजा करता-करता सूक्ष्म ब्रह्म को भी प्राप्त होता है। जैसे लड़कियाँ गुड़ियों का खेल तबतक करती हैं, जबतक सच्चे पति को प्राप्त नहीं होतीं, इत्यादि प्रकार से मूर्त्तिपूजा करना दुष्ट काम नहीं।

उत्तर—जब वेदविहित धर्म और वेदविरुद्धाचरण में अधर्म है तो तुम्हारे कहने से भी मूर्त्तिपूजा अधर्म ठहरी। जो ग्रन्थ वेद से विरुद्ध हैं, उनका प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनो—

नास्तिको वेदनिन्दकः॥ १॥ [मनु० २।११]॥

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥ २॥
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च॥ ३॥

—मनु० अ० १२ [श्लो० ९५-९६]॥

मनुजी कहते हैं जो वेदों की 'निन्दा' अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता है, वह 'नास्तिक' कहाता है॥ १॥

जो ग्रन्थ वेदबाह्य, कुत्सित पुरुषों के बनाये, संसार को दु:खसागर में डुबानेवाले हैं, वे सब निष्फल, असत्य, अन्धकाररूप, इस लोक और परलोक में दु:खदायक हैं॥ २॥

जो इन वेदों से विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं, वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। उनका मानना निष्फल और झूठा है॥ ३॥

इसी प्रकार ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त का मत है कि वेदविरुद्ध को न मानना, किन्तु वेदानुकूल ही का आचरण करना धर्म

है। क्योंकि वेद सत्य अर्थ का प्रतिपादक है, इससे विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं, वे वेदविरुद्ध होने से झूठे हैं, वे वेद से विरुद्ध चलते हैं। उनमें कही हुई मूर्त्तिपूजा भी अधर्मरूप है। मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है, सो भी नष्ट हो जाता है। इसलिये ज्ञानियों की सेवा-सङ्ग से ज्ञान बढ़ता है, पाषाणादि से नहीं। क्या पाषाणादि मूर्त्तिपूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी ला सकता है? नहीं-नहीं। मूर्त्तिपूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है, जिसमें गिरकर चकनाचूर हो जाता है। उस खाई से निकल नहीं सकता, किन्तु उसी में मर जाता है। हां, छोटे धार्मिक विद्वानों से लेकर परम विद्वान् योगी के संग से सद्विद्या और सत्यभाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं, जैसी कि ऊपर घर में जाने की नि:श्रेणी होती है। किन्तु मूर्त्तिपूजा करते-करते ज्ञानी तो कोई न हुआ, प्रत्युत सब मूर्त्तिपूजक अज्ञानी रहकर, मनुष्यजन्म व्यर्थ खोके, बहुत मर गए और जो अब हैं वा होंगे, वे भी मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्तिरूप फलों से विमुख होकर निरर्थ नष्ट हो जायेंगे। मूर्त्तिपूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूल लक्ष्यवत् नहीं, किन्तु धार्मिक विद्वान् और सृष्टिविद्या है। इसको बढ़ाता-बढ़ाता ब्रह्म को भी पाता है। और मूर्त्ति गुड़िया के खेलवत् नहीं, किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास सुशिक्षा का होना, गुड़िया के खेलवत् ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। सुनिये! जब अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त होगा, तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जायगा।

प्रश्न—साकार में मन स्थिर होता और निराकार में स्थिर होना कठिन है, इसलिये मूर्त्तिपूजा रहनी चाहिये।

उत्तर—साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता। क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसीके एक-एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है। और निराकार अनन्त परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है, तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चञ्चल भी नहीं रहता किन्तु उसीके गुण-कर्म-स्वभाव का विचार करता-करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है। और जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता, क्योंकि जगत् में मनुष्य,

स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता, जबतक निराकार में न लगावे, क्योंकि वह निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है। इसलिये मूर्त्तिपूजा करना अधर्म है।

दूसरा—उसमें क्रोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र होजाते हैं और उसमें प्रमाद होता है।

तीसरा—स्त्री-पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई-बखेड़ा और रोग उत्पन्न होते हैं।

चौथा—उसीको धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मानके पुरुषार्थरहित होकर मनुष्यजन्म व्यर्थ गमाता है।

पाँचवाँ—नाना प्रकार की विरुद्धस्वरूप-नाम-चरित्रयुक्त मूर्त्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके, विरुद्धमत में चलकर, आपस में फूट बढ़ाके, देश का नाश करते हैं।

छ:ठा—उसीके भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान, बैठे रहते हैं। उसका पराजय होकर राज्य, स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होते हैं। आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहा के तुल्य शत्रुओं के वश में होकर अनेकविध दु:ख पाते हैं।

सातवाँ—जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उन पर क्रोधित होकर मारता है, वैसे ही जो परमेश्वर के उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्त्तियाँ धरते हैं, उन का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे?

आठवाँ—भ्रान्त होकर मन्दिर-मन्दिर देश-देशान्तर में घूमते-घूमते दु:ख पाते, धर्म, संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोर आदि से पीडित होते, ठगों से ठगाते रहते हैं।

नववाँ—दुष्ट पूजारियों को धन देते हैं, वे उस धन को वेश्या, परस्त्रीगमन, मद्य, मांसाहार, लड़ाई-बखेड़ों में व्यय करते हैं, जिससे दाता का सुख का मूल नष्ट होकर दु:ख होता है।

दशवाँ—माता-पिता आदि माननीयों का अपमान और पाषाणादि

मूर्त्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं।

ग्यारहवाँ—उन मूर्त्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले जाता है तब हा-हा करके रोते रहते हैं।

बारहवाँ—पूजारी परस्त्रियों के सङ्ग और पूजारिन् परपुरुषों के सङ्ग से प्राय: दूषित होकर स्त्री-पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं।

तेरहवाँ—स्वामी-सेवक की आज्ञा पालन यथावत् न होने से, आपस में विरुद्ध होकर, नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

चौदहवाँ—जड़ का ध्यान करनेवाले का आत्मा भी जड़बुद्धि होता है, क्योंकि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्त:करण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है।

पन्द्रहवाँ—परमेश्वर ने पुष्पादि सुगन्ध, वायु-जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिये बनाये हैं, उनको पूजारी तोड़ कर नष्ट कर देते हैं। पूर्ण सुगन्ध के समय तक उसका सुगन्ध होता है, उसका नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल-सड़कर उल्टा दुर्गन्ध उत्पन्न करता है। इसलिये मूर्त्तिपूजा करने में पाप होता है। इत्यादि पापों का मूलकारण पाषाणादि मूर्त्तिपूजा भी है।

ऐसे-ऐसे अनेक मूर्त्तिपूजा के करने में दोष आते हैं। इसलिए सर्वथा पाषाणादि मूर्त्तिपूजा सभी लोगों को त्यक्तव्य है। और जिन्होंने पाषाणमय मूर्त्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं और न बचेंगे।

प्रश्न—किसी प्रकार की मूर्त्तिपूजा करनी वा नहीं और जो अपने आर्य्यावर्त्त में 'पञ्चदेवपूजा' शब्द प्राचीन चला आता है, उसका यही 'पञ्चायतनपूजा'—जो कि शिव, विष्णु, अम्बिका, गणेश और सूर्य्य की मूर्त्ति बना कर पूजते हैं—यही पञ्चायतनपूजा है वा नहीं?

उत्तर—किसी प्रकार की मूर्त्तिपूजा न करना, किन्तु 'मूर्त्तिमान्' जो नीचे कहेंगे, उनकी 'पूजा' अर्थात् सत्कार करना चाहिये। वह पञ्चदेवपूजा, पञ्चायतनपूजा शब्द बहुत अच्छे अर्थवाला था, परन्तु मूढ़ों ने उस सदर्थ को छोड़कर, असत्य अर्थ पकड़ लिया। जो आजकल

शिवादि पाँचों की मूर्त्तियाँ बनाकर पूजते हैं, उनका खण्डन तो अभी कर चुके हैं। यह सच्ची 'पञ्चायतन' वेदोक्त और वेदानुकूलोक्त देवपूजा और मूर्त्तिपूजा है, सुनो—

मा [नो] वधीः पितरं मोत मातरम्॥ १ ॥ —यजुः० [१६।१५]

आचार्य उपनयमानो....... [अथर्व० ११।५।३]

ब्रह्मचारिणमिच्छते॥ २ ॥ [अथर्व० ११।५।१७]

अतिथिर्गृहानुपगच्छेत्॥ ३ ॥ —अथर्व० [तुलना—१५।१२।१]

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत॥ ४॥ —ऋग्वेद [८।६९।८]

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि॥ ५ ॥

—तैत्तिरीयोपनि० [१।१]

कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते॥ ६ ॥

—शतपथ० [कां० १४] प्रपाठक ५। ब्राह्मण ७। कण्डिका १०॥

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव॥ ७॥ —तैत्तिरीयोप० [शिक्षावल्ली। अनु० ११]

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥ ८ ॥

—मनु० [३।५५]

पूज्यो देववत्पतिः॥ ९ ॥ —मनुस्मृति [तुलना—५।१५४]

प्रथम **'माता'** मूर्त्तिमती पूजनीय देवता अर्थात् सन्तानों से, तन-मन-धन से, वा सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा अर्थात् ताडना कभी न करना। दूसरा **'पिता'** सत्कर्त्तव्य देव। उसकी भी माता के समान सेवा करनी॥ १ ॥

तीसरा **'आचार्य'** जो विद्या का देनेवाला है, उसकी तन-मन से सेवा करनी॥ २ ॥

चौथा **'अतिथि'** जो विद्वान् धार्मिक, निष्कपटी, सबकी उन्नति चाहनेवाला, जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सबको सुखी करता रहै, उसकी सेवा करें॥ ३ ॥

पाँचवाँ—स्त्री के लिये **पति** और पुरुष के लिये **स्वपत्नी** पूजनीय है॥ ९ ॥

ये पाँच मूर्त्तिमान् देव जिनके सङ्ग से मनुष्यदेह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर की प्राप्ति होने की सीढ़ियाँ है। इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्त्ति पूजते हैं, वे अतीव पामर, नरकगामी हैं।

प्रश्न—माता-पिता आदि की सेवा करें और मूर्त्तिपूजा भी करें, तब तो कोई दोष नहीं?

उत्तर—पाषाणादि मूर्त्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्त्तिमानों की सेवा करने ही में कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़ के अदेव पाषाणादि में शिर मारना स्वीकार किया। इसको मूढों ने इसीलिये स्वीकार किया है कि जो माता-पितादि के सामने नैवेद्य वा भेट-पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा लेंगे और भेट पूजा ले लेंगे। हमारे मुख वा हाथ में न पड़ेगा। इससे पाषाणादि की मूर्त्ति बना, उसके आगे नैवेद्य धर, टंटन घंटा, पूँ पूँ शंख बजा, अंगूठा दिखला **'त्वमङ्गुष्ठं गृहाण, भोजनं पदार्थं वाऽहं ग्रहीष्यामि'** जैसे कोई किसी को छले वा चिड़ावे कि तू घंटा ले और अंगूठा दिखलावे, उसके आगे से सब पदार्थ ले आप भोगे, वैसी ही लीला इन 'पूजारियों' अर्थात् पूजा नाम सत्कर्म के शत्रुओं की है। मूढों को चटक-मटक, चलक-झलक दिखा, मूर्त्तियों को बना-ठना, आप वेश्या, भडुआ वा ठगों के तुल्य बन-ठन के बिचारे निर्बुद्धि अनाथों का माल मारके मौज करते हैं। जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाणप्रियों को पत्थर तोड़ने, बनाने और घर रचने आदि कामों में लगाके खाने-पीने को देता, निर्वाह कराता।

प्रश्न—जैसे स्त्री आदि की पाषाणादि मूर्त्ति देखने से कामोत्पत्ति होती है, वैसे वीतराग शान्त की मूर्त्ति देखने से वैराग्य और शान्ति की प्राप्ति क्यों न होगी?

उत्तर—नहीं हो सकती। क्योंकि वह मूर्त्ति के जड़त्व धर्म आत्मा में आने से विचारशक्ति घट जाती है। विवेक के विना न वैराग्य, और वैराग्य के विना विज्ञान, विज्ञान के विना शान्ति नहीं होती। और जो कुछ होता है सो उनके सङ्ग, उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से

होता है, क्योंकि जिसका गुण वा दोष न जानके उसकी मूर्त्तिमात्र देखने से प्रीति ही नहीं होती। प्रीति होने का कारण गुणज्ञान है। ऐसे मूर्त्तिपूजा आदि बुरे कारणों ही से आर्य्यावर्त्त में निकम्मे, पूजारि, भिक्षुक, आलसी पुरुषार्थरहित क्रोड़ों मनुष्य हुए हैं। वे मूढ होने से सब संसार में मूढ़ता उन्हींने फैलाई है। झूठ-छल भी बहुत सा फैलता है।

प्रश्न—देखो! काशी में 'अवरङ्गज़ेब' बादशाह को 'लाटभैरव' आदि ने बड़े चमत्कार दिखलाये थे। जब मुसलमान उनको तोड़ने गये, तोप का गोला मारा, तब बड़े-बड़े भमरे निकलकर, सब फौज को व्याकुल कर, भगा दिया।

उत्तर—यह पाषाण का चमत्कार नहीं। किन्तु वहाँ भमरे के छत्ते लग रहे होंगे। उनका स्वभाव है, जब कोई उनको छेड़े, तो काटने दौड़ते हैं। और जो दूध की धारा का चमत्कार होता था, वह पूजारी की लीला थी।

प्रश्न—देखो! महादेव म्लेच्छ को दर्शन न देने के लिये कूप में और वेणीमाधव एक ब्राह्मण के घर में जा छिपे। क्या यह भी चमत्कार नहीं है?

उत्तर—भला जिसके कोटवाल कालभैरव, लाटभैरव आदि भूत-प्रेत और गरुड़ आदि गणों ने मुसलमानों को लड़ के क्यों न हठाये? जब महादेव और विष्णु की पुराणों में कथा है कि अनेक त्रिपुरासुर आदि बड़े भयंकर दुष्टों को भस्म कर दिया तो मुसलमानों को भस्म क्यों न किया? इससे यह सिद्ध होता है कि वे बिचारे पाषाण क्या लड़ते-लड़ाते? जब मुसलमान मन्दिर और मूर्त्तियों को तोड़ते-फोड़ते हुए काशी के पास आए, तब पूजारियों ने उस पाषाण के लिङ्ग को कूप में डाल और वेणीमाधव को ब्राह्मण के घर में छिपा दिया। जब काशी में कालभैरव के डर के मारे यमदूत नहीं जाते, प्रलय में भी काशी का नाश होने नहीं देते, तो म्लेच्छों के दूत क्यों न डराये? और अपने राजा के मन्दिर का क्यों नाश होने दिया? यह सब पोपलीला है।

प्रश्न—गया में श्राद्ध करने से पितरों का पाप छूटकर वहाँ के श्राद्ध के पुण्यप्रभाव से पितर स्वर्ग में जाते और पितर अपना हाथ

निकालकर पिण्ड लेते हैं, क्या यह भी बात झूठ है?

उत्तर—सर्वथा झूठ। जो वहां पिण्ड देने का वही प्रभाव है तो जिन पण्डों को पितरों के सुख के लिये लाखों रुपये देते हैं, उनका व्यय गयावाले वेश्यागमनादि पाप में करते हैं, वह पाप क्यों नहीं छूटता? और हाथ निकलता आजकल कहीं नहीं दीखता, विना पण्डों के हाथों के। यहाँ यह कि कभी किसी धूर्त्त ने पृथिवी में गुफा खोद उसमें एक मनुष्य बैठाया। उसके मुख पर कुश बिछा, पिण्ड दिया हो। उस मनुष्य ने उठा लिया होगा। किसी **आँख के अन्धे गाँठ के पूरे** को ठगा हो तो आश्चर्य नहीं। वैसे ही वैजनाथ को रावण लाया था, यह भी मिथ्या बात है।

प्रश्न—देखो! कलकत्ते की 'काली' और 'कामाक्षा' आदि देवी को लाखों मनुष्य मानते हैं, क्या यह चमत्कार नहीं है?

उत्तर—कुछ भी नहीं। ये अन्धे लोग भेड़ के तुल्य एक के पीछे दूसरे चलते हैं, कूप-खाड़े में गिरते हैं, हट नहीं सकते। वैसे ही एक मूर्ख के पीछे दूसरे चलकर मूर्त्तिपूजा रूप गढ़े में फसकर दुःख पाते हैं।

प्रश्न—भला यह तो जाने दो, परन्तु 'जगन्नाथ' में प्रत्यक्ष चमत्कार है। एक कलेवर बदलने के समय चन्दन का लकड़ा समुद्र में से स्वयमेव आता है। चूल्हे पर ऊपर-ऊपर सात हण्डे धरने से ऊपर-ऊपर के पहिले-पहिले पकते। जो कोई वहाँ जगन्नाथ की परसादी न खावे तो कुष्ठी हो जाता है और रथ आप से आप चलता, पापी को दर्शन नहीं होता। 'इन्द्रदमन' के राज्य में देवताओं ने मन्दिर बनाया है। कलेवर बदलने के समय एक राजा, एक पण्डा, एक बढ़ई मर जाने आदि चमत्कारों को तुम झूठ न कर सकोगे।

उत्तर—जिसने बारह वर्ष पर्यन्त जगन्नाथ की पूजा की थी, वह विरक्त होकर मथुरा में आया था, मुझसे मिला था। मैंने इन बातों का उत्तर पूछा था, उन्होंने ये सब बात झूठ बतलाईं। किन्तु विचार से निश्चय यह है, जब कलेवर बदलने का समय आता है, तब नौका में चन्दन की लकड़ी ले समुद्र में डालते हैं। वह समुद्र की लहरियों से किनारे लग जाती है। उसको ले सुतार लोग मूर्त्तियाँ बनाते हैं। जब

रसोई बनती है, तब किवाड़ी बन्ध करके विना रसोइयों के, अन्य किसी को न जाने, न देखने देते हैं। भूमि पर चारों ओर छः और बीच में एक, चक्राकार चूल्हे बनाते हैं। उन हण्डों के नीचे घी, मट्टी और राख लगा, छः चूल्हों पर चावल चुड़ा (=पका), उनके तले माँज कर, उस बीच के हण्डे में उसी समय चावल डाल, छः चूल्हों के मुख लोहे के तवों से बन्ध कर, दर्शन करनेवालों को जो कि धनाढ्य हों, बुलाके दिखलाते हैं। ऊपर-ऊपर के हण्डों से चावल निकाल, चुड़े हुए चावलों को दिखला, नीचे के कच्चे चावल निकाल, दिखाके, उनसे कहते हैं कि ''कुछ हण्डे के लिये धरो।'' '**आँख के अन्धे गाँठ के पूरे**' रुपये-अशर्फी धरते और कोई-कोई मासिक भी बांध देते हैं।

शूद्र नीच लोग मन्दिर में नैवेद्य लाते हैं। जब नैवेद्य हो चुकता है तब वे शूद्र लोग झूंठा कर देते हैं। पश्चात् जो कोई रुपया देकर हण्डा लेवे, उसके घर पहुँचाते और गरीब गृहस्थ और साधु सन्तों को लेके शूद्र और अन्त्यज पर्य्यन्त एक पङ्क्ति में बैठ, झूंठा भोजन करते हैं। जब वह पङ्क्ति उठती है, तब उन्हीं पत्तलों पर दूसरों को बैठाते जाते हैं। महा अनाचार है। और बहुत से मनुष्य वहां जाकर उनका झूंठा न खाके, अपने हाथ बना खाकर चले आते हैं, बहुत से परसादी नहीं खाते, उनको भी कुछ भी कुष्ठादि रोग नहीं होते। और उस जगन्नाथपुरी में भी बहुत से कुष्ठी हैं, नित्यप्रति झूंठ खाने से भी रोग नहीं छूटता।

और यह जगन्नाथ में वाममार्गियों ने भैरवीचक्र बनाया है, क्योंकि 'सुभद्रा' श्रीकृष्ण और बलदेव की बहिन लगती है। उसी को दोनों भाइयों के बीच में स्त्री और माता के स्थान बैठाई है। जो भैरवीचक्र न होता तो यह बात कभी न होती।

और रथ के पहियों के साथ कला बनाई हैं। जब उनको सूधी घुमाते हैं वह सूधी घूमती हैं, तब रथ चलता है। जब मेले के बीच में पहुंचता है तभी उसकी कील को उलटी घुमा देने से रथ खड़ा रह जाता है। पुजारी लोग पुकारते हैं—''दान दो, पुण्य करो, जिससे जगन्नाथ प्रसन्न होकर रथ चलावें, अपना धर्म रहै।'' जबतक भेंट आती जाती है तबतक ऐसे ही पुकारते जाते हैं। जब आ चुकती है, तब एक व्रजवासी

अच्छे कपड़े दुसाला ओढ़कर आगे खड़ा रहके हाथ जोड़ स्तुति करता है कि हे जगन्नाथ स्वामिन्! आप कृपा करके रथ को चलाइये, हमारा धर्म रक्खो'' इत्यादि बोलके साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर रथ पर चढ़ता है। उसी समय कील को सूधा घुमा देते हैं और जय-जय शब्द बोल, सहस्त्रों मनुष्य रस्सा खींचते हैं, रथ चलता है।

जब बहुत-से लोग दर्शन को जाते हैं, तब इतना बड़ा मन्दिर है कि जिसमें दिन में भी अन्धेरा रहता और दीप जलाना पड़ता है। उन मूर्त्तियों के आगे, खैंच कर लगाने के पड़दे, दोनों ओर रहते हैं। पण्डे-पुजारी भीतर खड़े रहते हैं। जब बगल वाले ने पर्दे को खींचा, झट मूर्त्ति आड़ में आ जाती है। तब सब पण्डे और पुजारी पुकारते हैं कि ''तुम भेंट धरो, तुम्हारे पाप छूट जायेंगे, तब दर्शन होगा। शीघ्र करो।'' वे बिचारे भोले मनुष्य धूर्त्तों के हाथ लूटे जाते हैं। और झट पर्दा दूसरा खैंच लेता है, तभी दर्शन होता है। तब जय शब्द बोल के, प्रसन्न होकर, धक्के खाके, तिरस्कृत हो, चले आते हैं।

'इन्द्रदमन' वही है कि जिसके कुल के अब तक कलकत्ते में हैं। वह धनाढ्य राजा और देवी का उपासक था। उसने लाखों रुपये लगाकर मन्दिर बनवाया था। इसलिये कि आर्यावर्त्त के भोजन का बखेड़ा इस रीत से छुड़ावें। परन्तु वे मूर्ख कब छोड़ते हैं? 'देव' मानो तो उन्हीं कारीगरों को मानो कि जिन शिल्पियों ने मन्दिर बनाया।

राजा, पण्डा और बढ़ई उस समय नहीं मरते, परन्तु वे तीनों वहां प्रधान रहते हैं। छोटों को दुःख देते होंगे। उन्होंने सम्मति करके उसी समय अर्थात् कलेवर बदलने के समय वे तीनों उपस्थित रहते हैं, मूर्त्ति का हृदय पोला रक्खा है, उसमें सोने के सम्पुट में एक सालगराम रखते हैं कि जिसको प्रतिदिन धो के चरणामृत बनाते हैं, उस पर रात्रि की शयन आरती में उन लोगों ने विष का तेजाब लपेट दिया होगा। उसको धो के उन्हीं तीनों को पिलाया होगा कि जिससे वे कभी मर गये होंगे। मरे इस प्रकार और भोजनभट्टों ने प्रसिद्ध किया होगा कि जगन्नाथजी अपने शरीर बदलने के समय तीनों भक्तों को भी साथ ले गये। ऐसी झूठी बातें पराये धन ठगने के लिये बहुत-सी हुआ करती हैं।

प्रश्न—जो रामेश्वर में गङ्गोत्तरी के जल चढ़ाने समय लिङ्ग बढ़ जाता है, क्या यह भी बात झूठी है?

उत्तर—झूठी। क्योंकि उस मन्दिर में भी दिन में अन्धेरा रहता है। दीप रात-दिन जला करता है। जब जल की धारा छोड़ते हैं, तब उस जल में बिजुली के समान दीप का प्रतिबिम्ब चलकता है, और कुछ भी नहीं। न पाषाण घटे, न बढ़े, जितना का उतना रहता है। ऐसी लीला करके बिचारे निर्बुद्धियों को ठगते हैं।

प्रश्न—रामेश्वर को रामचन्द्र ने स्थापन किया है। जो मूर्त्तिपूजा वेदविरुद्ध होती तो 'रामचन्द्र' मूर्त्तिस्थापन क्यों करते और वाल्मीकिजी रामायण में क्यों लिखते?

उत्तर—रामचन्द्र के समय में उस लिङ्ग वा मन्दिर का नाम निशान भी नहीं था, किन्तु यह ठीक है कि दक्षिण देशस्थ 'राम' राजा ने मन्दिर बनवा, लिङ्ग का नाम 'रामेश्वर' धर दिया है। जब रामचन्द्र सीताजी को ले हनुमान् आदि के साथ लङ्का से चले, आकाश मार्ग में विमान पर बैठ अध्योध्या को आते थे, तब सीताजी से कहा है कि—

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः।।
सेतुबन्ध इति विख्यातम्॥

—वाल्मीकि, लंका काण्ड [युद्धकाण्ड सर्ग १२३। श्लो० २०-२१]॥

हे सीते! तेरे वियोग से हम व्याकुल होकर घूमते थे और इसी स्थान में चातुर्मास किया था और परमेश्वर की उपासना ध्यान भी करते थे। वही जो सर्वत्र विभु व्यापक महान् देवों का देव 'महादेव' परमात्मा है, उसकी कृपा से हमको सब सामग्री यहाँ प्राप्त हुई। और देख! यह सेतु हमने बाँधकर लङ्का में आके, उस रावण को मार, तुझको ले आये। इसके सिवाय वहाँ वाल्मीकि ने अन्य कुछ भी नहीं लिखा।

प्रश्न—**'रङ्ग है कालियाकन्त को। जिसने हुक्का पिलाया सन्त को'।।**

दक्षिण में एक कालियाकन्त की मूर्त्ति है। वह अब तक हुक्का पिया करती है। जो मूर्त्तिपूजा झूठी होती तो यह चमत्कार भी झूठा होवे।

उत्तर—झूठा-झूठा-झूठा। यह सब पोपलीला है। क्योंकि वह, मूर्त्ति का मुख पोला होगा। उसका छिद्र पृष्ठ में निकाल के, भित्ती के पार, दूसरे मकान में नल लगा होगा। जब पुजारी हुक्का भरवा, पेंचवान् लगा, मुख में नली जमाके, पड़दे डाल, निकल आता होगा, तभी पीछेवाला आदमी मुख से खींचता होगा तो इधर हुक्का गड़-गड़ बोलता होगा। दूसरा छिद्र नाक और मुख के साथ लगा होगा। जब पीछे फूकें मार देता होगा तब नाक और मुख के छिद्रों से धुआँ निकलता होगा। उस समय बहुतेरे मूढ़ों को धनादि पदार्थों से लूट कर धन रहित करते होंगे।

प्रश्न—देखो! डाकोरजी की मूर्त्ति द्वारिका से भगत के साथ चली आई। एक सवा रत्ती सोने में कई मन की मूर्त्ति तुल गई। क्या यह भी चमत्कार नहीं?

उत्तर—नहीं। वह भक्त मूर्त्ति को चोर ले आया होगा और सवा रत्ती के बराबर मूर्त्ति का तुलना, किसी भङ्गड़ आदमी ने गप्प मारा होगा।

प्रश्न—देखो! सोमनाथजी पृथिवी से ऊपर रहता था और बड़ा चमत्कार था, क्या यह भी मिथ्या बात है?

उत्तर—हाँ मिथ्या बात है। क्योंकि वह लोहे की पोली मूर्ति थी। नीचे ऊपर चुम्बक पाषाण लगा रक्खे थे। उसके आकर्षण से वह मूर्ति अधर खड़ी थी। जब महमूद-गजनी आकर लड़ा, तब यह चमत्कार हुआ कि उसका मन्दिर तोड़ा गया और पूजारी भक्तों की दुर्दशा हो गई, और लाखों फौज दश सहस्र फौज से भाग गई। जो पोप-पूजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि "महादेव! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी रक्षा कर", अपने चेले राजाओं को समझाते थे कि, "आप निश्चिन्त रहिये। महादेवजी भैरव अथवा वीरभद्र को भेज देंगे। वे सब म्लेच्छों को मार डालेंगे वा अन्धा कर देंगे। अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है। हनुमान्, दुर्गा और भैरव ने स्वप्न दिया है कि हम सब काम कर देंगे।" वे बिचारे भोले राजा और क्षत्रिय पोपों के बहकाने से विश्वास में रहे।

कितने ही ज्योतिषी पोपों ने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का मुहूर्त्त नहीं है। एक ने आठवाँ चन्द्रमा बतलाया। दूसरे ने योगिनी सामने दिखलाई, इत्यादि बहकावट में रहे।

जब म्लेच्छों की फौज ने आकर घेर लिया, तब दुर्दशा से भागे। कितने ही पोप-पूजारी और उनके चेले पकड़े गये। पूजारियों ने यह भी हाथ जोड़ कहा कि तीन क्रोड़ रुपया ले लो, मन्दिर और मूर्ति मत तोड़ो। मुसलमानों ने कहा कि "हम 'बुतपरस्त' नहीं किन्तु 'बुतशिकन्' अर्थात् मूर्त्तिपूजक नहीं, किन्तु मूर्त्तिभंजक हैं।" जाके मन्दिर तोड़ दिया। जब ऊपर की छत टूटी, तब चुम्बक पाषाण पृथक् होने से मूर्त्ति गिर पड़ी। जब मूर्त्ति तोड़ी तब सुनते हैं कि अठारह करोड़ के रत्न निकले। जब पुजारी और पोपों पर कोड़ा पड़े, तब रोने लगे। कहा, कि कोष बतलाओ। मार के मारे झट बतला दिया। वे ले लिवा लूट मार कर, पोप और पोप के चेलों को 'गुलाम' बिगारी बना, पिसना पिसवाया, घास खुदवाया, मल-मूत्रादि उठवाया और चना खाने को दिये।

हाय! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए? क्यों परमेश्वर की भक्ति न की, जो म्लेच्छों के दाँत तोड़ डालते और अपना विजय करते। देखो! जितनी मूर्तियाँ हैं, उतने शूरवीरों की पूजा करते तो भी कितनी रक्षा होती इनकी। पूजारियों ने इतनी भक्ति पाषाणों की की, परन्तु मूर्ति एक भी उनके शिर पर उड़के न लगी। जो किसी एक शूरवीर पुरुष की भी मूर्त्ति के सदृश सेवा करते, तो वह अपने सेवकों को यथाशक्ति बचाता और उन शत्रुओं को मारता।

प्रश्न—द्वारिकाजी के 'रणछोड़जी' कि जिसने 'नर्सीमहिता' के पास हुण्डी भेज दी और उसका ऋण चुका दिया, इत्यादि बात भी क्या झूठ है?

उत्तर—किसी साहूकार ने रुपये दे दिये होंगे। किसी ने झूठा नाम उड़ा दिया होगा कि श्रीकृष्ण ने भेजे। जब संवत् १९१४ के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर-मूर्त्तियां अङ्गरेजों ने उड़ा दी थीं, तब मूर्त्ति कहाँ गई थी? प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े, शत्रुओं को मारा, परन्तु मूर्त्ति एक मक्खी की टाँग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण के सदृश

कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते। भला, यह तो कहो कि जिसका रक्षक मार खाय, उसके शरणागत क्यों न पीटे जायें?

प्रश्न—ज्वालामुखी तो प्रत्यक्ष देवी है, सबको खा जाती है और प्रसाद देवे तो आधा खा जाती और आधा छोड़ देती है। मुसलमान बादशाहों ने उस पर जल की नहर छुड़वाई और लोहे के तवे जड़वाये थे तो भी ज्वाला नहीं बुझी, न रुकी। वैसे हिंगलाज भी आधी रात को सवारी कर पहाड़ पर दिखाई देती, पहाड़ को गर्जना कराती है। चन्द्रकूप बोलता है और योनियन्त्र से निकलने से पुनर्जन्म नहीं होता। ठूमरा बाँधने से पूरा महापुरुष कहाता। जबतक हिंगलाज न हो आवे, तबतक आधा महापुरुष बजता है, इत्यादि सब बातें क्या मानने योग्य नहीं?

उत्तर—नहीं। क्योंकि वह ज्वालामुखी पहाड़ में से आगी निकलती है। उसमें पुजारी पोपों की विचित्र लीला है। जैसे बघार के घी के चमचे में ज्वाला आ जाती, अलग करने से वा फूंक मारने से बुझ जाती, थोड़ा-सा घी को खा जाती, शेष छोड़ जाती, उसी के समान वहाँ भी है। जैसी चूल्हे की ज्वाला में जो डाला जाय, सब भस्म होता, जङ्गल वा घर में लग जाने से सबको खा जाती है, इससे वहाँ क्या विशेष है विना एक मन्दिर, कुण्ड और इधर-उधर नल रचना के? हिंगलाज में न कोई सवारी होती और जो कुछ होता है, वह सब पोप-पूजारियों की लीला से दूसरा कुछ भी नहीं। एक जल और दलदल का कुण्ड बना रक्खा है, जिसके नीचे से बुद्बुदे उठते हैं, उसको सुफल यात्रा होना मूढ़ मानते हैं। योनि का यन्त्र पोपजी ने धन हरने के लिए बनवा रक्खा है और ठुमरे भी उसी प्रकार पोपलीला के हैं। उससे महापुरुष हो तो एक पशु पर ठुमरे का बोझा लाद दें, तो क्या महापुरुष हो जायगा? **महापुरुष तो बड़े उत्तम धर्मयुक्त पुरुषार्थ से होता है।**

प्रश्न—अमृतसर का तलाब अमृतरूप, एक मुरेठी का फल आधा मीठा, एक भित्ती नमती और गिरती नहीं, रेवालसर में बेड़े तरते, अमरनाथ में आप से आप लिङ्ग बन जाते, हिमालय से कबूतर के जोड़े आके, सबको दर्शन देकर चले जाते, क्या यह भी मानने योग्य नहीं?

उत्तर—नहीं। उस तलाब का नाममात्र अमृतसर है। जब कभी

जङ्गल होगा, तब उसका जल अच्छा होगा। इससे उसका नाम अमृतसर धरा होगा। जो अमृत होता तो पुराणियों के मानने के तुल्य कोई क्यों मरता? भित्ती की कुछ बनावट वैसी होगी जिससे नमती होगी और गिरती न होगी। रीठे कलम के पैमदी होंगे अथवा गपोड़ा होगा। रेवालसर में बेड़ा तरने में कुछ कारीगरी होगी। अमरनाथ में बर्फ के पहाड़ बनते हैं तो जल जमके छोटे लिंग का बनना कौन आश्चर्य है? और कबूतर के जोड़े पालित होंगे, पहाड़ की आड़ में से पोपजी छोड़ते होंगे। दिखलाकर टका हरते होंगे।

प्रश्न—'हरद्वार' स्वर्ग का द्वार, 'हर की पीढी' में स्नान करे तो पाप छूट जाते, 'तपोवन' में रहने से तपस्वी होता। 'देवप्रयाग', गङ्गोत्तरी में 'गोमुख', उत्तरकाशी में 'गुप्तकाशी', 'त्रियुगीनारायण' के दर्शन होते हैं। 'केदार' और 'बद्रीनारायण' की पूजा छः महींने तक मनुष्य और छः महीने तक देवता करते हैं। महादेव का मुख नैपाल में पशुपति; चूतड़ केदार और तुङ्गनाथ में; जानु और पग अमरनाथ में। इनके दर्शन-पर्शन-स्नान करने से मुक्ति हो जाती है। वहाँ केदार और बद्री से स्वर्ग जाना चाहै तो जा सकता है, इत्यादि बातें कैसी हैं?

उत्तर—हरद्वार उत्तर पहाड़ों में जाने का एक मार्ग का आरम्भ है। 'हर की पीढी'' एक स्नान के लिये कुण्ड की सीढ़ियों को बनाया है। सच पूछो तो 'हाड़पीढ़ी' है, क्योंकि देशदेशान्तर के मृतकों के हाड़ उसमें पड़ा करते हैं। पाप कभी कहीं नहीं छूट सकता विना भोगे, अथवा नहीं कटते। 'तपोवन' जब होगा तब होगा, अब तो 'भिक्षुकवन' है। 'तपोवन' में जाने, रहने से तप नहीं होता, किन्तु तप तो करने से होता है, क्योंकि वहाँ बहुत से दुकानदार झूठ बोलनेवाले भी रहते हैं। '**हिमवतः प्रभवति गङ्गा**' पहाड़ के ऊपर से जल गिरता है। गोमुख का आकार पोपलीला से बनाया होगा और वही पहाड़ पोप का स्वर्ग है। वहाँ उत्तरकाशी आदि स्थान ध्यानियों के लिए अच्छा है, परन्तु दुकानदारों के लिए वहाँ भी दुकानदारी है। देवप्रयाग पुराण के गपोड़ों की लीला है, अर्थात् जहाँ अलखनन्दा और गङ्गा मिली है, इसलिए वहाँ देवता वसते हैं, ऐसे गपोड़े न मारें तो वहाँ कौन जाय और टका कौन देवे? गुप्तकाशी तो नहीं है, वह तो प्रसिद्ध

काशी है। तीन युग की धूनी तो नहीं दिखती परन्तु पोपों की दश-बीस पीढ़ी की होगी, जैसी खाखियों की धूनी और पार्सियों की अग्यारी सदैव जलती रहती है। तप्तकुण्ड भी पहाड़ों के भीतर उष्मा गर्मी होती है, उसमें तपकर जल आता है। उसके पास दूसरे कुण्ड में ऊपर का जल वा जहाँ गर्मी नहीं, वहाँ का आता है, इससे ठण्डा है। केदार का स्थान—वह भूमि बहुत अच्छी है, परन्तु वहाँ भी एक जमे हुए पत्थर पर पोप वा पोप के चेलों ने मन्दिर बना रक्खा है। वहाँ महन्त पुजारी पण्डे '**आँख के अन्धे गाँठ के पूरों**' से माल लेकर विषयानन्द करते हैं। वैसे ही 'बद्रीनारायण' में ठग-विद्यावाले बहुत से बैठे हैं। रावलजी वहाँ के मुख्य हैं। एक स्त्री छोड़ अनेक रख बैठे हैं। पशुपति एक मन्दिर और पञ्चमुखी मूर्त्ति का नाम धर रक्खा है। जब कोई न पूछे तभी पोपलीला बलवती होती है। परन्तु जैसे तीर्थ के धूर्त धनहरे होते हैं, वैसे पहाड़ी लोग नहीं होते। भूमि बड़ी रमणीय और पवित्र है।

प्रश्न—विन्ध्याचल में 'विन्ध्येश्वरी काली अष्टभुजा' प्रत्यक्ष सत्य है। विन्ध्येश्वरी तीन समय में तीन रूप बदलती है और उसके बाड़े में मक्खी एक भी नहीं होती। प्रयाग तीर्थराज वहाँ मुंड मुण्डाये सिद्ध, गङ्गा-जमुना के सङ्गम में स्नान करने से इच्छासिद्धि होती है। वैसे ही अयोध्या कई वार उड़कर सब वस्ती सहित स्वर्ग में चली गई। मथुरा सब तीर्थों से अधिक, वृन्दावन लीलास्थान और गोवर्द्धन व्रजयात्रा बड़े भाग्य से होती है। सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र में लाखों मनुष्य जाते आते हैं, क्या ये सब बातें अन्यथा हैं।

उत्तर—प्रत्यक्ष तो आँखों से तीनों मूर्त्तियाँ दीखती हैं, पाषाण की मूर्त्तियाँ हैं। और तीन काल में तीन प्रकार के रूप होने का कारण पुजारी लोगों के वस्त्र आभूषण पहिराने की चतुराई है और मक्खियाँ सहस्रों-लाखों होती हैं, मैंने अपनी आँख से देखा है। प्रयाग में कोई नापित श्लोक बनानेहारा अथवा पोपजी को कुछ देके मुण्डाने का माहात्म्य बनाया वा बनवाया होगा। प्रयाग में स्नान करके स्वर्ग को जाता तो, घर में आता कोई भी नहीं दीखता, किन्तु घर को आते हुए दीखते हैं। अथवा जो कोई वहाँ डूब मरता और उसका जीव भी आकाश में वायु

के साथ घूम कर जन्म लेता होगा। तीर्थराज भी नाम पोपों ने धरा है। जड़ में राजाप्रजाभाव कभी नहीं हो सकता। यह बड़ी असम्भव बात है कि अयोध्या नगरी वस्ती, कुत्ते, गधे, भङ्गी, जाजरू सहित तीन वार स्वर्ग में गई। स्वर्ग में तो नहीं गई, वहीं की वहीं है, परन्तु पोपजी के मुख-गपोड़ों में अयोध्या स्वर्ग को उड़ गई। यह गपोड़ा शब्दरूप उड़ता फिरता है। ऐसे ही नैमिषारण्य आदि की भी पोपलीला जाननी। '**मथुरा तीन लोक से न्यारी**' तो नहीं परन्तु उसमें तीन जन्तु बड़े लीलाधारी हैं कि जिनके मारे जल, स्थल और अन्तरिक्ष में किसी को सुख मिलना कठिन है। एक चौबे जो कोई स्नान करने जाय, अपना कर लेने को खड़े रहकर बकता रहता है "लाओ यजमान! भांग-मर्ची पीवें और लड्डू खावें।" दूसरे जल में कछुवे काट ही खाते हैं, जिनके मारे स्नान करना भी घाट पर कठिन पड़ता है। तीसरे आकाश के ऊपर लाल मुख के बन्दर पगड़ी, टोपी, गहने, जूते तक भी न छोड़ें, काट खावें, धक्के दे गिरा मार डालें, और ये तीनों पोप और पोपजी के चेलों के पूजनीय हैं। मनों चना आदि अन्न कछुए, और बन्दरों को चना गुड़ आदि और चौबों की दक्षिणा और लड्डुओं से उनके सेवक सेवा किया करते हैं। वृन्दावन जब था तब था, अब तो वेश्यावनवत् लल्ला-लल्ली और गुरु-चेली आदि की लीला फैल रही है। वैसे ही दीपमालिका का मेला, गोवर्द्धन और व्रजयात्रा में भी पोपों की बन पड़ती है। कुरुक्षेत्र में भी वही जीविका की लीला समझ लो। इनमें जो कोई धार्मिक, परोपकारी पुरुष है, इस पोपलीला से पृथक् हो जाता है।

प्रश्न—यह मूर्त्तिपूजा और तीर्थ सनातन से चले आते हैं, झूठे क्योंकर हो सकते हैं?

उत्तर—तुम सनातन किसको कहते हो? जो सदा से चला आता है। जो यह सदा से होता तो वेद और ब्राह्मणादि ऋषिमुनिकृत पुस्तकों में इनका नाम क्यों नहीं? यह मूर्त्तिपूजा अढ़ाई-तीन सहस्र वर्ष के इधर-इधर वाममार्गी और जैनियों से चली है। प्रथम आर्यावर्त्त में नहीं थी। और यह तीर्थ भी नहीं थे। जब जैनियों ने गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुञ्जय और आबू आदि तीर्थ बनाये, उनके अनुकूल इन

लोगों ने भी बना लिए। जो कोई इनके आरम्भ की परीक्षा करना चाहै, वे पण्डों की पुरानी से पुरानी बही, तांबे के पत्र लेख आदि देखें, तो निश्चय हो जाएगा कि ये सब तीर्थ पाँच सौ अथवा एक सहस्र वर्ष से इधर ही बने हैं। सहस्र वर्ष के उधर का लेख किसी के पास नहीं निकलता, इससे आधुनिक हैं।

प्रश्न—जो-जो तीर्थ वा नाम का माहात्म्य अर्थात् जैसे '**अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति**' [काशीमाहात्म्य, काशीखण्ड] इत्यादि बातें सच्ची हैं वा नहीं?

उत्तर—नहीं। क्योंकि जो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रों को धन, राज; अन्धों को आँख मिलती! कोढ़ियों का कोढ़ आदि रोग छूट जाता; ऐसा नहीं होता। इसलिए पाप वा पुण्य किसी का नहीं छूटता।

प्रश्न— **गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।**
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ १॥

[ब्रह्मपुराण अ० १७५। श्लो० ८२; पद्मपुराण उत्तरखण्ड अ० २३। २]

हरिर्हरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम्॥ २॥

[पद्मपुराण उ० ख० ७२। १२]

प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशिपापं विनश्यति।
आजन्मकृतं मध्याह्ने सायाह्ने सप्तजन्मनाम्॥ ३॥

—ये पोपपुराण के श्लोक हैं। [तीर्थदर्पण पण्डाअर्पण-परिच्छेद २]

जो सैंकड़ों-सहस्रों कोश दूर से भी गङ्गा-गङ्गा कहे, उसके सब पाप नष्ट होकर वह विष्णुलोक अर्थात् वैकुण्ठ को जाता है॥ १॥

'हरि' इस दो अक्षर के नामोच्चारण से सब पाप को हर लेता है, वैसे ही राम, कृष्ण, शिव, भगवती आदि नामों का माहात्म्य है॥ २॥

और जो मनुष्य प्रातःकाल में 'शिव' अर्थात् लिङ्ग वा उसकी मूर्त्ति का दर्शन करे तो रात्रि में किया हुआ, मध्याह्न में दर्शन से जन्म भर का, सायङ्काल में दर्शन करने से सात जन्मों के पाप छूट जाते हैं॥ ३॥ यह दर्शनमाहात्म्य क्या झूठा हो जाएगा?

उत्तर—मिथ्या होने में क्या शङ्का? क्योंकि गङ्गा वा हरे, राम, कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती नामस्मरण से पाप कभी नहीं छूटता।

जो छूटे तो दुःखी कोई न रहै। और पाप करने से कोई भी न डरे, जैसे आजकल पोपलीला में पाप बढ़ कर हो रहे हैं। क्योंकि मूढ़ों को विश्वास है कि हम पाप कर, नामस्मरण वा तीर्थयात्रा करेंगे तो पापों की निवृत्ति हो जायगी। इसी विश्वास पर पाप करके इस लोक और परलोक का नाश करते हैं। और किया हुआ पाप भोगना ही पड़ता है।

प्रश्न—तो कोई तीर्थ नामस्मरण सत्य है वा नहीं?

उत्तर—है। वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का सङ्ग; परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्य मानना, सत्य करना; ब्रह्मचर्य्य; आचार्य्य, अतिथि, माता, पिता की सेवा; परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना; शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्तपुरुषार्थ, ज्ञान-विज्ञान आदि शुभगुण-कर्म दुःखों से तारनेवाले होने से **तीर्थ** हैं। और जो जल-स्थलमय हैं, वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते। क्योंकि '**जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि**' मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उनका नाम '**तीर्थ**' है। जल-स्थल तरानेवाले नहीं, किन्तु डुबाकर मारनेवाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम '**तीर्थ**' हो सकता है, क्योंकि उनसे भी समुद्र आदि को तरते हैं।

समानतीर्थे वासी॥ १॥   —अष्टा० [४।४।१०७]

नमस्तीर्थ्याय च॥ २॥   —यजुः० अ० १६ [मं० ४२]

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य्य [से] और एक शास्त्र को साथ-साथ पढ़ते हों, वे सब 'सतीर्थ्य' अर्थात् समानतीर्थसेवी होते हैं॥ १॥

जो वेदादिशास्त्र और सत्यभाषणादि धर्म-लक्षणों में साधु हो, उसको अन्नादि पदार्थ देना और उनसे विद्या लेनी इत्यादि '**तीर्थ**' कहाते हैं॥ २॥

'**नामस्मरण**' इसको कहते हैं कि—**यस्य नाम महद्यशः॥**

—यजुः० [३२।३]

परमेश्वर का नाम बड़े 'यश' अर्थात् धर्मयुक्त कामों का करना है। जैसे ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान् आदि नाम परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव से हैं। जैसे 'ब्रह्म' सबसे बड़ा, 'परमेश्वर' ईश्वरों का ईश्वर, 'ईश्वर' सामर्थ्ययुक्त, 'न्यायकारी' कभी अन्याय नहीं करता, 'दयालु' सब पर कृपादृष्टि रखता, 'सर्वशक्तिमान्'

अपने सामर्थ्य ही से सब जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करता, सहाय किसी का नहीं लेता, 'ब्रह्मा' विविध जगत् के पदार्थों का बनानेहारा, 'विष्णु' सबमें व्यापक होकर रक्षा करता, 'महादेव' सब देवों का देव, 'रुद्र' प्रलय करनेहारा आदि नामों के अर्थों को अपने में धारण करे। अर्थात् बड़े कामों से बड़ा हो, समर्थों में समर्थ हो, सामर्थ्यों को बढ़ाता जाय, अधर्म कभी न करे, सब पर दया रक्खे, सब प्रकार के साधनों को समर्थ करे, शिल्पविद्या से नाना प्रकार के पदार्थों को बनावे, सब संसार में अपने आत्मा के तुल्य सुख-दुःख समझे, सबकी रक्षा करे, विद्वानों में विद्वान् होवे, दुष्ट कर्म का प्रलय और दुष्ट कर्म करनेवालों को प्रयत्न से दण्ड और सज्जनों की रक्षा करे। इस प्रकार परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल अपने गुण-कर्म-स्वभाव को करते जाना ही परमेश्वर का **नामस्मरण** है।

प्रश्न— **गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।**
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

[गुरुगीता गुरुमाहात्म्य प्रकरण श्लोक १९]

इत्यादि गुरुमाहात्म्य तो सच्चा है? गुरु के पग धोके पीना, जैसी आज्ञा करे वैसा करना, गुरु लोभी हो तो वामन के समान, क्रोधी हो तो नरसिंह के सदृश, मोही हो तो राम के तुल्य और कामी हो तो कृष्ण के समान गुरु को जानना। चाहै गुरुजी कैसा ही पाप करे तो भी अश्रद्धा न करनी, सन्त वा गुरु के दर्शन को जाने में पग-पग में अश्वमेध का फल होता है, यह बात ठीक है वा नहीं?

उत्तर—ठीक नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परब्रह्म परमेश्वर के नाम हैं। उसके तुल्य गुरु कभी नहीं हो सकता। यह गुरुमाहात्म्य गुरुगीता भी एक बड़ी पोपलीला है। गुरु तो माता, पिता, आचार्य और अतिथि होते हैं। उनकी सेवा करनी, उनसे विद्या-शिक्षा लेना-देना, शिष्य और गुरु का काम है। परन्तु जो गुरु लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो, तो उसको सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न माने तो 'अर्घ्यपाद्य' अर्थात् ताडना दण्ड प्राणहरण तक भी करने में कुछ भी दोष नहीं। जो विद्यादि सद्गुणों में गुरुत्व नहीं है, झूठ-मूठ

कण्ठी, तिलक, वेदविरुद्ध मन्त्रोपदेश करनेवाले हैं, वे गुरु ही नहीं किन्तु गडरिये जैसे हैं। जैसे गडरिये अपनी भेड़-बकरियों से दूध आदि से प्रयोजन सिद्ध करते हैं, वैसे ही शिष्यों के, चेले-चेलियों के धन हरके अपना प्रयोजन करते हैं। वे—

गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेलें दाव।
भवसागर में डूबते, बैठ पत्थर की नाव॥

गुरु समझें कि चेले-चेली कुछ न कुछ देवेहीगा और चेला समझे कि चलो गुरु झूठे सौगंध खाने, पाप छुड़ाने आदि लालच से, दोनों कपटमुनि भवसागर के दुःख में डूबते हैं, जैसे पत्थर की नौका में बैठनेवाले समुद्र में डूब मरते हैं। ऐसे गुरु और चेलों के मुख पर धूड़-राख पड़े। उसके पास कोई भी खड़ा न रहै, जो रहै वह दुःखसागर में पड़ेगा। जैसी पोपलीला पुजारी-पुराणियों ने चलाई है, वैसी इन गडरिये गुरुओं ने भी लीला मचाई है। यह सब काम स्वार्थी लोगों का है। जो परमार्थी लोग हैं, वे आप दुःख पावें तो भी जगत् का उपकार करना नहीं छोड़ते। और गुरुमाहात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी इन्हीं लोभी, कुकर्मी गुरुओं ने बनाई है।

प्रश्न—अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः॥ १॥ [रेवाखण्ड]
इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्॥ २॥
—महाभारत [आदिपर्व १।२६७]
पुराणानि खिलानि च॥ ३॥ —मनु० [३।२३२]
इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः॥ ४॥
—छान्दोग्य० [७।१।४]
दशमेऽहनि किंचित्पुराणमाचक्षीत॥ ५॥
[तुलना—शतपथ १३।३।१।१३]
पुराणविद्या वेदः॥ ६॥ सूत्रम् [तु०—शतपथ १३।३।१।१३]

अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यासजी हैं। व्यासवचन का प्रमाण अवश्य करना चाहिये॥ १॥

इतिहास महाभारत, अठारह पुराणों से वेदों का अर्थ पढ़ें-पढ़ावें, क्योंकि इतिहास और पुराण वेदों ही के अर्थ और अनुकूल हैं॥ २॥

पितृकर्म में पुराण और 'खिल' अर्थात् हरिवंश की कथा सुनें॥ ३॥

इतिहास और पुराण पञ्चमवेद कहाते हैं॥ ४॥

अश्वमेध की समाप्ति में दशमें दिन थोड़ी-सी पुराण की कथा सुनें॥ ५॥

पुराणविद्या वेदार्थ के जनाने ही से वेद हैं॥ ६॥

इत्यादि प्रमाणों से पुराणों का प्रमाण और इनके प्रमाणों से मूर्त्तिपूजा और तीर्थों का भी प्रमाण है, क्योंकि पुराणों में मूर्त्तिपूजा और तीर्थों का विधान है।

उत्तर—जो अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यासजी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते। क्योंकि शारीरकसूत्र, योगशास्त्र के भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यासजी बड़े विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते। और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परस्पर विरोधी लोगों ने भागवतादि नवीन कपोलकल्पित ग्रन्थ बनाये हैं, उनमें व्यासजी के गुणों का लेश भी नहीं था। और वेदशास्त्रविरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यासजी सदृश विद्वानों का काम नहीं, किन्तु यह काम विरोधी, स्वार्थी, अविद्वान् पामरों का है। इतिहास और पुराण शिवपुराणादि का नाम नहीं, किन्तु—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथानाराशंसीरिति॥
—यह ब्राह्मण और सूत्रों का वचन है॥
[तैत्ति० आरण्यक २।९; आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।३।१]

ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थों ही के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी ये पांच नाम हैं। **(इतिहास)** जैसे जनक और याज्ञवल्क्य का संवाद। **(पुराण)** जगदुत्पत्ति आदि का वर्णन आख्यान। **(कल्प)** वेद शब्दों के सामर्थ्य का वर्णन, अर्थ निरूपण करना। **(गाथा)** किसी का दृष्टान्त दार्ष्टान्तरूप कथा प्रसङ्ग कहना। **(नाराशंसी)** मनुष्यों के प्रशंसनीय वा अप्रशंसनीय कर्मों का कथन करना। इनही से वेदार्थ का बोध होता है।

'पितृकर्म' अर्थात् ज्ञानियों के प्रसंग में कुछ सुनना, अश्वमेध के अन्त में भी इन्हीं का सुनना लिखा है। क्योंकि जो व्यासकृत ग्रन्थ हैं,

उनका सुनना-सुनाना व्यासजी के जन्म के पश्चात् हो सकता है, पूर्व नहीं। जब व्यासजी का जन्म भी नहीं था तब वेदार्थ को पढ़ते-पढ़ाते सुनते-सुनाते थे। इसीलिये सब से प्राचीन ब्राह्मण-ग्रन्थों ही में यह सब घटना हो सकती हैं, इन श्रीमद्भागवत, शिवपुराणादि मिथ्यावाद दूषित ग्रन्थों में नहीं घट सकती। जब व्यासजी ने वेद पढ़े और पढ़ाकर वेदार्थ फैलाया, इसीलिये उनका नाम 'वेदव्यास' हुआ। क्योंकि व्यास कहते हैं वार-पार की मध्य रेखा को; अर्थात् ऋग्वेद के आरम्भ से लेकर अथर्ववेद के पार पर्यन्त चारों वेद पढ़े थे और शुकदेव तथा जैमिनि आदि शिष्यों को पढ़ाये भी थे। नहीं तो उनका जन्म का नाम 'कृष्णद्वैपायन' था। जो कोई यह कहते हैं कि "वेदों को व्यासजी ने इकट्ठे किये" यह बात झूठी है। क्योंकि व्यासजी के पिता, पितामह, प्रपितामह; पराशर, शक्ति, और वशिष्ठ; और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे, यह बात क्योंकर घट सके?

प्रश्न—पुराणों में सब बातें झूठी हैं, वा कोई सच्ची भी है?

उत्तर—बहुत सी बातें झूठी हैं और कोई 'घुणाक्षरन्याय' से सच्ची भी है। जो सच्ची हैं वह वेदादि सत्यशास्त्रों की और जो झूठी हैं, वे इन पोपों के पुराणरूप घर की हैं। जैसे शिवपुराण में शैवों ने शिव को परमेश्वर मानके विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, गणेश और सूर्य्यादि को उनके दास ठहराये। वैष्णवों ने विष्णुपुराण आदि में विष्णु को परमात्मा माना और शिव आदि को विष्णु के दास। देवीभागवत में देवी परमेश्वरी और शिव, विष्णु आदि उसके किङ्कर बनाये। 'गणेशखण्ड' में गणेश को ईश्वर और शेष सबको दास बनाये। भला यह बात इन सम्प्रदायी पोपों की नहीं तो किनकी है? एक मनुष्य के बनाने में ऐसी परस्पर विरुद्ध बात नहीं होती, तो विद्वान् के बनाये में कभी नहीं आ सकती। इसमें एक बात को सच्ची मानें, तो दूसरी झूठी और जो दूसरी को सच्ची मानें, तो अन्य सब झूठी होती हैं। शिवपुराणवाले शिव से, विष्णुपुराणवालों ने विष्णु से, देवीपुराणवाले ने देवी से, गणेशखण्डवाले ने गणेश से सूर्य्यपुराणवाले ने सूर्य्य से और वायुपुराणवाले ने वायु से सृष्टि की उत्पत्ति-प्रलय लिखके पुनः एक-एक से एक-एक जो जगत् के कारण

लिखे, उनकी उत्पत्ति एक-एक से लिखी। कोई पूछे कि जो जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करनेवाला है, वह उत्पन्न और जो उत्पन्न होता है, वह सृष्टि का कारण कभी हो सकता है वा नहीं? तो सिवाय चुप रहने के कुछ भी नहीं कह सकते। और इन सबके शरीर की उत्पत्ति भी इसी से हुई होगी, फिर वे आप सृष्टि-पदार्थ और परिच्छिन्न होकर संसार की उत्पत्ति के कर्त्ता क्योंकर हो सकते हैं? और उत्पत्ति भी विलक्षण-विलक्षण प्रकार से मानी है जो कि सर्वथा असम्भव है। जैसे—

'शिवपुराण' में शिव ने इच्छा की, मैं सृष्टि करूँ, तो एक 'नारायण' जलाशय को उत्पन्न कर उसकी नाभि से कमल, कमल में से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उसने देखा कि सब जलमय है। जल की अञ्जलि उठा, देख, जल में पटक दिया। उससे एक बुद्‌बुदा और बुद्‌बुदा में से एक पुरुष हुआ। उसने ब्रह्मा से कहा कि 'हे पुत्र! सृष्टि कर।' ब्रह्मा ने उससे कहा कि "मैं तेरा पुत्र नहीं किन्तु तू मेरा पुत्र है।" उनमें विवाद हुआ और दिव्यसहस्र-वर्षपर्यन्त दोनों जल पर लड़ते रहे। तब महादेव ने विचार किया कि जिनको सृष्टि करने के लिये भेजा था, वे दोनों आपस में लड़ रहे हैं। तब उन दोनों के बीच में से एक तेजोमय लिङ्ग उत्पन्न हुआ और वह शीघ्र आकाश में चला गया। उसको देखके दोनों साश्चर्य हो गये। विचारा कि इसका आदि-अन्त लेना चाहिये। जो आदि-अन्त लेके शीघ्र आवे वह पिता और जो पीछे वा थाह लेके न आवे वह पुत्र कहावे। विष्णु कूर्म का स्वरूप धरके नीचे को चला और ब्रह्मा हंस का शरीर धारण करके ऊपर को उड़ा। दोनों मनोवेग से चले। दिव्यसहस्र-वर्षपर्य्यन्त दोनों चलते रहे तो भी उसका अन्त न पाया। तब नीचे से ऊपर विष्णु और ऊपर से नीचे ब्रह्मा चला। ब्रह्मा ने विचारा कि जो वह छेड़ा ले आया होगा तो पुत्र बनना पड़ेगा। ऐसा सोच रहा था कि उसी समय एक गाय और एक केतकी का वृक्ष ऊपर से उतर आया। उनसे ब्रह्मा ने पूछा "कि तुम कहाँ से आये?" उन्होंने कहा "हम सहस्र वर्षों से इस लिङ्ग के आधार से चले आते हैं।" ब्रह्मा ने पूछा कि "इस लिङ्ग का थाह है वा नहीं?" उन्होंने कहा कि "नहीं"। ब्रह्मा ने उनसे कहा

कि "तुम हमारे साथ चलो और ऐसी साक्षी दो कि मैं इस लिङ्ग के शिर पर दूध की धारा वर्षाती थी और वृक्ष कहे कि मैं फूल वर्षाता था, ऐसी साक्षी देओ तो मैं तुमको ठिकाने पर ले चलूं।" उन्होंने कहा कि "हम झूठी साक्षी नहीं देंगे।" तब ब्रह्मा कुपित होकर बोला—"जो साक्षी न दोगे तो मैं तुमको अभी भस्म कर देता हूँ।" तब दोनों ने डरके कहा—"हम जैसी तुम कहते हो, वैसी साक्षी देवेंगे।" तब तीनों नीचे की ओर चले। विष्णु पहले ही आ गये थे, ब्रह्मा भी पहुँचा। विष्णु से पूछा कि "तू थाह ले आया वा नहीं?" तब विष्णु बोला "मुझको इसका थाह नहीं मिला।" ब्रह्मा ने कहा "मैं ले आया।" विष्णु ने कहा "कोई साक्षी दो।" तब गाय और वृक्ष ने साक्षी दी—"हम दोनों लिङ्ग के शिर पर थे।" तब लिङ्ग में से शब्द निकला और शाप दिया जिससे "तू झूठ बोला, इसलिये तेरा फूल मुझ वा अन्य देवता पर जगत् में कहीं नहीं चढ़ेगा और जो कोई चढ़ावेगा उसका सत्यानाश होगा।" गाय को शाप दिया कि "जिस मुख से तू झूठ बोली, उसी से विष्ठा खाया करेगी। तेरे मुख की पूजा कोई न करेगा, किन्तु पूंछ की करेंगे।" और विष्णु को वर दिया "जिससे तू सत्य बोला, इससे तेरी पूजा सर्वत्र होगी।" और ब्रह्मा को श्राप दिया कि जिससे "तू मिथ्या बोला, इससे तेरी पूजा संसार में कहीं न होगी।" पुनः दोनों ने लिङ्ग की स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर उस लिङ्ग में से एक जटाजूट मूर्त्ति निकल आई और कहा कि "तुमको मैंने सृष्टि करने के लिये भेजा था, झगड़े में क्यों लग रहे?" ब्रह्मा और विष्णु ने कहा कि "हम विना सामग्री सृष्टि कहाँ से करें।" तब महादेव ने अपनी जटा में से भस्म का गोला निकाल कर दिया कि "जाओ, इसमें से सब सृष्टि बनाओ" इत्यादि।

कोई इन पुराणों के बनानेवाले पोपों से पूछे कि जब सृष्टितत्त्व और पञ्चमहाभूत भी नहीं थे तो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के शरीर, जल, कमल, लिङ्ग, गाय और केतकी का वृक्ष और भस्म तुम्हारे बाबा के घर में से आ गिरे?

वैसे ही 'भागवत' में विष्णु की नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा और ब्रह्मा के दहिने पग के अंगूठे से स्वायंभुव और बायें अंगूठे से

सत्यरूपा राणी, ललाट से रुद्र और मरीचि आदि दश पुत्र, उनसे दक्ष प्रजापति, उनकी तेरह लड़कियों का विवाह कश्यप से, उनमें से दिति से दैत्य, दनु से दानव, अदिति से आदित्य, विनता से पक्षी, कद्रू से सर्प, सरमा से कुत्ते, स्याल आदि और अन्य स्त्रियों से हाथी, घोड़े, ऊँट, गधा, भैंसा, घास, फूस और बबूर का वृक्ष काँटे सहित उत्पन्न हो गया।

वाह रे! भागवत के बनानेवाले लालभुजक्कड़? तुम को ऐसी मिथ्या बातें लिखने में लज्जा शर्म न आई। भला! स्त्री-पुरुष के रजवीर्य से मनुष्य तो बनते ही हैं परन्तु परमेश्वर की सृष्टिक्रम के विरुद्ध पक्षी, सर्प कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। हाथी, ऊँट, सिंह के स्थित होने का अवकाश स्त्री के गर्भाशय में हो सकता है? और सिंह आदि उत्पन्न होकर अपने मा-बाप को क्यों न खा गये? इत्यादि झूठ बातों को वे अन्धे पोप और भीतर-बाहर की आँख फूटे हुए उनके चेले सुनते-मानते हैं। ये मनुष्य हैं वा अन्य हैं? इन भागवतादि पुराणों के बनानेवाले जन्मते नहीं, गर्भ में ही नष्ट हो जाते वा जन्म कर उसी समय मर जाते। क्योंकि इन पापों से बचते, तो आर्यावर्त्त देश दुःखों से बच जाता।

प्रश्न—इन बातों में विरोध नहीं आ सकता। क्योंकि '**जिसका विवाह उसी के गीत**'। जब विष्णु की स्तुति करने लगे, तब विष्णु को परमेश्वर अन्य को दास, जब शिव के गुण गाने लगे, तब शिव को परमात्मा, अन्य को किङ्कर बनाया। और पमरेश्वर की माया में सब बन सकता है। मनुष्य से पशु आदि और पशु आदि से मनुष्यादि की उत्पत्ति परमेश्वर कर सकता है। देखो! विना कारण अपनी माया से सब सृष्टि खड़ी कर दी है। उसमें कौनसी बात अघटित है? जो करना चाहै, सो सब कर सकता है।

उत्तर—अरे भोले! विवाह में जिसके गीत गाते हैं, उसको सबसे बड़ा और दूसरों को छोटा वा निन्दा अथवा उसको सबका बाप तो नहीं बनाते? कहो पोपजी! तुम भाट और खुशामदी चारणों से बढ़कर गप्पी हो अथवा नहीं? कि जिसके पीछे लगो; उसी को सबसे बड़ा बनाओ और जिससे विरोध करो, उसको सबसे नीच ठहराओ। तुमको सत्य और धर्म से क्या प्रयोजन, किन्तु तुमको तो अपने स्वार्थ ही से काम है।

माया मनुष्य में हो सकती है, जो कि छली-कपटी हैं, उन्हीं को '**मायावी**' कहते हैं। परमेश्वर में छल-कपटादि दोष न होने से, उसको मायावी नहीं कह सकते। जो आदि सृष्टि में कश्यप और कश्यप की स्त्रियों से पशु, पक्षी, सर्प्प, वृक्षादि हुए होते तो आजकल भी वैसे सन्तान क्यों नहीं होते? सृष्टिक्रम जो पहिले लिख आये वही ठीक है। और अनुमान है कि पोपजी यहीं से धोखा खाकर बके होंगे—

तस्मात् काश्यप्य इमाः प्रजाः॥ [तुलना—शत० ७।४।१।५]

शतपथ में यह लिखा है कि यह सब सृष्टि 'कश्यप' की बनाई हुई है।

कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति॥

—निरु० [अ० २।खं० १; तुलना—तै० आ० १।८]

सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का नाम 'कश्यप' इसलिये है कि 'पश्यक' अर्थात् '**पश्यतीति पश्यः, पश्य एव पश्यकः**' जो निर्भ्रम होकर चराचर जगत्, सब जीव और इनके कर्म, सकल विद्याओं को यथावत् देखता है और '**आद्यन्तविपर्ययश्च**' इस महाभाष्य [३।१।२३] के वचन से आदि का अक्षर अन्त और अन्त का वर्ण आदि में आने से 'पश्यक' से 'कश्यप' बन गया है। इसका अर्थ न जान के भांग के लोटे चढ़ा, अपना जन्म सृष्टिविरुद्ध कथन करने में नष्ट किया।

जैसे 'मार्कण्डेयपुराण' के दुर्गापाठ में देवों के शरीरों से तेज निकल के एक देवी बनी, उसने 'महिषासुर' को मारा। 'रक्तबीज' के शरीर से एक बिन्दु भूमि पर पड़ने से उसके सदृश रक्तबीज के उत्पन्न होने से सब जगत् में रक्तबीज भर जाना, रुधिर की नदियाँ चलनी आदि गपोड़े बहुत से लिख रक्खे हैं। जब रक्तबीज से सब जगत् भर गया था तो देवी का सिंह और देवी कहां ठहरी थी? जो कहो कि देवी से दूर-दूर रक्तबीज थे तो सब जगत् रक्तबीज से नहीं भरा था? और सब जंगली पशु, समुद्र की मच्छियाँ, पक्षी, वृक्ष आदि कहाँ रहे थे? यहाँ यही निश्चित जानना कि दुर्गापाठ बनानेवाले के घर में स्थित होंगे। देखिये! क्या ही असम्भव कथा का गपोड़ा भङ्ग की लहरी में उड़ाया, जिनका ठौर न ठिकाना।

जिसको 'श्रीमद्भागवत' कहते हैं, उसकी लीला सुनो। ब्रह्माजी को नारायण ने चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश किया है—

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया॥

—भागवत [स्कं० २।९।३०]

हे ब्रह्माजी! तू मेरा परमगुह्य ज्ञान जो विज्ञान और रहस्ययुक्त और धर्मार्थ, काम, मोक्ष का अङ्ग साधन है, उसीका मुझ से ग्रहण कर। जब विज्ञानयुक्त ज्ञान कहा तो 'परम' अर्थात् ज्ञान का विशेषण रखना व्यर्थ है और गुह्य विशेषण से रहस्य भी पुनरुक्त है। जब मूल श्लोक अनर्थक हैं तो ग्रन्थ अनर्थक क्यों नहीं? जब भागवत का मूल ही झूठा तो उसका वृक्ष झूठा क्यों नहीं होगा? ब्रह्माजी को वर दिया कि—

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्॥

—भागव० [स्कं० २।९] श्लोक [३६]

आप 'कल्प' सृष्टि और विकल्प 'प्रलय' में मोह को प्राप्त कभी नहीं होंगे, ऐसा लिखके पुनः दशमस्कन्ध में मोहित होके वत्सहरण किया। इन दोनों में से एक बात सच्ची, दूसरी झूठी। ऐसा होकर दोनों बात झूठी। जब वैकुण्ठ में राग, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या, दुःख नहीं है तो सनकादिकों को वैकुण्ठ के द्वार में क्रोध क्यों हुआ? जो क्रोध हुआ तो वह स्वर्ग ही नहीं। जब जय, विजय द्वारपाल थे, स्वामी की आज्ञा पालनी अवश्य थी। उन्होंने सनकादिकों को रोका, तो क्या अपराध हुआ? इस पर विना अपराध शाप ही नहीं लग सकता। जब शाप लगा कि तुम पृथिवी में गिर पड़ो, इसके कहने से यह सिद्ध होता है कि वहां पृथिवी न होगी। आकाश, वायु, अग्नि और जल होगा। जो ऐसा, तो द्वार, मन्दिर और जल किसके आधार थे? पुनः जय, विजय ने सनकादिकों की स्तुति की 'महाराज! पुनः हम वैकुण्ठ में कब आवेंगे?'' उन्होंने उनसे कहा कि ''जो प्रेम से नारायण की भक्ति करोगे तो सातवें जन्म और जो विरोध से भक्ति करोगे तो तीसरे जन्म वैकुण्ठ को प्राप्त होगे।'' इसमें विचारना चाहिये कि जय, विजय नारायण के नौकर थे। उनकी रक्षा और सहाय करना नारायण का कर्तव्य काम था। जो अपने

नौकरों को विना अपराध दु:ख देवें, उनको उनका स्वामी दण्ड न देवे तो उसके नौकरों की दुर्दशा कोई कर डाले। नारायण को उचित था कि जय, विजय का सत्कार और सनकादिकों को खूब दण्ड देते, क्योंकि उन्होंने भीतर आने के लिये हठ क्यों किया? और नौकरों से लड़े, क्यों शाप दिया? उनके बदले सनकादिकों को पृथिवी में डाल देना नारायण का न्याय था। जब इतना अन्धेर नारायण के घर में है, तो उसके सेवक जोकि वैष्णव कहाते हैं, उनकी जितनी दुर्दशा हो, उतनी थोड़ी है।

पुन: वे 'हिरण्याक्ष' और 'हिरण्यकशिपु' उत्पन्न हुए। उनमें से हिरण्याक्ष को वराह ने मारा। उसकी कथा इस प्रकार से लिखी है कि वह पृथिवी को चटाई के समान लपेट, शिराने धर सो गया। विष्णु [ने] वराह का स्वरूप धारण करके, उसके शिर के नीचे से पृथिवी को मुख में धर लिया। वह उठा। दोनों की लड़ाई हुई। वराह ने हिरण्याक्ष को मार डाला।

इन पोपों से कोई पूछे कि पृथिवी गोल है वा चटाई के तुल्य? तो कुछ न कह सकेंगे, क्योंकि पौराणिक लोग भूगोलविद्या के शत्रु हैं। भला, जब लपेटकर शिराने धरली, आप किस पर सोया? और वराहजी किस पर पग धर दौड़ आये? और फिर पृथिवी को तो वराहजी ने मुख में रक्खी फिर दोनों किस पर खड़े होकर लड़े? वहाँ और कोई ठहरने की जगह नहीं थी। किन्तु भागवतादि पुराण बनानेवाले पोपजी की छाती पर ठड़े होके लड़े होंगे? और फिर उस समय पोपजी किस पर सोया होगा? यह बात—'**गप्पी के घर गप्पी आये, बोलो गप्पीजी**' जब मिथ्यावादियों के घरों में दूसरे गप्पी लोग आते हैं, फिर गप्प मारने में क्या कमती, इस प्रकार ही है।

अब रहा हिरण्यकशिपु, उसका लड़का जो 'प्रह्लाद' था वह भक्त हुआ था। उसका पिता पढ़ने को भेजता था। तब वह अध्यापकों से कहता था ''मेरी पट्टी में राम-राम लिख देओ।'' जब उसके बाप ने सुना, उससे कहा ''तू हमारे शत्रु का भजन क्यों करता है?'' छोकरे ने न माना। तब उसके बाप ने उसको बाँध के पहाड़ से गिराया, कूप में डाला, परन्तु उसको कुछ न हुआ। तब उसने एक लोहे का खम्भा आगी

में तपाके उससे बोला जो तेरा इष्टदेव 'राम' सच्चा हो तो तू इसको पकड़ने से न जलेगा। प्रह्लाद पकड़ने को चला। मन में शङ्का हुई जलने से बचूंगा वा नहीं? नारायण ने उस खम्भे पर छोटी-छोटी चीटियों की पंक्ति चलाई। उसको निश्चय हुआ, झट खम्भे को जा पकड़ा। वह फट गया, उसमें से नृसिंह निकला। उसके बाप को पकड़ चीर मार डाला। और तब प्रह्लाद को चाटने लगा। प्रह्लाद से कहा ''वर माँग।'' उसने अपने पिता की सद्‌गति होनी मांगी। नृसिंह ने वर दिया ''तेरे इक्कीस पुरुषे सद्‌गति को गये।''

देखिये! यह भी दूसरे गपोड़े का भाई गपोड़ा। किसी भागवत बाँचने वा सुननेवाले को पकड़ के ऊपर पहाड़ से गिरावे तो कोई न बचावे, किन्तु चकनाचूर होकर मर जावे। प्रह्लाद को उसका पिता पढ़ने के लिये भेजता था, क्या बुरा काम किया था? और वह प्रह्लाद ऐसा मूर्ख, पढ़ना छोड़ वैरागी होना चाहता था। जो जलते हुए खम्भे से कीड़ी और प्रह्लाद न जला, इस बात को जो सच्ची माने उसको भी खम्भे के साथ लगा देना चाहिये। जो यह न जले तो जानो वह भी न जला होगा। और नृसिंह भी क्यों न जला? प्रथम तीसरे जन्म में वैकुण्ठ में आने का वर सनकादिक का था। क्या उसको तुम्हारा नारायण भूल गया? भागवत की रीति से ब्रह्मा, प्रजापति, कश्यप, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु चौथी पीढ़ी में होता है। इक्कीस पीढ़ी प्रह्लाद की हुई ही नहीं, पुन: ''इक्कीस पुरुषे सद्‌गति को गये'' कहना कितना प्रमाद है! और फिर वे ही हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु, रावण-कुम्भकरण, पुन: शिशुपाल-दन्तवक्त्र उत्पन्न हुए तो नृसिंह का वर कहाँ उड़ गया? ऐसी प्रमाद की बातें प्रमादी करते, सुनते और मानते हैं, विद्वान् नहीं।

पूतना और अक्रूरजी के विषय में देखो —

रथेन वायुवेगेन [भा० स्कं० १०। पूर्वार्द्ध ३९।३८]
जगाम गोकुलं प्रति॥ [भा० स्कं० १०।३८।१]

अक्रूरजी कंस के भेजने से वायु के समान दौड़नेवाले घोड़ों के रथ में बैठके सूर्योदय से चले और चार मील गोकुल में सूर्यास्त समय पहुँचे। सायत घोड़े भागवत बनानेवाले की परिक्रमा करते रहे होंगे? वा

मार्ग भूलकर भागवत बनानेवाले के घर में घोड़े हाकनेवाले और अक्रूरजी सो गए होंगे?

पूतना का शरीर छः कोश चौड़ा और बहुत सा लम्बा लिखा है। मथुरा और गोकुल के बीच में उसको मारकर श्रीकृष्ण ने डाल दिया। जो ऐसा होता तो मथुरा और गोकुल दोनों दबकर इस पोपजी का घर भी दब गया होगा।

'अजामेल' की कथा ऊटपटाँग लिखी है—उसने नारद के कहने से अपने लड़के का नाम 'नारायण' रक्खा था। मरते समय अपने पुत्र को पुकारा। बीच में नारायण कूद पड़े। क्या नारायण उसके अन्त:करण के भाव को नहीं जानते थे कि वह अपने पुत्र को पुकारता है, मुझको नहीं। जो ऐसा ही नाम माहात्म्य है तो आजकल भी नारायण के स्मरण करनेवालों के दु:ख छुड़ाने को क्यों नहीं आता? यदि यह बात सच्ची हो, तो क़ैदी लोग नारायण-नारायण करके क्यों नहीं छूट जाते।

ऐसा ही ज्योतिष शास्त्र से विरुद्ध सुमेरु का परिमाण लिखा है, प्रियव्रत के रथ के चक्र की लीक से समुद्र हुए। उनञ्चास कोटि योजन पृथिवी है, इत्यादि मिथ्या बातों का भागवत में कुछ पारावार नहीं।

और यह भागवत 'बोबदेव' का बनाया है, जिसके भाई 'जयदेव' ने 'गीतगोविन्द' बनाया है। उसने देखो ये श्लोक अपने बनाये 'हिमाद्रि' में लिखे हैं कि 'श्रीमद्भागवत' मैंने बनाया है, उस लेख के तीन पत्र हमारे पास थे। उनमें से एक पत्र खो गया है। उस पत्र में श्लोकों का जो आशय था उस आशय के हमने दो श्लोक बना के नीचे लिखे हैं, जिसको देखना हो, वह हिमाद्रि ग्रन्थ में देख लेवे। श्लोक—

हिमाद्रेः सचिवस्यार्थे सूचना क्रियतेऽधुना।
स्कन्धाऽध्यायकथानां च यत्प्रमाणं समासतः॥ १॥
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं च मयेरितम्।
विदुषा बोबदेवेन श्रीकृष्णस्य यशोन्वितम्॥ २॥

इसी प्रकार के नष्टपत्र में श्लोक थे। अर्थात् राजा के सचिव हिमाद्रि ने बोबदेव पण्डित से कहा कि "मुझको तुम्हारे बनाये श्रीमद्भागवत के सम्पूर्ण सुनने का अवकाश नहीं है, इसलिये तुम संक्षेप से श्लोकबद्ध

सूचीपत्र बनाओ, जिसको देखके मैं श्रीमद्भागवत की कथा को संक्षेप से जान लूं।" सो नीचे लिखा हुआ सूचीपत्र उस बोबदेव ने बनाया। उसमें से उस नष्टपत्र में दश १० श्लोक खो गये हैं, ग्यारहवें श्लोक से लिखते हैं। ये नीचे लिखे श्लोक सब बोबदेव के बनाए हैं। वे श्लोक—

बोधयन्तीति हि प्राहुः श्रीमद्भागवतं पुनः।
पञ्च प्रश्नाः शौनकस्य सूतस्यात्रोत्तरं त्रिषु॥ ११॥
प्रश्नावतारयोश्चैव व्यासस्य निर्वृतिः कृतात्।
नारदस्यात्र हेतूक्तिः प्रतीत्यर्थं स्वजन्म च॥ १२॥
सुप्तघ्न द्रोण्यभिभवस्तदस्त्रात्पाण्डवा वनम्।
भीष्मस्य स्वपदप्राप्तिः कृष्णस्य द्वारकागमः॥ १३॥
श्रोतुः परीक्षितो जन्म धृतराष्ट्रस्य निर्गमः।
कृष्णमर्त्यत्यागसूचा ततः पार्थमहापथः॥ १४॥
इत्यष्टादशभिः पादैरध्यायार्थः क्रमात् स्मृतः।
स्वपरप्रतिबन्धोनं स्फीतं राज्यं जहौ नृपः॥ १५॥
इति वै राज्ञो दार्ढ्योक्तौ प्रोक्ता द्रौणिजयादयः।
इति प्रथमः स्कन्धः॥ १॥

इत्यादि बारह स्कन्धों का सूचीपत्र इसी प्रकार बोबदेव पण्डित ने बनाकर हिमाद्रि सचिव को दिया। जो विस्तार देखना है, वह बोबदेव के बनाये हिमाद्रि ग्रन्थ में देख लेवे। इसी प्रकार अन्य पुराणों की लीला भी उन्नीस-बीस—इक्कीस एक-दूसरे से बढ़कर है।

देखो! श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव, चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम किया हो, ऐसा नहीं लिखा। और भागवत में दूध, दही, मक्खन की चोरी, कुब्जादासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीडा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण में लगाये हैं। इसको पढ़-पढ़ा सुन-सुनाके अन्य मतवाले श्रीकृष्ण की बहुतसी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्णजी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों होती?

शिवपुराण में बारह ज्योतिर्लिङ्ग लिखे हैं। उनकी कथा सर्वथा

असम्भव है। नाम धरा है ज्योतिर्लिङ्ग और जिनमें प्रकाश का लेश भी नहीं। रात्रि को विना दीप किये लिङ्ग भी अन्धेरे में नहीं दीखते, ये सब लीला पोपजी की है।

प्रश्न—जब वेद पढ़ने का सामर्थ्य नहीं रहा तब स्मृति, जब स्मृति के पढ़ने की बुद्धि नहीं रही तब शास्त्र, जब शास्त्र पढ़ने का सामर्थ्य न रहा तब पुराण बनाये केवल स्त्री-शूद्रों के लिये, क्योंकि इनको वेद पढ़ने-सुनने का अधिकार नहीं।

उत्तर—यह बात मिथ्या है। क्योंकि सामर्थ्य पढ़ने-पढ़ाने ही से होता है और वेद पढ़ने-सुनने का अधिकार सबको है। देखो! गार्गी आदि स्त्रियाँ और छान्दोग्य [प्रपाठक ४। खं० २। प्रवाक २] में जानश्रुति शूद्र ने भी वेद 'रैक्यमुनि' के पास पढ़ा था। और यजुर्वेद के २६वें अध्याय के दूसरे मन्त्र में स्पष्ट लिखा है कि वेदों के पढ़ने-सुनने का अधिकार मनुष्यमात्र को है। पुनः जो ऐसे-ऐसे मिथ्याग्रन्थ बना, लोगों को सत्यग्रन्थों से विमुख रख, जाल में फसा, अपने प्रयोजन को साधते हैं, वे महापापी क्यों नहीं?

देखो! ग्रहों का चक्र कैसा चलाया है कि जिसने विद्याहीन मनुष्यों को ग्रसित कर लिया है।

'आ कृष्णेन रजसा०'॥ १॥ [यजुः ३३।४३]
—सूर्य्य का मन्त्र।
'इमं देवाऽअसपत्नꣳ सुवध्वम्०'॥ २॥ [यजुः ९।४०]
—चन्द्र।
'अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः०'॥ ३॥ [यजुः ३।१२]—मङ्गल।
'उद्बुध्यस्वाग्ने०'॥ ४॥ [यजुः १५।५४]—बुध।
'बृहस्पते अतियदर्यो०'॥ ५॥ [यजुः २६।३]—बृहस्पति।
'शुक्रमन्धसः'॥ ६॥ [यजुः १९।७२]—शुक्र।
'शन्नो देवीरभिष्टय०'॥ ७॥ [यजुः ३६।१२]—शनि।
'कया नश्चित्र आ भुव०'॥ ८॥ [यजुः २७।३९]—राहु। और
'केतुं कृण्वन्नकेतवे०'॥ ९॥ [यजुः २९।३७]
—केतु की कण्डिका कहते हैं।

(आ कृष्णे०) यह सूर्य्य और भूमि का आकर्षण॥ १॥
दूसरा—राजगुण विधायक॥ २॥
तीसरा—अग्नि॥ ३॥
और चौथा—यजमान॥ ४॥
पाँचवाँ—विद्वान्॥ ५॥
छठा—वीर्य्य, अन्न॥ ६॥
सातवाँ—जल, प्राण और परमेश्वर॥ ७॥
आठवाँ—मित्र॥ ८॥
नववाँ—ज्ञानग्रहण के विधायक मन्त्र हैं॥ ९॥
ग्रहों के वाचक नहीं। अर्थ न जानने से भ्रमजाल में पड़े हैं।

प्रश्न—ग्रहों का फल होता है, वा नहीं?

उत्तर—जैसा पोपलीला का है, वैसा नहीं। किन्तु जैसा सूर्य्य-चन्द्रमा की किरण द्वारा उष्णता-शीतता अथवा ऋतुवत्कालचक्र के सम्बन्धमात्र से अपनी प्रकृति के अनुकूल-प्रतिकूल सुख-दुःख के निमित्त होते हैं। परन्तु जो पोपलीलावाले कहते हैं "सुनो महाराज! सेठजी! यजमानो! तुम्हारे आज आठवाँ चन्द्र-सूर्य्यादि क्रूर घर में आये हैं। अढ़ाई वर्ष का शनैश्चर पग में आया है। तुमको बड़ा विघ्न होगा। घर-द्वार छुड़ाकर परदेश में घुमावेगा। परन्तु जो तुम ग्रहों का दान, जप, पाठ, पूजा कराओगे तो दुःख से बचोगे।" इनसे कहना चाहिये कि "सुनो पोपजी! तुम्हारा और ग्रहों का क्या सम्बन्ध है? ग्रह क्या वस्तु है।"

पोपजी— दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम्॥

देखो! कैसा प्रमाण है। देवताओं के आधीन सब जगत्, मन्त्रों के आधीन सब देवता और वे मन्त्र ब्राह्मणों के आधीन हैं, इसलिये ब्राह्मण 'देवता' कहाते हैं। क्योंकि चाहैं उस देवता को मन्त्र के बल से बुला, प्रसन्न कर, काम सिद्धि कराने का हमारा ही अधिकार है जो हममें मन्त्रशक्ति न होती तो तुम्हारे से नास्तिक हमको संसार में रहने ही न देते।

सत्यवादी—जो चोर, डाकू, कुकर्मी लोग हैं, वे भी तुम्हारे देवताओं के आधीन होंगे? देवता ही उनसे दुष्ट काम कराते होंगे? जो वैसा है तो तुम्हारे देवता और राक्षसों में कुछ भेद न रहेगा। जो तुम्हारे आधीन मन्त्र हैं, उनसे तुम चाहो सो करा सकते हो, उन मन्त्रों से देवताओं को वश कर राजाओं के कोष उठवाकर, अपने घर में भरकर, बैठ के आनन्द क्यों नहीं भोगते? घर-घर में शनैश्चरादि के तैल आदि का छायादान लेने को मारे-मारे क्यों फिरते हो? और जिसको तुम कुबेर मानते हो उसको वश में करके चाहो जितना धन लिया करो। बिचारे गरीबों को क्यों लूटते हो?

तुम को दान देने से ग्रह प्रसन्न, न देने से अप्रसन्न होते हों, तो हमको सूर्य्यादि ग्रहों की प्रसन्नता-अप्रसन्नता प्रत्यक्ष दिखलाओ। जिसको ८वाँ सूर्य चन्द्र और दूसरे को तीसरा हो, उन दोनों को ज्येष्ठ महीने में विना जूते पहिने हुये तपी हुई भूमि पर चलाओ। जिस पर प्रसन्न हैं उसके पग शरीर न जलें और जिस पर क्रोधित हैं उसके जल जाने चाहियें। तथा पौष-माघ में दोनों को नंगे कर पौर्णमासी की रात्रिभर मैदान में रक्खें। एक को शीत लगे, दूसरे को नहीं तो जानो कि ग्रह क्रूर और सौम्य दृष्टिवाले होते हैं। और क्या तुम्हारे ग्रह सम्बन्धी हैं? और तुम्हारी डाक वा तार उनके पास आता-जाता है? अथवा तुम उनके वा वे तुम्हारे पास आते-जाते हैं?

जो तुममें मन्त्रशक्ति हो तो तुम स्वयं राजा वा धनाढ्य क्यों नहीं बन जाओ? वा शत्रुओं को अपने वश में क्यों नहीं कर लेते हो? **नास्तिक** वह होता है, जो वेद ईश्वर की आज्ञा, वेदविरुद्ध पोपलीला चलावे। जब तुमको ग्रहदान न देवे जिस पर ग्रह है, वही ग्रहदान को भोगे तो क्या चिन्ता है? जो तुम कहो कि नहीं, हम ही को देने से वे प्रसन्न होते हैं, अन्य को देने से नहीं तो क्या तुमने ग्रहों का ठेका ले लिया है? जो ठेका लिया हो तो सूर्य्यादि को अपने घर में बुलाके जल मरो।

सच तो यह है कि सूर्य्यादि लोक जड़ हैं। वे न किसी को दुःख और न सुख देने की चेष्टा कर सकते हैं किन्तु जितने तुम ग्रहदानोपजीवी हो, वे सब तुम ग्रहों की मूर्त्तियाँ हो, क्योंकि 'ग्रह' शब्द का अर्थ भी

तुममें ही घटित होता है। **'ये गृह्णन्ति ते ग्रहाः'** जो ग्रहण करते हैं, उनका नाम **'ग्रह'** है। जबतक तुम्हारे चरण राजा, रईस, सेठ, साहूकार और दरिद्रों के पास नहीं पहुँचते, तबतक किसी को ग्रह का स्मरण भी नहीं होता। जब तुम साक्षात् सूर्य-शनैश्चरादि मूर्त्तिमान् क्रूर रूप धर उनपर जा चढ़ते हो, तब विना ग्रहण किये उनको कभी नहीं छोड़ते और जो कोई तुम्हारे ग्रास में न आवे, उसकी निन्दा नास्तिकादि शब्दों से करते-फिरते हो।

पोपजी—देखो! ज्योतिष का प्रत्यक्ष फल। आकाश में रहनेवाले सूर्य, चन्द्र, राहु, केतु का संयोगरूप 'ग्रहण' को पहिले ही कह देते हैं। जैसा यह प्रत्यक्ष होता है, वैसा ग्रहों का फल भी प्रत्यक्ष हो जाता है। देखो! धनाढ्य, दरिद्र, राजा, रङ्क, सुखी, दुःखी ग्रहों ही से होते हैं।

सत्यवादी—जो यह ग्रहणरूप प्रत्यक्ष फल है सो गणितविद्या का है, फलित का नहीं। जो गणितविद्या है वह सच्ची और फलितविद्या स्वाभाविक सम्बन्धजन्य को छोड़ के झूठी है। जैसे अनुलोम-प्रतिलोम घूमनेवाले पृथिवी और चन्द्र के गणित से स्पष्ट विदित होता है कि अमुक समय, अमुक देश, अमुक अवयव में सूर्य्य वा चन्द्र ग्रहण होगा। जैसे—

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः।

[ग्रहलाघव चन्द्रगहणाधिकार ४।४]

यह [ग्रहलाघव?] का वचन और इसी प्रकार 'सूर्यसिद्धान्तादि' में भी है। अर्थात् जब सूर्य-भूमि के मध्य में चन्द्रमा आता है तब **'सूर्यग्रहण'** और जब सूर्य्य और चन्द्र के बीच में भूमि आती है तब **'चन्द्रग्रहण'** होता है। अर्थात् चन्द्र की छाया भूमि पर और भूमि की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है। सूर्य प्रकाशरूप होने से उसके सम्मुख छाया किसी की नहीं पड़ती किन्तु जैसे प्रकाशमान सूर्य्य वा दीप से देहादि की छाया उल्टी जाती है, वैसे ही ग्रहण में समझो।

जो धनाढ्य, दरिद्र, राजा, रङ्क होते हैं, वे अपने कर्मों से होते हैं, ग्रहों से नहीं। बहुत से ज्योतिषी लोग अपने लड़का-लड़की का विवाह ग्रहों के गणित के अनुसार करते हैं, पुनः उनमें विरोध वा विधवा

अथवा मृतस्त्री-पुरुष हो जाता है। जो फल सच्चा होता तो ऐसा क्यों होता? इसलिये कर्म की गति सच्ची और ग्रहों की गति सुख-दु:ख भोग में कारण नहीं। भला, ग्रह आकाश में और पृथिवी भी आकाश में बहुत दूर पर हैं, इनका सम्बन्ध कर्त्ता और कर्मों के साथ साक्षात् नहीं। कर्म्म और कर्म्म के फल का कर्त्ता-भोक्ता जीव, और कर्मों के फल भोगानेहारा परमात्मा है। जो तुम ग्रहों का फल मानो तो इसका उत्तर देओ कि जिस क्षण में एक मनुष्य का जन्म होता है जिसको तुम 'ध्रुवात्रुटि' मानकर जन्मपत्र बनाते हो, उसी समय में भूगोल पर दूसरे का जन्म होता है वा नहीं? जो कहो नहीं, तो झूठ और जो कहो होता है तो एक चक्रवर्त्ती के सदृश भूगोल में दूसरा चक्रवर्त्ती राजा क्यों नहीं होता? हाँ, इतना तुम कह सकते हो कि यह लीला हमारे उदर भरने की है तो कोई मान भी लेवे।

प्रश्न—क्या गरुड़पुराण भी झूठा है?

उत्तर—हाँ, असत्य है।

प्रश्न—फिर मरे हुए जीव की क्या गति होती है?

उत्तर—जैसे उसके कर्म हैं।

प्रश्न—जो यमराज राजा, चित्रगुप्त मन्त्री, उसके बड़े भयङ्कर गण कज्जल के पर्वत के तुल्य शरीरवाले जीव को पकड़ कर ले जाते हैं, पाप-पुण्य के अनुसार नरक-स्वर्ग में डालते हैं। उसके लिये दान, पुण्य, श्राद्ध, तर्पण, गोदानादि वैतरणी नदी तरने के लिये करते हैं। ये सब बात झूठ क्योंकर हो सकती हैं।

उत्तर—ये सब बातें पोपलीला के गपोड़े हैं। जो अन्यत्र के जीव वहाँ जाते हैं, उनका धर्मराज, चित्रगुप्त आदि न्याय करते हैं तो वे यमलोक के जीव पाप करें तो दूसरा यमलोक मानना चाहिये कि वहाँ के न्यायाधीश उनका न्याय करें और पर्वत के समान यमगणों के शरीर हों तो दीखते क्यों नहीं? और मरनेवाले जीव को लेने में छोटे द्वार में उनकी एक अङ्गुली भी नहीं जा सकती और सड़क-गली में क्यों नहीं रुक जाते। जो कहो कि वे सूक्ष्म देह भी धारण कर लेते हैं तो प्रथम पर्वतवत् शरीर के बड़े-बड़े हाड़ पोपजी विना अपने घर के कहां धरेंगे? जब जङ्गल में

आगी लगती है तब एकदम पिपीलिकादि जीवों के शरीर छूटते हैं। उनको पकड़ने के लिये असंख्य यम के गण आवें तो वहाँ अन्धकार हो जाना चाहिये और जब आपस में जीवों को पकड़ने को दौड़ेंगे तब कभी उनके शरीर ठोकरें खा जायेंगे तो जैसे पहाड़ के बड़े-बड़े शिखर टूटकर पृथिवी पर गिरते हैं, वैसे उनके बड़े-बड़े अवयव गरुड़पुराण के बाँचने-सुनने वालों के आँगन में गिर पड़ेंगे तो वे दब मरेंगे वा घर का द्वार अथवा सड़क रुक जायगी तो वे कैसे निकल और चल सकेंगे? श्राद्ध, तर्पण, पिण्डप्रदान उन मरे हुए जीवों को तो नहीं पहुँचता, किन्तु मृतकों के प्रतिनिधि पोपजी के घर, उदर और हाथ में पहुँचता है। जो वैतरणी के लिये गोदान लेते हैं, वह तो पोपजी के घर में अथवा कसाई आदि के घर में पहुँचता है। वैतरणी पर गाय नहीं जाती, पुन: किसकी पूँछ पकड़ कर तरेगा? और हाथ तो यहीं जलाया वा गाड़ दिया गया, पूँछ को कैसे पकड़ेगा? यहां एक जाट का दृष्टान्त इस बात में उपयुक्त है—

एक जाट था। उसके घर में गाय बीस सेर दूध देनेवाली थी। दूध बड़ा स्वादिष्ट होता था। कभी-कभी पोपजी के मुख में भी पड़ता था। उसका पुरोहित यही ध्यान कर रहा था कि जब जाट का बुड्ढा बाप मरने लगेगा तब इस गाय का सङ्कल्प करा लेंगे। दैवयोग से उसके बाप का मरण समय आया। जीभ बन्द हो गई और खाट से नीचे उतार सुवाया। बहुत से जाट के सम्बन्धी उपस्थित थे। उस समय पोपजी पुकारा—"लो यजमान! इसके हाथ से गोदान कराओ।" जाट ने दश रुपया निकाल, पिता के हाथ में रखकर बोला—"पढ़ो सङ्कल्प!" पोपजी बोले—"वाह! बाप वारम्वार मरता है? साक्षात् गाय लाओ, वह दूध भी देती हो, बुड्ढी न हो और सब प्रकार उत्तम हो।"

जाट—एक गाय हमारे है, उसके विना हमारे लड़के-बालों का निर्वाह नहीं हो सकता, उसको न दूंगा। लो ये बीस रुपये का सङ्कल्प। तुम दूसरी गाय ले लेना।

पोपजी—वाहजी वाह! तुम अपने बाप से भी गाय को अधिक समझते हो? अपने पिता को वैतरणी में डुबा, दु:ख देना चाहते हो? तुम अच्छे सुपुत्र हुए! तब तो पोपजी की ओर सब कुटुम्बी हो गये,

क्योंकि उन सबको पहिले ही से पोपजी ने बहका रक्खा था और उस समय भी इशारा कर दिया। सबने मिलकर हठ से उसी गाय का दान उसी पोपजी को दिला दिया। उस समय जाट कुछ भी न बोला। उसका पिता मर गया। पोपजी गाय, बछड़ा और दूध दोहने की बटलोही लेकर, घर में जा, गाय-बछड़े को बांध, बटलोही को धर, यजमान के घर आया, श्मशान में ले जा, दाह किया। वहाँ भी कुछ-कुछ पोपलीला चलाई। पश्चात् दशगात्र सपिण्डी कराने आदि में भी उसको मूंडा। महाब्राह्मणों ने भी लूटा, भुक्खड़ों ने भी बहुत-सा माल पेट में भरा। जब सब हो चुका, तब जाट ने जिस-किसी के घर से दूध माँग-मूंग निर्वाह किया। चौदहवें दिन प्रात:काल पोपजी के घर पहुँचा। देखा तो गाय को दुह, बटलोई भर, पोपजी की उठने की तैयारी थी। इतने ही में जाटजी पहुँचे। पोपजी ने कहा आइये बैठिये!

जाटजी—तुम भी इधर आओ।

पोपजी—अच्छा दूध धर आऊँ।

जाटजी—नहीं, दूध की बटलोई इधर लाओ। पोपजी जा, बटलोई सामने धर, बैठे।

जाटजी—तुम बड़े झूठे हो।

पोपजी—क्या झूठ किया?

जाटजी—गाय किसलिये ली थी?

पोपजी—तुम्हारे बाप के वैतरणी तरने के लिये।

जाटजी—फिर तुमने वैतरणी के किनारे क्यों न पहुँचाई? हम तुम्हारे भरोसे पर रहे। न जाने मेरे बाप ने वैतरणी में कितने गोते खाये होंगे?

पोपजी—नहीं-नहीं, वहाँ इस दान के पुण्य के प्रभाव से दूसरी गाय बन गई। तुम्हारे बाप को पार उतार दिया।

जाटजी—वैतरणी नदी यहाँ से कितनी दूर और किधर की ओर है?

पोपजी—अनुमान तीस क्रोड़ कोश दूर है। क्योंकि उनञ्चास कोटि योजन पृथिवी है और दक्षिण नैर्ऋत दिशा में वैतरणी नदी है।

जाटजी—इतनी दूर से तुम्हारी चिट्ठी वा तार का समाचार गया हो, उसका उत्तर आया हो कि वहां पुण्य की गाय बन गई, अमुक के पिता को पार उतार दिया, दिखलाओ?

पोपजी—हमारे पास 'गरुड़पुराण' के लेख के विना डाक वा तारवर्की दूसरी कोई नहीं।

जाटजी—इस गरुड़पुराण को हम सच्चा कैसे मानें?

पोपजी—जैसे सब मानते हैं।

जाटजी—यह पुस्तक तुम्हारे पुरुषाओं ने तुम्हारी जीविका के लिये बनाया है। क्योंकि पिता को विना अपने पुत्रों के कोई प्रिय नहीं। जब मेरा पिता मेरे पास चिट्ठी-पत्री वा तार भेजेगा तभी मैं वैतरणी के किनारे गाय पहुँचा दूंगा और उनको पार उतार, पुन: गाय को घर में ले आ, दूध को मैं और मेरे लड़के-बाले पिया करेंगे, लाओ! दूध की भरी हुई बटलोही, गाय, बछड़ा लेकर जाटजी अपने घर को चला।

पोपजी—तुम दान देकर लेते हो, तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा।

जाटजी—चुप रहो! नहीं तो तेरह दिन तक दूध के विना जितना दु:ख हमने पाया है, सब कसर निकाल दूंगा। तब पोपजी चुप रहे और जाटजी गाय-बछड़ा ले, अपने घर पहुँचे।

जब ऐसे ही जाटजी के से पुरुष हों तो पोपलीला संसार में न चले।

जो ये लोग कहते हैं कि दशगात्र के पिण्डों से दश अङ्ग, सपिण्डी करने से शरीर के साथ जीव का मेल होके, अङ्गुष्ठमात्र शरीर बनके, पश्चात् यमलोक को जाता है तो मरती समय यमदूतों का आना व्यर्थ होता है। त्रयोदशाह के पश्चात् आना चाहिये। जो शरीर बन जाता हो तो अपनी स्त्री, सन्तान और मित्रों के मोह से क्यों नहीं आ जाता?

प्रश्न—स्वर्ग में कुछ भी नहीं मिलता, जो दान किया जाता है, वही वहाँ मिलता है। इसलिये सब दान करने चाहियें।

उत्तर—उस तुम्हारे स्वर्ग से यही लोक अच्छा, जिसमें धर्मशाला है, लोग दान देते हैं, इष्ट-मित्र और जाति में खूब निमन्त्रण होते हैं, अच्छे-अच्छे वस्त्र मिलते हैं, तुम्हारे कहने प्रमाणे स्वर्ग में कुछ भी नहीं

मिलता है। ऐसे निर्दय, कृपण, कंगले स्वर्ग में पोपजी जाके खराब होवें, वहां भले मनुष्यों का क्या काम?

प्रश्न—जब तुम्हारे कहने से यमलोक और यम नहीं हैं तो मरकर जीव कहाँ जाता और इनका न्याय कौन करता है?

उत्तर—तुम्हारे गरुड़पुराण का कहा तो अप्रमाण है। परन्तु जो वेदोक्त है कि—

यमेन॥ [ऋ० १०।१४।८; १।१६३।२; अथर्व० १८।२।११,२१]

वायुना॥ [अथर्व० ४।३९।४; २०।१४१।२]

सत्यराजन्॥ [यजुः २०।४; तुलना—ऋ० १०।१४।४]

इत्यादि वेदवचनों से निश्चय है कि '**यम**' नाम वायु का है; शरीर छोड़ 'वायु' के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं; और जो सत्यकर्त्ता पक्षपातरहित परमात्मा '**धर्म्मराज**' है, वही सबका न्यायकर्त्ता है।

प्रश्न—तुम्हारे कहने से गोदानादि दान किसी को न देना, और न कुछ दानपुण्य करना, ऐसा सिद्ध होता है।

उत्तर—यह तुम्हारा कहना सर्वथा व्यर्थ है। क्योंकि सुपात्रों को, परोपकारियों को परोपकारार्थ सोना, चाँदी, हीरा, मोती, माणिक, अन्न, जल, स्थान, वस्त्र, गाय आदि दान अवश्य करना उचित है किन्तु कुपात्रों को कभी न देना चाहिये।

प्रश्न—**कुपात्र** और **सुपात्र** का लक्षण क्या है?

उत्तर—जो छली, कपटी, स्वार्थी, विषयी, काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त, परहानि करनेवाले, लम्पट, मिथ्यावादी, अविद्वान्, कुसङ्गी, आलसी, जो कोई दाता हो उसके पास वारम्वार माँगना, धरना देना, नाँ किये पर भी हठ से माँगते जाना, सन्तोष न होना, जो न दे उसकी निन्दा, शाप, गालि-प्रदानादि देना, अनेक वार जो सेवा करे और एक वार न करे तो उसके शत्रु बन जाना, ऊपर से साधु वेश बना लोगों को बहकाकर ठगना और अपने पास पदार्थ हो, तो भी 'मेरे पास कुछ भी नहीं है' कहना, सब की खुशामद करना, रात-दिन भीख माँगने ही में प्रवृत्त रहना, निमन्त्रण दिये पर खूब भांग आदि मादक द्रव्य पीकर

बहुत खाना, मस्त होकर पागल वा प्रमादी होना, सत्य-मार्ग का विरोध और झूठ-मार्ग अपने प्रयोजनार्थ चलाना, अपने चेलों को अपनी ही सेवा का उपदेश करना, अन्य योग्य पुरुषों की सेवा का नहीं। विद्यादि प्रवृत्ति के विरोधी, जगत् के व्यवहार अर्थात् स्त्री, पुरुष, माता, पिता, सन्तान, राजा, प्रजा, इष्टमित्रों में अप्रीति कराना कि ये सब असत्य हैं, जगत् भी मिथ्या है, इत्यादि दुष्ट उपदेश करना आदि '**कुपात्रों**' के लक्षण हैं।

और जो ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेदादिविद्यापठनपाठनशील, सत्यवादी, परोपकारप्रिय, पुरुषार्थी, उदार, विद्या-धर्म में निरन्तर उन्नति करनेहारे, धर्मात्मा, शान्त, निन्दा-स्तुति में हर्ष-शोकरहित, निर्भय, उत्साही, योगी, ज्ञानी, सृष्टिक्रम-वेदाज्ञा-ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभावानुकूल वर्त्तमान करनेहारे, न्याय की रीतियुक्त, पक्षपातरहित, सत्योपदेश और सत्यशास्त्रों के पढ़ने-पढ़ानेहारों के परीक्षक, किसी की खुशामद न करें, प्रश्नों के ठीक-ठीक समाधानकर्त्ता, अपने आत्मा के तुल्य अन्य का भी सुख-दुःख, हानि-लाभ समझनेवाले, अविद्यादि क्लेश-हठ-दुराग्रहाऽभिमानरहित, अमृत के तुल्य अपमान और मान को विष के तुल्य समझनेवाले, सन्तोषी, जो कोई प्रीति से जितना देवे उतने ही से प्रसन्न, एक वार आपत्काल में माँगे भी, न देने वा वर्जने पर भी दुःख वा बुरी चेष्टा न करना, वहाँ से झट हट जाना, उसकी निन्दा न करना, सुखी के साथ मित्रता, दुःखी पर करुणा, पुण्यात्माओं से आनन्द और पापियों से 'उपेक्षा' अर्थात् प्रीति-द्वेषरहित रहना, सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, निष्कपट, ईर्ष्या-द्वेषरहित, गम्भीराशय, सत्पुरुष, धर्म से युक्त और सर्वथा दुष्टाचार से रहित, अपने तन-मन-धन को परोपकार में लगानेवाले, पराए सुख के लिये अपने प्राणों को भी समर्पितकर्त्ता इत्यादि शुभलक्षणयुक्त '**सुपात्र**' होते हैं। परन्तु दुर्भिक्षादि आपत्काल में अन्न, जल, वस्त्र और औषध, पथ्य, स्थान के अधिकारी सब प्राणिमात्र होते हैं।

प्रश्न—दाता कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर—तीन प्रकार के—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। '**उत्तम दाता**'

उसको कहते हैं जो देश, काल और पात्र को जानकर, सत्यविद्या धर्म की उन्नतिरूप परोपकारार्थ दान देवे। '**मध्यम**' वह है जो कीर्त्ति वा स्वार्थ के लिये दान करे। '**नीच**' वह है कि अपना वा पराया कुछ उपकार न कर सके, किन्तु वेश्यागमनादि वा भांड-भाटों आदि को देवे, देते समय तिरस्कार अपमानादि भी करे, पात्र-कुपात्र का कुछ भी भेद न जाने, किन्तु '**सब अन्न बारह पसेरी**' बेचनेवालों के तुल्य विवाद-लड़ाई, दूसरे धर्मात्मा को दु:ख देकर सुखी होने के लिए दिया करे, वह '**अधम**' दाता है। अर्थात् जो परीक्षापूर्वक विद्वान् धर्मात्माओं का सत्कार करे, वह '**उत्तम**' और कुछ परीक्षा करे वा न करे परन्तु जिसमें अपनी प्रशंसा हो उसको करे, वह '**मध्यम**' और जो अन्धाधुन्ध परीक्षारहित निष्फल दान दिया करे, वह 'नीच' दाता कहाता है।

प्रश्न—दान के फल यहाँ होते हैं, वा परलोक में?

उत्तर—सर्वत्र होते हैं।

प्रश्न—स्वयं होते हैं, वा कोई फल देनेवाला है?

उत्तर—फल देनेवाला ईश्वर है। जैसे कोई चोर-डाकू स्वयं बन्दीघर में जाना नहीं चाहता। राजा उसको अवश्य भेजता है। धर्मात्माओं के सुख की रक्षा करता, भुगाता, डाकू आदि से बचाकर उनको सुख में रखता है, वैसे ही परमात्मा सबको पाप-पुण्य के दु:ख और सुखरूप फलों को यथावत् भुगाता है।

प्रश्न—जो ये गरुड़पुराणादि ग्रन्थ हैं, 'वेदार्थ' वा 'वेद' की पुष्टि करनेवाले हैं, वा नहीं?

उत्तर—नहीं, किन्तु वेद के विरोधी और उलटे चलते हैं, तथा तन्त्र भी वैसे ही हैं। जैसे कोई मनुष्य एक का मित्र, सब संसार का शत्रु हो, वैसा ही पुराण और तन्त्र का माननेवाला पुरुष होता है, क्योंकि एक दूसरे से विरोध करानेवाले ये ग्रन्थ हैं। इनका मानना किसी मनुष्य का काम नहीं, किन्तु इनको मानना पशुता है। देखो! शिवपुराण में त्रयोदशी, सोमवार; आदित्यपुराण में रवि; चन्द्रखण्ड में सोमग्रहवाले मङ्गल, बुध, बृहस्पति; शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु के; वैष्णव एकादशी; वामन की द्वादशी; नृसिंह वा अनन्त की चतुर्दशी; चन्द्रमा की पौर्णमासी; दिक्पालों की दशमी; दुर्गा की नौमी; वसुओं की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी; कार्त्तिकस्वामी की षष्ठी; नाग की पञ्चमी; गणेश की चतुर्थी; गौरी की तृतीया; अश्विनीकुमार की द्वितीया; आद्यादेवी की प्रतिपदा और पितरों की अमावास्या; पुराणरीति से उपवास करने के दिन हैं। और सर्वत्र यही लिखा है कि जो मनुष्य इन वार और तिथियों में अन्न-पान ग्रहण करेगा वह नरकगामी होगा। अब पोप और पोपजी के चेलों को चाहिये कि किसी वार अथवा किसी तिथि में भोजन न करें क्योंकि जो भोजन वा पान किया तो नरकगामी होंगे।

अब 'निर्णयसिन्धु' 'धर्मसिन्धु' 'व्रतार्क' आदि ग्रन्थ जो कि प्रमादी लोगों के बनाये हैं, उन्होंने एक-एक व्रत की ऐसी दुर्दशा की है कि जैसे एकादशी को शैव दशमीविद्धा, कोई द्वादशी में एकादशी व्रत करते हैं अर्थात् क्या बड़ी विचित्र पोपलीला है कि भूखे मरने में भी वाद-विवाद ही करते हैं। जिसने एकादशी का व्रत चलाया है, उसमें अपना स्वार्थपन ही है और दया कुछ भी नहीं। कहते हैं—

एकादश्यामन्ने पापानि वसन्ति॥

[पद्मपुराण ब्रह्मखण्ड अ० १५ श्लो० ११ तथा एकादशी माहात्म्य]

जितने पाप हैं, सब एकादशी के दिन अन्न में वसते हैं। इस पोपजी से पूछना चाहिये कि किसके पाप उसमें वसते हैं? तेरे वा तेरे पिता आदि के? जो सबके के सब पाप एकादशी में जा वसें तो एकादशी के दिन किसी को दु:ख न रहना चाहिये। ऐसा तो नहीं होता किन्तु उल्टा क्षुधा आदि से दु:ख होता है। दु:ख पाप का फल है। इससे भूखे मरना पाप है। इसका बड़ा माहात्म्य बनाया है, जिसकी कथा बाँच के बहुत ठगे जाते हैं। उसमें एक गाथा है कि—

ब्रह्मलोक में एक वेश्या थी। उसने कुछ अपराध किया। उसको शाप हुआ—"वह पृथिवी पर गिरे।" उसने स्तुति की, मैं पुन: स्वर्ग में क्योंकर आ सकूँगी? उसने कहा "जब कभी एकादशी के व्रत का फल तुझे कोई देगा तभी तू स्वर्ग में आ जायेगी।" वह विमान सहित किसी नगर में गिर पड़ी। वहाँ के राजा ने उससे पूछा कि "तू कौन है?" तब उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि "जो कोई

मुझको एकादशी का फल अर्पण करे तो फिर भी स्वर्ग को जा सकती हूँ।'' राजा ने नगर में खोज कराया। कोई भी एकादशी का व्रत करनेवाला न मिला। किन्तु एक दिन किसी शूद्र स्त्री-पुरुष में लड़ाई हुई थी। क्रोध से स्त्री दिन-रात भूखी रही थी। दैवयोग से उस दिन एकादशी ही थी। उसने कहा कि ''मैंने एकादशी जानकर तो नहीं की, अकस्मात् उस दिन भूखी रह गई थी।'' ऐसा राजा के सिपाहियों से कहा। तब तो सिपाही उसको राजा के सामने ले आये। उससे राजा ने कहा कि ''तू इस विमान को छू।'' उसने छुआ तो उसी समय विमान ऊपर को उड़ गया। यह तो विना जाने एकादशी के व्रत का फल है, जो जान के करे तो उसके फल का क्या पारावार है!!!

वाह रे आँख के अन्धे लोगो! जो यह बात सच्ची हो तो हम एक पान की बीड़ी जो कि स्वर्ग में नहीं होती, भेजना चाहते हैं। सब एकादशीवाले अपना फल दे दो। जो एक पानबीड़ा ऊपर को चला जाएगा तो पुनः लाखों-क्रोड़ों पान वहाँ भेजेंगे और हम भी एकादशी किया करेंगे और जो ऐसा न होगा तो तुम लोगों को इस भूखे मरनेरूप आपत्काल से बचावेंगे।

इन चौबीस एकादशियों का नाम पृथक्-पृथक् रक्खा है। किसी का 'धनदा', किसी का 'कामदा', किसी का 'पुत्रदा' और किसी का 'निर्जला'। बहुत से दरिद्र, बहुत से कामी और बहुत से निर्वंशी लोग एकादशी करके बूढ़े हो गये और मर भी गये परन्तु धन, कामना और पुत्र प्राप्त न हुआ। और ज्येष्ठ महीने के शुक्लपक्ष में कि जिस समय एक घड़ी भर जल न पावे तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है, व्रत करनेवालों को महादुःख प्राप्त होता है। विशेषकर बङ्गाले में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी दुर्दशा होती है। इस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में दया नहीं आई, नहीं तो 'निर्जला' का नाम 'सजला' और पौष महीने की एकादशी का नाम 'निर्जला' रख देता तो भी कुछ अच्छा होता। परन्तु इस पोप को दया से क्या काम? '**कोई जीवो वा मरो पोपजी का पेट पूरा भरो।**' भला! गर्भवती वा सद्योविवाहिता स्त्री, लड़के वा युवा पुरुषों को तो कभी उपवास न

करना चाहिए। परन्तु किसी को करना भी हो तो जिस दिन अजीर्ण हो, क्षुधा न लगे, उस दिन शर्बत वा दूध पीकर रह जाना चाहिए। जो भूख में नहीं खाते और विना भूख के भोजन करते हैं, वे दोनों रोगसागर में गोते खा दुःख पाते हैं। इन प्रमादियों के कहने-लिखने का प्रमाण कोई भी न करे।

अब **गुरुशिष्यमन्त्रोपदेश** और **मतमतान्तर के चरित्रों** का वर्त्तमान कहते है।

मूर्त्तिपूजक सम्प्रदायी लोग प्रश्न करते हैं कि वेद अनन्त हैं। ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० और अथर्ववेद की ९ शाखा हैं। इनमें से थोड़ी सी शाखा मिलती है, शेष लोप हो गई हैं। उन्हीं में पूजा और तीर्थों का प्रमाण होगा। जो न होता तो पुराणों में कहाँ से आता? जब कार्य देखकर कारण का अनुमान होता है, तब पुराणों को देखकर मूर्त्तिपूजा में क्या शङ्का है?

उत्तर—जैसे शाखा जिस वृक्ष की होती है उसके सदृश हुआ करती है, विरुद्ध नहीं। चाहैं शाखा छोटी-बड़ी हों परन्तु उनमें विरोध नहीं हो सकता। वैसे ही जितनी शाखा मिलती हैं, जब इनमें पाषाणादि-मूर्त्ति और जल-स्थल-विशेष तीर्थों का प्रमाण नहीं मिलता तो उन लुप्त शाखाओं में भी नहीं था। और जो चार वेद पूर्ण मिलते हैं, उनसे विरुद्ध शाखा कभी नहीं हो सकतीं और जो विरुद्ध हैं, उनको शाखा कोई भी सिद्ध नहीं कर सकता। जब यह बात है तो 'पुराण' वेदों की शाखा नहीं किन्तु सम्प्रदायी लोगों ने परस्पर विरुद्धरूप ग्रन्थ बना रक्खे हैं।

वेदों को तुम परमेश्वरकृत मानते हो वा मनुष्यकृत?

परमेश्वरकृत।

जब परमेश्वरकृत मानते हो तो 'आश्वालायनादि' ऋषि-मुनियों के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थों को वेद क्यों मानते हो? जैसे डाली और पत्तों के देखने से पीपल, बड़ और आम्र आदि वृक्षों की पहिचान होती है, वैसे ही ऋषि-मुनियों के किये वेदाङ्ग, चारों ब्राह्मण, अङ्ग, उपाङ्ग और उपवेद आदि से वेदार्थ पहिचाना जाता है, इसीलिये इन ग्रन्थों को शाखा माना है। जो वेदों से विरुद्ध है, उसका प्रमाण और अनुकूल का

अप्रमाण नहीं हो सकता।

जो तुम अदृश्य शाखाओं में मूर्त्ति आदि के प्रमाण की कल्पना करोगे तो जब कोई ऐसा पक्ष करेगा कि लुप्त शाखाओं में वर्णाश्रम व्यवस्था उलटी अर्थात् अन्त्यज और शूद्र का नाम ब्राह्मणादि और ब्राह्मणादि का नाम शूद्र अन्त्यजादि, अगमनीया-गमन, अकर्त्तव्य कर्त्तव्य, मिथ्याभाषणादि धर्म, सत्यभाषणादि अधर्म आदि लिखा होगा तो तुम उसको वही उत्तर दोगे जो कि हमने दिया, अर्थात् वेद और प्रसिद्ध शाखाओं में जैसा ब्राह्मणादि का नाम ब्राह्मणादि और शूद्रादि का नाम शूद्रादि लिखा है, वैसा ही अदृष्ट शाखाओं में भी मानना चाहिये, नहीं तो वर्णाश्रम व्यवस्था आदि सब अन्यथा हो जायेंगे।

भला जैमिनि, व्यास और पतञ्जलि के समय पर्य्यन्त तो सब शाखा विद्यमान थी वा नहीं? यदि थीं तो तुम कभी निषेध न कर सकोगे और जो कहो कि नहीं थीं तो फिर शाखाओं के होने का क्या प्रमाण है? देखो! जैमिनि ने मीमांसा में सब '**कर्मकाण्ड**', पतञ्जलि मुनि ने योगशास्त्र में सब '**उपासनाकाण्ड**' और व्यासमुनि ने शारीरक-सूत्रों में सब '**ज्ञानकाण्ड**' वेदानुकूल लिखा है। उनमें पाषाणादि-मूर्त्तिपूजा वा प्रयागादि तीर्थों का नाम तक भी नहीं लिखा। लिखें कहाँ से? कहीं वेदों में होता तो लिखे विना कभी नहीं छोड़ते। इसलिए लुप्त शाखाओं में भी इन मूर्त्तिपूजादि का प्रमाण नहीं था।

ये सब शाखा वेद नहीं है, क्योंकि इनमें ईश्वरकृत वेदों की प्रतीक धरके व्याख्या और संसारी जनों के इतिहासादि लिखे हैं, इसलिए ये वेद में कभी नहीं हो सकते। वेदों में तो केवल मनुष्यों को विद्या का उपदेश किया है। किसी मनुष्य का नाममात्र भी नहीं। इसलिए मूर्त्तिपूजा का सर्वथा खण्डन है।

देखो! मूर्तिपूजा से श्री रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, नारायण और शिवादि की बड़ी निन्दा और उपहास होता है। सब कोई जानते हैं कि वे बड़े महाराजाधिराज और उनकी स्त्री सीता, तथा रुक्मिणी, लक्ष्मी और पार्वती आदि महाराणी थीं, परन्तु जब उनकी मूर्त्तियाँ मन्दिर आदि में रखके पुजारी लोग उनके नाम से भीख माँगते हैं अर्थात् उनको भिखारी

बनाते हैं कि "आओ महाराज! राजाजी! सेठ-साहूकारो! दर्शन कीजिए, बैठिये, चरणामृत लीजिए, कुछ भेंट चढाइये, महाराज! सीता-राम, कृष्ण-रुक्मिणी वा राधाकृष्ण, लक्ष्मी-नारायण और महादेव-पार्वतीजी को तीन दिन से 'बालभोग वा 'राजभोग' अर्थात् जलपान वा खानपान भी नहीं मिला है। आज इनके पास कुछ भी नहीं है। सीता आदि को नथुनी आदि राणीजी वा सेठानीजी! बनवा दीजिये। अन्न आदि भेजो तो रामकृष्णादि को भोग लगावें। वस्त्र सब फट गये हैं। मन्दिर के कोने सब गिर पड़े हैं। ऊपर से चूता है और दुष्ट चोर जो कुछ था, उठा ले गये। कुछ ऊंदरों ने काट-कूट डाले। देखिए! एक दिन ऊँदरों ने ऐसा अनर्थ किया कि इनकी आँख भी निकाल के भाग गये। अब हम चाँदी की आँख न बना सके इसलिये कौड़ी की लगा दी है।"

रामलीला और रासमण्डल भी करवाते हैं, सीता-राम, राधा-कृष्ण नाच रहे हैं, राजा और महन्त आदि उनके सेवक आनन्द में बैठे हैं! मन्दिर में सीता, रामादि खड़े और पूजारी वा महन्तजी आसन अथवा गद्दी तकिया लगा बैठते हैं। महागरमी में भी ताला लगा भीतर बन्ध कर देते हैं और आप सुन्दर वायु में पलङ्ग बिछा सोते हैं। बहुतसे पूजारी अपने नारायण को डब्बी में बन्ध कर ऊपर से कपड़े आदि बाँध गले में लटका लेते हैं जैसे कि वानरी अपने बच्चे को गले में लटका लेती है, वैसे पूजारियों के गले में भी लटकते हैं। जब कोई मूर्त्ति को तोड़ता है तब हाय-हाय कर छाती पीट बकते हैं कि सीता-रामजी, राधा-कृष्णजी और शिव-पार्वती को दुष्टों ने तोड़ डाला! अब दूसरी मूर्त्ति मँगवाकर जो कि अच्छे शिल्पी ने संगमरमर की बनाई हो, स्थापन कर पूजनी चाहिए। नारायण को घी के विना भोग नहीं लगता। बहुत नहीं तो थोड़ा-सा अवश्य भेज देना। इत्यादि बातें इन पर ठहराते हैं। और रासमण्डल वा रामलीला के अन्त में सीता-राम वा राधा-कृष्ण से भीख मँगवाते हैं। जहाँ मेला-ठेला होता है, वहाँ छोकरे पर मुकुट धर कन्हैया बना मार्ग में बैठाकर भीख मंगवाते हैं। इत्यादि बातों को आप लोग विचार लीजिए कि कितने बड़े शोक की बात है! भला, कहो तो, सीतारामादि ऐसे दरिद्र और भिक्षुक थे? यह उनका उपहास और निन्दा

नहीं तो क्या है? इससे बड़ी अपने माननीय पुरुषों की निन्दा होती है।

भला, जिस समय ये विद्यमान थे, उस समय सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी, पार्वती को सड़क पर वा किसी मकान में खड़ी कर पुजारी कहते कि ''आओ इनका दर्शन करो और कुछ भेंट पूजा धरो'' तो सीतादि इन मूर्खों के कहने से ऐसा काम कभी न करते और न करने देते। जो कोई ऐसा उपहास उनका करता, उसको विना दण्ड दिये कभी छोड़ते? हाँ, जब उन्हों से दण्ड न पाया तो इनके कर्मों ने पूजारियों को बहुत-सी मूर्त्तिविरोधियों से प्रसादी दिलादी और अब भी मिलती है और जबतक इस कर्म को न छोड़ेंगे तबतक मिलेगी भी। इसमें क्या संदेह है कि जो आर्य्यावर्त्त की प्रतिदिन महाहानि, पाषाणादि-मूर्त्तिपूजकों का पराजय इन्हीं कर्मों से होता है, क्योंकि पाप का फल दु:ख है। इन्हीं पाषाणादि-मूर्त्तियों के विश्वास से बहुत-सी हानि हो गई। जो न छोड़ेंगे तो प्रतिदिन अधिक-अधिक होती जायगी।

इनमें से वाममार्गी बड़े भारी अपराधी हैं। जब वे चेला करते हैं तब साधारण को—

दं दुर्गायै नमः। भं भैरवाय नमः। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

इत्यादि मन्त्रों का उपदेश कर देते हैं और बङ्गाले में विशेष करके एकाक्षरी मन्त्रोपदेश करते हैं, जैसा— **ह्रीं, श्रीं, क्लीं॥**

[ऊह्य-श्रीकण्ठशिवपण्डितरचित शावरतन्त्र बं० प्रकी० प्र० ४४]

इत्यादि। और धनाढ्यों का पूर्णाभिषेक करते हैं।

ऐसे ही दश महाविद्याओं के मन्त्र—

ह्रां ह्रीं ह्रूं वगलामुख्यै फट् स्वाहा॥ [ऊह्य—शावरतन्त्र ४१]

कहीं-कहीं—**ह्रूं फट् स्वाहा॥**

[ऊह्य—कामरत्न तन्त्र, बीजमन्त्र ४]

और मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण, आदि प्रयोग करते हैं। सो मन्त्र से तो कुछ भी नहीं होता किन्तु क्रिया से सब कुछ करते हैं। जब किसी को मारने का प्रयोग करते हैं तब इधर करानेवाले से धन लेके आटे वा मट्टी का पूतला जिसको मारना चाहते हैं, उसका बनाते हैं। उसकी छाती, नाभि, कण्ठ में छुरे प्रवेश कर देते हैं। आँख,

हाथ, पग में कीलें ठोकते हैं। उसके ऊपर भैरव वा दुर्गा की मूर्त्ति बना, हाथ में त्रिशूल दे, उसके हृदय पर लगाते हैं। एक वेदी बनाकर मांस आदि का होम करने लगते हैं और उधर दूत आदि भेज के उसको विष आदि से मारने का उपाय करते हैं। जो अपने पुरश्चरण के बीच में उसको मार डाला तो अपने को भैरव देवी की सिद्धिवाले बतलाते हैं। '**भैरवो भूतनाथश्च**' इत्यादि का पाठ करते हैं।

मारय-मारय, उच्चाटय-उच्चाटय, विद्वेषय-विद्वेषय, छिन्धि-छिन्धि, भिन्धि-भिन्धि, वशीकुरु-वशीकुरु, खादय-खादय, भक्षय-भक्षय, त्रोटय-त्रोटय, नाशय-नाशय, मम शत्रून् वशीकुरु, मम शत्रून् वशीकुरु, हुं फट् स्वाहा॥

[ऊह्य—कामरत्नतन्त्र, उच्चाटन प्रकरण, मं० ५-७]

इत्यादि मन्त्र जपते, मद्य भांग खूब पीते, मांसादि खाते, भृकुटी के बीच में सिन्दूर रेखा देते, कभी-कभी काली आदि के लिये किसी आदमी को पकड़ मार होमकर कुछ-कुछ उसका मांस खाते भी हैं। जो कोई भैरवीचक्र में जावे, मद्य-मांस न पीवे, न खावे तो उसको मार होम कर देते हैं। उनमें से जो 'अघोरी' होता है, वह मृतमनुष्य का भी मांस खाता है, अजरी-बजरी करनेवाले विष्ठामूत्र भी खाते-पीते हैं।

एक 'चोली मार्ग' और 'बीजमार्गी' भी होते हैं। 'चोलीमार्गवाले' एक गुप्त स्थान वा भूमि में एक स्थान बनाते हैं। वहाँ सबकी स्त्रियाँ, पुरुष, लड़का, लड़की, बहिन, माता, पुत्रवधू आदि सब इकट्ठे हो सब लोग मिल-मिलाकर मांस खाते, मद्य पीते, एक स्त्री को नङ्गी कर, उसके गुप्त इन्द्रिय की पूजा सब पुरुष करते, उसका नाम दुर्गादेवी धरते हैं। एक पुरुष को नङ्गा कर उसके उपस्थ इन्द्रिय की पूजा सब स्त्रियाँ करती हैं। जब मद्य पी-पी के उन्मत्त हो जाते हैं तब सब स्त्रियों की छाती का वस्त्र जिसको 'चोली' कहते हैं, एक बड़ी मट्टी-की नाँद में सब वस्त्र मिलाकर रखके एक-एक पुरुष उसमें हाथ डालके जिसके हाथ में जिसका वस्त्र आवे—वह माता, बहिन, कन्या और पुत्रवधू क्यों न हो उस समय के लिए वह उसकी स्त्री हो जाती है! आपस में कुकर्म करने और बहुत नशा चढ़ने से जूते आदि से लड़ते हैं। जब प्रात:काल

कुछ अन्धेरे अपने-अपने घर को चले जाते हैं तब माता माता, कन्या कन्या, बहिन बहिन, और पुत्रवधू पुत्रवधू हो जाती है। और 'बीजमार्गी' स्त्री-पुरुष के समागम कर जल में वीर्य डाल, मिलाकर पीते हैं। ये पामर ऐसे कर्मों को मुक्ति के साधन मानते हैं। विद्या, विचार, सज्जनतादि रहित होते हैं।

प्रश्न—शैव तो अच्छा होता है?

उत्तर—अच्छा कहाँ से होता है? **'जैसा प्रेतनाथ वैसा भूतनाथ'।** जैसे वाममार्गी मन्त्रोपदेशादि से उनका धन हरते हैं, वैसे शैव भी **'ओं नमः शिवाय'** इत्यादि पञ्चाक्षरादि मन्त्रों का उपदेश करते, रुद्राक्ष भस्म धारण करते, मट्टी के और पाषाणादि के लिङ्ग बनाकर पूजते, **'हर-हर', 'बं-बं'** और बकरे के शब्द के समान **'बड़-बड़-बड़'** मुख से शब्द करते हैं। उसका कारण यह कहते हैं कि ताली बजाने और **बं-बं** शब्द बोलने से पार्वती प्रसन्न और महादेव अप्रसन्न होता है। क्योंकि जब भस्मासुर के आगे से महादेव भागे थे तब **बं-बं** और ठट्ठे की तालियाँ बजी थीं और गाल बजाने से पार्वती अप्रसन्न और महादेव प्रसन्न होते हैं क्योंकि पार्वती के पिता दक्षप्रजापति का शिर काट आगी में डाल उसके धड़ पर बकरे का शिर लगा दिया था। उसी की नकल बकरे के शब्द के तुल्य गाल बजाना मानते हैं। शिवरात्री प्रदोष का व्रत करते हैं, इत्यादि से मुक्ति मानते हैं। इसीलिये जैसे वाममार्गी भ्रान्त हैं, वैसे शैव भी। इनमें विशेषकर कनफटे, नाथ, गिरी, पुरी, वन, आरण्य, पर्वत और सागर तथा गृहस्थ भी शैव होते हैं। कोई-कोई **'दोनों घोड़ों पर चढ़ते** हैं' अर्थात् वाम और शैव दोनों मतों को मानते हैं और कितने ही वैष्णव भी रहते हैं। उनका—

अन्तः शाक्ता बहिश्शैवा सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधराः कौला विचरन्तीह महीतले॥

—यह तन्त्र का श्लोक है।

[ऊह्य—कौलोपनिषत् तथा कुलार्णवतन्त्र एकादश उल्लास]

भीतर 'शाक्त' अर्थात् वाममार्गी, बाहर 'शैव' अर्थात् रुद्राक्ष भस्म धारण करते हैं, सभा में 'वैष्णव' कहते हैं कि हम विष्णु के उपासक

हैं। ऐसे नाना प्रकार के रूप धारण करके वाममार्गी लोग पृथिवी में विचर रहे हैं।

प्रश्न—वैष्णव तो अच्छे हैं?

उत्तर—क्या धूड़ अच्छे हैं। जैसे वे, वैसे ये हैं। देख लो वैष्णवों की लीला! अपने को विष्णु का दास मानते हैं। उनमें से श्री वैष्णव जोकि चक्राङ्कित होते हैं, वे अपने को सर्वोपरि मानते हैं। सो कुछ भी नहीं हैं।

प्रश्न—क्यों कुछ भी नहीं? सब कुछ हैं। देखो! ललाट में नारायण के चरणारविन्द के सदृश तिलक और बीच में पीली रेखा 'श्री' होती है, इसी वास्ते हम 'श्रीवैष्णव' कहाते हैं। एक नारायण को छोड़ दूसरे किसी को नहीं मानते। महादेव के लिङ्ग का दर्शन भी नहीं करते क्योंकि हमारे ललाट में श्री विराजमान है, वह लज्जित होती है। आलमन्दारादि स्तोत्रों के पाठ करते हैं। नारायण की मन्त्र पूर्वक पूजा करते हैं, मांस नहीं खाते, मद्य नही पीते, फिर अच्छे क्यों नहीं?

उत्तर—इस तिलक को **'हरिपदाकृति'**, इस पीली रेखा को **'श्री'** मानना व्यर्थ है, क्योंकि यह तो तुम्हारे हाथ की कारीगरी और ललाट का चित्र है, जैसा हाथी का ललाट चित्र-विचित्र करते हैं। तुम्हारे ललाट में विष्णु के पद का चिह्न कहाँ से आया? क्या कोई वैकुण्ठ में जाकर विष्णु के पग का चिह्न ललाट में करा आया है?

विवेकी—और श्री जड़ है वा चेतन?

वैष्णव—चेतन है।

विवेकी—तो यह रेखा जड़ होने से 'श्री' नहीं है। हम पूछते हैं कि श्री बनाई हुई है वा विना बनाई? जो विना बनाई है तो यह श्री नहीं, क्योंकि इसको तो तुम नित्य अपने हाथ से बनाते हो फिर श्री नहीं हो सकती। जो तुम्हारे ललाट में श्री हो तो कितने ही वैष्णवों का बुरा मुख अर्थात् शोभारहित क्यों दीखता है? ललाट में श्री और घर-घर भीख माँगते और सदावर्त्त लेकर पेट भरते क्यों फिरते हो? यह बात सिरड़ी और निर्लज्जों की है कि कपाल में श्री और महादरिद्रों के काम करते हैं।

इनमें एक 'परिकाल' नामक वैष्णव भक्त था। वह चोरी-डाका

मार, छल-कपट कर, पराया धन हर, वैष्णवों के पास धर प्रसन्न होता था। एक समय उसको चोरी में पदार्थ कोई नहीं मिला कि जिसको लूटे। व्याकुल होकर फिरता था। नारायण ने समझा कि हमारा भक्त दुःख पाता है। सेठजी का स्वरूप धर, अंगूठी आदि आभूषण पहिन, रथ में बैठ, सामने आये। तब तो परिकाल रथ के पास गया। सेठ से कहा सब वस्तु शीघ्र उतार दो, नहीं तो मार डालूंगा। उतारते-उतारते अंगूठी उतारने में देर लगी। परिकाल ने नारायण की अंगुली काट अंगूठी ले ली। नारायण बड़े प्रसन्न हो चतुर्भुज शरीर बना दर्शन दिया। कहा कि ''तू मेरा बड़ा प्रिय भक्त है, क्योंकि सब धन मार-लूट-चोरी कर वैष्णवों की सेवा करता है इसलिये तू धन्य है।'' फिर उसने जाकर वैष्णवों के पास सब गहने धर दिये।

एक समय परिकाल को कोई साहूकार नौकर कर जहाज में बैठाके देशान्तर में ले गया। वहाँ से जहाज में सुपारी भरी। परिकाल ने एक सुपारी तोड़ आधा टुकड़ा कर बनिये से कहा ''यह मेरी आधी सुपारी जहाज में धर दो और लिख दो कि जहाज में आधी सुपारी परिकाल की है।'' बनिये ने कहा कि ''चाहे तुम हजार सुपारी ले लेना।'' परिकाल ने कहा, ''नहीं। हम अधर्मी नहीं हैं, जो हम झूठ-मूठ लें। हमको तो आधी चाहिये।'' बनिया भोला था, लिख दिया। जब अपने देश में बन्दर पर जहाज आया, सुपारी उतारने की तैयारी हुई, तब परिकाल ने कहा ''हमारी आधी सुपारी दे दो।'' बनिया वही आधी सुपारी देने लगा। तब परिकाल झगड़ने लगा ''मेरी तो जहाज में आधी सुपारी है, आधा बांट लूंगा।'' राजपुरुषों तक झगड़ा गया। परिकाल ने बनिये का लेख दिखलाया कि इसने आधी सुपारी देनी लिखी है। बनिया बहुत-सा कहता रहा परन्तु उसने न माना। आधी सुपारी लेकर वैष्णवों के अर्पण करदी। तब तो वैष्णव बड़े प्रसन्न हुए। अबतक उस डाकू चोर परिकाल की मूर्त्ति मन्दिरों में रखते हैं। यह कथा भक्तमाल में लिखी है। बुद्धिमान् देख लें कि वैष्णव, उनके सेवक और नारायण तीनों चोरमण्डली हैं वा नहीं? यद्यपि मतमतान्तरों में कोई थोड़ा अच्छा भी होता है, तथापि उस मत में रहकर सर्वथा अच्छा नहीं हो सकता।

अब जैसा वैष्णवों में फूट-टूट भिन्न-भिन्न तिलक कण्ठी धारण करते हैं। रामानन्दी बगल में गोपीचन्दन बीच में लाल, नीमावत दोनों पतली रेखा बीच में काला बिन्दु, माधव काली रेखा और गौड़ बङ्गाली कटारी के तुल्य और रामप्रसादवाले दोनों चांदला रेखा के बीच में एक सफेद गोल टीका, इत्यादि इनका कथन विलक्षण-विलक्षण है। रामानन्दी लाल रेखा को लक्ष्मी का चिह्न, और नारायण के हृदय में श्री, कृष्णचन्द्रजी [के] हृदय में राधा विराजमान है, इत्यादि कथन करते हैं।

एक कथा भक्तमाल में लिखी है। कोई एक मनुष्य वृक्ष के नीचे सोता था। सोता-सोता मर गया। ऊपर से काक ने विष्ठा कर दी। वह ललाट पर तिलकाकार हो गई थी। वहां यम के दूत उसको लेने आये। इतने में विष्णु के दूत भी पहुँच गये। दोनों विवाद करते थे कि यह हमारे स्वामी की आज्ञा है, हम यमलोक में ले जायेंगे। विष्णु के दूतों ने कहा कि ''हमारे स्वामी की आज्ञा है वैकुण्ठ में ले जाने की। देखो! इसके ललाट में वैष्णवी तिलक है। तुम कैसे ले जाओगे?'' तब तो यम के दूत चुप होकर चले गये। विष्णु के दूत सुख से उसको वैकुण्ठ में ले गये। नारायण ने उसको वैकुण्ठ में रक्खा। देखो! जब अकस्मात् तिलक बन जाने का ऐसा माहात्म्य है तो जो अपनी प्रीति से हाथ से तिलक करते हैं, वे नरक से छूट वैकुण्ठ में जावें तो इसमें क्या आश्चर्य है!! हम पूछते हैं कि जब छोटे से तिलक के करने से वैकुण्ठ में जावें तो सब मुख के ऊपर लेपन करने वा कालामुख करने वा शरीर पर लेपन करने से वैकुण्ठ से आगे सिधार जाते हैं, वा नहीं? इससे ये बातें सब व्यर्थ हैं।

अब इनमें बहुत से खाखी लकड़े की लङ्गोली लगा धूनी तापते, जटा बढ़ाते, सिद्ध का वेश कर लेते हैं। बगुले के समान ध्यानावस्थित होते हैं। गांजा, भाँग, चरस के दम लगाते, लाल सुर्ख नेत्र कर रखते; सबसे चुटकी-चुटकी अन्न, पिसान, कौड़ी, पैसे माँगते, गृहस्थों के लड़कों को बहकाकर चेले बना लेते हैं। बहुत करके मजूर लोग उनमें होते हैं। कोई विद्या को पढ़ता हो तो उसको पढ़ने नहीं देते, कहते हैं कि—

पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यं दन्तकटाकटेति किं कर्त्तव्यम्?

सन्तों को विद्या पढ़ने से क्या काम? क्योंकि विद्या पढ़नेवाले भी मर जाते हैं, फिर दन्त-कटाकट क्यों करना? साधुओं को चार धाम फिर आना, सन्तों की सेवा करनी, रामजी का भजन करना।

जो किसी ने मूर्ख, अविद्या की मूर्ति न देखी हो तो खाखीजी का दर्शन कर आवे। उनके पास जो कोई जाता है, उनको बच्चा-बच्ची कहते हैं, चाहे वे खाखीजी के बाप-मा के समान हों। जैसे खाखीजी हैं, वैसे ही रूँखड़-सूँखड़, गोदड़िये और जमातवाले सुतरेसाई और अकाली, कानफटे, जोगी, औघड़ आदि सब एक से हैं।

एक खाखी का चेला '**श्रीगणेशाय नमः**' घोखता-घोखता कुवे पर जल भरने को गया। वहाँ पण्डित बैठा था। वह '**स्त्रीगनेसाजनमें**' घोखता था, पण्डित जी बोले "अरे साधु! अशुद्ध घोखता है '**श्री गणेशाय नमः**' ऐसा घोख।" उसने झट लोटा भर गुरुजी के पास जा कहा कि "ए बम्मन मेरे घोखने को असुद्ध कहत है।" ऐसा सुनकर झट खाखीजी उठा, कूवे पर गया, पण्डित से कहा, 'तू मेरे चेले को बहकाता है? तूं गुरु की लंडी क्या पढ़ा है? देख तूं एक प्रकार का पाठ जानता है, हम तीन प्रकार का जानते हैं—'**स्त्रीगनेसाजन्नमें**' '**स्त्रीगनेसायन्नमें**' '**श्रीगनेसाय नमें।**"

पण्डित—सुनो साधुजी! विद्या की बात बहुत कठिन है, विना पढ़े नहीं आती।

खाखी—चल बे, सब विद्वान् को हमने रगड़ मारे, जो भांग में घोट एक दम सब उड़ा दिये। सन्तों का घर बड़ा है। तू बाबूड़ा क्या जाने?

पण्डित—देखो! जो तुमने विद्या पढ़ी होती तो ऐसे अपशब्द क्यों बोलते? सब प्रकार का तुमको ज्ञान होता।

खाखी—अबे! तू हमारा गुरू बनता है? तेरा उपदेश हम नहीं सुनते।

पण्डित—सुनो कहाँ से? बुद्धि ही नहीं है। उपदेश सुनने-समझने के लिये विद्या चाहिए।

खाखी—जो सब वेद-शास्त्र पढ़े, सन्तों को न माने तो जानो कि

वह कुछ भी नहीं पढ़ा।

पण्डित—हां, हम सन्तों की सेवा करते हैं परन्तु तुम्हारे से हुर्दङ्गों की नहीं करते। क्योंकि '**सन्त**' सज्जन, विद्वान्, धार्मिक, परोपकारी पुरुषों को कहते हैं।

खाखी—देख! हम रात दिन नंगे रहते, धूनी तापते, गांजा-चरस के सैकड़ों दम लगाते, तीन-तीन लोटा भांग पीते, गांजे-भांग-धतूरा की पत्ती की भाजी बना खाते, संखिया और अफीम भी चट निगल जाते, नशा में गर्क रात-दिन बे-ग़म रहते, दुनियाँ को कुछ नहीं समझते, भीख मांगकर टिक्कड़ बना खाते, रात भर ऐसी खांसी उठती, जो पास में सोवे उसको भी निद्रा कभी न आवे, इत्यादि सिद्धियाँ और साधूपन हम में है, फिर तू हमारी निन्दा क्यों करता? चेत बाबूड़े! जो हमको दिक्क करेगा, हम तुमको भसम कर डालेगा।

पण्डित—ये सब लक्षण असाधु, मूर्ख और गवर्गण्डों के हैं, साधुओं के नहीं। सुनो! '**साध्नोति पराणि धर्मकार्याणि स साधुः**' जो धर्मयुक्त उत्तम काम करे, सदा परोपकार में प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो, विद्वान्, सत्योपदेश से सबका उपकार करे, उसको '**साधु**' कहते हैं।

खाखी—चल बे! तू साधु के कर्म क्या जाने? सन्तों का घर बड़ा है। किसी सन्त से अटकना नहीं। नहीं तो देख! एक चीमटा उठाकर मारेगा, कपाल फुड़वा लेगा।

पण्डित—अच्छा खाखी! जाओ अपने आसन पर, हमसे बहुत गुस्से मत हो। जानते हो राज्य कैसा है? किसी को मारोगे तो पकड़े जाओगे, कारावास भोगोगे, बेंत खाओगे वा कोई तुमको भी मार बैठेगा, क्या करोगे? यह साधु का लक्षण नहीं।

खाखी—चल बे चेले! किस राक्षस का मुख दिखलाया।

पण्डित—तुमने कभी किसी महात्मा का सङ्ग नहीं किया है, नहीं तो ऐसे जड़ मूर्ख न रहते।

खाखी—हम आप ही महात्मा हैं। हमको किसी दूसरे की गर्ज नहीं।

पण्डित—जिनके भाग्य नष्ट होते हैं, उनकी तुम्हारी-सी बुद्धि और अभिमान होता है।

खाखी चला गया आसन पर, और पण्डित घर को। जब सन्ध्या आर्ती हो गई तब उस खाखी को बुड्ढा समझ बहुत से खाखी '**डण्डोत-डण्डोत**' कहते साष्टाङ्ग करके बैठे। उस खाखी ने पूछा, ''अबे रामदासिया! तू क्या पढ़ा है?''

रामदास—महाराज! मैंने '**वेस्नुसहसरनाम**' पढ़ा है।

खाखीजी—''अबे गोविन्ददासिये! तू क्या पढ़ा है?''

गोविन्ददास—मैं '**रामसतवराज**' पढ़ा हूँ, अमुक खाखीजी के पास से। तब रामदास बोला कि ''महाराज! आप क्या पढ़े हैं?''

खाखी—हम गीता पढ़े हैं?

रामदास—किसके पास?

खाखीजी—चल्बे छोकरे! हम किसी को गुरु नहीं करते। देख! हम '**परागराज**' में रहते थे। हमको अक्खर नहीं आता था। जब किसी लम्बी धोतीवाले पण्डित को देखता था तब गीता के गोटके में पूछता था कि इस कलङ्गीवाले अक्खर का क्या नाम है? ऐसे पूछता-पूछता अठारा अध्याय गीता रगड़ मारी। गुरू एक भी नहीं किया।

भला, ऐसे विद्या के शत्रुओं को अविद्या घर करके ठहरे नहीं, तो कहाँ जाये? ये लोग विना नशा, प्रमाद, लड़ना, खाना, सोना, झांझ पीटना, घण्टा-घड़ियाल-शंख बजाना, धूनी चिता रखनी, नहाना, धोना, सब दिशाओं में व्यर्थ घूमते फिरने के, अन्य कुछ भी अच्छा काम नहीं करते। जो कोई पत्थर को भी पिघला लेवे, परन्तु इन खाखियों के आत्माओं को बोध कराना कठिन है। क्योंकि बहुधा वे शूद्रवर्ण, मजूर, किसान, कहार आदि अपनी मजूरी छोड़, खाख रमा के वैरागी, खाखी आदि हो जाते हैं, उनको विद्या वा सत्सङ्ग आदि का माहात्म्य नहीं जान पड़ सकता। इनमें से नाथों का मन्त्र '**नमः शिवाय**'। खाखियों का '**नृसिंहाय नमः**'। रामावतों का '**श्रीरामचन्द्राय नमः**' अथवा '**सीतारामाभ्यां नमः**'। कृष्णोपासकों का '**श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः**' '**नमो भगवते वासुदेवाय**' और बङ्गालियों का '**गोविन्दाय नमः**'। इन मन्त्रों को कान में पढ़ने-मात्र से शिष्य कर लेते हैं और ऐसी-ऐसी शिक्षा करते हैं, बच्चे! तूम्बे का मन्त्र पढ़ ले—

जल पवितर सथल पवितर और पवितर कुआ।
शिव कहे सुन पार्वती तूम्बा पवितर हुआ॥

[ऊह्य—रामस्नेहधर्मप्रकाश ३९० तूं बामन्त्र, रामपटल पृ० ३]

भला, ऐसे की योग्यता साधु वा विद्वान् होने अथवा जगत् के उपकार करने की कभी हो सकती है? खाखी रात-दिन लक्कड़, छाने जलाया करते हैं। एक महीने में कई रुपये की लकड़ी फूँक देते हैं। जो एक महीने की लकड़ी के मूल्य से कम्बलादि वस्त्र लेलें तो शतांश धन से आनन्द में रहैं। उनको इतनी बुद्धि कहां से आवे? और अपना नाम उसी धूनी में तपने ही से तपस्वी धर रक्खा है। जो इस प्रकार तपस्वी हो सकें तो जङ्गली मनुष्य इनसे भी अधिक तपस्वी हो जावें। जो जटा बढ़ाने, राख लगाने, तिलक करने से तपस्वी हो जाये तो सब कोई कर सके। ये ऊपर के त्यागस्वरूप और भीतर के महासंग्रही होते हैं।

प्रश्न—कबीरपन्थी तो अच्छे हैं?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—क्यों अच्छे नहीं? पाषाणादि मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हैं। कबीर साहब फूलों से उत्पन्न हुए और अन्त में भी फूल हो गये। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव का जन्म जब नहीं था, तब भी कबीर साहब थे। बड़े सिद्ध, जिस बात को वेद पुराण भी नहीं जान सकता, उसको कबीर जानता है। सच्चा रस्ता है, सो कबीर ही ने दिखलाया है। इनका मन्त्र '**सत्यनाम कबीर**' आदि है।

उत्तर—पाषाणादि को छोड़ पलङ्ग, गद्दी-तकिये, खड़ाऊँ, ज्योति अर्थात् दीप आदि का पूजना पाषाणमूर्त्ति [पूजने] से न्यून नहीं। क्या कबीर साहब भुनुगा था वा कलियाँ था, जो फूलों से उत्पन्न हुआ और अन्त में फूल हो गया?

यहाँ जो यह बात सुनी जाती है, वही सच्ची होगी कि कोई जुलाहा काशी में रहता था। उसके लड़का-बाला नहीं था। एक समय थोड़ी-सी रात्रि थी। एक गली में चला जाता था तो देखा सड़क के किनारे में एक टोकनी में फूलों के बीच में उसी रात का जन्मा बालक था। वह उसको उठा ले गया। अपनी स्त्री को दिया उसने पालन किया। जब

वह बड़ा हुआ तब जुलाहे का काम करता था। किसी पण्डित के पास संस्कृत पढ़ने के लिये गया। उसने उसका अपमान किया। कहा कि—''हम जुलाहे को नहीं पढ़ाते।'' इसी प्रकार कई पण्डितों के पास फिरा परन्तु किसी ने न पढ़ाया। तब ऊटपटांग भाषा बनाकर जुलाहे आदि नीच लोगों को समझाने लगा। तंबूरे लेकर गाता था, भजन बनाता था। विशेष—पण्डित, शास्त्र, वेदों की निन्दा किया करता था। कुछ मूर्ख लोग उसके जाल में फस गये। जब मर गया, तब लोगों ने उसको सिद्ध बना लिया। जो-जो उसने जीते-जी बनाया था, उसको उसके चेले पढ़ते रहे। कान को मूंदके जो शब्द सुना जाता है उसको अनहत शब्द सिद्धान्त ठहराया। मन की वृत्ति को 'सुरति' कहते हैं। उसको उस शब्द सुनने में लगाना, उसी को सन्त और परमेश्वर का ध्यान बतलाते हैं। वहाँ काल नहीं पहुँचता। बर्छी के तुल्य तिलक और चन्दनादि लकड़े की कण्ठी बाँधते हैं। भला विचार देखो कि इसमें आत्मा की उन्नति और ज्ञान क्या बढ़ सकता है? यह मत लड़कों के खेल के तुल्य लीला है।

प्रश्न—पञ्जाब देश में 'नानकजी' ने एक मार्ग चलाया है। क्योंकि वे भी मूर्त्ति का खण्डन करते थे। मुसलमान होने से बचाये। वे साधु भी नहीं हुए, किन्तु गृहस्थ बने रहे। देखो! उन्होंने यह मन्त्र उपदेश किया है, इसी से विदित होता है कि उनका आशय अच्छा था—

ओं सत्यनाम कर्त्ता पुरुष निर्भो निर्वैर अकालमूर्त अजोनि सहभं गुरु प्रसाद जप, आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, नानक होसी भी सच॥ [जपजी पौड़ी १]

(ओ३म्) जिसका सत्य नाम है, वह कर्त्ता, पुरुष, भय और वैररहित 'अकालमूर्त्ति' जो काल में और जोनि में नहीं आता, प्रकाशमान है, उसी का जप गुरु की कृपा से कर। वह परमात्मा आदि में सच था, जुगों की आदि में सच, वर्त्तमान में सच और होगा भी सच।

उत्तर—नानकजी का आशय तो अच्छा था, परन्तु विद्या कुछ भी नहीं थी। हां भाषा उस देश की जो कि ग्रामों की है, जानते थे। वेदादि शास्त्र और संस्कृत कुछ भी नहीं जानते थे। जो जानते होते तो 'निर्भय' शब्द को 'निर्भो' न लिखते और इसका दृष्टान्त उनका बनाया 'संस्कृती

स्तोत्र' है। चाहते थे कि मैं संस्कृत में भी ''पग अड़ाऊँ', परन्तु विना पढ़े संस्कृत कैसे आ सकता है? हाँ, उन ग्रामीणों के सामने कि जिन्होंने संस्कृत कभी सुना भी नहीं था 'संस्कृती' बना कर संस्कृत के भी पण्डित बन गये होंगे। भला यह बात अपने मान, प्रतिष्ठा और अपनी प्रख्याति की इच्छा के विना कभी न करते। उनको अपनी प्रतिष्ठा की इच्छा अवश्य थी, नहीं तो जैसी भाषा जानते थे, कहते रहते और यह भी कह देते कि मैं संस्कृत नहीं पढ़ा। जब कुछ अभिमान था तो मान-प्रतिष्ठा के लिये कुछ दम्भ भी किया होगा, इसीलिये उनके ग्रन्थ में जहाँ-तहाँ वेदों की निन्दा और स्तुति भी है, क्योंकि जो ऐसा न करते तो उनसे भी कोई वेद का अर्थ पूछता, जब न आता तब प्रतिष्ठा नष्ट होती, इसलिये पहिले ही अपने शिष्यों के सामने कहीं-कहीं वेदों के विरुद्ध बोलते थे और कहीं-कहीं वेद के लिये अच्छा भी कहा है। क्योंकि जो कहीं अच्छा न कहते तो लोग उनको नास्तिक बनाते। जैसे—

वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि।
सन्त की महिमा वेद न जानी।

[ऊह्य०—सुखमनी अष्टपदी ७, पद ८]

ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर॥ [ऊह्य०—सु० अष्ट० ८, पद ६]

क्या वेद पढ़नेवाले मर गये और नानकजी आदि अपने को अमर समझते थे? क्या वे नहीं मर गये? वेद तो सब विद्याओं का भण्डार है, परन्तु जो चारों वेदों को कहानी कहे, उसकी सब बातें कहानी हैं। जो मूर्खों का नाम सन्त होता है, वे बिचारे वेदों का महिमा कभी नहीं जान सकते। जो नानकजी वेदों ही का मान करते तो उनका सम्प्रदाय न चलता, न वे गुरु बन सकते थे, क्योंकि संस्कृत-विद्या तो पढ़े ही नहीं थे तो दूसरे को पढ़ाकर शिष्य कैसे बना सकते थे?

यह सच है कि जिस समय नानकजी पञ्जाब में हुए थे, उस समय पञ्जाब संस्कृत-विद्या से सर्वथा रहित, मुसलमानों से पीड़ित था। उस समय उन्होंने कुछ लोगों को बचाया। नानकजी के सामने कुछ उनका सम्प्रदाय वा बहुत से शिष्य नहीं हुए थे। क्योंकि अविद्वानों में यह चाल है कि मरे पीछे उनको सिद्ध बना लेते हैं, पश्चात् बहुत सा

माहात्म्य करके ईश्वर के समान मान लेते हैं।

हां, नानकजी बड़े धनाढ्य, रईस भी नहीं थे परन्तु उनके चेलों ने 'नानकचन्द्रोदय' और 'जन्मसाखी' आदि में बड़े सिद्ध और बड़े ऐश्वर्यवाले थे, लिखा है। नानकजी ब्रह्मा आदि से मिले, बड़ी बातचीत की, सबने इनका मान्य किया। नानकजी के विवाह में बहुत से घोड़े, रथ, हाथी सोने-चाँदी, मोती रत्नों से सजे हुए और अमूल्य रत्नों का पारावार न था, लिखा है। भला, ये गपोड़े नहीं तो क्या हैं? इसमें इनके चेलों का दोष है, नानकजी का नहीं।

दूसरा—उनके पीछे उनके लड़के से उदासी चले, और रामदास आदि से निर्मले। कितने ही गद्दीवालों ने भाषा बनाकर ग्रन्थ में रक्खी है। अर्थात् इनका गुरु गोविन्दसिंहजी दशमा हुआ। उनके पीछे उस ग्रन्थ में किसी की भाषा नहीं मिलाई गई किन्तु वहाँ तक के जितने छोटे-छोटे पुस्तक थे, उन सबको इकट्ठे करके जिल्द बँधवा दी। इन लोगों ने भी नानकजी के पीछे बहुत-सी भाषा बनाई। कितनों ही ने नाना प्रकार की पुराणों की मिथ्या कथा के तुल्य बना दिये। परन्तु 'ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर' बनके उस पर कर्म, उपासना छोड़कर इनके शिष्य झुकते आये, इसने बहुत बिगाड़ कर दिया। नहीं, जो नानकजी ने कुछ भक्ति-विशेष ईश्वर की लिखी थी उसे करते आते तो अच्छा था।

अब उदासी कहते हैं "हम बड़े", निर्मले कहते हैं "हम बड़े", अकाली तथा सुतरेसाई कहते हैं कि "सर्वोपरि हम हैं।"

इनमें गोविन्दसिंहजी शूरवीर हुए। जो मुसलमानों ने उनके पुरुषाओं को बहुत-सा दुःख दिया था, उनसे वैर लेना चाहते थे, परन्तु इनके पास कुछ सामग्री न थी और उधर मुसलमानों की बादशाही प्रज्वलित हो रही थी। इन्होंने एक पुरश्चरण करवाया। प्रसिद्धि की कि "मुझको देवी ने वर और खड्ग दिया है कि तुम मुसलमानों से लड़ो, तुम्हारा विजय होगा"। बहुत लोग उनके साथी हो गये और उन्होंने, जैसे वाममार्गियों ने 'पञ्च मकार', चक्राङ्कितों ने 'पञ्च संस्कार' चलाये थे, वैसे 'पञ्च ककार' अर्थात् इनके पञ्च ककार युद्ध के उपयोगी थे।

एक '**केश**' अर्थात् जिसके रखने से लड़ाई में लकड़ी और तलवार

से कुछ बचावट हो।

दूसरा '**कंगण**' जो शिर के ऊपर पगड़ी में अकाली लोग रखते हैं और हाथ में '**कड़ा**' जिससे हाथ और शिर बच सकें।

तीसरा '**काछ**' अर्थात् जानु के ऊपर एक जांघिया कि जो दौड़ने, कूदने में अच्छा होता है। बहुत करके अखाड़मल्ल और नट भी इसको इसीलिये धारण करते हैं कि जिससे शरीर का मर्मस्थान ढका रहै और अटकाव न हो।

चौथा '**कंगा**' कि जिससे केश सुधरते हैं।

पाँचवाँ **काचू** कि जिससे शत्रु से भेंट-भड़क्का होने से लड़ाई में काम आवे।

इसीलिये यह रीति गोविन्दसिंहजी ने अपनी बुद्धिमत्ता से उस समय के लिये की थी। अब इस समय में उनका रखना कुछ उपयोगी नहीं है। परन्तु अब जो युद्ध के प्रयोजन के लिये बातें कर्त्तव्य थीं, उनको धर्म के साथ मान ली हैं।

मूर्त्तिपूजा तो नहीं करते परन्तु उससे विशेष ग्रन्थ की पूजा करते हैं, क्या यह मूर्त्तिपूजा नहीं है? किसी जड़ पदार्थ के सामने शिर झुकाना वा उसकी पूजा करनी सब मूर्त्तिपूजा है। जैसे मूर्त्तिवालों ने अपनी दुकान जमाकर जीविका ठाड़ी की है, वैसे इन लोगों ने भी कर ली है। जैसे पूजारी लोग मूर्त्ति का दर्शन कराते, भेट चढ़वाते हैं, वैसे नानकपन्थी लोग ग्रन्थ की पूजा करते-कराते, भेंट भी चढ़वाते हैं। अर्थात् मूर्त्तिपूजावाले जितना वेद का मान्य करते हैं, उतना भी ये लोग ग्रन्थसाहबवाले नहीं करते। हां, यह कहा जा सकता है कि इन्होंने वेदों को न सुना न देखा, क्या करें? जो सुनने और देखने में आवें तो बुद्धिमान् लोग जो कि हठी-दुराग्रही नहीं हैं, सब सम्प्रदायवाले वेदमत में आ जाते हैं। परन्तु इन सबने भोजन का बखेड़ा बहुत-सा हटा दिया है। जैसे इसको हटाया, वैसे विषयासक्ति और दुरभिमान को भी हटाकर वेदमत की उन्नति करें तो बहुत अच्छी बात है।

प्रश्न—दादूपन्थी का मार्ग तो अच्छा है?

उत्तर—अच्छा तो वेदमार्ग है, जो पकड़ा जाय तो पकड़ो, नहीं तो

सदा गोते खाते रहोगे। इनके मत में दादूजी का जन्म गुजरात में हुआ था। पुन: जयपुर के पास 'आमेर' में रहते थे। तेली का काम करते थे। ईश्वर की सृष्टि की विचित्र लीला है कि दादूजी भी पुजाने लग गये। अब वेदादि शास्त्रों की सब बातें छोड़ कर 'दादूराम-दादूराम' में ही मुक्ति मानली है। जब सत्योपदेशक नहीं होता तब ऐसे-ऐसे ही बखेड़े चला करते हैं।

थोड़े दिन हुए कि एक 'रामस्नेही' मत शाहपुरे से चला है। वे सब वेदोक्त धर्म छोड़ 'राम-राम' पुकार रहे हैं। उसी में ज्ञान, ध्यान, मुक्ति मानते हैं। परन्तु जब भूख लगती है, तब 'रामनाम' में से रोटी नहीं निकलती, क्योंकि खानपान आदि तो गृहस्थों के घर ही में मिलते हैं। वे भी मूर्त्तिपूजा को धिक्कारते हैं परन्तु आप स्वयं मूर्त्ति बन रहे हैं। स्त्रियों के सङ्ग में बहुत रहते हैं, क्योंकि रामजी-रामकी के विना आनन्द ही नहीं मिल सकता।

अब थोड़ा-सा विशेष रामस्नेही के मत विषय में लिखते हैं—

एक 'रामचरण' नामक साधु हुआ है, जिसका मत मुख्यकर 'शाहपुरा' स्थान मेवाड़ से चला है। वे 'राम-राम' करने ही को परममन्त्र और इसी को सिद्धान्त मानते हैं। उनका एक ग्रन्थ कि जिसमें सन्तदासजी आदि की वाणी हैं, ऐसा लिखते हैं—

उनका वचन—

भरम रोग तब ही मिट्या, रट्या निरंजन राइ।
तब जम का कागज फट्या, कट्या करम तब जाइ॥ १ ॥

[ऊह्य—सुमरण को अङ्ग १७]

अब बुद्धिमान् लोग विचार लेवें कि 'राम-राम' करने से भ्रम जोकि अज्ञान है, वा यमराज का पापानुकूल शासन अथवा किये हुए कर्म कभी छूट सकते हैं, वा नहीं? यह केवल मनुष्यों को पापों में फसाना और मनुष्य जन्म को नष्ट कर देना है।

अब इनका जो मुख्य गुरु हुआ है 'रामचरण', उसका वचन—

महमा नांव प्रताप की, सुणौ सरवण चित लाइ।
रामचरण रसना रटौ, क्रम सकल झड़ जाइ॥ १ ॥
जिन जिन सुमिरया नांव कूं, सो सब उतरया पार।
रांमचरण जो बीसरया, सो ही जम के द्वार॥ २ ॥

रांम विना सब झूठ बतायो॥
रांम भजत छूट्या सब क्रम्मा। चंद अरु सूर देइ परकम्मा॥
रांम कहे तिन कूं भै नाहीं। तीन लोक में कीरतिं गाहीं॥
रांम रटत जम जोर न लागै॥
रांम नाम लिष पथर तराई। भगति हेति औतार ही धरही॥
ऊंच नीच कुल भेद बिचारै। सो तो जनम आपणो हारै॥
सन्तां कै कुल दीसै नाहीं। रांम रांम कह रांम सम्हांहीं॥
ऐसो कुण जो कीरति गावै। हरि हरिजन कौ पार न पावै॥
रांम संतां का अन्त न आवै। आप आपकी बुद्धि सम गावै॥

[ऊह्य—नामप्रताप]

इनका खण्डन—

प्रथम तो रामचरण आदि के ग्रन्थ देखने से विदित होता है कि यह ग्रामीण एक सादा सीधा मनुष्य था। न वह कुछ पढ़ा था, नहीं तो ऐसी गपड़चौथ क्यों लिखता? यह केवल इनको भ्रम है कि राम-राम कहने से कर्म छूट जाँय। केवल ये अपना और दूसरों का जन्म खोते हैं।

जम का भय तो बड़ा भारी है परन्तु राजसिपाही, चोर, डाकू, व्याघ्र, सर्प, बीछू और मच्छर आदि का भय कभी नहीं छूटता। चाहे रात-दिन राम-राम किया करे, कुछ भी नहीं होगा। जैसे सक्कर-सक्कर कहने से मुख मीठा नहीं होता, वैसे सत्यभाषणादि धर्म किये विना 'राम-राम' करने से कुछ भी नहीं होगा और यदि राम-राम करना इनका राम नहीं सुनता तो जन्म-भर कहने से भी नहीं सुनेगा और जो सुनता है तो दूसरी वार भी राम-राम कहना व्यर्थ है। इन लोगों ने अपना पेट भरने और दूसरों का भी जन्म नष्ट करने के लिये एक पाखण्ड खड़ा किया है। सो यह बड़ा आश्चर्य हम सुनते और देखते हैं कि नाम तो धरा 'रामस्नेही' और काम करते हैं 'राँडस्नेही का। जहाँ देखो वहाँ रांड ही रांड सन्तों को घेर रही हैं। यदि ऐसे-ऐसे पाखण्ड न चलते तो आर्य्यावर्त्त देश की दुर्दशा क्यों होती? ये लोग अपने चेलों को जूंठ खिलाते, स्त्रियाँ भी लम्बी पड़के दण्डवत् प्रणाम करती हैं। एकान्त में भी स्त्रियों और साधुओं की लीला होती रहती है।

अब दूसरी इनकी शाखा 'खेड़ापा' ग्राम मारवाड़ देश से चली है। उसका इतिहास—एक रामदास नामक जाति का ढेढ़ बड़ा चालाक था। उसके दो स्त्रियाँ थी। वह प्रथम बहुत दिन तक औघड़ होकर कुत्तों के साथ खाता रहा। पीछे वामी कूण्डापन्थी। पीछे 'रामदेव' का 'कामड़िया[१]' बना। अपनी दोनों स्त्रियों के साथ गाता था। ऐसे घूमता-घूमता 'सीथल[२]' में ढेढ़ों का गुरु 'रामदास' था, उससे मिला। उसने उसको 'रामदेव' का पन्थ बताके अपना चेला बनाया। उस रामदास ने खेड़ापा ग्राम में जगह बनाई और इसका इधर मत चला, उधर शाहपुरे में रामचरण का।

उसका भी इतिहास ऐसा सुना है कि वह जयपुर का बनिया था। उसने 'दांतड़ा' ग्राम में एक साधु से वेष लिया और उसको गुरु किया और शाहपुरे में आके टिक्की जमाई। भोले मनुष्यों में पाखण्ड की जड़ शीघ्र जम जाती है, जम गई। इन सबमें ऊपर के रामचरण के वचनों के प्रमाण से चेला करके ऊँच-नीच का कुछ भेद नहीं। ब्राह्मण से अन्त्यज पर्यन्त इनमें चेले बनते हैं। अब भी कूँडापन्थी से ही हैं, क्योंकि मिट्टी के कूँडों में ही खाते हैं और साधुओं की झूंठन खाते हैं, वेदधर्म से, माता, पिता, संसार के व्यवहार से बहकाकर छुड़ा देते और चेला बना लेते हैं और राम नाम को महामन्त्र मानते हैं; और इसी को 'छुच्छम[३]' वेद भी कहते हैं। राम-राम कहने से अनन्त जन्मों के पाप छूट जाते हैं, इसके विना मुक्ति किसी की नहीं होती।

जो श्वास और प्रश्वास के साथ राम-राम करना बतावे, उसको 'सत्यगुरु' कहते हैं और सत्यगुरु को परमेश्वर से भी बड़ा मानते हैं और उसकी मूर्त्ति का ध्यान करते हैं। साधुओं के चरण धोके पीते हैं। जब गुरु से चेला दूर जावे तो गुरु के नख और डाढ़ी के बाल अपने पास रख लेवे। उसका चरणामृत नित्य लेवे। रामदास और हररामदास

१. राजपूताने में ''चमार'' लोग भगवें वस्त्र रंग कर ''रामदेव'' आदि के गीत जिनको वे ''शब्द'' कहते हैं, चमारों और अन्य जातियों को सुनाते हैं, वे ''कामड़िये'' कहलाते हैं।
२. ''सीथल'' जोधपुर के राज्य में एक बड़ा ग्राम है।
३. छुच्छम अर्थात् सूक्ष्म

के वाणी के पुस्तक को वेद से अधिक मानते हैं। उसकी परिक्रमा और आठ दण्डवत् प्रणाम करते हैं और जो गुरु समीप हो तो गुरु को दण्डवत् प्रणाम कर लेते हैं। स्त्री वा पुरुष को 'राम-राम' एक-सा ही उपदेश करते हैं, नामस्मरण से कल्याण मानते हैं, और पढ़ने में पाप समझते हैं। उनकी साखी—

पंडताइ पाने पड़ी, ओ पूरब लो पाप।
राम-राम सुमर्‍यां विना, रइग्यौ रीतो आप॥ १ ॥
वेद पुराण पढ़े पढ़ गीता, रांमभजन बिन रइ गए रीता॥

ऐसे-ऐसे पुस्तक बनाये हैं। स्त्री को पति की सेवा में पाप और गुरु-साधु की सेवा में धर्म बतलाते हैं। वर्णाश्रम को नहीं मानते। जो ब्राह्मण रामस्नेही न हो तो उसको नीच, और चाण्डाल रामस्नेही हो तो उसको उत्तम जानते हैं।

अब, ईश्वर का अवतार नहीं मानते और रामचरण का वचन जो ऊपर लिख आये कि—**भगति हेति औतार ही धरही॥**

सन्तों के हित अवतार को भी मानते हैं, इत्यादि पाखण्ड-प्रपञ्च इनका जितना है, सो सब आर्यावर्त्त देश का अहितकारक है। इतने ही से बुद्धिमान् बहुत-सा समझ लेंगे।

प्रश्न—गोकुलिये गुसाइयों का मत बहुत अच्छा है। देखो! कैसा ऐश्वर्य भोगते हैं। क्या यह ऐश्वर्य्य लीला के विना ऐसा हो सकता है?

उत्तर—यह ऐश्वर्य गृहस्थ लोगों का है, गुसाइयों का कुछ नहीं।

प्रश्न—वाह-वाह! गुसाइयों के प्रताप से है। क्योंकि ऐसा ऐश्वर्य दूसरों को क्यों नहीं मिलता?

उत्तर—दूसरे भी इसी प्रकार का छल-प्रपञ्च रचें तो ऐश्वर्य्य मिलने में क्या सन्देह है? और जो इनसे अधिक धूर्त्तता करे तो अधिक ऐश्वर्य्य भी हो सकता है।

प्रश्न—वाह वाह! धूर्त्तता क्या है? सब गोलोक की लीला है।

उत्तर—गोलोक की लीला नहीं किन्तु गुसाइयों की लीला है। जो गोलोक की लीला है तो गोलोक भी ऐसा ही होगा।

यह मत 'तैलङ्ग' देश से चला है। क्योंकि एक तैलङ्गी लक्ष्मणभट्ट

नामक ब्राह्मण विवाह कर किसी कारण से माता, पिता, स्त्री को छोड़ काशी में जाके उसने संन्यास ले लिया था और झूठ बोला था कि मेरा विवाह नहीं हुआ। दैवयोग से उसके माता, पिता और स्त्री ने सुना कि काशी में संन्यासी हो गया। उसके माता-पिता और स्त्री काशी में पहुँच कर जिसने उसको संन्यास दिया था, उससे कहा कि ''इसको संन्यासी क्यों किया? देखो! इसकी यह युवति स्त्री है।'' और स्त्री ने कहा कि ''यदि आप मेरे पति को मेरे साथ न करें तो मुझको भी संन्यास दे दीजिये।'' तब तो उसको बुलाके कहा कि तू बड़ा मिथ्यावादी है। संन्यास छोड़ गृहाश्रम कर; क्योंकि तूने झूठ बोलकर संन्यास लिया है।'' उसने वैसा ही किया। संन्यास छोड़ उसके साथ हो लिया।

देखो! इस मत का मूल ही झूठ-कपट से चला। जब तैलङ्ग देश में गये, उसको जाति में किसी ने न लिया। वहाँ से निकलकर घूमने लगे। 'चरणार्गढ' जो काशी के पास है, उसके पास 'चम्पारण्य' जङ्गल में चले जाते थे। वहाँ कोई एक लड़के को जङ्गल में छोड़ चारों ओर दूर-दूर आगी जलाकर चला गया था। क्योंकि छोड़नेवाले ने यह समझा था—जो आगी न जलाऊंगा तो अभी कोई जानवर मार डालेगा। लक्ष्मणभट्ट और उसकी स्त्री ने लड़के को लेकर अपना पुत्र बना लिया। फिर काशी में जा रहे। जब वह लड़का बड़ा हुआ तब उसके मा-बाप का शरीर छूट गया। काशी में बाल्यावस्था से युवावस्था तक कुछ पढ़ता भी रहा, फिर एक विष्णुस्वामी के मन्दिर में चेला हो गया। वहाँ से कभी कुछ खटपट होने से काशी को चला गया और संन्यास ले लिया। फिर कोई वैसा ही जातिबहिष्कृत ब्राह्मण काशी में रहता था। उसकी लड़की युवति थी। उसने इससे कहा कि ''तू संन्यास छोड़ मेरी लड़की से विवाह कर ले।'' वैसा ही हुआ। जिसके बाप ने जैसी लीला की थी वैसी पुत्र क्यों न करे? उस स्त्री को लेकर वहीं चला गया कि जहाँ प्रथम विष्णुस्वामी के मन्दिर में चेला हुआ था। विवाह करने से उनको वहाँ से निकाल दिया। फिर ब्रजदेश में कि जहाँ अविद्या ने घर कर रक्खा है, जाकर, अपना प्रपञ्च अनेक प्रकार की छल-युक्तियों से फैलाने लगा और कहने लगा कि मुझसे कृष्ण ने कहा है कि ''जो

गोलोक से 'दैवीजीव' मर्त्यलोक में आये हैं, उनको ब्रह्मसम्बन्ध आदि से पवित्र करके गोलोक में भेजो।'' इत्यादि प्रलोभन की बातें कह के थोड़े से लोगों को अर्थात् ८४ चौरासी वैष्णव बनाये और —

श्रीकृष्णः शरणं मम॥ १॥

दूसरा—**क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा॥ २॥**

[गोपालसहस्रनाम तथा पद्मपुराण (६) उत्तर खण्ड ७२।१२२]

ये दोनों साधारण मन्त्र हैं, परन्तु यह निम्नोक्त ब्रह्मसम्बन्ध और समर्पण का मन्त्र कहाता है—

श्रीकृष्णः शरणं मम सहस्त्रपरिवत्सरमितकालजातकृष्णवियोगजनिततापक्लेशानन्ततिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणतद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेहपराण्यात्मना सह समर्प्पयामि दासोऽहं कृष्ण तवास्मि॥

इस मन्त्र का उपदेश करके शिष्यों को समर्पण कराते हैं। '**क्लीं कृष्णायेति**'—यह '**क्लीं**' तन्त्र ग्रन्थ का है। इससे विदित होता है कि यह वल्लभमत भी वाममार्गियों का भेद है। इसी से स्त्री सङ्ग गुसाईं लोग बहुत करते हैं। '**गोपीवल्लभेति**'—क्या कृष्ण गोपियों ही को प्रिय थे, अन्य को नहीं? स्त्रियों को प्रिय वह होता है जो '**स्त्रैण**' अर्थात् स्त्रीभोग में फसा हो। क्या कृष्ण ऐसे थे?

अब '**सहस्त्रपरिवत्सरेति**'—सहस्र वर्षों की गणना व्यर्थ है, क्योंकि वल्लभ और उसके शिष्य सर्वज्ञ नहीं हैं। कृष्ण का वियोग सहस्रों वर्षों से हुआ और आज लों अर्थात् जब लों वल्लभ का मत न था, न वल्लभ जन्मा था, उसके पूर्व अपने दैवी जीवों के उद्धार करने को क्यों न आया?

'ताप' और 'क्लेश' पर्यायवाची हैं। इनमें से एक का ग्रहण करना उचित था, दो का नहीं। 'अनन्त' शब्द का पाठ करना व्यर्थ है, क्योंकि जो 'अनन्त' शब्द है तो 'सहस्र' का पाठ न करना चाहिये। और जो सहस्र शब्द का पाठ रक्खो तो अनन्त शब्द का पाठ रखना सर्वथा व्यर्थ है। और जो अनन्तकाल लों 'तिरोहित' अर्थात् आच्छादित रहै, उसकी मुक्ति के लिये वल्लभ का होना व्यर्थ है, क्योंकि अनन्त का अन्त नहीं होता।

भला! देहेन्द्रिय, प्राणान्तःकरण और उसके धर्म स्त्री, स्थान, पुत्र,

प्राप्त-धन का अर्पण कृष्ण को क्यों करना? क्योंकि कृष्ण पूर्णकाम होने से किसी के देहादि की इच्छा नहीं कर सकते और देहादि का अर्पण करना भी नहीं हो सकता, क्योंकि देह के अर्पण से नखशिखाग्रपर्यन्त देह कहाता है। उनमें जो कुछ अच्छी-बुरी वस्तु है, मल-मूत्रादि का भी अर्पण कैसे कर सकोगे? और जो पाप-पुण्यरूप कर्म होते हैं, उनको कृष्णार्पण करने से उनका फलभागी भी कृष्ण ही होवे अर्थात् नाम तो कृष्ण का लेते हैं और अर्पण अपने से कराते हैं। जो कुछ शरीर में मलमूत्रादि होता है, वह भी गोसाईंजी के अर्पण क्यों नहीं होता? '**क्या मीठा-मीठा गड़प्प और कड़ुवा कड़ुवा थू**'? और यह भी लिखा है कि गोसाईंजी के अर्पण करना, अन्य मत वाले के नहीं। यह सब स्वार्थ-सिन्धुपन और पराये धनादि पदार्थ हरने, वेदोक्त धर्म-नाश करने की लीला है। देखो! यह वल्लभ की लीला—

श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते॥ १॥
ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पञ्चविधाः स्मृताः॥ २॥
सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः।
संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कदाचन॥ ३॥
अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन।
असमर्पितवस्तूनां तस्माद्वर्ज्जनमाचरेत्॥ ४॥
निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः।
न मतं देवदेवस्य स्वामिभुक्तिसमर्प्पणम्॥ ५॥
तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्प्पणम्।
दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः॥ ६॥
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम्।
सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति॥ ७॥
तथा कार्य्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः।
गङ्गात्वे गुणदोषाणां गुणदोषादिवर्णनम्॥ ८॥

ये श्लोक गोसाइयों के '**सिद्धान्तरहस्यादि**' ग्रन्थों में लिखे हैं।

यही गोसाईं के मत का मूल तत्त्व है। भला, कोई पूछे कि श्रीकृष्ण के देहान्त हुए कुछ कम पाँच सहस्र वर्ष बीते। वह वल्लभ को श्रावण मास की आधी रात को कैसे मिल सके?॥ १॥

जो गोसाईं का चेला होता है और उसको सब पदार्थों का समर्पण करता है, उसके शरीर और जीव के सब दोषों की निवृत्ति हो जाती है। यही वल्लभ का प्रपञ्च मूर्खों को बहकाकर अपने मत में लाने का है। जो गोसाईं के चेले-चेलियों के सब दोष निवृत्त हो जावें तो रोग-दारिद्र्यादि से पीड़ित क्यों रहैं? और वे दोष पाँच प्रकार के होते हैं॥ २॥

एक—सहजदोष अर्थात् जो 'स्वाभाविक' काम-क्रोधादि से उत्पन्न होते हैं। **दूसरे**—किसी देश, काल में नाना प्रकार के पाप किये जायें।

तीसरे—लोक में जिनको भक्ष्याभक्ष्य कहते और वेदोक्त जोकि मिथ्याभाषणादि हैं।

चौथे—'संयोगज' जो बुरे सङ्ग अर्थात् चोरी, जारी, माता, भगिनी, कन्या, पुत्रवधू, गुरुपत्नी आदि से संयोग करना।

पाँचवें—'स्पर्शज' अस्पर्शनीयों को स्पर्श करना। इन पाँच दोषों को गोसाइयों के मतवाले कभी न मानें अर्थात् यथेष्टाचार करें॥ ३॥

'अन्य कोई प्रकार दोषों की निवृत्ति के लिए नहीं हैं, विना गोसाईं के मत के। इसलिए विना समर्पण किये पदार्थ को गोसाइयों के चेले न भोगें।' इसीलिये इनके चेले अपनी स्त्री, कन्या, पुत्रवधू और धनादि पदार्थों को भी समर्पित करते हैं। परन्तु समर्पण का नियम यह है कि जब लों गोसाईं जी की चरणसेवा में समर्पित न हो, तब लों उसका स्वामी स्वस्त्री का स्पर्श न करे॥ ४॥

इससे गोसाइयों के चेले समर्पण करके अपना-अपना भोग करें, क्योंकि स्वामी के भोग के पश्चात् समर्पण नहीं हो सकता॥ ५॥

इससे प्रथम सब कामों में सब वस्तुओं का समर्पण करें। प्रथम गोसाईंजी को भार्यादि समर्पण करके पश्चात् ग्रहण करें, वैसे ही हरि के सम्पूर्ण पदार्थ समर्पण करके ग्रहण करें॥ ६॥

गोसाईं के मत से भिन्न-मार्ग के वाक्य को गोसाईं के शिष्य कभी न सुनें, न ग्रहण करें, यही उनके शिष्यों का व्यवहार प्रसिद्ध है॥ ७॥

वैसे ही सब वस्तुओं का समर्पण करके सबके बीच में ब्रह्मबुद्धि करे। उसके पश्चात् जैसे गङ्गा में अन्य जल मिलकर गङ्गारूप हो जाते हैं, वैसे ही अपने मत में गुण और दूसरे मत में दोष का वर्णन किया करें॥ ८॥

अब लीजिए कि गोसाइयों का मत सब मतों से अधिक अपना प्रयोजन सिद्ध करनेहारा है। भला इन गोसाइयों को पूछे कि ब्रह्म का एक लक्षण भी तुम नहीं जानते तो शिष्यों का ब्रह्मसम्बन्ध कैसे कर सकोगे? जो कहो कि हम ही ब्रह्म हैं, हमारे साथ सम्बन्ध होने से ब्रह्मसम्बन्ध होता है। तो तुम में ब्रह्म के गुण-कर्म-स्वभाव एक भी नहीं है, पुनः क्या तुम केवल भोग-विलास के लिए ब्रह्म बने हो?

भला, शिष्य और शिष्याओं को तो तुम अपने साथ समर्पित करके शुद्ध करते हो और तुम और तुम्हारी भार्या, कन्या, पुत्रवधू तथा पुत्रादि असमर्पित रहने से अशुद्ध रह गये वा नहीं? जो असमर्पित वस्तु को अशुद्ध मानते हो तो तुम अशुद्ध क्यों नहीं? इसलिये तुम और तुम्हारी भार्या और पुत्रादि अन्य के साथ समर्पित होना चाहिये वा नहीं? जो कहो कि नहीं तो अन्य को अपने साथ समर्पित क्यों करते हो? इसलिये तुमको उचित है कि वेदमत को मानो और मिथ्या प्रपञ्चादि बुराइयों को छोड़ो, जिससे इस लोक और परलोक की शुद्धि होकर आनन्द पाओ।

ये अपने सम्प्रदाय को 'पुष्टिमार्ग' कहते हैं अर्थात् खाना-पीना, पुष्ट होना, सब स्त्रियों से यथेष्ट भोग-विलास करना। परन्तु जब भगन्दरादि रोग हो जाते हैं तो यही मत साक्षात् नरक मार्ग हो जाता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे-ऐसे पशुवत् क्रीडा करने वालों का भी मत संसार में चल जाता है। कहाँ तक लिखें इनकी सब लीला ऐसी ही शास्त्रविरुद्ध पापवर्द्धक है।

इसी प्रकार मिथ्याजाल रच के बिचारे भोले मनुष्यों को जाल में फसाया और अपने आपको श्रीकृष्ण मानकर सबके स्वामी मानते हैं। यह कहते हैं कि "जितने दैवी जीव गोलोक से आये हैं, उनके उद्धार करने के लिए हम लीला पुरुषोत्तम जन्मे हैं। जब तक हमारा उपदेश न

ले तब तक गोलोक की प्राप्ति नहीं होती। वहाँ एक श्रीकृष्ण पुरुष और सब स्त्रियाँ हैं।"

वाह जी वाह! अच्छा मत है!! गोसाइयों के जितने चेले हैं, वे सब गोपियाँ बन जावेंगी। भला जिस एक पुरुष की दो स्त्री हैं, उसकी बड़ी दुर्दशा होती है तो जहाँ एक पुरुष और क्रोड़ों स्त्री एक के पीछे लगी हैं, उसके दुःख का पार नहीं। जो कहो कि श्रीकृष्ण में बड़ा सामर्थ्य है, सबको प्रसन्न करते हैं तो जो उसकी स्त्री जिसको स्वामिनीजी कहते हैं, उसमें भी श्रीकृष्ण के तुल्य सामर्थ्य होगा क्योंकि वह उनकी अर्द्धांगी है। जैसे यहाँ स्त्री पुरुष की कामचेष्टा तुल्य अथवा पुरुष से स्त्री की अधिक होती है तो गोलोक में क्यों नहीं? जब ऐसा है तो अन्य स्त्रियों और स्वामिनीजी की अत्यन्त लड़ाई भी होती होगी, क्योंकि सपत्नीभाव बहुत बुरा होता है। पुनः गोलोक स्वर्ग के बदले नरकवत् हो गया होगा। अथवा जैसे बहुत स्त्रीगामी पुरुष भगन्दरादि रोगों से पीडित रहता है, वैसा गोलोक में भी होगा। ऐसे गोलोक से मर्त्यलोक ही अच्छा है।

देखो! जैसे यहाँ गोसाईं लोग अपने को कृष्ण मानते हैं, बहुत स्त्रियों के संग से भगन्दर प्रमेहादि रोगों से पीडित हैं तो अब जिनका स्वरूप 'गोसाईं' पीडित होते हैं तो गोलोक का स्वामी श्रीकृष्ण इन रोगों से पीडित क्यों नहीं होगा? और जो नहीं है तो उनका स्वरूप गोसाईं पीडित क्यों होते हैं?

प्रश्न—मर्त्यलोक में लीलावतार धारण करने से रोग-दोष होता है, गोलोक में नहीं, क्योंकि वहाँ रोग-दोष नहीं।

उत्तर—'**भोगे रोगभयम्**' [भर्तृहरि वैराग्यशतक, श्लोक ३३] जहाँ भोग है, वहाँ रोग अवश्य होता है। और श्रीकृष्ण के क्रोड़ान्-क्रोड़ स्त्रियों से सन्तान होते हैं, वा नहीं? जो होते हैं तो लड़के-लड़के होते हैं वा लड़की-लड़की? अथवा दोनों? जो लड़कियां होती हैं तो उनका विवाह किनके साथ होता होगा? क्योंकि वहाँ दूसरा कोई पुरुष नहीं। जो दूसरा है तो तुम्हारी प्रतिज्ञा-हानि हुई और लड़कों का विवाह कहाँ होता है? अथवा घर ही में वर्त लेते हैं? अन्य के लड़के हैं तो भी

तुम्हारी प्रतिज्ञा **'गोलोक में एक ही श्रीकृष्ण पुरुष'** नष्ट हो जाएगी और जो सन्तान होते ही नहीं तो कृष्ण अथवा उनकी स्त्रियों के शरीर में वीर्यहीनता वा बन्ध्यापन दोष होगा। यह गोलोक क्या है, जानो दिल्ली के बादशाह की बीबियों की सेना!

और गुसाईं लोग तन-मन धन अपने अर्पण शिष्यशिष्याओं का करा लेते हैं। जो शरीर है वह विवाहित स्त्री और पति के समर्पण हो जाता है और मन भी फिर दूसरे पुरुष के समर्पण नहीं हो सकता, जो हो सकता है तो वह स्त्री दो पति वाली होकर व्यभिचारिणी कहावेगी। और जो नखशिखाग्रशरीर गुसाईंजी के अर्पण है तो उसमें उत्पन्न हुये धातु, मल, मूत्रादि भी गुसाईंजी के अर्पित हो चुके और धन का अर्पण इसलिये कराते हैं कि कमावें चेले और भोगें गुसांई। जितने गुसाईं हैं, वे अब तक तैलङ्ग की जाति में नहीं हैं। जो कोई इनको लड़की देता है, वह भी जातिबाह्य होकर भ्रष्ट हो जाता है, क्योंकि ये जाति से पतित किए गये और विद्याहीन रात-दिन प्रमाद में रहते हैं।

और देखो! जब कोई उनकी पधरावनी करता है तब जाकर चुपचाप काठ की पुतली-सा बैठा रहता है, न कुछ बोलता न चालता। क्योंकि बोले तो तब जो मूर्ख न हो। **'मूर्खाणां बलं मौनम्'** मूर्खों का बल मौन में है। जो बोले तो उसकी पोल निकल जाय, परन्तु स्त्रियों की ओर खूब ताकता रहता है जिसकी ओर गुसाईंजी देखें वह स्त्री, उसके पति, भाई, बन्धु, माता, पिता बड़े प्रसन्न होते हैं। सब स्त्रियाँ पग छूती हैं। जिस पर गुसाईं का मन लगे उसका हाथ पग के अँगूठे से दाब देता है। वह स्त्री और उसके सम्बन्धी अपना धन्य भाग्य समझते हैं उसके पति आदि उस स्त्री से कहते हैं कि तू गुसाईंजी की चरणसेवा में जा। और जहाँ कहीं उसके पति आदि प्रसन्न नहीं होते, वहाँ दूती और कुटनियों से काम सिद्ध करते हैं। सच पूछो तो ऐसे काम करने-करानेवाले उनके मन्दिर और उनके पास भडुवापन करनेवाले बहुत हैं।

अब इनकी दक्षिणा की लीला अर्थात् इस प्रकार माँगते हैं, भेट गुसाईंजी की, बहूजी की, लालजी की, बेटीजी की, मुखिया बाहरियाजी की, गवैयाजी की, ठाकुरजी की भेट लाओ, इन सात दुकानों से खूब

माल मारते हैं। जब कोई उनका सेवक मरने लगता है तब उसकी छाती में पग छुवा, जो कुछ मिलता है, गुसाईंजी ले लेते हैं। क्या यह महाब्राह्मण, कर्टिया का, मुर्दावली का दान नहीं है? कोई-कोई विवाह में भी गुसाईंजी को बुलाते हैं और लड़का-लड़की का पाणिग्रहण कराते हैं, कोई-कोई सेवक जब **'केशरिया स्नान'** अर्थात् गुसाईंजी के शरीर पर स्त्री-लोग केशर का उबटना करके एक बड़े पात्र में पट्टा डालके गुसाईंजी को स्त्री-पुरुष स्नान कराते हैं परन्तु विशेष स्त्री स्नान कराती हैं। पुनः जब गुसाईंजी पीताम्बर पहिर, खड़ाऊँ पर पग धर बाहर निकल आते हैं और धोती उसी में पटक देते हैं। उस जल का आचमन उसके सेवक करते हैं और अच्छे मसालेदार पान-बीड़ी गुसाईंजी को देते हैं। वह चाबकर कुछ निगल जाते हैं, शेष एक चाँदी के कटोरे में जिसको उनका सेवक मुख के आगे कर देता है उसमें पीक उगल देते हैं। उसकी भी प्रसादी बटती है जिसको **'खास प्रसादी'** कहते हैं।

अब विचारिये कि ये लोग किस प्रकार के मनुष्य हैं? जो मूढ़ता और अनाचार होगा तो इतना ही होगा! बहुत से समर्पण लेते हैं। उनमें से कितने ही वैष्णवों के हाथ का खाते हैं, अन्य का नहीं। कितने अपने ही हाथ का बनाया खाते हैं, लकड़े तक को धो लेते हैं परन्तु आटा, गुड़, चीनी, घी आदि धोये विना उनका अस्पर्श बिगड़ जाता है। क्या करें बिचारे! जो इनको धोवें तो पदार्थ ही हाथ से खोवें। वे कहते हैं कि हम ठाकुरजी के रङ्ग, राग, भोग में बहुत सा धन लगा देते हैं। रङ्ग, राग, भोग आप करते हैं और सच पूछो तो बड़े-बड़े अनर्थ होते हैं अर्थात् होली के समय पिचकारियाँ भरकर स्त्रियों के अस्पर्शनीय अवयवों पर मारते हैं और रसविक्रय ब्राह्मण के लिये निषिद्ध है, सो भी करते हैं।

प्रश्न—गुसाईंजी रोटी, दाल, कढ़ी, भात, मठरी, लड्डू आदि को प्रत्यक्ष हाट में बैठ के तो नहीं बेचते, किन्तु अपने नौकर-चाकरों को पत्तल बाँट देते हैं, वे लोग बेचते हैं, गुसाईंजी नहीं।

उत्तर—जो गोसाईंजी उनको मासिक रुपये दें तो वे पत्तल क्यों लेवें? गुसाईंजी अपने नौकरों के हाथ दाल-भात आदि नौकरी के बदले बेचते और वे बाहर बेचते हैं। जो गुसाईंजी बाहर बेचते तो नौकर जो

ब्राह्मणादि हैं, वे तो रसविक्रय दोष से बचते, अकेले गुसाईंजी ही रसविक्रय के पाप में फसते। प्रथम आप फसे और अन्यों को फसा दिये। कहीं-कहीं नाथद्वारे आदि में गुसाईंजी भी बेचते हैं। रसविक्रय करना नीचों का काम है, उत्तमों का नहीं। ऐसे-ऐसे लोगों ने आर्य्यावर्त्त की अधोगति कर दी।

प्रश्न—''स्वामीनारायण'' का मत कैसा है?

उत्तर—'**यादृशी शीतला देवी, तादृशो वाहनः खरः**' जैसी धनहरणादि में गुसाईं लीला है, वैसी ही स्वामीनारायण की भी है।

जो 'सहजानन्द' अयोध्या के पास एक ग्राम का जन्मा हुआ था, वह ब्रह्मचारी होकर गुजरात, काठियावाड़, कच्छभुज आदि में फिरता था। उसने देखा कि यह देश मूर्ख और भोला है, चाहें वैसे इनको मत में झुका लेंवे। उसने दो चार शिष्य बनाये। उन ने आपस में सम्मति कर प्रसिद्ध किया कि सहजानन्द नारायण का अवतार बड़ा सिद्ध है और चतुर्भुज होकर दर्शन भी देता है।

एक वार काठियावाड़ में किसी 'काठी' अर्थात् जिसका नाम 'दादाखाचर' था, गढड़े का भूमिया (जिमीदार) था। उसको शिष्यों ने कहा कि ''तुम चतुर्भुज नारायण का दर्शन करना चाहो तो हम सहजानन्दजी से प्रार्थना करें?'' उसने कहा—''बहुत अच्छी बात है।'' वह भोला आदमी था। एक कोठरी में सहजाननद मुकुट धारणकर शंख-चक्र अपने हाथ में ऊपर को धारण किया और एक दूसरा आदमी उसके पीछे खड़ा रहकर गदा-पद्म अपने हाथ में लेकर सहजानन्द की बगल में से आगे को हाथ निकाल चतुर्भुज के तुल्य बन-ठन गये। दादाखाचर से उनके चेलों ने कहा कि ''एक वार आँख उठा, देखके आँख मींच लेना और झट इधर को चले आना। जो बहुत देखोगे तो नारायण कोप करेंगे।'' अर्थात् चेलों के मन में तो यह था कि हमारे कपट की परीक्षा न कर लेवे। उसको ले गये। वह सहजानन्द कलाबत्तू और चलकते हुए रेशमी कपड़े धारण कर रहा था, अंधेरी कोठरी में खड़ा था, उसके चेलों ने एक दम लालटेन से कोठरी की ओर उजाला किया। दादाखाचर ने देखा तो चतुर्भुज मूर्त्ति देखी, फिर झट दीपक को

आड़ में कर दिया। वे सब नीचे गिर, नमस्कार कर दूसरी ओर चले आये और उसी समय बीच में बातें कीं ''तुम्हारा धन्य भाग्य है। अब तुम महाराज के चेले हो जाओ''। उसने कहा—''बहुत अच्छी बात।'' जब तक फिर के दूसरे स्थान में गये तो वस्त्र बदल के सहजानन्द गद्दी पर बैठा था। तब चेलों ने कहा कि ''देखो! अब दूसरा स्वरूप धारण करके यहाँ बैठे हैं।''

वह दादाखाचर इनके जाल में फस गया। वहीं से उनके मत की जड़ जम गई क्योंकि वह एक बड़ा भूमिया था। वहीं अपनी जड़ जमा ली। पुनः इधर-उधर घूमता रहा, सबको उपदेश करता था, बहुतों को साधु भी बनाता था। कभी-कभी साधु की कण्ठ की नाड़ी को मलकर मूर्छित भी कर देता था और सबसे कहता था कि हमने इनको समाधि चढ़ा दी है। ऐसी-ऐसी धूर्त्तता में काठियावाड़ के भोले लोग उसके पेच में फस गये। जब वह मर गया तब उसके चेलों ने बहुत-सा पाखण्ड फैलाया।

इसमें यह दृष्टान्त उचित होगा कि जैसे कोई एक चोरी करता पकड़ा गया था। न्यायाधीश ने उसका नाक काट डालने का दण्ड किया। जब उसकी नाक काटी गई तब वह धूर्त्त नाचने, गाने और हँसने लगा। लोगों ने पूछा कि ''तू क्यों हँसता है।'' उसने कहा—''कुछ कहने की बात नहीं है।'' लोगों ने पूछा, ''ऐसी कौनसी बात है?'' उसने कहा—''बड़ी भारी आश्चर्य की बात है, हमने ऐसी कभी नहीं देखी!'' लोगों ने कहा—''कह! क्या बात है?'' उसने कहा कि ''मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े हैं। मैं देखकर बड़ा प्रसन्न होकर नाचता-गाता अपने भाग्य को धन्यवाद देता हूं कि मैं नारायण का साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ।'' लोगों ने कहा—''हमको दर्शन क्यों नहीं होता?'' वह बोला—''नाक की आड़ हो रही है। जो नाक कटवालो तो नारायण दीखे, नहीं तो नहीं।'' उनमें से किसी मूर्ख ने चाहा कि नाक जाय तो जाय परन्तु नारायण का दर्शन अवश्य करना चाहिये। उसने कहा कि ''मेरी भी नाक काटो, नारायण को दिखलाओ।'' उसने उसका नाक काटकर कान में कहा कि ''तू भी ऐसा ही कर, नहीं तो मेरा और तेरा उपहास

होगा।'' उसने भी समझा कि अब नाक आती नहीं, ऐसा ही करना ठीक है, वह भी वैसे ही नाचने, कूदने, गाने, हँसने और कहने लगा कि ''मुझको भी नारायण दीखता है।'' वैसे होते-होते एक सहस्र मनुष्यों का झुण्ड होगया, बड़ा कोलाहल हुआ, अपने सम्प्रदाय का नाम 'नारायणदर्शी' रक्खा। किसी मूर्ख राजा ने सुना उनको बुलाया। जब राजा उनके पास गया तब वे बहुत नाचने, कूदने, हँसने लगे। तब राजा ने पूछा कि ''यह क्या बात है।'' उन्होंने कहा कि ''साक्षात् नारायण हमको दीखता है।''

राजा—हमको क्यों नहीं दीखता?

नारायणदर्शी—जब तक नाक है तब तक नहीं दीखेगा और जब नाक कटवा लोगे, नारायण प्रत्यक्ष दीखेंगे। राजा ने विचारा ठीक है। ज्योतिषीजी! मुहूर्त्त देखिये। ''जो हुकम! दशमी के दिन प्रातःकाल आठ बजे तक नाक कटवाने और नारायण के दर्शन करने का बड़ा मुहूर्त्त है।''

वाह रे पोप जी! अपनी पोथी में नाक काटने-कटवाने का भी मुहूर्त्त लिख दिया।

जब राजा की इच्छा हुई और उन सहस्र के सीधे बाँध दिये तब तो वे बड़े ही प्रसन्न होकर नाचने, कूदने गाने लगे। यह बात राजा के दीवान आदि कुछ-कुछ बुद्धिवालों को अच्छी न लगी। राजा के एक चार पीढ़ी का बूढा ९० वर्ष का दीवान था। उसको जाकर उसके अपने परपोते ने, जो कि उस समय दीवान था, वह बात सुनाई। तब उस वृद्ध ने कहा कि ''वे धूर्त्त हैं। तू मुझको राजा के पास ले चल।'' वह ले गया। बैठते समय राजा ने बड़े हर्षित होके उन नाककटों की बातें सुनाईं। दीवान ने कहा कि ''सुनिये महाराज! ऐसी शीघ्रता न करनी चाहिये। विना परीक्षा किये पश्चात्ताप होता है।''

राजा—क्या ये सहस्र पुरुष झूठ बोलते होंगे?

दीवान—झूठ बोलो वा सच, विना परीक्षा के सच-झूठ कैसे कह सकते हैं?

राजा—परीक्षा किस प्रकार करनी चाहिये?

दीवान—विद्या, सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से।

राजा—जो पढ़ा न हो, वह परीक्षा कैसे करे?

दीवान—विद्वानों के सङ्ग से ज्ञान की वृद्धि करके।

राजा—जो विद्वान् न मिले तो?

दीवान—पुरुषार्थी को कोई बात दुर्लभ नहीं है।

राजा—तो आप कहिये, कैसा किया जाय?

दीवान—मैं बुड्ढा और घर में बैठा रहता हूँ थोड़े दिन जीवोंगा। मैं प्रथम परीक्षा कर लेऊँ, तत्पश्चात् जैसा उचित समझें वैसा कीजियेगा।

राजा—बहुत अच्छी बात है। ज्योतिषीजी! दीवान का मुहूर्त्त देखो।

ज्योतिषी—जो महाराज की आज्ञा। यही शुक्ल पञ्चमी १० बजे का मुहूर्त्त अच्छा है। जब पञ्चमी आई तब राजाजी के पास आ आठ बजे बुड्ढे दीवान ने राजा से कहा कि ''सहस्र दो सहस्र सेना लेके चलना चाहिये।''

राजा—वहाँ सेना का क्या काम है?

दीवान—आपको राज्यव्यवहार की जानकारी नहीं है। जैसा मैं कहता हूँ, वैसा कीजिये।

राजा—अच्छा, जाओ भाई! सेना को तैयार करो। साढ़े नौ बजे सवारी करके राजा सबको लेकर गया। उनको देखकर वे नाचने, गाने लगे। जाकर बैठे। उनके महन्त जिसने यह सम्प्रदाय चलाया था, जिसकी प्रथम नाक कटी थी, उसको बुलाकर कहा कि ''आज हमारे दीवानजी को नारायण का दर्शन कराओ।'' उसने कहा—''अच्छा।''

दश बजे का समय आया तब एक थाली मनुष्य ने नाक के नीचे पकड़ रक्खी। उसने पैना चक्कू ले नाक काट थाली में फेंक दी और रुधिर गिरने लगा। दीवानजी का मुख बिगड़ गया। उस धूर्त्त ने दीवानजी के कान में मन्त्रोपदेश किया कि ''आप भी हँसकर सबसे कहिये कि मुझको नारायण दीखता है। नाक कटा हुआ नहीं आवेगा। जो ऐसा न कहोगे तो तुम्हारा बहुत-सा ठट्ठा होगा।'' वह कह कर अलग हुआ। दीवानजी ने अंगोछा हाथ में ले नाक की आड़ में लगा दिया। जब दीवानजी से राजा ने पूछा ''कहिये! नारायण दीखता है वा नहीं?

दीवान ने राजा जी के कान में कहा ''कुछ भी नहीं दीखता, वृथा इस धूर्त्त ने सहस्र मनुष्यों को खराब किया।'' राजा ने दीवान से कहा—''अब क्या करना चाहिये?'' दीवान ने कहा—''इनको पकड़ के कठोर दण्ड देना चाहिये। जब तक जीवें तब तक बन्दीघर में रखना और इस दुष्ट को कि जिसने इन सबको खराब किया है, गधे पर चढ़ा बड़ी दुर्दशा से मारना चाहिये।'' जब राजा और दीवान कान में बातें करने लगे तब उन्होंने डरके भागने की तैयारी की, परन्तु चारों ओर फौज ने घेरा दे रक्खा था, न भाग सके। राजा ने आज्ञा दी ''सबको पकड़ बेड़ियाँ डाल दो और इस दुष्ट का काला मुख कर, गधे पर चढ़ा, इसके कण्ठ में फटे जूतों का हार पहिना, सर्वत्र घुमा, छोकरों से धूड़-राख इसपर डलवा, चौक-चौक में जूतों से पिटवा, कुत्तों से लुँचवा, मरवा डाला जावे। जो ऐसा न होवे तो पुनः दूसरा भी ऐसा काम करता न डरेगा।''

जब ऐसा हुआ तब नाककटे का सम्प्रदाय बन्द हुआ। इसी प्रकार वेदविरोधी सब सम्प्रदायों की लीला है।

ये स्वामिनारायण वाले धनहरे दूसरों के धन हरने में बड़े चतुर हैं, छल-कपटयुक्त काम करते हैं। कितने ही मूर्खों के बहकाने के लिये मरते समय कहते हैं कि ''सफेद घोड़े पर बैठ सहजानन्दजी मुझको बुलाने आये हैं नित्य इस मन्दिर में आते हैं।''

जब मेला होता है तब मन्दिर में पुजारी रहते हैं और नीचे दुकान हैं। मन्दिर से दुकान में छिद्र रखते हैं। जो किसी ने नारियल चढ़ाया, वही दुकान में फेंक दिया, अर्थात् इसी प्रकार एक नारियल दिन में सहस्र वार बिकता है। ऐसे ही सब पदार्थों को बेचते हैं।

जिस जाति का साधु हो, उनसे वही काम कराते हैं। जैसे नापित हो उससे नापित का, कुम्हार से कुम्हार का, शिल्पी से शिल्पी का, बनिये से बनिये का काम लेते हैं। अपने चेलों पर अनेक प्रकार के टिक्कस(=कर) बाँध रक्खे हैं। लाखों-क्रोड़ों रुपये ठगके एकत्र कर लिये और करते जाते हैं। जो गद्दी पर बैठता है, वह गृहस्थ विवाह करता है, आभूषणादि पहनता है। जहाँ कहीं पधरावनी होती है, वहाँ गोकुलिये के समान गुसाईंजी, बहूजी आदि के नाम से भेट पूजा लेते हैं। अपने

को 'सत्सङ्गी' और दूसरे मत-वालों को 'कुसङ्गी' कहते हैं। अपने सिवाय दूसरा कैसा ही उत्तम धार्मिक पुरुष हो, उसका मान्य सेवा नहीं करते, अन्य की सेवा में पाप गिनते हैं।

प्रसिद्धि में उनके साधु स्त्री का मुख नहीं देखते, परन्तु गुप्त क्या लीला होती होगी, इसकी प्रसिद्धि सर्वत्र न्यून हुई है। कहीं-कहीं साधुओं की परस्त्रीगमनादि लीला प्रसिद्ध हो गई है और उनमें जो बड़े-बड़े हैं, वे जब मरते हैं तब उनको गुप्त कुवे में फेंक देकर प्रसिद्धि करते हैं कि अमुक महाराज सदेह वैकुण्ठ में गये। सहजानन्दजी आके ले गये। हमने बहुत प्रार्थना करी कि ''महाराज! इनको न ले जाइये, क्योंकि इस महात्मा के यहाँ रहने से अच्छा है। सहजानन्दजी ने कहा कि ''नहीं। अब इनकी वैकुण्ठ में बहुत आवश्यकता है, इसलिये ले जाते हैं।'' हमने अपनी आँख से सहजानन्दजी को और विमान को देखा तथा जो मरनेवाले थे उनको विमान में बैठा दिया, ऊपर को उड़वाये, पुष्प की वर्षा करते गये।

और जब कोई साधु बीमार पड़ता है, बचने की आशा नहीं होती, तब कहता है कि ''मैं कल रात को वैकुण्ठ में जाऊंगा।'' सुना है कि उस रात में जो उसके प्राण न छूटे, मूर्च्छित हो गया हो, तो भी कुवें फेंक देते हैं, क्योंकि जो उस रात को न फेंक दें तो झूठे पड़ें, इसलिये ऐसा काम करते होंगे।

ऐसे ही जब गोकुलिया गोसाईं मरता है तब उनके चेले कहते हैं कि ''गुसाईंजी लीला विस्तार कर गए।'' जो इन गोसाईं, स्वामी नारायणवालों का उपदेश करने का मन्त्र एक ही '**श्रीकृष्णः शरणं मम**' है, इसका अर्थ ऐसा करते हैं ''श्रीकृष्ण मेरा शरण है, अर्थात् मैं श्रीकृष्ण के शरणागत हूँ।'' परन्तु इसका अर्थ 'श्रीकृष्ण मेरे शरण को प्राप्त अर्थात् मेरे शरणागत हों' ऐसा भी हो सकता है। ये सब जितने मत हैं, वे विद्याहीन होने से ऊटपटांग शास्त्रविरुद्ध वाक्यरचना करते हैं। क्योंकि उनको विद्या के नियम की जानकारी नहीं।

प्रश्न—माध्वमत तो अच्छा है?

उत्तर—जैसे अन्य हैं, वैसा यह भी है, क्योंकि ये भी चक्राङ्कित

होते हैं। इनमें चक्राङ्कितों से इतना विशेष है कि रामानुजीय एक वार चक्राङ्कित होते हैं और माध्व वर्ष-वर्ष में फिर-फिर चक्राङ्कित होते जाते हैं। चक्राङ्कित कपाल में पीली रेखा और माध्व काली लगाते हैं। एक माध्व पण्डित से किसी एक महात्मा का संवाद हुआ था।

महात्मा—तुमने यह काली रेखा और चाँदला क्यों किया?

शास्त्री—इसके करने से हम वैकुण्ठ को जायेंगे और श्रीकृष्ण का स्वरूप भी श्याम था, इसलिए हम काला तिलक करते हैं।

महात्मा—जो काली रेखा और चाँदले से वैकुण्ठ में जाते हों तो सब मुख काला कर लो तो कहाँ जाओगे? क्या वैकुण्ठ के भी पार उतर जाओगे? और जैसा श्रीकृष्ण का सब शरीर काला था, वैसा तुम भी सब शरीर काला कर लिया करो, तब श्रीकृष्ण का सादृश्य हो सकता है। इसलिए यह भी पूर्वों के सदृश है।

प्रश्न—लिङ्गाङ्कित का मत कैसा है?

उत्तर—जैसा चक्राङ्कित का। वे भी लिङ्गाङ्कित होते हैं। विना महादेव के किसी को नहीं मानते, जैसे चक्राङ्कित नारायण के अतिरिक्त दूसरे को नहीं मानते। इनमें विशेष यह है कि लिङ्गाङ्कित पाषाण का एक लिङ्ग सोने, चाँदी में मढ़वा गले में डाल रखते हैं। जब पानी भी पीते हैं तब उसको दिखलाकर पीते हैं, उनका भी मन्त्र शैव के तुल्य रहता है।

अब ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज के गुणदोष कथन—

प्रश्न—'ब्राह्मसमाज' और 'प्रार्थनासमाज' तो अच्छा है, वा नहीं?

उत्तर—कुछ बातें अच्छी और बहुत सी बुरी हैं।

प्रश्न—'ब्राह्म' और 'प्रार्थनासमाज' सबसे अच्छा है, क्योंकि इसके नियम बहुत अच्छे हैं।

उत्तर—नियम सर्वांश में अच्छे नहीं। क्योंकि वेदविद्याहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्योंकर हो सकती है? जो कुछ ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाये, कुछ मूर्त्तिपूजा को हटाया, अन्य ग्रन्थों के जालों से भी कुछ बचाये, इत्यादि अच्छी बातें हैं। परन्तु—

१. इन लोगों में स्वदेशभक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत से ले लिये हैं। खानपान, विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं।

२. अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके बदले पेटभर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा पेट भर करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते, प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि विना अंग्रेजों के, सृष्टि से आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्य्यावर्त्तीय लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई।

३. वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही परन्तु निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते। ब्राह्मसमाज के उद्देश्य के पुस्तक में साधु की संख्या में 'ईसा' 'मूसा' 'मुहम्मद' 'नानक' और 'चैतन्य' लिखे हैं। किसी ऋषि-महर्षि का नाम भी नहीं लिखा। इससे जाना जाता है कि ये लोग, जिनका नाम लिखा है, उन्हीं के मतानुसारी मत-वाले हैं।

भला, जब आर्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं आर्यावर्त देश का अन्न-जल खाया-पिया, अब भी खाते-पीते हैं, अपने माता, पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्मसमाजी और प्रार्थनासमाजियों का एतद्देशस्थ संस्कृत-विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इंगलिश भाषा पढ़के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त हुए मनुष्यों का स्थिर और वृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है?

४. अंगरेज, यवन, अन्त्यजादि से भी खाने-पीने का भेद नहीं रक्खा। इन्होंने यही समझा होगा कि खाने-पीने और जातिभेद तोड़ने से हम और हमारा देश सुधर जायगा, परन्तु ऐसी बातों से सुधार तो कहाँ है? उलटा बिगाड़ होता है।

५. **प्रश्न**—जातिभेद ईश्वरकृत है, वा मनुष्यकृत?

उत्तर—ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी जातिभेद है।

प्रश्न—कौन से ईश्वरकृत और कौन से मनुष्यकृत?

उत्तर—मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जलजन्तु आदि जातियाँ परमेश्वरकृत हैं। जैसे पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियाँ; वृक्षों

में पीपल, वट, आम्र आदि; पक्षियों में हंस, काक, वकादि; जलजन्तुओं में मत्स्य, मकरादि जातिभेद हैं, वैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज जातिभेद ईश्वरकृत हैं। परन्तु मनुष्यों में ब्राह्मणादि को सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य-विशेषात्मक जाति में गिनते हैं। जैसे पूर्व वर्णाश्रमव्यवस्था में लिख आये, वैसे ही गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था माननी अवश्य है। इसमें मनुष्यकृतत्व उनके गुण, कर्म, स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्णों की व्यवस्था परीक्षापूर्वक करनी राजा और विद्वानों का काम है।

भोजनभेद भी ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी है। जैसे सिंह मांसाहारी और अर्णा भैंसा घासादि का आहार करते हैं, यह ईश्वरकृत; और देश-काल-वस्तु-भेद से भोजनभेद मनुष्यकृत है।

प्रश्न—देखो! यूरोपियन लोग मुंडे जूते, कोट-पतलून पहरते, होटल में सबके हाथ का खाते हैं, इसीलिये अपनी बढ़ती करते जाते हैं।

उत्तर—यह तुम्हारी भूल है। क्योंकि मुसलमान, अन्त्यज लोग सबके हाथ का खाते हैं, पुन: उनकी उन्नति क्यों नहीं होती? जो यूरोपियनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का-लड़की को विद्या सुशिक्षा करना-कराना, स्वयम्वर विवाह होना, बुरे-बुरे आदमियों का उपदेश नहीं होता, वे विद्वान् होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फसते, जो कुछ करते हैं वह सब परस्पर विचार और सभा से निश्चित करके करते हैं, अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन-मन-धन व्यय करते हैं, आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो! अपने देश के बने हुए जूते को आफिस (=कार्यालय) और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं। इतने ही में समझ लो कि अपने देश के बने जूतों की भी कितनी प्रतिष्ठा करते हैं, उतनी अन्य-देशस्थ मनुष्यों की भी नहीं करते। देखो! कुछ अधिक सौ वर्ष से उपर यूरोपियन को आये इस देश में बीते, परन्तु आज तक वे लोग मोटे कपड़े आदि पहरते हैं जैसा कि देश में पहिरते थे, उनको नहीं छोड़ा। और तुम में से बहुत से लोगों ने उनका अनुकरण कर लिया, इसी से तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं। अनुकरण करना बुद्धिमानों का काम नहीं। और जो जिस काम पर

रहता है, उसको यथोचित करता है। आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं। अपने देशवालों को व्यापार आदि में सहाय देते हैं, इत्यादि गुणों और अच्छे कर्मों से उनकी उन्नति है। मुंडे जूते, कोट, पतलून, होटल में खाने आदि साधारण और बुरे कामों से नहीं बढ़े हैं।

और इनमें जातिभेद भी है। देखो! जब कोई यूरोपियन चाहै कितने बड़े अधिकार पर और प्रतिष्ठित हो, किसी अन्य देश, अन्य-मत वालों की लड़की वा यूरोपियन लड़की अन्य-देशवाले से विवाह कर लेती है, उसी समय उसका निमन्त्रण, साथ बैठकर खाने और विवाह आदि अन्य लोग बंध कर देते हैं। यह जातिभेद नहीं तो क्या? और तुम भोलों को कहते हैं कि हममें जातिभेद नहीं। तुम अपनी मूर्खता से मान भी लेते हो। इसलिये जो कुछ करना, वह सोच-विचार के करना चाहिये, जिसमें पुन: पश्चात्ताप करना न पड़े।

देखो! वैद्य और औषध की आवश्यकता रोगी के लिये है, नीरोग के लिये नहीं। विद्यावान् नीरोग और विद्यारहित अविद्यारोग से ग्रसित रहता है। उस रोग के छुड़ाने के लिये सत्यविद्या और सत्योपदेश है। उनको अविद्या से यह रोग है कि खाने-पीने ही में धर्म्म रहता और जाता है। जब किसी को खाने-पीने में अनाचार करता देखते हैं तब कहते और जानते हैं कि वह धर्म्मभ्रष्ट हो गया, उसकी बात न सुननी और न उसके पास बैठते, न उसको अपने पास बैठने देते। अब कहिये कि तुम्हारी विद्या स्वार्थ के लिये है, अथवा परमार्थ के लिये? परमार्थ तो तभी होता कि जब तुम्हारी विद्या से उन अज्ञानियों को लाभ पहुँचता। जो कहो कि वे नहीं लेते, हम क्या करें? यह तुम्हारा दोष है, उनका नहीं। क्योंकि तुम जो अपना आचरण अच्छा रखते तो तुमसे प्रेम कर वे उपकृत होते, सो तुमने सहस्रों का उपकार नाश करके अपना ही सुख किया, सो यह तुमको बड़ा अपराध लगा। क्योंकि परोपकार करना धर्म्म और परहानि करना अधर्म्म कहाता है। इसलिये विद्वान् को यथायोग्य व्यवहार करके अज्ञानियों को दु:खसागर से तारने के लिये नौकारूप होने चाहियें। सर्वथा मूर्खों के सदृश कर्म न करने चाहियें, किन्तु जिसमें उनकी और अपनी उन्नति हो, वैसे कर्म करने उचित हैं।

प्रश्न—हम कोई पुस्तक ईश्वरप्रणीत वा सर्वांश सत्य नहीं मानते क्योंकि मनुष्यों की बुद्धि निर्भ्रान्त नहीं होती, इससे उनके बनाये ग्रन्थ सब भ्रान्त होते हैं। इसलिये हम सबसे 'सत्य' ग्रहण करते और 'असत्य' को छोड़ देते हैं। चाहे सत्य वेद में, बाइबिल में, कुरान में और अन्य किसी ग्रन्थ में हो, हमको ग्राह्य है, असत्य किसी का नहीं।

उत्तर—जिस बात से तुम सत्यग्राही होना चाहते हो, उसी बात से असत्यग्राही भी ठहरते हो, क्योंकि जब सब मनुष्य भ्रान्तिरहित नहीं हो सकते तो तुम भी मनुष्य होने से भ्रान्तिसहित हो। जब भ्रान्तिसहित का वचन प्रमाण सर्वांश में नहीं होता तो तुम्हारे वचन का भी नहीं होगा। फिर तुम्हारे वचन पर भी सर्वथा विश्वास न करना चाहिये। जब ऐसा है तो विषयुक्त अन्न के समान त्याग के योग्य हैं। फिर तुम्हारे व्याख्यान-पुस्तक बनाये का प्रमाण किसी को न करना चाहिये। '**चले तो चौबेजी छब्बे बनने को, गाँठ के दो खोकर दूबे बन गये।**'

तुम सर्वज्ञ नहीं, जैसे कि अन्य मनुष्य सर्वज्ञ नहीं हैं। कदाचित् भ्रम से असत्य को ग्रहणकर सत्य को छोड़ भी देते होगे। इसलिये सर्वज्ञ के वचन का सहाय हम अल्पज्ञों को अवश्य होना चाहिये। जैसा कि वेद के व्याख्यान में लिख आये हैं, वैसा तुमको मानना चाहिये। नहीं तो **यतो भ्रष्टः** और **ततो भ्रष्टः** हो जाना है।

जब सर्व सत्य वेदों से प्राप्त होता है, जिनमें असत्य कुछ भी नहीं, उनका ग्रहण करने में शङ्का करनी अपनी और पराई हानिमात्र कर लेनी है। इसी बात से तुमको आर्य्यावर्त्तीय लोग अपने नहीं समझते और तुम आर्यावर्त्त की उन्नति के कारण भी नहीं हो सके, क्योंकि तुम 'सब घर के भिक्षुक' ठहरे हो। तुमने समझा है कि इस बात से हम लोग अपना और पराया उपकार कर सकेंगे, सो न कर सकोगे। जैसे किसी के दो ही माता-पिता सब संसार के लड़कों का पालन करने लगें, सबका पालन करना तो असम्भव है किन्तु उस बात से अपने लड़कों को भी नष्ट कर बैठें, वैसे ही आप लोगों की गति है।

भला, वेदादिक को माने विना तुम अपने वचनों की सत्यता-असत्यता की परीक्षा और आर्य्यावर्त्त की उन्नति भी कभी कर सकते

हो? जिस देश को रोग हुआ है, उसकी ओषधि तुम्हारे पास नहीं। और यूरोपियन लोग तुम्हारी अपेक्षा नहीं करते और आर्य्य लोग तुमको अन्य-मतियों के सदृश समझते हैं। अब भी समझकर वेदादि के मान्य से देशोन्नति करने लगो तो भी अच्छा है।

जो तुम यह कहते हो कि सब सत्य परमेश्वर से प्रकाशित होता है, पुनः ऋषियों के आत्माओं में ईश्वर से प्रकाशित हुए सत्यार्थ वेदों को क्यों नहीं मानते? हाँ, यही कारण है कि तुम लोग वेद नहीं पढ़े और न पढ़ने की इच्छा करते हो। क्योंकर तुमको वेदोक्त ज्ञान हो सकेगा?

६. दूसरा जगत् के उपादान कारण के विना जगत् की उत्पत्ति और जीव को भी उत्पन्न मानते हो, जैसा ईसाई और मुसलमान आदि मानते हैं। इसका उत्तर सृष्ट्युत्पत्ति और जीवेश्वर की व्याख्या में देख लीजिये। कारण के विना कार्य का होना सर्वथा असम्भव और उत्पन्न वस्तु का नाश न होना भी वैसा ही असम्भव है।

७. एक यह भी तुम्हारा दोष है, जो पश्चात्ताप और प्रार्थना से पापों की निवृत्ति मानते हो। इसी बात से जगत् में बहुत से पाप बढ़ गये हैं। क्योंकि पुराणी लोग तीर्थादि यात्रा से; जैनी लोग भी नवकार मन्त्र, जप और तीर्थादि से; ईसाई लोग ईसा के विश्वास से; मुसलमान लोग 'तोबा:' करने से पाप का छूट जाना विना भोग के मानते हैं। इससे पापों से भय न होकर पाप में प्रवृत्ति बहुत हो गई है। इस बात में ब्राह्म और प्रार्थनासमाजी भी पुराणी आदि के समान हैं। जो वेदों को मानते तो विना भोग के पाप-पुण्य की निवृत्ति न होने से पापों से डरते और धर्म में सदा प्रवृत्त रहते। जो भोग के विना निवृत्ति माने तो ईश्वर अन्यायकारी होता है।

८. जो तुम जीव की अनन्त उन्नति मानते हो, सो कभी नहीं हो सकती, क्योंकि ससीम जीव के गुण-कर्म-स्वभाव का फल भी ससीम होना अवश्य है।

प्रश्न—परमेश्वर दयालु है, ससीम कर्मों का फल अनन्त दे देगा।

उत्तर—ऐसा करे तो परमेश्वर का न्याय नष्ट हो जाये और सत्कर्मों की उन्नति भी कोई न करेगा, क्योंकि थोड़े से भी सत्कर्मों का अनन्त

फल परमेश्वर दे देगा। और पश्चात्ताप वा प्रार्थना से पाप चाहें जितने हों छूट जायेंगे, ऐसी बातों से धर्म की हानि और पाप-कर्मों की वृद्धि होती है।

प्रश्न—हम 'स्वाभाविक' ज्ञान को वेद से भी बड़ा मानते हैं, 'नैमित्तिक' को नहीं। क्योंकि जो स्वाभाविक ज्ञान परमेश्वरदत्त हममें न होता तो वेदों को भी कैसे पढ़-पढ़ा, समझ-समझा सकते। इसलिए हम लोगों का मत बहुत अच्छा है।

उत्तर—यह तुम्हारी बात निरर्थक है। क्योंकि जो किसी का दिया हुआ ज्ञान होता है, वह स्वाभाविक नहीं होता। जो स्वाभाविक है, वह 'सहज ज्ञान' होता है और न वह बढ़-घट सकता। उससे उन्नति कोई भी नहीं कर सकता। क्योंकि जङ्गली मनुष्यों में भी स्वाभाविक ज्ञान है, क्यों वे अपनी उन्नति नहीं कर सकते? और जो नैमित्तिक ज्ञान है, वही उन्नति का कारण है। देखो! तुम हम बाल्यावस्था में कर्त्तव्याकर्त्तव्य और धर्माधर्म कुछ भी ठीक-ठीक नहीं जानते थे। जब हम विद्वानों से पढ़े, तभी कर्त्तव्याकर्त्तव्य और धर्म्माधर्म को समझने लगे। इसलिये स्वाभाविक ज्ञान को सर्वोपरि मानना ठीक नहीं।

९. जो आप लोगों ने पूर्व और पुनर्जन्म नहीं माना है, वह ईसाई-मुसलमानों से लिया होगा। इसका भी उत्तर पुनर्जन्म की व्याख्या से समझ लेना। परन्तु इतना समझो कि जीव 'शाश्वत' अर्थात् नित्य है और उसके कर्म भी प्रवाहरूप से नित्य हैं। कर्म और कर्मवान् का नित्य सम्बन्ध होता है। क्या वह जीव कहीं निकम्मा बैठा रहा था? वा रहेगा? और परमेश्वर भी निकम्मा तुम्हारे कहने से होता है। पूर्वापर जन्म न मानने से '**कृतहानि**' और '**अकृताभ्यागम**' '**नैर्घृण्य**' और '**वैषम्य**' दोष भी ईश्वर में आते हैं, क्योंकि जन्म न हो तो पाप-पुण्य के फल-भोग की हानि हो जाये। क्योंकि जिस प्रकार दूसरे को सुख-दुःख, हानि-लाभ पहुँचाया होता है, वैसा उसका फल विना शरीर धारण किये नहीं होता। दूसरा—पूर्वजन्म के पाप-पुण्यों के विना दुःख-सुख की प्राप्ति इस जन्म में क्योंकर होवे? जो पूर्वजन्म के पाप-पुण्यानुसार न होवे तो परमेश्वर अन्यायकारी और विना भोग किये नाश के समान

कर्म का फल हो जावे, इसलिए यह भी बात आप लोगों की अच्छी नहीं।

१०. और एक यह कि ईश्वर के विना दिव्यगुणवाले पदार्थों और विद्वानों को भी देव न मानना ठीक नहीं। क्योंकि परमेश्वर महादेव, और जो देव न होता तो सब देवों का स्वामी होने से 'महादेव' क्यों कहाता?

११. एक अग्निहोत्रादि परोपकारक कर्मों को कर्त्तव्य न समझना अच्छा नहीं।

१२. ऋषि-महर्षियों के किये उपकारों को न मानकर ईसा आदि के पीछे झुक पड़ना अच्छा नहीं।

१३. और विना कारणविद्या वेदों के अन्य कार्यविद्याओं की प्रवृत्ति मानना सर्वथा असम्भव है।

१४. और जो विद्या का चिह्न 'यज्ञोपवीत' और 'शिखा' को छोड़ मुसलमान-ईसाइयों के सदृश बन बैठना व्यर्थ है। जब पतलून आदि वस्त्र पहिरते हो और 'तमगों' की इच्छा करते हो तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ बड़ा भार हो गया था?

१५. और ब्रह्मा से लेकर पीछे-पीछे आर्य्यावर्त्त में बहुत से विद्वान् हो गये हैं, उनकी प्रशंसा न करके यूरोपियन ही की स्तुति में उतर पड़ना, पक्षपात और खुशामद के विना क्या कहा जाय?

१६. और बीजाङ्कुर के समान जड़-चेतन के योग से जीवोत्पत्ति मानना, उत्पत्ति के पूर्व जीवतत्त्व का न मानना और उत्पन्न का नाश न मानना पूर्वापर विरुद्ध है। जो उत्पत्ति के पूर्व चेतन और जड़ वस्तु न था तो जीव कहाँ से आये और संयोग किनका हुआ? जो इन दोनों को सनातन मानते हो तो ठीक है परन्तु सृष्टि के पूर्व ईश्वर के विना दूसरे किसी तत्त्व को न मानना, यह आपका पक्ष व्यर्थ हो जायगा।

इसलिये जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्य्यसमाज' के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन-मन-धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिये जैसा

आर्य्यसमाज आर्य्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज को यथावत् उन्नति देवें तो बहुत अच्छी बात है, क्योंकि **समाज का सौभाग्य बढ़ाना समुदाय का काम है, एक का नहीं।**

प्रश्न—आप सबका खण्डन करते ही आते हो परन्तु अपने-अपने धर्म में सब अच्छे हैं। खण्डन किसी का न करना चाहिए। और जो करते हो तो आप इनसे विशेष क्या बतलाते हो? जो बतलाते हो तो क्या आप से अधिक वा तुल्य कोई पुरुष न था? और न है? ऐसा अभिमान करना आपको उचित नहीं, क्योंकि परमात्मा की सृष्टि में एक-एक से अधिक, तुल्य और न्यून बहुत हैं। किसी को घमण्ड करना उचित नहीं।

उत्तर—धर्म एक होता है वा अनेक? जो कहो अनेक होते हैं तो एक-दूसरे से विरुद्ध होते हैं वा अविरुद्ध? जो कहो विरुद्ध होते हैं तो एक के विना दूसरा धर्म नहीं हो सकता और जो कहो अविरुद्ध हैं तो पृथक्-पृथक् होना व्यर्थ है। इसलिये धर्म और अधर्म एक ही हैं, अनेक नहीं। यही हम विशेष कहते हैं कि जैसे सब सम्प्रदायों के उपदेशकों को कोई राजा इकट्ठा करे तो एक सहस्र से कम नहीं होते, परन्तु इनका मुख्य भाग देखो तो पुरानी, किरानी, जैनी और कुरानी चार ही हैं, क्योंकि इन चारों में सब सम्प्रदाय आ जाते हैं। कोई राजा उनकी सभा करके कोई जिज्ञासु होकर प्रथम वाममार्गी से पूछे—''हे महाराज! मैंने आज तक न कोई गुरु और न किसी धर्म का ग्रहण किया है, कहिये! सब धर्मों में से उत्तम धर्म किसका है? जिसको मैं ग्रहण करूं?''

वाममार्गी—हमारा है।

जिज्ञासु—ये नौसौ निन्न्यानवे कैसे हैं?

वाममार्गी—सब झूठे और नरकगामी हैं, क्योंकि '**कौलात्परतरं नहि**' [कुलार्णव २।८] हमारे धर्म से परे कोई धर्म नहीं है।

जिज्ञासु—आपका धर्म क्या है?

वाममार्गी—भगवती का मानना, मद्य-मांसादि पञ्च मकारों का सेवन, रुद्रयामल आदि चौंसठ तन्त्रों का मानना इत्यादि। जो तू मुक्ति की इच्छा करता है तो हमारा चेला हो जा।

जिज्ञासु—अच्छा मैं औरों का भी दर्शन कर और पूछ आऊँगा। पश्चात् जिसको चाहूँगा उसका चेला हो जाऊँगा।

वाममार्गी—अरे! क्यों भ्रान्ति में पड़ा है। ये लोग तुझको बहकाकर अपने जाल में फसा देंगे। किसी के पास मत जावे। हमारा चेला हो जा, नहीं तो पछतावेगा।

जिज्ञासु—अच्छा, देख तो आऊँ। आगे चलकर शैव से पूछा उसने भी ऐसा ही उत्तर दिया। इतना विशेष कहा कि—''विना शिव, रुद्राक्ष, भस्मधारण और लिङ्गार्चन के मुक्ति कभी नहीं होती।'' वह उसको छोड़ नवीन वेदान्तियों के पास गया।

जिज्ञासु—कहो महाराज! आपका धर्म क्या है?

वेदान्ती—हम धर्माऽधर्म कुछ भी नहीं मानते। हम साक्षात् ब्रह्म हैं। हममें धर्माऽधर्म कहाँ हैं? यह जगत् सब मिथ्या है। और जो ज्ञानी शुद्ध चेतन हुआ चाहै तो तू भी अपने को ब्रह्म मान, जीवभाव को छोड़। नित्य मुक्त हो जायगा।

जिज्ञासु—जो तुम ब्रह्म नित्यमुक्त हो तो ब्रह्म के गुण-कर्म-स्वभाव तुममें क्यों नहीं? और शरीर में क्यों बंधे हो?

वेदान्ती—तुझको शरीर दीखता है, इसीसे तू भ्रान्त है। हमको कुछ नहीं दीखता विना ब्रह्म के।

जिज्ञासु—तुम देखने वाले कौन, और किसको दिखते हो?

वेदान्ती—देखनेवाला ब्रह्म, और ब्रह्म को ब्रह्म देखता है।

जिज्ञासु—क्या दो ब्रह्म हैं?

वेदान्ती—नहीं, अपने आपको देखता है।

जिज्ञासु—क्या कोई अपने कँधे पर आप चढ़ सकता है? तुम्हारी बात कुछ नहीं, यह पागलपने की बातें हैं।

उसने आगे चलकर जैनियों के पास जाके पूछा। उन्होंने भी वैसा ही कहा परन्तु इतना विशेष कहा कि—''जिणधर्म के विना सब धर्म खोटा, जगत् का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं, जगत् अनादि काल से जैसा का वैसा बना है और बना रहेगा। आ, तू हमारा चेला हो जा, क्योंकि हम 'सम्यक्त्वी' अर्थात् सब प्रकार से अच्छे हैं, उत्तम बातों को

मानते हैं। जैनमार्ग से भिन्न सब मिथ्यात्वी हैं।''

आगे चलके ईसाई से पूछा। उसने वाममार्गी के तुल्य सब जवाब-सवाल किये। इतना विशेष बतलाया—''सब मनुष्य पापी हैं, अपने सामर्थ्य से पाप नहीं छूटता। विना ईसा पर विश्वास के पवित्र होकर मुक्ति को नहीं पा सकता। ईसा ने सबके प्रायश्चित्त के लिये अपने प्राण देकर दया प्रकाशित की है। तू हमारा ही चेला हो जा।''

जिज्ञासु सुनकर मौलवी साहब के पास गया। उनसे भी ऐसे ही जवाब-सवाल हुए। इतना विशेष कहा—''लाशरीक ख़ुदा, उसका पैग़म्बर और कुरानशरीफ़ के विना माने कोई निजात नहीं पा सकता। जो इस मजहब को नहीं मानता, वह दोज़ख़ी और काफ़िर है, वाजिबुल्क़त्ल है।''

जिज्ञासु सुनकर वैष्णव के पास गया। वैसे ही संवाद हुआ। इतना विशेष कहा कि ''हमारे तिलक छाप देखकर यमराज डर जाता है।'' जिज्ञासु ने मन में समझा कि जब मच्छर, मक्खी, पुलिस के सिपाही, चोर, डाकू और शत्रु नहीं डरते तो यमराज के गण क्यों डरेंगे?

फिर आगे चला तो सब मत वालों ने अपने-अपने को सच्चा कहा। कोई हमारा कबीर सच्चा, कोई नानक, कोई दादू, कोई बल्लभ, कोई सहजानन्द, कोई माध्व आदि को बड़ा और अवतार बतलाते सुना। सहस्र से पूछ, उनके परस्पर विरोध देख, विशेष निश्चय किया, इनमें कोई गुरु करने योग्य नहीं। क्योंकि एक-एक झूठ में नौसौ निन्न्यानवे गवाह हो गये। जैसे झूठे दुकानदार वा वेश्या और भड़ुआ आदि अपनी-अपनी वस्तु की बड़ाई, दूसरे की बुराई करते हैं, वैसे ही ये हैं। ऐसा जान—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥ १॥
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥ २॥

—मुण्डक [१।२।१२-१३]

उस सत्य के विज्ञानार्थ वह '**समित्पाणि**' अर्थात् हाथ जोड़

अरिक्तहस्त होकर वेदवित् ब्रह्मनिष्ठ परमात्मा को जाननेहारे गुरु के पास जाये। इन पाखण्डियों के जाल में न गिरे॥ १॥

जब ऐसा जिज्ञासु विद्वान् के पास जाय, उस शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, समीप-प्राप्त जिज्ञासु को यथार्थ ब्रह्मविद्या परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव का उपदेश करे और जिस-जिस साधन से वह श्रोता धर्मार्थ, काम, मोक्ष और परमात्मा को जान सके, वैसी शिक्षा किया करे॥ २॥

जब वह ऐसे पुरुष के पास जाकर बोला कि महाराज! अब इन सम्प्रदायों के बखेड़ों से मेरा चित्त भ्रान्त हो गया, क्योंकि जो मैं इनमें से किसी एक का चेला होऊँगा तो नौसौ निन्न्यानवे से विरोधी होना पड़ेगा। जिसके नौसौ निन्न्यानवे शत्रु और एक मित्र है, उसको सुख कभी नहीं हो सकता। इसलिये आप मुझको उपदेश कीजिये, जिसको मैं ग्रहण करूं।

आप्तविद्वान्—ये सब मत अविद्याजन्य विद्याविरोधी हैं। मूर्ख, पामर और जङ्गली मनुष्यों को बहकाकर अपने जाल में फसा के अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे बिचारे अपने मनुष्यजन्म के फल से रहित होकर अपना मनुष्यजन्म व्यर्थ गमाते हैं। देख! जिस बात में ये सहस्र एकमत हों, वह वेदमत ग्राह्य है और जिसमें परस्पर विरोध हो, वह कल्पित, झूठा, अधर्म, अग्राह्य है।

जिज्ञासु—इसकी परीक्षा कैसे हो?

आप्त—तू जाकर इन-इन बातों को पूछ। सबकी एक सम्मति हो जायगी। तब वह उन हजार की मण्डली के बीच में खड़ा होकर बोला कि ''सुनो सब लोगो! सत्यभाषण में धर्म है वा मिथ्या में?'' सब एकस्वर होकर बोले कि ''सत्यभाषण में धर्म और मिथ्याभाषण में अधर्म है।'' ''वैसे ही विद्या पढ़ने, ब्रह्मचर्य करने, पूर्ण युवावस्था में विवाह, सत्सङ्ग, पुरुषार्थ, सत्य व्यवहार आदि में धर्म; और अविद्या ग्रहण, ब्रह्मचर्य न करने, व्यभिचार करने, कुसङ्ग, आलस्य, असत्य व्यवहार, छल, कपट, हिंसा, परहानि करने आदि कर्मों में?'' सबने एकमत होके कहा कि विद्यादि के ग्रहण में धर्म और अविद्यादि के ग्रहण में अधर्म। तब जिज्ञासु ने सबसे कहा कि तुम इसी प्रकार सब

जने एकमत हो सत्यधर्म की उन्नति और मिथ्यामार्ग की हानि क्यों नहीं करते हो? वे सब बोले—"जो हम ऐसा करें तो हमको कौन पूछे? हमारे चेले हमारी आज्ञा में न रहैं, जीविका नष्ट हो जाय, फिर जो हम आनन्द कर रहे हैं, सो सब हाथ से जाय। इसलिये हम जानते हैं तो भी अपने-अपने मत का उपदेश और आग्रह करते ही जाते हैं। क्योंकि **'रोटी खाइये शक्कर से और दुनिया ठगिये मक्कर से'** ऐसी बात है। देखो! संसार में सूधे-सच्चे मनुष्य को कोई नहीं पूछता। जो कुछ ढोंग, धूर्त्तता करता है, वही पदार्थ पाता है।"

जिज्ञासु—जो तुम ऐसा पाखण्ड चलाकर अन्य मनुष्यों को ठगते हो, तुमको राजा दण्ड क्यों नहीं देता?

मत-वाले—हमने राजा को भी अपना चेला बना लिया है। हमने पक्का प्रबन्ध किया है, छूटेगा नहीं।

जिज्ञासु—जब तुम छल से अन्य मनुष्यों को ठग, उनकी हानि करते हो, परमेश्वर के सामने क्या उत्तर दोगे? और घोर नरक में पड़ोगे। थोड़े जीवन के लिये इतना बड़ा अपराध करना क्यों नहीं छोड़ते?

मत-वाले—देखा जायगा। नरक और परमेश्वर का दण्ड जब होगा तब होगा, अब तो आनन्द करते हैं। हमको प्रसन्नता से धन देते हैं, बलात्कार से नहीं लेते, फिर राजा दण्ड क्यों देवे?

जिज्ञासु—जैसे कोई छोटे बालक को फुसला के धनादि पदार्थ ले लेता है, जैसे उसको दण्ड मिलता है, वैसे तुमको क्यों नहीं मिलता? क्योंकि—

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः॥

—मनुस्मृति [२।१५३]

जो ज्ञानरहित होता है, वह 'बालक' और जो ज्ञान का देनेवाला है, वह 'पिता' और 'वृद्ध' कहाता है। जो बुद्धिमान् विद्वान् है, वह तो तुम्हारी बातों में नहीं फसता, किन्तु अज्ञानी जो बालक के सदृश हैं, उनको ठगने में तुमको राजदण्ड अवश्य होना चाहिये।

मत-वाले—जब राजा-प्रजा सब हमारे मत में हैं तो हमको दण्ड कौन देनेवाला है? जब ऐसी व्यवस्था होगी तब इन बातों को छोड़कर

दूसरी व्यवस्था करेंगे।

जिज्ञासु—जो तुम बैठे-बैठे व्यर्थ माल मारते हो, जो विद्याभ्यास कर गृहस्थों के लड़के-लड़कियों को पढाओ तो तुम्हारा और गृहस्थों का कल्याण हो जाय।

मत-वाले—जब हम बाल्यावस्था से लेकर मरण तक के सुखों को छोड़ें, बाल्यावस्था से युवावस्था तक विद्या पढ़ने में, पश्चात् पढ़ाने में और उपदेश करने में जन्मभर परिश्रम करें, हमको क्या प्रयोजन? हमको ऐसे ही लाखों रुपये मिलते हैं, चैन उड़ाते हैं, उसको क्यों छोड़ें?

जिज्ञासु—इसका परिणाम तो बुरा है, देखो! तुमको बड़े रोग होते हैं, शीघ्र मर जाते हो, बुद्धिमानों में निन्दित होते हो, फिर भी क्यों नहीं समझते?

मत-वाले—अरे भाई!

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम्।
यस्य गृहे टका नास्ति हा! टकां टकटकायते॥ १॥
आना अंशकलाः प्रोक्ता रूप्योऽसौ भगवान् स्वयम्।
अतस्तं सर्व इच्छन्ति रूप्यं हि गुणवत्तमम्॥ २॥

तू लड़का है, संसार की बातें नहीं जानता। देख! टका के विना धर्म, टका के विना कर्म, टका के विना परमपद नहीं होता। जिसके घर में टका नहीं है, वह हाय! टका-टका करता-करता उत्तम पदार्थों को टक-टक देखता रहता है कि हाय! मेरे पास टका होता तो उस उत्तम पदार्थ को मैं भोगता॥ १॥

क्योंकि सब कोई सोलह कलायुक्त अदृश्य भगवान् का कथन-श्रवण करते हैं, सो तो नहीं दीखता, परन्तु सोलह आने और पैसे-कौड़ीरूप अंश कलायुक्त जो रुपैया है, वही साक्षात् भगवान् है। इसीलिये सब कोई रुपयों की खोज में लगे हैं, क्योंकि सब काम रुपयों से सिद्ध होते हैं॥ २॥

जिज्ञासु—ठीक है, तुम्हारी भीतर की लीला बाहर आ गई। तुमने जितना यह पाखण्ड खड़ा किया है, वह सब अपने सुख के लिये किया है परन्तु इसमें जगत् का नाश होता है। क्योंकि जैसा सत्योपदेश से

संसार को लाभ पहुँचता है, वैसी ही असत्योपदेश से हानि होती है। जब तुमको धन ही का प्रयोजन था तो नौकरी, व्यापार करके धन क्यों नहीं कमाते?

मत-वाले—उसमें परिश्रम और हानि भी होती है, परन्तु इस में हानि कभी नहीं, लाभ ही लाभ होता है। देखो! तुलसी चरणामृत दें, कण्ठी बांधें, चेला मूंडने से जन्मभर का पशु हो जाता है, चाहें वैसे बोझा लादो।

जिज्ञासु—ये लोग तुमको बहुत धन किसलिये देते हैं?

मत-वाले—धर्म, स्वर्ग और मुक्ति के अर्थ।

जिज्ञासु—जब तुम ही मुक्त नहीं, न मुक्ति का स्वरूप वा साधन जानते हो तो तुम्हारी सेवा करनेवालों को क्या मिलेगा?

मत-वाले—क्या इस लोक में मिलता है? नहीं। किन्तु परलोक में मिलता है। जितना हमको ये लोग देते वा सेवा करते हैं, वह सब मरे पीछे इन लोगों को मिल जाता है।

जिज्ञासु—इनको तो दिया हुआ मिल जाता है वा नहीं, तुम लेनेवालों को क्या मिलेगा? नरक वा अन्य कुछ?

मत-वाले—हम भजन करते हैं, इसका सुख हमको मिलेगा।

जिज्ञासु—तुम्हारा भजन तो टका ही के लिये है। वे सब टके यहीं पड़े रहेंगे, जिस मांसपिण्ड को यहाँ पालते हो, वह भस्म हो जायगा। जो तुम परमेश्वर का भजन करते होते तो तुम्हारा आत्मा भी पवित्र होता।

मत-वाले—क्या हम अशुद्ध हैं?

जिज्ञासु—भीतर के बड़े मैले हो।

मत-वाले—तुमने कैसे जाना?

जिज्ञासु—तुम्हारी चाल-चलन से।

मत-वाले—महात्माओं का व्यवहार हाथी के दाँत के तुल्य होता है। जैसे हाथी के दाँत खाने के भिन्न, दिखलाने के पृथक् होते हैं, वैसे ही भीतर से हम पवित्र हैं और बाहर से लीलामात्र करते हैं।

जिज्ञासु—जो तुम भीतर से शुद्ध होते तो तुम्हारे बाहर के काम भी

शुद्ध होते, इसलिये भीतर भी मैले हो।

मत-वाले—हम चाहे जैसे हों परन्तु हमारे चेले तो अच्छे हैं।

जिज्ञासु—जैसे तुम गुरु हो, वैसे तुम्हारे चेले भी होंगे।

मत-वाले—एक मत कभी नहीं हो सकता, क्योंकि मनुष्य के गुण-कर्म-स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं।

जिज्ञासु—जो बाल्यावस्था में एक सी शिक्षा हो, सत्यभाषणादि धर्म का ग्रहण और मिथ्याभाषणादि अधर्म का त्याग करें तो एकमत अवश्य हो जाय। और दो मत अर्थात् धर्मात्मा और अधर्मात्मा सदा रहते हैं, वे तो रहैं। परन्तु धर्मात्मा अधिक होने और अधर्मी न्यून होने से संसार में सुख बढ़ता है और जब अधर्मी अधिक होते हैं तब दुःख। जब सब विद्वान् एक-सा उपदेश करें तो एकमत होने में कुछ भी विलम्ब न हो।

मत-वाले—आजकल 'कलियुग' है, सत-युग की बात मत चाहो।

जिज्ञासु—'कलियुग' नाम काल का है। काल निष्क्रिय होने से कुछ धर्माधर्म के करने में साधक-बाधक नहीं, किन्तु तुम ही कलियुग की मूर्त्तियाँ बन रहे हो। जो मनुष्य ही सत्ययुग-कलियुग न होता तो कोई भी संसार में धर्मात्मा न होता। ये सब सङ्ग के गुण-दोष हैं, स्वाभाविक नहीं।

इतना कहकर आप्त के पास गया। उनसे कहा कि महाराज! तुमने मेरा उद्धार किया, नहीं तो मैं भी किसी के जाल में फसकर नष्ट हो जाता। अब मैं भी इन पाखण्डियों का खण्डन और वेदोक्त सत्य-मत का मण्डन किया करूँगा।

आप्त—यही सब मनुष्यों का, विशेष विद्वान् और संन्यासियों का काम है कि सब मनुष्यों को सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन पढ़ा-सुनाके सत्योपदेश से उपकार पहुँचाना चाहिये।

प्रश्न—'ब्रह्मचारी', 'संन्यासी' तो ठीक हैं?

उत्तर—ये आश्रम तो ठीक हैं। परन्तु आजकल इनमें भी बहुत सी गड़बड़ है। कितने ही नाम 'ब्रह्मचारी' रखते, जटा बढ़ाकर झूठ-मूठ सिद्धाई करते, जप-पुरश्चरण में फसे रहते, विद्या पढ़ने का नाम नहीं

लेते कि जिस हेतु से 'ब्रह्मचारी' नाम होता है,उस 'ब्रह्म' अर्थात् वेद पढ़ने में परिश्रम कुछ भी नहीं करते। वे 'ब्रह्मचारी' बकरी के गले के स्तन के सदृश निरर्थक हैं। और जो वैसे 'संन्यासी' —विद्याहीन, दण्ड ले, भिक्षा करते-फिरते हैं, जो कुछ भी वेदमार्ग की उन्नति नहीं करते, छोटी अवस्था में संन्यास लेकर घूमा करते, विद्याभ्यास को छोड़ देते हैं, ऐसे ब्रह्मचारी और संन्यासी इधर-उधर जल, स्थल, पाषाणादि मूर्त्तियों का दर्शन-पूजन करते-फिरते, विद्या जानकर भी मौन हो रहते, एकान्त देश में यथेष्ट खा कर सोते पड़े रहते, ईर्ष्या-द्वेष में फसकर निन्दा-कुचेष्टा करके निर्वाह करते, काषाय वस्त्र और दण्ड-ग्रहणमात्र से अपने को कृतकृत्य समझते, अपने को सर्वोत्कृष्ट जान उत्तम काम नहीं करते, वैसे 'संन्यासी'—भी जगत् में व्यर्थ वास करते हैं। और जो सब जगत् का हित साधते हैं, वे ठीक हैं।

प्रश्न—गिरी, पुरी, आदि गुसाईं लोग तो अच्छे हैं। क्योंकि मण्डलियाँ बाँधकर इधर-उधर घूमते, सैकड़ों साधुओं को आनन्द कराते, सर्वत्र अद्वैत मत का उपदेश करते हैं, और कुछ पढ़ते-पढ़ाते भी हैं, इसलिये वे अच्छे होंगे।

उत्तर—ये सब दश नाम पीछे से कल्पित किये हैं, सनातन नहीं। उनकी मण्डलियाँ भोजनार्थ हैं। बहुत से साधु भोजन ही के लिये मण्डलियों में रहते हैं। दम्भी भी हैं, क्योंकि एक को महन्त बना, सायंकाल में एक महन्त जो कि उनमें प्रधान होता है, वह गद्दी पर बैठ जाता है। सब ब्राह्मण और साधु खड़े होकर हाथ में पुष्प ले—

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तम्॥ [ऊह्य—पुष्पाञ्जलि]

इत्यादि श्लोक पढ़के हर-हर बोल, उनके ऊपर पुष्प वर्षाकर साष्टाङ्ग नमस्कार करते हैं। जो कोई ऐसा न करे, उसको वहाँ रहना कठिन है। यह दम्भ संसार को दिखलाने के लिये करते हैं, जिससे जगत् में प्रतिष्ठा होकर माल मिले।

कितने ही मठधारी गृहस्थ होकर भी संन्यास का अभिमान मात्र करते हैं, कर्म कुछ नहीं। संन्यास का वही कर्म है, जो पाँचवें समुल्लास

में लिख आये, उसको न करके व्यर्थ समय खोते हैं। जो कोई अच्छा उपदेश करे, उसके भी विरोधी होते हैं। बहुधा ये लोग भस्म रुद्राक्ष धारण करते और कोई-कोई शैव तथा वैष्णव सम्प्रदाय का अभिमान रखते हैं और जब कभी शास्त्रार्थ करते हैं तो अपने मत अर्थात् शङ्कराचार्योक्त का स्थापन और चक्राङ्कित आदि के खण्डन में प्रवृत्त रहते हैं। वेदमार्ग की उन्नति और यावत्पाखण्ड मार्ग हैं तावत् के खण्डन में प्रवृत्त नहीं होते। ये संन्यासी लोग ऐसा समझते हैं कि हमको खण्डन-मण्डन से क्या प्रयोजन? हम तो महात्मा हैं, ऐसे लोग भी संसार में भाररूप हैं।

जब ऐसे हैं, तभी तो वेदमार्गविरोधी वाममार्गादि सम्प्रदायी, ईसाई, मुसलमान, जैनी आदि बढ़ गये, अब भी बढ़ते जाते हैं और इनका नाश होता जाता है तो भी इनकी आँख नहीं खुलती। खुले कहाँ से? जो कुछ उनके मन में परोपकार-बुद्धि और कर्त्तव्यकर्म करने में उत्साह होवे! किन्तु ये लोग अपनी प्रतिष्ठा खाने-पीने के सामने अन्य अधिक कुछ भी नहीं समझते और संसार की निन्दा से बहुत डरते हैं। पुनः (लोकैषणा) अर्थात् लोक में प्रतिष्ठा, (वित्तैषणा) धन बढ़ाने में तत्पर होकर विषयभोग, (पुत्रैषणा) पुत्रवत् शिष्यों पर मोहित होना, इन तीन एषणाओं का त्याग करना उचित है। जब एषणा ही नहीं छूटी, पुनः संन्यास क्योंकर हो सकता है? अर्थात् पक्षपातरहित वेदमार्गोपदेश से जगत् के कल्याण करने में अहर्निश प्रवृत्त रहना संन्यासियों का मुख्य काम है। जब अपने-अपने अधिकार के कर्मों को नहीं करते, पुनः संन्यासादि नाम धराना व्यर्थ है। नहीं तो जैसे गृहस्थ व्यवहार, स्वार्थ में परिश्रम करते हैं, संन्यासी भी हुये किन्तु जो उनसे अधिक परिश्रम, परोपकार करने में तत्पर रहैं, तभी सब आश्रम उन्नति पर रहैं।

देखो! तुम्हारे सामने पाखण्ड-मत बढ़ते जाते हैं। ईसाई, मुसलमान तक हो रहे हैं। तुमसे अपने घर की रक्षा और दूसरों को मिलाना नहीं बन सकता। बने तो तब, जब तुम करना भी चाहो! जब तक वर्त्तमान और भविष्यत् में संन्यासी उन्नतिशील नहीं होते, तब तक आर्यावर्त्त और अन्य-देशस्थ मनुष्यों की वृद्धि नहीं होती। जब वृद्धि के कारण

वेदादि शास्त्रों का पठनपाठन, ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के यथावत् अनुष्ठान, सत्योपदेश होते हैं, तभी देशोन्नति होती है।

चेत रक्खो! बहुत-सी पाखण्ड की बातें तुमको सचमुच दीख पड़ती हैं। जैसे कोई साधु वा दुकानदार पुत्र देने की सिद्धि बतलाता है तब उसके पास बहुत स्त्री जाती हैं, सब पुत्र माँगती हैं, और बाबाजी सबको पुत्र होने का आशीर्वाद देता है। उसमें से जिस-जिस को पुत्र होता है, वह-वह समझती है कि बाबाजी के वचन से हुआ। जब उससे कोई पूछे कि सुवर आदि पशु और मुर्गे आदि पक्षियों के कच्चे-बच्चे किस बाबाजी के वर से होते हैं? तो कुछ भी उत्तर न दे सकेगी। जो कोई कहे कि मैं लड़के को जीता रख सकता हूँ तो आप ही क्यों मर जाता है?

कितने ही धूर्त्त लोग ऐसी माया रचते हैं कि बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी धोखा खा जाते हैं, जैसे धनसारी के ठग। ये लोग पाँच-सात मिलके दूर-दूर देश में जाते हैं। जो शरीर से डौलडाल में अच्छा होता है, उसको सिद्ध बनाते हैं। जिस नगर वा ग्राम में धनाढ्य होते हैं, उसके समीप जङ्गल में उस सिद्ध को बैठाते हैं। उसके साधक नगर में जाके अजान बनके जिस किसी को पूछते हैं —

तुमने ऐसे महात्मा को यहाँ कहीं देखा? वह महात्मा कौन और कैसा है?

साधक—बड़ा सिद्ध पुरुष है। मन की बातें बतला देता है। जो मुख से कहता है, वह हो जाता है। बड़ा योगिराज है। उसके दर्शन के लिये हम अपने घर-द्वार छोड़कर देखते-फिरते हैं। मैंने किसी से सुना था वह महात्मा इधर की ओर आये हैं।

गृहस्थ—जब वह महात्मा तुमको मिलें तो हमसे कहना, दर्शन करेंगे और मन की बातें पूछेंगे।

इसी प्रकार दिनभर नगर में फिरते और प्रत्येक को उस सिद्ध की बात कहकर रात्रि को इकट्ठे सिद्ध-साधक होकर खाते-पीते, सो रहते हैं। फिर भी प्रात:काल नगर वा ग्राम में जाके उसी प्रकार दो-तीन दिन कहकर फिर चारों साधक किसी एक-एक धनाढ्य से बोलते हैं कि

वह महात्मा मिल गये। तुमको दर्शन करना हो तो चलो। वे जब तैयार हो जाते हैं तब साधक उनसे पूछते हैं कि तुम क्या बात पूछना चाहते हो? हमसे कहो। कोई पुत्र की इच्छा करता, कोई धन, कोई रोग निवारण और कोई शत्रु जीतने की। उनको वे साधक ले जाते हैं।

सिद्ध-साधकों ने जैसा सङ्केत किया होता है अर्थात् जिसको धन की इच्छा हो उसको दाहिनी ओर, जिसको पुत्र की इच्छा हो उसको सम्मुख, जिसको रोग निवारण की इच्छा हो उसको बाईं ओर, और जिसको शत्रु जीतने की इच्छा हो उसको पीछे से ले जाके सामनेवाले के बीच में बैठाते हैं। जब नमस्कार करते हैं, उसी समय वह सिद्ध उनसे बोलता है कि हमारे पास पुत्र नहीं रक्खा है, जो तू पुत्र की इच्छा करके हमारे पास आया है। इसी प्रकार धन वाले से बोलता है "तू धन की इच्छा करके आया है। 'फकीरों' के पास धन कहाँ धरा है?" रोगवाले से—"तू रोग छुड़ाने की इच्छा करके आया है? हम वैद्य नहीं, जा किसी वैद्य के पास।"

परन्तु जब उसका पिता रोगी है तो उसका साधक अंगूठा, जो माता रोगी है तो तर्जनी, जो भाई रोगी है तो मध्यमा, जो स्त्री रोगी है तो अनामिका जो कन्या रोगी है तो कनिष्ठिका अंगुली को चला देता है। उसको देख वह सिद्ध कहता है कि तेरा पिता रोगी है, तेरी माता, तेरा भाई, तेरी स्त्री और तेरी कन्या रोगी है। तब तो वे चारों बड़े मोहित हो जाते हैं। साधक लोग उनसे कहते हैं, देखो! जैसा हमने कहा था, वैसे हैं कि नहीं?

गृहस्थ बोलते हैं—हाँ, जैसा तुमने कहा था, वैसे ही हैं। तुमने बड़ा उपकार किया और हमारा बड़ा भाग्य था, जो ऐसे महात्मा का दर्शन हुआ।

साधक लोग कहते हैं कि ये महात्मा बहुत दिन रहनेवाले नहीं हैं। जो कुछ इनसे आशीर्वाद लेना हो तो खूब सेवा करो।

वे गृहस्थ प्रशंसा करते घर की ओर चलते हैं। साधक भी उनके साथ-साथ जाते हैं, क्योंकि मार्ग में कोई उनका पाखण्ड खोल न देवे। उन धनाढ्यों का जो कोई मित्र मिला, उन सबसे प्रशंसा करते रहे।

इसी प्रकार जो-जो साधकों के साथ जाते हैं उन-उन का वृत्तान्त सब कह देते हैं।

जब नगर में हल्ला होता है तब बहुत मनुष्यों का मेला जाकर बहुत ने पूछा कि महाराज! मेरे मन का वृत्तान्त कहिए। तब सिद्धजी चुपचाप हो जाता है और कहने लगता है कि हमको बहुत दिक मत करो। उनके साधक भी सबसे कहने लगते हैं—"जो तुम बहुत दिक करोगे तो चले जायेंगे।" उनमें से जो कोई बड़ा आदमी होता है, वह उसके साधक को बुला लेता है और कहता है कि हमारे मन की बात कहला दो तो हम मानें। साधक ने पूछा कि क्या बात है? धनाढ्य ने कहा। उसको उसी प्रकार संकेत से लेजाके बैठाया। उसने झट कह दिया। बात सब मेला भर ने समझ लिया कि अहो! बड़े सिद्ध पुरुष हैं। कोई मिठाई, कोई पैसा, कोई रुपया, कोई अशर्फी, कोई कपड़ा और कोई सीधा-सामग्री धरने लगे। फिर जब तक मान्ता बहुत रही तब तक लूटते रहै और किसी **आँख के अन्धे गाँठ के पूरे** से पुत्र होने के लिए आशीर्वाद दिया और सहस्र रुपये लेकर कहा कि तेरी सच्ची भक्ति होगी तो पुत्र होगा।

इस प्रकार के बहुत से ठग होते हैं, जिनकी विद्वान् ही परीक्षा कर सकता है और कोई नहीं। इसलिये वेदादि विद्या का पढ़ना, सत्सङ्ग करना होता है, जिससे कोई उसको ठगाई में न फसा सके, औरों को भी बचा सके। क्योंकि **मनुष्य का नेत्र विद्या ही है।** विना विद्या-शिक्षा के ज्ञान नहीं होता। जो बाल्यावस्था से उत्तम शिक्षा पाता है, वही मनुष्य और विद्वान् होता है। जिनको कुसङ्ग है, वे दुष्ट, पापी, महामूर्ख होकर बड़े दु:ख पाते हैं। इसलिये ज्ञान को विशेष कहा है कि जो जानता है, वही मानता है।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति।
यथा किराती करिकुम्भजाता मुक्ताः परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाः॥

—यह किसी कवि का श्लोक है [चाणक्य० ११।८]

जो जिसका गुण नहीं जानता, वह उसकी निन्दा निरन्तर करता है। जैसे जङ्गली भील गजमुक्ताओं को छोड़के गुञ्जा का हार पहिन लेता है, वैसे ही जो पुरुष विद्वान्, ज्ञानी, धार्मिक, सत्पुरुषों का सङ्गी, योगी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय, सुशील होता है, वही धर्मार्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त होकर इस जन्म और परजन्म में सदा आनन्द में रहता है।

यह आर्यावर्त्तनिवासी लोगों के मत विषय में संक्षेप से लिखा। इसके आगे जो थोड़ा सा आर्य-राजाओं का इतिहास मिला है, इसको सब सज्जनों को जनाने के लिये प्रकाशित किया जाता है।

अब थोड़ा-सा आर्यावर्त्तदेशीय राजवंश कि जिसमें श्रीमान् महाराजे 'युधिष्ठिर' से लेके महाराजे 'यशपाल' तक का इतिहास लिखते हैं। और श्रीमान् महाराजे 'स्वायम्भुव मनुजी' से लेके महाराज 'युधिष्ठिर' तक का इतिहास महाभारतादि में लिखा ही है और इससे सज्जन लोगों को इधर के कुछ इतिहास का वर्त्तमान विदित होगा।

यद्यपि यह विषय "विद्यार्थी सम्मिलित 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' और 'मोहनचन्द्रिका'" जो कि पाक्षिकपत्र 'श्रीनाथद्वारे' से निकलता था' जो राजपूताना देश मेवाड़ राज उदयपुर चित्तौड़गढ सबको विदित है यह उससे हमने अनुवाद किया है। यदि ऐसे ही हमारे आर्य सज्जन लोग इतिहास और विद्या-पुस्तकों का खोज कर प्रकाश करेंगे तो देश को बड़ा ही लाभ पहुँचेगा। उस पत्र-सम्पादक ने अपने मित्र से एक प्राचीन पुस्तक जो कि संवत् विक्रम के १७८२ (सत्रह सौ बयासी) का लिखा हुआ था, उससे उक्त पत्र के सम्पादक महाशय ने ग्रहण कर अपने संवत् १९३९ मार्गशीर्ष शुक्ल और कृष्ण पक्ष १९-२० किरण अर्थात् दो पाक्षिक पत्रों में छापा है' सो निम्न लिखे प्रमाणे जानिये—

आर्य्यावर्त्तदेशीय राजवंशावली

इन्द्रप्रस्थ में आर्य लोगों ने श्रीमन्महाराज 'यशपाल' पर्यन्त राज्य किया। जिनमें श्रीमन्महाराजे 'युधिष्ठिर' से महाराजे 'यशपाल' तक वंश अर्थात् पीढ़ी अनुमान १२४ (एक सौ चौबीस राजा), वर्ष ४१५७, मास ९, दिन १४, समय में हुए हैं। इनका व्यौरा—

राजा	शक	वर्ष	मास	दिन
आर्यराजा	१२४	४१५७	९	१४

श्रीमन्महाराजे युधिष्ठिरादि वंश अनुमान पीढ़ी ३०, वर्ष १७७०, मास ११, दिन २२ इनका विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१	राजा युधिष्ठिर	३६	८	२५
२	राजा परिक्षित	६०	०	०
३	राजा जनमेजय	८४	७	२३
४	राजा अश्वमेध	८२	८	२२
५	द्वितीयराम	८८	२	८
६	छत्रमल	८१	११	२७
७	चित्ररथ	७५	३	१८
८	दुष्टशैल्य	७५	१०	२४
९	राजा उग्रसेन	७८	७	२१
१०	राजा शूरसेन	७८	७	२१
११	भुवनपति	६९	५	५
१२	रणजीत	६५	१०	४
१३	ऋक्षक	६४	७	४
१४	सुखदेव	६२	०	२४
१५	नरहरिदेव	५१	१०	२
१६	सुचिरथ	४२	११	२
१७	शूरसेन (दूसरा)	५८	१०	८
१८	पर्वतसेन	५५	८	१०
१९	मेधावी	५२	१०	१०
२०	सोनचीर	५०	८	२१
२१	भीमदेव	४७	९	२०
२२	नृहरिदेव	४५	११	२३
२३	पूर्णमल	४४	८	७
२४	करदवी	४४	१०	८
२५	अलंमिक	५०	११	८
२६	उदयपाल	३८	९	०
२७	दुवनमल	४०	१०	२६
२८	दमात	३२	०	०
२९	भीमपाल	५८	५	८
३०	क्षेमक	४८	११	२१

राजा क्षेमक के प्रधान विश्रवा ने क्षेमक राजा को मारकर राज्य किया। पीढ़ी १४, वर्ष ५००, मास ३, दिन १७ इनका विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१	विश्रवा	१७	३	२९
२	पुरसेनी	४२	८	२१
३	वीरसेनी	५२	१०	७
४	अनङ्गशायी	४७	८	२३
५	हरिजित	३५	९	१७
६	परमसेनी	४४	२	२३
७	सुखपाताल	३०	२	२१
८	कद्रुत	४२	९	२४
९	सज्ज	३२	२	१४
१०	अमरचूड़	२७	३	१६
११	अमीपाल	२२	११	२५
१२	दशरथ	२५	४	१२
१३	वीरसाल	३१	८	११
१४	वीरसालसेन	४७	०	१४

राजा वीरसालसेन को वीरमहा प्रधान ने मारकर राज्य किया। वंश १६, वर्ष ४४५, मास ५, दिन ३ इनका विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१	राजा वीरमहा	३५	१०	८
२	अजितसिंह	२७	७	१९
३	सर्वदत्त	२८	३	१०
४	भुवनपति	१५	४	१०
५	वीरसेन	२१	२	१३
६	महीपाल	४०	८	७
७	शत्रुसाल	२६	४	३

८	संघराज	१७	२	१०
९	तेजपाल	२८	११	१०
१०	माणिकचन्द	३७	७	२१
११	कामसेनी	४२	५	१०
१२	शत्रुमर्दन	८	११	१३
१३	जीवनलोक	२८	९	१७
१४	हरिराव	२६	१०	२९
१५	वीरसेन (दूसरा)	३५	२	२०
१६	आदित्यकेतु	२३	११	१३

राजा आदित्यकेतु मगधदेश के राजा को 'धन्धर' नामक राजा प्रयाग के ने मारकर राज्य किया। वंशपीढ़ी ९, वर्ष ३७४, मास ११, दिन २६ इनका विस्तार—

	आर्यराजा	**वर्ष**	**मास**	**दिन**
१	राजा धन्धर	४२	७	२४
२	महर्षी	४१	२	२९
३	सनरच्ची	५०	१०	१९
४	महायुद्ध	२०	३	८
५	दुरनाथ	२८	५	२५
६	जीवनराज	४५	२	५
७	रुद्रसेन	४७	४	२८
८	आरीलक	५२	१०	८
९	राजपाल	३६	०	०

राजा राजपाल को सामन्त महानपाल ने मारकर राज्य किया। पीढ़ी १, वर्ष १४, मास ०, दिन ० इनका विस्तार नहीं है।

राजा महानपाल के राज्य पर राजा विक्रमादित्य ने 'अवन्तिका' (उज्जैन) से चढ़ाई करके राजा महानपाल को मारके राज्य किया। पीढ़ी १, वर्ष ९३, मास ०, दिन ० इनका विस्तार नहीं है।

राजा विक्रमादित्य को शालिवाहन का उमराव समुद्रपाल योगी पैठण के ने मारकर राज्य किया। पीढ़ी १६, वर्ष ३७२, मास ४, दिन

२७ इनका विस्तार—

	आर्यराजा	**वर्ष**	**मास**	**दिन**
१	समुद्रपाल	५४	२	२०
२	चन्द्रपाल	३६	५	४
३	सहायपाल	११	४	११
४	देवपाल	२७	१	२८
५	नरसिंहपाल	१८	०	२०
६	सामपाल	२७	१	१७
७	रघुपाल	२२	३	२५
८	गोविन्दपाल	२७	१	१७
९	अमृतपाल	३६	१०	१३
१०	बलीपाल	१२	५	२७
११	महीपाल	१३	८	४
१२	हरीपाल	१४	८	४
१३	सीसपाल*	११	१०	१३
१४	मदनपाल	१७	१०	१९
१५	कर्मपाल	१६	२	२
१६	विक्रमपाल	२४	११	१३

राजा विक्रमपाल ने पश्चिम दिशा का राजा (मलुखचन्द बोहरा था) इन पर चढाई करके मैदान में लड़ाई की, इस लड़ाई में मलुखचन्द ने विक्रमपाल को मारकर इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया। पीढ़ी १०, वर्ष १९१, मास १, दिन १६ इनका विस्तार—

	आर्यराजा	**वर्ष**	**मास**	**दिन**
१	मलुखचन्द	५४	२	१०
२	विक्रमचन्द	१२	७	१२
३	अमीनचन्द**	१०	०	५

* किसी इतिहास में भीमपाल भी लिखा है।

** इनका नाम कहीं मानकचन्द भी लिखा है।

४	रामचन्द	१३	११	८
५	हरीचन्द	१४	९	२४
६	कल्याणचन्द	१०	५	४
७	भीमचन्द	१६	२	९
८	लोवचन्द	२६	३	२२
९	गोविन्दचन्द	३१	७	१२
१०	रानी पद्मावती*	१	०	०

रानी पद्मावती मर गई। इसके पुत्र भी कोई नहीं था। इसलिये सब मुत्सद्दियों ने सलाह करके हरिप्रेम वैरागी को गद्दी पर बैठा के मुत्सद्दी राज्य करने लगे। पीढ़ी ४, वर्ष ५०, मास ०, दिन २१। हरिप्रेम का विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१	हरिप्रेम	७	५	१६
२	गोविन्दप्रेम	२०	२	८
३	गोपालप्रेम	१५	७	२८
४	महाबाहु	६	८	२९

राजा महाबाहु राज्य छोड़के वन में तपश्चर्या करने गये, यह बङ्गाल के राजा आधीसेन ने सुनके इन्द्रप्रस्थ में आके आप राज्य करने लगे। पीढी १२, वर्ष १५१, मास ११, दिन २ इनका विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१	राजा आधीसेन	१८	५	२१
२	विलावलसेन	१२	४	२
३	केशवसेन	१५	७	१२
४	माधसेन	१२	४	२
५	मयूरसेन	२०	११	२७
६	भीमसेन	५	१०	९
७	कल्याणसेन	४	८	२१
८	हरीसेन	१२	०	२५

* यह पद्मावती गोविन्दचन्द की रानी थी।

९	क्षेमसेन	८	११	१५
१०	नारायणसेन	२	२	२९
११	लक्ष्मीसेन	२६	१०	०
१२	दामोदरसेन	११	५	१९

राजा दामोदरसेन ने अपने उमराव को बहुत दु:ख दिया, इसलिये राजा के उमराव दीपसिंह ने सेना मिलाके राजा के साथ लड़ाई की, उस लड़ाई में राजा को मारकर दीपसिंह आप राज्य करने लगे। पीढी ६, वर्ष १०७, मास ६, दिन २२ इनका विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१	दीपसिंह	१७	१	२६
२	राजसिंह	१४	५	०
३	रणसिंह	९	८	११
४	नरसिंह	४५	०	१५
५	हरिसिंह	१३	२	२९
६	जीवनसिंह	८	०	१

राजा जीवनसिंह ने कुछ कारण के लिये अपनी सब सेना उत्तर दिशा को भेज दी। यह खबर पृथ्वीराज चह्वाण वैराट के राजा सुनकर जीवनसिंह के ऊपर चढाई करके आये और लड़ाई में जीवनसिंह को मारकर इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया।* पीढी ५, वर्ष ८६, मास ०, दिन २० इनका विस्तार—

	आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१	पृथिवीराज	१२	२	१९
२	अभयपाल	१४	५	१७

* इसके आगे और इतिहासों में इस प्रकार है कि महाराज पृथ्वीराज के ऊपर सुलतान शहाबुद्दीन गोरी चढ़कर आया और कई बार हारकर लौट गया। अन्त में संवत् १२४९ में आपस की फूट के कारण महाराज पृथ्वीराज को जीत, अन्धा कर अपने देश को ले गया। पश्चात् दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) का राज्य आप करने लगा—मुसलमानों का राज्य पीढ़ी ४५, वर्ष ६१३ रहा।
—पण्डित लेखराम आर्यपथिक द्वारा पञ्चम संस्करण में लिखित टिप्पणी।

३	दुर्जनपाल	११	४	१४
४	उदयपाल	११	७	३
५	यशपाल	३६	४	२७

राजा यशपाल के ऊपर सुलतान शाहाबुद्दीन गौरी गढ़ ग़जनी से चढाई करके आया और राजा यशपाल को प्रयाग के किले में संवत् १२४९ साल में पकड़कर क़ैद किया। पश्चात् 'इन्द्रप्रस्थ' अर्थात् दिल्ली का राज्य आप (सुलतान शहाबुद्दीन) करने लगा। पीढ़ी ५३, वर्ष, ७४५, मास १, दिन १७। इनका विस्तार बहुत इतिहास पुस्तकों में लिखा है, इसलिये यहाँ नहीं लिखा।

इसके आगे बौद्ध-जैनमत विषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषित आर्य्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डनविषय एकादशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ११॥

ओ३म्

अनुभूमिका (२)

जब आर्य्यावर्त्तस्थ मनुष्यों में सत्याऽसत्य का यथावत् निर्णय कारक वेदविद्या छूटकर अविद्या फैलके मतमतान्तर खड़े हुए, यही जैन आदि के विद्याविरुद्धमतप्रचार का निमित्त हुआ। क्योंकि 'वाल्मीकीय' और 'महाभारतादि' में जैनियों का नाममात्र भी नहीं लिखा और जैनियों के ग्रन्थों में 'वाल्मीकीय' और भारत में कथित 'राम-कृष्णादि' की गाथा बड़े विस्तारपूर्वक लिखी हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि यह मत इनके पीछे चला, क्योंकि जैसा अपने मत को बहुत प्राचीन जैनी लोग लिखते हैं, वैसा होता तो वाल्मीकीय आदि ग्रन्थों में उनकी कथा अवश्य होती, इसलिये जैनमत इन ग्रन्थों के पीछे चला है।

कोई कहे कि जैनियों के ग्रन्थों में से कथाओं को लेकर वाल्मीकीय आदि ग्रन्थ बने होंगे तो उनसे पूछना चाहिये कि वाल्मीकि आदि में तुम्हारे ग्रन्थों का नाम लेख भी क्यों नहीं? और तुम्हारे ग्रन्थों में क्यों है? क्या पिता के जन्म का दर्शन पुत्र कर सकता है? कभी नहीं। इससे यही सिद्ध होता है कि जैन-बौद्ध मत; शैव-शाक्तादि मतों के पीछे चला है।

अब इस १२ बारहवें समुल्लास में जो-जो जैनियों के मतविषयक लिखा गया है, सो-सो उनके ग्रन्थों के पतेपूर्वक लिखा है। इसमें जैनी लोगों को बुरा न मानना चाहिये, क्योंकि जो-जो हमने इनके मतविषय में लिखा है, वह केवल सत्याऽसत्य के निर्णयार्थ है, न कि विरोध वा हानि करने के अर्थ। इस लेख को जब जैनी, बौद्ध वा अन्य लोग देखेंगे तब सबको सत्याऽसत्य के निर्णय में विचार और लेख करने का समय मिलेगा और बोध भी होगा। जबतक वादी-प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद वा लेख न किया जाय तबतक सत्याऽसत्य का निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान् लोगों में सत्याऽसत्य का निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानों को महा अन्धकार में पड़कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है,

इसलिये सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ सुहृदता से वाद वा लेख करना हम मनुष्य जाति का मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्यों की उन्नति कभी न होवे।

और यह बौद्ध-जैन मत का विषय विना इनके अन्य-मतवालों को अपूर्व लाभ और बोध करनेवाला होगा, क्योंकि ये लोग अपने पुस्तकों को किसी अन्य मतवाले को देखने, पढ़ने वा लिखने को भी नहीं देते। बड़े परिश्रम से मेरे और विशेष आर्यसमाज मुम्बई के मन्त्री 'सेठ सेवकलाल कृष्णदास' के पुरुषार्थ से ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। तथा काशीस्थ 'जैनप्रभाकर' यन्त्रालय में छपने और मुम्बई में 'प्रकरणरत्नाकर' ग्रन्थ के छपने से भी सब लोगों को जैनियों का मत देखना सहज हुआ है।

भला, यह किन विद्वानों की बात है कि अपने मत के पुस्तक आप ही देखना और दूसरों को न दिखलाना? इसी से विदित होता है कि इन ग्रन्थों के बनानेवालों को प्रथम ही शङ्का थी कि इन ग्रन्थों में असम्भव बातें हैं, जो दूसरे मतवाले देखेंगे तो खण्डन करेंगे और हमारे मतवाले दूसरों केग्रन्थ देखेंगे तो इस मत में श्रद्धा न रहेगी।

अस्तु, जो हो परन्तु बहुत मनुष्य ऐसे हैं, कि जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते, किन्तु दूसरों के दोष देखने में अति उद्युक्त रहते हैं। यह न्याय की बात नहीं, क्योंकि प्रथम अपने दोष देख निकालके पश्चात् दूसरे के दोषों में दृष्टि देके निकालें।

अब इन बौद्ध-जैनियों के मत का विषय सब सज्जनों के सम्मुख धरता हूँ, जैसा है, वैसा विचारें।

किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वर्य्येषु

अथ द्वादशसमुल्लासारम्भः

अथ नास्तिकमतान्तर्गतचारवाकबौद्धजैनमत-खण्डनमण्डनविषयान् व्याख्यास्यामः

कोई एक 'बृहस्पति' नामा पुरुष हुआ था जो वेद, ईश्वर और यज्ञादि उत्तम कर्मों को भी नहीं मानता था। देखिये! उनका मत—

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

[सर्वदर्शनसंग्रह चारवाकदर्शन]

कोई मनुष्यादि प्राणी मृत्यु के अगोचर नहीं है अर्थात् सबको मरना है, इसलिये जबतक शरीर में जीव रहै, तबतक सुख से रहै। जो कोई कहे कि "धर्माचरण से कष्ट होता है, जो धर्म को छोड़ें तो पुनर्जन्म में बड़ा दुःख पावें।" उसको 'चारवाक' उत्तर देता है कि अरे भोले भाई! जो मरे के पश्चात् शरीर भस्म हो जाता है कि जिसने खाया-पीया है, वह पुनः संसार में न आवेगा। इसलिये जैसे हो सके वैसे आनन्द में रहो, लोक में नीति से चलो, ऐश्वर्य्य को बढ़ाओ और उससे इच्छित भोग करो। यही लोक समझो, परलोक कुछ नहीं।

देखो! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतों के परिणाम से यह शरीर बना है, इसमें इनके योग से चैतन्य उत्पन्न होता है। जैसे मादक द्रव्य खाने-पीने से नशा उत्पन्न होता है, इसी प्रकार जीव शरीर के साथ उत्पन्न होकर शरीर के नाश के साथ आप भी नष्ट हो जाता है, फिर किसको पाप-पुण्य का फल होगा?

तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणा-भावात्॥ [चारवाक दर्शन]

इस शरीर में चारों भूतों के संयोग से जीवात्मा उत्पन्न होकर उन्हीं के वियोग के साथ ही नष्ट हो जाता है, क्योंकि मरे पीछे कोई भी जीव प्रत्यक्ष नहीं होता। हम एक प्रत्यक्ष ही को मानते हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष के

विना अनुमानादि होते ही नहीं। इसलिए मुख्य प्रत्यक्ष के सामने अनुमानादि गौण होने से उनका ग्रहण नहीं करते। सुन्दर स्त्री के आलिङ्गन से आनन्द का करना पुरुषार्थ का फल है।

उत्तर—ये पृथिव्यादि भूत जड़ हैं, उनसे चेतन की उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती। जैसे अब माता-पिता के संयोग से देह की उत्पत्ति होती है, वैसे ही आदि सृष्टि में मनुष्यादि शरीरों की आकृति परमेश्वर कर्त्ता के विना कभी नहीं हो सकती। मद के समान चेतन की उत्पत्ति और विनाश नहीं होता, क्योंकि मद चेतन को होता है, जड़ को नहीं। पदार्थ 'नष्ट' अर्थात् अदृष्ट होते हैं परन्तु अभाव किसी का नहीं होता, इसी प्रकार अदृश्य होने से जीव का भी अभाव न मानना चाहिये। जब जीवात्मा सदेह होता है तभी उसकी प्रकटता होती है। जब शरीर को छोड़ देता है, तब यह शरीर जो मृत्यु को प्राप्त हुआ है, वह जैसा चेतनयुक्त पूर्व था, वैसा नहीं हो सकता। यही बात बृहदारण्यक में कही है—

नाहं मोहं ब्रवीमि अनुच्छित्तिधर्मायमात्मेति॥

[तुलना—अ० ४। ब्रा० ५। कं० १४]

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि "हे मैत्रेयि! मैं मोह से बात नहीं करता किन्तु आत्मा अविनाशी है, जिसके योग से शरीर चेष्टा करता है।" जब जीव शरीर से पृथक् हो जाता है तब शरीर में ज्ञान कुछ भी नहीं रहता। जो देह से पृथक् आत्मा न हो, तो जिसके संयोग से चेतनता और वियोग से जड़ता होती है वह देह से पृथक् है। जैसे आँख सबको देखती है परन्तु अपने को नहीं, इसी प्रकार प्रत्यक्ष का करनेवाला अपने ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। जैसे अपनी आँख से सब घट-पटादि पदार्थ देखता है, वैसे आँख को अपने ज्ञान से देखता है। जो द्रष्टा है वह द्रष्टा ही रहता है, दृश्य कभी नहीं होता। जैसे विना आधार आधेय, कारण के विना कार्य्य, अवयवी के विना अवयव और कर्त्ता के विना कर्म नहीं रह सकते, वैसे कर्त्ता के विना प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है?

जो सुन्दर स्त्री के साथ समागम करने ही को पुरुषार्थ का फल मानो तो क्षणिक सुख और उससे दुःख भी होता है, वह भी पुरुषार्थ ही का फल होगा। जब ऐसा है तो स्वर्ग की हानि होने से दुःख भोगना पड़ेगा। जो कहो दुःख के छुड़ाने और सुख के बढ़ाने में यत्न करना चाहिये तो मुक्ति-सुख की हानि हो जाती है, इसलिये वह पुरुषार्थ का फल नहीं।

चारवाक—जो दुःख-संयुक्त सुख का त्याग करते हैं, वे मूर्ख हैं। जैसे धान्यार्थी धान्य का ग्रहण और बुस का त्याग करता है, वैसे इस संसार में बुद्धिमान् सुख का ग्रहण और दुःख का त्याग करें। क्योंकि इस लोक के उपस्थित सुख को छोड़के अनुपस्थित स्वर्ग के सुख की इच्छा कर धूर्तकथित वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म, उपासना और ज्ञानकाण्ड का अनुष्ठान परलोक के लिये करते हैं, वे अज्ञानी हैं। जो परलोक है ही नहीं, तो उसकी आशा करना मूर्खता का काम है। क्योंकि—

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः॥ [चारवाकदर्शन]

चारवाकमतप्रचारक 'बृहस्पति' कहता है कि—"अग्निहोत्र, तीन वेद, तीन दण्ड और भस्म का लगाना बुद्धि और पुरुषार्थरहित पुरुषों ने जीविका बना ली है।" किन्तु काँटे लगने आदि से उत्पन्न हुए दुःख का नाम 'नरक', लोकसिद्ध राजा 'परमेश्वर' और देह का नाश होना 'मोक्ष', अन्य कुछ भी नहीं है।

उत्तर—विषयरूपी सुखमात्र को पुरुषार्थ का फल मानकर विषयदुःख-निवारणमात्र में कृतकृत्यता और स्वर्ग मानना मूर्खता है। अग्निहोत्रादि यज्ञों से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि द्वारा आरोग्यता का होना, उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है, उसको न जानकर वेद, ईश्वर और वेदोक्त धर्म की निन्दा करना धूर्तों का काम है। जो त्रिदण्ड और भस्मधारण का खण्डन है, सो ठीक है।

यदि कण्टकादि से उत्पन्न ही दुःख का नाम नरक हो तो उससे अधिक महारोगादि नरक क्यों नहीं? यद्यपि राजा को ऐश्वर्यवान् और प्रजापालन में समर्थ होने से श्रेष्ठ मानें, तो ठीक है परन्तु जो अन्यायकारी पापी राजा हो, जो उसको भी परमेश्वरवत् मानते हो, तो तुम्हारे जैसा कोई भी मूर्ख नहीं। शरीर का विच्छेद होना मात्र मोक्ष है, तो गदहे, कुत्ते

आदि और तुममें क्या भेद रहा, किन्तु आकृति ही मात्र भिन्न रही।
चारवाक—

अग्निरुष्णो जलं शीतं समस्पर्शस्तथाऽनिलः।
केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः॥ १॥
न स्वर्गो नाऽपवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥ २॥
पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते॥ ३॥
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्॥ ४॥
स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते॥ ५॥
यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥ ६॥
यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः।
कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः॥ ७॥
ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह।
मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित्॥ ८॥
त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः।
जर्फरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम्॥ ९॥
अश्वस्यात्र हि शिश्नन्तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्त्तितम्।
भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्त्तितम्॥ १०॥
मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्॥ ११॥

[चारवाकदर्शन, श्लोक १-२। श्लोक २-१०]

'चारवाक', 'आभाणक', 'बौद्ध' और 'जैन' भी जगत् की उत्पत्ति स्वभाव से मानते हैं। जो-जो स्वाभाविक गुण हैं, उस-उससे द्रव्य संयुक्त होकर सब पदार्थ बनते हैं, कोई जगत् का कर्त्ता नहीं॥ १॥

परन्तु इनमें से चारवाक ऐसा मानता है। किन्तु परलोक और जीवात्मा बौद्ध-जैन मानते हैं, चारवाक नहीं। शेष इन तीनों का मत कोई-कोई

बात छोड़के एक सा है।

न कोई स्वर्ग, न कोई नरक और न कोई परलोक में जानेवाला आत्मा है और न वर्णाश्रम की क्रिया फलदायक है॥ २॥

जो यज्ञ में पशु को मार होम करने से वह स्वर्ग को जाता हो, तो यजमान अपने पिता आदि को मार यज्ञ में होम करके स्वर्ग को क्यों नहीं भेजता?॥ ३॥

जो मरे हुए जीवों को श्राद्ध और तर्पण तृप्तिकारक होता है तो परदेश में जानेवाले मार्ग में निर्वाहार्थ अन्न, वस्त्र, धन को क्यों ले जाते? क्योंकि जैसे मृतक के नाम से अर्पण किया हुआ स्वर्ग में पहुँचता है, तो परदेश में जानेवालों के लिए उनके सम्बन्धी भी घर में अर्पण कर देशान्तर में पहुँचा देवें। जो यह नहीं पहुँचता, तो स्वर्ग में क्योंकर पहुँच सकता है?॥ ४॥

जो मर्त्यलोक में दान करने से स्वर्गवासी तृप्त होते हैं, तो नीचे देने से घर के ऊपर स्थित पुरुष तृप्त क्यों नहीं होता?॥ ५॥

इसलिए जबतक जीवे, तबतक सुख से जीवे। जो घर में पदार्थ न हो तो ऋण करके आनन्द करे, ऋण देना नहीं पड़ेगा। क्योंकि जिस शरीर में जीव ने खाया-पिया है, उन दोनों का पुनरागमन न होगा, फिर किससे कौन माँगे और देवेगा?॥ ६॥

जो लोग कहते हैं कि मृत्युसमय जीव शरीर से निकलके परलोक को जाता है, यह बात मिथ्या है, क्योंकि जो ऐसा होता, तो कुटुम्ब के मोह से बद्ध होकर पुनः घर में क्यों नहीं आ जाता?॥ ७॥

इसलिए यह सब ब्राह्मणों ने अपनी जीविका का उपाय किया है। जो दशगात्रादि मृतकक्रिया करते हैं, यह सब उनकी जीविका की लीला है॥ ८॥

वेद के करनेहारे भांड, धूर्त्त और राक्षस, ये तीन हैं। 'जर्फरी' 'तुर्फरी' इत्यादि पण्डितों के धूर्त्ततायुक्त वचन हैं॥ ९॥

देखो धूर्त्तों की रचना! ''घोड़े के लिङ्ग को स्त्री ग्रहण करे।'' उसके साथ समागम यजमान की स्त्री से कराना, कन्या से ठट्ठा आदि लिखना, धूर्त्तों के विना नहीं हो सकता॥ १०॥

और जो मांस का खाना लिखा है, वह वेदभाग राक्षस का बनाया है॥ ११ ॥

उत्तर—विना चेतन परमेश्वर के निर्माण किये जड़ पदार्थ आपस में स्वभाव से नियमपूर्वक मिलकर उत्पन्न नहीं हो सकते। इस वास्ते सृष्टि का कर्त्ता अवश्य होना चाहिये। जो स्वभाव से हों तो द्वितीय पृथिवी, सूर्य, चन्द्र आप से आप क्यों नहीं होते॥ १ ॥

'स्वर्ग' सुखभोग और 'नरक' दुःखभोग का नाम है। जो जीवात्मा न होता, तो सुख-दुःख का भोक्ता कौन हो सके? जैसे इस समय सुख-दुःख का भोक्ता जीव है, वैसे परजन्म में भी होता है। क्या सत्यभाषणादि दया आदि क्रिया भी वर्णाश्रमियों की निष्फल होंगी? कभी नहीं॥ २ ॥

पशु मारके होम करना वेद में कहीं नहीं है, इसलिये यह खण्डन अखण्डनीय है और मृतकों का श्राद्ध भी कपोलकल्पित होने से वेदविरुद्ध पुराण मत-वालों का मत है॥ ३, ४, ५ ॥

जो वस्तु है, उसका अभाव कभी नहीं होता। तो विद्यमान जीव का अभाव कभी नहीं हो सकता। देह भस्म हो जाता है, जीव नहीं। जीव तो दूसरे शरीर में जाता है, इसलिए जो कोई ऋणादि से सुख भोग करेगा, वह दूसरे जन्म में अवश्य भोगेगा॥ ६ ॥

देह से निकलके जीव स्थानान्तर और शरीरान्तर को प्राप्त होता है, उसको पूर्वजन्म का ज्ञान कुछ भी नहीं रहता, इसलिए पुनश्च कुटुम्ब में नहीं आता॥ ७ ॥

हाँ ब्राह्मणों ने प्रेत का कर्म जीविका के लिये किया है, वेदोक्त नहीं॥ ८ ॥

जो चारवाक आदि ने असल वेद देखे होते, तो वेद की निन्दा कभी न करते। भाँड, धूर्त्त और निशाचरवत् पुरुष टीकाकार हुए हैं, उन्हीं की धूर्त्तता है, वेद की नहीं। परन्तु शोक है चारवाक, आभाणक, बौद्ध और जैनियों पर कि इन्होंने मूल वेद भी न सुने, न देखे और न किसी विद्वान् से पढ़े, इसीलिए भ्रष्ट टीका और वाममार्गियों की लीला देखके वेदों से विरोध करके, नष्ट-भ्रष्ट बुद्धि होकर वेदों की निन्दा करने लगे हैं। यही वाममार्गियों की दुष्ट चेष्टा चारवाक, बौद्ध और जैनों

के होने का कारण है, क्योंकि चारवाक आदि भी वेदों का सत्य अर्थ [नहीं जान सके]॥ ९ ॥

भला! विचार करना चाहिए कि स्त्री से अश्व के उपस्थ ग्रहण आदि लीला, उससे समागम कराना और यजमान की कन्या से हाँसी-ठठ्ठा आदि कराना और मांस का खाना आदि टीकाकारों की धूर्तता है, वेद की नहीं। सिवाय वाममार्गी लोगों के अन्य भ्रष्ट, वेदार्थ से विपरीत, अशुद्ध व्याख्यान कौन करता? ॥ १०। ११ ॥

यही चारवाक बौद्धों के होने का कारण है, क्योंकि बौद्ध लोगों ने चारवाकों में से बहुत-सा चारवाकों का मत और थोड़ा-सा अपना भी गाँठ का लगाया है, इसी से बौद्धों की शाखा पृथक् चली है।

अब जो चारवाकादिकों में भेद है, सो लिखते हैं —

ये चारवाकादि बहुत सी बातों में एक हैं परन्तु चारवाक देह की उत्पत्ति के साथ जीवोत्पत्ति और उसके नाश के साथ ही जीवन का भी नाश मानता है। पुनर्जन्म और परलोक को नहीं मानता। एक प्रत्यक्ष प्रमाण के विना अनुमानादि प्रमाणों को भी नहीं मानता। चारवाक का अर्थ — जो बोलने में **प्रगल्भ** और विशेषार्थ **वैतण्डिक** होता है। और बौद्ध-जैन प्रत्यक्षादि चारों प्रमाण, अनादि जीव, पुनर्जन्म, परलोक और मुक्ति को भी मानते हैं। इतना ही चारवाक से बौद्ध और जैनियों का भेद है परन्तु नास्तिकता, वेद ईश्वर की निन्दा, परमतद्वेष, छः यतना और जगत् का कर्त्ता कोई नहीं, इत्यादि बातों में सब एक ही हैं। यह चारवाक का मत संक्षेप से दर्शा दिया है।

अब बौद्धमत के विषय में संक्षेप से लिखते हैं—

कार्य्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकात्।
अविनाभावनियमो दर्शनान्तरदर्शनात्॥

[सर्वदर्शनसंग्रह बौद्धदर्शन]

'कार्य्यकारणभाव' अर्थात् कार्य्य के दर्शन से कारण और कारण के दर्शन से कार्य्यादि का साक्षात्कार प्रत्यक्ष से शेष में अनुमान होता है, इसके विना प्राणियों के सम्पूर्ण व्यवहार पूर्ण नहीं हो सकते, इत्यादि लक्षण से अनुमान को अधिक मानकर चारवाक से भिन्न शाखा बौद्धों

की हुई, अन्य बहुत-सी बातें चारवाकों की ली हैं। बौद्ध चार प्रकार के होते हैं—

एक 'माध्यमिक', दूसरा 'योगाचार', तीसरा 'सौत्रान्तिक' और चौथा 'वैभाषिक'। '**बुद्ध्या निर्वर्त्तते सः बौद्धः**' जो बुद्धि से सिद्ध हो अर्थात् जो-जो बात अपनी बुद्धि में आवे उस-उस को माने और जो न आवे उसको नहीं मानते।

इनमें से 'माध्यमिक' सर्वशून्य मानता है। अर्थात् जितने पदार्थ हैं, वे सब 'शून्य' हैं अर्थात् आदि में नहीं होते, अन्त में नहीं रहते, मध्य में जो प्रतीत होता है वह भी प्रतीत समय में है, पश्चात् शून्य हो जाता है। जैसे उत्पत्ति के पूर्व घट नहीं था, प्रध्वंस के पश्चात् नहीं रहता और घटज्ञान समय में भासता और पदार्थान्तर में ज्ञान जाने से घटज्ञान नहीं रहता, इसलिए शून्य ही एक तत्त्व है, ऐसा मानता है।

दूसरा 'योगाचार' जो बाह्य शून्य मानता है। अर्थात् पदार्थ भीतर ज्ञान में भासते हैं, बाहर नहीं। जैसे घट का ज्ञान आत्मा में है तभी मनुष्य कहता है कि ''यह घट है'', जो भीतर ज्ञान न हो तो नहीं कह सकता, ऐसा मानता है।

तीसरा 'सौत्रान्तिक' जो बाहर अर्थ का अनुमान मानता है, क्योंकि बाहर कोई पदार्थ साङ्गोपाङ्ग प्रत्यक्ष नहीं होता किन्तु एकदेश प्रत्यक्ष होने से शेष में अनुमान किया जाता है, इसका ऐसा मत है।

चौथा 'वैभाषिक' है, उसका मत बाहर पदार्थ प्रत्यक्ष होता है, भीतर नहीं। जैसे '**अयं नीलो घटः**' इस प्रतीति में नीलयुक्त घटाकृति बाहर प्रतीत होती है, यह ऐसा मानता है। यद्यपि इनका आचार्य्य बुद्ध उपदेष्टा जनानेवाला एक था तथापि सुननेवाले पुरुषों और शिष्यों के बुद्धिभेद से चार प्रकार शाखा हो गई है। जैसे सूर्य के अस्त होने में जार पुरुष जारकर्म, चोर चौरीकर्म और पूर्ण विद्वान् सत्य आचरण करते हैं। समय एक और अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार भिन्न-भिन्न चेष्टा करते हैं।

अब इन पूर्वोक्त चारों में 'माध्यमिक'—सबको क्षणिक मानता है। अर्थात् क्षण-क्षण में बुद्धि का परिणाम होने से जो पूर्व क्षण में ज्ञात वस्तु था, वैसा ही दूसरे क्षण में नहीं रहता, इसलिए सबको क्षणिक

मानना चाहिए, ऐसे मानता है।

दूसरा 'योगाचार' जो-जो प्रवृत्ति है सो-सो सब दुःखरूप है, क्योंकि प्राप्ति में संतुष्ट कोई भी नहीं होता। एक की प्राप्ति में दूसरे अप्राप्तों की इच्छा बनी ही रहती है, इस प्रकार मानता है।

तीसरा 'सौत्रान्तिक'—सब पदार्थ अपने-अपने लक्षणों से लक्षित होते हैं, जैसे गाय के चिह्नों से गाय और घोड़े के चिह्नों से घोड़ा ज्ञात होता है, वैसे लक्षण लक्ष्य में सदा रहते हैं, ऐसा कहता है।

चौथा 'वैभाषिक'—शून्य को एक पदार्थ मानता है। प्रथम माध्यमिक सबको शून्य मानता था, उसी का पक्ष वैभाषिक का भी है, इत्यादि बौद्धों में बहुत-से विवाद पक्ष हैं। इस प्रकार चार प्रकार की भावना मानते हैं।

उत्तर—जो सब शून्य हो तो शून्य का जाननेवाला शून्य नहीं हो सकता और जो सब शून्य होवे तो शून्य को शून्य नहीं जान सके, इसलिए शून्य का ज्ञाता और ज्ञेय शून्य दो पदार्थ सिद्ध होते हैं।

और जो योगाचार बाह्य-शून्यत्व मानता है तो पर्वत इसके भीतर होना चाहिये। जो कहे कि पर्वत भीतर है तो उसके हृदय में पर्वत के समान अवकाश कहाँ है? इसलिए बाहर पर्वत है और पर्वतज्ञान आत्मा में रहता है।

सौत्रान्तिक किसी पदार्थ को प्रत्यक्ष नहीं मानता, तो वह आप स्वयं और उसका वचन भी अनुमेय होना चाहिये, प्रत्यक्ष नहीं। जो प्रत्यक्ष न हो तो '**अयं घटः**' यह प्रयोग न होना चाहिये, किन्तु '**अयं घटैकदेशः**' यह घड़ा का एक देश है और एक देश का नाम घड़ा नहीं, किन्तु समुदाय का नाम घट है। 'यह घड़ा है' वह प्रत्यक्ष है, अनुमेय नहीं, क्योंकि सब अवयवों में अवयवी एक है, उसके प्रत्यक्ष होने से सब घट के अवयव भी प्रत्यक्ष होते हैं, अर्थात् सावयव घट प्रत्यक्ष होता है।

चौथा वैभाषिक जो बाह्य पदार्थों को प्रत्यक्ष मानता है, वह भी ठीक नहीं। क्योंकि जहाँ ज्ञाता और ज्ञान होता है, वहीं प्रत्यक्ष होता है। अर्थात् आत्मा में सबका प्रत्यक्ष होता है। यद्यपि प्रत्यक्ष का विषय बाहर

होता है, तदाकार ज्ञान आत्मा को होता है। वैसे जो क्षणिक पदार्थ और उसका ज्ञान क्षणिक हो तो 'प्रत्यभिज्ञा' अर्थात् 'मैंने वह बात की थी' अथवा 'वह चीज देखी थी' स्मरण न होना चाहिये, परन्तु पूर्व दृष्ट-श्रुत का स्मरण होता है, इसलिये क्षणिकवाद भी ठीक नहीं।

जो सब दु:ख ही हो और सुख न हो तो सुख की अपेक्षा के विना दु:ख सिद्ध नहीं हो सकता, जैसे रात्रि की अपेक्षा से दिन और दिन की अपेक्षा से रात्रि होती है, इसलिये सबको दु:ख मानना ठीक नहीं।

जो स्वलक्षण ही मानें तो नेत्र रूप का लक्षण है और रूप लक्ष्य है जैसे घट का रूप। घट के रूप का लक्षण चक्षु, लक्ष्य से भिन्न है और गन्ध पृथिवी से अभिन्न है, इसी प्रकार भिन्नाऽभिन्न लक्ष्य लक्षण मानना चाहिये।

शून्य का उत्तर जो पूर्व दिया है वही अर्थात् शून्य का जाननेवाला शून्य से भिन्न होता है।

सर्वस्य संसारस्य दु:खात्मकत्वं सर्वतीर्थङ्करसंम्मतम्॥

[बौद्धदर्शन]

[सब संसार दु:खमय है, यह सब तीर्थंकरों का मत है।] जिनको बौद्ध तीर्थंकर मानते हैं, उन्हीं को जैन भी मानते हैं, इसीलिये ये दोनों एक हैं। और पूर्वोक्त 'भावनाचतुष्टय' अर्थात् चार भावनाओं से सकल वासनाओं की निवृत्ति से शून्यरूप 'निर्वाण' अर्थात् मुक्ति मानते हैं। अपने शिष्यों को 'योग' और 'आचार' का उपदेश करते हैं—गुरु के वचन का प्रमाण करना, अनादि बुद्धि में वासना होने से बुद्धि ही अनेकाकार भासती है। और चित्तचैत्तात्मक स्कन्ध पांच प्रकार का मानते हैं—**रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कारसंज्ञकः॥** [बौद्धदर्शन]

उनमें से प्रथम स्कन्ध—जो इन्द्रियों से रूपादि विषय ग्रहण किया जाता है, वह 'रूपस्कन्ध'। (दूसरा) आलयविज्ञान, प्रवृत्ति अर्थात् जिसमें रूपादि विषय हैं उनका विज्ञान-प्रवृत्ति का जाननारूप व्यवहार को 'विज्ञानस्कन्ध'। (तीसरा) रूपस्कन्ध और विज्ञानस्कन्ध से उत्पन्न हुआ सुख-दु:ख आदि प्रतीतिरूप व्यवहार को 'वेदनास्कन्ध'। (चौथा) गौ आदि संज्ञा का सम्बन्ध नामी के साथ मानने रूप को 'संज्ञास्कन्ध'।

(पाँचवाँ) वेदनास्कन्ध से रागद्वेषादि क्लेश और क्षुधा-तृषादि उपक्लेश, मद, प्रमाद, अभिमान, धर्म और अधर्मरूप व्यवहार को 'संस्कारस्कन्ध' मानते हैं। सब संसार को दु:खरूप, दु:ख का घर और दु:ख का साधनरूप भावना करके संसार से छूटना, चारवाकों से अधिक मुक्ति, अनुमान और जीव को मानना, बौद्ध मानते हैं।

देशना लोकनाथानां सत्त्वाशयवशानुगाः।
भिद्यन्ते बहुधा लोके उपायैर्बहुभिः किल॥ १॥
गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभयलक्षणा।
भिन्ना हि देशनाऽभिन्ना शून्यता द्वयलक्षणा॥ २॥
द्वादशायतनपूजा श्रेयस्करीति बौद्धा मन्यन्ते—
अर्थानुपाद्य बहुशो द्वादशायतनानि वै।
परितः पूजनीयानि किमन्यैरिह पूजितैः॥ ३॥
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा कर्मेन्द्रियाणि च।
मनो बुद्धिरिति प्रोक्तं द्वादशायतनं बुधैः॥ ४॥ [बौद्धदर्शन]

अर्थ—जो ज्ञानी, विरक्त **जीवन्मुक्त** लोकों के नाथ, बुद्ध आदि तीर्थंकरों के पदार्थों के स्वरूप जाननेवाला उपदेशक जो कि भिन्न-भिन्न पदार्थों का है, जिसको बहुत से भेद, बहुत से उपायों से कहा है, उसको मानना॥ १॥

बड़े गम्भीर और प्रसिद्ध भेद से कहीं-कहीं गुप्त और प्रकटता से भिन्न-भिन्न गुरुओं के उपदेश जो कि शून्य लक्षणयुक्त पूर्व कह आये, उनको मानना॥ २॥

जो द्वादशायतन पूजा है, वही मोक्ष करने वाली है—उस पूजा के लिये बहुत से द्रव्यादि पदार्थों को प्राप्त होके 'द्वादशायतन' अर्थात् बारह प्रकार के स्थान विशेष बनाके सब प्रकार से पूजा करनी चाहिये, अन्य की पूजा करने से क्या प्रयोजन?॥ ३॥

द्वादशायतन पूजा यह है:—पाँच 'ज्ञानेन्द्रिय' अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नासिका; पाँच 'कर्मेन्द्रिय' अर्थात् वाक्, हस्त, पग, उपस्थ और गुह्य, मन और बुद्धि इन ही का 'सत्कार' अर्थात् इनको आनन्द में प्रवृत्त रखना बौद्धों का मत है॥ ४॥

उत्तर—जो सब संसार दु:खरूप होता तो किसी जीव की प्रवृत्ति न होनी चाहिये। संसार में जीवों की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दीखती है, इसलिये सब संसार दु:खरूप नहीं हो सकता किन्तु इसमें सुख-दु:ख दोनों हैं। और जो बौद्ध लोग ऐसा ही सिद्धान्त मानते हैं तो खानपानादि और शरीररक्षण करने में प्रवृत्त होकर सुख क्यों मानते हैं? जो कहें कि हम प्रवृत्त तो होते हैं परन्तु इसको दु:ख ही मानते हैं तो यह कथन ही सम्भव नहीं। क्योंकि जीव सुख जानकर प्रवृत्त और दु:ख जानके निवृत्त होता है। संसार में धर्मक्रिया, विद्या, सत्सङ्गादि सब व्यवहार सुखकारक हैं।

जो पाँच स्कन्ध कहे हैं, वे भी अपूर्ण हैं। क्योंकि ऐसे जो स्कन्ध विचारने लगें तो एक-एक के अनेक भेद हो सकते हैं।

जिन तीर्थङ्करों को उपदेशक और लोकनाथ मानते हैं, अनादि ईश्वर को नहीं मानते तो उन्होंने उपदेश कहाँ से पाया? जो कहो कि स्वयं प्राप्त हुए तो कारण के विना कार्य्य नहीं हो सकता। न इस समय उपदेश के विना किसी को ज्ञान हो सकता है और जो होता है तो तुम और अन्य को भी हो जायगा। उपदेशक बुद्ध आदि की क्या आवश्यकता है॥ १॥

जो शून्यरूप ही अद्वैत उपदेश बौद्धों का है तो विद्यमान वस्तु शून्यरूप कभी नहीं होता; हां, सूक्ष्म कारणरूप तो हो जाता है।

जो द्रव्यों के उपार्जन से पूर्वोक्त द्वादशायतनपूजा मोक्ष का साधन कहा तो दश प्राण और ग्यारहवें जीव की पूजा क्यों नहीं करते? और जब इन्द्रिय और अन्त:करण की पूजा मोक्षप्रद है तो विषयीजन और बौद्धों में क्या भेद रहा? फिर मुक्ति कहाँ?

पूर्व सब में दु:खरूप भावना की और फिर द्वादशायतनपूजा लगाई। इसलिये इनका मत सर्वांश सत्य नहीं।

'विवेकविलास' ग्रन्थ में बौद्धों का मत इस प्रकार कहा है—

बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभङ्गुरम्।
आर्य्यसत्त्वाख्यया तत्त्वचतुष्टयमिदं क्रमात्॥ १॥
दु:खमायतनं चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः॥ २॥

दु:खं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्त्तिताः।
विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च॥ ३॥
पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषयाः पञ्च मानसम्।
धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि तु॥ ४॥
रागादीनां गणो यस्मात् समुदेति नृणां हृदि।
आत्मात्मीयस्वभावाख्यः स स्यात्समुदयः पुनः॥ ५॥
क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति या वासना स्थिरा।
स मार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते॥ ६॥
प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणद्वितयं तथा।
चतु:प्रस्थानिका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः॥ ७॥
अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहु मन्यते।
सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः॥ ८॥
आकारसहिता बुद्धिर्योगाचारस्य संमता।
केवलां संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः॥ ९॥
रागादिज्ञानसन्तानवासनाच्छेदसम्भवा।
चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता॥ १०॥
कृत्तिः कमण्डलुर्मौण्ड्यं चीरं पूर्वाह्णभोजनम्।
संघो रक्ताम्बरत्वं च शिश्रिये बौद्धभिक्षुभिः॥ ११॥

[बौद्धदर्शन श्लोक ५-१३। श्लोक १-२]

अर्थ—बौद्धों का सुगतदेव बुद्ध भगवान् पूजनीय देव और जगत् क्षणभंगुर, आर्य्य पुरुष और आर्य्या स्त्री तथा तत्त्वों की 'आख्या' संज्ञादि प्रसिद्धि ये चार तत्त्व बौद्धों में मन्तव्य पदार्थ हैं॥ १॥

इस विश्व को 'दु:ख' का घर जाने, तदनन्तर 'समुदय' अर्थात् उन्नति होती है। और 'मार्ग', इनकी व्याख्या क्रम से सुनो॥ २॥

संसार में दु:ख ही है, जो पञ्चस्कन्ध पूर्व कह आये हैं उनको जानना॥ ३॥

पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, उनके शब्दादि विषय पाँच और मन-बुद्धि-अन्त:करण, धर्म का स्थान ये द्वादश हैं॥ ४॥

जो मनुष्यों के हृदय में रागद्वेषादि समूह की उत्पत्ति होती है वह

'समुदय' और जो आत्मा, आत्मा के सम्बन्धी और स्वभाव है वह 'आख्या', इन्हीं से फिर समुदय होता है॥ ५ ॥

सब संस्कार क्षणिक हैं जो यह वासना स्थिर होना, वह बौद्धों का 'मार्ग' है और वही शून्य तत्त्व शून्यरूप हो जाना 'मोक्ष' है॥ ६ ॥

बौद्ध लोग प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण मानते हैं। चार प्रकार के इनके भेद हैं—वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक॥ ७ ॥

इनमें से 'वैभाषिक' ज्ञान में जो अर्थ है, उसीको विद्यमान मानता है। क्योंकि जो ज्ञान में नहीं है, उसका होना वह सिद्ध पुरुष नहीं मान सकता। और 'सौत्रान्तिक' भीतर को प्रत्यक्ष पदार्थ मानता है, बाहर नहीं॥ ८ ॥

'योगाचार' आकारसहित विज्ञानयुक्त बुद्धि को मानता है और 'माध्यमिक' केवल अपने में पदार्थों का ज्ञानमात्र मानता है, पदार्थ को नहीं मानता॥ ९ ॥

और रागादि-ज्ञान के प्रवाह की वासना के नाश से उत्पन्न हुई मुक्ति चारों बौद्धों की है॥ १० ॥

मृगादि का चमड़ा, कमण्डलु, मूंड मुंडाये, वल्कल वस्त्र धारण, पूर्वाह्ण अर्थात् नव बजे से पूर्व भोजन, अकेला न रहै, रक्त वस्त्र का धारण, यह बौद्धों के साधुओं का वेश है॥ ११ ॥

उत्तर—जो बौद्धों का सुगत बुद्ध ही देव है, तो उसका गुरु कौन था? जो विश्व क्षणभङ्ग हो, तो चिरदृष्ट पदार्थ का 'यह वही है' ऐसा स्मरण न होना चाहिये। जो क्षणभङ्ग होता, तो वह पदार्थ ही नहीं रहता, पुनः स्मरण किसका होवे?॥ १ ॥

जो क्षणिकवाद ही बौद्धों का मार्ग है तो इनका मोक्ष भी क्षणभङ्ग होगा।। जो ज्ञान से युक्त अर्थ द्रव्य हो तो जड़ द्रव्य में भी ज्ञान होना चाहिये, इसलिये ज्ञान में अर्थ का प्रतिबिम्ब सा रहता है। जो भीतर ज्ञान में द्रव्य होवे तो बाहर न होना चाहिये और वह चलनादि क्रिया किस पर करता है? बाहर दीखता है, वह मिथ्या कैसे हो सकता है? जो आकार से सहित बुद्धि होवे तो दृश्य होना चाहिये। जो केवल ज्ञान ही हृदय में आत्मस्थ होवे, बाह्यज्ञेय पदार्थों को केवल ज्ञान ही माना जाय, तो ज्ञेय

के विना ज्ञान ही नहीं हो सकता।। जो वासनाच्छेद ही मुक्ति है, तो सुषुप्ति में भी मुक्ति माननी चाहिये। यह संक्षेप से बौद्ध मत का विषय लिखा है।

यहाँ से आगे जैनमत का वर्णन है, इसको जैन लोग मानते हैं।

प्रकरणरत्नाकर १ भाग, नयचक्रसार में निम्नलिखित बातें लिखी हैं—

बौद्ध लोग समय-समय में नवीनपन से (१) आकाश, (२) काल, (३) जीव, (४) पुद्गल, ये चार द्रव्य मानते हैं और जैनी लोग धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल ये छः द्रव्य मानते हैं। इनमें काल की अस्तिकायता नहीं और ऐसा भी मानते हैं कि काल उपचार से द्रव्य है, वस्तुतः नहीं।

उनमें से 'धर्मास्तिकाय' जो गतिपरिणामीपन से परिणाम को प्राप्त हुआ जीव और पुद्गल, इनकी गति के समीप से स्तम्भन करने का हेतु है वह धर्मास्तिकाय, और वह असंख्य प्रदेश परिमाण और लोक में व्यापक है।

और दूसरा 'अधर्मास्तिकाय' यह है कि जो स्थिरता से परिणामी हुए जीव तथा पुद्गल की स्थिति के आश्रय का हेतु है।

तीसरा 'आकाशास्तिकाय' उसको कहते हैं कि जो सब द्रव्यों का आधार जिसमें अवगाहन, प्रवेश, निर्गम आदि क्रिया करनेवाले जीव तथा पुद्गलों को अवगाहन का जो हेतु और सर्वव्यापी है।

चौथा 'पुद्गलास्तिकाय' यह है कि जो कारणरूप सूक्ष्म, नित्य, एकरस, वर्ण, गंध, स्पर्श, कार्य का लिङ्ग, पूरने और गलने के स्वभाववाला होता है।

पाँचवाँ 'जीवास्तिकाय' यह है कि जो चेतनालक्षण ज्ञान-दर्शन में उपयुक्त, अनन्त पर्यायों से परिणामी होनेवाला कर्त्ता भोक्ता है।

और छठा 'काल' यह है कि जो पूर्वोक्त पंचास्तिकायों का परत्व-अपरत्व, नवीन-प्राचीनता का चिह्नरूप प्रसिद्धि वर्त्तमानरूप पर्यायों से युक्त है, वह काल कहाता है।

समीक्षक—जो बौद्धों ने चार द्रव्य प्रतिसमय में नवीन-नवीन माने हैं, वे झूठे हैं, क्योंकि आकाश, काल, जीव और परमाणु, नये पुराने कभी नहीं हो सकते। क्योंकि ये अनादि और कारणरूप से अविनाशी हैं, पुनः नया और पुरानापन कैसे घट सकता है? और जैनियों का मानना भी ठीक नहीं। क्योंकि धर्माऽधर्म द्रव्य नहीं हो सकते किन्तु जीव के गुण हैं, ये दोनों जीवास्तिकाय में आ जाते हैं; इसलिये आकाश, परमाणु, जीव और काल मानते तो ठीक था।

और जो नव द्रव्य वैशेषिक में माने हैं वे ठीक हैं, क्योंकि पृथिव्यादि पांच तत्त्व, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव पृथक्-पृथक् पदार्थ निश्चित हैं। एक जीव को चेतन मानकर ईश्वर को न मानना, जैन-बौद्धों की मिथ्या पक्षपात की बात है।

अब जो बौद्ध और जैनी लोग सप्तभङ्गी न्याय, स्याद्वाद मानते हैं, वह यह है। देखो **प्रथम भंग**—

'सन् घटः' इसको प्रथम भङ्ग कहते हैं, क्योंकि घट अपनी वर्त्तमानता से युक्त अर्थात् घड़ा है, इसने अभाव का विरोध किया है।

दूसरा भङ्ग—'असन् घटः' घड़ा नहीं है, प्रथम घट के भाव से, यह घड़ा के असद्भाव से दूसरा भङ्ग है।

तीसरा भङ्ग यह है कि **'सन्नसन् घटः'** अर्थात् यह घड़ा तो है परन्तु यह पट नहीं, क्योंकि उन दोनों से पृथक् हो गया।

और **'घटोऽघटः'** यह **चौथा भङ्ग** कहाता है। जैसे **'अघटः पटः'** दूसरे पट के अभाव की अपेक्षा अपने में होने से घट अघट कहाता है, युगपत् उसकी दो संज्ञा अर्थात् घट और अघट भी है।

पाँचवाँ भङ्ग यह है कि जो घट को घट कहने को योग्य अर्थात् घट को पट कहने के अयोग्य। उसमें घटपन वक्तव्य है। और पटपन अवक्तव्य है।

छठा भङ्ग यह है कि जो कुम्भ नहीं है, वह कहने योग्य भी नहीं और जो है वह कहने के योग्य भी है।

और **सातवाँ भङ्ग** यह है कि जो कहने को इष्ट है परन्तु वह नहीं है और कहने के योग्य भी घट नहीं, यह सप्तम भङ्ग कहाता है। इसी

प्रकार—

स्यादस्ति जीवोऽयं प्रथमो भङ्गः ॥ १ ॥
स्यान्नास्ति जीवो द्वितीयो भङ्गः ॥ २ ॥
स्यादवक्तव्यो जीवस्तृतीयो भङ्गः ॥ ३ ॥
स्यादस्ति नास्तिरूपो जीवश्चतुर्थो भङ्गः ॥ ४ ॥
स्यादस्ति अवक्तव्यो जीवः पञ्चमो भङ्गः ॥ ५ ॥
स्यान्नास्ति अवक्तव्यो जीवः षष्ठो भङ्गः ॥ ६ ॥
स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यो जीव इति सप्तमो भङ्गः ॥ ७ ॥

[तुलना—प्रकरण रत्नाकर भाग-१; सर्वदर्शनसंग्रह आर्हतदर्शन]

अर्थ—''है जीव'' ऐसा प्रकथन होवे तो जीव के विरोधी जड़ पदार्थों का जीव में अभावरूप भङ्ग प्रथम कहाता है।

दूसरा भङ्ग यह है कि ''नहीं है जीव जड़ में'' ऐसा कथन भी होता है, इससे यह दूसरा भङ्ग कहाता है।

''जीव कहने के योग्य नहीं'' यह तीसरा भङ्ग।

''जब जीव शरीर धारण करता है तब प्रसिद्ध और जब शरीर से पृथक् होता है तब अप्रसिद्ध रहता है'' ऐसा कथन होवे, उसको चतुर्थ भङ्ग कहते हैं।

''जीव है परन्तु कहने के योग्य नहीं'' जो ऐसा कथन है, उसको पञ्चम भङ्ग कहते हैं।

''जीव प्रत्यक्ष प्रमाण से कहने में नहीं आता, इसलिए चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं है'' जो ऐसा व्यवहार है, उसको छठा भङ्ग कहते हैं।

''एक काल में जीव का अनुमान से होना और दृश्यपन में न होना और एक-सा न रहना किन्तु क्षण-क्षण में परिणाम को प्राप्त होना, अस्ति-नास्ति न होवे और नास्ति-अस्ति न होवे,'' यह सातवाँ भङ्ग कहाता है।

इसी प्रकार नित्यत्व सप्तभङ्गी, अनित्यत्व सप्तभङ्गी तथा सामान्य धर्म, विशेष धर्म, गुण और पर्य्यायों की प्रत्येक वस्तु में सप्तभङ्गी होती है। वैसे द्रव्य, गुण, स्वभाव और पर्य्यायों के अनन्त होने से सप्तभङ्गी भी अनन्त होती है। ऐसा बौद्धों और जैनियों का 'स्याद्वाद' और 'सप्तभङ्गी

न्याय' कहाता है।

समीक्षक—यह कथन एक अन्योऽन्याभाव में साधर्म्य और वैधर्म्य में चरितार्थ हो सकता है। इस सरल प्रकरण को छोड़कर कठिन जाल-रचना केवल अज्ञानियों के फसाने के लिए होती है। देखो! जीव का अजीव में और अजीव का जीव में अभाव रहता ही है। जैसे जीव और जड़ के वर्त्तमान होने से साधर्म्य और चेतन तथा जड़ होने से वैधर्म्य अर्थात् जीव में चेतनत्व (अस्ति) है और जड़त्व (नास्ति) नहीं है। इसी प्रकार जड़ में जड़त्व है और चेतनत्व नहीं है। इससे गुण-कर्म-स्वभाव के समानधर्म, और विरुद्धधर्म के विचार से सब इनका सप्तभङ्गी और स्याद्वाद सहजता से समझ में आता है, फिर इतना प्रपञ्च बढ़ाना किस काम का है? इसमें बौद्ध और जैनों का एक मत है। थोड़ा सा ही पृथक् होने से भिन्नभाव भी हो जाता है।

इसके आगे केवल जैनमत का वर्णन है—

चिदचिद् द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम्।
उपादेयमुपादेयं हेयं हेयं च कुर्वतः॥ १॥
हेयं हि कर्तृरागादि तत्कार्य्यमविवेकिनः।
उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैकलक्षणम्॥ २॥ [आर्हतदर्शन]

जैन लोग 'चित्' और 'अचित्' अर्थात् चेतन और जड़ दो ही परतत्त्व मानते हैं। उन दोनों के विवेचन का नाम 'विवेक'। जो-जो ग्रहण के योग्य है, उस-उसका ग्रहण और जो-जो त्याग करने योग्य है, उस-उसका त्याग करनेवाले को 'विवेकी' कहते हैं॥ १॥

जगत् का कर्त्ता और रागादि तथा ईश्वर ने जगत् किया है, इस अविवेकी मत का त्याग और योग से लक्षित परमज्योतिस्वरूप जो जीव है, उसका ग्रहण करना उत्तम है॥ २॥

अर्थात् जीव के विना दूसरा चेतनतत्त्व ईश्वर को नहीं मानते। 'कोई भी अनादि सिद्ध ईश्वर नहीं', ऐसा बौद्ध-जैन लोग मानते हैं।

इसमें राजा शिवप्रसाद जी 'इतिहासतिमिरनाशक' ग्रन्थ में लिखते हैं कि "इनके दो नाम हैं, एक जैन और दूसरा बौद्ध। ये पर्यायवाची शब्द हैं परन्तु बौद्धों में वाममार्गी मद्यमांसाहारी बौद्ध हैं, उनके साथ

जैनियों का विरोध है। परन्तु जो महावीर और गौतम गणधर हैं, उनका नाम बौद्धों ने बुद्ध रक्खा है और जैनियों ने गणधर और जिनवर।" इसमें जिनकी परम्परा जैनमत है उन राजा शिवप्रसादजी ने अपने 'इतिहासतिमिरनाशक' ग्रन्थ के तीसरे खण्ड [मैडिकल हॉल, बनारस मुद्रित प्रथम संस्करण सन् १८७३, पृष्ठ १०९] में लिखा है कि "स्वामी शङ्कराचार्य्य से पहले जिनको हुए कुल हजार वर्ष के लगभग गुजरे हैं सारे भारतवर्ष में बौद्ध अथवा जैनधर्म फैला हुआ था।" इस पर नोट—".....बौद्ध कहने से हमारा आशय उस मत से है, जो महावीर के गणधर गौतम स्वामी के समय तक वेदविरुद्ध सारे भारतवर्ष में फैला रहा और जिसको 'अशोक' और 'सम्प्रति' महाराज ने माना, उससे जैन बाहर किसी तरह नहीं निकल सकते।...जिन, जिससे जैन निकला और बुद्ध, जिससे बौद्ध निकला दोनों पर्याय शब्द हैं। कोश में दोनों का अर्थ एक ही लिखा है और गौतम को दोनों मानते हैं। वरन् दीपवंश इत्यादि पुराने बौद्ध ग्रन्थों में शाक्यमुनि गौतम बुद्ध को अकसर महावीर ही के नाम से लिखा है। पस उसके समय में एक ही उनका मत रहा होगा।... हमने जो जैन न लिखकर गौतम के मत वालों को बौद्ध लिखा, उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि उनको दूसरे देशवालों ने बौद्ध ही के नाम से लिखा है..."।

ऐसा ही अमरकोश में भी लिखा है—

सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः।
समन्तभद्रो भगवान् मारजिल्लोकजिज्जिनः॥ १॥
षडभिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायकः।
मुनीन्द्रः श्रीधनः शास्ता मुनिः शाक्यमुनिस्तु यः॥ २॥
स शाक्यसिंहः सर्वार्थः सिद्धश्शौद्धोदनिश्च सः।
गौतमश्चार्कबन्धुश्च मायादेवीसुतश्च सः॥ ३॥

—अमरकोश कां० १। वर्ग १। श्लोक ८ से १० तक॥

अब देखो! 'बुद्ध' 'जिन' और 'बौद्ध तथा जैन' एक के नाम हैं वा नहीं? क्या अमरसिंह भी 'बुद्ध' 'जिन' के एक लिखने में भूल गया है?

जो अविद्वान् जैन हैं, वे न तो अपना जानते और न दूसरे का, केवल हठमात्र से बड़ाया करते हैं, परन्तु जो जैनों में विद्वान् हैं, वे सब जानते हैं कि 'बुद्ध' और 'जिन' तथा 'बौद्ध' और 'जैन' पर्यायवाची हैं।

उन्हीं बौद्धों और जैनियों का नाममात्र भेद है, परन्तु जो मांसाहारी बौद्ध हैं, उनसे जैन भिन्न हैं। और चारवाकों का मत लेके जैनमत प्रवृत्त हुआ है। और कुछ विरोध भी हैं अर्थात् जैसे चारवाक और बौद्ध ईश्वर को नहीं मानते और जगत् को अनादिकाल से स्वभाव से सिद्ध तथा प्रत्यक्ष और अनुमान को मानते हैं।

जैनी लोग जीव को अनादि और क्षणिकवाद से विरुद्ध मानते हैं। जीव कर्म का कर्त्ता, स्वयंफल भोक्ता है। फलप्रदाता और जगत् का कर्त्ता कोई नहीं। कर्मक्षय से मुक्ति, दया, क्षमा को धर्म मानते हैं। और अपने तीर्थङ्करों ही को केवली मुक्तिप्राप्त और परमेश्वर मानते हैं, अनादि परमेश्वर कोई नहीं। सर्वज्ञ, वीतराग, अर्हन्, केवली, तीर्थकृत, जिन ये छः नास्तिकों के देवताओं के नाम हैं।

अनादि देव का स्वरूप चन्द्रसूरि ने 'आप्तनिश्चयालङ्कार' ग्रन्थ में लिखा है—

सर्वज्ञो वीतरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः।
यथा स्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः॥ १॥

[आर्हतदर्शन]

तथा चोक्तं तौतातितैः—

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः।
दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिङ्गं वा योऽनुमापयेत्॥ २॥
न चाऽऽगमविधिः कश्चिन्नित्यः सर्वज्ञबोधकः।
न च तत्रार्थवादानां तात्पर्यमपि कल्प्यते॥ ३॥
न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदस्तित्वं विधीयते।
न चानुवादितुं शक्यः पूर्वमन्यैरबोधितः॥ ४॥
अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान्।
कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते॥ ५॥

अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रतीयते।
प्रकल्प्येत कथं सिद्धिरन्योऽन्याश्रययोस्तयोः॥ ६॥
सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता।
कथं तदुभयं सिध्येत् सिद्धमूलान्तरादृते॥ ७॥
असर्वज्ञप्रणीतात्तु वचनान्मूलवर्जितात्।
सर्वज्ञमवगच्छन्तस्तद्वाक्योक्तं न जानते॥ ८॥
सर्वज्ञसदृशं किञ्चिद्यदि पश्येम सम्प्रति।
उपमानेन सर्वज्ञं जानीयाम ततो वयम्॥ ९॥
उपदेशोऽपि बुद्धस्य धर्माधर्मादिगोचरः।
अन्यथा नोपपद्येत सर्वज्ञं यदि नाभवत्॥ १०॥

[आर्हतदर्शन]

अर्थ—जो रागादि दोषों को जीतनेहारा सर्वज्ञ सबका ज्ञाता, तीन लोक में पूजित, यथार्थवादी अर्हत्देव है वही परमेश्वर है॥ १॥

जो सर्वज्ञ अनादि ईश्वर होता, तो उसको हम लोग देखते नहीं हैं, इसलिये ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं और उसका एक देश वा चिह्न को भी हम लोग नहीं देखते हैं, जिससे अनुमान किया जाय॥ २॥

और सर्वज्ञ का बोध करानेवाला कोई आगम अर्थात् किसी शास्त्र का विधि भी नहीं है, इसलिए ईश्वर में शब्दप्रमाण भी नहीं। और उसमें अर्थवाद भी नहीं घटता, क्योंकि जो कोई वस्तु हो उसके गुण-दोष जानकर स्तुति वा निन्दा होवे, तो अर्थापत्ति भी ईश्वर को सिद्ध करे॥ ३॥

इसलिए अर्थापत्ति से भी ईश्वर सिद्ध नहीं होता॥

और न अन्यार्थ प्रधान लिङ्गों से ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध होता है, जैसा कि रचना देखकर रचनावाले का अनुमान करते हैं। ईश्वर का अनुवाद भी कोई नहीं कर सकता, क्योंकि जो पूर्व कथित ईश्वर होता, तो उसका अनुवाद हो सकता॥ ४॥

और जो सर्वज्ञ आदिमान् है वह अनादि शास्त्र का वा जगत् का कर्त्ता नहीं हो सकता, जो कृत्रिम असत्य जगत् है, उससे अकृत्रिम सत्य ईश्वर सिद्ध क्योंकर हो सकता है॥ ५॥

जो कोई कहे कि उसी के वचनों से अन्य जीव लोग ईश्वर को

जानते हैं तो 'ईश्वर के वचन से ईश्वर की सिद्धि और ईश्वर से वचन की' यह अन्योऽन्याश्रय दोष आता है। क्योंकि सर्वज्ञोक्तवचन से वाक्य सत्य और उससे ईश्वर अस्तित्व सिद्ध करना है, यह दोनों एक दूसरे की सिद्धि में अपेक्षा रखते हैं, उसके विना एक-दूसरे की सिद्धि नहीं होती॥ ६-७॥

जो मूलवर्जित असर्वज्ञप्रणीतवचन से सर्वज्ञ को जानते हैं, वे उसके वाक्योक्तधर्म को नहीं जानते॥ ८॥

जो हम इस समय किसी को सर्वज्ञ के तुल्य देखें तो उपमान से सर्वज्ञ को मान सकें और उपदेश भी बुद्ध अर्थात् जानकार का धर्माधर्म लक्षणस्वरूप हो सकता है। अन्यथा अर्थात् बुद्धि के विना सर्वज्ञ नहीं हो सकता जो सर्वज्ञ हमको उपदेष्टा प्रत्यक्ष न हो तो हम धर्माधर्म नहीं जान सकें, इसलिए सर्वज्ञ तीर्थंकरों का वचन मानना 'अनादि ईश्वर कोई नहीं है'॥ ९-१०॥

इसका खण्डन—

उत्तर—यह सब प्रपञ्च की बात है। क्योंकि जो प्रथम रागादि दोषयुक्त है, वह सदा के लिए कभी नहीं छूट सकता, क्योंकि जो नैमित्तिक दोष हैं तो फिर भी निमित्त होने से हो जायेंगे और जो स्वाभाविक हैं, तो कभी न छूटेंगे। जो देशकाल से परिच्छिन्न वस्तु होता है, वह एकदेशी, और जो एकदेशी होता है, वह सर्वज्ञ नहीं। क्योंकि जो वस्तु अल्प है, उसके गुण, कर्म, स्वाभाव भी अल्प होते हैं, वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता। किन्तु जो सर्वव्यापक अनादि परमात्मा है, वही सनातन ईश्वर है॥ १॥

क्या जो वस्तु तुमको प्रत्यक्ष न हो, वह नहीं होता और जो प्रत्यक्ष है वही होता है, ऐसा नियम है ? तुम प्रत्यक्ष छः प्रकार का मानते हो। एक श्रावण, दूसरा त्वाच, तीसरा चाक्षुष, चौथा रासन, पाँचवाँ घ्राण और छठा मानस। जैसे पृथिवी के गन्धादि गुण कठिनत्वादि स्वभाव को देख के पृथिवी प्रत्यक्ष होती है, वैसे ही परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और नियम सृष्टि में रचना आदि गुण, कर्म और स्वभाव कार्यनियम देखकर सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, अनादि ईश्वर का प्रत्यक्ष करना

चाहिए। और जब जीवात्मा किसी दुष्ट वा श्रेष्ठ काम का ध्यान करता है, उस समय वह तदाकार उसके अभिमुख होता है। उसी समय उसके भीतर से दूसरी प्रेरणा अर्थात् पाप में भय, शङ्का, लज्जा और पुण्य में निर्भय, उत्साह और प्रसन्नता की रहने वाली बुद्धि होती है, वह ईश्वर की ओर से है। वहां गुण-गुणी का तादात्म्य सम्बन्ध है, इसलिये परमात्मा प्रत्यक्ष है। जैसे किसी कृत्रिम पदार्थ को देखकर, उसमें रचनाविशेष लिङ्ग को देखकर, अदृष्ट कर्त्ता को निश्चित जानना होता है। क्या यह ईश्वर में अनुमान का लिङ्ग नहीं॥ २॥

आगम अर्थात् आप्त के कहे का प्रमाण मानना चाहिये। तुम्हारे पुस्तकों में अनादि ईश्वर का निरूपण नहीं किया, सो भूल है। जो नित्य सर्वज्ञ न हो तो सादि ज्ञानयुक्त पुरुष का शरीर पालने के पदार्थ कहाँ से हो सकें ? क्योंकि शरीर का आदि अन्त होता है, इसका कर्त्ता जीव नहीं हो सकता। जो शरीरादि का कर्त्ता होता, तो शारीरिक क्रिया भी जानता कि इस आँख में कितनी नाड़ी आदि पदार्थों के संयोग-वियोग हैं, उसको जानता। जैसे सांचे में किसी धातु को ढालते हैं, तादृश पात्र बन जाता है। अथवा बीज में जैसी रचना करता है, वैसा ही अंकुर, मूल, शाखा, पत्र, पुष्प, फल उत्पन्न होता है, यह सामर्थ्य जीव का, जड़ का नहीं है क्योंकि जीव को जब शरीर प्राप्त होता है, तभी कुछ कर सकता और ज्ञान का सामर्थ्य बढा सकता है अन्यथा नहीं। तो जो अनादि ईश्वर जीव के शरीर वा बीज आदि का योग न करता, तो जगत् में कुछ भी न हो सकता। देखलो ! कितना ही कोई विद्वान् वा योगी हो, जब सुषुप्ति को प्राप्त होते हैं, तब कुछ भी भान नहीं रहता।

दूसरा—जब दुःख प्राप्त होता है, तब ज्ञान न्यून हो जाता है। जीव वा जड परमाणुओं से स्वतः भी रचनाविशेष नहीं हो सकती और यथार्थवाद भी ईश्वर में यथावत् घटता है, क्योंकि जगत् में अनन्त विद्या के यथावत् रचित कार्यों को देखने से ईश्वर प्रशंसनीय होता है। जब अन्तर्यामी ईश्वर अपने गुण, कर्म और स्वभाव का प्रकाश जीवात्मा में करे, पुनः दूसरे के सामने परमेश्वर का अनुवाद करना भी सहज है। अन्योऽन्याश्रय दोष अनित्य पदार्थ में आता है नित्य में नहीं। क्योंकि

जो साधनसाध्य हो उसी में अनवस्था आती है, नित्य में नहीं। जैसे सूर्य और प्रदीप का प्रकाशक और प्रकाश्य सूर्य और दीप होता है, दूसरा नहीं, इसी प्रकार परमेश्वर का वचन और परमेश्वर नित्य और स्वयं प्रकाश होने से अनवस्था नहीं आसकती। वैसे उपमान से भी ईश्वर सिद्ध होता है। क्योंकि परमेश्वर के सदृश परमेश्वर है वा एकदेश अथवा एक गुण, कर्म, स्वभाव तुल्य, दूसरा आकाश, न्यायाधीश आदि होते हैं, उसकी उपमा से भी ईश्वर सिद्ध होता है। इसलिये जो तीर्थंकरों को परमेश्वर मानते हो तो उनके माता पिता को उत्पन्न किसने किया था? जो कहो कि वे स्वभाव से हुये थे, तो अब भी स्वभाव से मनुष्य क्यों नहीं होते?॥ ३-१०॥

आस्तिक और नास्तिक का संवाद

इसके आगे प्रकरण रत्नाकर दूसरे भाग से जिसको बड़े-बड़े जैनियों ने अपनी सम्मति के साथ माना और मुम्बई में छपवाया है जैनियों के ईश्वरखण्डन में आस्तिक नास्तिक संवाद के प्रश्नोत्तर यहाँ लिखते हैं।

नास्तिक—ईश्वर की इच्छा से कुछ नहीं होता है, जो कुछ होता है, वह कर्म से।

आस्तिक—कर्म से जो होता है, तो कर्म किससे होता है? जो कहो जीव आदि से, तो उन्हीं के फल भोगना जीव की इच्छानुकूल है। परन्तु पाप के फल दु:ख को जीव अपनी इच्छा से नहीं भोगता, ईश्वर के भोगाने से भोगता है। जैसे चोर सुख अपनी इच्छा से भोगता है और दु:ख राजा की व्यवस्था से।

नास्तिक—ईश्वर अक्रिय है, क्योंकि जो कर्म कर्त्ता होता, तो कर्म का फल भी भोगना पड़ता।

आस्तिक—ईश्वर अक्रिय नहीं, क्योंकि चेतन और सृष्टिकर्त्ता है। जैसा तुम्हारा कृत्रिम बनावट का ईश्वर जैसा कि तुमने तीर्थङ्करों को जीव से ईश्वर बने हुये माना है, वैसे कदाचित् होने वाले इस प्रकार के ईश्वर को कोई विद्वान् नहीं मान सकता। क्योंकि जो निमित्तों से ईश्वर बने तो अनित्य हो जाय। क्योंकि ईश्वर बने के पहले जीव था, पश्चात् किसी निमित्त से ईश्वर बना हो, वह फिर भी जीव हो जायगा। क्योंकि

यह अनादि काल से जीव था, अनन्त काल तक रहेगा। फिर बीच में ईश्वर बना, वह भी अन्त में पुन: जीव हो जायगा। इसलिये इस अनादि सिद्ध ईश्वर को मानना योग्य है। परमेश्वर पाप कभी नहीं करता। जैसे स्वाभाविक चेष्टा होती है, उसी प्रकार जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है, इसलिये जगत् का कर्त्ता ईश्वर है। स्वभाव से जगत् बनता है, तो जगत् के कारण का स्वभाव जडत्व है, वह ज्ञानपूर्वक श्रेष्ठ नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें यथायोग्य बनने का ज्ञान ही नहीं। जैसा मट्टी में घट और रूई में कपड़े बनने का स्वत: सामर्थ्य नहीं। दूसरे ज्ञान वाले के बनाने से घड़ा तथा वस्त्र बनता है।

नास्तिक—ईश्वर व्यापक नहीं है। जो व्यापक होता तो सब चेतन होता और बराबर चेतनता क्यों नहीं? ब्राह्मणादि में उत्तम, मध्यम, निकृष्टता क्यों हुई? क्योंकि सबमें ईश्वर एक-सा व्यापक है तो छोटाई बड़ाई क्यों हुई?

आस्तिक—व्याप्य और व्यापक एक नहीं, किन्तु दो होते हैं। जैसे आकाश सब में व्यापक है और सब आकाश के सदृश नहीं होता। वैसे परमेश्वर के चेतन होने से सब जडवस्तु चेतन नहीं होता। जैसे आकाश सब में बराबर है, पृथ्वी आदि के अवयव बराबर नहीं, वैसे परमेश्वर के बराबर कोई नहीं। जैसे विद्वान् अविद्वान्, धर्मात्मा अधर्मात्मा बराबर नहीं होते, वैसे विद्यादि सद्‌गुण और सत्यभाषणादि कर्म तथा सुशीलतादि स्वभाव के अधिक न्यून होने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज बड़े-छोटे माने जाते हैं। वर्णों की व्याख्या जैसी चतुर्थसमुल्लास में लिख आये हैं, वहाँ देख लो।

नास्तिक—ईश्वर ने जगत् का अधिपतित्व और जगत्रूप ऐश्वर्य किस कारण स्वीकार किया?

आस्तिक—ईश्वर ने कभी अधिपतित्व न छोड़ा था, न ग्रहण किया है, किन्तु अधिपतित्व और जगत्रूप ऐश्वर्य ईश्वर ही में है। न कभी उससे अलग हो सकता है तो ग्रहण क्या करेगा? क्योंकि अप्राप्त का ग्रहण होता है। व्याप्य से व्यापक और व्यापक से व्याप्य पृथक् कभी नहीं हो सकता। इसलिये सदैव स्वामित्व और अनन्त ऐश्वर्य

अनादि काल से ईश्वर में है। इसका ग्रहण और त्याग जीवों में घट सकता है, ईश्वर में नहीं।

नास्तिक—जो ईश्वर की रचना से सृष्टि होती है, तो माता पितादि का क्या काम? जब परमात्मा शाश्वत, अनादि, चिदानन्द, ज्ञानस्वरूप है तो जगत् के प्रपञ्च और दु:खरूप में क्यों पड़ा? ऐसा काम कोई साधारण मनुष्य भी आनन्द को छोड़, दु:ख को ग्रहण नहीं करता, तो ईश्वर ने क्यों किया?

आस्तिक—ईश्वर की सृष्टि भिन्न और मानुषी सृष्टि भिन्न होती है। इसलिये माता-पिता की आवश्यकता है। जैसे परमात्मा अनादि प्रकृति परमाणुरूप कारण से सृष्टि करता है, वैसे परमात्मा ने माता-पितारूप निमित्त कारण से उत्पत्ति का प्रबन्ध किया है। इसमें कोई दोष नहीं।

परमात्मा किसी प्रपञ्च और दु:ख में नहीं गिरता, न अपने आनन्द को छोड़ता है, क्योंकि प्रपञ्च और दु:ख में गिरना जो एकदेशी हो उसका हो सकता है; सर्वदेशी का नहीं। जो अनादि, चिदानन्द, ज्ञानस्वरूप परमात्मा जगत् को न बनावे तो अन्य कौन बना सके? जगत् बनाने का जीव में सामर्थ्य नहीं और जड़ में स्वयं बनने का भी सामर्थ्य नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि परमात्मा ही जगत् को बनाता और सदा आनन्द में रहता है। जैसे परमात्मा परमाणु रूप कारण से सृष्टि करता है वैसे माता पितारूप निमित्तकारण से भी उत्पत्ति का प्रबन्ध-नियम उसी ने किया है।

नास्तिक—ईश्वर मुक्तिपद को छोड़ जगत् में अनेकरूप पदार्थों की सृष्टिधारण और प्रलय करने के बखेड़े में क्यों पडा़?

आस्तिक—ईश्वर सदा मुक्त है। तुम्हारे तीर्थङ्करों के सदृश बन्धपूर्वक मुक्ति का होना ईश्वर में नहीं। जगत् को बनाता, धर्ता, पालनकर्त्ता और प्रलय करके भी बन्ध में नहीं पड़ता, क्योंकि बन्ध और मुक्त सापेक्ष है। जो बन्ध न हो, तो मुक्ति नहीं और मुक्ति हो, तो बन्ध नहीं। परमेश्वर में बन्ध-मोक्ष नहीं घट सकता, किन्तु सदा मुक्त है। और जो एकदेशी जीव हैं, वे ही बद्ध और मुक्त सदा हुआ करते हैं। अनन्त सर्वदेशी, सर्वव्यापक, ईश्वर बन्धन वा नैमित्तिक मुक्ति के चक्र में, जैसे कि तुम्हारे तीर्थंकर हैं, कभी नहीं पड़ता।

नास्तिक—पी हुई भांग के नशे के समान जीव अपने-अपने कर्मों के फलों को प्राप्त होता है, इसमें ईश्वर का कुछ काम नहीं।

आस्तिक—विना राजा के डाकू, चोर आदि दुष्ट मनुष्य स्वयं फांसी नहीं चढते और न कारागार में जाते, किन्तु राजा उनके कर्मों का फल देता है, वैसे ईश्वर की न्याय व्यवस्था के विना कर्मों का फल कोई भी नहीं भोग सकते, इसलिये ईश्वर का न्यायाधीश होना अवश्य है।

नास्तिक—जगत् में एक ईश्वर नहीं, किन्तु अनेक मुक्त जीव ईश्वररूप हैं।

आस्तिक—यह कहना व्यर्थ है। क्योंकि जो प्रथम बद्ध होकर मुक्त हो, तो पुनः अवश्य बन्ध में पड़ेगा, जैसे कि तुम्हारे तीर्थङ्कर। और जो सदा मुक्त है, वह कभी बन्ध में न गिरेगा। और जब बहुत से ईश्वर हैं, तो जैसे जीव अनेक होने से लड़ते भिड़ते फिरते हैं, वैसे ईश्वर भी लड़ा-भिड़ा करेंगे।

नास्तिक—हे मूढ! जगत् का कर्त्ता कोई नहीं, किन्तु जगत् स्वयंसिद्ध है।

आस्तिक—कर्त्ता के विना कोई कर्म और कर्म के विना कोई कार्य नहीं हो सकता। इसलिये ईश्वर जगत् का कर्त्ता है। जो जगत् स्वयं सिद्ध होता तो तुम्हारे खेत के गेहूं स्वयं पिसान, रोटी बन, तुम्हारे पास आकर, मुख में घुसकर, पेट में चली जाय तो विना ईश्वर के किये जगत् भी स्वयं बन जाय।

नास्तिक—ईश्वर विरक्त है वा मोहित? जो विरक्त हो तो जगत् के प्रपञ्च में क्यों पड़े? जो मोहित हो तो जगत् बनाने का सामर्थ्य ही नहीं होगा।

आस्तिक—परमेश्वर में वैराग्य वा मोह नहीं घट सकता। क्योंकि वह सर्वव्यापक, सर्वोत्तम होने से किसी से पृथक् वा किसी से राग नहीं कर सकता। ईश्वर से उत्तम वा उसको अप्राप्त कोई पदार्थ नहीं है, इसलिये किसी में मोह भी नहीं होता। वैराग्य और मोह का होना जीव

में घटता है; ईश्वर में नहीं।

नास्तिक—जो जगत् का कर्त्ता, कर्मों के फलों का दाता ईश्वर को मानोगे, तो ईश्वर प्रपञ्ची होकर दुःखी हो जायगा।

आस्तिक—दुःख अज्ञान और अधर्माचरण से होता है। परमेश्वर में ये दोनों नहीं। इसलिए परमेश्वर प्रपञ्ची नहीं। प्रपञ्ची-अप्रपञ्ची जीव होते हैं इत्यादि विचार से ईश्वर की सिद्धि होती है। जो कोई इसको नहीं मानता, वह मूढमत है। हां! तुम अपने और अपने तीर्थंकरों के समान परमेश्वर को भी अपने अज्ञान से समझते हो, सो तुम्हारी अविद्या की लीला है। जो अविद्यादि दोषों से छूटना चाहो, तो वेदादि सत्य शास्त्रों का आश्रय लेओ। क्यों भ्रम में पड़े-पड़े ठोकरें खाते हो?

अब जैनी लोग जीव को अनादि, अनन्त मानते हैं सो ठीक है, परन्तु जो जो विरुद्ध है, उस-उस को दिखलाकर खण्डन किया जायेगा। छः द्रव्यों में एक जीवद्रव्य भी जैनी लोग मानते हैं अर्थात् जगत् में जीव और अजीव दो ही पदार्थ हैं, तीसरा नहीं। ऐसा उनके केवली आचार्य तीर्थङ्कर का वचन है।

मूल—सामि अणाई अणन्ते, चउगई संसारघोरकान्तारे।
मोहाइ कम्मगुरुठिइ, विवागवसउ भमइ जीवो॥

—प्रकरणरत्नाकर भाग दूसरा (२)। षष्ठीशतक। सूत्र २॥

यह प्रकरणरत्नाकर नामक ग्रन्थ के सम्यक्त्वप्रकाश प्रकरण में गौतम और महावीर का संवाद है। इसका संक्षेप से उपयोगी यह अर्थ है कि यह संसार अनादि अनन्त है। न कभी इसकी उत्पत्ति हुई, न कभी विनाश होता है अर्थात् किसी का बनाया जगत् नहीं। सो ही आस्तिक-नास्तिक के संवाद में—हे मूढ! जगत् का कर्त्ता कोई नहीं; न कभी बना और न कभी नाश होगा।

समीक्षक—अब विचारना चाहिये कि जीव अल्प और अल्पज्ञ है। जगत् का कार्य और कारण जड़ हैं। जो तीसरा अनन्त शक्तियुक्त परमात्मा न हो तो जगत् का उत्पादन, धारण आदि कर्मों को न कर सके। अब पृथिव्यादि भूत और भूगोलों को भी जैनी लोग जीव के शरीर मानते हैं। क्योंकि काची मिट्टी सजीव है, क्षार मट्टी अजीव है, इसलिये उसमें वनस्पति नहीं उगती। वाह रे जैनी लोगो! और धन्य हैं तुम्हारे केवली तीर्थङ्कर जिनको पदार्थ विद्या में बहुत ही भ्रम था। जो पृथिव्यादि किसी एक जीव का शरीर हो तो जैसे बड़ी-बड़ी तिमिङ्गिल मच्छी जिधर चाहती, उधर जाती-आती है, वैसे पृथिवी आदि क्यों नहीं स्वेच्छित चाल चलते हैं? क्या मिठीली मट्टी में वनस्पति उगता और क्षार मट्टी में नहीं उगता? हाँ! यह तो बात है कि मीठी मट्टी के वनस्पति आदि खारी मट्टी में, खारी मट्टी के वृक्ष आदि मीठी मट्टी में नहीं होते होंगे। किन्तु अपने-अपने ठिकाने सब होते हैं।

जो संयोग से उत्पन्न होता है वह अनादि और अनन्त कभी नहीं हो सकता। और उत्पत्ति तथा विनाश हुए विना कर्म नहीं रहता। जगत् में जितने पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे सब 'संयोगज' उत्पत्ति-विनाशवाले देखे जाते हैं। पुनः जगत् उत्पन्न और विनाश वाला क्यों नहीं? इसलिये तुम्हारे तीर्थंकरों को सम्यग्बोध नहीं था। जो उनको सम्यग्ज्ञान होता तो ऐसी असम्भव बातें क्यों लिखते? जैसे तुम्हारे गुरु हैं, वैसे तुम शिष्य भी हो। तुम्हारी बातें सुनने वाले को पदार्थज्ञान कभी नहीं हो सकता।

भला! जो प्रत्यक्ष संयुक्त पदार्थ दीखता है उसकी उत्पत्ति और विनाश क्योंकर नहीं मानते? अर्थात् इनके आचार्य वा जैनियों को भूगोल खगोल विद्या भी नहीं आती थी और न अब यह विद्या इनमें है।

प्रश्न—जीव का आकार शरीर के सदृश होता है, जैसे घट में जल का आकार बनता है।

उत्तर—जो यह बात सत्य हो तो हाथी का जीव कीड़ी और कीड़ी का जीव हाथी में न समा सके। इसलिये यह बात झूठी है। यह भी एक मूर्खता की बात है! क्योंकि जीव एक सूक्ष्म पदार्थ है जो कि एक परमाणु में भी रह सकता है परन्तु उसकी शक्तियां शरीर में प्राण, बिजुली और नाड़ी आदि के साथ संयुक्त हो रहती हैं, उनसे सब शरीर का वर्त्तमान जानता है। अच्छे सङ्ग से अच्छा और बुरे सङ्ग से बुरा हो जाता है।

जिनदत्त सूरि ने इस प्रकार कहा—

जिनो देवो गुरुः सम्यक् तत्त्वज्ञानोपदेशकः।
ज्ञानदर्शनचारित्र्याण्यपवर्गस्य वर्तिनी॥ १॥

स्याद् द्वादश्यप्रमाणे द्वे प्रत्यक्षमनुमापि च।
नित्यानित्यात्मकं सर्वं नवतत्त्वानि सप्त वा॥ २॥
जीवाजीवौ पुण्यपापे चास्त्रवः संवरोऽपि च।
बन्धो निर्जरणं मुक्तिरेषां व्याख्याऽधुनोच्यते॥ ३॥
चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः।
सत्कर्म पुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्ययः॥ ४॥
आस्त्रवः कर्मणां बन्धो निर्जरणं द्वियोजनम्।
अष्टकर्मक्षयान् मोक्षाथान्तरभावश्च कश्चन॥ ५॥
सरजोहरणा भैक्षभुजो लुञ्चितमूर्द्धजाः।
श्वेताम्बराः क्षमाशीला निःसंगा जैनसाधवः॥ ६॥
लुञ्चिताः पिच्छिकाहस्ताः पाणिपात्रा दिगम्बराः।
ऊर्ध्वाशिनो गृहे दातुर्द्वितीया स्युर्जिनर्षयः॥ ७॥
भुङ्क्ते न केवली न स्त्री मोक्षमेति दिगम्बरः।
प्राहुरेषामयं भेदो महान् श्वेताम्बरैः सह॥ ८॥ —इति [आर्हतदर्शन]

अर्थ—जिन देव अर्थात् तीर्थङ्कर तत्त्व ज्ञान का उपदेशक, ज्ञान, दर्शन और चरित्र ये तीन रत्न अपवर्ग मोक्ष के मार्ग की प्राप्ति में स्याद्वाद के प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण, नित्य और अनित्यस्वरूप सब जगत् जैनमत में नव वा सात तत्त्व हैं॥ १-२॥

एक जीव, दूसरा अजीव, तीसरा पुण्य, चौथा पाप, पांचवां आस्त्रव, छठा संवर, सातवां बन्ध, आठवां निर्जरण और नववां मुक्तितत्त्व मानते हैं। इन नव तत्त्वों की यह व्याख्या है॥ ३॥

जो चेतन है वह **जीव**, जो जड़ है वह **अजीव**, जो सत्कर्म के पुद्गल हैं वह **[पुण्य] कर्म** और पाप का पुद्गल **पाप**, कर्मों का योग **आस्त्रव**, बन्ध का छुड़ाना **निर्जर** और ज्ञानावर्णी आदि आठ कर्मों का क्षय होना **मुक्ति** कहाती है॥४-५॥

अब जैनी के साधुओं के लक्षण—रंगे हुये वस्त्र पहरें, भिक्षान्न भोजन करें, सिर आदि के बाल लूँच डालें, एक श्वेताम्बर शुक्लवस्त्र धारण करनेहारे, क्षमायुक्त, संगदोष से रहित, दूसरे लुञ्चित केश, पिच्छिका

हाथ में रक्खें, तीसरे दिगम्बर वस्त्र धारण न करें, पाणिपात्र हाथ ही पात्र, गृहस्थ के घर में भोजन के पश्चात् भोजन करें और ऋषिसंज्ञक भी साधु होते हैं॥ ६-७॥

एक के घर में भोजन नहीं करते, स्त्री का संग नहीं करते, वह दिगम्बर मुक्ति को प्राप्त होता है। यही दिगम्बर और श्वेताम्बरों में भेद है अर्थात् दिगम्बर पहले के हैं और श्वेताम्बर पीछे हुए हैं॥ ८॥

जैनी—हमारे धर्म अधर्म भी द्रव्य हैं।

विवेकी—धर्म, अधर्म गुण हैं, द्रव्य कभी नहीं हो सकते। जो धर्माधर्म को द्रव्य मानते हो तो रूप, स्पर्श आदि को भी द्रव्य मानो।

प्रश्न—जैनीलोक जगत्, जीव, जीव के कर्म और बन्ध अनादि मानते हैं।

उत्तर—यहाँ भी जैनियों के तीर्थंकर भूल गये हैं, क्योंकि संयुक्त जगत् का कार्य कारण अनादिरूप और कार्य प्रवाहरूप से अनादि हो सकता है। जैसा तुम इस स्थूल जगत् को अनादि मानते हो, सो नहीं बन सकता, क्योंकि संयोगजन्य पदार्थ संयोग से पूर्व संयुक्तावस्था में नहीं होता, किन्तु वियोगावस्था में होता है। जो जीव को अनादिकाल बन्ध है, वह कभी न छूट सकेगा और जो अनादि का भी छूटना मानोगे तो जितने अनादि द्रव्य तुम्हारे मत में हैं, वे सब अनित्य हो जायेंगे। और मुक्ति सब कर्मों के छूटने से तुम मानते हो, तो सब कर्मों के छूटने रूप निमित्त से मुक्ति होने से नैमित्तिक हुई, जो निमित्त से होता है वह सदा नहीं रह सकता। और कर्म, कर्त्ता का नित्य सम्बन्ध होने से कर्म भी कभी न छूटेंगे। इसलिए तुम्हारे मत में जो-जो तीर्थंकर आदि मुक्ति में गये होंगे, वे सब फिर आवेंगे। पुनः तुम्हारे मत में मुक्ति अनित्य हो गई।

प्रश्न—जैसे मैल लगने के कारणों से वस्त्र में मैल लगता है और धोने से छूट जाता है, पुनः मैल लग जाता है, वैसे मिथ्यात्वादि हेतुओं से रागद्वेषादि के आश्रय से जीव को कर्मरूप मल लगता है।

उत्तर—जो मिथ्यात्वादि हेतुओं से जीव मलीन होता है, तो उन निमित्तों के पूर्व जीव को निर्मल मानना पड़ेगा और जो निर्मल को मल

लगा, तो अनिर्मोक्षापत्ति तुम्हारे मत में आवेगी। क्योंकि मुक्ति में जीव को तुम निर्मल मानते हो और मल लगने के कारणों से मलों का लगना मानते हो, तो मुक्त जीव संसारी और संसारीजीव मुक्त होता है, ऐसा अवश्य ही मानना पड़ेगा।

प्रश्न—जीव अनादि काल से कर्मसहित है। कर्म छूटे पीछे, नहीं लगते।

उत्तर—जो अनादि से कर्म सहित है, उसका छूटना असम्भव है और विना छूटे मुक्ति कहाँ? इसलिए जीवों के कर्म और मुक्ति को प्रवाह रूप से अनादि मानो। अनादि अनन्तता से नहीं।

प्रश्न—जीव निर्मल कभी नहीं था।

उत्तर—जो कभी निर्मल नहीं था, तो कभी भी निर्मल नहीं हो सकेगा। जैसे वस्त्र का पीछे से लगा मैल धोने से छूट जाता है, पुन: मैल लग जाता है। परन्तु उसका श्वेतपन कभी नहीं छूट सकता।

प्रश्न—जीव पूर्वोपार्जित कर्मों ही से स्वयं शरीर धारण कर लेता है। ईश्वर का मानना व्यर्थ है।

उत्तर—जो केवल कर्म ही जन्म धारण करने में कारण हो, तो वह जीव बुरा जन्म जहाँ कि दु:ख हो उसको धारण न करे, किन्तु अच्छे-अच्छे जन्म धारण करे। जो कहो कर्म प्रतिबन्धक है, तो भी कर्म के जड़ होने से निरोधक वा प्रवर्त्तक नहीं हो सकते। इसलिए कर्म का फल प्रदाता परमेश्वर को मानना तुमको उचित है। जो कहो कि नशा के समान कर्म स्वयं परिणाम को प्राप्त होता है, तो विना किया हुआ कर्म परिणाम को प्राप्त क्यों नहीं होता? जो कहो कि जिसका जैसा स्वभाव है, वह वैसा ही होता है, तो विष विना खाये क्यों नहीं किसी को मारता? क्योंकि उसका परिणामी स्वभाव है। जो कहो संयोग के विना कर्म-परिणाम प्राप्त नहीं होता, तो जीव और कर्म को संयुक्त करनेवाला कोई तीसरा मानना पड़ेगा। जो न मानोगे, तो जड़ का संयोग स्वत: नहीं हो सकता। इससे यह सिद्ध हुआ कि विना ईश्वर के कर्मफल व्यवस्था नहीं हो सकती।

प्रश्न—जो कर्म से मुक्त होता है, वह ईश्वर कहाता है।

उत्तर—जब अनादि काल से जीव के साथ कर्म लगे हैं तो मुक्त कैसे हो सकता है? और जिसको कर्म लगता है, वह ईश्वर ही नहीं। और कर्म, कर्त्ता का 'समवाय' अर्थात् नित्य सम्बन्ध होता है, यह कभी नहीं छूटता; इसलिये जैसा ९वें समुल्लास में लिख आये हैं, वैसा ही मानना ठीक है। जीव चाहै जैसा अपना ज्ञान और सामर्थ्य बढ़ावे, तो भी उसमें परिमितज्ञान और समीम सामर्थ्य रहेगा। ईश्वर के समान कभी नहीं हो सकता। हाँ जितना सामर्थ्य बढ़ना उचित है, उतना योग से बढ़ा सकता है।

प्रश्न—कर्म का बन्ध सादि है।

उत्तर—जो सादि है तो संयोग की आदि से पूर्व जीव निष्कर्म था। जब निष्कर्म को कर्म लग गया, तो जितने तुम्हारे निष्कर्म मुक्त जीव हैं, उनको भी कर्म लगके संसार में गिरेंगे।

प्रश्न—जो पशुओं को मार यज्ञ में होम करने से पशु स्वर्ग में जाय, तो यजमानादि स्वयं अग्नि में अपने शरीर का होम कर स्वर्ग में क्यों नहीं जावें?

उत्तर—यह बात वेदों की नहीं। अर्थात् पशु मारके होम करना आदि विधि वाममार्गियों ने बनाया है। परन्तु इसको कोई सज्जन नहीं मानता। परन्तु उन्हीं चारवाक के मत की यह बात है। इसलिए जैनी लोग भी कुछ-कुछ चारवाक के मत से भी मिलते हैं।

प्रश्न—जैसे तूम्बी में से मट्टी थोड़ी निकलने से वह ऊपर आती है, वैसे जीव के कर्मबन्धन कम-कम होने से जीव की ऊर्ध्वगति होकर सिद्धशिला में जाते हैं।

उत्तर—जैनियों ने ऊपर नीचे की बातें गमारूपन की समझ रक्खी हैं, जो विद्या होती, तो ऐसी निर्मूल बात क्योंकर मानते! देखो! जिसको हम ऊपर कहते हैं, उसी को उससे परे वाले लोग नीचा कहते हैं और जिसको हम नीचा कहते हैं, उसी को उससे नीचे रहने वाले ऊँचा कहते हैं। ऐसे ही अलग-बगल में रहने वालों की बात है। इसलिए सिद्धशिला और शिवपुर को मुक्ति स्थान मानना अविद्या की बात है।

प्रश्न—हमारे मत में साधुओं को रागद्वेष नहीं।

उत्तर—देखो! तुम्हारे मूल आवश्यक सूत्र में क्या लिखा है—

अरिहन्ते सुयरागो सारीसुवं भयारीसु —इत्यादि

अर्थात् अशुभ के छोड़ने में द्वेष, श्रेष्ठ और शुभ कामों में राग करना अच्छा। यह रागद्वेष किसी का नहीं छूटता। अर्थात् बुरे कामों पर द्वेष और अच्छे कामों में प्रीति करना बहुत अच्छी बात है।

अब प्रकरणरत्नाकर के पहिले भाग में जो देवचन्द्रजी कृत नयचक्र-सार है, उसी की बातें लिखते हैं। जिसको सब जैन लोग मानते हैं।

तत्र द्रव्यभेदा यथा जीवा अनन्ताः, तत्रैकस्मिन् द्रव्ये प्रतिप्रदेशे स्वरूप एककार्य्यकरणसामर्थ्यरूपा अनन्ता अविभागरूपपर्याया एव गुणा अप्यनन्ताः प्रतिगुणं प्रतिदेशं पर्याया अप्यनन्ताः प्रति वस्तूनि अनन्तास्ततोऽनन्तगुणसामर्थ्यपर्यायाः॥

—प्रकरणरत्नाकर भाग १

उत्तर—जीव अनन्त हैं, उनका ज्ञान किसी जीव का सामर्थ्य नहीं, केवल अटकरपच्चासी की बात है। अनन्त के स्थान में असंख्य कहता तो ठीक बात थी। क्योंकि हम जीव लोग जीवों की गणना नहीं कर सकते। अब एक-एक द्रव्य में अपने-अपने एक कार्यकरण सामर्थ्य को अविभाग पर्यायों से अनन्त मानना केवल अविद्या की बात है। क्योंकि जब एक परमाणु द्रव्य की सीमा है, तो उसमें अनन्त अविभाग रूप पर्याय कैसे रह सकते हैं। और एक-एक द्रव्य में अनन्त गुण और एक-एक गुण और प्रदेश से अविभागरूप अनन्त पर्याय का मानना केवल बालकों की बातें हैं। और एक-एक वस्तु पर्याय भी अनन्त मानना केवल अविद्या की बात है। क्योंकि जिसके अधिकरण का अन्त है, उसमें अनन्त कभी नहीं रह सकता। जैसे जैनी कहते हैं कि छोटे से कन्द में अनन्त जीव हैं। जब कन्द का अन्त है तो जीवों का अन्त क्यों नहीं? जितनी विद्याशून्य मिथ्या बातें जैन के ग्रन्थों में है, उतनी अन्यत्र नहीं, और जहाँ कहीं हैं, उनका मूल जैनमार्ग है।

एक उनका नवकार मन्त्र है। उसका स्वरूप—

नमो अरिहन्ताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरियाणं नमो उबज्झायाणं नमो लोए सब्बसाहूणं। एसो पंच नमुक्कारो सव्व पावप्पणासणो, मंगलाचरणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलम्॥

इस मन्त्र का अर्थ यह है—

(नमो अरिहन्ताणं) सब तीर्थंकरों को नमस्कार। **(नमो सिद्धाणं)** जैनमत के सब सिद्धों को नमस्कार। **(नमो आयरियाणं)** जैन मत के सब आचार्यों को नमस्कार। **(नमो उवज्झायाणं)** जैनमत के सब उपाध्यायों को नमस्कार। **(नमो लोए सब्बसाहूणं)** जितने जैनमत के साधु इस लोक में हैं, उन सबको नमस्कार है।

यद्यपि मन्त्र में जैनपद नहीं है तथापि जैनियों के अनेक ग्रन्थों में सिवाय जैनमत के अन्य किसी को नमस्कार भी न करना लिखा है। इसलिए यही अर्थ ठीक है।

इसका ऐसा माहात्म्य धरा है कि तन्त्र, पुराण और भाटों की कथा को भी मात कर दिया है। अर्थात् इस मन्त्र के जप से सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

श्राद्धदिनकृत्य और आत्मनिन्दाभावना में इसका ऐसा फल लिखा है—

नमुक्कारं तउ पढे॥ ९॥
तउ कब्बं मन्ताणमंतो परमो इमुत्ति धेयाणधेयं परमं इमुत्ति।
तत्ताणतत्तं परमं पवित्तं संसार सत्ताण दुहाइयाणं॥ १०॥
ताणं अंनंतु नो अत्थि जीवाणं भवसायरे।
बुडुं ताणं इमं मुत्तुं नमुक्कारं सुपोययम्॥ ११॥
कब्बं अणेगजम्मं तरसं चिआणं दुहाणं सारीरिअमाणुसाणु साणं।
कत्तोय भब्बाणभविज्जनासो।
न जावपत्तो नवकारमंतो॥ १२॥

सब मन्त्रों में यह पवित्र और परम मन्त्र है। ध्येयों के मध्य में परम ध्येय, तत्त्वों में परम तत्त्व, दुःख से पीड़ित संसारी जीवों का यह नवकार मन्त्र जैसी समुद्र के पार उतारने की नौका होती है उस नौका के समान है। संसार में डूबने वाले जीवों का एक यही रक्षक है। अनेक जन्मान्तर शरीर और मन सम्बन्धी दुःख भव्यजीवों के नहीं नष्ट होते, जब तक

नवकार मन्त्र का ग्रहण न करे। भवसागर से तर जाते हैं॥ ९-१२॥

अग्निप्रमुख आठ महाभय नहीं होते। जैसे महारत्न वैडूर्य नामक मणि ग्रहण करने में आवे अथवा शत्रुभय में अमोघ शस्त्र ग्रहण करने में आवे, वैसे श्रुतकेवली का ग्रहण करे। और सब द्वादशाङ्गी का नवकार मन्त्र रहस्य है। [—श्रा०दि०कृ०पृ० ३, सूत्र १३]

समीक्षक—यह गपोड़ा नहीं तो क्या है? जो संसार में पाषाणादि मूर्तिपूजा चली है, वह सब बौद्ध और जैनियों से चली है कि जिसने सब जगत् को भरमाया है।

देखलो! श्राद्धदिनकृत्य के पहिले पृष्ठ में लिखा है कि—

सन्ध्या समय के भोजन में जिनबिम्ब अर्थात् उनकी मूर्तियों का पूजना, द्वारपूजा में बड़े-बड़े बखेड़े और नियम, मन्दिर बनाने और पुराने मन्दिरों की मरम्मत करने से मुक्ति हो जाती है।

यह बीसवें पृष्ठ में और तेईसवें पृष्ठ में—

मन्दिर में इस प्रकार जावे, जाकर बैठे, बड़े भाव, प्रीति से पूजा करे। "**नमो जिनेन्द्रेभ्यः**" इत्यादि मन्त्रों से स्नानादि करावे, जल, चन्दनादि चढावे।

वैसे ही रत्नसारभाग के बारहवें पृष्ठ में मूर्त्तिपूजा का फल—पुजारी को राजा और प्रजा कोई न रोक सके।

तेरहवें पृष्ठ में—मूर्त्तिपूजा से रोग, पीड़ा, महादोष छूट जाय। पांच कौड़ी का फूल चढाया, उसने १८ देश का राज पाया, उसका नाम कुमारपाल हुआ था, इत्यादि।

समीक्षक—जो ये बातें सच्ची हों, तो जैनी लोगों में से राजा और प्रजा का दण्ड, रोग, पीड़ा कौन भोगते? और महादोषों में क्यों फस रहे हैं। जो मूर्त्तिपूजा से भवसागर से छूट जाय तो ज्ञान, सम्यग्दर्शन और चरित्र की प्राप्ति क्यों करना? वाह! पांच कौड़ी के फूल चढाने से १८ देश का राज मिल जाये, तो सौ रुपये के फूल चढाने से क्या मिल जाय अर्थात् ब्रह्माण्ड में सब लोक-लोकान्तर का भी राजा होता है?

और गोतम का अंगूठा धोके पीये तो अमृत का फल पावे। यह बारहवें पृष्ठ में लिखा है।

तो जैनी लोग गोतम का अंगूठा धोकर पीके अमर क्यों नहीं हो जाते?

अब इनकी मुक्ति का थोड़ा-सा वर्णन करते हैं—

उसी रत्नसारभाग के २३वें पृष्ठ में [लिखा है] सिद्धशिला अर्थात् जिस पर सिद्धपुरुष रहते हैं, वह पैंतालीस लाख योजन लम्बी, पोली और आठ योजन चौड़ी है। एक करोड़, अस्सी लाख कोश लम्बी और पोली है और बत्तीस कोश चौड़ी है। वह सिद्ध शिला चौदहवें लोक की शिखा पर है।

समीक्षक—यह बात महावीर तीर्थङ्कर के मुख की है और यहीं शिवपुर का भी वर्णन किया है। भला! यह बात किसी बुद्धिमान् के मन में आ सकती है? जो यही मुक्ति का स्थान हो तो बन्धन हो जाय। क्योंकि इसके ऊपर और चारों ओर आकाश ही होगा। फिर उस धाम से बाहर जाने में डरते होंगे। और इतनी लम्बी चौड़ी एक शिला जैनी के तीर्थङ्कर नाप और देख के कहने को आये होंगे। जो ऐसा ही हो तो अब क्यों नहीं कहने को आते? यह जैनी भी मुक्तिविषय में भ्रम से फसे हैं। यह सच है कि विना वेदों के यथार्थ अर्थबोध के मुक्ति के स्वरूप को कभी नहीं जान सकते।

उसी रत्नसार पृष्ठ २९ में आबू, गिरनार, शत्रुञ्जय, शम्मेत शिखर आदि तीर्थ करें, वे धन्य हैं। और कर्म का क्षय मुक्ति पर्यन्त माना है।

समीक्षक—यह भी बुद्धिमानों की समझ से सब प्रकार विरुद्ध है।

और देखो! बड़ा पक्षपात और अन्धाधुन्ध लेख विवेकसार के ५५ पृष्ठ में—गंगादि तीर्थ और काशी आदि क्षेत्रों के सेवने से कुछ भी परमार्थ सिद्ध नहीं होता।

समीक्षक—वाह रे जैनी लोगो! अपने जल, स्थल, पाषाणरूप मूर्त्ति आदि की सेवा से सब पाप क्षय और मुक्तिपर्यन्त फल मानो और दूसरे के जल, स्थल, पाषाणमूर्त्ति का खण्डन करो, यह अपनी मूर्खता, छल, झूठ, मतलबसिन्धु की बात नहीं तो क्या है? सच तो यह है कि तुम दोनों झूठे हो। जल, स्थल और पाषाणादि मूर्त्तियों से पापक्षय और

मुक्ति कभी नहीं होती।

यह इनका श्लोक है, जल, चन्दनादि चढाने का—

जलचन्दनधूपनैरथदीपाक्षतकैर्निवेद्यवस्त्रैः।
उपचारवरैर्वयं जिनेन्द्रान् रुचिरैरद्य यजामहे॥ १॥

[विवेकसार पृ० ५२]

अर्थात् जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र, अतिरुचिकारक उत्तम उपचार से आनन्दपूर्वक जिनेन्द्रों अर्थात् तीर्थङ्कर की मूर्त्तियों की पूजा करते हैं॥ १॥

समीक्षक—जितना यह पूजा का आडम्बर चला है, वह सब जैनों के घर से चला है। यह श्लोक विवेकसार के ५२ पृष्ठ में लिखा है।

पृष्ठ १३६ विवेकसार में दशार्ण राजा चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर के दर्शन करने को गया। वहाँ कुछ अभिमान किया तो वहां महावीर के दर्शन को १६,७७,७२,१६००० इतने इन्द्र के स्वरूप और १३,३७,०५,७२, ८०,००००००० इतनी इन्द्राणी आई थीं। देखकर राजा आश्चर्य [में] हो गया।

समीक्षक—अब विचारना चाहिये कि इन्द्र और इन्द्राणियों के खड़े रहने के लिए ऐसे-ऐसे कई भूगोल हों तो भी नहीं समा सकें। परन्तु इसमें ऐसा होगा कि कितने ही ग्रन्थकार के घर में बैठे होंगे। कितने ही उनके चेलों के घर में और कितने उनके कन्धों पर बैठे होंगे और कितने ही पुकारते होंगे।

अब इनके पक्षपात की बातें देखो! अपने तीर्थंकरों का जिन्होंने गृहाश्रम किया, पुत्रोत्पत्ति की, संसार भोगा, पश्चात् साधु हुये, उनका मान करते हैं।

और विवेकसार १०३ पृष्ठ में श्री स्थूलभद्र स्वामी की कथा।

रत्नसारभाग, पृष्ठ ११० में—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव स्त्री के गुलाम बताये हैं। रत्नसारभाग, पृष्ठ १११ में—कृष्णादि नव वासुदेव और प्रह्लादादि प्रतिवासुदेव नरक में गये।

रत्नसारभाग, पृष्ठ २०—ब्रह्मा, विष्णु, नारायण आदि सब कामी हैं, इसलिये इनको छोड़ने योग्य कहा है।

समीक्षक—और जिन ऋषभदेव आदि ने विवाह कर गृहाश्रम भोगा, वे त्यक्तव्य क्यों नहीं? जो ये त्यक्तव्य नहीं तो नारायण आदि अच्छे क्यों नहीं? ऋषभदेव संसारदुःख के तरने के लिये काष्ठ की नौका के समान तारने वाले और महादेव, विष्णु आदि पत्थर की नौका के समान डुबाने वाले हैं। भला! यह झूठ, पक्षपात की बात जैसे कूंजरी अपने खट्टे बेरों को मीठे बतलाती है, वैसी यह क्या नहीं है?

विवेकसार पृष्ठ २१—जिनमन्दिर में मोह नहीं आता। भवसागर के पार उतारने वाला है।

विवेकसार पृष्ठ ५१ और ५२—मूर्त्तिपूजा से मुक्ति होती है और जैनमन्दिर में जाने से सद्गुण आते हैं। जो जल चन्दनादि से जिनमूर्त्तियों की पूजा करे वह नरक से छूट स्वर्ग को जाय।

विवेकसार पृष्ठ ५५ में—जिनमन्दिर में ऋषभदेव आदि की मूर्त्तियों के पूजने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सिद्ध होता है।

विवेकसार पृष्ठ ६१ में—जिनमूर्त्तियों की पूजा से सब पाप छूट जाते हैं।

पृष्ठ ६७ में—जिनमूर्त्तियों की पूजा करें तो जगत् के क्लेश छूट जायें।

पृष्ठ ८१ में—श्री जिन की पूजा से सब पाप छूट जाते हैं।

इत्यादि बड़े-बड़े विचित्र, असम्भव बातों के गपोड़े उड़ाये हैं।

और यह भी विवेकसार के तीसरे पृष्ठ में लिखा है कि—

जो 'जिन' की मूर्त्ति स्थापन करते हैं, उन आचार्यों ने अपनी और अपने कुटुम्ब की आजीविका चलाई है, ऐसा खण्डन भी करते हैं।

और उसी ग्रन्थ के २२५ पृष्ठ में शिव, विष्णु आदि मूर्त्ति की पूजा करनी बहुत बुरी है अर्थात् नरक का साधन है।

समीक्षक—भला! इनके पत्थर और जैनियों के पत्थरों में कुछ भेद है? जो कहै कि हमारी मूर्त्तियां त्यागी और शान्त हैं। भला! हम इनसे पूछते हैं कि तुम्हारी मूर्त्ति तो लाखों रुपये के मन्दिरों में रहतीं और चन्दन, पुष्पादि चढता है, इससे तो अधिक त्यागी और तपस्वी पहाड़ है। और तुम्हारी मूर्त्तियां नंगी मनुष्यों के बीच में लज्जाकारक हैं। भला! वे तो ऐब ढांक रखते हैं। इससे तुम दोनों मूर्त्तिपूजा छोड़ दो।

सब मतों की मूर्त्तिपूजा व्यर्थ है।

अब और देखिये लड़केपन की बातें। विवेकसार पृष्ठ १०१ में—एक नन्दीषेण ने दश पूर्व तक भोग किया। एक मुनि वेश्या के घर में रहा, भोग किया, फिर मुनि की दीक्षा ले, स्वर्ग को गया। और स्थूलभद्र मुनि भी ऐसा ही काम करके स्वर्ग को गया।

विवेकसार पृष्ठ २२८ में—एक पुरुष ने कोशा वेश्या का भोग किया, पश्चात् त्यागी होकर स्वर्ग को गया।

विवेकसार पृष्ठ १०१ में—अर्णकमुनि चरित्र से चूक, कई वर्ष दत्त सेठ के घर में भोग किया, पश्चात् देवलोक को गया।

विवेकसार पृष्ठ १०६ में—श्रीकृष्ण तीसरे नरक में गये।

विवेकसार पृष्ठ १४५ में—धन्वन्तरि वैद्य नरक को गया।

और देखो विचित्र लीला! विवेकसार पृष्ठ १०६ में—श्री कृष्ण के पुत्र ढण्ढण मुनि को स्यालिया उठा लेगया और खा गया, पश्चात् देवता हुआ।

जैनियों के सर्व तीर्थङ्कर और उनके गण तथा उनके शिष्य और जैनमतस्थ मनुष्य क्रोडान् क्रोड कोई शिवपुर, कोई सिद्धशिला, कोई देवलोक और कोई स्वर्ग में गये, परन्तु श्रीकृष्णादि और अन्य भी अनेक नरक को गये और जायेंगे।

समीक्षक—भला! अब विचारिये कि ये बातें! क्या जैनियों के ही हाथ में स्वर्ग-नरक की कुंजी है? इनको ऐसा महाझूठ लिखते बोलते लज्जा भी नहीं आई कि श्रीकृष्णादि महात्मा नरक में गये और इनके रण्डीबाज भी स्वर्ग और मुक्ति को चले गये। हम जानते हैं कि जितने झूठे, महामूर्ख, हठी और पक्षपाती जैनी लोगों में थे और हैं, वैसे अन्य लोगों में नहीं। भला! इन जैनियों के ऋषभदेवादि तीर्थङ्कर नरक में गये, महापापी थे और सब उनके चेले भी वैसे थे और हैं, ऐसा कोई लिखे वा कहे तो उनको कितना बुरा लगेगा। वैसा ही दूसरे का भी समझ लेना चाहिये। क्योंकि इन महाहठी, दुराग्रही, मूर्खों के संग से सिवाय बुराइयों के, अन्य कुछ भी पल्ले न पड़ेगा। हां! जो जैनियों में उत्तमजन* हैं, उनसे सत्संगादि करने में कुछ भी दोष नहीं।

* जो उत्तम जन होगा वह इस असार जैनमत में कभी न रहेगा। [दयानन्द सरस्वती]

और भी इनकी धर्म से उल्टी बातें सुनो। विवेकसार पृष्ठ ७ में—जो शुद्ध जिनवचन यथास्थितक है, उसी को सुगुरु अर्थात् अन्य को कुगुरु मानते हैं।

विवेकसार पृष्ठ ४८ में—योगी, जंगम, काजी, मुल्ला कितने ही अज्ञान से तप कष्ट करके कुगति को पाते हैं। रत्नसार भा० १ पृष्ठ १७०-१७१ में लिखा है कि नव वासुदेव अर्थात् त्रिपृष्ठ वासुदेव, द्विपृष्ठ वासुदेव, स्वयंभू वासुदेव, पुरुषोत्तम वासुदेव, सिंहपुरुष वासुदेव, पुरुषपुण्डरीक वासुदेव, दत्त वासुदेव, लक्ष्मण वासुदेव और ९ श्रीकृष्ण वासुदेव ये सब ग्यारहवें, बारहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें, अठारहवें, बीसवें और बाईसवें तीर्थकरों के समय नरक को गये। और नव प्रतिवासुदेव अर्थात् अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव, तारक प्रतिवासुदेव, मोदक प्रतिवासुदेव, मधु प्रतिवासुदेव, निशुम्भ प्रतिवासुदेव, बली प्रतिवासुदेव, प्रह्लाद प्रतिवासुदेव, रावण प्रतिवासुदेव और जरासन्ध प्रतिवासुदेव ये भी सब नरक को गये।

विवेकसार पृष्ठ १५४ में—**अदेवा गुरवो धर्मेषु या देवगुरुधर्मधीः।**

यह श्री हेमचन्द्र सूरि ने लिखा है। अर्थात् ब्रह्मादि अदेव, जैन से भिन्न मार्ग के उपदेशक अगुरु और जैनधर्म से भिन्न सब अधर्म, इनमें देवगुरु धर्मबुद्धि करना मिथ्यादृष्टि, चौथे गुण ठाणे वाले, असंयति, अविरति, रजोहरणादि साधुवेश रहित जीवों को सम्यग् दृष्टि कहते हैं तो रजोहरणादि भगवान् का वेश तथा शुद्ध धर्म, जैनमार्ग का उपदेशक सम्यग् दृष्टि क्यों कहाता है?

विवेकसार पृष्ठ १५६ में—लिङ्गधारी अर्थात् वेशधारी मात्र का भी सत्कार श्रावक लोग करें। चाहे वे शुद्ध चरित्र हों वा अशुद्ध चरित्र।

विवेकसार पृष्ठ १६८ में—जैन साधु चरित्रहीन भी हो तो भी अन्य साधुओं से श्रेष्ठ ही है।

विवेकसार पृष्ठ १७१ में—श्रावक लोग जैन के साधुओं को धर्मरहित भ्रष्ट देखकर भी निस्नेह न होने चाहियें।

विवेकसार पृष्ठ १९४ में—जिन मत में स्थित होना सार, शेष सब

संसार के मत असार।

विवेकसार पृष्ठ १९६ में—अन्य मत की अभिलाषा जैनी को न करनी चाहिए। उनकी बात सुनने में भी दोष है।

विवेकसार पृष्ठ २१६ में—एक चोर ने पांच मूठी लोच के चारित्र ग्रहण किया। बड़ा कष्ट और पश्चात्ताप किया। छठे महीने में केवलज्ञान पाके सिद्ध हो गया।

विवेकसार पृष्ठ २२१ में—अन्य मत वाले को खाने-पीने की चीज़ भी न देनी चाहिये।

विवेकसार पृष्ठ २२१ में—१. 'परमती की स्तुति' अर्थात् उनका गुण कीर्तन, २. 'नमस्कार' उनको वन्दना, ३. 'आलपन' अर्थात् उनसे थोड़ा बोलना, ४. 'संलपन' अर्थात् उनसे वार-वार बोलना, ५. 'अन्नादिदान' अर्थात् उनको खाने-पीने की चीज देना, ६. 'गन्धपुष्पादिदान' अर्थात् परमती की प्रतिमा के पूजने के लिये गन्ध, पुष्प देना। ये छ: यतना अर्थात् इन छ: कर्मों को जैनी लोगों को नहीं करना चाहिये।

ऐसे इनके सब ग्रन्थों में लिखा है।

समीक्षक—अब बुद्धिमानों को यहां विचार करना चाहिये कि जैसे जैनमती दूसरे मत के विरोधी, निन्दक, हानिकारक हैं, वैसे दूसरे मत के नहीं हैं। जहां देखो, वहां बहुधा अपने मत की प्रशंसा स्तुति और दूसरे मतवालों की निन्दाओं से इनके ग्रन्थों का खजाना भरा है। सच है जो ऐसा जाल न रचते, तो ऐसे विद्याविरुद्ध अज्ञानियों के मत में फसकर बन्धन में फसे क्योंकर रहते। इसीलिये जैनीलोग कुत्ते आदि को तो लड्डू लप्सी खिलावें, परन्तु दूसरे मत के मनुष्यों में प्रीति करने वाला करोड़ों में एक आध है।

अब देखिये! इनका साधु कैसा ही भ्रष्ट-नष्ट हो तो भी उत्तम, और दूसरा चाहे कितना भी श्रेष्ठ हो, तो कुछ नहीं समझते। यद्यपि विवेकसार पृष्ठ २१७ में—अनुकम्पा अर्थात् दु:खियों का निष्कारण दु:ख दूर करने की इच्छा अर्थात् कुछ प्रयोजन न विचारना कि मुझको स्वर्ग, देवलोक वा मुक्ति होगी, ऐसे ही इच्छा करनी। यह कहने मात्र

है वा कोई कभी जैनमत में आग्रह न होगा वा किसी के दबाव से करता होगा, वह जानो नहीं करने के समान है। क्योंकि—

'प्रयोजनमननुदिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्त्तते' इति न्यायात्।

अर्थात् प्रयोजन के विना किसी की भी प्रवृत्ति नहीं होती है।

विवेकसार पृष्ठ १०८ में लिखा है कि मथुरा के राजा के नमुची नामक दीवान को जैनमतियों ने अपना विरोधी समझकर मार डाला और आलोयणा करके शुद्ध हो गये।

यह भी दया और क्षमा का नाशक कर्म है। जब अन्य मतवालों पर प्राण लेने पर्यन्त वैर बुद्धि रखते हैं तो इनको दयालु के स्थान पर हिंसक कहना ही सार्थक है।

और भी देखो इनकी मिथ्या बातें! जिन तीर्थंकरों को जैन लोग सम्यग्ज्ञानी और परमेश्वर मानते हैं, उनकी मिथ्या बातों के ये नमूने हैं—रत्नसार भाग १ के पृष्ठ १४५—इस ग्रन्थ को जैन लोग मानते हैं, और यह ईसवी सन् १८७९ अप्रैल तारीख २८ में बनारस जैनप्रभाकर प्रेस में नानकचन्द जती ने छपवा कर प्रसिद्ध किया है, उसके पूर्वोक्त पृष्ठ [एवं पृष्ठ १४६-१४७] में काल की इस प्रकार व्याख्या की है—

'समय' का नाम सूक्ष्मकाल है। असंख्यात समयों को 'आवलि' कहते हैं। एक क्रोड़, सड़सठ लाख, सतत्तर सहस्र, दो सौ सोलह आवलियों का एक 'मुहूर्त्त' होता है। तीस मुर्हूर्त्तों का एक 'दिवस', वैसे पन्द्रह दिवसों का एक 'पक्ष', वैसे दो पक्षों का एक 'महीना', वैसे बारह महीनों का एक 'वर्ष' होता है। सत्तर लाख क्रोड़ और छप्पन सहस्र क्रोड़ वर्षों का एक 'पूर्व', असंख्यात पूर्वों का एक 'पल्योपम' काल।

असंख्यात इसको कहते हैं कि—एक चार कोश का चौरस और गहिरा भी चार कोश के खाढे में जुगुलिये मनुष्य के शरीर के निम्नलिखित बालों के टुकड़ों से भरना। अर्थात् वर्त्तमान मनुष्य के शरीर के बालों से जुगुलिये मनुष्य के बाल चार हजार छानवें भाग सूक्ष्म हैं। अर्थात् जुगुलिये मनुष्यों के चार सहस्र छानवें बालों को इकट्ठे करने से मनुष्यों का एक बाल होता है। ऐसे जुगुलिये मनुष्यों के एक बाल का एक अङ्गुल

टुकड़ा सात वार करना, फिर उसके आठ-आठ टुकड़े करना, तो २०९७१५२ अर्थात् बीस लाख, सत्तानवें सहस्र, एक सौ बावन एक बाल के इतने टुकड़े होते हैं। ऐसे टुकड़ों से वह कुआ भरना, सौ वर्ष के अन्तरे एक एक टुकड़ा निकालना, जब सब टुकड़े निकल जावें और कुआ खाली हो जाय, वह भी संख्यात काल है। और एक-एक टुकड़े का असंख्यात टुकड़ा करना, टुकड़ा करके, उसी कुए को ऐसा ठस भरना कि ऊपर से चक्रवर्त्ती राजा की सेना चली जाय, तो भी दबे नहीं। उन टुकड़ों में से एक सौ वर्ष में एक टुकड़ा निकालना, जब वह कुआ खाली हो जाय, तब उसका नाम असंख्यात। असंख्यात पूर्व पड़ें, तब एक 'पल्योपम'। वह पल्योपम कुआ के दृष्टान्त से जानना।

जब दशक्रोड़ान्क्रोड़ पल्योपम काल बीत जायें, तब एक 'सागरोपम' होता है। जब दशक्रोड़ान्क्रोड़ सागरोपम काल व्यतीत हो जायें, तब एक 'उत्सर्प्पिणी' काल हो। जब दश क्रोडान्क्रोड उत्सर्पिणीकाल व्यतीत हो जायें तब एक अवसर्पिणी काल हो। एक उत्सर्प्पिणी और अवसर्प्पिणी काल व्यतीत हो जाय तब एक 'कालचक्र' हो। अनन्त कालचक्र व्यतीत होंवे तब एक 'पुद्‌गलपरावर्त्त' होता है।

अब अनन्तकाल किसको कहते हैं कि जो सिद्धान्त पुस्तकों में नव दृष्टान्तों से काल की संख्या कही है, उससे उपरान्त 'अनन्तकाल' कहाता है। वैसे अनन्त पुद्‌गलपरावर्त्त काल जीव को भ्रमते हुए बीते हैं।

सुनो भाई! गणितविद्यावाले लोगो! जैनियों के ग्रन्थों की कालसंख्या कर सकोगे वा नहीं? और तुम इसको सच भी मान सकोगे वा नहीं? देखो! इन तीर्थंकरों ने ऐसी गणितविद्या पढ़ी थी। ऐसे-ऐसे तो इनके मत में गुरु और शिष्य हैं, जिनकी अविद्या का कुछ पारावार नहीं। और भी इनका अन्धेर सुनो—

रत्नसार भाग १ पृष्ठ १३४ से लेके जो कुछ 'बूट्टाबोल' अर्थात् जैनियों के सिद्धान्तग्रन्थ जो कि उनके 'तीर्थंकर' अर्थात् ऋषभदेव से लेके महावीर पर्य्यन्त चौबीस हुए हैं, उनके वचनों का सारसंग्रह है, ऐसा रत्नसारभाग पृ. १४८ में लिखा है कि—पृथिवीकाय के जीव मट्टी

पाषाणादि पृथिवी के भेद जानना। उनमें रहनेवाले जीवों के शरीर का परिमाण एक अङ्गुल का असंख्यातवाँ भाग समझना, अर्थात् अतीव सूक्ष्म होते हैं। उनका आयुमान अर्थात् वे अधिक से अधिक २२ सहस्र वर्ष पर्यन्त जीते हैं।

रत्नसार पृष्ठ १४९—वनस्पति के एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं, वे साधारण वनस्पति कहाती हैं। जो कि कन्दमूलप्रमुख और अनन्तकायप्रमुख होते हैं, उनको साधारण वनस्पति के जीव कहने चाहिएँ। उनका आयुमान अन्तर्मुहूर्त्त होता है परन्तु यहाँ पूर्वोक्त इनका मुहूर्त्त समझना चाहिए।

और एक शरीर में जो 'एकेन्द्रिय' अर्थात् स्पर्श इन्द्रिय इनमें है और उसमें एक जीव रहता है, उसको प्रत्येक-वनस्पति कहते हैं। उसका देहमान एक सहस्र योजन अर्थात् पुराणियों का योजन ४ कोश का परन्तु जैनियों का योजन १०००० दश सहस्र कोशों का होता है, ऐसे चार सहस्र कोश का शरीर होता है, उसका आयुमान अधिक से अधिक दश सहस्र वर्ष का होता है।

अब दो इन्द्रियवाले जीव अर्थात् एक उनका शरीर और एकमुख जो शङ्ख, कौड़ी और जूं आदि होते हैं, उनका देहमान अधिक से अधिक अड़तालीस कोश का स्थूल शरीर होता है और उनका आयुमान अधिक से अधिक बारह वर्ष का होता है।

यहाँ बहुत ही भूल गया क्योंकि इतने बड़े शरीर का आयु अधिक लिखता, और अड़तालीस कोश की स्थूल जूं जैनियों के शरीर में पड़ती होगी और उन्हींने देखी भी होगी, और का भाग्य ऐसा कहाँ, जो इतनी बड़ी जूं को देखे!!!

रत्नसार भाग १ पृष्ठ १५०—और देखो इनका अन्धाधुन्ध! बीछू, बगाई, कसारी और मक्खी एक योजन के शरीरवाले होते हैं। इनका आयुमान अधिक से अधिक छः महीने का है।

देखो भाई! चार-चार कोश का बीछू अन्य किसी ने देखा न होगा। जो आठ मील तक का शरीरवाला बीछू और मक्खी भी जैनियों के मत में होती है। ऐसे बीछू और मक्खी उन्हींके घर में रहते होंगे और उन्हींने

देखे होंगे, अन्य किसी ने संसार में नहीं देखे होंगे। कभी ऐसे बीछू किसी जैनी को काटें तो उसका क्या होता होगा?

जलचर मच्छी आदि के शरीर का मान एक सहस्र योजन अर्थात् १०००० कोश के योजन के हिसाब से १,००,००,००० एक करोड़ कोश का शरीर होता है और एक करोड़ पूर्व वर्षों का इनका आयु होता है।

वैसा स्थूल जलचर सिवाय जैनियों के अन्य किसी ने न देखा होगा।

और चतुष्पात् हाथी आदि का देहमान दो कोश से नव कोशपर्य्यन्त और आयुमान चौरासी सहस्र वर्षों का इत्यादि।

ऐसे बड़े-बड़े शरीरवाले जीव भी जैनी लोगों ने देखे होंगे और मानते हैं। और कोई बुद्धिमान् नहीं मान सकता।

रत्नसार भाग १ पृष्ठ १५१—जलचर गर्भज जीवों का देहमान उत्कृष्ट एक सहस्र योजन अर्थात् १००००००० एक क्रोड़ कोशों का और आयुमान एक क्रोड़ पूर्व वर्षों का होता है।

इतने बड़े शरीर और आयुवाले जीवों को भी इन्हीं के आचार्यों ने स्वप्न में देखे होंगे! क्या यह महा झूठ बात नहीं कि जिसका कदापि सम्भव न हो सके?

अब सुनिये भूमि के परिमाण को रत्नसार भाग १ पृष्ठ १५२—इस तिरछे लोक में असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं। इन असंख्यात का प्रमाण अर्थात् अढ़ाई सागरोपम काल में जितना समय हो, उतने द्वीप तथा समुद्र जानना। अब इस पृथिवी में एक 'जम्बूद्वीप' प्रथम सब द्वीपों के बीच में है। इसका प्रमाण एक लाख योजन अर्थात् चार लाख कोश का है और उसके चारों ओर 'लवण' समुद्र है, उसका प्रमाण दो लाख योजन का है अर्थात् आठ लाख कोश का। इस जम्बूद्वीप के चारों ओर जो 'धातकीखण्ड' नाम द्वीप है, उसका चार लाख योजन अर्थात् सोलह लाख कोश का प्रमाण है और उसके पीछे 'कालोदधि' समुद्र है, उसका आठ लाख [योजन] अर्थात् बत्तीस लाख कोश का प्रमाण है। उसके पीछे 'पुष्करावर्त्त' द्वीप है, उसका प्रमाण सोलह लाख कोश का है। उस द्वीप के भीतर की कोरें हैं। उस द्वीप के आधे में मनुष्य बसते

हैं और उसके उपरान्त असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, उनमें तिर्यग् योनि के जीव रहते हैं।

रत्नसार भाग १ पृष्ठ १५३—जम्बूद्वीप में एक हिमवन्त, एक ऐरण्यवन्त, एक हरिवर्ष, एक रम्यक्, एक देवकुरु, एक उत्तरकुरु ये छः क्षेत्र हैं।

समीक्षक—सुनो भाई! भूगोलविद्या के जाननेवाले लोगो! भूगोल के परिमाण करने में तुम भूले वा जैन? जो जैन भूल गये हों तो तुम उनको समझाओ और जो तुम भूले हो, तो उनसे समझ लेओ। थोड़ा सा विचार कर देखो, तो यही निश्चय होता है कि जैनियों के आचार्य्य और शिष्यों ने भूगोल, खगोल और गणितविद्या कुछ भी नहीं पढ़ी थी। जो पढ़े होते, तो महा असम्भव गपोड़ा क्यों मारते?

भला ऐसे अविद्वान् पुरुष जगत् को अकर्तृक और ईश्वर को न मानें इसमें क्या आश्चर्य है? इसलिये जैनी लोग अपने पुस्तकों को किसी विद्वान्, अन्य मतस्थों को नहीं देते। क्योंकि जिनको ये लोग प्रामाणिक तीर्थङ्करों के बनाये हुए सिद्धान्तग्रन्थ मानते हैं, उनमें इसी प्रकार की अविद्यायुक्त बातें भरी पड़ी हैं, इसलिये नहीं देखने देते। जो देवें तो पोल खुल जाय। इनके विना जो कोई मनुष्य कुछ भी बुद्धि रखता होगा, वह कदापि इस गपोड़ाध्याय को सत्य नहीं मान सकेगा।

यह सब प्रपञ्च जैनियों ने जगत् को अनादि मानने के लिये खड़ा किया है परन्तु यह निरा झूठ है। हां, जगत् का कारण अनादि है, क्योंकि वह परमाणु आदितत्त्वस्वरूप अकर्तृक हैं, परन्तु उनमें नियमपूर्वक बनने वा बिगड़ने का सामर्थ्य कुछ भी नहीं। क्योंकि जब एक परमाणु द्रव्य किसी का नाम है और स्वभाव से पृथक्-पृथक्-रूप और जड़ हैं, वे अपने आप यथायोग्य नहीं बन सकते। इसलिये इनका बनानेवाला चेतन अवश्य है और वह बनानेवाला ज्ञानस्वरूप है। देखो! पृथिवी सूर्यादि सब लोकों को नियम में रखना अनन्त, अनादि, चेतन परमात्मा का काम है। जिसमें संयोगरचना विशेष दीखता है, वह स्थूल जगत् अनादि कभी नहीं हो सकता। जो कार्य जगत् को नित्य मानोगे, तो उसका कारण कोई न होगा, किन्तु वही कार्य कारणरूप हो जायगा। जो

ऐसा कहोगे तो अपना कार्य्य और कारण आप ही होने से **अन्योऽन्याश्रय** और '**आत्माश्रय**' दोष आवेगा, जैसे अपने कन्धे पर आप चढ़ना और अपना पिता पुत्र आप नहीं हो सकता, इसलिये जगत् का कर्त्ता अवश्य ही मानना है।

प्रश्न—जो ईश्वर को जगत् का कर्त्ता मानते हो, तो ईश्वर का कर्त्ता कौन है?

उत्तर—कर्त्ता का कर्त्ता और कारण का कारण कोई भी नहीं हो सकता। क्योंकि प्रथम कर्त्ता और कारण के होने से ही कार्य्य होता है। जिसमें संयोग-वियोग नहीं होता, जो प्रथम संयोग-वियोग का कारण है, उसका कर्त्ता वा कारण किसी प्रकार नहीं हो सकता। इसकी विशेष व्याख्या आठवें समुल्लास, सृष्टि की व्याख्या में लिखी है, देख लेना।

अब 'जीव' और 'अजीव' इन दो पदार्थों के विषय में जैनियों का निश्चय ऐसा है—

चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः।
सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्ययः॥

यह 'जिनदत्तसूरि' का वचन है। और यही प्रकरणरत्नाकर भाग पहिले में नयचक्रसार में भी लिखा है कि चेतनालक्षण 'जीव' और चेतनारहित 'अजीव' अर्थात् जड़ है। सत्कर्मरूप पुद्गल पुण्य और पापकर्मरूप पुद्गल पाप कराते हैं।

समीक्षक—जीव और जड़ का लक्षण तो ठीक है, परन्तु जो जड़रूप पुद्गल हैं, वे पापपुण्ययुक्त कभी नहीं हो सकते। क्योंकि पाप-पुण्य करने का स्वभाव चेतन में होता है। देखो! ये जितने जड़ पदार्थ हैं, वे सब पाप-पुण्य से रहित हैं। जो जीवों को अनादि मानते हैं, यह तो ठीक है। परन्तु उसी अल्प और अल्पज्ञ जीव को मुक्ति दशा में सर्वज्ञ मानना झूठ है। क्योंकि जो अल्प और अल्पज्ञ है, उसका सामर्थ्य भी सर्वदा ससीम रहेगा।

प्रश्न—जैसे धान्य का छिकला उतारने वा अग्नि के संयोग होने से बीज पुनः नहीं ऊगता, इसी प्रकार मुक्ति में गया हुआ जीव पुनः जन्ममरणरूप संसार में नहीं आता।

उत्तर—जीव और कर्म का सम्बन्ध छिकले और बीज के समान नहीं है, किन्तु इनका समवायसम्बन्ध है, इससे अनादि काल से जीव और उसमें कर्म और कर्तृत्वशक्ति का सम्बन्ध है। जो उसमें कर्म करने की शक्ति का भी अभाव मानोगे, तो सब जीव पाषाणवत् हो जायेंगे और मुक्ति को भोगने का भी सामर्थ्य नहीं रहेगा। जैसे अनादि काल का कर्मबन्धन छूटकर जीव मुक्त होता है, तो तुम्हारी नित्य मुक्ति से भी छूटके बन्धन में पड़ेगा। साधनों से सिद्ध हुआ पदार्थ नित्य कभी नहीं हो सकता और जो साधन-सिद्ध के विना मुक्ति मानोगे, तो कर्मों के विना ही बन्ध प्राप्त हो सकेगा।

अब सम्यक्त्व दर्शनादि के लक्षण 'आर्हत प्रवचन-संग्रह' 'परमागमसार' में कथित हैं। सम्यक् श्रद्धान, सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये चार मोक्ष मार्ग के साधन हैं। इनकी व्याख्या योगदेव ने की है। जिस रूप से जीवादि द्रव्य अवस्थित हैं, उसी रूप से जिनप्रतिपादित ग्रन्थानुसार विपरीत अभिनिवेशादिरहित जो 'श्रद्धा' अर्थात् जिनमत में प्रीति है, सो 'सम्यक् श्रद्धान' और 'सम्यग् दर्शन' है।

रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक् श्रद्धानमुच्यते। [आर्हतदर्शन]

जिनोक्त तत्त्वों में सम्यक् श्रद्धा करनी चाहिए, अर्थात् अन्यत्र कहीं नहीं।

यथावस्थिततत्त्वानां संक्षेपाद्विस्तरेण वा।
योऽवबोधस्तमत्राहुः सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः॥ [आर्हतदर्शन]

जिस प्रकार के जीवादि तत्त्व हैं, उनका संक्षेप वा विस्तार से जो बोध होता है, उसीको 'सम्यग् ज्ञान' बुद्धिमान् कहते हैं।

सर्वथाऽनवद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमुच्यते।
कीर्त्तितं तदहिंसादिव्रतभेदेन पञ्चधा॥
अहिंसासूनृतास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहाः॥ [आर्हतदर्शन]

सब प्रकार से निन्दनीय अन्य मतसम्बन्ध का त्याग 'चारित्र' कहाता है और अहिंसादि भेद से पाँच प्रकार का व्रत है। एक (अहिंसा) अर्थात् किसी प्राणिमात्र को न मारना। दूसरा (सूनृता) प्रिय वाणी बोलना। तीसरा (अस्तेय) अर्थात् चोरी न करना। चौथा (ब्रह्मचर्य्य)

अर्थात् उपस्थ इन्द्रिय का संयमन। और पाँचवाँ (अपरिग्रह) सब वस्तुओं का त्याग करना।

इनमें बहुत-सी अच्छी बातें हैं, अर्थात् अहिंसा और चोरी आदि निन्दनीय कर्मों का त्याग अच्छी बात है परन्तु ये सब अन्य मत की निन्दा करनी आदि दोषों से सब अच्छी बातें भी दोषयुक्त हो गई हैं। जैसे प्रथम सूत्र में लिखी है—'अन्य हरि हरादि का धर्म संसार से उद्धार करनेवाला नहीं।' क्या यह छोटी निन्दा है कि जिनके ग्रन्थ देखने से ही पूर्ण विद्या और धार्मिकता पाई जाती है, उसको बुरा कहना? और अपने महा असम्भव जैसा कि पूर्व लिख आये, वैसी बातों के कहनेवाले अपने तीर्थंकरों की स्तुति करना, केवल हठ और मूर्खता की बातें हैं। ऐसे कथन करनेवाले मनुष्यों को भ्रान्त और बालबुद्धि न कहा जाय तो क्या कहें? इसमें यही विदित होता है कि इनके आचार्य बड़े स्वार्थी थे, पूर्ण विद्वान् नहीं। क्योंकि जो सबकी निन्दा न करते तो ऐसी झूठी बातों में कोई न फसता, न उनका प्रयोजन सिद्ध होता। देखो! यह तो सिद्ध होता है कि जैनियों का मत डुबानेवाला और वेदमत सबका उद्धार करनेहारा है।

प्रकरणरत्नाकर और जैनियों के सिद्धान्तग्रन्थों से किया संग्रह

प्रकरणरत्नाकर भाग दूसरा, पत्र ६२७ में लिखा है कि—

चाहे कुछ भी न कर सके, एक अर्हन्तदेव को माने अर्थात् जैनमत ही को माने, क्योंकि जैनियों के वीतराग का कहा धर्म, वही धर्म तारनेहारा है, दूसरा कोई नहीं। जो जैनी के देव, वे ही देव हैं, अन्य हरिहरादि कुदेव हैं।

समीक्षक—हरिहरादि देव 'सुदेव' और इनके ऋषभदेवादि सब 'कुदेव' दूसरे लोग कहैं, तो क्या वैसा ही उनको बुरा न लगेगा।

प्रकरणरत्नाकर पृष्ठ ६२० में—

जिनमत के सिवाय न कोई तरा, न कोई सुनने में आया और न आवेगा।

[समीक्षक—] वाह! वाह!! क्या कहना!!!

प्रकरणरत्नाकर, दूसरा भाग, षष्ठीशतक मूलसूत्र—

जइ न कुणसि तव चरणं, न पढसि न गुणेसि देसि नो दाणम्।
ता इत्तियं न सक्किसि जं देवो इक्क अरिहन्तो॥ २॥

हे मनुष्य! जो तू तप चारित्र नहीं कर सकता, न सूत्र पढ़ सकता, न प्रकरणादि का विचार कर सकता और सुपात्रादि को दान नहीं दे सकता तो भी जो तू देवता एक अरिहन्त ही हमारे आराधना के योग्य सुगुरु, सुधर्म जैन-मत में श्रद्धा रखना सर्वोत्तम बात और उद्धार का कारण है॥ २॥

समीक्षक—भला, जो जैनी कुछ चारित्र न कर सके, न पढ़ सके, न दान देने का सामर्थ्य हो, तो भी 'जैन मत सच्चा है', क्या इतना कहने ही से वह उत्तम हो जाए? और अन्य मत वाले श्रेष्ठ भी अश्रेष्ठ हो जायें? २॥

रे जीव भव दुहाइं, इक्कं चिय हरइ जिणमयं धम्मं।
इयराणं परमन्तो, सुह कय्ये मूढ मुसिओसि॥ ३॥

—प्रकरणरत्नाकर भाग २। षष्टीशतक ६१। सूत्राङ्क ३॥

संक्षेप से अर्थ—रे जीव! एक ही जिनमत श्रीवीतरागभाषित धर्म संसार-सम्बन्धी जन्म-जरा-मरणादि दु:खों का हरणकर्त्ता है। इसी प्रकार सुदेव और सुगुरु भी जैन मत-वाले को जानना। इतर जो वीतराग ऋषभदेव से लेके महावीर पर्य्यन्त वीतराग देवों से भिन्न अन्य हरि, हर, ब्रह्मादि कुदेव हैं, उनकी अपने कल्याणार्थ जो जीव पूजा करते हैं, वे सब मनुष्य ठगाये गये हैं। इसका यह भावार्थ है कि जैनमत के सुदेव, सुगुरु तथा सुधर्म को छोड़ के अन्य कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्म को सेवने से कुछ भी कल्याण नहीं होता॥ ३॥

समीक्षक—अब विद्वानों को विचारना चाहिये कि कैसे निन्दायुक्त इनके धर्म के पुस्तक हैं॥ ३॥

मूल— अरिहं देवो सुगुरु, सुद्धं धम्मं च पंच नवकारो।
धन्नाणं कयच्छाणं, निरंतरं वसइ हिययम्मि॥

—प्रक० भा० २। षष्टी० ६१। सू० १॥

जो अरिहन् देवेन्द्रकृत पूजादिकन के योग्य, दूसरा पदार्थ उत्तम कोई नहीं, ऐसा जो देवों का देव शोभायमान अरिहन्त देव-ज्ञान क्रियावान्,

शास्त्रों का उपदेष्टा; शुद्ध कषायमलरहित सम्यक्त्व विनय दयामूल श्रीजिनभाषित जो धर्म है, वही दुर्गति में पड़नेवाले प्राणियों का उद्धार करनेवाला है और अन्य हरि-हरादि का धर्म संसार से उद्धार करनेवाला नहीं; और पञ्च अरिहन्तादिक परमेष्ठी तत्सम्बन्धी उनको नमस्कार; ये चार पदार्थ धन्य हैं, अर्थात् श्रेष्ठ हैं। अर्थात् दया, क्षमा, सम्यक्त्व ज्ञान, दर्शन और चारित्र यह जैनों का धर्म है॥ १॥

समीक्षक—जब मनुष्यमात्र पर दया नहीं वह दया न क्षमा, ज्ञान के बदले अज्ञान, दर्शन अन्धेर और चारित्र के बदले भूखे मरना कौन-सी अच्छी बात है। यह केवल मूर्खों को प्रलोभन देकर अपने मत में फसाने की बातें हैं, अर्थात् जो इनके आचार्य ऐसा न लिखें तो उनके मत में कौन फसे और जो न फसे तो उनका प्रयोजन सिद्ध न हो। जैनियों के वीतरागोक्त दया, क्षमा, ज्ञान, दर्शन, चारित्र यही हैं। इसमें **दया** का नाश, क्षुद्र जीव और अपने मत वालों के अतिरिक्त दूसरे किसी को न मानना, निन्दा करना, सुख न देना दया कहाँ? और **क्षमाशील** होते तो दूसरे की निन्दा और अपने मुख अपनी बड़ाई क्यों करते। तीसरा **ज्ञान** जो कि उनके जीव, अजीवादि नव तत्त्व हैं, उनका जानना सो भी ठीक-ठीक नहीं है। **सम्यक् दर्शन** उनके तीर्थंकरों को होता, तो सहस्रों प्रकार की असम्भव बातें क्यों लिखते? **चारित्र**—उपवास करना, स्नान न करना इत्यादि से भी क्या हो सकता है। इसलिए जो इतनी ही बातों का नाम धर्म मानकर फूले-फूले फिरना बेसमझ का काम है। तारनेवाला इनका धर्म नहीं, किन्तु डुबानेवाला है। देखो! हरि, हरादि श्रेष्ठ पुरुषों को कुदेव कहना और अपने मलीनों को देव कहना, अपने मत वालों के विना संसार से कोई भी नहीं तरा। यह केवल असम्भव और झूठी बात है।

यद्यपि दया और क्षमा अच्छी वस्तु है, तथापि पक्षपात में फँसने से दया अदया और क्षमा अक्षमा हो जाती है। इसका प्रयोजन यह है कि किसी जीव को दु:ख न देना; यह बात सर्वथा सम्भव नहीं हो सकती। क्योंकि दुष्टों को दण्ड देना भी दया में गणनीय है। जो एक दुष्ट को दण्ड न दिया जाय तो सहस्रों मनुष्यों को दु:ख प्राप्त हो, इसलिये

वह दया अदया और क्षमा अक्षमा हो जाय। यह तो ठीक है कि सब प्राणियों के दु:खनाश और सुख की प्राप्ति का उपाय करना दया कहाती है। केवल जल छान के पीना, क्षुद्र जन्तुओं को बचाना ही दया नहीं कहाती, किन्तु इस प्रकार की दया जैनियों के कथनमात्र ही है, क्योंकि वैसा वर्त्तते नहीं। क्या मनुष्यादि पर चाहे किसी मत में क्यों न हो, दया करके उसका अन्नपानादि से सत्कार करना और दूसरे मत के विद्वानों का मान्य और सेवा करना दया नहीं है?॥ १॥

और भी इनके आचार्य और माननेवालों की भूल देख लो।

प्रकरणरत्नाकर, भाग २, षष्ठीशतक, मूलसूत्र—

जिणवर आणा भंगं, उमग्ग उस्सुत्त लेसदेसणउ।
आणा भंगे पावंता जिणमय दुक्करं धम्मम्॥ ११॥

संक्षेप से अर्थ—जैन के धर्म को मिथ्यात्वी प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि बड़ा कठिन है। जिस प्रकार जिनाज्ञा का भङ्ग न हो, उस प्रकार करना चाहिए। जो जैन मार्ग से उलटा चलना, उसका नाम उन्मार्ग, जिन वचनों से उलटा बोलना उत्सूत्र, जिन आज्ञारहित जो धर्म हैं, वे सब पापफल के देनेवाले हैं और वे सब मिथ्यात्वी कहाते हैं॥ ११॥

समीक्षक—जो अपने ही मुख से अपनी प्रशंसा और अपने धर्म को बड़ा कहना और दूसरे की निन्दा करनी है, वह मूर्खता की बात है। क्योंकि प्रशंसा उसीकी ठीक है जिसकी दूसरे विद्वान् करें। अपने मुख से अपनी प्रशंसा तो चोर भी करते हैं, तो क्या वे प्रशंसनीय हो सकते हैं? इसी प्रकार की इनकी बातें हैं॥ ११॥

बहुगुणविज्झा निलओ, उस्सुत्त भासी तहावि मुत्तवो।
जह वरमणिजुत्तो विहु, विग्घकरो विसहरो लोए॥ १८॥

जैसे विषधर सर्प में मणि त्यागने योग्य है, वैसे उत्सूत्रभाषी, द्रव्यलिंगी अर्थात् अन्यमार्गी जो जैनमत में नहीं है, वह कितना बड़ा पण्डित हो, उसका त्याग कर देना ही जैनियों को उचित है॥ १८॥

समीक्षक—देखो! कितनी मूढ़ता की बात है कि अपने मत का कैसा भी दुराचारी हो, उसको मानना, अन्य मत का कितना ही श्रेष्ठ विद्वान् हो उसको जैन लोग कभी न मानें। इससे बड़ी मूर्खता और

पक्षपात की बात कौन होगी? क्या सुवर्ण को मल वा धूड़ में पड़े को कोई त्यागता है?॥ १८॥

इसी प्रकार बहुत से सूत्र रत्नसार भाग २, षष्ठीशतक में लिखे हैं। अर्थात् २९वें सूत्र में —

मूल—अइसय पाविय पावा, धम्मिअ पब्बेसु तोवि पावरया।
न चलंति सुद्ध धम्मा, धन्ना किविपाव पव्वेसु॥ २९॥

प्रकर० भाग २ । षष्ठी० सू० २९ [पृ० ६३९ पं० २४-२५]

अन्य दर्शनी कुलिङ्गी अर्थात् जैनमत विरोधी अन्यमार्गी अर्थात् जो जैनी न हो, उसका दर्शन भी न करना॥ २९॥

समीक्षक—यह बात कितने पामरपन की है। क्योंकि जो दूसरे का दर्शन करे, तो इनकी पोल निकल जाय॥ २९॥

और उसी के सत्ताईसवें सूत्र में—

मूल—नामंपि तस्स असुहं, जेण निदिट्ठाई मिच्छ पव्वाइ।
जेसिं अणुसंगाउ, धम्मीणवि होई पाव मइ॥ २७॥

जैन धर्म से विरुद्ध सब धर्म मनुष्यों को पापी करनेवाले हैं, इसलिए किसी के धर्म को न मानना॥ २७॥

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता है—सबको डुबोनेवाला जैन मार्ग है। क्योंकि सबकी सब प्रकार निन्दा करते हैं। इसलिए जिन्होंने ऐसा लिखा है वे ही महा अधर्मी थे। हाँ! ऐसा लिखते कि—सबकी सच्ची बातें मान लें और अपनी झूठी बातें छोड़ दें, तो धर्मात्मा गिने जाते॥ २७॥

और ३५वें सूत्र में—

मूल— हा हा गुरुअ अकज्झं, सामी न हु अच्छि कस्स पुक्करिमो।
कह जिण वयण कह सुगुरु, सावया कह इय अकज्झं॥३५॥

सर्वज्ञभाषित जिनवचन जैन सुगुरु कहाँ? और कहाँ उनसे विरुद्ध कुगुरु अर्थात् अन्य मार्गी के भाषित और उपदेशक अर्थात् हमारी सब बातें अच्छी, अन्य की सब बुरी॥ ३५॥

समीक्षक—हाँ! कूंजरी भी अपने बेर को खट्टे नहीं कहती। अर्थात् अपने मार्ग से भिन्न मार्गी की सेवा में बड़ा अकार्य्य अर्थात् पाप गिनते हैं॥ ३५॥

और देखो! प्रकरणरत्नाकर भाग २, मूल सूत्र—

सप्पो इक्कं मरणं, कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइ।
तो वरिसप्पं गहियुं, मा कुगुरुसेवणं भद्दम्॥ ३७॥

इस सूत्र में लिखा है कि जैन भिन्न कुगुरु सर्प्प से भी बुरे हैं। उनकी सेवा पूजा करना कभी न चाहिये। जो अन्यमार्गी की कुछ भी सेवा करेगा तो बहुत दुःख में पड़ेगा॥ ३७॥

समीक्षक—देखिये! कितने दुराग्रही हैं कि इनके सदृश कठोर, भ्रान्त, निन्दक, मूर्ख दूसरे मत वाले नहीं हैं। यह सब स्वार्थ की बातें हैं कि हमारा मान्य, हमारी सेवा और हमारी ही प्रतिष्ठा हो, अन्य किसी की न हो। तभी इनके चेले महामूढता में फसे हैं कि किसी अच्छे महात्मा पुरुष की सेवा, न दर्शन और संग भी नहीं करते। यह इनके दौर्भाग्य की बात है। जो सब मतवालों में योग्य पुरुषों की सेवा करते, उनके मार्ग की बातें सुनते और अपनी कहते तो उनके गुण [ग्रहण] और अपनी भूल को छोड़ कर, सत्यमार्ग जानकर अपने मनुष्य जन्म के फल को प्राप्त होते॥ ३७॥

प्रकरणरत्नाकर भाग २, मूल सूत्र—

किं भणिमो किं करिमो, ताण हयासाण धिट्ठ दुट्ठाणं।
जे दंसिऊण लिंगं, खिवंति न रयम्मि मुद्धजणम्॥ ४०॥

सं० अर्थ—अन्य मार्गी के कुगुरु मुनि का वेष धारण करके लोगों के लिये ऐसे हैं कि जैसे अन्धे सिंह की आँख खोलने को जाय, तो सिंह उसी को खाय। वैसे उन अन्य मार्गी कुगुरुओं का उपकार करना अपना नाश कर लेना है। इसलिये उनका उपकार कभी न करना चाहिये॥ ४०॥

समीक्षक—जैसे जैन लोग विचारते हैं, वैसे दूसरे मत वाले भी विचारें तो जैनियों की कितनी दुर्दशा हो? और उनका कोई किसी प्रकार का उपकार न करे तो उनके बहुत से काम नष्ट होकर कितना दुःख प्राप्त हो, वैसा अन्य के लिये जैनी लोग क्यों नहीं विचारते?॥ ४०॥

प्रकरत्नाकर भाग २, मूलसूत्र—

जह जह तुट्टइ धम्मो, जह जह दुट्ठाण होइ अइ उदउ।
समद्दिट्ठि जियाणं, तह तह उल्लसइ समत्तं॥ ४२॥

सं० अर्थ—जैसे-जैसे अन्य दर्शनी, त्रिदण्डी, परिव्राजक और विप्रादि दुष्टलोगों का अति उदय होता है, वैसे-वैसे जैनधर्म के सम्यक् दृष्टि जीवों का सम्यक्त्व विशेष प्रकाशित होता है॥ ४२॥

समीक्षक—यह बड़ा आश्चर्य है अर्थात् जैन के साधु भी आपस में लड़ मरते हैं। अब देखो! इन जैनों से अधिक ईर्ष्याद्वेषयुक्त, निन्दक दूसरा कौन होगा? और द्वेष ही पाप का मूल है, इसलिये जैनियों में पापाचर क्यों न हो? ॥ ४२॥

प्रकरणरत्नाकर, भाग २, शतक ६०, मूलसूत्र—

संगोवि जाण अहिउ, तेसिं धम्माइजे पकुव्वन्ति।
मुत्तूण चोरसंगं, करंति ते चोरियं पावा॥ ७५॥

इसका मुख्य आशय इतना है कि जैसे मूढजन चोर के संग से नासिका छेदादि दण्ड से भय नहीं करते, वैसे जैन भिन्न चोरधर्मों में स्थित जन भय नहीं करते॥ ७५॥

समीक्षक—यहाँ इतना ही वक्तव्य है कि जो स्वयं चोरधर्म वाले हैं, दूसरों के साथ अतीव ईर्ष्या, द्वेष आदि दुष्टता से युक्त जैसा जैनमत है, वैसा अन्य नहीं॥ ७५॥

जच्छ पसुमहिसलरका, पव्वं होमंति पाव नवमीए।
पुअंति तंपि सढ्डा, हा हीला वीयरायस्स॥ ७६॥

समीक्षक—देखो नौमी का नाम पापनौमी और गणेश चतुर्थी आदि व्रतों की निन्दा करना और अपने पञ्चखाण आदि व्रतों को श्रेष्ठ कहना मूढपुरुषों का काम है। क्या जैनियों के पजूसण आदि व्रत बुरे नहीं हैं, जिनसे महाकष्ट होता है? ये दोनों के झूठे और जो सत्यभाषणादि व्रत हैं, वे दोनों के सच्चे॥ ७६॥

प्रकरणरत्नाकर भाग २, शतक ६०—

किं सोपि जणणि जाओ जाणो जणणीइं किं अगो विद्धिं।
जइं मिच्छरओ जाओ, गुणेसु तह मच्छरं वहइ॥ ८१॥

वेसाण बंदियाणय, माहण डुंबाण जरकसिरकाणं।
भत्ता भरकट्ठाणं, वियाणं जंति दूरेणं॥ ८२॥

सं० अर्थ—जैनमत विरोधी सब मिथ्यात्वी अर्थात् मिथ्या धर्म वाले हैं। वे क्यों जन्मे और जो जन्मे तो बढे क्यों? अर्थात् शीघ्र ही नष्ट हो जाते तो अच्छा होता॥ ८१॥

इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जो वेश्या, चारण, भाटादि लोगों, ब्राह्मण, यक्ष, गणेशादिक मिथ्यादृष्टि देवी आदि देवताओं का भक्त है, जो इनके माननेवाले हैं, वे सब डूबने और डुबानेवाले हैं। जो देव देवी आदि को मानते हैं वे दुःख देते हैं। क्योंकि उन्हीं के पास वे सब वस्तुएँ माँगते और बलिदान मांगते हैं। वीतरागियों के पास नहीं जाते॥ ८२॥

समीक्षक—देखो! जैनमत की दया की लहरें कि अपने मत से भिन्न मनुष्यों का जन्म होना और बढना अच्छा नहीं मानते, किन्तु उनका नाश ही होना अच्छा मानते हैं, तो दया और क्षमा कहाँ रही। जब अन्य के देव-देवियों को नहीं मानते, तो अपनी शासनदेवी आदि हिंसक जिसने थप्पड़ मारके मनुष्य की आँख निकाल दी, उसके बदले बकरे की आँख निकालकर उस मनुष्य के लगादी, उसको क्यों मानते हैं? क्या यह दुर्गा और काली की छोटी बहिन नहीं है?॥ ८१-८२॥

रत्नसार भाग १ पृष्ठ ६७ में देखो क्या लिखा है—मरुतदेवी पथिकों को पत्थर की मूर्ति होकर सहाय करती थी।

इसको भी सच न मानना चाहिये।

प्रकरणरत्नाकर, भाग २, षष्ठीशतक, मूलसूत्र—

सुद्धे मग्गे जाया, सुहेण गच्छत्ति सुद्ध मग्गंमि।
जे पुण अमग्गजाया, मग्गे गच्छन्ति ते चुय्यं॥ ८३॥

सं० अर्थ—जो जैन कुल में जन्म लेकर मुक्ति को जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं। परन्तु जैनभिन्न कुल में जन्मे हुये मिथ्यात्वी अन्यमार्गी मुक्ति को प्राप्त होवे, इसमें बड़ा आश्चर्य है। अर्थात् मुक्ति ही नहीं होती। और कुमार्ग अर्थात् जैनभिन्न सम्प्रदाय में उत्पन्न होकर अर्थात् चेले चांटी होकर सुमार्ग में चले, यह बड़ा आश्चर्य है। क्योंकि जो उन्मार्गी अर्थात् जैनभिन्न मार्ग में हैं, वे सब नरक में पड़ेंगे जो ऐसा

जानके भी जैनमत में नहीं आवे॥ ८३॥

समीक्षक—क्या जैनकुल में कोई दुष्ट नहीं होता और सभी मुक्ति को जायेंगे? और अन्य कुलों में कोई भी श्रेष्ठ नहीं और मुक्ति को न जायेगा? क्या पागलपन की बातें हैं? महामूढमनुष्यों के विना और कौन मान सकता है? ॥ ८३॥

प्रकरणरत्नाकर, भाग २, शतक ६०—

तिच्छ्यराणं पूआ, सम्मत्त गुणाणकारिणी भणिया।
साविय मिच्छत्तयरी, जिण समये देसिया पूआ॥ ९०॥

सं० अर्थ—जिन मूर्तियों की पूजा सार, इससे भिन्न अन्य मार्गियों की मूर्तिपूजा असार है। जो जिन आज्ञा को पालता है, वह तत्त्वज्ञानी, और जो नहीं पालता है, वह तत्त्वज्ञानी नहीं॥ ९०॥

समीक्षक—वाह! क्या कहना!! तुम्हारी मूर्त्ति पाषाणादि जड़ पदार्थों की नहीं? जैसी वैष्णवादि की हैं, वैसी ही तुम्हारी पाषाणादिपूजा है। जैसी तुम्हारी मिथ्या है, वैसी ही वैष्णवादिकों की भी मिथ्या है। जैसे तुम जैनी तत्त्वज्ञानी बनते हो और अन्य को अतत्त्वज्ञानी बनाते हो। इससे विदित होता है कि तुम्हारे मत में तत्त्वज्ञान नहीं है॥ ९०॥

प्रकरणरत्नाकर, भाग २, शतक ६०, मूलसूत्र—

जिण आणाए धम्मो, आणारहि आण फुडं अहमुत्ति।
इय मुणिऊणय तत्तं, जिण आणाए कुणहु धम्मं॥ ९२॥

सं० अर्थ—जिनदेव की आज्ञा, क्षमा, दयादि रूप धर्म हैं, अन्य सब अधर्म॥ ९२॥

समीक्षक—क्या जैनमत से भिन्न पुरुष सत्य आज्ञा करे, वह धर्म न मानना चाहिये। हां! जो जैनमतस्थ पुरुषों के मुख-जिह्वा चमड़े-हाड की न होंगी औरों के चमड़े-हाड की होंगी। इससे उन्हीं के मुख के वचन की बड़ाई करना, जानो भांडों के बड़े भाई की बातें हैं॥ ९२॥

प्रकरणरत्नाकर, भाग २, शतक ६०, मूलसूत्र—

वन्नेमि नारयाउवि, जेसिं दुरकाइ सम्भरं ताणम्।
भव्वाण जणइ हरिहर, रिद्धि समिद्धी वि उद्धोसं॥ ९५॥
[इअराण ठक्कुराणवि, आणाभंगेण होइ मरण दुहं।]

किं पुण तिलोअ पहुणों, जिणिंद देवाइ देवस्स॥ ९८॥

इसका मुख्य तात्पर्य यह है कि जो हरि हरादि की विभूति है, वह नरक का हेतु है, उसको देखके जैनियों के रोमांच खड़े हो जाते हैं। जैसे राजाज्ञा भंग करने से मरण तक दु:ख पाता है जिनेन्द्र आज्ञाभङ्ग से क्यों न जन्म मरण दु:ख पावेगा॥ ९५, ९८॥

समीक्षक—देखिए! जैन लोग दूसरे की उन्नति नहीं देख सकते। देखकर भीतर जलते हैं अर्थात् चाहते होंगे कि यह विभूति हमको मिल जाय। बहुधा वैसे व्यवहार भी करते होंगे। यह फोकट राजाज्ञाभंग के दृष्टान्त से मूर्खों को भय दिखलाकर मूंडने की बातें हैं और राजाज्ञा का दृष्टान्त इसलिये देते हैं कि ये जैन लोग राज्य के बड़े खुशामदी, झूठे और डरपुकने हैं। क्या झूठी बात भी राजा की मान लेनी चाहिये? जो ईर्ष्याद्वेषी हो, तो जैनियों से बढ़के दूसरा कोई भी न होगा॥ ९५, ९८॥

प्रकरणरत्नाकर, भाग २, शतक ६०, मूलसूत्र—

जो देइ सुद्ध धम्मं, सो परमप्पा जयम्मि न हु अन्नो।
किं कप्पद्दुम सरिसो, इयर तरू होइ कइयावि॥ १०१॥

सं० अर्थ—मूर्ख लोग वे हैं जो जैनधर्म से विरुद्ध हैं और जो जिनेन्द्रभाषितधर्मोपदेष्टा हैं, वे तीर्थंकरों के तुल्य हैं। उनके तुल्य दूसरा कोई भी नहीं॥ १०१॥

समीक्षक—क्यों न हो, जो जैनी लोग छोकरबुद्धि न होते तो ऐसी बातें क्यों मानते और क्यों करते? जैसे जैनमार्ग के उपदेष्टा को अच्छा मानते हो, वैसे दूसरे को क्यों नहीं मानते? यह सब तुम्हारा अज्ञान का माहात्म्य है॥ १०१॥

प्रकरणरत्नाकर, भाग २, शतक ६०, मूल सूत्र—

मूल—जे अमुणिअ गुणदोषा ते कहअ वुहाण हंतिम झच्छा।
अहते विहुमझच्छा ता विस अमिआण तुल्लत्तं॥१०२॥

मूल— मूल जिणिदं देवो, तव्वयणं गुरुजणं महासयाणं।
सेसं पावट्ठाणं, परमप्पाणं च वज्जेमि॥ १०३॥

सं० अर्थ—जिनेन्द्र देव, तदुक्त सिद्धान्त और उपदेष्टा ग्राह्य और सब अन्य मत के वचन, सिद्धान्त और उपदेष्टाओं का त्याग करना

चाहिये॥ १०२, १०३॥

समीक्षक—यह तुम्हारा हठ, पक्षपात और अविद्या का फल है। क्योंकि तुम्हारी थोड़ी-सी बात छोड़कर सब बातें त्यक्तव्य हैं। जिसको थोड़ी-सी बुद्धि होगी वह जैनियों के देव, सिद्धान्तग्रन्थ और उपदेष्टाओं को देखे, सुने, विचारे, तो उसी समय निःसन्देह छोड़ देगा॥ १०२,१०३॥

मूल— वयणे वि सुगुरु जिणवल्लहस्स केसिं न उल्लसइ सम्मं।
अह कह दिणमणि तेयं, उलुआणं हरइ अंधत्तं॥ १०८

—प्रक० भा० २। षष्टी० सू० १०८॥

सं० अ०—जो जिनवचन के अनुकूल चलते हैं, वे पूजनीय और जो विरुद्ध चलते हैं, वे अपूज्य हैं। जैन गुरुओं को मानना अर्थात् अन्यमार्गियों को न मानना॥ १०८॥

समीक्षक—भला, जो जैन लोग अन्य अज्ञानियों को पशुवत् चेले करके न बाँधते तो उनके जाल में से छूटकर, अपनी मुक्ति के साधन कर, जन्म सफल कर लेते। भला जो कोई तुमको कुमार्गी, कुगुरु, मिथ्यात्वी और कूपदेष्टा कहैं, तो तुमको कितना दुःख लगे? वैसे ही जो तुम दूसरे को दुःखदायक हो, इसीलिये तुम्हारे मत में असार बातें बहुत-सी भरी हैं॥ १०८॥

मूल— जे रज्ज धणाईणं कारणभूया हवंति वावारा।
तेवि हु अइपावजुया, धन्ना छड्डंति भवभीया॥ ११९

—प्रक० भा० २। षष्टी० ११९॥

सं० अर्थ—जो मृत्युपर्यन्त दुःख हो तो भी कृषि-व्यापारादि कर्म जैनी लोग न करें, क्योंकि ये कर्म नरक में लेजाने वाले हैं॥ ११९॥

समीक्षक—अब कोई जैनियों से पूछे कि तुम व्यापारादि कर्म क्यों करते हो? इन कर्मों को क्यों नहीं छोड़ देते? और जो छोड़ देओ तो तुम्हारे शरीर का पालन-पोषण भी न हो सके और जो तुम्हारे कहने से सब लोग छोड़ दें, तो तुम क्या पत्थर खाके जीओगे? ऐसा अत्याचार का उपदेश करना सर्वथा व्यर्थ है। क्या करें बिचारे! विद्या, सत्सङ्ग के विना जो मन में आया, सो बक दिया॥ ११९॥

मूल— तइया हमाण अहमा, कारणरहिया अनाणगव्वेण।

जे जपंति उस्सुत्तं, तेसिं धिद्धिच्छ पंडिच्चं॥ १२१॥

—प्रक० भा० २। षष्टी० सू० १२१॥

सं० अर्थ—जो जैनागम से विरुद्ध शास्त्रों के माननेवाले हैं, वे अधमाऽधम हैं। चाहें कोई प्रयोजन भी सिद्ध होता हो, तो भी जैनमत से विरुद्ध न बोले, न माने। चाहें कोई प्रयोजन सिद्ध होता है, तो भी अन्य मत का त्याग कर दे॥ १२१॥

समीक्षक—तुम्हारे मूलपुरुषा से लेके आजतक जितने हो गये और होंगे, उन्होंने विना दूसरे मत को गालिप्रदान के अन्य कुछ भी दूसरी बात न की और न करेंगे। भला, जहाँ-जहाँ जैनी लोग अपना प्रयोजन सिद्ध होना देखते हैं, वहाँ चेलों के भी चेले बन जाते हैं, तो ऐसी मिथ्या लम्बी-चौड़ी बातों के हाँकने में तनिक भी लज्जा नहीं आती, यह बड़े शोक की बात है॥ १२१॥

मूल— जं वीरजिणस्स जिओ, मिरई उस्सुत्त लेसदेसणओ।
सागर कोडाकोडिं, हिंडइ अइ भीमभवरण्णे॥ १२२॥

—प्रक० भा० २। षष्टी० सू० १२२॥

सं० अर्थ—जो कोई ऐसा कहे कि जैन साधुओं में धर्म है, हमारे और अन्य में भी धर्म है, तो वह मनुष्य क्रोड़ान्क्रोड़ वर्ष तक नरक में रहकर फिर भी नीच जन्म पाता है॥ १२२॥

समीक्षक—वाह रे! वाह!! विद्या के शत्रुओ! तुमने यही विचारा होगा कि हमारे मिथ्या वचनों का कोई खण्डन न करे, इसीलिए यह भयङ्कर वचन लिखा है, सो असम्भव है। अब कहां तक तुमको समझावें? तुमने तो झूठ, निन्दा और अन्य मतों से वैर-विरोध करने पर ही कमर बांध अपना प्रयोजन सिद्ध करना, मोहनभोग के समान समझ लिया है॥ १२२॥

मूल— दूरे करणं दूरम्मि, साहणं तह पभावणा दूरे।
जिण धम्म सद्दहाणं, पि तिरकदुरकाइ निट्ठवइ॥१२७॥

—प्रक० भा० २। षष्टी० सू० १२७॥

सं० अर्थ—जिस मनुष्य से जैन धर्म का कुछ भी अनुष्ठान न हो सके तो भी जो **'जैन धर्म सच्चा है, अन्य कोई नहीं'** इतनी श्रद्धामात्र

ही से दुःखों से तर जाता है॥ १२७॥

समीक्षक—भला! इससे अधिक मूर्खों को अपने मतजाल में फसाने की दूसरी कौनसी बात होगी? क्योंकि कुछ कर्म करना न पड़े और मुक्ति हो ही जाए, ऐसा भूंदू मत कौनसा होगा?॥ १२७॥

मूल— कइया होही दिवसो, जइया सुगुरूण पायमूलम्मि।
उस्सुत्त लेसविसलव, रहिओ निसुणेसु जिणधम्मं॥ १२८॥

—प्रक० भा० २। षष्टी० सू० १२८॥

सं० अर्थ—मनुष्य 'जिनागम' अर्थात् '**जैनों के शास्त्रों को सुनूँगा, उत्सूत्र अर्थात् अन्य मत के ग्रन्थों को कभी न सुनूँगा**' इतनी इच्छामात्र ही से दुःखसागर से तर जाता है॥ १२८॥

समीक्षक—यह भी बात मूर्खों को फसाने के लिए है। क्योंकि इस पूर्वोक्त इच्छा से यहाँ के दुःखसागर से भी नहीं तरता और पूर्वजन्म के भी सञ्चित पापों के दुःखरूपी फल भोगे विना नहीं छूट सकता। जो ऐसी-ऐसी झूठ अर्थात् विद्याविरुद्ध बात न लिखते तो इनके अविद्यारूप ग्रन्थों को वेदादिशास्त्र देख-सुन सत्याऽसत्य जानकर इनके पोकल ग्रन्थों को छोड़ देते। परन्तु ऐसा जकड़कर इन अविद्वानों को बांधा है कि इस जाल से कोई एक बुद्धिमान् सत्संगी चाहें छूट सके तो सम्भव है, परन्तु अन्य जड़बुद्धियों का छूटना तो अति कठिन है॥ १२८॥

मूल— जह्मा जेणहिं भणियं, सुय ववहारं विसोहियं तस्स।
जायइ विसुद्ध बोही, जिणआणा राहगत्ताओ॥ १३८॥

—प्रक० भा० २। षष्टी० सू० १३८॥

सं० अर्थ—जो जिनाचार्यों ने कहे सूत्र, निरुक्ति, वृत्ति, भाष्य, चूर्णी मानते हैं, वे ही शुभ व्यवहार और दुःसह व्यवहार के करने से चारित्रयुक्त होकर सुखों को प्राप्त होते हैं, अन्य मत के ग्रन्थ देखने से नहीं॥ १३८॥

समीक्षक—क्या अत्यन्त भूखे मरने आदि कष्ट सहने को 'चारित्र' कहते हैं? जो भूखा-प्यासा मरना आदि ही चारित्र है तो बहुत से मनुष्य अकाल वा जिनको अन्नादि नहीं मिलते, भूखे मरते हैं, वे शुद्ध होकर शुभ फलों को प्राप्त होने चाहिएँ। सो न ये शुद्ध होवें और न तुम, किन्तु

पित्तादि के प्रकोप से रोगी होकर सुख के बदले दुःख को प्राप्त होते हैं।

'धर्म' तो न्यायाचरण, ब्रह्मचर्य्य, सत्यभाषणादि है और असत्यभाषण अन्यायाचरणादि 'पाप' है। और सबसे प्रीतिपूर्वक परोपकारार्थ वर्त्तना 'शुभ चरित्र' कहाता है, जैनमतस्थों का भूखा-प्यासा रहना आदि धर्म नहीं। इन सूत्रादि को मानने से थोड़ा सा सत्य और अधिक झूठ को प्राप्त होकर दुःखसागर में डूबते हैं॥ १३८॥

[मूल— जंचिअ लोओ मन्नइ, तंचिअ मन्नंति सयल लोआवि।
जं मन्नइ जिणनाहो, तंचिअ मन्नंति किवि विरला॥ १४६॥]

[मूल—साहंमि आउ अहिओ, बंधसुआईसु जाण अणुराओ।
तेसिं नहु सम्मत्तं, विन्नेयं समयनीईये॥१४७॥]

मूल— जइ जाणिसि जिण नाहो, लोयायारा विपरकए भूओ।
ता तं तं मन्नंतो, कह मन्नसि लोअ आयारं॥ १४८॥

[मूल—जे मन्नेवि जिणिदं, पुणोवि पणमन्ति इअर देवाणं।
मिच्छत्त सन्निवायग, गच्छाणं ताण कोविज्जो॥१४९॥]

—प्रक० भा० २। षष्टी० सू०[१४६-१४७ पृ०६९१]
१४८ [१४९ पृ० ६९२]॥

सं० अर्थ—जो उत्तम प्रारब्धवान् मनुष्य होते हैं, वे ही जिन-धर्म का ग्रहण करते हैं। अर्थात् जो जिनधर्म का ग्रहण नहीं करते, उनका प्रारब्ध नष्ट है। [१४६]

समीक्षक—क्या यह बात मूर्खता की और झूठ नहीं है? क्या अन्य मत में श्रेष्ठ-प्रारब्धी और जैनमत में नष्ट-प्रारब्धी कोई भी नहीं है?

और जो यह कहा "कि 'साधर्मी' अर्थात् जैन धर्मवाले आपस में क्लेश न करें किन्तु प्रीतिपूर्वक वर्त्तें," इससे यह बात सिद्ध होती है कि दूसरे के साथ कलह करने में बुराई जैन लोग नहीं मानते होंगे। यह भी इनकी बात अयुक्त है, क्योंकि सज्जन पुरुष सज्जनों के साथ प्रेम और दुष्टों को शिक्षा देकर सुशिक्षित करते हैं। [१४७]

और जो यह लिखा कि "ब्राह्मण, 'त्रिदण्डी, 'परिव्राजकाचार्य' अर्थात् संन्यासी और 'तापसादि' अर्थात् वैरागी आदि सब जैनमत के

शत्रु हैं।'' अब देखिये कि सबको शत्रुभाव से देखते और निन्दा करते हैं तो जैनियों की दया और क्षमारूप धर्म कहां रहा? क्योंकि जब दूसरे पर द्वेष रखना, दया क्षमा का नाश और इसके समान कोई दूसरा हिंसारूप दोष नहीं। जैसे द्वेषमूर्त्तियाँ जैनी लोग हैं, वैसे दूसरे थोड़े ही होंगे॥ १४८॥

ऋषभदेव से लेके महावीरपर्यन्त २४ तीर्थंकरों को रागी, द्वेषी, मिथ्यात्वी कहैं और जैनमत माननेवालों को सन्निपातज्वर से फसे हुए मानें और उनका धर्म नरक और विष के समान समझें, तो जैनियों को कितना बुरा लगेगा? [१४९]

इसलिये जैनी लोग निन्दा और परमतद्वेषरूप नरक में डूबकर महाक्लेश भोग रहे हैं, इस बात को छोड़ दें, तो बहुत अच्छा होवे।

मूल— एगो अगुरू एगो वि सावगो चेईआणि विवहाणि।
तच्छयजं जिणदव्वं, परुप्परं तं न विच्चंति॥ १५०॥

—प्रक० भा० २। षष्टी० सू० १५०॥

सं० अर्थ—सब श्रावकों के देव गुरु धर्म एक हैं 'चैत्यवन्दन' अर्थात् जिन-प्रतिबिम्ब मूर्त्ति देवल और जिन-द्रव्य की रक्षा और मूर्त्ति की पूजा करना धर्म है॥ १५०॥

समीक्षक—अब देखो! जितना मूर्त्तिपूजा का झगड़ा चला है, वह सब जैनियों के घर से। और पाखण्डों का मूल भी जैनमत है॥ १५०॥

[सन् १८७६ में बनारस जैनप्रभाकर प्रेस में मुद्रित] श्राद्धदिनकृत्य पृष्ठ १ में मूर्त्तिपूजा के प्रमाण—

नवकारेण विवोहो॥ १॥ अणुसरणं सावउ॥ २॥ वयाइं इमे॥ ३॥ जोगो॥ ४॥ चिय वन्दणगो॥ ५॥ यच्चरखाणं तु विहि पुब्वं॥ ६॥ इत्यादि—

श्रावकों को पहिले द्वार में नवकार का जप कर जागना॥ १॥

दूसरा नवकार जपे पीछे ''मैं श्रावक हूँ'' स्मरण करना॥ २॥

तीसरे 'अणुव्रतादिक' हमारे कितने हैं॥ ३॥

चौथे द्वारे चार वर्ग में अग्रगामी मोक्ष है, उसका कारण ज्ञानादिक है सो 'योग', उसका सब अतीचार निर्मल करने से छः आवश्यक कारण सो भी उपचार से योग कहाता है, सो योग कहेंगे॥ ४॥

पाँचवें 'चैत्यवन्दन' अर्थात् मूर्त्ति को नमस्कार द्रव्यभाव पूजा कहेंगे॥ ५॥

छठा प्रत्याख्यान द्वार नवकारसीप्रमुख विधिपूर्वक कहूंगा, इत्यादि॥ ६॥

तत्त्वविवेक पृष्ठ १६९—जो मनुष्य लकड़ी-पत्थर को देवबुद्धि कर पूजता है, वह अच्छे फलों को प्राप्त होता है।

समीक्षक—जो ऐसा हो तो सब कोई दर्शन करके सुखरूप फलों को प्राप्त क्यों नहीं होते?

रत्नसार भाग १ पृष्ठ १०—पार्श्वनाथ की मूर्त्ति के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं।

कल्पभाष्य पृष्ठ ५१ में लिखा है कि—''सवालाख मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया'' इत्यादि मूर्त्तिपूजाविषय में इनका बहुत सा लेख है, इसी से समझा जाता है कि मूर्त्तिपूजा का मूलकारण जैनमत है।

और कल्पभाष्य में लिखा है कि—''ऋषभदेव से लेके महावीर पर्य्यन्त २४ तीर्थङ्कर सब मोक्ष को प्राप्त हुए।''

अब और थोड़ी सी असम्भव बातें इनकी सुनो—

विवेकसार पृष्ठ ७८—एक करोड़ साठ लाख कलशों से महावीर को जन्म समय में स्नान कराया।

श्राद्धनिकृत्य आत्मनिन्दा भावना पृष्ठ ३१ में लिखा है कि— बावड़ी, कुआ और तालाब न बनवाना चाहिये।

समीक्षक—भला, जो सब मनुष्य जैनमत में हो जायें और कुआ, तालाब, बावड़ी आदि कोई भी न बनवावें, तो सब लोग जल कहाँ से पियें?

प्रश्न—तालाब आदि बनवाने से जीव पड़ते हैं, उससे बनवानेवाले को पाप लगता है, इसलिये हम जैनी लोग इस काम को नहीं करते।

उत्तर—तुम्हारी बुद्धि नष्ट क्यों हो गई? क्योंकि जैसे क्षुद्र-क्षुद्र जीवों के मरने से पाप गिनते हो, तो बड़े-बड़े गाय आदि पशु और मनुष्यादि प्राणियों के जल पीने आदि से महापुण्य होगा, उसको क्यों नहीं गिनते?

तत्त्वविवेक पृष्ठ १९६—इस नगरी में एक नन्द मणिकार सेठ ने बावड़ी बनवाई, उससे धर्मभ्रष्ट होकर सोलह महारोग हुए, मरके उसी बावड़ी में मेडूका हुआ, महावीर के दर्शन से उसको जातिस्मरण हो गया। महावीर कहते हैं कि मेरा आना सुनकर वह पूर्व जन्म के धर्माचार्य्य जान वन्दना को आने लगा। मार्ग में श्रेणिक के घोड़े की टाप से मरकर शुभ ध्यान के योग से दर्दुराङ्क नाम महर्द्धिक देवता हुआ। अवधिज्ञान से मुझको यहाँ आया जान वन्दनापूर्वक ऋद्धि दिखाके गया।

समीक्षक—इत्यादि विद्याविरुद्ध असम्भव मिथ्या बात के कहनेवाले महावीर को सर्वोत्तम मानना महाभ्रान्ति की बात है।

श्राद्धदिनकृत्य० पृष्ठ ३६ में लिखा है कि—मृतकवस्त्र साधु ले लेवें।

समीक्षक—देखिये! इनके साधु भी महाब्राह्मण के समान हो गये। वस्त्र तो साधु लेवें, परन्तु मृतक के आभूषण कौन लेवे? बहुमूल्य होने से घर में रख लेते होंगे, तो आप कौन हुए?

रत्नसार पृष्ठ १०५—भूंजना, कूटना, पीसना, अन्न पकाने आदि में पाप होता है।

समीक्षक—अब देखिये इनकी विद्याहीनता! भला ये कर्म न किये जायें, तो मनुष्यादि प्राणी कैसे जी सकें? और जैनी लोग भी पीड़ित होकर मर जायें।

रत्नसार पृष्ठ १०४—बगीचा लगाने से एक लक्ष पाप माली को लगता है।

समीक्षक—जो माली को लक्ष पाप लगता है, तो अनेक जीव पुष्प, फल और छाया से आनन्दित होते हैं, तो करोड़ों गुणा पुण्य भी होता ही है। इस पर कुछ ध्यान भी न दिया, यह कितना अन्धेर है?

तत्त्वविवेक पृष्ठ २०२—एक दिन लब्धि साधु भूल से वेश्या के घर में चला गया और धर्म से भिक्षा मांगी। वेश्या बोली कि यहां धर्म का काम नहीं, किन्तु अर्थ का काम है, तो उस लब्धि साधु ने साढ़े बारह लाख अशर्फी-वर्षा, उसके घर में कर दी।

समीक्षक—इस बात को सत्य विना नष्टबुद्धि पुरुष के कौन मानेगा?

रत्नसार भाग १ पृष्ठ ६७ में लिखा है कि—एक पाषाण की मूर्त्ति घोड़े पर चढ़ी हुई, उसका जहाँ स्मरण करे, वहां उपस्थित होकर रक्षा करती है।

समीक्षक—कहो जैनीजी! आजकल तुम्हारे यहां चोरी, डाका आदि और शत्रु से भय होता ही है तो तुम उसका स्मरण करके अपनी रक्षा क्यों नहीं करा लेते हो? क्यों जहाँ-तहाँ पुलिस आदि राज-स्थानों में मारे-मारे फिरते हो?

कल्पसूत्रभाष्य पृष्ठ १०८—केशलुञ्चन करे, गौ के बालों के तुल्य रक्खे।

समीक्षक—अब कहिये जैन लोगो! तुम्हारा दया धर्म कहाँ रहा? क्या यह हिंसा अर्थात् चाहें अपने हाथ से लुञ्चन करे, उसका गुरु करे वा अन्य कोई, परन्तु कितना बड़ा कष्ट उस जीव को होता होगा? जीव को कष्ट देना ही हिंसा कहाती है।

विवेकसार पृष्ठ ७—संवत् १६३३ के साल में श्वेताम्बरों में से ढूँढिया और ढूँढियों में से तेरहपन्थी आदि ढोंगी निकले हैं। ढूंढिये लोग पाषाणादि मूर्त्ति को नहीं मानते और वे भोजन-स्नान को छोड़ सर्वदा मुख पर पट्टी बांधे रहते हैं। और जती आदि भी जब पुस्तक बाँचते हैं, तभी मुख पर पट्टी बांधते हैं, अन्य समय नहीं।

प्रश्न—मुख पट्टी अवश्य बांधना चाहिए, क्योंकि 'वायुकाय' अर्थात् जो वायु में सूक्ष्म शरीरवाले जीव रहते हैं, वे मुख के बाफ की उष्णता से मरते हैं और उसका पाप मुख पर पट्टी न बांधनेवाले पर होता है, इसलिये हम लोग मुख पर पट्टी बाँधना अच्छा समझते हैं।

उत्तर—यह बात विद्या और प्रत्यक्षादि प्रमाणादि की रीति से अयुक्त है। क्योंकि जीव अजर-अमर हैं, फिर वे मुख की बाफ से कभी नहीं मर सकते। इनको तुम भी अजर-अमर मानते हो।

प्रश्न—जीव तो नहीं मरता, परन्तु जो मुखके उष्ण वायु से उनको पीड़ा पहुँचती है, उस पीड़ा पहुँचानेवाले को पाप होता है, इसलिए मुख पर पट्टी बाँधना अच्छा है।

उत्तर—यह भी तुम्हारी बात सर्वथा असम्भव है। क्योंकि पीड़ा

दिए विना, किसी जीव का किञ्चित् भी निर्वाह नहीं हो सकता। जब मुखके वायु से तुम्हारे मत में जीवों को पीड़ा पहुँचती है, तो चलने, फिरने, बैठने, हाथ उठाने और नेत्रादि के चलाने में भी पीड़ा अवश्य पहुँचती होगी, इसलिए तुम भी जीवों को पीड़ा पहुँचाने से पृथक् नहीं रह सकते।

प्रश्न—हाँ, जब तक बन सके, वहाँ तक जीवों की रक्षा करनी चाहिए और जहाँ हम नहीं बचा सकते, वहाँ अशक्त हैं। क्योंकि सब वायु आदि पदार्थों में जीव भरे हुए हैं। जो हम मुख पर कपड़ा न बाँधें तो बहुत जीव मरें। कपड़ा बाँधने से कम मरते हैं।

उत्तर—यह भी तुम्हारा कथन युक्तिशून्य है। क्योंकि कपड़ा बाँधने से जीवों को अधिक दु:ख पहुँचता है। जब कोई मुख पर कपड़ा बाँधे, तो उसका मुख का वायु रुक के, नीचे वा पार्श्व और मौन समय में नासिका द्वारा इकट्ठा होकर वेग से निकलता है, उससे उष्णता अधिक होकर जीवों को विशेष पीड़ा तुम्हारे मताऽनुसार पहुँचती होगी। देखो! जैसे घर वा कोठरी के सब दरवाजे बंध किये वा पड़दे डाले जायें तो उसमें उष्णता विशेष होती है, खुला रखने से उतनी नहीं होती, वैसे मुख पर कपड़ा बाँधने से उष्णता अधिक होती है और खुला रखने से न्यून। वैसे तुम अपने मतानुसार जीवों को अधिक दु:खदायक हो। और जब मुख बंध किया जाता है, तब नासिका के छिद्रों से वायु रुक, इकट्ठा होकर वेग से निकलता हुआ, जीवों को अधिक धक्का और पीड़ा करता होगा।

देखो! जैसे कोई मनुष्य अग्नि को मुख से फूँकता और कोई नली से, तो मुख का वायु फैलने से कम बल और नली का वायु इकट्ठा होने से अधिक बल से अग्नि में लगता है, वैसे ही मुख पर पट्टी बाँधकर वायु को रोकने से नासिका द्वारा अति वेग से निकलकर जीवों को अधिक दु:ख देता है। इससे मुख-पट्टी बाँधनेवालों से नहीं बाँधनेवाले धर्मात्मा हैं।

और मुख पर पट्टी बाँधने से अक्षरों का यथायोग्य स्थान-प्रयत्न के साथ उच्चारण भी नहीं होता। निरनुनासिक अक्षरों को सानुनासिक

बोलने से तुमको दोष लगता है। तथा मुख पट्टी बाँधने से दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ता है, क्योंकि शरीर के भीतर दुर्गन्ध भरा है। शरीर से जितना वायु निकलता है, वह दुर्गन्धयुक्त प्रत्यक्ष है। जो वह रोका जाय तो दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ जाय, जैसा कि बंध 'जाजरूर' अधिक दुर्गन्धयुक्त और खुला हुआ न्यून दुर्गन्धयुक्त होता है, वैसे ही मुख-पट्टी बाँधने, दन्तधावन, मुखप्रक्षालन, स्नान, अच्छे प्रकार वस्त्र न धोने से तुम्हारे शरीरों से अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होकर संसार में बहुत रोग करके जीवों को जितनी पीड़ा पहुँचाते हैं, उतना पाप तुमको अधिक होता है।

जैसे मेला आदि में अधिक दुर्गन्ध होने से विसूचिका अर्थात् हैजा आदि बहुत प्रकार के रोग उत्पन्न होकर जीवों को दु:खदायक होते हैं, और न्यून दुर्गन्ध होने से रोग भी न्यून होकर जीवों को बहुत दु:ख नहीं पहुँचता। इससे तुम अधिक दुर्गन्ध बढ़ाने में अधिक अपराधी; और जो मुख-पट्टी नहीं बाँधते, दन्तधावन, मुखप्रक्षालन, स्नान करके स्थान-वस्त्रों को शुद्ध रखते हैं, वे तुमसे बहुत अच्छे हैं। जैसे अन्त्यजों की दुर्गन्ध के सहवास से निर्मल बुद्धि नहीं होती, वैसे तुम और तुम्हारे संगियों की बुद्धि नहीं बढ़ती। जैसे रोग से और बुद्धि स्वल्प होने से धर्माऽनुष्ठान की बाधा होती है, वैसे ही दुर्गन्धयुक्त तुम्हारा और तुम्हारे संगियों का भी वर्त्तमान होता होगा।

प्रश्न—जैसे बन्ध मकान में जलाये हुए अग्नि की ज्वाला बाहर निकलके बाहर के जीवों को दु:ख नहीं पहुँचा सकती, वैसे हम मुखपट्टी बाँध के वायु को रोककर बाहर के जीवों को न्यून दु:ख पहुँचानेवाले हैं। मुखपट्टी बाँधने से बाहर के वायु के जीवों को पीड़ा नहीं पहुँचती। और जैसे सामने अग्नि जलाता है, उसको आड़ा हाथ देने से आँच कम लगती है। और वायु के जीव शरीरवाले होने से उनको पीड़ा अवश्य पहुँचती है।

उत्तर—यह तुम्हारी बात लड़केपन की है। प्रथम तो देखो, जहाँ छिद्र और भीतर के वायु का योग बाहर के वायु के साथ न हो तो वहाँ अग्नि जल ही नहीं सकता। जो इसको प्रत्यक्ष देखना चाहो तो किसी फानूस में दीप जलाकर सब छिद्र बंध करके देखो तो दीप उसी समय

बुझ जायगा। जैसे पृथिवी पर रहनेवाले मनुष्यादि प्राणी बाहिर के वायु के योग के विना नहीं जी सकते, वैसे अग्नि भी नहीं जल सकता। जब एक ओर से अग्नि का वेग रोका जाय, तो दूसरी ओर अधिक वेग से निकलेगा और हाथ की आड़ करने से मुख पर आँच न्यून लगती है, परन्तु वह आँच हाथ पर अधिक लग रही है, इसलिए तुम्हारी बात ठीक नहीं।

प्रश्न—इसको सब कोई जानता है कि जब किसी बड़े मनुष्य से छोटा मनुष्य कान में वा निकट होकर बात कहता है तब मुख पर पल्ला वा हाथ लगाता है, इसलिए कि मुख से थूक उड़कर वा दुर्गन्ध उसको न लगे और जब पुस्तक बाँचता है, तब अवश्य थूक उड़कर उस पर गिरने से उच्छिष्ट होकर वह बिगड़ जाता है, इसलिए मुख-पट्टी बाँधना अच्छा है।

उत्तर—इससे यह सिद्ध हुआ कि जीवरक्षार्थ मुखपट्टी बाँधना व्यर्थ है। और जब कोई बड़े मनुष्य से बात करता है, तब मुख पर हाथ वा पल्ला इसलिए रखता है कि उस गुप्त बात को दूसरा कोई न सुन लेवे। क्योंकि जब कोई प्रसिद्ध बात करता है, तब कोई भी मुख पर हाथ वा पल्ला नहीं धरता। इससे क्या विदित होता है कि गुप्त बात के लिए यह बात है। दन्तधावनादि न करने से तुम्हारे मुखादि अवयवों से अत्यन्त दुर्गन्ध निकलता है और जब तुम किसी के पास वा कोई तुम्हारे पास बैठता होगा, तो विना दुर्गन्ध के अन्य क्या आता होगा, इत्यादि।

मुख के आड़ा हाथ वा पल्ला देने के प्रयोजन अन्य बहुत हैं। जैसे बहुत मनुष्यों के सामने गुप्त बात करने में जो हाथ वा पल्ला न लगाया जाय तो दूसरों की ओर वायु के फैलने से बात भी फैल जाय। जब वे दोनों एकान्त में बात करते हैं, तब मुख पर हाथ वा पल्ला इसलिए नहीं लगाते कि यहाँ तीसरा कोई सुननेवाला नहीं।

जो बड़ों ही के ऊपर थूक न गिरे, इससे क्या छोटों के ऊपर थूक गिराना चाहिए? और उस थूक से बच भी नहीं सकता। क्योंकि हम दूरस्थ बात करें और वायु हमारी ओर से दूसरे की ओर जाता हो तो सूक्ष्म होकर उसके शरीर पर वायु के साथ त्रसरेणु अवश्य गिरेंगे, उसका

दोष गिनना अविद्या की बात है।

क्योंकि जो मुख की उष्णता से जीव मरते वा उनको पीड़ा पहुँचती हो, तो वैशाख वा ज्येष्ठ महीने में सूर्य्य की महा उष्णता से वायुकाय के जीवों में से मरे विना एक भी न बच सके। सो उस उष्णता से भी वे जीव नहीं मर सकते, इसलिये यह तुम्हारा सिद्धान्त झूठा है। क्योंकि जो तुम्हारे तीर्थङ्कर भी पूर्ण विद्वान् होते, तो ऐसी व्यर्थ बातें क्यों करते?

देखो! पीड़ा उसी जीव को पहुँचती है, जिसकी वृत्ति सब अवयवों के साथ विद्यमान हो। इसमें प्रमाण—

पञ्चावयवयोगात्सुखसंवित्तिः॥

—यह सांख्यशास्त्र [५।२७] का सूत्र है॥

जब पाँचों इन्द्रियों का पाँच विषयों के साथ सम्बन्ध होता है तभी सुख वा दुःख की प्राप्ति जीव को होती है। जैसे बधिर को गाली प्रदान, अन्धे को रूप वा आगे से सर्प्प-व्याघ्रादि भयदायक जीवों का चला जाना, शून्य बहिरीवाले को स्पर्श, पिन्नस रोगवाले को गन्ध और शून्य जिह्वावाले को रस प्राप्त नहीं हो सकता, इसी प्रकार उन जीवों की भी व्यवस्था है।

देखो! जब मनुष्य का जीव सुषुप्ति दशा में रहता है तब उसको सुख वा दुःख की प्राप्ति कुछ भी नहीं होती, क्योंकि वह शरीर के भीतर तो है, परन्तु उसका बाहर के अवयवों के साथ उस समय सम्बन्ध न रहने से सुख-दुःख की प्राप्ति नहीं कर सकता।

और जैसे वैद्य वा आजकाल के डाक्तर लोग नशा की चीज खिला वा सुंघा के रोगी पुरुष के शरीर के अवयवों को काटते वा चीरते हैं, उसको उस समय कुछ भी दुःख विदित नहीं होता, वैसे वायुकाय अथवा अन्य स्थावर शरीरवाले जीवों को सुख वा दुःख प्राप्त कभी नहीं हो सकता।

जैसे मूर्च्छित प्राणी सुख-दुःख को प्राप्त नहीं हो सकता, वैसे वे वायुकायादि के जीव भी अत्यन्त मूर्च्छित होने से सुख-दुःख को प्राप्त नहीं हो सकते, फिर इनको पीड़ा से बचाने की बात सिद्ध कैसे हो

सकती है? जब उनको सुख-दुःख की प्राप्ति ही प्रत्यक्ष नहीं होती, तो अनुमानादि यहाँ कैसे युक्त हो सकते हैं।

प्रश्न—जब वे जीव हैं तो उनको सुख-दुःख क्यों नहीं होता होगा?

उत्तर—सुनो भोले भाइयो! जब तुम सुषुप्ति में होते हो तब तुमको सुख-दुःख प्राप्त क्यों नहीं होते? सुख-दुःख की प्राप्ति के हेतु प्रसिद्ध सम्बन्ध है। अभी हम इसका उत्तर दे आये हैं कि नशा सुंघा के डाक्तर लोग अङ्गों को चीरते-फाड़ते और काटते हैं, जैसे उनको दुःख विदित नहीं होता, उसी प्रकार अतिमूर्च्छित जीवों को सुख-दुःख क्योंकर प्राप्त होवे? क्योंकि वहाँ प्राप्ति होने का साधन कोई भी नहीं।

प्रश्न—देखो! 'निलोति' अर्थात् जितने हरे शाक, पात और कन्दमूल हैं, उनको हम लोग नहीं खाते, क्योंकि निलोति में बहुत और कन्दमूल में अनन्त जीव हैं। जो हम उनको खावें तो उन जीवों को मारने और पीड़ा पहुँचने से हम लोग पापी हो जायें।

उत्तर—यह तुम्हारी बड़ी अविद्या की बात है। क्योंकि हरित शाक के खाने में जीव का मरना, उनको पीड़ा पहुँचनी क्योंकर मानते हो? भला, जब तुमको पीड़ा प्राप्त होती प्रत्यक्ष नहीं दीखती, और जो दीखती है तो हमको भी दिखलाओ। तुम कभी न प्रत्यक्ष देख वा हमको दिखा सकोगे। जब प्रत्यक्ष नहीं, तो अनुमान, उपमान और शब्दप्रमाण भी कभी नहीं घट सकता।

फिर जो हम ऊपर उत्तर दे आये हैं, वह इस बात का भी उत्तर है। क्योंकि जो अत्यन्त अन्धकार, महासुषुप्ति और महा नशा में जीव हैं, इनको सुख-दुःख की प्राप्ति मानना तुम्हारे तीर्थंकरों की भी भूल विदित होती है, जिन्होंने तुमको ऐसी युक्ति और विद्याविरुद्ध उपदेश किया है। भला, जब घर का अन्त है तो उसमें रहनेवाले अनन्त क्योंकर हो सकते हैं? जब कन्द का अन्त हम देखते हैं, तो उसमें रहनेवाले जीवों का अन्त क्यों नहीं? इससे यह तुम्हारी बात बड़ी भूल की है।

प्रश्न—देखो! तुम लोग विना उष्ण किए कच्चा पानी पीते हो, वह बड़ा पाप करते हो। जैसे हम उष्ण पानी पीते हैं, वैसे तुम लोग भी पिया

करो।

उत्तर—यह भी तुम्हारी बात भ्रमजाल की है। क्योंकि जब तुम पानी को उष्ण करते हो, तब पानी के जीव सब मरते होंगे और उनका शरीर भी जल में रंधकर वह पानी सोंफ के अर्क के तुल्य होने से जानो तुम उनके शरीरों का 'तेजाब' पीते हो, इसमें तुम बड़े पापी हो। और जो ठंढा जल पीते हैं वे नहीं, क्योंकि जब ठंढा पानी पियेंगे, तब उदर में जाने से किञ्चित् उष्णता पाकर श्वास के साथ वे जीव बाहर निकल जायेंगे। जलकाय जीवों को सुख-दुःख प्राप्त पूर्वोक्त रीति से नहीं हो सकता, पुनः इसमें पाप किसी को नहीं होगा।

प्रश्न—जैसे जाठराग्नि की उष्णता पाके श्वास के साथ जीव बाहर निकल जाते हैं, वैसे अग्नि की उष्णता पाके जल से बाहर जीव क्यों न निकल जायेंगे?

उत्तर—हाँ निकल तो जाते, परन्तु जब तुम मुख के वायु की उष्णता से जीव का मरना मानते हो, तो जल उष्ण करने से तुम्हारे मताऽनुसार जीव मर जावेंगे वा अधिक पीड़ा पाकर निकलेंगे और उनके शरीर उस जल में रंध जायेंगे, इससे तुम अधिक पापी होगे वा नहीं?

प्रश्न—हम अपने हाथ से उष्ण जल नहीं करते और न किसी गृहस्थ को उष्ण जल करने की आज्ञा देते हैं, इसलिए हमको पाप नहीं।

उत्तर—जो तुम उष्ण जल न लेते, न पीते, तो गृहस्थ उष्ण क्यों करते? इसलिए उस पाप के भागी तुम ही हो, प्रत्युत अधिक पापी हो। क्योंकि जो तुम किसी एक गृहस्थ को उष्ण करने को कहते, तो एक ही ठिकाने उष्ण होता। जब वे गृहस्थ इस भ्रम में रहते हैं कि न जाने साधुजी किसके घर को आवेंगे, इसलिए प्रत्येक गृहस्थ अपने-अपने घरों में उष्ण जल कर रखते हैं, इसके पाप के भागी मुख्य तुम ही हो।

दूसरा—अधिक काष्ठ और अग्नि के जलने-जलाने से भी ऊपर लिखे प्रमाणे रसोई, खेती और व्यापारादि में अधिक पापी और नरकगामी होते हो। फिर जब तुम उष्ण जल कराने के मुख्य निमित्त और तुम उष्ण जल के पीने और ठंढे के न पीने के उपदेश करने से तुम ही मुख्य पाप

के भागी हो। और जो तुम्हारा उपदेश मानकर ऐसी बातें करते हैं, वे भी पापी हैं।

अब देखो! कि तुम बड़ी अविद्या में होते हो, वा नहीं? कि—छोटे-छोटे जीवों पर दया करनी और अन्य मत वालों की निन्दा, अनुपकार करना क्या थोड़ा पाप है? जो तुम्हारे तीर्थंकरों का मत सच्चा होता, तो सृष्टि में इतनी वर्षा, नदियों का चलना और इतना जल क्यों उत्पन्न ईश्वर ने किया? और सूर्य्य को भी उत्पन्न न करता, क्योंकि इनमें क्रोड़ान्क्रोड़ जीव तुम्हारे मताऽनुसार मरते ही होंगे। जब वे विद्यमान थे और तुम जिनको ईश्वर मानते हो, उन्होंने दया कर सूर्य्य का ताप और मेघ को बंध क्यों न किया? और पूर्वोक्त प्रकार से विना विद्यमान साधनों के प्राणियों को दु:ख-सुख की प्राप्ति, कन्दमूलादि पदार्थों में रहनेवाले जीवों को नहीं होती।

सर्वथा सब जीवों पर दया करना भी दु:ख का कारण होता है। क्योंकि जो तुम्हारे मताऽनुसार सब मनुष्य हो जावें, चोर-डाकुओं को कोई भी दण्ड न देवे तो कितना बड़ा पाप खड़ा हो जाय? इसलिए दुष्टों को यथावत् दण्ड देने और श्रेष्ठों के पालन करने में दया और इससे विपरीत करने में दया क्षमारूप धर्म का नाश है।

कितनेक जैनी लोग दुकान करते, उन व्यवहारों में झूठ बोलते, पराया धन मारते और गरीबों को छलने आदि कुकर्म करते हैं, उनके निवारण में विशेष उपदेश क्यों नहीं करते और मुखपट्टी बाँधने आदि ढोंग में क्यों रहते हो?

जब तुम चेला-चेली करते हो। तब केशलुञ्चन और बहुत दिवस भूखे रहने में पराये वा अपने आत्मा को पीड़ा दे और पीड़ा को प्राप्त होके, दूसरों को दु:ख देते और 'आत्महत्या' अर्थात् आत्मा को दु:ख देनेवाले होकर हिंसक क्यों बनते हो? जब हाथी, घोड़े, बैल, ऊँट पर चढ़ने, मनुष्यों को मजूरी कराने में पाप, जैनी लोग क्यों नहीं गिनते? जब तुम्हारे चेले ऊटपटांग बातों को सत्य नहीं कर सकते, तो तुम्हारे तीर्थङ्कर भी सत्य नहीं कर सकते। जब तुम कथा बांचते हो, तब मार्ग में श्रोताओं के और तुम्हारे मतानुसार जीव मरते ही होंगे, इसलिए तुम

इस पाप के मुख्य कारण क्यों होते हो? इस थोड़े कथन से बहुत समझ लेना कि उन जल, स्थल, वायु के स्थावर शरीरवाले अत्यन्त मूर्च्छित जीवों को दु:ख वा सुख कभी नहीं पहुँच सकता।

अब जैनियों की और भी थोड़ी सी असम्भव कथा लिखते हैं, सुनना चाहिए। और यह भी ध्यान में रखना कि अपने हाथ से साढ़े तीन हाथ का धनुष होता है और काल की संख्या जैसी पूर्व लिख आये हैं, वैसी ही समझना। रत्नसार भाग १, पृष्ठ १६६-१६७ तक में लिखा है—

(१) ऋषभदेव का शरीर ५०० पाँच सौ धनुष् लम्बा और ८४००००० (चौरासी लाख) पूर्व का आयु।

(२) अजितनाथ का ४५० धनुष् परिमाण का शरीर और ७२००००० (बहत्तर लाख) पूर्व वर्ष का आयु।

(३) संभवनाथ का ४०० चार सौ धनुष् परिमाण शरीर और ६०००००० (साठ लाख) पूर्व वर्ष का आयु।

(४) अभिनन्दन का ३५० साढ़े तीन सौ धनुष् का शरीर और ५०००००० (पचास लाख) पूर्व वर्ष का आयु।

(५) सुमतिनाथ का ३०० धनुष् परिमाण का शरीर और ४०००००० (चालीस लाख) पूर्व वर्ष का आयु।

(६) पद्मप्रभ का १४० धनुष् का शरीर और ३०००००० (तीस लाख) पूर्व वर्ष का आयु।

(७) सुपार्श्वनाथ का २०० धनुष् का शरीर और २०००००० (बीस लाख) पूर्व वर्ष का आयु।

(८) चन्द्रप्रभ का १५० धनुष् परिमाण का शरीर और १०००००० (दश लाख) पूर्व वर्षों का आयु।

(९) सुविधिनाथ का १०० सौ धनुष् का शरीर और २००००० (दो लाख) पूर्व वर्ष का आयु।

(१०) शीतलनाथ का ९० नब्बे धनुष् का शरीर और १००००० (एक लाख) पूर्व वर्ष का आयु।

(११) श्रेयांसनाथ का ८० धनुष् का शरीर और ८४००००० (चौरासी लाख) वर्ष का आयु।

(१२) वासुपूज्य स्वामी का ७० धनुष् का शरीर और ७२००००० (बहत्तर लाख) वर्ष का आयु।

(१३) विमलनाथ का ६० धनुष् का शरीर और ६००००००० (साठ लाख) वर्षों का आयु।

(१४) अनन्तनाथ का ५० धनुष् का शरीर और ३००००००० (तीस लाख) वर्षों का आयु।

(१५) धर्मनाथ का ४५ धनुषों का शरीर और १००००००० (दश लाख) वर्षों का आयु।

(१६) शान्तिनाथ का ४० धनुषों का शरीर और १००००० (एक लाख) वर्ष का आयु।

(१७) कुन्थुनाथ का ३५ धनुष् का शरीर और ९५००० (पच्चानवे सहस्र) वर्षों का आयु।

(१८) अमरनाथ का ३० धनुषों का शरीर और ८४००० (चौरासी सहस्र) वर्षों का आयु।

(१९) मल्लीनाथ का २५ धनुषों का शरीर और ५५००० (पचपन सहस्र) वर्षों का आयु।

(२०) मुनि सुव्रत का २० धनुषों का शरीर और ३०००० (तीस सहस्र) वर्षों का आयु।

(२१) नमिनाथ का १४ धनुषों का शरीर और १०००० (दशसहस्र) वर्षों का आयु।

(२२) नेमिनाथ का १० धनुषों का शरीर और १००० (एक सहस्र) वर्ष का आयु।

(२३) पार्श्वनाथ का ९ हाथ का शरीर और १०० (सौ) वर्ष का आयु।

(२४) महावीर स्वामी का ७ हाथ का शरीर और ७२ वर्षों का आयु।

ये चौबीस तीर्थंकर जैनियों के मत चालनेवाले आचार्य और गुरु हैं, इन्हीं को जैनी लोग परमेश्वर मानते है और ये सब मोक्ष को गये हैं। इसमें बुद्धिमान् लोग विचार लेवें कि इतने बड़े शरीर और इतना आयु

मनुष्यदेह का होना कभी सम्भव है? इस भूगोल में बहुत ही थोड़े मनुष्य वस सकते हैं। इन्हीं जैनियों के गपोड़े लेकर जो पुराणियों ने एक लाख, दश सहस्र और एक सहस्र वर्ष का आयु लिखा सो भी सम्भव नहीं हो सकता, तो जैनियों का कथन सम्भव कैसे हो सकता है?

अब और भी सुनो—**कल्पभाष्य पृष्ठ ४**—नागकेत ने ग्राम की बराबर एक शिला अंगुली पर धर ली!

कल्पभाष्य पृष्ठ ३५—महावीर ने अंगूठे से पृथिवी को दबाई, उससे शेषनाग कंप गया!

कल्पभाष्य पृष्ठ ४६—महावीर को सर्प ने काटा, रुधिर के बदले दूध निकला। और वह सर्प ८वें स्वर्ग को गया।

कल्पभाष्य पृष्ठ ४७—महावीर के पग पर खीर पकाई और पग न जले।

कल्पभाष्य पृष्ठ १६—छोटे से पात्र में ऊँट बुलाया।

रत्नसार भाग १, पृष्ठ १४—शरीर के मैल को न उतारें और न खुजलावें।

विवेकसार भाग १, पृष्ठ १५—जैनियों के एक दमसार साधु ने क्रोधित होकर उद्वेगजनक सूत्र पढ़कर एक शहर में आग लगा दी और महावीर तीर्थङ्कर का अति प्रिय था।

विवेकसार भाग १, पृष्ठ १२७—राजा की आज्ञा अवश्य माननी चाहिये।

विवेकसार पृष्ठ २२७—एक कोशा वेश्या ने थाली में सरसों की ढेरी लगा उसके ऊपर फूलों से ढकी हुई सुई खड़ी कर उसपर अच्छे प्रकार नाच किया, परन्तु सुई पग में गड़ने न पाई और सरसों की ढेरी बिखरी नहीं।

तत्त्वविवेक पृष्ठ २२८—इसी कोशा वेश्या के साथ एक स्थूलमुनि ने १२ वर्ष तक भोग किया और पश्चात् दीक्षा लेकर सद्गति को गया और कोशा वेश्या भी जैनधर्म को पालती हुई सद्गति को गई।

विवेकसार भाग १, पृष्ठ १८४—एक सिद्ध की कन्था जो गले में पहनी जाती है, वह ५०० अशर्फी एक वैश्य को नित्य देती रही।

विवेकसार भाग १, पृष्ठ २२८—बलवान् पुरुष की आज्ञा; देव की आज्ञा; घोर वन में कष्ट से निर्वाह; गुरु के रोकने, माता, पिता, कुलाचार्य्य, ज्ञातीय लोग और धर्मोंपदेष्टा इन छः के रोकने से धर्म में न्यूनता होने से धर्म की हानि नहीं होती।

समीक्षक—अब देखिये इनकी मिथ्या बातें! एक मनुष्य ग्राम के बराबर पाषाण की शिला को अंगुली पर कभी धर सकता है?॥ १ ॥

और पृथिवी के ऊपर अंगूठे से दाबने से पृथिवी कभी दब सकती है? और जब शेषनाग ही नहीं तो कंपेगा कौन?॥ २ ॥

भला, शरीर के काटने से दूध निकलना किसी ने नहीं देखा, सिवाय इन्द्रजाल के दूसरी बात नहीं। उसको काटनेवाला सर्प तो स्वर्ग में गया और महात्मा श्रीकृष्ण आदि तीसरे नरक को गये, यह कितनी मिथ्या बात है?॥ ३ ॥

जब महावीर के पग पर खीर पकाई तब उसके पग जल क्यों न गये?॥ ४ ॥

भला, छोटे से पात्र में कभी ऊंट आ सकता है?॥ ५ ॥

जो शरीर का मैल नहीं उतारते और न खुजलाते होंगे, वे दुर्गन्धरूप महा नरक भोगते होंगे॥ ६ ॥

जिस साधु ने नगर जलाया उसकी दया और क्षमा कहाँ गई? जब महावीर के संग से भी उसका पवित्र आत्मा न हुआ, तो अब महावीर के मरे पीछे, उसके आश्रय से जैन लोग कभी पवित्र न होंगे॥ ७ ॥

राजा की आज्ञा माननी चाहिये परन्तु जैन लोग बनिये हैं, इसलिये राजा से डरकर यह बात लिख दी होगी॥ ८ ॥

कोशा वेश्या चाहे उसका शरीर कितना ही हल्का हो तो भी सरसों की ढेरी पर सुई खड़ी करके उसके ऊपर नाचना, सुई का न छिदना और सरसों का न बिखरना, अतीव झूठ नहीं तो क्या है॥ ९-१० ॥

भला, कन्था वस्त्र का होता है वह नित्यप्रति ५०० अशर्फी किस प्रकार दे सकता है?॥ ११ ॥

धर्म्म किसी को किसी अवस्था में भी न छोड़ना चाहिये, चाहे कुछ भी हो जाय?॥ १२ ॥

अब ऐसी-ऐसी असम्भव कहानी इनकी लिखें तो जैनियों के थोथे पोथों के सदृश बहुत बढ़ जाय, इसलिये अधिक नहीं लिखते। अर्थात् थोड़ी सी इन जैनियों की बातें छोड़के शेष सब मिथ्या-जाल भरा है। देखिये—

दो ससि दो रवि पढमे। दुगुणा लवणंमि धायई संमे॥
बारस ससि बारस रवि। तप्पमि इ निदिट्ठ ससि रविणो॥ ७७॥
तिगुणा पुब्बिल्ल जुया। अणंतराणंतरं मिखित्तंमि॥
कालो ए बायाला। बिसत्तरी पुस्कर द्वंमि॥ ७८ ॥

—प्रकरणरत्नाकर भा० ४। संग्रहणी सूत्र ७७-७८॥

जो जम्बूद्वीप लाख योजन अर्थात् ४ चार लाख कोश का लिखा है, उनमें यह पहिला द्वीप कहाता है। इसमें दो चन्द्र और दो सूर्य्य हैं और वैसे ही लवण समुद्र में उससे दुगुणे अर्थात् ४ चन्द्रमा और ४ सूर्य हैं तथा धातकीखण्ड में बारह चन्द्रमा और बारह सूर्य्य हैं॥ ७७॥

और इनको तिगुणा करने से छत्तीस होते हैं। उनके साथ दो जम्बूद्वीप के और चार लवण समुद्र के मिलकर ब्यालीस चन्द्रमा और ब्यालीस सूर्य्य कालोदधि समुद्र में हैं। इसी प्रकार अगले-अगले द्वीप और समुद्रों में पूर्वोक्त ब्यालीस को तिगुणा करें तो एक सौ छब्बीस होते हैं। उनमें धातकीखण्ड के बारह, लवण समुद्र के ४ चार और जम्बूद्वीप के दो इस रीति से मिला कर १४४ एक सौ चवालीस चन्द्र, १४४ सूर्य्य पुष्करद्वीप में हैं। यह भी आधे मनुष्यक्षेत्र की गणना है। परन्तु जहां मनुष्य नहीं रहते हैं, वहां बहुत से सूर्य्य और बहुत से चन्द्र हैं। और जो पिछले अर्ध पुष्करद्वीप में बहुत चन्द्र और बहुत सूर्य्य हैं, वे स्थिर हैं। पूर्वोक्त एक सौ चवालीस को तिगुणा करने से ४३२ और उनमें पूर्वोक्त जम्बूद्वीप के दो चन्द्रमा, दो सूर्य्य, चार-चार लवण समुद्र के और बारह-बारह धातकीखण्ड के और ब्यालीस कालोदधि के मिलाने से ४९२ चन्द्रमा तथा ४९२ सूर्य पुष्कर समुद्र में हैं॥ ७८ ॥

ये सब बातें श्रीजिनभद्रगणीक्षमाश्रमण ने बड़ी 'सङ्घयणी' में तथा 'योतिष्करण्डकपयन्ना मध्ये' और 'चंदपन्नति' तथा 'सूरपन्नति' प्रमुख सिद्धान्तग्रन्थों में इसी प्रकार कही हैं।

समीक्षक—अब सुनिये भूगोल-खगोल के जाननेवालो! इस एक भूगोल में एक प्रकार ४९२ चार सौ बानवे और दूसरी प्रकार असंख्य चन्द्र और सूर्य जैनी लोग मानते हैं! आप लोगों का बड़ा भाग्य है कि वेदमतानुयायी सूर्य्यसिद्धान्तादि ज्योतिष ग्रन्थों के अध्ययन से ठीक-ठीक भूगोल-खगोल विदित हुए। जो कहीं जैन के महा अन्धेर मत में होते तो जन्मभर अन्धेर में रहते, जैसे कि जैनी लोग आजकाल हैं। इन अविद्वानों को यह शङ्का हुई कि जम्बूद्वीप में एक सूर्य और एक चन्द्र से काम नहीं चलता, क्योंकि इतनी बड़ी पृथिवी को तीस घड़ी में दूसरे भाग में चन्द्र-सूर्य कैसे आ सकें? क्योंकि पृथिवी को ये लोग सूर्यादि से भी बड़ी और स्थिर मानते हैं, यही इनकी बड़ी भूल है।

दो ससि दो रवि पंती, एगंतरिया छसठि संखाया॥
मेरुं पयाहिणंता। माणुसखित्ते परिअडंति॥ ७९॥

—संग्रहणी सूत्र ७९॥

अर्थ—मनुष्यलोक में चन्द्रमा और सूर्य की पङ्क्ति की संख्या करते हैं। दो चन्द्रमा और दो सूर्य की पङ्क्ति (श्रेणी) हैं, वे एक-एक लाख-लाख योजन अर्थात् चार-चार लाख कोश के आन्तरे चलते हैं। जैसे एक सूर्य की पङ्क्ति के आन्तरे एक पङ्क्ति चन्द्रमा की है इसी प्रकार चन्द्रमा की पङ्क्ति के आन्तरे सूर्य की पङ्क्ति है, इसी रीति से चार पङ्क्ति हैं। वे एक-एक चन्द्र पङ्क्ति में ६६ चन्द्रमा और एक-एक सूर्य की पङ्क्ति में ६६ सूर्य हैं। वे चारों पङ्क्ति जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करती हुई मनुष्यक्षेत्र में परिभ्रमण करती हैं। अर्थात् जिस समय जम्बूद्वीप के मेरु से एक सूर्य दक्षिण दिशा में विहरता, उस समय दूसरा सूर्य उत्तर दिशा में फिरता है। वैसे ही लवण समुद्र की एक-एक दिशा में दो-दो चलते-फिरते, धातकीखण्ड के ६, कालोदधि के २१, पुष्करार्द्ध के ३६, इस प्रकार सब मिलकर ६६ सूर्य दक्षिण दिशा और ६६ सूर्य उत्तर दिशा में अपने-अपने क्रम से फिरते हैं। और जब इन दोनों दिशाओं के सब सूर्य मिलाये जायें तो १३२ सूर्य, ऐसे ही छासठ-छासठ चन्द्रमा की दोनों दिशाओं की पङ्क्तियाँ मिलाई जायें, तो १३२ चन्द्रमा मनुष्यलोक में चाल चलते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा के

साथ नक्षत्रादि की भी पङ्क्तियाँ बहुत सी जाननी॥ ७९॥

समीक्षक—अब देखो भाई! इस भूगोल में १३२ सूर्य और १३२ चन्द्रमा जैनियों के घर पर तपते होंगे! भला जो तपते होंगे तो वे जीते कैसे हैं? और रात्रि में भी शीत के मारे जैनी लोग जकड़ जाते होंगे? ऐसी असम्भव बात में भूगोल-खगोल के न जाननेवाले फसते हैं, अन्य नहीं। जब एक सूर्य इस भूगोल के सदृश अन्य अनेक भूगोलों को प्रकाशता है तो इस छोटे से भूगोल की क्या कथा कहनी? और जो पृथिवी न घूमे और सूर्य पृथिवी के चारों ओर घूमे तो कै एक वर्षों का दिन और रात होवे। और सुमेरु विना हिमालय के दूसरा कोई भी नहीं। यह सूर्य के सामने एक घड़े के सामने तिल के बराबर भी नहीं है। इन बातों को जैनी लोग, जब-तक उसी मत में रहेंगे, तबतक नहीं जान सकते, किन्तु सदा अन्धेर में रहेंगे॥ ७९॥

सम्मत्तचरण सहिया। सव्वं लोगं फुसे निरवसेसं।
सत्तय च उदसभाए। पंचय सुय देस विरईए॥ १३५॥

—संग्रहणी सूत्र १३५॥

अर्थ—सम्यक्चारित्र सहित जो केवली, वे केवल समुद्घात अवस्था से सर्व चौदह राज्य-लोक अपने आत्मप्रदेश करके फिरेंगे॥ १३५॥

समीक्षक—जैनी लोग १४ चौदह राज्य मानते हैं, उनमें से चौदहवें की शिखा पर सर्वार्थसिद्धि विमान की ध्वजा से ऊपर थोड़े दूर पर सिद्धशिला तथा दिव्य आकाश को शिवपुर कहते हैं। उसमें 'केवली' अर्थात् जिनको केवलज्ञान, सर्वज्ञता, पूर्ण पवित्रता प्राप्त हुई है, वे उस लोक में जाते हैं और अपने आत्मप्रदेश से सर्वज्ञ रहते हैं। जिसका प्रदेश होता है वह विभु नहीं, जो विभु नहीं, वह सर्वज्ञ केवलज्ञानी कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जिसका आत्मा एकदेशी है, वही जाता-आता है और बद्ध, मुक्त, ज्ञानी, अज्ञानी होता है। सर्वव्यापी सर्वज्ञ वैसा कभी नहीं हो सकता। जो जैनियों के तीर्थंकर जीवरूप अल्प-अल्पज्ञ होकर स्थित थे, वे सर्वव्यापक-सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकते। किन्तु जो परमात्मा अनाद्यनन्त, सर्वव्यापक, पवित्र, ज्ञानस्वरूप है, उसको जैनी लोग नहीं

मानते कि जिसमें सर्वज्ञतादि गुण यथातथ्य घटते हैं॥ १३५ ॥

गब्भनर ति पलियाऊ। तिगाउ उक्कोस ते जहन्नेणं।
मुच्छिम दुहावि अंत मुहु। अंगुल असंख भागतणू॥ २४१ ॥

—संग्रहणी २४१ ॥

अर्थ—यहाँ मनुष्य दो प्रकार के हैं। एक गर्भज, दूसरे जो गर्भ के विना उत्पन्न हुए। उनमें गर्भज मनुष्य का उत्कृष्ट तीन पल्योपम का आयुष जानना और तीन कोश का शरीर॥ २४१ ॥

समीक्षक—भला, तीन पल्योपम का आयु और तीन कोश के शरीरवाले मनुष्य इस भूगोल में बहुत थोड़े समा सकें और फिर तीन पल्योपम कि जैसी पूर्व लिख आये हैं, उतने समय तक जीयें तो वैसे ही उनके सन्तान भी तीन-तीन कोश के शरीरवाले होने चाहियें, जैसे मुम्बई में दो-एक और कलकत्ते में तीन वा चार मनुष्य निवास कर सकते हैं। जो ऐसा है तो जैनियों ने एक नगर में लाखों मनुष्य लिखे हैं तो उनके रहने का नगर भी लाखों कोशों का चाहिये, तो सब भूगोल में वैसा एक नगर भी न बस सके॥ २४१ ॥

पणयाल लरकजोयण। विरकंभा सिद्धिसिल फलिह विमला।
तदुवरिगजोयणंते। लोगंतो तच्छ सिद्धठिई॥ २५८ ॥

अर्थ—जो सर्वार्थसिद्धि विमान की ध्वजा से ऊपर १२ योजन सिद्धशिला है, वह वाटला और लम्बेपन और पोलपन में ४५ पैंतालीस लाख योजन प्रमाण है, वह सब धवला अर्जुन सुवर्णमय स्फटिक के समान निर्मल सिद्धशिला की सिद्धभूमि है। इसको कोई 'ईषत्' 'प्राग्भारा' ऐसा नाम कहते हैं। यह सर्वार्थसिद्धशिला विमान से १२ योजन अलोक भी है। यह परमार्थ केवली बहुश्रुत जानता है। यह शिद्धशिला सर्वथा मध्य भाग में ८ योजन स्थूल है। वहाँ से ४ दिशा और ४ उपदिशा में घटती-घटती मक्खी की पाँख के सदृश पतली उत्तानछत्र और आकार करके सिद्धशिला की स्थापना है, उस शिला से ऊपर १ एक योजन के आँतरे लोकान्त है, वहाँ सिद्धों की स्थिति अर्थात् निवास होता है॥ २५८ ॥

समीक्षक—अब विचारना चाहिए कि जैनियों के मुक्ति का स्थान सर्वार्थसिद्धि विमान की ध्वजा के ऊपर पैंतालीस लाख योजन की

शिला अर्थात् चाहे ऐसी अच्छी और निर्मल हो तथापि उसमें रहनेवाले मुक्त जीव एक प्रकार के बद्ध हैं, क्योंकि उस शिला से बाहर निकलने से मुक्ति के सुख से छूट जाते होंगे। और जो भीतर रहते होंगे तो उनको वायु भी न लगता होगा। यह केवल कल्पनामात्र अविद्वानों को फसाने के लिए भ्रमजाल है॥ २५८ ॥

[जोयणसहस्स महियं। एगिंदियदेह मुक्कोसं॥ २६६ ॥]
वि ति चउरिंदिय सरीरं। बारस जोयण तिकोस चउकोसं।
जोयण सहस पणिंदिय। उहे वुच्छं विसेसंतु॥ २६७॥

—संग्रह सू० २६६-२६७॥

सामान्यपन से एकेन्द्रिय का शरीर १ सहस्र योजन के शरीरवाला उत्कृष्ट जानना। और दो इन्द्रियवाले शंखादि का शरीर १२ योजन का जानना। वैसे ही कीड़ी-मकोड़ादि का ३ तीन कोश का जानना। और चतुरिन्द्रिय भ्रमरादि का शरीर ४ कोश का और पञ्चेन्द्रिय एक सहस्र योजन अर्थात् ४ सहस्र कोश के शरीरवाले जानना॥ २६६-२६७॥

समीक्षक—चार-चार सहस्र कोश के प्रमाणवाले शरीरवाले हों तो भूगोल में तो बहुत थोड़े मनुष्य अर्थात् सैकड़ों मनुष्यों से भूगोल ठस भर जाय, किसी को चलने की जगह भी न रहे। फिर वे जैनियों से रहने का ठिकाना और मार्ग पूछें। और जो इन्होंने लिखा है, तो अपने घर में रख लें। परन्तु चार सहस्र कोश के शरीरवाले को निवासार्थ कोई एक के लिए ३२ सहस्र कोश का घर तो चाहिए। ऐसे एक घर के बनाने में जैनियों का सब धन चुक जाय, तो भी घर न बन सके। इतने बड़े आठ सहस्र कोश की छत्त बनाने के लिए लट्ठे कहाँ से लावेंगे? और जो उसमें खंभा लगावें तो वह भीतर प्रवेश भी नहीं कर सकता। इसलिए ऐसी बातें मिथ्या हुआ करती हैं॥ २६६-२६७॥

ते थूला पल्ले विहु। संखिज्जाचेवहुंति सव्वेवि।
ते इक्किक्क असंखे। सुहुमे खंडे पकप्पेह॥ ४॥

—प्रकरण० भा० ४। लघुक्षेत्रसमासप्रकरण ४॥

अर्थ—पूर्वोक्त एक अंगुल लोम के खण्डों से ४ कोश का चौरस और उतना ही गहिरा कुआ हो, अंगुल प्रमाण लोम का खण्ड सब

मिलके बीस लाख सत्तावन सहस्र एक सौ बावन होते हैं और अधिक से अधिक (३३०७६२१०४, २४६५६२५, ४२१९९६०, ९७५३६००, ००००००००) तैंतीस क्रोड़ा क्रोड़ी, सात लाख बासठ हजार एक सौ चार क्रोड़ाक्रोड़ी, चौबीस लाख पैंसठ हजार छ: सौ पच्चीस इतने क्रोड़ाक्रोड़ी तथा ब्यालीस लाख उन्नीस हज़ार नौ सौ साठ इतनी क्रोड़ाक्रोड़ी तथा सत्तानवे लाख त्रेपन हजार और छ: सौ क्रोड़ाक्रोड़ी, इतनी वाटला घन जोजन पल्योपम में सर्व स्थूल रोम खण्ड की संख्या होवे, यह भी संख्यातकाल होता है। पूर्वोक्त एक लोम खण्ड के असंख्यात खंड मन में कल्पे तब असंख्यात सूक्ष्म रोमाणु होवें॥ ४॥

समीक्षक—अब देखिये इनकी गिनती की रीति! एक अंगुल प्रमाण लोम के कितने खंड किये! यह कभी किसी की गिनती में आ सकते हैं? और उसके उपरान्त मन से असंख्य खंड कल्पते हैं, इससे पूर्वोक्त खंड जैनियों ने हाथों से किये होंगे, ऐसा विदित होता है। यह बात कभी सम्भव नहीं॥ ४॥

जंबूद्वीपपमाणं गुलजोयणलरक वट्ट विरकंभो।
लवणाई यासेसा। वलयाभा दुगुण दुगुणाय॥ १२॥

—प्र० भा० ४ लघुक्षेत्रस० १२॥

प्रथम जम्बूद्वीप का लाख योजन का प्रमाण और पोला है। और बाकी लवणादि सात समुद्र तथा सात द्वीप, जम्बूद्वीप के प्रमाण से दुगुणे-दुगुणे हैं। इस एक पृथिवी में जम्बूद्वीपादि सात द्वीप और सात समुद्र हैं, जैसे कि पूर्व लिख आये हैं॥ १२॥

समीक्षक—अब जम्बूद्वीप से दूसरा द्वीप दो लाख योजन, तीसरा चार लाख योजन, चौथा आठ लाख योजन, पाँचवाँ सोलह लाख योजन, छठा बत्तीस लाख योजन और सातवाँ चौसठ लाख योजन और उतने प्रमाण वा उनसे अधिक समुद्र के प्रमाण से इस पन्द्रह सहस्र कोश परिधिवाले भूगोल में क्योंकर समा सकते हैं? इससे यह बात केवल मिथ्या है॥ १२॥

कुरु नइ चुलसी सहसा। छच्चेवंतरनईउ पइ विजयं।
दो दो महा नईउ। चउ दस सहसाउ पत्तेयं॥ ६३॥

प्रकरणरत्ना० भा० ४, लघुक्षेत्रस० ६३॥

कुरुक्षेत्र में ८४ चौरासी सहस्र नदी हैं॥ ६३॥

समीक्षक—भला, कुरुक्षेत्र बहुत छोटा देश है, उसको न देखकर एक मिथ्या बात लिखने में इनको लज्जा भी न आई॥ ६३॥

जामुत्तराउ ताउ। इगेगसिंहासणाउ अइपुव्वं।
चउसुवि तासु नियासण, दिसि भवजिण मज्जणं होई॥ ११९॥

—प्र० भा० ४। लघुक्षेत्रस० सू० ११९॥

उस शिला के विशेष दक्षिण और उत्तर दिशा में एक-एक सिंहासन जानना चाहिये। उन शिलाओं के नाम दक्षिण दिशा में अति-पाण्डु-कम्बला, उत्तर दिशा में अति-रक्त-कम्बला शिला है। उन सिंहासनों पर तीर्थङ्कर बैठते हैं॥ ११९॥

समीक्षक—देखिये इनके तीर्थङ्करों के जन्मोत्सवादि करने की शिला को! ऐसी ही मुक्ति की सिद्धशिला है। ऐसी इनकी बातें गोलमाल पोलपाल बहुत-सी हैं, कहाँ तक लिखें?॥ ११९॥

किन्तु जल छान के पीना, और सूक्ष्म जीवों पर नाममात्र दया करना, रात्रि को भोजन न करना ये तीन बातें अच्छी हैं। बाकी जितना इनका कथन है, सब असम्भवग्रस्त है।

इतने ही लेख से बुद्धिमान् लोग बहुत सा जान लेंगे, यह थोड़ा सा दृष्टान्तमात्र लिखा है। जो इनकी असम्भव सब बातें लिखें तो इतने पुस्तक हो जायें कि एक पुरुष आयुभर में पाठ भी न कर सके।

इसलिये एक हण्डे में चुड़ते चावलों में से एक चावल की परीक्षा से कच्चे वा पक्के हैं, सब चावल विदित हो जाते हैं। ऐसे ही इस थोड़े से लेख से सज्जन लोग बहुत सी बातें समझ लेंगे। बुद्धिमानों के सामने बहुत लिखना आवश्यक नहीं। क्योंकि दिग्दर्शनवत् सम्पूर्ण आशय को बुद्धिमान् लोग जान ही लेते हैं।

इसके आगे ईसाइयों के मत के विषय में लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते नास्तिकमतान्तर्गतचार्वाक-
बौद्धजैनमतखण्डनमण्डनविषये
द्वादशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ १२॥

ओ३म्
अनुभूमिका (३)

जो यह बायबिल का मत है, वह केवल ईसाइयों का है सो नहीं, किन्तु इससे यहूदी आदि भी गृहीत होते हैं। जो यहाँ (१३) तेरहवें समुल्लास में ईसाई मत के विषय में लिखा है, इसका यही अभिप्राय है कि आजकल बायबिल के मत में ईसाई मुख्य हो रहे हैं और यहूदी आदि गौण हैं। मुख्य के ग्रहण से गौण का ग्रहण हो जाता है, इससे यहूदियों का भी ग्रहण समझ लीजिये।

इनका जो विषय यहां लिखा है सो केवल बायबिल में से कि जिसको ईसाई और यहूदी आदि सब मानते हैं और इसी पुस्तक को अपने धर्म का मूलकारण समझते हैं। इस पुस्तक के भाषान्तर बहुत से हुए हैं, जो कि इनके मत में बड़े-बड़े पादरी हैं, उन्हीं ने किये हैं। उनमें से देवनागरी वा संस्कृत भाषान्तर देखकर मुझको बायबिल में बहुत सी शङ्का हुई हैं, उनमें से कुछ थोड़ी सी इस १३ तेरहवें समुल्लास में सबके विचारार्थ लिखी हैं। यह लेख केवल सत्य की वृद्धि और असत्य के ह्रास होने के लिये है, न कि किसी को दु:ख देने वा हानि करने अथवा मिथ्या दोष लगाने के अर्थ है। इसका अभिप्राय उत्तर लेख में सब कोई समझ लेंगे कि यह पुस्तक कैसा है और इनका मत भी कैसा है?

इस लेख से यही प्रयोजन है कि सब मनुष्यमात्र को देखना, सुनना, लिखना आदि करना सहज होगा और पक्षी-प्रतिपक्षी होके विचार कर ईसाई मत का आन्दोलन सब कोई कर सकेंगे। इससे एक यह प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्यों को धर्मविषयक ज्ञान बढ़कर यथायोग्य सत्याऽसत्य मत और कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य कर्मसम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कर्त्तव्य कर्म का स्वीकार, असत्य और अकर्त्तव्य कर्म का परित्याग करना सहजता से हो सकेगा।

सब मनुष्यों को उचित है कि सबके मतविषयक पुस्तकों को देख

समझकर कुछ सम्मति वा असम्मति देवें वा लिखें, नहीं तो सुना करें। क्योंकि जैसे पढ़ने से 'पण्डित' होता है, वैसे सुनने से 'बहुश्रुत' होता है। यदि श्रोता दूसरे को नहीं समझा सके, तथापि आप स्वयं तो समझ ही जाता है। जो कोई पक्षपातरूप यानारूढ़ होके देखते हैं, उनको न अपने, न पराये गुण-दोष विदित हो सकते हैं।

मनुष्य का आत्मा यथायोग्य सत्याऽसत्य के निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है। जितना अपना पठित वा श्रुत है, उतना निश्चय कर सकता है। यदि एक मत वाले दूसरे मत वाले के विषयों को जानें और अन्य न जानें तो यथावत् संवाद नहीं हो सकता, किन्तु अज्ञानी किसी भ्रमरूप बाड़े में गिर जाते हैं। ऐसा न हो इसलिए इस ग्रंथ में प्रचरित सब मतों का विषय थोड़ा-थोड़ा लिखा है। इतने ही से शेष विषयों में अनुमान कर सकता है कि वे सच्चे हैं वा झूठे?

जो-जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं, वे तो सबमें एक से हैं। झगड़ा झूठे विषयों में होता है। अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठा हो, तो भी कुछ थोड़ा-सा विवाद चलता है। यदि वादी-प्रतिवादी सत्याऽसत्य निश्चय के लिये वाद-प्रतिवाद करें, तो अवश्य निश्चय हो जाय।

अब मैं इस १३वें समुल्लास में ईसाई मत विषयक थोड़ा-सा लिखकर सबके सम्मुख स्थापित करता हूँ, विचारिये कि कैसा है?

अलमतिलेखेन विचक्षणवरेषु॥

दयानन्दसरस्वती

अथ त्रयोदशसमुल्लासारम्भः

अथ कृश्चीनाख्यमतविषयं व्याख्यास्यामः

अब इसके आगे ईसाइयों के मत-विषय में लिखते हैं, जिससे सबको विदित हो जायगा कि इनका मत निर्दोष और इनका बायबिल पुस्तक ईश्वरकृत है वा नहीं? प्रथम बायबिल के तौरेत का विषय लिखा जायगा। उसमें से प्रथम उत्पत्ति के विषय में कुछ-कुछ विषय दिखलाया जाता है—

मूल—१. आरंभ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा॥ और पृथिवी बेडौल और सूनी थी और गहिराव पर अंधियारा था और ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था॥ [इलाहाबाद मिशन प्रेस से सन् १८६६ में मुद्रित, पुराने नियम का पहला भाग अर्थात् तौरेत की पुस्तक, उत्पत्ति]   —पर्व १। आयत १।२॥ [पृष्ठ १]

समीक्षक—आरम्भ किसको कहते हो?

ईसाई—सृष्टि के प्रथमोत्पत्ति को।

समीक्षक—क्या यही सृष्टि प्रथम हुई, इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी?

ईसाई—हम नहीं जानते, थी वा नहीं, ईश्वर जाने।

समीक्षक—जब नहीं जानते तो तुमने इस पुस्तक पर विश्वास क्यों किया क्योंकि जिससे सन्देह का निवारण नहीं हो सकता। और इसी के भरोसे लोगों को उपदेश कर इस सन्देह के भरे हुए मत में क्यों फसाते हो? और जो निःसन्देह सर्वशङ्कानिवारक वेदमत का स्वीकार क्यों नहीं करते? जब तुम ईश्वर की सृष्टि का हाल नहीं जानते हो, तो ईश्वर को कैसे जानते होगे?

आकाश किसको मानते हो?

ईसाई—पोल और ऊपर को।

समीक्षक—पोल की उत्पत्ति किस प्रकार हुई! क्योंकि यह विभु पदार्थ और अति सूक्ष्म है और ऊपर-नीचे एक-सा है। जब आकाश नहीं

सृजा था तब पोल और अवकाश था वा नहीं? जो नहीं था तो ईश्वर, जगत् का कारण और जीव कहाँ रहते थे? विना अवकाश के कोई पदार्थ स्थित नहीं हो सकता, इसलिए तुम्हारी बायबिल का कथन युक्त नहीं। ईश्वर बेडौल, उसका ज्ञान-कर्म बेडौल होता है वा सब डौलवाला?

ईसाई—डौलवाले होते हैं।

समीक्षक—तो यहाँ ईश्वर की बनाई पृथिवी बेडौल थी, ऐसा क्यों लिखा?

ईसाई—बेडौल का अर्थ ऊँची-नीची थी, बराबर न थी।

समीक्षक—फिर बराबर किसने की? और क्या अब भी नीची-ऊँची नहीं है? इसलिए ईश्वर का काम बेडौल नहीं हो सकता, क्योंकि वह सर्वज्ञ है। उसके काम में भूल चूक कभी नहीं होती है। और बायबिल में ईश्वर की सृष्टि बेडौल लिखी, इसलिए यह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता।

प्रथम ईश्वर का आत्मा क्या पदार्थ है?

ईसाई—चेतन।

समीक्षक—वह साकार है वा निराकार तथा व्यापक है वा एकदेशी।

ईसाई—निराकार, चेतन और व्यापक है। परन्तु किसी एक 'सनाई पर्वत', 'चौथा आसमान' आदि में विशेष करके रहता है।

समीक्षक—जो निराकार है तो उसको किसने देखा? और व्यापक का जल पर डोलना कभी नहीं हो सकता। भला, जब ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था, तब ईश्वर कहाँ था? इससे यही सिद्ध होता है कि ईश्वर का शरीर कहीं अन्यत्र स्थित होगा अथवा अपने कुछ आत्मा के एक टुकड़े को जल पर डुलाया होगा। जो ऐसा है तो विभु और सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता। जो विभु नहीं तो जगत् की रचना, धारण, पालन और जीवों के कर्मों की व्यवस्था वा प्रलय कभी नहीं कर सकता। क्योंकि जिस पदार्थ का स्वरूप एकदेशी है, उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी एकदेशी होते हैं। जो ऐसा है तो वह ईश्वर नहीं हो सकता। क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक, अनन्त गुण-कर्म-स्वभावयुक्त, सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, अनादि, अनन्तादि लक्षणयुक्त वेदों में कहा

है, उसी को मानो तभी तुम्हारा कल्याण होगा, अन्यथा नहीं॥ १॥

२. और ईश्वर ने कहा कि उंजियाला होवे और उंजियाला हो गया॥ और ईश्वर ने उंजियाले को देखा कि अच्छा है.... ॥

—पर्व० १। आ० ३। ४॥

समीक्षक—क्या ईश्वर की बात जड़स्वरूप उजियाले ने सुन ली? जो सुनी हो, तो इस समय भी सूर्य्य और दीप अग्नि का प्रकाश हमारी तुम्हारी बात क्यों नहीं सुनता? प्रकाश जड़ होता है, वह कभी किसी की बात नहीं सुन सकता। क्या जब ईश्वर ने उजियाले को देखा तभी जाना कि उजियाला अच्छा है? पहिले नहीं जानता था? जो जानता होता, तो देखकर अच्छा क्यों कहता? जो नहीं जानता था, तो वह ईश्वर ही नहीं। इसीलिए तुम्हारी बायबिल ईश्वरोक्त और उसमें कहा हुआ ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है॥ २॥

३. और ईश्वर ने कहा कि पानियों के मध्य में आकाश होवे और पानियों को पानियों से विभाग करे॥ तब ईश्वर ने आकाश को बनाया और आकाश के नीचे के पानियों को आकाश के ऊपर के पानियों से विभाग किया और ऐसा हो गया॥ और ईश्वर ने आकाश को स्वर्ग कहा और सांझ और बिहान दूसरा दिन हुआ॥—पर्व० १। आ० ६। ७। ८॥

समीक्षक—क्या आकाश और जल ने भी ईश्वर की बात सुन ली? और जो जल के बीच में आकाश न होता तो जल रहता ही कहाँ? प्रथम आयत में आकाश को सृजा था, पुनः आकाश का बनाना व्यर्थ हुआ। जो आकाश को स्वर्ग कहा तो वह सर्वव्यापक है इसलिए सर्वत्र स्वर्ग हुआ, फिर ऊपर को स्वर्ग है, यह कहना व्यर्थ है। जब सूर्य्य उत्पन्न ही नहीं हुआ था तो पुनः दिन और रात कहां से हो गई? ऐसी ही असम्भव बातें आगे की आयतों में भरी हैं॥ ३॥

४. तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें.... ॥ तब ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया, उसने उसे ईश्वर के स्वरूप में उत्पन्न किया, उसने उन्हें नर और नारी बनाया॥ और ईश्वर ने उन्हें आशीष दिया.... ॥

—पर्व० १। आ० २६। २७। २८॥

समीक्षक—यदि आदम को ईश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया तो ईश्वर का स्वरूप पवित्र, ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय आदि लक्षणयुक्त है, उसके सदृश आदम क्यों नहीं हुआ? जो नहीं हुआ तो उसके स्वरूप में नहीं बना। और आदम को उत्पन्न किया तो ईश्वर ने अपने स्वरूप ही को उत्पत्तिवाला किया, पुनः वह अनित्य क्यों नहीं और आदम को उत्पन्न कहाँ से किया?

ईसाई—मट्टी से बनाया।

समीक्षक—मट्टी कहां से बनाई?

ईसाई—अपनी 'कुदरत' अर्थात् सामर्थ्य से।

समीक्षक—ईश्वर का सामर्थ्य अनादि है वा नवीन?

ईसाई—अनादि है।

समीक्षक—जब अनादि है तो जगत् का कारण सनातन हुआ, फिर अभाव से भाव क्यों मानते हो?

ईसाई—सृष्टि के पूर्व ईश्वर के विना कोई वस्तु नहीं था।

समीक्षक—जो नहीं था तो यह जगत् कहाँ से बना? और ईश्वर का सामर्थ्य गुण है वा द्रव्य? जो द्रव्य है तो ईश्वर से भिन्न दूसरा पदार्थ था और गुण है तो गुण से द्रव्य कभी नहीं बन सकता जैसे रूप से अग्नि और रस से जल नहीं बन सकता। और जो ईश्वर से जगत् बना होता तो ईश्वर के सदृश गुण, कर्म, स्वभाववाला होता। उसके गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश न होने से यही निश्चय है कि ईश्वर से नहीं बना, किन्तु जगत् के कारण अर्थात् परमाणु आदि नामवाले जड़ से बना है।

जैसी कि जगत् की उत्पत्ति वेदादि शास्त्रों में लिखी है, वैसी ही मान लो, जिससे ईश्वर जगत् को बनाता है। जो आदम का भीतर का स्वरूप जीव और बाहर का मनुष्य के सदृश है तो वैसा ईश्वर का स्वरूप क्यों नहीं? क्योंकि जब आदम ईश्वर के सदृश बना तो ईश्वर आदम के सदृश अवश्य होना चाहिये॥ ४॥

५. तब परमेश्वर ईश्वर ने भूमि की धूल से आदम को बनाया और उसके नथुनों में जीवन का श्वास फूंका और आदम जीवता प्राण हुआ॥ और परमेश्वर ईश्वर ने अदन में पूर्व की ओर एक बारी लगाई

और उस आदम को जिसे उसने पहिले बनाया था, उसमें रक्खा॥ और उस बारी के मध्य में जीवन का पेड़ और भले बुरे के ज्ञान का पेड़ भूमि से उगाया॥ —तौरेत उत्पत्ति की पुस्तक, पर्व० २। आ० ७।८।९॥

समीक्षक—जब ईश्वर ने अदन में बारी बनाकर उसमें आदम को रक्खा तब ईश्वर नहीं जानता था कि इसको पुन: निकालना पड़ेगा? और जब ईश्वर ने आदम को धूली से बनाया तो ईश्वर के स्वरूप नहीं हुआ, और जो है तो ईश्वर भी धूली से बना होगा? जब उसके नथुनों में ईश्वर ने श्वास फूंका तो वह श्वास ईश्वर का स्वरूप था वा भिन्न? जो भिन्न था तो आदम ईश्वर के स्वरूप में नहीं बना। जो एक है तो आदम और ईश्वर एक से हुए। और जो एक से हैं तो आदम के सदृश जन्म, मरण, वृद्धि, क्षय, तृषा आदि दोष ईश्वर में आये फिर वह ईश्वर क्योंकर हो सकता है? इसलिए यह तौरेत की बात ठीक नहीं विदित होती और यह पुस्तक भी ईश्वरकृत नहीं है॥५॥

६. और परमेश्वर ईश्वर ने आदम को बड़ी नींद में डाला और वह सो गया तब उसने उसकी पसलियों में से एक निकाली और उसकी संति मांस भर दिया॥ और परमेश्वर ईश्वर ने उस पसली से एक नारी बनाई और उसे आदम पास लाया॥ —पर्व० २। आ० २१।२२॥

समीक्षक—जो ईश्वर ने आदम को धूली से बनाया तो उसकी स्त्री को धूली से क्यों नहीं बनाया? और जो नारी को हड्डी से बनाया तो आदम को हड्डी से क्यों नहीं बनाया? और जैसे नर से निकलने से नारी नाम हुआ तो नारी से निकलकर नर भी होना चाहिए। और उनमें परस्पर प्रेम भी रहै, जैसे स्त्री के साथ पुरुष प्रेम करे, वैसे ही स्त्री भी पुरुष के साथ प्रेम करे।

देखो विद्वान् लोगो! ईश्वर की कैसी पदार्थविद्या अर्थात् 'फिलासफ़ी' चलकती है! जो आदम की एक पसली निकालकर नारी बनाई तो सब मनुष्यों की एक पसली कम क्यों नहीं होती? और स्त्री के शरीर में एक पसली होनी चाहिये, क्योंकि वह एक पसली से बनी है। क्या जिस सामग्री से सब जगत् बनाया, उस सामग्री से स्त्री का शरीर नहीं बन सकता था? इसलिए यह बायबिल का सृष्टिक्रम सृष्टिविद्या

से विरुद्ध है॥६॥

७. अब सर्प्प भूमि के हर एक पशु से जिसे परमेश्वर ईश्वर ने बनाया था, धूर्त था और उसने स्त्री से कहा, क्या निश्चय ईश्वर ने कहा है कि तुम इस बारी के हर एक पेड़ से न खाना॥ और स्त्री ने सर्प्प से कहा कि हम तो इस बारी के पेड़ों का फल खाते हैं॥ परन्तु उस पेड़ का फल जो बारी के बीच में है, ईश्वर ने कहा है कि तुम उस्से न खाना और न छूना, न हो कि मर जाओ॥ तब सर्प्प ने स्त्री से कहा कि तुम निश्चय न मरोगे॥ क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उस्से खाओगे, तुम्हारी आँखे खुल जायेंगी और तुम भले और बुरे की पहिचान में ईश्वर के समान हो जाओगे॥ और जब स्त्री ने देखा वह पेड़ खाने में सुस्वाद और दृष्टि में सुन्दर और बुद्धि देने के योग्य है तो उसके फल में से लिया और खाया और अपने पति को भी दिया और उसने खाया॥ तब उन दोनों की आँखें खुल गईं और वे जान गये कि हम नङ्गे हैं सो उन्होंने गूलर के पत्तों को मिला के सिआ और अपने लिये ओढ़ना बनाया॥

तब परमेश्वर ईश्वर ने सर्प्प से कहा कि जो तू ने यह किया है इस कारण तू सारे ढोर और हर एक वन के पशुन से अधिक स्रापित होगा, तू अपने पेट के बल चलेगा और अपने जीवन भर धूल खाया करेगा॥ और मैं तुझमें और स्त्री में और तेरे वंश और उसके वंश में वैर डालूंगा, वह तेरे शिर को कुचलेगा और तू उसकी एड़ी को काटेगा॥ और उसने स्त्री को कहा कि मैं तेरी पीड़ा और गर्भधारण को बहुत बढ़ाऊँगा, तू पीड़ा से बालक जनेगी और तेरी इच्छा तेरे पति पर होगी और वह तुझपर प्रभुता करेगा॥ और उसने आदम से कहा कि तूने जो अपनी पत्नी का शब्द माना है और जिस पेड़ का [फल] मैंने तुझे खाने से वर्जा था तूने खाया है, इस कारण भूमि तेरे लिए स्रापित है, अपने जीवनभर तू उस्से पीड़ा के साथ खायेगा।। और वह काँटे और ऊँटकटारे तेरे लिये उगायेगी और तू खेत का साग पात खायेगा॥

—तौरेत उत्पत्ति० पर्व० ३। आ० १।२।३।४।५।६।
७।१४।१५।१६।१७।१८॥

समीक्षक—जो ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो इस 'धूर्त सर्प्प' अर्थात् शैतान को क्यों बनाता? और जो बनाया तो वही ईश्वर अपराध का भागी है, क्योंकि जो वह उसको दुष्ट न बनाता तो वह दुष्टता क्यों करता? और वह पूर्वजन्म नहीं मानता तो विना अपराध उसको पापी क्यों बनाया? और सच पूछो तो वह सर्प्प नहीं था किन्तु मनुष्य था। क्योंकि जो मनुष्य न होता तो मनुष्य की भाषा क्योंकर बोल सकता?

और जो आप झूठा और दूसरे को झूठ में चलावे, उसीको शैतान कहना चाहिए। सो यहां शैतान सत्यवादी और इससे उसने उस स्त्री को नहीं बहकाया किन्तु सच कहा और ईश्वर ने आदम और हव्वा से झूठ कहा कि इसके खाने से तुम मर जाओगे। जब वह पेड़ ज्ञानदाता और अमर करनेवाला था तो उसके फल खाने से क्यों वर्जा? और जो वर्जा तो वह ईश्वर झूठा और बहकानेवाला ठहरा। क्योंकि उस वृक्ष के फल मनुष्यों को ज्ञान और सुखकारक थे, अज्ञान और मृत्युकारक नहीं।

जब ईश्वर ने फल खाने से वर्जा तो उन वृक्षों की उत्पत्ति किसलिए की थी? जो अपने लिए की; तो क्या आप अज्ञानी और मृत्युधर्मवाला था? और जो दूसरों के लिये बनाया तो फल खाने में अपराध कुछ भी न हुआ। और आजकल कोई भी वृक्ष ज्ञानकारक और मृत्युनिवारक देखने में नहीं आता, क्या ईश्वर ने उसका बीज भी नष्ट कर दिया? ऐसी बातों से मनुष्य छली-कपटी होता है तो ईश्वर वैसा क्यों नहीं हुआ? क्योंकि जो कोई दूसरे से छल-कपट करेगा, वह छली-कपटी क्यों न होगा? और जो इन तीनों को शाप दिया, वह विना अपराध से है, पुन: वह ईश्वर अन्यायकारी भी हुआ और यह शाप ईश्वर को होना चाहिये, क्योंकि वह झूठ बोला और उनको बहकाया। यह 'फिलासफी' देखो! क्या विना पीड़ा के गर्भधारण और बालक का जन्म हो सकता था? और विना श्रम के कोई अपनी जीविका कर सकता है? क्या प्रथम काँटे आदि के वृक्ष न थे? और जब शाक-पात खाना सब मनुष्यों को ईश्वर के कहने से उचित हुआ तो जो उत्तर में मांस का खाना बायबिल में लिखा, वह झूठा क्यों नहीं? और जो वह सच्चा हो, तो यह झूठा है।

जब आदम का कुछ भी अपराध सिद्ध नहीं होता तो ईसाई लोग सब मनुष्यों को आदम के अपराध से सन्तान होने पर अपराधी क्यों कहते हैं? भला ऐसा पुस्तक और ऐसा ईश्वर कभी बुद्धिमानों के मानने योग्य हो सकता है?॥ ७॥

८. और परमेश्वर ईश्वर ने कहा कि देखो! आदम भले बुरे के जानने में हममें से एक की नाईं हुआ और अब ऐसा न होवे कि वह अपना हाथ डाले और जीवन के पेड़ में से भी लेकर खावे, और अमर हो जाय।। सो उसने आदम को निकाल दिया और अदन की बारी की पूर्व ओर करोबीम ठहराये। चमकते हुए खड्ग को जो चारों ओर घूमता था; जिसतें जीवन के पेड़ के मार्ग की रखवाली करें॥

—पर्व० ३। आ० २२। २४॥

समीक्षक—भला! ईश्वर को ऐसी ईर्ष्या और भ्रम क्यों हुआ कि ज्ञान में हमारे तुल्य हुआ? क्या यह बुरी बात हुई? यह शङ्का ही क्यों पड़ी? क्योंकि ईश्वर के तुल्य कभी कोई नहीं हो सकता। परन्तु इस लेख से यह भी सिद्ध हो सकता है कि वह ईश्वर नहीं था किन्तु एक मनुष्यविशेष था। बायबिल में जहाँ कहीं ईश्वर की बात आती है वहां मनुष्य के तुल्य ही लिखी आती है।

अब देखो! आदम के ज्ञान की बढ़ती में ईश्वर कितना दु:खी हुआ और फिर अमर-वृक्ष के फल खाने में कितनी ईर्ष्या की, और प्रथम जब उसको बारी में रक्खा तब उसको भविष्यत् का ज्ञान नहीं था कि इसको पुन: निकालना पड़ेगा, इसलिए ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं था। और चमकते खड्ग का पहिरा रक्खा यह भी मनुष्य का काम है, ईश्वर का नहीं। हमको बड़ा आश्चर्य होता है कि ऐसे गुणवाले को ईसाई लोग ईश्वर क्यों मानते हैं? क्योंकि ये बातें सब मनुष्य के स्वभाव में घट सकती हैं, ईश्वर में नही॥ ८॥

९. और कितने दिनों के पीछे यों हुआ कि क़ाइन भूमि के फलों में से परमेश्वर के लिए भेंट लाया॥ और हाबील भी अपनी [भेड-बकरियों के] झुण्ड में से पहिलौंठी और मोटी-मोटी लाया और परमेश्वर ने हाबील का और उसकी भेंट का आदर किया॥ परन्तु क़ाइन का और उसकी भेंट का आदर न किया, इसलिए क़ाइन अति कुपित हुआ और

अपना मुख फुलाया॥ तब परमेश्वर ने क़ाइन से कहा कि तू क्यों क्रुद्ध है और तेरा मुंह क्यों फूल गया॥ —तौरे० पर्व ४। आ० ३।४।५।६॥

समीक्षक—यदि ईश्वर माँसाहारी न होता तो भेड़ की भेंट और हाबिल का सत्कार और क़ाइन तथा उसकी भेंट का तिरस्कार क्यों करता? और ऐसा झगड़ा लगाने और हाबील के मत्यु का कारण भी ईश्वर ही हुआ। और जैसे आपस में मनुष्य लोग एक दूसरे से बातें करते हैं, वैसी ही ईसाइयों के ईश्वर की बातें हैं। बगीचे में आना-जाना, उसका बनाना भी मनुष्यों का कर्म है। इससे विदित होता है कि यह बायबिल मनुष्यों की बनाई है, ईश्वर की नहीं॥ ९॥

१०. तब परमेश्वर ने क़ाइन से कहा—तेरा भाई हाबिल कहाँ है और वह बोला मैं नहीं जानता, क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूँ॥ तब उसने कहा, तूने क्या किया? तेरे भाई के लोहू का शब्द भूमि से मुझे पुकारता है॥ और अब तू पृथिवी से स्रापित है....॥

—तौरेत पर्व० ४। आ० ९।१०।११॥

समीक्षक—क्या ईश्वर क़ाइन से पूछे विना हाबिल का हाल नहीं जानता था और लोहू का शब्द भूमि से किसी को कभी पुकार सकता है? ये सब बातें अविद्वानों की हैं, इसीलिए यह पुस्तक न ईश्वर और न विद्वान् का बनाया हो सकता है॥ १०॥

११. और हनूक मतूसिलह की उत्पत्ति के पीछे तीन सौ वर्ष लों ईश्वर के साथ-साथ चलता था....॥ —तौरेत पर्व० ५। आ० २२॥

समीक्षक—भला! ईसाइयों का ईश्वर मनुष्य न होता, तो हनूक के साथ-साथ क्यों चलता? इससे जो वेदोक्त, निराकार, व्यापक ईश्वर है, उसी को ईसाई लोग मानें, तो उनका कल्याण होवे॥ ११॥

१२. और यों हुआ कि जब आदमी पृथिवी पर बढ़ने लगे और उनसे बेटियाँ उत्पन्न हुई॥ तो ईश्वर के पुत्रों ने आदम की पुत्रियों को देखा कि वे सुन्दरी हैं और उनमें से जिन्हें उन्होंने चाहा उन्हें ब्याहा।। और उन दिनों में पृथिवी पर दानव थे और उसके पीछे भी जब ईश्वर के पुत्र आदम की पुत्रियों से मिले तो उनसे बालक उत्पन्न हुए जो बलवान् हुए, जो आगे से नामी थे॥ और ईश्वर ने देखा कि आदम की

दुष्टता पृथिवी पर बहुत हुई और उनके मन की चिन्ता और भावना प्रतिदिन केवल बुरी होती है। तब आदमी को पृथिवी पर उत्पन्न करने से परमेश्वर पछताया और उसे अति शोक हुआ॥ तब परमेश्वर ने कहा कि आदमी को जिसे मैंने उत्पन्न किया, आदमी से लेके पशुन लों और रेंगवैयों को और आकाश के पक्षियों को पृथिवी पर से नष्ट करूँगा क्योंकि उन्हें बनाने से मैं पछताता हूँ॥

—तौरेत पर्व० ६। आ० १।२।४।७॥

समीक्षक—ईसाइयों से पूछना चाहिए कि ईश्वर के बेटे कौन हैं? और ईश्वर की स्त्री, सास, श्वसुर, साला और सम्बन्धी कौन हैं? क्योंकि अब तो आदम की बेटियों के साथ विवाह होने से ईश्वर इनका सम्बन्धी हुआ, और जो उनसे उत्पन्न होते हैं, वे पुत्र और प्रपौत्र हुए। क्या ऐसी बात ईश्वर और ईश्वर के पुस्तक की हो सकती है? किन्तु यह सिद्ध होता है कि उन जङ्गली मनुष्यों ने यह पुस्तक बनाया है।

वह ईश्वर ही नहीं, जो सर्वज्ञ न हो, न भविष्यत् की बात जाने। वह जीव है। क्या जब सृष्टि की थी तब 'आगे मनुष्य दुष्ट होंगे' ऐसा नहीं जानता था? और पछताना, अति शोकादि होना, भूल से काम करके पीछे पश्चात्ताप करना आदि ईसाइयों के ईश्वर में घट सकता है, वेदोक्त ईश्वर में नहीं। और इससे यह भी सिद्ध हो सकता है कि ईसाइयों का ईश्वर पूर्ण विद्वान् योगी भी नहीं था, नहीं तो शान्ति और विज्ञान से अति शोकादि से पृथक् हो सकता था।

भला, पशु-पक्षी भी दुष्ट हो गये! यदि वह ईश्वर सर्वज्ञ होता तो ऐसा विषादी क्यों होता? इसलिये न यह ईश्वर और न यह ईश्वरकृत पुस्तक हो सकता है। जैसे वेदोक्त परमेश्वर सब पाप, क्लेश, दुःख, शोकादि से रहित 'सच्चिदानन्दस्वरूप' है, उसको ईसाई लोग मानते वा अब भी मानें तो अपने मनुष्यजन्म को सफल कर सकें॥ १२॥

१३. उस नाव की लम्बाई तीन सौ हाथ और चौड़ाई पचास हाथ और ऊँचाई तीस हाथ की होवे....॥ तू नाव में जाना, तू और तेरे बेटे और तेरी पत्नी और तेरे बेटों की पत्नियाँ तेरे साथ॥ और सारे शरीरों में से जीवता जन्तु दो-दो अपने साथ नाव में लेना जिससे वे तेरे साथ

जीते रहें, वे नर और नारी होंवे॥ पंछी में से उसके भाँति-भाँति के और ढोर में से उसके भाँति-भाँति के और पृथिवी के हर एक रेंगवैये में से भाँति-भाँति के हर एक में से दो-दो तुझ पास आवें जिसतें जीते रहें॥ और तू अपने खाने के लिए सब सामग्री अपने पास इकट्ठा कर, वह तुम्हारे और उनके लिए भोजन होगा, सो ईश्वर की सारी आज्ञा के समान नूह ने किया॥

—तौरेत पर्व० ६। आ० १५।१८।१९।२०।२१।२२॥

समीक्षक—भला कोई भी विद्वान् ऐसी विद्या से विरुद्ध असम्भव बात के वक्ता को ईश्वर मान सकता है? क्योंकि इतनी बड़ी, चौड़ी, ऊँची नाव में हाथी-हथनी, ऊँट-ऊँटनी आदि क्रोड़ों जन्तु और उनके खाने-पीने की चीजें, वे सब कुटुम्ब के भी, समा सकते हैं? यह इसीलिये मनुष्यकृत पुस्तक है। जिसने यह लेख किया है, वह विद्वान् भी नहीं था॥ १३॥

१४. और नूह ने परमेश्वर के लिये एक वेदी बनाई और सारे पवित्र पशु और हर एक पवित्र पंछियों में से लिये और होम की भेंट उस वेदी पर चढ़ाई॥ और परमेश्वर ने सुगंध सूंघा और परमेश्वर ने अपने मन में कहा कि आदमी के लिए मैं पृथिवी को फिर कभी स्राप न दूंगा, इस कारण कि आदमी के मन की भावना उसकी लड़काई से बुरी है, और जिस रीति से मैंने सारे जीवधारियों को मारा, फिर कभी न मारूंगा॥　　—तौरेत पर्व० ८। आ० २०।२१॥

समीक्षक—वेदी के बनाने, होम के करने के लेख से यही सिद्ध होता है कि ये बातें वेदों से बायबिल में गई हैं। क्या परमेश्वर के नाक भी है कि जिससे सुगन्ध सूंघा? क्या यह ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् अल्पज्ञ नहीं है कि कभी स्राप देता है और कभी पछताता है? कभी कहता है स्राप न दूंगा, पहिले दिया था और फिर भी देगा। प्रथम सबको मार डाला और अब कहता है कि कभी न मारूंगा। ये बातें सब लड़केपन की हैं, ईश्वर की नहीं और न किसी विद्वान् की। क्योंकि विद्वान् की भी बात और प्रतिज्ञा स्थिर होती है॥ १४॥

१५. और ईश्वर ने नूह को और उसके बेटों को आशीष दिया और

उन्हें कहा कि....॥ हर एक जीता चलता जन्तु तुम्हारे भोजन के लिए होगा, मैंने हरी तरकारी के समान सारी वस्तु तुम्हें दिईं॥ केवल माँस उसके जीव अर्थात् उसके लोहू समेत मत खाना॥

—तौरेत उत्प० पर्व० ९। आ० १।३।४॥

समीक्षक—क्या एक को प्राणकष्ट देकर दूसरों को आनन्द कराने से दयाहीन ईसाइयों का ईश्वर नहीं है? जो माता-पिता एक लड़के को मरवाकर दूसरे को खिलावें तो महापापी नहीं हों? इसी प्रकार यह बात है, क्योंकि ईश्वर के सब प्राणी पुत्रवत् हैं। ऐसा न होने से इनका ईश्वर कसाईवत् काम करता है और सब मनुष्यों को हिंसक भी इसी ने बनाये हैं। इसलिये ईसाइयों का ईश्वर निर्दय होने से पापी क्यों नहीं॥ १५॥

१६. और सारी पृथिवी पर एक ही बोली और एक ही भाषा थी॥ फिर उन्होंने कहा कि आओ हम एक नगर और एक गुम्मट जिसकी चोटी स्वर्ग लों पहुँचे अपने लिये बनावें और अपना नाम करें, न हो कि हम सारी पृथिवी पर छिन्न भिन्न हो जायें॥ तब ईश्वर उस नगर और उस गुम्मट को जिसे आदम के सन्तान बनाते थे, देखने को उतरा॥ तब परमेश्वर ने कहा कि देखो ये लोग एक ही हैं और उन सबकी एक ही बोली है, अब वे ऐसा-ऐसा कुछ करने लगे सो वे जिस पर मन लगावेंगे उससे अलग न किये जायेंगे। आओ हम उतरें। वहाँ उनकी भाषा को गड़बड़ावें जिसतें एक दूसरे की बोली न समझें॥ तब परमेश्वर ने उन्हें वहाँ से सारी पृथिवी पर छिन्न-भिन्न किया और वे उस नगर के बनाने से अलग रहे॥　　—तौ० पर्व० ११। आ० १।४।५।६।७।८॥

समीक्षक—जब सारी पृथिवी पर एक भाषा और बोली होगी, उस समय सब मनुष्यों को परस्पर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ होगा। परन्तु क्या किया जाय? यह ईसाई के ईर्ष्यक ईश्वर ने सबकी भाषा गड़बड़ाके सबका सत्यानाश किया। उसने यह बड़ा अपराध किया। क्या यह शैतान के काम से भी बुरा काम नहीं है? और इससे यह भी विदित होता है कि ईसाइयों का ईश्वर सनाई आदि पहाड़ पर रहता था और जीवों की उन्नति भी नहीं चाहता था। यह विना एक अविद्वान् के ईश्वर की बात और यह ईश्वरोक्त पुस्तक क्योंकर हो सकता है?॥ १६॥

१७. ....तब उसने अपनी पत्नी सरी से कहा कि देख मैं जानता हूँ कि तू देखने में सुन्दर स्त्री है॥ इसलिये यों होगा कि जब मिस्री तुझे देखेंगे तब वे कहेंगे कि यह उसकी पत्नी है और मुझे मार डालेंगे परन्तु तुझे जीती रखेंगे॥ तू कहियो कि मैं उसकी बहिन हूँ, जिसतें तेरे कारण मेरा भला होय और मेरा प्राण तेरे हेतु से जीता रहे॥

—तौ० पर्व० १२। आ० ११।१२।१३॥

समीक्षक—अब देखिये! जो अबिरहाम बड़ा पैग़म्बर ईसाई और मुसलमानों का बजता है और उसके कर्म मिथ्याभाषणादि बुरे हैं, और अपनी स्त्री का पातिव्रत्य धर्म भङ्ग कराके व्यभिचारिणी बनाता है। भला! जिसके ऐसे पैग़म्बर हों, उनको विद्या वा कल्याण का मार्ग कैसे मिल सके?॥ १७॥

१८. और ईश्वर ने अबिरहाम से कहा तू और तेरे पीछे तेरा वंश उनकी पीढियों में मेरे नियम को माने॥ तुम मेरा नियम जो मुस्से और तुमसे और तेरे पीछे तेरे वंश से है जिसे तुम मानोगे सो यह है कि तुममें से हर एक पुरुष का खतनः किया जाय॥ और तुम अपने शरीर की खलड़ी काटो और तुम्हारे मध्य में नियम का चिह्न होगा॥ और तुम्हारी पीढ़ियों में हर एक आठ दिन के पुरुष का खतनः किया जाय, जो घर में उत्पन्न होय अथवा जो किसी परदेशी से जो तेरे वंश का न हो, रूपे से मोल लिया जाय॥ जो तेरे घर में उत्पन्न हुआ हो और जो तेरे रूपे से मोल लिया गया हो, अवश्य उसका खतनः किया जाय और मेरा नियम तुम्हारे माँस में सर्वदा नियम के लिये होगा॥ और जो अखतनः बालक जिसकी खलड़ी का ख़तनः न हुआ हो, सो प्राणी अपने लोग से कट जाय कि उसने मेरा नियम तोड़ा है॥

—तौ० पर्व० १७। आ० ९।१०।११।१२।१३।१४॥

समीक्षक—अब देखिये! ईश्वर की अन्यथा आज्ञा, कि जो यह ख़तनः करना ईश्वर को इष्ट होता तो उस चमड़े को आदि-सृष्टि में नहीं बनाता, और जो यह बनाया गया है वह रक्षार्थ है, जैसा आँख के ऊपर का चमड़ा। क्योंकि वह गुप्तस्थान अति कोमल है, जो उस पर चमड़ा न हो तो एक कीड़ी के भी काटने और थोड़ी-सी चोट लगने से बहुत-सा

दुःख होवे और लघुशङ्का के पश्चात् कुछ मूत्रांश कपड़ों में न लगे, इत्यादि के लिए इसका काटना बुरा है और अब ईसाई लोग इस आज्ञा को क्यों नहीं करते? यह आज्ञा सदा के लिये है, इसके न करने से ईसा की गवाही जो कि 'व्यवस्था के पुस्तक का एक बिन्दु भी झूठा नहीं है,' मिथ्या हो गई। इसका शोच-विचार ईसाई कुछ भी नहीं करते॥ १८॥

१९. तब उस्से बात करने से रह गया और अबिरहाम के पास से ईश्वर ऊपर जाता रहा॥ —तौ० पर्व० १७। आ० २२॥

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वर मनुष्य वा पक्षिवत् था जो ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आता-जाता रहता था। यह कोई इन्द्रजाली पुरुषवत् विदित होता है॥ १९॥

२०. फिर ईश्वर उसे ममरे के बलूतों में दिखाई दिया और वुह दिन को घाम के समय में अपने तम्बू के द्वार पर बैठा था॥ और उसने अपनी आँखें उठाईं और देखा और देखो कि तीन मनुष्य उसके पास खड़े हैं और उन्हें देखके वुह तम्बू के द्वार पर से उनकी भेंट को दौड़ा और भूमि लों दंडवत् की॥ और कहा हे मेरे स्वामी! यदि मैंने अब आपकी दृष्टि में अनुग्रह पाया है तो मैं आपकी विनती करता हूँ कि अपने दास के पास से चले न जाइये॥ इच्छा होय तो थोड़ा जल लाया जाय और अपने चरण धोइये और पेड़ तले विश्राम कीजिए॥ और मैं एक कौर रोटी लाऊँ और आप तृप्त हूजिये, उसके पीछे आगे बढ़िये क्योंकि आप इसीलिये अपने दास के पास आये हैं, तब वे बोले कि जैसा तू ने कहा तैसा कर॥ और अबिरहाम तंबू में सरः पास उतावली से गया और उसे कहा कि फुरती कर और तीन नपुआ चोखा पिसान लेके गूंध और उसके फुलके पका॥ और अबिरहाम झुंड की ओर दौड़ा गया और एक अच्छा कोमल बछड़ा लेके दास को दिया, उसने भी उसे सिद्ध करने में चटक किया॥ और उसने मक्खन और दूध और वुह बछड़ा जो पकाया था, लिया और उनके आगे धरा और आप उनके पास पेड़ तले खड़ा रहा और उन्होंने खाया॥

—तौ० पर्व० १८। आ० १।२।३।४।५।६।७।८॥

समीक्षक—अब देखिये सज्जन लोगो! जिनका ईश्वर बछड़े का

मांस खावे, उसके उपासक गाय-बछड़े आदि को क्यों छोड़ें? जिसको कुछ दया नहीं, मांस के खाने में आतुर रहे, वह विना हिंसक मनुष्य के ईश्वर कभी हो सकता है? और ईश्वर के साथ दो मनुष्य न जाने कौन थे? इससे विदित होता है कि जङ्गली मनुष्यों की एक मण्डली थी, उनका जो प्रधान मनुष्य था, उसका नाम बायबिल में ईश्वर रक्खा होगा। इन्हीं बातों से बुद्धिमान् लोग इनके पुस्तक को ईश्वरकृत नहीं मान सकते और न ऐसे को ईश्वर समझते हैं॥ २०॥

२१. और परमेश्वर ने अबिरहाम से कहा कि सरः क्यों यह कहके मुस्कुराई कि मैं जो बुढ़िया हूँ सचमुच बालक जनूंगी॥ क्या परमेश्वर के लिये कोई बात असाध्य है?॥ —तौ० पर्व० १८। आ० १३। १४॥

समीक्षक—अब देखिये कि क्या-क्या ईसाइयों के ईश्वर की लीला! कि जो लड़के वा स्त्रियों के समान चिड़ता और ताना मारता है॥ २१॥

२२. तब परमेश्वर ने सदूम, अमूरः पर गंधक और आग परमेश्वर की ओर से स्वर्ग से वर्षाया॥ और उन नगरों को, सारे चौगान को और नगरों के सारे निवासियों को और जो कुछ भूमि पर उगता था उलट दिया॥ —तौ० उत्प० पर्व० १९। आ० २४। २५॥

समीक्षक—अब यह भी लीला बायबिल के ईश्वर की देखिये कि जिसको बालक आदि पर भी कुछ दया न आई! क्या सब वे अपराधी थे, सबको भूमि उलटा के दबा मारा? यह न्याय, दया और विवेक से विरुद्ध है। जिनका ईश्वर ऐसा काम करे, उनके उपासक क्यों न करें?॥ २२॥

२३. आओ हम अपने पिता को दाख रस पिलावें और हम उनके साथ शयन करें कि हम अपने पिता से वंश जुगावें॥ तब उन्होंने उस रात अपने पिता को दाख रस पिलाया और पहिलोठी गई और अपने पिता के साथ शयन किया....॥ हम उसे आज रात भी दाखरस पिलावें, तू जाके शयन कर....॥ सो लूत की दोनों बेटियाँ अपने पिता से गर्भिणी हुईं....॥ —तौ० उत्प० पर्व० १९। आ० ३२। ३३। ३४। ३६॥

समीक्षक—देखिये! जब पिता-पुत्री भी जिस मद्यपान के नशे में

कुकर्म से न बच सके, ऐसे दुष्ट मद्य को जो ईसाई आदि पीते हैं, उनकी बुराई का क्या पारावार है? इसलिये सज्जन लोगों को मद्य के पीने का नाम भी न लेना चाहिये॥ २३॥

२४. और अपने कहने के समान परमेश्वर ने सरः से भेंट किया और अपने वचन के समान परमेश्वर ने सरः के विषय में किया॥ और सरः गर्भिणी हुई....॥ —तौ० उत्प० पर्व० २१। आ० १। २॥

समीक्षक—अब विचारिये कि सरः से भेंट कर गर्भवती की, यह काम कैसे हुआ? क्या विना परमेश्वर और सरः से तीसरा कोई गर्भस्थापना का कारण दीखता है? ऐसा विदित होता है कि सरः परमेश्वर की कृपा से गर्भवती हुई॥ २४॥

२५. तब अबिरहाम ने बड़े तड़के उठके रोटी और एक पखाल में जल लिया और हाजिरः के कन्धे पर धर दिया और लड़के को भी उसे सौंपके उसे विदा किया....॥ उसने उस लड़के को एक झाड़ी के तले डाल दिया॥ और वह उसके सम्मुख बैठके चिल्ला-चिल्ला रोई॥ तब ईश्वर ने उस बालक का शब्द सुना॥

—तौ० उत्प० पर्व० २१। आ० १४। १५। १६। १७॥

समीक्षक—अब देखिये! ईसाइयों के ईश्वर की लीला, कि प्रथम तो सरः का पक्षपात करके हाजिरः को वहाँ से निकलवा दी, और चिल्ला-चिल्ला रोई हाजिरः, और शब्द सुना लड़के का, यह कैसी अद्‌भुत बात है? यह ऐसा हुआ होगा कि ईश्वर को भ्रम हुआ होगा कि यह बालक ही रोता है। भला, यह ईश्वर और ईश्वर के पुस्तक की बात कभी हो सकती है विना साधारण मनुष्य के वचन के? इस पुस्तक में थोड़ी सी बात सत्य के, सब असार भरा है॥ २५॥

२६. और इन बातों के पीछे यों हुआ कि ईश्वर ने अबिरहाम की परीक्षा किई और उसे कहा हे अबिरहाम....॥ तू अपने बेटे को अपने इकलौते इज़हाक को जिसे तू प्यार करता है ले....उसे होम की भेंट के लिये चढ़ा॥ और अपने बेटे इज़हाक को बाँधके उस वेदी में लकड़ियों पर धरा॥ और अबिरहाम ने छुरी लेके अपने बेटे को घात करने के लिये हाथ बढ़ाया॥ तब परमेश्वर के दूत ने स्वर्ग पर से उसी को पुकारा

कि हे अबिरहाम-अबिरहाम!.... ॥....अपना हाथ लड़के पर मत बढ़ा और उसे कुछ मत कर क्योंकि अब मैं जानता हूं कि तू ईश्वर से डरता है.... ॥ —तौ० उत्प० पर्व० २२। आ० १।२।९।१०।११।१२॥

समीक्षक—अब स्पष्ट हो गया कि यह बायबिल का ईश्वर अल्पज्ञ है, सर्वज्ञ नहीं। और अबिरहाम भी एक भोला मनुष्य था, नहीं तो ऐसी चेष्टा क्यों करता? ईश्वर सर्वज्ञ होता तो क्यों कराता और उसकी भविष्यत् श्रद्धा को भी सर्वज्ञता से क्यों न जान लेता?॥ २६॥

२७. ....सो आप हमारी समाधिन में से चुनके एक में अपने मृतक को गाड़िये....जिसतें आप अपने मृतक को गाड़ें॥

—तौ० उत्प० पर्व० २३। आ० ६॥

समीक्षक—मुर्दों के गाड़ने से संसार की बड़ी हानि होती है, क्योंकि वह सड़के वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है।

प्रश्न—देखो! जिससे प्रीति हो उसको जलाना अच्छी बात नहीं। और गाड़ना जैसा कि उसको सुला देना है, इसलिये गाड़ना अच्छा है।

उत्तर—जो मृतक से प्रीति करते हो तो अपने घर में क्यों नहीं रखते? और गाड़ते भी क्यों हो? जिस जीवात्मा से प्रीति थी वह निकल गया, अब दुर्गन्धमय मट्टी से क्या प्रीति? और जो प्रीति करते हो तो उसको पृथिवी में क्यों गाड़ते हो, क्योंकि किसी से कोई कहे कि तुझको भूमि में गाड़ देवें तो वह सुनकर प्रसन्न कभी नहीं होता। उसके मुख, आँख, और शरीर पर धूल, पत्थर, ईंट, चूना डालना, छाती पर पत्थर रखना कौन सा प्रीति का काम है?

और सन्दूक में डालके गाड़ने से बहुत दुर्गन्ध होकर पृथिवी से निकल वायु को बिगाड़ कर दारुण रोगोत्पत्ति करता है।

दूसरा एक मुर्दे के लिये कम से कम ६ हाथ लम्बी और ४ हाथ चौड़ी भूमि चाहिये। इसी हिसाब से सौ, हजार वा लाख अथवा क्रोड़ों मनुष्यों के लिये कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है। न वह खेत, न बाग़ीचा और न वसने के काम की रहती है, इसलिये सबसे बुरा गाड़ना है।

उससे कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना, क्योंकि उसको जलजन्तु

उसी समय चीर फाड़ खा लेते हैं परन्तु जो कुछ हाड़ वा मल जल में रहेगा वह सड़ कर जगत् को दु:खदायक होगा।

उससे कुछ एक थोड़ा बुरा जङ्गल में छोड़ना है। क्योंकि उसको मांसाहारी पशु-पक्षी लूंच खायेंगे तथापि जो उसके हाड़, हाड़ की मज्जा और मल सड़कर जितना दुर्गन्ध करेगा, उतना जगत् का अनुपकार होगा।

और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है, क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायु में उड़ जायेंगे।

प्रश्न—क्या मुर्दे के धुंआ में दुर्गन्ध नहीं होता?

उत्तर—हाँ! जो अविधि से जलावे तो थोड़ा सा होता है, परन्तु गाड़ने आदि से बहुत कम होता है।

और जो विधिपूर्वक जैसा कि वेद में लिखा है—वेदी मुर्दे के तीन हाथ गहिरी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी, पांच हाथ लम्बी, तले में डेढ़ बीता अर्थात् चढ़ा उतार खोदकर शरीर के बराबर घी, उसमें एक सेर में रत्तीभर कस्तूरी, मासाभर केशर डाल न्यून से न्यून आध मन चन्दन, अधिक चाहें जितना लें, अगर, तगर, कपूर आदि और पलाश आदि की लकड़ियों को वेदी में जमा, उस पर मुर्दा रखके पुन: चारों ओर ऊपर वेदी के मुख से एक बीता तक भरके उस घी की आहुति देकर जलाना लिखा है, उस प्रकार से दाह करें तो कुछ भी दुर्गन्ध न हो, किन्तु इसी का नाम अन्त्येष्टि, नरमेध, पुरुषमेध यज्ञ है। और जो दरिद्र हो तो बीस सेर से कम घी चिता में न डाले, चाहें वह भीख मांगने वा जातिवाले के देने अथवा राज से मिलने से प्राप्त हो, परन्तु उसी प्रकार दाह करे। और जो घृतादि किसी प्रकार न मिल सके तथापि गाढने आदि से केवल लकड़ी से भी मृतक का जलाना उत्तम है, क्योंकि एक विश्वाभर भूमि में अथवा एक वेदी में लाखों-क्रोड़ों मृतक जल सकते हैं। भूमि भी गाढने के समान अधिक नहीं बिगड़ती और कबर के देखने से भय भी होता है, इससे गाड़ना आदि सर्वथा निषिद्ध है॥ २७॥

२८. ....परमेश्वर मेरे स्वामी अबिरहाम का ईश्वर धन्य है जिसने मेरे स्वामी को अपनी दया और अपनी सच्चाई विना न छोड़ा, मार्ग में

परमेश्वर ने मेरे स्वामी के भाइयों के घर की ओर मेरी अगुआई किई॥
—तौ० उत्प० पर्व० २४। आ० २७॥

समीक्षक—क्या वह अबिरहाम ही का ईश्वर था? और जैसे आजकल बिगारी वा अगवे लोग अगुआई अर्थात् आगे-आगे चलकर मार्ग दिखलाते हैं तथा ईश्वर ने भी किया तो आजकल मार्ग क्यों नहीं दिखलाता? और मनुष्यों से बातें क्यों नहीं करता? इसलिये ऐसी बातें ईश्वर वा ईश्वर के पुस्तक की कभी नहीं हो सकतीं, किन्तु जङ्गली पुरुष की हैं॥ २८॥

२९. इसमअऐल के बेटों के नाम ये हैं—इसमअऐल का पहिलौठा नबीत और क़ीदार और अदबिएल और मिबसाम और मिसमाअ और दूमः और मस्सा हदर और तैमा, इतूर, नफीस और क़िदिमः॥
—तौ० उत्प० पर्व० २५ आ० १३।१४।१५॥

समीक्षक—यह इसमअऐल अबिरहाम से उसकी हाजिरः दासी का पुत्र हुआ था, इसी का वंश मुसलमान हुये हैं। तभी दासीपुत्र होने से मुसलमान लोग बहुत से खुशामदी होते हैं॥ २९॥

३०. ....मैं तेरे पिता की रुचि के समान स्वादित भोजन बनाऊंगी॥ और तू अपने पिता के पास ले जाइयो जिसतें वह खाय और अपने मरने से आगे तुझे आशीष देवे॥ और रिबकः ने घर में से अपने जेठे बेटे एसौ का अच्छा पहिरावा लिया और अपने छोटे बेटे यअक़ूब को पहिनाया।। और बकरी के मेम्नों का चमड़ा उसके हाथों और गले की चिकनाई पर लपेटा॥ तब यअकूब अपने पिता से बोला कि मैं आपका पहिलौठा एसौ हूं, आपके कहने के समान मैंने किया है, उठ बैठिये और मेरे अहेर के मांस में से खाइये, जिसतें आपका प्राण मुझे आशीष दे॥
—तौ० उत्प० पर्व० २७ आ० ९।१०।१५।१६।१९॥

समीक्षक—देखिये! ऐसे झूठ-कपट से आशीर्वाद लेके पश्चात् सिद्ध और पैग़म्बर बनते हैं, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है? और ऐसे ईसाइयों के अगुआ हुए हैं, पुनः इनके मत की गड़बड़ में क्या न्यूनता हो॥ ३०॥

३१. और यअक़ूब बिहान को तड़के उठा और उस पत्थर को

जिसे उसने अपना उसीसा किया था खंभा खड़ा किया और उस पर तेल डाला॥ और उस स्थान का नाम बैतएल रक्खा....॥ और यह पत्थर जो मैंने खंभा सा खड़ा किया, ईश्वर का घर होगा....॥
—तौ० उत्प० पर्व० २८। आ० १८।१९।२२॥

समीक्षक—अब देखिए जङ्गलियों के काम! इन्होंने पत्थर पूजे और पुजवाए और इसको मुसलमान लोग 'बैतएलमुकद्दस' कहते हैं। क्या यही पत्थर ईश्वर का घर और उसी पत्थरमात्र में ईश्वर रहता था? वाह-वाह! क्या कहना है ईसाई लोगो! महाबुत्परस्त तो तुमही हो॥ ३१॥

३२. और ईश्वर ने राख़िल को स्मरण किया और ईश्वर ने उसकी सुनी और उसकी कोख को खोला॥ और वुह गर्भिणी हुई और बेटा जनी।
—तौ० उत्प० पर्व० ३०। आ० २२।२३॥

समीक्षक—वाह-वाह ईसाइयों का ईश्वर! क्या बड़ा डाक्तर है! स्त्रियों की कोख खोलने को कौन से शस्त्र वा औषध थे जिनसे खोली, ये सब बातें अन्धाधुन्ध की हैं॥ ३२॥

३३. परन्तु ईश्वर अरामी लाबन कने स्वप्न में रात को आया और उसे कहा कि चौकस रह, तू यअक़ूब को भला बुरा मत कहना....॥ क्योंकि तू अपने पिता के घर का निपट अभिलाषी है, तूने किसलिए मेरे देवों को चुराया है॥
—तौ० उत्प० पर्व० ३१। आ० २४।३०॥

समीक्षक—यह हम नमूना लिखते हैं, हजारों मनुष्यों को स्वप्न में आया, बातें की; जागृत साक्षात् मिला; खाया-पिया, आया-गया आदि बायबिल में लिखा है परन्तु अब न जाने वह है वा नहीं? क्योंकि अब किसी को स्वप्न वा जागृत में भी ईश्वर नहीं मिलता और यह भी विदित हुआ कि ये जङ्गली लोग पाषाणादि मूर्तियों को देव मानकर पूजते थे। परन्तु ईसाइयों का ईश्वर भी पत्थर ही को देव मानता है, नहीं तो देवों का चुराना कैसे घटे?॥ ३३॥

३४. और यअक़ूब अपने मार्ग चला गया और ईश्वर के दूत उसे आ मिले॥ और यअक़ूब ने उन्हें देखके कहा कि यह ईश्वर की सेना है....॥
—तौ० उत्प० पर्व० ३२। आ० १।२॥

समीक्षक—अब ईसाइयों का ईश्वर मनुष्य होने में कुछ भी संदिग्ध

नहीं रहा। क्योंकि ईश्वर के पास सेना भी है। और सब शस्त्र होंगे तथा किसी से लड़ाई बखेड़े भी होते होंगे; नहीं तो सेना रखने का क्या प्रयोजन है?॥ ३४॥

३५. और यअक़ूब अकेला रह गया और वहाँ पौ फटे लों एक जन उससे युद्ध करता रहा॥ और जब उसने देखा कि वुह प्रबल न हुआ तो उसकी जांघ को भीतर से छूआ, तब यअक़ूब के जांघ की नस उसके संग मल्लयुद्ध करने में चढ़ गई॥ तब वह बोला कि मुझे जाने दे क्योंकि पौ फटती है और वुह बोला मैं तुझे जाने न देऊंगा जब लों तू मुझे आशीष न देवे॥ तब उसने उसे कहा कि तेरा नाम क्या? और वुह बोला कि यअक़ूब।। तब उसने कहा कि तेरा नाम आगे को यअक़ूब न होगा परन्तु इसराएल, क्योंकि तूने ईश्वर के और मनुष्यों के आगे राजा की नाईं मल्लयुद्ध किया और जीता॥ तब यअक़ूब ने उस्से पूछा कि अपना नाम बताइये और वुह बोला कि तू मेरा नाम क्यों पूछता है और उसने उसे वहाँ आशीष दिया॥ और यअक़ूब ने उस स्थान का नाम फ़नूएल रक्खा, क्योंकि मैंने ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा और मेरा प्राण बचा है॥ और जब वह फ़नुएल से पार चला तो सूर्य्य की ज्योति उस पर पड़ी और वुह अपनी जांघ से लंगड़ाता था॥ इसलिए इसराएल के वंश उस जांघ की नस को जो चढ़ गई थी आज लों नहीं खाते क्योंकि उसने यअक़ूब के जांघ की नस को, जो चढ़ गई थी, छूआ था॥

—तौ० उत्प० पर्व० ३२। आ० २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। ३२॥

समीक्षक—जब ईसाइयों का ईश्वर अखाड़मल्ल है तभी तो सर: और राखल पर पुत्र होने की कृपा की। भला यह कभी ईश्वर हो सकता है? केवल लड़केपन की लीला है। और देखो लीला! कि एक जना नाम पूछे तो दूसरा अपना नाम ही न बतलावे? और ईश्वर ने उसकी नाड़ी को चढ़ा तो दी और जीत गया परन्तु जो डाक्तर होता तो जांघ की नाड़ी को अच्छी भी करता। और ऐसे ईश्वर की भक्ति से जैसा कि यअक़ूब लंगड़ाता रहा तो अन्य भक्त भी लंगड़ाते होंगे। जब ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा और मल्लयुद्ध किया, यह बात विना शरीरवाले के कैसे हो

सकती है? यह केवल लड़केपन की लीला है॥ ३५॥

३६. ईश्वर का मुंह देखा....॥

—तौ० उत्प० पर्व० ३३। आ० १०॥

समीक्षक—जब ईश्वर के मुँह है तो और भी सब अवयव होंगे और वह जन्म-मरणवाला भी होगा॥ ३६॥

३७. और यहूदाह का पहिलौंठा एर परमेश्वर की दृष्टि में दुष्ट था सो परमेश्वर ने उसे मार डाला॥ तब यहूदाह ने ओनान को कहा कि अपने भाई की पत्नी पास जा और उससे ब्याह कर और अपने भाई के लिए वंश चला॥ और ओनान ने कहा कि यह वंश मेरा न होगा और यों हुआ कि जब वुह अपनी भाई की पत्नी पास गया तो वीर्य्य को भूमि पर गिरा दिया....॥ और उसका वुह कार्य परमेश्वर की दृष्टि में बुरा था इसलिए उसने उसे भी मार डाला॥

—तौ० उत्प० पर्व० ३८। आ० ७। ८। ९। १०॥

समीक्षक—अब देख लीजिए! ये मनुष्यों के काम हैं कि ईश्वर के? जब उसके साथ नियोग हुआ तो उसको क्यों मार डाला? उसकी बुद्धि शुद्ध क्यों न कर दी? और वेदोक्त नियोग भी प्रथम सर्वत्र चलता था। यह निश्चय हुआ कि नियोग की बातें सर्वत्र चलती थीं॥ ३७॥

तौरेत यात्रा की पुस्तक

३८. ... जब मूसा सयाना हुआ ... और अपने भाइयों में से एक इबरानी को देखा कि मिस्री उसे मार रहा है॥ तब उसने इधर उधर दृष्टि की और देखा कि कोई नहीं तब उसने उस मिस्री को मार डाला और बालू में उसे छिपा दिया॥ जब वुह दूसरे दिन बाहर गया तो देखो कि दो इबरानी आपुस में झगड़ रहे है तब उसने उस अंधेरी को कहा कि तू अपने परौसी को क्यों मारता है॥ तब उसने कहा कि किसने तुझे हम पर अध्यक्ष अथवा न्यायी ठहराया, क्या तू चाहता है कि जिस रीति से तूने मिस्री को मार डाला, मुझे भी मार डाले, तब मूसा डरा और कहा कि निश्चय यह बात खुल गई॥ जब फ़िरऊ़न ने यह बात सुनी तो चाहा कि मूसा को मार डाले। परन्तु मूसा फ़िरऊ़न आगे से भाग निकला॥

—तौ० या० प० २। आ० ११, १२, १३-१५॥

समीक्षक—अब देखिये! ऐसे कर्मों का करनेहारा मूसा पैगम्बर बन गया॥ जो बाइबल का मुख्य सिद्धकर्त्ता मत का आचार्य मूसा कि जिसका चरित्र क्रोधादि गुणों से युक्त, मनुष्य की हत्या करने वाला और चौरवत् राजदण्ड से बचनेहारा अर्थात् जब बात को छिपाता था तो झूठ बोलने वाला भी अवश्य होगा, ऐसे को भी जो ईश्वर मिला, वह पैगम्बर बना, उसने यहूदी आदि का मत चलाया, वह भी मूसा ही के सदृश हुआ। इसलिए ईसाइयों के जो मूल पुरुषा हुए है, वे सब मूसा आदि से ले करके जंगली अवस्था में थे, विद्या-वस्था में नहीं, इत्यादि ॥३८॥

३९. तब परमेश्वर ने देखा कि वुह देखने को एक अलंग फिरा तो ईश्वर ने उसे झाड़ी के मध्य में से उसे पुकारके कहा कि हे मूसा! हे मूसा! तब वुह बोला मैं यहां हूँ॥ तब उसने कहा कि इधर पास मत आ, अपने पाऊँ से जूता उतार क्योंकि यह स्थान जिसपर तू खड़ा है पवित्र भूमि है॥ —या० पु० ३। आ० ४।५॥

समीक्षक—देखिये ऐसे मनुष्य! जो कि मनुष्य को मार के बालू में गाड़ने वाले से इनके ईश्वर की मित्रता और उसको पैग़म्बर मानते हैं। और देखो जब तुम्हारे ईश्वर ने मूसा से कहा कि पवित्र स्थान में जूती न ले जानी चाहिए, तुम ईसाई इस आज्ञा से विरुद्ध क्यों चलते हो?॥

प्रश्न—हम जूती के स्थान में टोपी उतार लेते हैं।

उत्तर—यह दूसरा अपराध तुमने किया, क्योंकि टोपी उतारना न ईश्वर ने कहा, न तुम्हारे पुस्तक में लिखा है। और उतारने योग्य को नहीं उतारते, जो नहीं उतारना चाहिए उसको उतारते हो, यह दोनों प्रकार तुम्हारे पुस्तक से विरुद्ध हैं।

प्रश्न—हमारे यूरोप देश में शीत अधिक है, इसलिये हम लोग जूती नहीं उतारते।

उत्तर—क्या शिर में शीत नहीं लगता? जो यही है तो जब यूरोप देश में जाओ तब ऐसा ही करना। परन्तु जब हमारे घर में वा बिछौने में आया करो तब तो जूती उतार दिया करो और जो न उतारोगे तो तुम अपने बायबिल पुस्तक के विरुद्ध चलते हो, ऐसा तुमको न करना चाहिये॥ ३९॥

४०. तब परमेश्वर ने उसे कहा कि तेरे हाथ में यह क्या है और वुह बोला कि छड़ी॥ तब उसने कहा कि उसे भूमि पर डाल दे और उसने उसे भूमि पर डाल दिया और वुह सर्प्प बन गई और मूसा उसके आगे से भागा॥ तब परमेश्वर ने मूसा से कहा कि अपना हाथ बढ़ा और उसकी पूंछ पकड़ ले, तब उसने अपना हाथ बढ़ाया और उसे पकड़ लिया और वुह उसके हाथ में छड़ी हो गई॥ तब परमेश्वर ने उसे कहा कि फिर तू अपना हाथ अपनी गोद में कर और उसने अपना हाथ अपनी गोद में किया, जब उसने उसे निकाला तो देखो कि उसका हाथ हिम के समान कोढ़ी था॥ और उसने कहा कि अपना हाथ फिर अपनी गोदी में कर, उसने फिर अपने हाथ को अपनी गोद में किया और अपनी गोद से उसे निकाला तो देखा कि जैसी उसकी सारी देह थी वुह वैसा फिर हो गया॥ तू नील नदी का जल लेके सूखी पर डालियो और वुह जो जल तू नदी से निकालेगा सो सूखी पर लोहू हो जायगा॥

—या० प० ४। आ० २।३।४।६।७।९॥

समीक्षक—अब देखिये! कैसे बाजीगर का खेल, खिलाड़ी ईश्वर, उसका सेवक मूसा और इन बातों को माननेहारे कैसे हैं? क्या आजकल बाजीगर लोग इससे कम करामात करते हैं? यह ईश्वर क्या, यह तो बड़ा खिलाड़ी है! इन बातों को विद्वान् क्योंकर मानेंगे? और हर एक वार मैं परमेश्वर हूँ और मैं अबिरहाम, इजहाक और याक़ूब का ईश्वर हूँ इत्यादि हर एक से अपने मुख से अपनी प्रशंसा करता-फिरता है, यह [बात] उत्तम जन की नहीं हो सकती, किन्तु किसी दंभी मनुष्य की हो सकती है॥ ४०॥

४१. ....और फसह मेम्ना मारो॥ और एक मूठी जूफा लेओ और उसे उस लोहू में जो बासन में है बोर के, ऊपर की चौखट के और द्वार की दोनों ओर उस्से छापो और तुममें से कोई बिहान लों अपने घर के द्वार से बाहर न जावे॥ क्योंकि परमेश्वर मिस्र के मारने के लिये आर-पार जायगा और जब वुह ऊपर की चौखट पर और द्वार की दोनों ओर लोहू को देखे तब परमेश्वर द्वार से बीत जायगा और नाशक तुम्हारे घरों में न जाने देगा कि मारे॥ —तौ० या० प० १२। आ० २१।२२।२३॥

समीक्षक—भला, यह जो टोने-टामन करने वाले के समान है, वह ईश्वर सर्वज्ञ कभी हो सकता है? जब लोहू का छापा देखे तभी इसराइल कुल का घर जाने, अन्यथा नहीं। यह काम क्षुद्रबुद्धिमनुष्य के सदृश है। इससे विदित होता है कि ये बातें किसी जङ्गली मनुष्य की लिखी हैं॥ ४१ ॥

४२. और यों हुआ कि परमेश्वर ने आधी रात को मिस्र के देश में सारे पहिलौठे को फ़िरऊन के पहिलौठे से लेके जो अपने सिंहासन पर बैठता था उस बंधुआ के पहिलौठे लों जो बंदीगृह में था पशुन के पहिलौठे समेत नाश किये।। और रात को फ़िरऊन उठा, वह और उसके सब सेवक और सारे मिस्री उठे और मिस्र में बड़ा विलाप था क्योंकि कोई घर न रहा जिसमें एक न मरा।

—तौ० या० प० १२। आ० २९। ३०॥

समीक्षक—वाह! अच्छा आधी रात को डाकू के समान निर्दयी होकर ईसाइयों के ईश्वर ने लड़के, बाले, वृद्ध और पशु तक भी विना अपराध मार दिये और कुछ भी दया न आयी और मिस्र में बड़ा विलाप होता रहा तो भी ईसाइयों के ईश्वर के चित्त से निष्ठुरता नष्ट न हुई! ऐसा काम ईश्वर के तो क्या किन्तु किसी भले मनुष्य के भी करने का नहीं है। यह आश्चर्य नहीं, क्योंकि यह लिखा है कि '**मांसाहारिणः कुतो दया**' जब ईसाइयों का ईश्वर मांसाहारी है तो उसको दया का क्या काम है?॥ ४२ ॥

४३. परमेश्वर तुम्हारे लिये युद्ध करेगा.... ॥ इसराएल के संतान से कह कि वे आगे बढ़ें॥ परन्तु तू अपनी छड़ी उठा और समुद्र पर अपना हाथ बढ़ा और उसे दो भाग कर और इसराएल के सन्तान समुद्र के बीचों बीच में से सूखी भूमि में होकर चले जायेंगे॥

—तौ० या० पर्व० १४। आ० १४। १५। १६॥

समीक्षक—क्योंजी! आगे तो ईश्वर भेड़ों के पीछे गड़रिये के समान इस्रायेल कुल के पीछे-पीछे डोला करता था, अब न जाने कहाँ गया? नहीं तो समुद्र के बीच में से चारों ओर की रेलगाड़ियों की सड़क बनवा लेते, जिससे सब संसार का उपकार होता और नाव आदि बनाने

का श्रम छूट जाता। परन्तु क्या किया जाय, ईसाइयों का ईश्वर न जाने कहाँ छिप रहा है? इत्यादि बहुत-सी मूसा के साथ असम्भव लीला ईश्वर ने की है। परन्तु यह विदित हुआ कि ऐसा ईश्वर, ऐसे उसके सेवक और ऐसा ईश्वरकृत पुस्तक हम लोगों से दूर रहै॥ ४३ ॥

४४. ....क्योंकि मैं परमेश्वर तेरा ईश्वर ज्वलित सर्वशक्तिमान् हूँ, पितरों के अपराध का दण्ड उनके पुत्रों को जो मेरा वैर रखते हैं उनकी तीसरी और चौथी पीढ़ी लों देवैया हूँ॥

—तौ० या० पर्व० २०। आ० ५॥

समीक्षक—भला यह किस घर का न्याय है कि जो पिता के अपराध से चार पीढ़ी तक दण्ड देना अच्छा मानना। क्या अच्छे पिता के दुष्ट और दुष्ट के श्रेष्ठ सन्तान नहीं होते? जो ऐसा तो चौथी पीढ़ी तक दण्ड कैसे दे सकेगा? और जो पाँचवीं पीढ़ी से आगे दुष्ट होगा उसको दण्ड न दे सकेगा। विना अपराध दण्ड देना अन्यायकारी की बात है॥ ४४॥

४५. विश्राम के दिन को उसे पवित्र रखने के लिए स्मरण कर॥ छः दिन लों तू परिश्रम कर.... ॥ और सातवां दिन परमेश्वर तेरे ईश्वर का विश्राम है.... ॥....परमेश्वर ने विश्राम दिन को आशीष दिई.... ॥

—तौ० या० प० २०। आ० ८। ९। १०। ११॥

समीक्षक—क्या रविवार एक ही पवित्र और छः दिन अपवित्र हैं? और क्या परमेश्वर ने छः दिन तक बड़ा परिश्रम किया था कि जिससे थक के सातवें दिन सो गया? और जो रविवार को आशीर्वाद दिया तो सोमवार आदि छः दिनों को क्या दिया? अर्थात् स्राप दिया होगा। ऐसा काम विद्वान् का भी नहीं तो ईश्वर का क्योंकर हो सकता है? भला रविवार ने क्या गुण और सोमवार आदि ने क्या दोष किया था कि जिससे एक को पवित्र तथा वर दिया और अन्यों को ऐसे ही अपवित्र कर दिये!॥ ४५ ॥

४६. अपने परोसी पर झूठी साक्षी मत दे॥ ....अपने परोसी की स्त्री और उसके दास, उसकी दासी और उसके बैल और उसके गदहे और किसी वस्तु का जो तेरे परोसी की है, लालच मत कर॥

—तौ० या० प० २०। आ० १६। १७॥

समीक्षक—वाह! तभी तो ईसाई लोग परदेशियों के माल पर ऐसे झुकते हैं कि जानो प्यासा जल पर, भूखा अन्न पर। जैसी यह केवल मतलबसिन्धु और पक्षपात की बात है, ऐसा ही ईसाइयों का ईश्वर भी है। यदि कोई कहे कि हम सब मनुष्यमात्र को परोसी मानते हैं तो सिवाय मनुष्यों के अन्य कौन स्त्री और दासी आदि वाले हैं कि जिनको अपरोसी गिनें? इसलिए यह बातें स्वार्थी मनुष्यों की हैं, ईश्वर की नहीं॥ ४६॥

४७. जो कोई किसी मनुष्य को मारे और वुह मर जाय, वह निश्चय घात किया जाय॥ और यदि वुह मनुष्य घात में न लगा हो परन्तु ईश्वर ने उसके हाथ में सौंप दिया हो तब मैं तुझे भागने का स्थान बता दूँगा॥

—तौ० या० प० २१। आ०। १२। १३॥

समीक्षक—जो यह ईश्वर का न्याय सच्चा है तो मूसा एक आदमी को मार गाड़कर भाग गया था, उसको यह दण्ड क्यों न हुआ? जो कहो ईश्वर ने मूसा को मारने के अर्थ सौंपा था तो ईश्वर पक्षपाती हुआ, क्योंकि उस मूसा का राजा से न्याय क्यों न होने दिया?॥ ४७॥

४८. ....और कुशल का बलिदान बैलों से परमेश्वर के लिए चढ़ाया॥ और मूसा ने आधा लोहू लेके पात्रों में रक्खा और आधा लोहू वेदी पर छिड़का.... ॥ और मूसा ने उस लोहू को लेके लोगों पर छिड़का और कहा कि यह लोहू उस नियम का है जिसे परमेश्वर ने इन बातों के कारण तुम्हारे साथ किया है। और परमेश्वर ने मूसा से कहा कि पहाड़ पर मुझ पास आ और वहाँ रह और मैं तुझे पत्थर की पटियाँ और व्यवस्था और आज्ञा जो मैंने लिखी है, दूंगा॥

—तौ० या० प० २४। आ० ५। ६। ८। १२॥

समीक्षक—अब देखिये! ये सब जङ्गली लोगों की बातें हैं वा नहीं और परमेश्वर बैलों का बलिदान लेता और वेदी पर लोहू छिड़कना यह कैसी जङ्गलीपन और असभ्यता की बात है? जब ईसाइयों का खुदा भी बैलों का बलिदान लेवे तो उसके भक्त बैल-गाय के बलिदान की प्रसादी से पेट क्यों न भरें और जगत् की हानि क्यों न करें? ऐसी-ऐसी बुरी बातें बाइबल में भरी हैं। इसी के कुसंस्कारों से वेदों में भी ऐसा झूठा दोष लगाना चाहते हैं परन्तु वेदों में ऐसी बातों का नाम भी नहीं।

और यह भी निश्चय हुआ कि ईसाइयों का ईश्वर एक पहाड़ी मनुष्य था, पहाड़ पर रहता था। जब वह खुदा स्याही, लेखनी, काग़ज नहीं बना जानता और न उसको प्राप्त था, इसीलिये पत्थर की पटियों पर लिख-लिख देता था और इन्हीं जङ्गलियों के सामने ईश्वर भी बन बैठा॥ ४८॥

४९. और बोला कि तू मेरा रूप नहीं देख सकता क्योंकि मुझे देखके कोई मनुष्य न जीयेगा॥ और परमेश्वर ने कहा कि देख एक स्थान मेरे पास है और तू उस टीले पर खड़ा रह॥ और यों होगा कि जब मेरा विभव चल निकलेगा तो मैं तुझे पहाड़ के दरार में रक्खूंगा और जब लों जा निकलूं तूझे अपने हाथ से ढांपूंगा॥ और अपना हाथ उठा लूंगा और तू मेरा पीछा देखेगा परन्तु मेरा रूप दिखाई न देगा॥

—तौ० या० पर्व० ३३। आ० २०। २१। २२। २३॥

समीक्षक—अब देखिये! ईसाइयों का ईश्वर केवल मनुष्यवत् शरीरधारी और मूसा से कैसा प्रपञ्च रचके आप स्वयं ईश्वर बन गया। जो पीछा देखेगा, रूप न देखेगा तो हाथ से उसको ढांप दिया भी होगा। जब खुदा ने अपने हाथ से मूसा को ढांपा होगा तब क्या उसके हाथ का रूप उसने न देखा होगा?॥ ४९॥

लैव्य व्यवस्था की पुस्तक, तौ०।

५०. और परमेश्वर ने मूसा को बुलाया और मंडली के तम्बू में से यह वचन उसे कहा।। कि इसराएल के सन्तानों से बोल और उन्हें कह यदि कोई तुम्में से परमेश्वर के लिये भेंट लावे तो तुम ढोर में से अर्थात् गाय बैल और भेड़ बकरी में से अपनी भेंट लाओ॥

—तौ० लैव्य व्यवस्था की पुस्तक, प० १। आ० १। २॥

समीक्षक—अब विचारिये! ईसाइयों का परमेश्वर गाय, बैल आदि की भेंट लेनेवाला, जो कि अपने लिये बलिदान कराने के लिये उपदेश करता है वह बैल गाय आदि पशुओं के लोहू-मांस का प्यासा-भूखा है वा नहीं? इसी से वह अहिंसक और ईश्वर कोटि में गिना कभी नहीं जा सकता किन्तु मांसाहारी प्रपञ्ची मनुष्य के सदृश है॥ ५०॥

५१. और वुह उस बैल को परमेश्वर के आगे बलि करे और

हारून के बेटे याजक लोहू को निकट लावें और लोहू को यज्ञवेदी के चारों ओर जो मंडली के तंबू के द्वार पर है छिड़कें॥ तब वुह उस भेंट के बलिदान की खाल निकाले और उसे टुकड़ा टुकड़ा करे॥ और हारून के बेटे याजक यज्ञवेदी पर आग रक्खें और उसपर लकड़ी चुनें॥ और हारून के बेटे याजक उसके टुकड़ों को और शिर और चिकनाई को उन लकड़ियों पर जो यज्ञवेदी की आग पर हैं विधि से धरें॥....जिसतें बलिदान की भेंट होवे, जो आग से परमेश्वर के सुगंध के लिये भेंट किया गया॥

—तौ० लै० व्यवस्था की पुस्तक, प० १। आ० ५।६।७।८।९॥

समीक्षक—तनिक विचारिये! कि बैल को परमेश्वर के आगे उसके भक्त मारें और वह मरवावे और लोहू को चारों और छिड़कें, अग्नि में होम करें, ईश्वर सुगन्ध लेवे, भला, यह कसाई के घर से कुछ कमती लीला है? इसी से न बायबिल ईश्वरकृत, और न, वह जङ्गली मनुष्य के सदृश लीलाधारी, ईश्वर हो सकता है॥५१॥

५२. फिर परमेश्वर मूसा से यह कहके बोला॥ कि यदि वुह अभिषेक किया हुआ याजक लोगों के पाप के समान पाप करे, तो वह अपने पाप के कारण जो उसने किया है, अपने पाप की भेंट के लिए निष्खोट एक बछिया परमेश्वर के लिये लावे॥....और बछिया के शिर पर अपना हाथ रक्खे और बछिया को परमेश्वर के आगे बलि करे॥

—तौ० लै० व्य० प० ४। आ० १।३।४॥

समीक्षक—अब देखिये पापों के छुड़ाने के प्रायश्चित्त! स्वयं पाप करे, गाय आदि उत्तम पशुओं की हत्या करे और परमेश्वर करवावे। धन्य है ईसाई लोग! कि ऐसी बातों के करने-करानेहारे को भी ईश्वर मानकर अपनी मुक्ति आदि की आशा करते हैं॥५२॥

५३. जब कोई अध्यक्ष पाप करे.... ॥....तब वुह बकरी का निष्खोट नर मेम्ना अपनी भेंट के लिये लावे॥ और....उसे....परमेश्वर के आगे बलि करे॥ यह पाप की भेंट है।

—तौ० लै० प० ४। आ० २२।२३।२४॥

समीक्षक—वाहजी! वाह! यदि ऐसा है तो इनके अध्यक्ष अर्थात् न्यायाधीश तथा सेनापति आदि पाप करने से क्यों डरते होंगे? आप तो यथेष्ट पाप करें और प्रायश्चित के बदले में गाय, बछिया, बकरे आदि के प्राण लेवें, तभी तो ईसाई लोग किसी पशु वा पक्षी के प्राण लेने में शङ्कित नहीं होते। सुनो ईसाई लोगो! अब तो इस जङ्गली मत को छोड़के सुसभ्य धर्ममय वेदमत को स्वीकार करो कि जिससे तुम्हारा कल्याण हो॥५३॥

५४. और यदि उसे भेड़ लाने की पूँजी न हो तो वह अपने किये हुए अपराध के लिये दो पिण्डुकियां और कपोत के दो बच्चे परमेश्वर के लिये लावे॥ और उसका सिर उसके गले के पास से मरोड़ डाले परन्तु अलग न करे॥ ....उसके किये हुए पाप का प्रायश्चित करे और उसके लिये क्षमा किया जायगा॥ पर यदि उसे दो पिण्डुकियां और कपोत के दो बच्चे लाने की पूंजी न हो तो ....सेर भर चोखा पिसान पाप की भेंट के लिये लावे,* उस पर तैल न डाले.... ॥ ....और वुह क्षमा किया जायगा॥ —तौ० लै० प० ५। आ० ७।८।१०।११।१३॥

समीक्षक—अब सुनिये! ईसाइयों में पाप करने से कोई धनाढ्य न डरता होगा और न दरिद्र भी; क्योंकि इनके ईश्वर ने पापों का प्रायश्चित करना सहज कर रक्खा है। एक यह बात ईसाइयों की बायबिल में बड़ी अद्‌भुत है कि विना कष्ट किये पाप से पाप छूट जाय। क्योंकि एक तो पाप किया और दूसरे जीवों की हिंसा की और खूब आनन्द से मांस

* इस ईश्वर को धन्य है कि जिसने बछड़ा, भेड़ी और बकरी का बच्चा, कपोत और पिसान (आटे) तक लेने का नियम किया। अद्‌भुत बात तो यह है कि कपोत के बच्चे 'गरदन मरोड़वा के' लेता था अर्थात् गर्दन तोड़ने का परिश्रम न करना पड़े। इन सब बातों के देखने से विदित होता है कि जङ्गलियों में कोई चतुर पुरुष था, वह पहाड़ पर जा बैठा और अपने को ईश्वर प्रसिद्ध किया। जङ्गली अज्ञानी थे, उन्होंने उसी को ईश्वर स्वीकार कर लिया। अपनी युक्तियों से वह पहाड़ पर ही खाने के लिए पशु, पक्षी और अन्नादि मँगा लिया करता था और मौज करता था। उसके दूत=फरिश्ते काम किया करते थे। सज्जन लोग विचारें कि कहाँ तो बाइबल में बछड़ा, भेड़ी, बकरी का बच्चा, कपोत और 'अच्छे' पिसान का खानेवाला ईश्वर और कहाँ सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान् और न्यायकारी इत्यादि उत्तम गुणयुक्त वेदोक्त ईश्वर?

खाया और पाप भी छूट गया।

भला कपोत के बच्चे का गला मरोड़ने से वह बहुत देर तक तड़फता होगा तब भी ईसाइयों को दया नहीं आती। दया क्योंकर आवे? इनके ईश्वर का उपदेश ही हिंसा करने का है। और जब सब पापों का ऐसा प्रायश्चित्त है तो ईसा के विश्वास से पाप छूट जाता है, यह बड़ा आडम्बर क्यों करते हैं?॥ ५४॥

५५. ....सो उसी बलिदान की खाल उसी याजक की होगी, जिसने उसे चढ़ाया॥ और समस्त भोजन की भेंट जो तन्दूर में पकाई जावें और सब जो कड़ाही में अथवा तवे पर, सो उसी याजक की होगी॥

—तौ० लै० प० ७। आ० ८।९॥

समीक्षक—हम जानते थे कि यहां देवी के भोपे और मन्दिरों के पुजारियों की पोपलीला विचित्र है, परन्तु ईसाइयों के ईश्वर और उसके पुजारियों की पोपलीला इससे सहस्रगुणी बढ़ कर है। क्योंकि चाम के दाम और भोजन के पदार्थ खाने को आवें फिर ईसाइयों के याजकों ने खूब मौज उड़ाई होगी? और अब भी उड़ाते होंगे? भला, कोई मनुष्य एक लड़के को मरवावे और दूसरे लड़के को उसका मांस खिलावे, ऐसा कभी हो सकता है? वैसे ही ईश्वर के सब मनुष्य और पशु, पक्षी आदि सब जीव पुत्रवत् हैं। परमेश्वर ऐसा काम कभी नहीं कर सकता। इसी से यह बायबिल ईश्वरकृत और इसमें लिखा ईश्वर और इसके माननेवाले धर्मज्ञ कभी नहीं हो सकते। ऐसी ही सब बातें लैव्य व्यवस्था आदि पुस्तकों में भरी है, कहां तक गिनावें?॥ ५५॥

गिनती की पुस्तक

५६. सो गदही ने परमेश्वर के दूत को अपने हाथ में तलवार खींचे हुए मार्ग में खड़े देखा, तब गदही मार्ग से अलग खेत में फिर गई, उसे मार्ग में फिरने के लिये बलआम ने गदही को लाठी से मारा॥ तब परमेश्वर ने गदही का मुंह खोला और उसने बलआम से कहा कि मैंने तेरा क्या किया है कि तूने मुझे अब तीन वार मारा॥

—तौ० गि० प० २२। आ० २३।२८॥

समीक्षक—प्रथम तो गदहे तक ईश्वर के दूतों को देखते थे और आजकल बिशप पादरी आदि श्रेष्ठ वा अश्रेष्ठ मनुष्यों को भी खुदा वा उसके दूत नहीं दीखते हैं। क्या आजकल परमेश्वर और उसके दूत हैं वा नहीं! यदि हैं तो क्या बड़ी नींद में सोते हैं? वा रोगी अथवा किसी अन्य भूगोल में चले गये? वा किसी अन्य धन्धे में लग गये? वा अब ईसाइयों से रुष्ट हो गये? अथवा मर गये? विदित नहीं होता कि क्या हुआ? अनुमान तो ऐसा होता है कि जो अब नहीं हैं, नहीं दीखते, तो तब भी नहीं थे और नहीं दीखते होंगे, किन्तु ये केवल मनमाने गपोड़े उड़ाये हैं॥ ५६॥

५७. सो अब लड़कों में से हर एक बेटे को और हर एक स्त्री को जो पुरुष से संयुक्त हुई हो प्राण से मारो॥ परन्तु वे बेटियां जो पुरुष से संयुक्त नहीं हुई हैं, उन्हें अपने लिये जीती रक्खो॥

—तौ० गिनती० प० ३१। आ० १७।१८॥

समीक्षक—वाहजी! मूसा पैग़म्बर और तुम्हारा ईश्वर धन्य है कि जो स्त्री, बाल, वृद्ध और पशु हत्या करने से भी अलग न रहे और इससे स्पष्ट निश्चित होता है कि मूसा विषयी था क्योंकि जो विषयी न होता तो 'अक्षतयोनि' अर्थात् पुरुषों से समागम न की हुई कन्याओं को अपने लिये क्यों मँगाता वा उनको ऐसी निर्दय वा विषयीपन की आज्ञा क्यों देता?॥ ५७॥

समुएल की दूसरी पुस्तक

५८. और उसी रात ऐसा हुआ कि परमेश्वर का वचन यह कहके नातन को पहुंचा॥ कि जा और मेरे सेवक दाऊद से कह कि परमेश्वर यों कहता है कि क्या मेरे निवास के लिये तू एक घर बनावेगा॥ क्योंकि जब से इसराएल के सन्तान को मिस्र से निकाल लाया, मैंने तो आज के दिन लों घर में वास न किया परन्तु तंबू में और डेरे में फिरा किया॥

—तौ० समुएल की दूसरी पु० प० ७। आ० ४।५।६॥

समीक्षक—अब कुछ सन्देह न रहा कि ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् देहधारी है। और उलहना देता है कि मैंने बहुत परिश्रम किया, इधर-उधर डोलता फिरा, अब दाऊद घर बनादे तो उसमें आराम करूं। क्यों ईसाइयों को ऐसे ईश्वर और ऐसे पुस्तक को मानने में लज्जा भी नहीं आती? परन्तु क्या करें बिचारे फस गये तो फस ही गये। अब

निकलने के लिये बड़ा पुरुषार्थ करना उचित है॥ ५८॥

राजाओं का पुस्तक

५९. और बाबुल के राजा नबूख़ुदनज़र के राज्य के उन्नीसवें बरस के पाँचवें मास सातवीं तिथि में बाबुल के राजा का एक सेवक नबूसरअद्दान जो निज सेना का प्रधान अध्यक्ष था, यरूसलम में आया।। और उसने परमेश्वर का मन्दिर और राजा का भुवन और यरूसलम के सारे घर और हर एक बड़े घर को जला दिया॥ और कसदियों की सारी सेना ने जो उस निज सेना के अध्यक्ष के साथ थीं, यरूसलम की भीतों को चारों ओर से ढा दिया॥ —तौ० रा० प० २५। आ० ८।९।१०॥

समीक्षक—क्या किया जाय, ईसाइयों के ईश्वर ने तो अपने आराम के लिये दाऊद आदि से घर बनवाया था, उसमें आराम करता होगा, परन्तु नबूसरअद्दान ने ईश्वर के घर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और ईश्वर वा उसके दूतों की सेना कुछ भी न कर सकी।

प्रथम तो इनका ईश्वर बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ मारता था और विजयी होता था परन्तु अब अपना घर जला तुड़वा बैठा। न जाने चुपचाप क्यों बैठा रहा? और न जाने उस के दूत किधर भाग गये? ऐसे समय पर कोई भी काम न आया और ईश्वर का पराक्रम भी न जाने कहाँ उड़ गया? यदि यह बात सच्ची हो तो जो-जो विजय की बातें प्रथम लिखीं सो-सो सब व्यर्थ हो गईं। क्या मिस्र के लड़का-लड़कियों के मारने ही में शूरवीर बना था? अब शूरवीरों के सामने चुपचाप हो बैठा? यह तो ईसाइयों के ईश्वर ने अपनी निन्दा और अप्रतिष्ठा करा ली। ऐसे ही हज़ारों इस पुस्तक में निकम्मी कहानियाँ भरी हैं॥ ५९॥

ज़बूर दूसरा भाग

काल के समाचार की पहली पुस्तक

६०. सो परमेश्वर मेरे ईश्वर ने इसराएल पर मरी भेजी और इसराएल में से सत्तर सहस्र पुरुष गिर गये॥ —काल० प० २१। आ० १४॥

समीक्षक—अब देखिये इसरायल के ईसाइयों के ईश्वर की लीला! जिस इसराएल कुल को बहुत से वर दिये थे और रात दिन जिनके पालन में डोलता था, अब झट क्रोधित होकर मरी डालके ७००००—

सत्तर सहस्र मनुष्यों को मार डाला। जो यह किसी कवि ने लिखा है, सत्य है कि—

क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टो रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः॥

जैसे कोई मनुष्य क्षण में प्रसन्न, क्षण में अप्रसन्न होता है अर्थात् क्षण-क्षण में प्रसन्न-अप्रसन्न होवे, उसकी प्रसन्नता भी भयदायक होती है, वैसी लीला ईसाइयों के ईश्वर की है॥ ६०॥

ऐयूब की पुस्तक

६१. और एक दिन ऐसा हुआ कि परमेश्वर के आगे ईश्वर के पुत्र आ खड़े हुए और शैतान भी उनके मध्य में परमेश्वर के आगे आ खड़ा हुआ॥ और परमेश्वर ने शैतान से कहा कि तू कहां से आता है? तब शैतान ने उत्तर देके परमेश्वर से कहा कि पृथिवी पर घूमते और इधर-उधर से फिरते चला आता हूं॥ तब परमेश्वर ने शैतान से पूछा कि तूने मेरे दास ऐयूब को जांचा है कि उसके समान पृथिवी में कोई नहीं है, वुह सिद्ध और खरा जन ईश्वर से डरता और पाप से अलग रहता है और अब लों अपनी सच्चाई को धर रक्खा है और तूने मुझे उसे अकारण नाश करने को उभारा है॥ तब शैतान ने उत्तर देके परमेश्वर से कहा कि चाम के लिये चाम, हां जो मनुष्य का है सो अपने प्राण के लिये देगा॥ परन्तु अब अपना हाथ बढ़ा और उसके हाड़ माँस को छू, तब वुह निःसन्देह तुझे तेरे सामने त्यागेगा॥ तब परमेश्वर ने शैतान से कहा कि देख, वुह तेरे हाथ में है, केवल उसके प्राण को बचा॥ तब शैतान परमेश्वर के आगे से चला गया और ऐयूब को सिर से तलवे लों बुरे फोड़ों से मारा॥ —जबूर ऐयू० प० २। आ० १।२।३।४।५।६।७॥

समीक्षक—अब देखिये ईसाइयों के ईश्वर का सामर्थ्य! कि शैतान उसके सामने उसके भक्तों को दुःख देता है। न शैतान को दण्ड, न अपने भक्तों को बचा सकता और न उसके दूतों में से कोई उसका सामना कर सकता है। एक शैतान ने सबको भयभीत कर रक्खा है। और ईसाइयों का ईश्वर भी सर्वज्ञ नहीं। जो सर्वज्ञ होता तो ऐयूब की परीक्षा शैतान से क्यों कराता?॥ ६१॥

उपदेश की पुस्तक

६२. हां मेरे अन्त:करण ने बुद्धि और ज्ञान बहुत देखा है॥ और मैंने बुद्धि और बौड़ाहपन और मूढ़ता जान्ने को मन लगाया, मैंने जान लिया कि यह भी मन का झूंझट है॥ क्योंकि अधिक बुद्धि में बड़ा शोक है और जो ज्ञान में बढ़ता है सो दु:ख में बढ़ता है॥

—ज० उ० प० १। आ० १५।१६।१७॥

समीक्षक—अब देखिये! जो बुद्धि और ज्ञान पर्यायवाची हैं, उनको दो मानते हैं। और बुद्धि की वृद्धि में शोक और दु:ख मानना, विना अविद्वान् के ऐसा लेख कौन कर सकता है? इसलिये यह बायबिल ईश्वर की बनाई तो क्या किसी विद्वान् की भी बनाई नहीं है॥ ६२॥

यह थोड़ा-सा तौरेत, जबूर के विषय में लिखा। इसके आगे थोड़ा-सा मत्ती रचित आदि इञ्जील के विषय में लिखा जायगा। अब जिसको ईसाई लोग बहुत प्रमाणभूत मानते हैं, जिसका नाम, इञ्जील रक्खा है, उसकी परीक्षा थोड़ी सी लिखते हैं कि यह कैसी है।

मत्ती रचित इंजील

६३. यीशु ख्रीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ, उसकी मां मरियम की यूसफ से मंगनी हुई थी परन्तु उनके इकट्ठे होने के पहिले वह देख पड़ी कि पवित्र आत्मा से गर्भवती है। ....देखो परमेश्वर के एक दूत ने स्वप्न में उसे दर्शन दे कहा—हे दाऊद के सन्तान यूसफ तू अपनी स्त्री मरियम को यहां लाने से मत डर क्योंकि उसको जो गर्भ रहा है सो पवित्र आत्मा से है॥ —इंजील मत्तीरचित प० १। आ० १८।२०॥

समीक्षक—इन बातों को कोई विद्वान् नहीं मान सकता कि जो प्रत्यक्षादि प्रमाण और सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं। इन बातों का मानना मूर्ख मनुष्य जंगलियों का काम है, सभ्य विद्वानों का नहीं। भला! जो परमेश्वर का नियम है उसको कोई तोड़ नहीं सकता और जो परमेश्वर भी अपने नियम को उलटा-पलटा करे तो उसकी आज्ञा को कोई न माने और वह भी सर्वज्ञ और निर्भ्रम न रहै। ऐसे तो जिस-जिस कुमारिका के गर्भ रह जाय, तब सब कोई ऐसे कह सकते हैं कि इसमें गर्भ का रहना ईश्वर की ओर से है। और झूठ-मूठ कह दे कि परमेश्वर के दूत ने मुझको

स्वप्न में कह दिया है कि यह गर्भ परमात्मा की ओर से है। जैसा यह असम्भव प्रपञ्च रचा है, वैसा ही सूर्य्य से कुन्ती का गर्भवती होना भी पुराणों में असम्भव लिखा है। ऐसी-ऐसी बातों को **'आँख के अन्धे गाँठ के पूरे'** लोग मान कर भ्रमजाल में गिरते हैं। यह ऐसी बात हुई होगी कि किसी पुरुष के साथ समागम होने से गर्भवती मरियम हुई होगी, उसने वा किसी दूसरे ने ऐसी असम्भव बात उड़ा दी होगी कि इसमें गर्भ ईश्वर की ओर से है॥ ६३॥

६४. तब आत्मा यीशु को जंगल में ले गया कि शैतान से उसकी परीक्षा की जाय।। वह चालीस दिन और चालीस रात उपवास करके पीछे भूखा हुआ॥ तब परीक्षा करनेहारे ने कहा कि जो तू ईश्वर का पुत्र है तो कह दे कि ये पत्थर रोटियां बन जावें॥

—म० इं० प० ४। आ० १।२।३॥

समीक्षक—इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं। क्योंकि जो सर्वज्ञ होता तो उसकी परीक्षा शैतान से क्यों कराता? स्वयं जान लेता। भला किसी ईसाई को आजकल चालीस रात दिन भूखा रक्खें तो कभी बच सकेगा? और इससे यह भी सिद्ध हुआ कि न वह ईश्वर का बेटा और न कुछ उसमें करामात अर्थात् सिद्धि थी, नहीं तो शैतान के सामने पत्थर की रोटियां क्यों न बना देता? और आप भूखा क्यों रहता?

और सिद्धान्त यह है कि जो परमेश्वर ने पत्थर बनाये हैं, उनको रोटी कोई भी नहीं बना सकता और ईश्वर भी पूर्वकृत नियम को उलटा नहीं कर सकता क्योंकि वह सर्वज्ञ और उसके सब काम विना भूल-चूक के हैं॥ ६४॥

६५. जब यीशु ने सुना कि योहन बन्दीगृह में डाला॥

—इं० म० प० ४। आ० १२॥

समीक्षक—जब सुनकर योहन का बन्दीगृह में पड़ना जाना, तो सर्वज्ञ नहीं। क्योंकि सुनके जानना असर्वज्ञ जीवों का काम है। यह सुनके जानना, जानके भूलना ईश्वर का स्वभाव नहीं, किन्तु जीव का स्वभाव है॥ ६५॥

६६. यीशु बपतिस्मा लेके तुरन्त जल से ऊपर आया और देखो! उसके लिये स्वर्ग खुल गया और उसने ईश्वर के आत्मा को कपोत की नांईं उतरते और अपने ऊपर आते देखा॥

—इं० म० प० ४, आ० १६।१७॥

समीक्षक—भला! ईश्वर का आत्मा आंख से कभी दीख सकता है? और व्यापक ईश्वर कपोत की नांईं न कभी उतरता, न चढता है। और जो चढता उतरता है, वह ईश्वर ही नहीं होता॥ ६६॥

६७. उसने उनसे कहा तुम मेरे पीछे आओ, मैं तुमको मनुष्यों के मछुवे बनाऊंगा॥ वे तुरन्त जालों को छोड़के उसके पीछे हो लिये॥

—इं० मत्ती० प० ४। आ० १९।२०॥

समीक्षक—विदित होता है कि इसी पाप अर्थात् जो तौरेत में दश आज्ञाओं में लिखा है कि 'सन्तान लोग अपने माता पिता की सेवा और मान्य करें जिससे उनकी उमर बढ़े' और ईसा ने न अपने माता-पिता की सेवा की और दूसरों को भी माता-पिता की सेवा से छुड़ाये, इसी अपराध से चिरंजीवी न रहा। और यह भी विदित हुआ कि ईसा ने मनुष्यों के फसाने के लिये एक मत चलाया है कि जाल में मच्छी के समान मनुष्यों को स्वमत जाल में फसाकर अपना प्रयोजन साधें।

जब ईसा ही ऐसा था तो आजकल के पादरी लोग अपने जाल में मनुष्यों को फसावें तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि जैसे बड़ी-बड़ी और बहुत मच्छियों को जाल में फसानेवाले की प्रतिष्ठा और जीविका अच्छी होती है, इसीसे जो बहुतों को अपने मत में फसा ले, उसकी अधिक प्रतिष्ठा और जीविका होती है। इसीसे ये लोग जिन्होंने वेद और शास्त्रों को न पढ़ा, न सुना, उन बिचारे भोले मनुष्यों को अपने जाल में फसाके, उसके मा-बाप, कुटुम्ब आदि से पृथक् कर देते हैं, इससे सब विद्वान् आर्यों को उचित है कि आप इनके भ्रमजाल से बचें और अन्य भोले-भाले अपने भाइयों को भी बचावें॥ ६७॥

६८. तब यीशु सारे गालील देश में उनकी सभाओं में उपदेश करता हुआ और राज्य का सुसमाचार प्रचार करता हुआ और लोगों में हर एक रोग और हर एक व्याधि को चंगा करता हुआ फिरा किया॥....सब

रोगियों को जो नाना प्रकार के रोगों और पीड़ाओं से दुःखी थे और भूतग्रस्तों और मृगीवाले और अर्द्धाङ्गियों को उस पास लाये और उसने उन्हें चंगा किया॥

—इं० मत्ती० प० ४। आ० २३।२४॥

समीक्षक—जैसे आजकल पोपलीला, भूत निकालने के मन्त्र, पुरश्चरण, आशीर्वाद, ताबीज और भस्म की चुटुकी देने से भूतों को निकालना, रोगों को छुड़ाना सच्चा हो, तो वह इंजील की बात भी सच्ची होवे। इसलिये भोले मनुष्यों को भ्रम में फसाने के लिये ये बातें हैं। जो ईसाई लोग ईसा की बातों को मानते हैं, तो यहाँ के देवी-भोपों की बातें क्यों नहीं मानते, क्योंकि वे बातें इन्हीं के सदृश हैं॥ ६८॥

६९. धन्य वे जो मन में दीन हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है॥

—इं० मत्ती० प० ५। आ० ३॥

समीक्षक—जो स्वर्ग एक है तो राजा भी एक होना चाहिये। इसलिये जितने दीन हैं, वे सब स्वर्ग को जावेंगे, तो स्वर्ग में राज्य का अधिकार किसको होगा? अर्थात् परस्पर लड़ाई-भिड़ाई करेंगे और राज्यव्यवस्था खण्ड-बण्ड हो जायगी। और दीन के कहने से जो कंगले लोगे, तब तो ठीक नहीं। जो निरभिमानी लोगे, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि दीन और निरभिमान का एकार्थ नहीं। किन्तु जो मन में दीन होता है, उसको सन्तोष कभी नहीं होता, इसलिये यह बात ठीक नहीं॥ ६९॥

७०. क्योंकि मैं तुमसे सच कहता हूँ कि जब लों आकाश और पृथिवी टल न जायें, तब लों व्यवस्था से एक मात्रा अथवा एक बिन्दु विना पूरा हुए नहीं टलेगा॥ इसलिये इन अति छोटी आज्ञाओं में से एक को लोप करे और लोगों को वैसे ही सिखावे, वह स्वर्ग के राज्य में सबसे छोटा कहावेगा॥

—इं० म० प० ५, आ० १८।१९॥

समीक्षक—जब आकाश पृथिवी टल जायें तब व्यवस्था भी टल जायेगी ऐसी अनित्य व्यवस्था मनुष्यों की होती है; सर्वज्ञ ईश्वर की नहीं। और यह एक प्रलोभन और भयमात्र दिया है कि जो इन आज्ञाओं को न मानेगा वह स्वर्ग में सबसे छोटा गिना जायेगा॥ जब यह ईसा की साक्षी है तो तौरेत और जबूर के लेख को भी ईसाई लोगों को अवश्य

मानना होगा। यद्यपि उन पुस्तकों में जो बातें अच्छी हैं, वे वेदोक्त होने से खण्डनीय नहीं हो सकतीं, किन्तु मन्तव्य हैं। परन्तु उनमें जितने दोष हैं, उनका उत्तर देना ईसाइयों पर निर्भर रखता है। उस पुस्तक में बहुतांश तो इतिहास ही भरा है और बहुत-सी असम्भव भी हैं। ऐसी पुस्तक के सत्य होने में ईसा की साक्षी देना ईसा को अविद्वान् कर देती है॥ ७०॥

७१. मैं तुमसे कहता हूं यदि तुम्हारा धर्म अध्यापकों और फरीसियों के धर्म से अधिक न होवे, तो तुम स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करने न पाओगे॥

समीक्षक—जब धर्माचरण ही से स्वर्ग प्राप्त है, तो चाहे वहां, चाहे उस समय में, चाहे कोई मनुष्य धर्मात्मा होगा, स्वर्ग पावेगा। ईसा के मानने की आवश्यकता नहीं॥ ७१॥

७२. सो जैसा तुम्हारा स्वर्गवासी पिता सिद्ध है तैसे तुम भी सिद्ध होओ॥ —इं० म० प० ५, आ० ४८॥

समीक्षक—जब सब का पिता परमेश्वर है, तो ईसाई लोग केवल ईसा का पिता परमेश्वर कहते हैं, यह इनकी बड़ी भूल की बात है॥ ७२॥

७३. हमारी दिन भर की रोटी आज हमें दे। अपने लिये पृथिवी पर धन का संचय मत करो.... ॥ —इं० म० ६। आ० ११। १९॥

समीक्षक—इससे विदित होता है कि जिस समय ईसा का जन्म हुआ है, उस समय लोग जंगली और दरिद्र थे तथा ईसा भी वैसा ही दरिद्र था। इसीसे तो दिन भर की रोटी की प्राप्ति के लिये ईश्वर की प्रार्थना करता और सिखलाता है॥ जब ऐसा है तो ईसाई लोग धन संचय क्यों करते हैं? उनको चाहिये कि ईसा के वचन से विरुद्ध न चलकर सब दान-पुण्य करके दीन हो जायें॥ ७३॥

७४. हर एक जो मुझसे हे प्रभु! हे प्रभु! कहता है, स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं करेगा.... ॥ —इं० म० ७। आ० २१॥

समीक्षक—अब विचारिये। बड़े-बड़े पादरी बिशप साहेब और कृश्चीन लोग जो यह ईसा का वचन सत्य है, ऐसा समझें, तो ईसा को प्रभु अर्थात् ईश्वर कभी न कहें, यदि इस बात को न मानेंगे, तो पाप से कभी नहीं बच सकेंगे॥ ७४॥

७५. उस दिन में बहुतेरे मुझसे कहेंगे.... ॥ तब मैं उनसे खोलके कहूँगा—मैंने तुमको कभी नहीं जाना है। कुकर्म्म करनेहारो मुझसे दूर होओ॥ —इं० म० प० ७। आ० २२। २३॥

समीक्षक—देखिये! ईसा जङ्गली मनुष्यों को विश्वास कराने के लिए स्वर्ग में न्यायाधीश बनना चाहता है। यह केवल भोले मनुष्यों को प्रलोभन देने की बात है॥ ७५॥

७६. और देखो एक कोढी ने आ उसको प्रणाम कर कहा हे प्रभु! जो आप चाहें तो मुझे शुद्ध कर सकते हैं।। यीशु ने हाथ बढ़ा उसे छूके कहा—मैं तो चाहता हूँ शुद्ध होजा, और उसका कोढ़ तुरन्त शुद्ध हो गया॥ —इं० म० प० ८। आ० २। ३॥

समीक्षक—ये सब बातें भोले मनुष्यों के फसाने की हैं। क्योंकि जब ईसाई लोग इन विद्या-सृष्टिक्रमविरुद्ध बातों को सत्य मानते हैं तो शुक्राचार्य्य, धन्वन्तरि, कश्यप आदि की बात पुराण और भारत में अनेक दैत्यों की मरी हुई सेना को जिला दिये; बृहस्पति के पुत्र कच को टुकड़ा-टुकड़ा कर जानवर और मच्छियों को खिला दिया, फिर भी शुक्राचार्य्य ने जीता कर दिया, पश्चात् कच को मारकर शुक्राचार्य्य को खिला दिया, फिर उसको पेट में जीता कर बाहर निकाला, आप मर गया, उसको कच ने जीता किया, कश्यप ऋषि ने मनुष्यसहित वृक्ष को तक्षक से भस्म हुए पीछे, पुनः वृक्ष और मनुष्य को जिला दिया, धन्वन्तरि ने लाखों मुर्दे जिलाये, लाखों कोढ़ी आदि रोगियों को चंगा किया, लाखों अन्धा और बहिरों को आँख और कान दिए, आदि कथा को मिथ्या क्यों कहते हैं?

जो यह बात मिथ्या है, तो ईसा की बातें मिथ्या क्यों नहीं? जो दूसरे की बातों को मिथ्या और अपनी झूठी को सच्ची कहते हैं, तो हठी क्यों नहीं? इसलिये ईसाइयों की बातें केवल हठ और लड़कों के समान है॥ ७६॥

७७. .... तब दो भूतग्रस्त मनुष्य कबरस्थान से निकलकर उससे आ मिले जो यहाँ लों अतिप्रचंड थे कि उस मार्ग से कोई नहीं जा सकता था॥ और देखो, उन्होंने चिल्ला के कहा हे यीशु ईश्वर के पुत्र!

आपको हमसे क्या काम, क्या आप समय के आगे हमें पीड़ा देने को यहाँ आये हैं॥ सो भूतों ने उससे विनति कर कहा जो आप हमको निकालते हैं तो सूअर के झुंड में पैठने दीजिये॥ उसने उनसे कहा जाओ और वे निकल के सूअरों के झुण्ड में पैठे और देखो सूअरों का सारा झुण्ड कड़ाड़े पर से समुद्र में दौड़ के गया और पानी में डूब मरा॥

—इं० म० प० ८। आ० २८। २९। ३१। ३२॥

समीक्षक—भला! यहाँ तनिक विचार करें तो ये बातें सब झूठी हैं, क्योंकि मरा हुआ मनुष्य कबरस्थान से कभी नहीं निकल सकता। किसी पर न जाते, न संवाद करते हैं, ये सब बातें अज्ञानी लोगों की हैं। जोकि महाजङ्गली हैं; वे ऐसी बातों पर विश्वास लाते हैं। और उन सूअरों की हत्या कराई। सूअरवालों की हानि करने का पाप ईसा को हुआ होगा। और ईसाई लोग ईसा को पाप क्षमा और पवित्र करनेवाला मानते हैं, तो उन भूतों को पवित्र क्यों न कर सका? और सूअरवालों की हानि क्यों न भर दी? क्या आजकल के सुशिक्षित ईसाई अङ्गरेज लोग इन गपोड़ों को भी मानते होंगे? यदि मानते हैं, तो भ्रमजाल में पड़े हैं॥ ७७॥

७८. देखो! लोग एक अर्द्धांगी को खाट पर पड़े हुए उस पास लाये और यीशु ने उनका विश्वास देख के कहा— हे पुत्र! ढाढस कर, तेरे पाप क्षमा किये गये हैं।　　—इं० म० प० ९। आ० २॥

समीक्षक—यह भी बात वैसी ही असम्भव है, जैसी पूर्व लिख आये हैं और जो पाप क्षमा करने की बात है, वह केवल भोले लोगों को प्रलोभन देकर फसाना है। जैसे दूसरे के पिये मद्य, भांग और अफीम खाये का नशा दूसरे को नहीं प्राप्त हो सकता, वैसे ही किसी का किया हुआ पाप किसी के पास नहीं जाता, किन्तु जो करता है वही भोगता है, यही ईश्वर का न्याय है। यदि दूसरे का किया पाप-पुण्य दूसरे को प्राप्त होवे अथवा न्यायाधीश स्वयं ले लेवें वा कर्त्ताओं ही को यथायोग्य फल ईश्वर न देवे, वह अन्यायकारी हो जावे॥ ७८॥

७९. क्योंकि मैं धर्मियों को नहीं, परन्तु पापियों को पश्चात्ताप के लिये बुलाने को आया हूँ॥　　—इं० प० ९। आ० १३॥

समीक्षक—अब विचारिये कि धर्मात्माओं को ईसाई होना कुछ आवश्यक नहीं, क्योंकि वे तो धर्म ही से मुक्ति को जायेंगे और इससे यह सिद्ध हुआ कि धर्मादि आचरण ही मुक्ति के साधन हैं, ईसा नहीं। क्योंकि ईसाई भी जब तक धर्म न करेंगे, तब तक उनकी भी सद्गति नहीं होगी॥ ७९॥

८०. यीशु ने अपने बारह शिष्यों को अपने पास बुलाके अशुद्ध भूतों पर अधिकार दिया कि उन्हें निकालें और हर एक रोग और हर एक व्याधि को चंगा करें॥　　—इं० म० प० १०। आ० १॥

समीक्षक—ये वे ही शिष्य हैं, जिनमें से एक ३०) रुपये के लोभ पर ईसा को पकड़ावेगा और अन्य बदलकर अलग-अलग भागेंगे। भला! जब ये बातें विद्या ही से विरुद्ध हैं कि भूतों का आना वा निकालना, विना ओषधि वा पथ्य के व्याधियों का छूटना सृष्टिक्रम से असम्भव है, इसलिये ऐसी-ऐसी बातों का मानना अज्ञानियों का काम है॥ ८०॥

८१. बोलनेहारे तो तुम नहीं हो, परन्तु तुम्हारे पिता का आत्मा तुममें बोलता है।　　—इं० म० प० १०। आ० २०॥

समीक्षक—जब परमेश्वर का आत्मा ही सबमें बोलता है तो वही मिथ्याभाषाणादि पापों से लिप्त होकर दु:खरूपी नरक में पड़ेगा। जो ऐसा है, तो मूसा से दश आज्ञा विषय में उपदेश किया कि मिथ्या मत बोलो, यह उपदेश क्यों किया। इसलिये जीवों के व्यवहार में जीव ही बोलते हैं, ईश्वर नहीं॥ ८१॥

८२. मत समझो कि मैं पृथिवी पर मिलाप करवाने को आया हूँ मैं मिलाप कराने नहीं, परन्तु खड्ग चलवाने को आया हूँ। मैं मनुष्य को उसके पिता से, बेटी को उसकी माँ से और पतोहू को उसकी सास से अलग करने आया हूँ। मनुष्य के घर ही के लोग उसके वैरी होंगे॥

—इं० म० प० १०। आ० ३४। ३५। ३६॥

समीक्षक—ऐसी फूट कराके, लड़ाई झगड़ा मचा के, मनुष्यों को दु:ख देनेहारा और खड्ग चलाने, पिता-पुत्र, माँ-बेटी, पतोहू-सास आदि से फूट करा, परस्पर वैर बढ़ानेहारे मनुष्य के लिये बहुत बुरा काम है। विदित होता है कि इसी उपदेश को ईसाई लोगों ने अधिक

प्रचार में लाया है। जहाँ ये लोग जाते हैं, वहीं भरपूर फूट हो जाती है। मेल का नाम-निशान भी नहीं रहता। इसी से अपने पड़ोसियों का, आपस में उनको लड़ाकर, माल मारना, किसी के लड़के को बहकाकर माता-पिता से अलग कर नष्ट कर देना सिखलाया है। यह केवल दोष है। इसको तर्क कर देना बहुत अच्छी बात है॥ ८२॥

८३. यीशु लोगों से बात करता ही था कि देखो उसकी माता और उसके भाई बाहर खड़े हुए इससे बोलने चाहते थे। तब किसी ने उससे कहा देखिये! आपकी माता और आपके भाई बाहर खड़े हुए आपसे बोलने चाहते हैं। उसने कहनेहारे को उत्तर दिया कि मेरी माता कौन है और मेरे भाई कौन हैं? —इं० म० प० १२। आ० ४६।४७।४८॥

समीक्षक—देखिये! प्रथम तो तौरेत और जबूर की ईसा साक्षी देता है कि उसका एक बिन्दु भी झूठा नहीं। और उसमें अपने माता, पिता का मान करना लिखा है। और यहाँ माता आदि का अपमान करता है। यह केवल हठ की बात है। और इसी से उसने आयुविशेष न पाई। क्योंकि जो ईसा अपने माता-पिता की सेवा करता तो उसका आयु भी बढता। और यह पूर्वापर विरुद्ध बात होने से ईसा कुछ विद्वान् भी नहीं था। हाँ! उन जङ्गली मनुष्यों में कुछ अच्छा था॥ ८३॥

८४. तब यीशु ने उनसे कहा तुम्हारे पास कितनी रोटियाँ हैं, उन्होंने कहा सात और छोटी मछलियाँ॥ तब उसने लोगों को भूमि पर बैठने की आज्ञा दी॥ तब उसने उन सात रोटियों को और मछलियों को धन्य मानके तोड़ा और अपने शिष्यों को दिया और शिष्यों ने लोगों को दिया॥ सो सब खाके तृप्त हुए और जो टुकड़े बच रहे, उनके सात टोकरे भरे उठाये॥ जिन्होंने खाया सो स्त्रियों और बालकों को छोड़ चार सहस्र पुरुष थे॥ —इं० म० प० १५। आ० ३४।३५।३६।३७।३८॥

समीक्षक—अब देखिये! क्या यह आजकल के झूठे सिद्धों और इन्द्रजाली आदि के समान छल की बात नहीं है? उन रोटियों में अन्य रोटियाँ कहां से आ गईं? यदि ईसा में ऐसी सिद्धियाँ होतीं तो आप भूखा हुआ गूलर के फल खाने को क्यों भटका करता था? अपने लिये मिट्टी, पानी और पत्थर आदि से मोहनभोग रोटियाँ क्यों न बना लीं?

ये सब बातें लड़कों के खेलपन की हैं। जैसे कितने ही साधु, वैरागी ऐसी छल की बातें करके भोले मनुष्यों को ठगते हैं, वैसे ही ये भी हैं॥ ८४॥

८५. ....और तब वह हर एक-एक मनुष्य को उसके कार्य्य के अनुसार फल देगा॥ —इं० म० प० १६। आ० २७॥

समीक्षक—जब कर्मानुसार फल दिया जाएगा तो ईसाइयों का पाप क्षमा होने का उपदेश करना व्यर्थ है और वह सच्चा हो, तो यह झूठा होवे। यदि कोई कहे कि क्षमा करने के योग्य क्षमा किये जाते और क्षमा न करने योग्य माफ नहीं किये जाते हैं, यह भी ठीक नहीं। क्योंकि सब कर्मों के फल यथायोग्य देने ही से न्याय और दया पूरी होती है॥ ८५॥

८६. ....हे अविश्वासी और हठीले लोगो....॥ मैं तुमसे सत्य कहता हूँ यदि तुमको राई के एक दाने के तुल्य विश्वास हो, तो तुम पहाड़ से जो कहोगे कि यहाँ से वहां चला जा, वह चला जायगा और कोई काम तुम से असाध्य नहीं होगा। —इं० म० प० १७ आ० १७।२०॥

समीक्षक—अब जो ईसाई लोग उपदेश करते-फिरते हैं कि 'आओ हमारे मत में पाप क्षमा कराओ मुक्ति पाओ' आदि, वह सब मिथ्या है। क्योंकि जो ईसा में पाप छुड़ाने, विश्वास जमाने और पवित्र करने का सामर्थ्य होता, तो अपने शिष्यों के आत्माओं को निष्पाप, विश्वासी, पवित्र क्यों न कर देता? जो ईसा के साथ-साथ घूमते थे, जब उन्हीं को शुद्ध, विश्वासी और कल्याण न कर सका, तो वह मरे पर न जाने कहाँ है? इस समय किसी को पवित्र नहीं कर सकेगा।

जब ईसा के चेले राई भर विश्वास से रहित थे और उन्हीं ने यह इन्जील पुस्तक बनाई है, तब इसका प्रमाण नहीं हो सकता। क्योंकि जो अविश्वासी, अपवित्रात्मा, अधर्मी मनुष्यों का लेख होता है, उस पर विश्वास करना कल्याण की इच्छा करनेवाले मनुष्यों का काम नहीं। और इसीसे यह भी सिद्ध हो सकता है कि जो ईसा का यह वचन सच्चा है, तो किसी ईसाई में एक राई के दाने के समान 'विश्वास' अर्थात् ईमान नहीं है। जो कोई कहे कि हम में पूरा वा थोड़ा विश्वास है, तो उससे कहना कि आप इस पहाड़ को मार्ग में से हठा देवें, यदि

उनके हठाने से हठ जाय, तो भी पूरा विश्वास नहीं, किन्तु एक राई के दाने के बराबर है और जो न हठा सके तो समझो एक छींटा भी विश्वास 'ईमान' अर्थात् धर्म का ईसाइयों में नहीं है। यदि कोई कहे कि यहाँ अभिमान आदि दोषों का नाम पहाड़ है, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि जो ऐसा हो तो मुर्दे, अन्धे, कोढ़ी, भूतग्रस्तों को चङ्गा करना भी आलसी, अज्ञानी, विषयी और भ्रान्तों को बोध करके सचेत, कुशल किया होगा। जो ऐसा मानें, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि जो ऐसा होता, तो स्वशिष्यों को ऐसा क्यों न कर सकता? इसलिये ऐसी असम्भव बात कहना ईसा की अज्ञानता का प्रकाश करता है।

भला! जो कुछ भी ईसा में विद्या होती, तो ऐसी अटाटूट जङ्गलीपन की बात क्यों कह देता? तथापि—

'यत्र देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते'

जिस देश में कोई भी वृक्ष न हो, तो उस देश में एरण्ड का ही वृक्ष सबसे बड़ा और अच्छा गिना जाता है। वैसे महाजङ्गली देश में ईसा का भी होना ठीक था। आजकल ईसा की क्या गणना हो सकती है?॥ ८६॥

८७. ....मैं तुम्हें सच कहता हूँ कि जो तुम मन न फिरावो और बालकों के समान न हो जावो, तो स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न करने पाओगे॥ —इं० म० प० १८। आ० ३॥

समीक्षक—जब अपनी ही इच्छा से मन का फिराना स्वर्ग का कारण और न फिराना नरक का कारण है, तो किसी का पाप-पुण्य कभी नहीं ले सकता, ऐसा सिद्ध होता है। और बालक के समान होने के लेख से यह विदित होता है कि ईसा की बातें विद्या और सृष्टिक्रम से बहुत सी विरुद्ध थीं और यह भी उसके मन में था कि लोग मेरी बातों को बालक के समान मान लेंगे, पूछें-गाछें कुछ भी नहीं, आँख मीच के मान लेवें। बहुत से ईसाइयों की बालबुद्धिवत् चेष्टा है, नहीं तो ऐसे युक्ति, विद्या से विरुद्ध बातों को क्यों मानते? और यह भी सिद्ध हुआ, जो ईसा आप विद्याहीन बालबुद्धि न होता, तो अन्य को बालवत् बनने का उपदेश क्यों करता? क्योंकि जो जैसा होता है, वह

दूसरे को भी अपने सदृश होना चाहता ही है॥ ८७॥

८८. ....मैं तुमसे सच कहता हूं कि धनवानों को स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना कठिन होगा॥ फिर भी मैं तुमसे कहता हूं कि ईश्वर के राज्य में धनवान् के प्रवेश करने से ऊंट का सूई के नाके में से जाना सहज है॥ —इं० म० प० १९। आ० २३। २४॥

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा दरिद्र था। धनवान् लोग उस की प्रतिष्ठा नहीं करते होंगे इसलिये यह लिखा होगा। परन्तु यह बात सच नहीं, क्योंकि धनाढ्यों और दरिद्रों में अच्छे-बुरे होते हैं। जो कोई अच्छा काम करेगा, सुख पावेगा। और इससे यह भी सिद्ध होता है कि ईसा ईश्वर का राज्य किसी एक देश में मानता था, सर्वत्र नहीं। जब ऐसा है, तो वह ईश्वर ही नहीं। जो ईश्वर है उसका राज्य सर्वत्र है; पुनः उसमें प्रवेश करेगा वा न करेगा, यह कहना केवल अविद्या की वात है। और इससे यह भी आया कि जितने ईसाई धनाढ्य हैं, क्या वे सब नरक ही में जायेंगे? और दरिद्र सब स्वर्ग में जायेंगे? भला तनिक सा विचार तो ईसामसीह करते कि जितनी सामग्री धनाढ्यों के पास होती है, उतनी दरिद्रों के पास नहीं। यदि धनाढ्य लोग विवेक से धर्ममार्ग में व्यय करें, तो दरिद्र नीच गति में पड़े रहें और धनाढ्य उत्तम गति को प्राप्त हो सकते हैं॥ ८८॥

८९. यीशु ने उनसे कहा मैं तुमसे सच कहता हूं कि नई सृष्टि में जब मनुष्य का पुत्र अपने ऐश्वर्य के सिंहासन पर बैठेगा, तब तुम भी जो मेरे पीछे हो लिये हो, बारह सिंहासनों पर बैठ के ईस्रायेल के बारह कुलों का न्याय करोगे॥ जिस किसी ने मेरे नाम के लिये घरों वा भाइयों वा बहिनों वा पिता वा माता वा स्त्री वा लड़कों वा भूमि को त्यागा है, सो सौ गुणा पावेगा और अनन्त जीवन का अधिकारी होगा॥ —इं० म० प० १९। आ० २८। २९॥

समीक्षक—अब देखिये ईसा के भीतर की लीला! कि मेरे जाल से मरे पीछे भी लोग न निकल जायें और जिसने ३०) रुपये के लोभ से अपने गुरु को पकड़ा मरवाया, वैसे पापी भी उसके पास सिंहासन पर बैठेंगे और ईस्रायेल के कुल का पक्षपात से न्याय ही न किया

जायगा, किन्तु उनके सब गुनाः माफ और अन्य कुलों का न्याय करेंगे। अनुमान होता है इसी से ईसाई लोग ईसाइयों का बहुत पक्षपात कर 'किसी गोरे ने काले को मार दिया हो तो भी बहुधा पक्षपात से निरपराधी कर' छोड़ देते हैं। ऐसा ही ईसा के स्वर्ग का भी न्याय होगा और इससे बड़ा दोष आता है क्योंकि एक सृष्टि की आदि में मरा और एक 'क़यामत' के रात के निकट मरा। एक तो आदि से अन्त तक आशा ही में पड़ा रहा कि कब न्याय होगा और दूसरे का उसी समय न्याय हो गया, यह कितना बड़ा अन्याय है। और जो नरक में जायगा, सो अनन्तकाल तक नरक भोगे और जो स्वर्ग में जायगा, वह सदा स्वर्ग भोगेगा, यह भी बड़ा अन्याय है। क्योंकि अन्तवाले साधन और कर्मों का फल भी अन्तवाला होना चाहिये। और तुल्य पाप वा पुण्य दो जीवों का भी नहीं हो सकता, इसलिये तारतम्य से अधिक-न्यून सुख-दुःखवाले अनेक स्वर्ग और नरक हों, तभी सुख-दुःख भोग सकते हैं, सो ईसाइयों के पुस्तक में कहीं व्यवस्था नहीं, इसलिये यह पुस्तक ईश्वरकृत वा ईसा ईश्वर का बेटा कभी नहीं हो सकता। यह बड़े अनर्थ की बात है कि कदापि किसी के मा बाप सौ-सौ नहीं हो सकते किंतु एक की एक मा और एक ही बाप होता है। अनुमान है कि मुसलमानों ने 'एक को ७२ स्त्रियाँ बहिश्त में मिलती हैं, लिखा है', सो यहीं से लिया होगा॥ ८९ ॥

९०. भोर को जब वह नगर को फिर जाता था तब उसको भूख लगी॥ और मार्ग में एक गूलर का वृक्ष देखके वह उस पास आया, परन्तु उसमें और कुछ न पाया केवल पत्ते, और उसको कहा तुझमें फिर कभी फल न लगें, इस पर गूलर का वृक्ष तुरन्त सूख गया॥

—इं० म० २१। आ० १८। १९॥

समीक्षक—सब पादरी लोग ईसाई कहते हैं कि वह बड़ा शान्त, क्षमान्वित, क्रोधादि दोषरहित था। परन्तु इस बात को देख क्रोधी, ऋतु का ज्ञानरहित ईसा था और वह जङ्गली मनुष्यपन के स्वभावयुक्त वर्त्तता था। भला! वृक्ष जड़ पदार्थ है, उसका क्या अपराध था कि उसको स्राप दिया और वह सूख गया? इसके स्राप से तो न सूखा होगा, किन्तु कोई

ऐसी औषधी डालने से सूख गया हो, तो आश्चर्य नहीं॥ ९० ॥

९१. उन दिनों के क्लेश के पीछे तुरन्त सूर्य अन्धियारा हो जायगा और चांद अपनी ज्योति न देगा, तारे आकाश से गिर पड़ेंगे और आकाश की सेना डिग जायगी॥ —इं० म० प० २४। आ० २९॥

समीक्षक—वाह जी ईसा! तारों को किस विद्या से गिर पड़ना आपने जाना और आकाश की सेना कौनसी है, जो डिग जायगी? जो कभी ईसा थोड़ी भी विद्या पढ़ता, तो अवश्य जान लेता कि ये तारे सब भूगोल हैं, क्योंकर गिरेंगे। इससे विदित होता है कि वह ईसा बढ़ई के कुल में उत्पन्न हुआ, सदा लकड़े चीरना, छीलना, काटना और जोड़ना करता रहा होगा। जब तरङ्ग उठा कि मैं भी इस जंगली देश में पैगम्बर हो सकूँगा, बातें करने लगा। कितनी बातें उसके मुख से अच्छी भी निकलीं और बहुत सी बुरी। वहां के लोग जंगली थे, मान बैठे। जैसा आजकल यूरोप उन्नतियुक्त है, वैसा पूर्व होता तो ईसा की सिद्धाई कुछ भी न चलती। अब कुछ विद्या हुए पश्चात् भी व्यवहार के पेच और हठ से इस पोकल मत को न छोड़कर सर्वथा सत्य वेदमार्ग की ओर नहीं झुकते, यही इनमें कमती है॥ ९१ ॥

९२. आकाश और पृथिवी टल जायेंगे, परन्तु मेरी बातें कभी न टलेंगी॥ —इं० म० प० २४। आ० ३५॥

समीक्षक—यह भी बात अविद्या और मूर्खता की है। भला! आकाश हिलकर कहाँ जायगा? जब आकाश अतिसूक्ष्म होने से नेत्र से दीखता ही नहीं तो इसका हिलना कौन देख सकता है? और अपने मुख से अपनी बड़ाई करना अच्छे मनुष्यों का काम नहीं॥ ९२ ॥

९३. तब वह उनसे जो बाईं ओर हैं कहेगा हे स्रापित लोगो! मेरे पास से उस अनन्त आग में जाओ जो शैतान और उसके दूतों के लिये तैयार की गई है॥ —इं० म० प० २५। आ० ४१॥

समीक्षक—भला, यह कितनी बड़ी पक्षपात की बात है! जो अपने शिष्य हैं, उनको स्वर्ग और जो दूसरे हैं, उनको अनन्त आग में गिराना। परन्तु जब 'आकाश ही न रहेगा' लिखा तो अनन्त आग नरक-बहिश्त कहां रहेगी? जो शैतान और उसके दूतों को ईश्वर न बनाता, तो

इतनी नरक की तैयारी क्यों करनी पड़ती? और एक शैतान ही ईश्वर के भय से न डरा तो वह ईश्वर ही क्या है? क्योंकि उसी का दूत होकर बागी हो गया और ईश्वर उसको प्रथम ही पकड़कर बन्दीगृह में न डाल सका, न मार सका, पुनः उसकी ईश्वरता क्या? जिसने ईसा को भी चालीस दिन दुःख दिया, ईसा भी उसका कुछ न कर सका, तो ईश्वर का बेटा होना व्यर्थ हुआ। इसलिये ईसा ईश्वर का न बेटा और बायबिल का ईश्वर न ईश्वर हो सकता है॥ ९३ ॥

९४. तब बारह शिष्यों में से एक यिहूदा इस्करियोती नाम एक शिष्य प्रधान याजकों के पास गया॥ और कहा जो मैं यीशु को आप लोगों के हाथ पकड़वाऊँ तो आप लोग मुझे क्या देंगे? उन्होंने उसे तीस रुपये देने को ठहराया॥ —इं० म० प० २६। आ० १४। १५॥

समीक्षक—अब देखिये! ईसा की सब करामात और ईश्वरता यहाँ खुल गई। क्योंकि जो उसका प्रधान शिष्य था, वह भी उसके साक्षात् संग से पवित्रात्मा न हुआ, तो औरों को वह मरे पीछे पवित्रात्मा क्या कर सकेगा? और उसके विश्वासी लोग उसके भरोसे में कितने ठगाये जाते हैं, क्योंकि जिसने साक्षात् सम्बन्ध में शिष्य का कुछ कल्याण न किया, वह मरे पीछे किसी का कल्याण क्या कर सकेगा॥ ९४॥

९५. जब वे खाते थे तब यीशु ने रोटी लेके धन्यवाद किया और उसे तोड़के शिष्यों को दिया और कहा लेओ खाओ यह मेरा देह है॥ और उसने कटोरा लेके धन्यवाद माना और उनको देके कहा तुम सब इससे पीओ॥ क्योंकि यह मेरा लोहू अर्थात् नये नियम का लोहू है.... ॥

—इं० म० प० २६। आ० २६। २७। २८॥

समीक्षक—भला, यह ऐसी बात कोई भी सभ्य करेगा? विना अविद्वान् जङ्गली मनुष्य के शिष्यों से खाने की चीज को अपने माँस और पीने की चीजों को लोहू नहीं कह सकता। और इसी बात को आजकल के ईसाई लोग प्रभु भोजन कहते हैं। अर्थात् खाने-पीने की चीजों में ईसा के मांस और लोहू की भावना कर खाते-पीते हैं, यह कितनी बुरी बात है? जिन्होंने अपने गुरु के मांस-लोहू को भी खाने-पीने की भावना से न छोड़ा तो और का कैसे छोड़ सकते हैं॥ ९५॥

९६. और वह पितर को और जबदी के दोनों पुत्रों को अपने संग ले गया और शोक करने और बहुत उदास होने लगा॥ तब उसने उनसे कहा कि मेरा मन यहाँ लों अति उदास है कि मैं मरने पर हूं.... ॥ और थोड़ा आगे बढ़के वह मुंह के बल गिरा और प्रार्थना की हे मेरे पिता! जो हो सके तो यह कटोरा मेरे पास से टल जाय॥

—इं० म० प० २६। आ० ३७। ३८। ३९॥

समीक्षक—देखो! जो वह केवल मनुष्य न होता, ईश्वर का बेटा और त्रिकालदर्शी और विद्वान् होता तो ऐसी अयोग्य चेष्टा न करता। इससे स्पष्ट विदित होता है कि यह प्रपञ्च ईसा ने अथवा उनके चेलों ने झूठमूठ बनाया है कि वह ईश्वर का बेटा, भूत भविष्यत् का वेत्ता और पापक्षमा का कर्त्ता है। इससे समझना चाहिये यह केवल साधारण सूधा, सच्चा, अविद्वान् था। न विद्वान्, न योगी, न सिद्ध था॥ ९६॥

९७. वह बोलता ही था कि देखो यिहूदाह जो बारह शिष्यों में से एक था, आ पहुंचा और लोगों के प्रधान याजकों और प्राचीनों की ओर से बहुत लोग खड्ग और लाठियाँ लिये उसके संग॥ यीशु के पकड़वानेहारे ने उन्हें यह पता दिया था जिसको मैं चूमूं, उसको पकड़ो॥ और वह तुरन्त यीशु पास आ बोला, हे गुरु प्रणाम और उसको चूमा॥ ....तब उन्होंने यीशु पर हाथ डालके उसे पकड़ा॥ ....तब सब शिष्य उसे छोड़के भागे॥ अन्त में दो झूठे साक्षी आके बोले, इसने कहा कि मैं ईश्वर का मन्दिर ढा सकता, उसे तीन दिन में फिर बना सकता हूं॥ तब महायाजक खड़ा हो यीशु से कहा क्या तू कुछ उत्तर नहीं देता है, ये लोग तेरे विरुद्ध क्या साक्षी देते हैं॥ परन्तु यीशु चुप रहा, इसपर महायाजक ने उससे कहा मैं तुझे जीवते ईश्वर की किरिया देता हूं, हमोंसे कह तू ईश्वर का पुत्र ख्रीष्ट है कि नहीं॥ यीशु उससे बोला तू तो कह चुका॥ तब महायाजक ने अपने वस्त्र फाड़के कहा यह ईश्वर की निन्दा कर चुका है, अब हमें साक्षियों का और क्या प्रयोजन? देखो तुमने अभी उसके मुख से ईश्वर की निन्दा सुनी है॥ अब क्या विचार करते हो? तब उन्होंने उत्तर दिया वह वध के योग्य है॥ तब उन्होंने उसके मुंह पर थूंका और उसे घूंसे मारे।। औरों ने थपेड़े मारके कहा, हे ख्रीष्ट! हमसे

भविष्यद्वाणी बोल किसने तुझे मारा॥ पितरस बाहर अंगने में बैठा था और एक दासी उस पास आके बोली, तू भी यीशु गालीली के संग था॥ उसने सभों के सामने मुकरके कहा मैं नहीं जानता तू क्या कहती है॥ जब वह बाहर डेवढ़ी में गया तो दूसरी दासी ने उसे देखके, जो लोग वहां थे, उनसे कहा 'यह भी यीशु नासरी के संग था'॥ उसने किरिया खाके फिर मुकरा कि मैं उस मनुष्य को नहीं जानता हूं॥ तब वह धिक्कार देने और किरिया खाने लगा कि मैं उस मनुष्य को नहीं जानता हूं.... ॥ —इं० म० प० २६। आ० ४७।४८।४९।५०।६१।६२।६३।६४।६५।६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७४॥

समीक्षक—अब देख लीजिये कि जिसका इतना भी सामर्थ्य वा प्रताप नहीं था कि अपने चेले को भी दृढ़ विश्वास करा सके और वे चेले भी चाहे प्राण भी क्यों न जाते, तो भी अपने गुरु को लोभ से न पकड़ाते, न मुकरते, न मिथ्याभाषण करते, न झूठी किरिया खाते। और ईसा भी कुछ करामाती नहीं था। नहीं तो तौरेत में लिखा है कि—लूत के घर पर पाहुनों को बहुत से मारने को चढ़ आये थे, वहाँ ईश्वर के दो दूत थे, उन्होंने उन्हीं को अन्धा कर दिया। यद्यपि वह भी बात असंभव है तथापि ईसा में तो इतना भी सामर्थ्य न था। और आजकल कितना भडम्बा उसके नाम पर ईसाइयों ने बढ़ा रक्खा है। भला! ऐसी दुर्दशा से मरने से आप स्वयं झूझ वा समाधि चढ़ा अथवा किसी प्रकार से प्राण छोड़ता तो अच्छा था परन्तु वह बुद्धि विना विद्या के कहाँ से उपस्थित हो?॥ ९७॥

वह ईसा यह भी कहता है कि—

९८. मैं अभी अपने पिता से विनति नहीं करता हूँ और वह मेरे पास स्वर्गदूतों की बारह सेनाओं से अधिक पहुँचा न देगा?॥

—इं० म० प० २६। आ० ५३॥

समीक्षक—धमकाता जाता, अपनी और अपने पिता की बड़ाई भी करता जाता, और इसका कुछ भी नहीं कर सकता। देखो आश्चर्य की बात! जब महायाजक ने पूछा था कि 'ये लोग तेरे विरुद्ध साक्षी देते हैं, इसका उत्तर दे' तो ईसा चुप रहा। यह भी ईसा ने अच्छा न किया; क्योंकि जो सच था, वह वहाँ अवश्य कह देता तो भी अच्छा होता। बहुत-सी अपने घमण्ड की बातें करनी उचित न थीं। और जिन्होंने ईसा पर झूंठ-फरेब डालकर बुरे हवालकर मारा, उनको भी उचित न था। क्योंकि ईसा का उस प्रकार का अपराध नहीं था, जैसा उसके विषय में उन्होंने किया। परन्तु वे भी तो जङ्गली थे। न्याय की बातों को क्या समझें? यदि ईसा झूठ-मूठ ईश्वर का बेटा न बनता और वे उसके साथ ऐसी बुराई न वर्त्तते, तो दोनों के लिये उत्तम काम था। परन्तु इतनी विद्या, धर्म्मात्मता और न्यायशीलता कहाँ से लावें?॥ ९८॥

९९. यीशु अध्यक्ष आगे खड़ा हुआ और अध्यक्ष ने उससे पूछा क्या तू यहूदियों का राजा है, यीशु ने उससे कहा आप ही तो कहते हैं॥ जब प्रधान याजक और प्राचीन लोग उसपर दोष लगाते थे, तब उसने कुछ उत्तर नहीं दिया॥ तब पिलात ने उससे कहा क्या तू नहीं सुनता कि ये लोग तेरे विरुद्ध कितनी साक्षी देते हैं॥ परन्तु उसने एक वार भी उसको उत्तर न दिया, यहाँ लों कि अध्यक्ष ने बहुत अचम्भा किया॥ पिलात ने उनसे कहा तो मैं यीशु से जो ख्रीष्ट कहावता है क्या करूँ, सभों ने उससे कहा वह क्रूश पर चढ़ाया जाय.... ॥ और यीशु को कोड़े मारके क्रूश पर चढ़ाये जाने को सौंप दिया॥ तब अध्यक्ष के योद्धाओं ने यीशु को अध्यक्ष भुवन में ले जाके सारी पलटन उस पास इकट्ठी की॥ और उन्होंने उसका वस्त्र उतार के उसे लाल बागा पहिराया॥ और कांटों का मुकुट गूंथके उसके सिर पर रक्खा और उसके दाहिने हाथ में नर्कट दिया और उसके आगे घुटने टेकके यह कहके उससे ठट्टा किया हे यहूदियों के राजा प्रणाम॥ और उन्होंने उसपर थूंका और उस नर्कट को ले उसके शिर पर मारा॥ जब वे उससे ठट्ठा कर चुके तब उससे वह बागा उतारके मसीह का वस्त्र पहिराके उसे क्रूश पर चढ़ाने को ले गये॥

जब वे एक स्थान पर जो गलगथा अर्थात् खोपड़ी का स्थान कहाता है पहुंचे॥ तब उन्होंने सिरके में पित्त मिलाके उसे पीने को दिया परन्तु उसने चीख के पीना न चाहा॥ तब उन्होंने उसे क्रूश पर चढ़ाया.... ॥ और उन्होंने उसका दोषपत्र उसके ऊपर लगाया.... । तब दो डाकू एक दाहिनी ओर और दूसरा बाईं ओर उसके सङ्ग क्रूशों पर चढ़ाये गये॥

जो लोग उधर से आते जाते थे उन्होंने अपने सिर हिलाके और यह कहके उसकी निन्दा की॥ हे मन्दिर के ढानेहारे अपने को बचा, जो तू ईश्वर का पुत्र है तो क्रूश पर से उतर आ॥ इसी रीति से प्रधान याजकों ने भी अध्यापकों और प्राचीनों के संगियों ने ठट्ठा कर कहा॥ उसने और को बचाया अपने को बचा नहीं सकता है, जो वह इस्राएल का राजा है तो क्रूश पर से अब उतर आवे और हम उसका विश्वास करेंगे॥ वह ईश्वर पर भरोसा रखता है, यदि ईश्वर उसको चाहता है, तो उसको अब बचावे। क्योंकि उसने कहा मैं ईश्वर का पुत्र हूँ॥ जो डाकू उसके संग चढ़ाये गये, उन्होंने भी इसी रीति से उसकी निन्दा की॥

दो पहर से तीसरे पहर लों सारे देश में अंधकार हो गया॥ तीसरे पहर के निकट यीशु ने बड़े शब्द से पुकारके कहा एली एली लामा सबक्तनी अर्थात् हे मेरे ईश्वर! हे मेरे ईश्वर! तूने क्यों मुझे त्यागा है॥ जो लोग वहाँ खड़े थे उनमें से कितनों ने यह सुन के कहा, वह एलियाह को बुलाता है॥ उनमें से एक ने तुरन्त दौड़के इस्पंज लेके सिरके में भिगाया और नल पर रख के उसे पीने को दिया॥ तब यीशु ने फिर बड़े शब्द से पुकार के प्राण त्यागा॥ —इं० म० प० २७। आ० ११-१४। २१-२३। २६-३१। ३३-३५। ३७-४८। ५०॥

समीक्षक—सर्वथा यीशु के साथ उन दुष्टों ने बुरा काम किया। परन्तु यीशु का भी दोष है, क्योंकि ईश्वर का न कोई पुत्र न वह किसी का बाप है। क्योंकि जो वह किसी का बाप होवे, तो किसी का श्वसुर, साला, सम्बन्धी आदि भी होवे। और जब अध्यक्ष ने पूछा था, तब जैसा सच था, उत्तर देना था। और यह ठीक है कि जो-जो आश्चर्यकर्म्म प्रथम किये हुए सच्चे होते, तो अब भी क्रूश पर से उतर आ, सबको अपने शिष्य बना लेता। और जो वह ईश्वर का पुत्र होता तो ईश्वर भी उसको बचा लेता। जो वह त्रिकालदर्शी होता, तो सिर्के में पित्त मिले हुए को चीख के क्यों छोड़ता। वह पहिले ही से जानता होता। और जो वह करामाती हो, तो पुकार-पुकार के प्राण क्यों त्यागता? अर्थात् चाहे कितने ही कोई चतुराई करे, परन्तु अन्त में सच-सच और झूठ झूठ हो जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि यीशु एक उस समय के जङ्गली

मनुष्यों में से कुछ अच्छा था। न वह करामाती, न ईश्वर का पुत्र और न विद्वान् था, क्योंकि जो ऐसा होता, तो वह दु:ख क्यों भोगता?॥ ९९॥

१००. और देखो, बड़ा भुईंडोल हुआ कि परमेश्वर का एक दूत उतरा और आके कबर के द्वार पर से पत्थर लुढ़काके उसपर बैठा॥ वह यहाँ नहीं है, जैसे उसने कहा वैसे जी उठा है॥ जब वे उसके शिष्यों को सन्देश देने जाती थीं, देखो यीशु उनसे आ मिला, कहा कल्याण हो और उन्होंने निकट आ उसके पांव पकड़के उसको प्रणाम किया॥ तब यीशु ने कहा मत डरो, जाके मेरे भाइयों से कह दो, वे गालील को जावें और वहाँ वे मुझे देखेंगे॥

ग्यारह शिष्य गालील में उस पर्वत में गये जो यीशु ने उन्हें बताया था॥ और उन्होंने उसे देखके उसको प्रणाम किया, पर कितनों को सन्देह हुआ॥ यीशु ने उन पास आ उनसे कहा, स्वर्ग में और पृथिवी पर समस्त अधिकार मुझको दिया गया है॥ ....और देखो मैं जगत् के अन्त लों सब दिन तुम्हारे संग हूँ॥

—इं० म० प० २८। आ० २। ६। ९। १०। १६। १७। १८। २०॥

समीक्षक—यह बात भी मानने योग्य नहीं, क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्याविरुद्ध है। प्रथम ईश्वर के पास दूतों का होना, उनको जहाँ-तहाँ भेजना, ऊपर से उतरना, क्या तहसीलदारी, कलेक्टरी के समान ईश्वर को बना दिया? क्या उसी शरीर से स्वर्ग को गया और जी उठा? क्योंकि उन स्त्रियों ने उसके पग पकड़के प्रणाम किया तो क्या वही शरीर था? और वह तीन दिन लों सड़ क्यों न गया? और अपने मुख से सबका अधिकारी बनना केवल दम्भ की बात है। शिष्यों से मिलना और उनसे सब बातें करनी असंभव हैं। क्योंकि जो ये बातें सच हों, तो आजकल भी कोई क्यों नहीं जी उठते? और उसी शरीर से स्वर्ग को क्यों नहीं जाते॥ १००॥

यह मत्तीरचित्त इञ्जील का विषय हो चुका। अब मार्क रचित इञ्जील के विषय में लिखा जाता है।

मार्क रचित इञ्जील

१०१. यह क्या बढ़ई नहीं है....॥

—मार्क इं० म० प० ६। आ० ३॥

समीक्षक—असल में यूसफ बढ़ई था, इसलिए ईसा भी बढ़ई था। कितने ही वर्ष तक बढ़ई का काम करता था। पश्चात् पैगम्बर बनता-बनता ईश्वर का बेटा ही बन गया और जङ्गली लोगों ने बना लिया, तभी बड़ी कारीगरी चलाई। काट-कूट फूट-फाट करना उसका काम है॥ १०१॥

लूत रचित इञ्जील

१०२. यीशु ने उससे कहा तू मुझे उत्तम क्यों कहता है, कोई उत्तम नहीं, एक अर्थात् ईश्वर॥ —लू० प० १८। आ० १९॥

समीक्षक—जब ईसा ही एक अद्वितीय ईश्वर कहता है तो ईसाइयों ने पवित्रात्मा, पिता और पुत्र तीन कहाँ से बना लिये?॥ १०२॥

१०३. तब उसे हेरोद के पास भेजा॥ हेरोद यीशु को देखके अति आनन्दित हुआ क्योंकि वह उसको बहुत दिन से देखने चाहता था, इसलिये कि उसके विषय में बहुत सी बातें सुनी थीं और उसका कुछ आश्चर्य कर्म्म देखने की उसको आशा हुई॥ उसने उससे बहुत बातें पूछीं, परन्तु उसने उसे कुछ उत्तर न दिया॥

—लूक० प० २३। आ० ७।८।९॥

समीक्षक—यह बात मत्तीरचित में नहीं है।। इसलिये ये साक्षी बिगड़ गये, क्योंकि साक्षी एक से होने चाहियें और जो ईसा चतुर और करामाती होता तो हेरोद को उत्तर देता और करामात भी दिखलाता, इससे विदित होता है कि ईसा में विद्या और करामात कुछ भी न थी॥ १०३॥

योहन रचित सुसमाचार

१०४. आदि में वचन था और वचन ईश्वर के संग था और वचन ईश्वर था॥ वह आदि में ईश्वर के संग था॥ सब कुछ उसके द्वारा सृजा गया और जो सृजा गया है, कुछ भी उस विना नहीं सृजा गया॥ उसमें जीवन था और वह जीवन मनुष्यों का उजियाला था॥

—प० १। आ० १।२।३।४॥

समीक्षक—आदि में वचन विना वक्ता के नहीं हो सकता और जो वचन ईश्वर के संग था, तो 'आदि में वचन ईश्वर के संग था' यह कहना व्यर्थ हुआ। और वचन ईश्वर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि जब वह आदि में ईश्वर के संग था, तो पूर्व वचन वा ईश्वर था, यह

नहीं घट सकता। वचन के द्वारा सृष्टि कभी नहीं हो सकती, जबतक उसका कारण न हो। और वचन के विना भी चुपचाप रहकर कर्त्ता सृष्टि कर सकता है। जीवन किस में वा क्या था, इस वचन से जीव अनादि मानोगे, जो अनादि हैं तो आदम के नथुनों में श्वास फूंकना झूठा हुआ और क्या जीवन मनुष्यों ही का उजियाला है, पश्वादि का नहीं?॥ १०४॥

१०५. और बियारी के समय में जब शैतान शिमोन के पुत्र यिहूदा इस्करियोती के मन में उसे पकड़वाने का मत डाल चुका था॥

—यो० प० १३। आ० २॥

समीक्षक—यह बात सच नहीं, क्योंकि जब कोई ईसाइयों से पूछेगा कि शैतान सबको बहकाता है, तो शैतान को कौन बहकाता है? जो कहो शैतान आप से आप बहकता है, तो मनुष्य भी आप से आप बहक सकते हैं, पुनः शैतान का क्या काम? और यदि शैतान का बनाने और बहकानेवाला परमेश्वर है, तो वही शैतान का शैतान ईसाइयों का ईश्वर ठहरा। परमेश्वर ही ने सबको उसके द्वारा बहकाया। भला, ऐसे काम ईश्वर के हो सकते हैं? सच तो यही है कि यह पुस्तक ईसाइयों का और ईसा ईश्वर का बेटा जिन्होंने बनाये वे शैतान हों, तो हों, किन्तु न यह ईश्वरकृत पुस्तक, न इसमें कहा ईश्वर और न ईसा ईश्वर का बेटा हो सकता है॥ १०५॥

१०६. तुम्हारा मन व्याकुल न होवे, ईश्वर पर विश्वास करो और मुझपर विश्वास करो॥ मेरे पिता के घर में बहुत से रहने के स्थान हैं, नहीं तो मैं तुमसे कहता हूं, मैं तुम्हारे लिये स्थान तैयार करने जाता हूं॥ और जो मैं जाके तुम्हारे लिये स्थान तैयार करूं, तो फिर आके तुम्हें अपने यहां ले जाऊंगा कि जहां मैं रहूं वहां तुम भी रहो॥ यीशु ने उससे कहा, मैं ही मार्ग और सत्य और जीवन हूं, विना मेरे द्वारा से कोई पिता पास नहीं पहुंचता है॥ जो तुम मुझे जानते, तो मेरे पिता को भी जानते....॥

—यो० प० १४। आ० १।२।३।६।७॥

समीक्षक—अब देखिये! यह वचन ईसा के क्या पोपलीला से कमती हैं? जो ऐसा प्रपञ्च न रचता, तो उसके मत में कौन फसता? क्या ईसा ने अपने पिता को इजारे (ठेके में) ले लिया है? और जो वह

ईसा के वश्य है, तो पराधीन होने से वह ईश्वर ही नहीं, क्योंकि ईश्वर किसी की सिफारिश नहीं सुनता। क्या ईसा के पहले कोई भी ईश्वर को प्राप्त न हुआ होगा? कैसा स्थान आदि का प्रलोभन देता और जो अपने मुख से आप मार्ग, सत्य और जीवन बनता है, वह सब प्रकार से दम्भी कहाता है, इससे यह बात सत्य कभी नहीं हो सकती॥ १०६॥

१०७. मैं तुमसे सच सच कहता हूं जो मुझपर विश्वास करे, जो काम मैं करता हूं उन्हें वह भी करेगा और इनसे बड़े काम भी करेगा तो वह सब आश्चर्य कर्म करेगा॥ —यो० प० १४। आ० १२॥

समीक्षक—अब देखिये! जो ईसाई लोग ईसा पर पूरा विश्वास रखते हैं, वैसे ही मुर्दे जिलाने आदि काम क्यों नहीं कर सकते? और जो विश्वास से भी आश्चर्य काम नहीं कर सकते, तो ईसा ने भी आश्चर्य कर्म नहीं किये थे, ऐसा निश्चित जानना चाहिये। क्योंकि स्वयं ईसा ही कहता है कि तुम भी आश्चर्य काम करोगे, तो भी इस समय ईसाई कोई एक भी नहीं कर सकता, तो किसकी हिये की आँख फूट गई है, वह ईसा को मुर्दे जिलाने आदि का कर्त्ता मान लेवे॥ १०७॥

१०८. ....जो अद्वैत सत्य ईश्वर है....॥

—यो० प० १७। आ० ३॥

समीक्षक—जब अद्वैत एक ईश्वर है, तो ईसाइयों का तीन कहना सर्वथा मिथ्या है॥ १०८॥

इसी प्रकार बहुत ठिकाने इञ्जील में अन्यथा बातें भरी हैं॥

योहन के प्रकाशित वाक्य

अब योहन की अद्‌भुत बातें सुनो—

१०९. ....और अपने अपने शिर पर ७ सोने के मुकुट दिये हुए थे॥ ....और सात अग्निदीपक सिंहासन के आगे जलते हैं जो ईश्वर के सातों आत्मा हैं॥ और सिंहासन के आगे कांच का समुद्र है ....और सिंहासन के आस पास चार प्राणी हैं जो आगे और पीछे नेत्रों से भरे हैं॥

—यो० प्र० प० आ० ४।५।६॥

समीक्षक—अब देखिये! एक नगर के तुल्य ईसाइयों का स्वर्ग है। और इनका ईश्वर भी दीपक के समान अग्नि है। और सोने का

मुकुटादि आभूषण धारण करना और आगे-पीछे नेत्रों का होना असम्भावित है। इन बातों को कौन मान सकता है? और वहां सिंहादि चार पशु भी लिखे हैं॥ १०९॥

११०. और मैंने सिंहासन पर बैठनेहारे के दहिने हाथ में एक पुस्तक देखा जो भीतर और पीठ पर लिखा हुआ और सात छापों से उसपर छाप दी हुई थी॥ ....यह पुस्तक खोलने और छाप तोड़ने के योग्य कौन है॥ और न स्वर्ग में और न पृथिवी के नीचे कोई वह पुस्तक खोलने अथवा उसे देखने सकता था॥ और मैं बहुत रोने लगा इसलिये कि पुस्तक खोलने और पढ़ने अथवा उसे देखने के योग्य कोई नहीं मिला॥ —यो० प्र० पर्व ५। आ० १।२।३।४॥

समीक्षक—अब देखिये! ईसाइयों के स्वर्ग में सिंहासनों और मनुष्यों के ठाठ; और पुस्तक कई छापों से बंध किया हुआ जिसको खोलने आदि कर्म करनेवाला स्वर्ग और पृथिवी पर कोई नहीं मिला। योहन का रोना और पश्चात् एक प्राचीन ने कहा कि वही ईसा खोलनेवाला है। प्रयोजन **'जिसका विवाह उसका गीत'।** देखो! ईसा ही के ऊपर सब माहात्म्य झुकाते जाते हैं, परन्तु ये बातें केवल कथन मात्र हैं॥ ११०॥

१११. और मैंने दृष्टि की और देखो सिंहासन के और चारों प्राणियों के बीच में और प्राचीनों के बीच में एक मेम्ना जैसा वध किया हुआ खड़ा है, जिसके सात सींग और सात नेत्र हैं, जो सारी पृथिवी में भेजे हुए ईश्वर के सातों आत्मा हैं॥ —यो० प्र० प० ५। आ० ६॥

समीक्षक—अब देखिये इस योहन के स्वप्न का मनोव्यापार! उस स्वर्ग के बीच में सब ईसाई और चार पशु तथा ईसा भी है और कोई नहीं! यह बड़ी अद्‌भुत बात हुई कि यहां तो ईसा के दो नेत्र थे और सींग का नाम भी न था और स्वर्ग में जाके सात सींग और सात आंखवाला हुआ! और वे सातों ईश्वर के आत्मा ईसा के सींग और नेत्र बन गये थे! हाय! ऐसी बातों को ईसाइयों ने क्यों मान लिया? भला कुछ तो बुद्धि काम में लाते॥ १११॥

११२. और जब उसने पुस्तक लिया तब चारों प्राणी और चौबीसों प्राचीन मेम्ने के आगे गिर पड़े और हर एक के पास बीण थी और धूप

से भरे हुए सोने के पियाले पवित्र लोगों की प्रार्थनाएँ हैं॥

—यो० प्र० म० ५। आ० ८॥

समीक्षक—भला जब ईसा स्वर्ग में न होगा तब ये बिचारे धूप, दीप, नैवेद्य, आर्ति आदि पूजा किसकी करते होंगे? और यहा प्रोटस्टेंट ईसाई लोग बुतपरस्ती (मूर्त्तिपूजा) का तो खण्डन करते हैं और इनका स्वर्ग बुत्परस्ती का घर बन रहा है॥ ११२॥

११३. और जब मेम्ने ने छापों में से एक को खोला तब मैंने दृष्टि की, चारों प्राणियों में से एक को जैसे मेघ के गर्जन के शब्द को यह कहते सुना कि आ और देख! और मैंने दृष्टि की और देखो एक श्वेत घोड़ा है और जो उसपर बैठा है उस पास धनुष और उसे मुकुट दिया गया और वह जय करता हुआ और जय करने को निकला॥

और जब उसने दूसरी छाप खोली....॥ ....दूसरा घोड़ा जो लाल था निकला उसको यह दिया गया कि पृथिवी पर से मेल उठा देवे....॥

और जब उसने तीसरी छाप खोली ....देखो काला घोड़ा है....॥

और जब उसने चौथी छाप खोली....॥ ....और देखो एक पीला सा घोड़ा और जो उसपर बैठा है उसका नाम मृत्यु है, इत्यादि॥

—यो० प्र० प० ६। आ० १।२।३।४।५।७।८॥

समीक्षक—अब देखिये यह पुराणों से भी अधिक मिथ्या लीला है, वा नहीं? भला! पुस्तकों के बन्धनों के छापे के भीतर घोड़ा सवार क्योंकर रह सके होंगे? यह स्वप्ने का बर्ड़ाना जिन्होंने इसको भी सत्य माना है, उनमें अविद्या जितनी थोड़ी कहें, उतनी ही थोड़ी है॥ ११३॥

११४. और वे बड़े शब्द से पुकारते थे कि हे स्वामी पवित्र और सत्य! कब लों तू न्याय नहीं करता है और पृथिवी के निवासियों से हमारे लोहू का पलटा नहीं लेता है॥ और हर एक को उजला वस्त्र दिया गया और उनसे कहा गया कि जब लों तुम्हारे सङ्गी दास भी और तुम्हारे भाई तुम्हारे नाईं वध किये जाने पर हैं, पूरे न हों, तब लों और थोड़ी देर विश्राम करो॥ —यो० प्र० प० ६। आ० १०।११॥

समीक्षक—जो कोई ईसाई होंगे, वे दौड़े सुपुर्द होकर ऐसे न्याय कराने के लिये रोया करेंगे, जो वेदमार्ग का स्वीकार करेगा, उसके

न्याय होने में कुछ भी देर न होगी। ईसाइयों से पूछना चाहिये—''क्या ईश्वर की कचहरी आजकल बन्ध है? और न्याय का काम भी नहीं होता? न्यायाधीश निकम्मे बैठे हैं?'' तो कुछ भी ठीक-ठीक उत्तर न दे सकेंगे।

और ईश्वर को भी बहका कर और इनका ईश्वर बहक भी जाता है क्योंकि इनके कहने से झट इनके शत्रुओं से पलटा लेने लगता है। और दंशिले स्वभाववाले हैं कि मरे पीछे स्ववैर लिया करते हैं, शान्ति कुछ भी नहीं। और जहां शान्ति नहीं, वहां दु:ख का क्या पारावार होगा॥ ११४॥

११५. और जैसे बड़ी बयार से हिलाये जाने पर गूलर के वृक्ष से उसके कच्चे गूलर झड़ते हैं, तैसे आकाश के तारे पृथिवी पर पड़े॥ और आकाश पत्र की नाईं जो लपेटा जाता है, अलग हो गया....॥

—यो० प्र० प० ६। आ० १३।१४॥

समीक्षक—अब देखिये योहन भविष्यद्वक्ता! जब विद्या नहीं है तभी तो ऐसी अण्ड-बण्ड कथा गाई। भला तारे सब भूगोल हैं एक पृथिवी पर कैसे गिर सकते हैं? और सूर्यादि का आकर्षण उनको इधर-उधर क्यों आने-जाने देगा? और क्या आकाश को चटाई के समान समझता है? यह आकाश साकार पदार्थ नहीं है, जिसको कोई लपेटे वा इकट्ठा कर सके। इसलिए योहन आदि सब जाङ्गल मनुष्य थे, उनको इन बातों की क्या खबर?॥ ११५॥

११६. ....मैंने उनकी संख्या सुनी, इस्राऐल के संतानों के समस्त कुल में से एक लाख चवालीस सहस्र पर छाप दी गई॥ यिहूदा के कुल में से बारह सहस्र पर छाप दी गई॥ —यो० प्र० प० ७। आ० ४।५॥

समीक्षक—क्या जो बायबिल में ईश्वर लिखा है, वह इस्राएल आदि कुलों का स्वामी है, वा सब संसार का? जो ऐसा न होता तो उन्हीं जङ्गलियों का साथ क्यों देता और उन्हीं का सहाय करता था, दूसरे का नाम-निशान भी नहीं लेता, इससे वह ईश्वर नहीं। और इस्राएल कुलादि के मनुष्यों पर छाप लगाना अल्पज्ञता अथवा योहन की मिथ्या कल्पना है॥ ११६॥

११७. इस कारण वे ईश्वर के सिंहासन के आगे हैं और उस मन्दिर में रात-दिन उसकी सेवा करते हैं.... ॥

—यो० प्र० प० ७। आ० १५॥

समीक्षक—क्या यह महाबुत्परस्ती नहीं है? अथवा उनका ईश्वर देहधारी मनुष्य तुल्य एकदेशी नहीं है? और ईसाइयों का ईश्वर रात में सोता भी नहीं है, यदि सोता है, तो रात में पूजा क्योंकर करते होंगे? तथा उसकी नींद भी उड़ जाती होगी और जो रात दिन जागता होगा तो विक्षिप्त वा अति रोगी होगा॥ ११७॥

११८. और दूसरा दूत आके वेदी के निकट खड़ा हुआ जिस पास सोने की धूपदानी थी और उसको बहुत धूप दिया गया.... ॥ और धूप का धूंआ पवित्र लोगों की प्रार्थनाओं के सङ्ग दूत के हाथ में से ईश्वर के आगे चढ़ गया॥ और दूत ने वह धूपदानी लेके उसमें वेदी की आग भरके उसे पृथिवी पर डाला और शब्द और गर्जन और बिजलियाँ और भुईंडोल हुए॥ —यो० प्र० प० ८। आ० ३।४।५॥

समीक्षक—अब देखिये! स्वर्ग तक वेदी, धूप, दीप, नैवेद्य, तुरही के शब्द होते हैं, क्या वैरागियों के मन्दिर से ईसाइयों का स्वर्ग कमती है? कुछ धूम-धाम अधिक ही है॥ ११८॥

११९. पहिले दूत ने तुरही फूंकी और लोहू से मिले हुए ओले और आग हुए वे पृथिवी पर डाले और पृथिवी की एक तिहाई जल गई.... ॥

—यो० प्र० प० ८। आ० ७॥

समीक्षक—वाह रे ईसाइयों के भविष्यद्वक्ता! ईश्वर, ईश्वर के दूत, तुरही का शब्द और प्रलय की लीला केवल लड़कों ही का खेल दीखता है॥ ११९॥

१२०. और पाँचवें दूत ने तुरही फूंकी और मैंने एक तारे को देखा जो स्वर्ग में से पृथिवी पर गिरा हुआ था और अथाह कुंड के कूप की कुंजी उसको दी गई॥ और उसने अथाह कुंड का कूप खोला और कूप में से भट्ठी के धूएँ की नाईं धूंआ उठा.... ॥ और उस कुए में से टिड्डियां पृथिवी पर निकल गईं और जैसा पृथिवी के बीछुओं को अधिकार होता है तैसा उन्हें दिया गया॥ और उनसे कहा गया कि उन मनुष्यों की जिनके माथे पर ईश्वर की छाप नहीं है॥ ....पाँच मास उन्हें पीड़ा दी जाय॥ —यो० प्र० प० ९। आ० १।२।३।४।५॥

समीक्षक—क्या तुरही का शब्द सुनकर तारे उन्हीं दूतों पर और उसी स्वर्ग में गिरे होंगे? यहाँ तो नहीं गिरे। भला! वह कूप और टिड्डियां भी प्रलय के लिए ईश्वर ने पाली होंगी और छाप को देख बांच भी लेती होंगी कि छापवालों को मत काटो? यह केवल भोले मनुष्यों को डराके ईसाई कर लेने का धोखा देना है कि जो तुम ईसाई न होगे, तो तुमको टिड्डियां काटेंगी। परन्तु ऐसी बातें विद्याहीन देश में चल सकती हैं, आर्य्यावर्त्त में नहीं। क्या वह प्रलय की बात हो सकती है?॥ १२०॥

१२१. और घुड़चढ़ों की सेनाओं की संख्या बीस करोड़ थी....

—यो० प्र० प० ९। आ० १६॥

समीक्षक—भला! इतने घोड़े स्वर्ग में कहां ठहरते, कहाँ चरते और कहाँ रहते और कितनी लीद करते थे? उसका दुर्गन्ध भी स्वर्ग में कितना हुआ होगा? बस ऐसे स्वर्ग, ऐसे ईश्वर और ऐसे मत के लिये हम सब आर्य्यों ने तिलाञ्जलि दे दी है। ऐसा बखेड़ा ईसाइयों के शिर पर से भी सर्वशक्तिमान् की कृपा से दूर हो जाय, तो बहुत अच्छा हो॥ १२१॥

१२२. और मैंने दूसरे पराक्रमी दूत को स्वर्ग से उतरते देखा जो मेघ को ओढ़े था और उसके शिर पर मेघधनुष था और उसका मुख सूर्य्य की नाईं और उसके पांव आग के खम्भे ऐसे थे॥ ....और उसने अपना दहिना पांव समुद्र पर और बायां पृथिवी पर रक्खा॥

—यो० प्र० प० १०। आ० १।२॥

समीक्षक—अब देखिये इन दूतों की कथा! जो पुराणों वा भाट की कथाओं से भी बढ़कर है॥ १२२॥

१२३. और लग्गी के समान एक नर्कट मुझे दिया गया और कहा गया कि उठ! ईश्वर के मन्दिर को और वेदी को और उसमें के भजन करनेहारों को नाप॥ —यो० प्र० प० ११। आ० १॥

समीक्षक—यहां तो क्या परन्तु ईसाइयों के तो स्वर्ग में भी मन्दिर बनाये और नापे जाते हैं। अच्छा है, उनका जैसा स्वर्ग है, वैसी ही बातें

हैं। इसीलिये यहां प्रभुभोजन में ईसा के शरीरावयव मांस लोहू की भावना करके खाते-पीते हैं, और गिर्जा में भी क्रूश आदि का आकार बनाना आदि भी बुतपरस्ती है॥ १२३॥

१२४. और स्वर्ग में ईश्वर का मन्दिर खोला गया और उसके नियम का सन्दूक उसके मन्दिर में दिखाई दिया....॥

—यो० प्र० प० ११। आ० १९॥

समीक्षक—स्वर्ग में जो मन्दिर है सो हर समय बन्द रहता होगा, कभी-कभी खोला जाता होगा। क्या परमेश्वर का भी मन्दिर हो सकता है? जो वेदोक्त परमात्मा सर्वव्यापक है, उसका कोई भी मन्दिर नहीं हो सकता। हां, ईसाइयों का जो परमेश्वर आकारवाला है, उसका चाहे स्वर्ग में हो चाहे भूमि में। और जैसी लीला टं टन् पूँ पूँ की यहां होती है, वैसी ही ईसाइयों के स्वर्ग में भी। और नियम का संदूक भी कभी-कभी ईसाई लोग देखते होंगे, उससे न जाने क्या प्रयोजन सिद्ध करते हैं? सच तो यह है कि ये सब बातें मनुष्यों को भुलाने की हैं॥ १२४॥

१२५. एक बड़ा आश्चर्य स्वर्ग में दिखाई दिया अर्थात् एक स्त्री जो सूर्य पहिने है और चाँद उसके पांवों तले है और उसके सिर पर बारह तारों का मुकुट है॥ और वह गर्भवती होके चिल्लाती है क्योंकि प्रसव की पीड़ उसे लगी है और वह जन्मे को पीड़ित है॥ और दूसरा आश्चर्य स्वर्ग में दिखाई दिया है देखो एक बड़ा लाल अजगर है, जिसके सात शिर और दश सींग हैं और उसके शिरों पर सात राजमुकुट हैं॥ और उसकी पूंछ ने आकाश के तारों की एक तिहाई को खींचके उन्हें पृथिवी पर डाला....॥ —यो० प्र० प० १२। आ० १।२।३।४॥

समीक्षक—अब देखिये लम्बे-चौड़े गपोड़े! इनके स्वर्ग में भी बिचारी स्त्री चिल्लाती है, उसका दु:ख कोई नहीं सुनता, न मिटा सकता है। और उस अजगर का पूंछ कितना बड़ा था, जिसने तारों के एक तिहाई पृथिवी पर डाले? भला! पृथिवी तो छोटी है और तारे बड़े-बड़े भी लोक हैं, इस पृथिवी पर एक भी नहीं समा सकता। किन्तु यहाँ यही अनुमान करना चाहिये कि ये तारों की तिहाई इस बात के लिखनेवाले के घर पर गिरे होगें और जिस अजगर की पूंछ इतनी बड़ी थी जिससे

सब तारों की तिहाई लपेटकर भूमि पर गिरा दी, वह अजगर भी उसी के घर में रहता होगा॥ १२५॥

१२६. और स्वर्ग में युद्ध हुआ, मीखायेल और उसके दूत अजगर से लड़े और अजगर और उसके दूत लड़े॥

—यो० प्र० प० १२। आ० ७॥

समीक्षक—जो कोई ईसाइयों के स्वर्ग में जाता होगा, वह भी लड़ाई में दु:ख पाता होगा। ऐसे स्वर्ग की यहीं से आश छोड़, हाथ-जोड़ बैठ रहो। जहां शान्तिभङ्ग और उपद्रव मचा रहे, वह ईसाइयों के योग्य है॥ १२६॥

१२७. और वह बड़ा अजगर गिराया गया, हां वह प्राचीन सांप जो दियाबल और शैतान कहाता है, जो सारे संसार का भरमानेहारा है....॥

—यो० प्र० प० १२। आ० ९॥

समीक्षक—क्या जब वह शैतान स्वर्ग में था तब लोगों को नहीं भरमाता था? और उसको जन्मभर बंदीगृह में अथवा मार क्यों न डाला? उसको पृथिवी पर क्यों डाल दिया? जो सब संसार का भर्मानेवाला शैतान है, तो शैतान को भर्मानेहारा कौन है? यदि शैतान स्वयं भर्मा है, तो शैतान के विना भर्मनेहारे भर्मेंगे और जो उसको भर्मानेहारा परमेश्वर है, तो वह ईश्वर ही नहीं ठहरा।

विदित तो यह होता है कि ईसाइयों का ईश्वर भी शैतान से डरता होगा? क्योंकि जो शैतान से प्रबल होता तो ईश्वर ने उसको अपराध करने समय ही दण्ड क्यों न दिया? जगत् में शैतान का जितना राज है उसके सामने सहस्रांश भी ईसाइयों के ईश्वर का राज्य नहीं। इसीलिये ईसाइयों का ईश्वर उसको हरा नहीं सकता होगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसा इस समय के राज्याधिकारी ईसाई डाकू-चोर आदि को शीघ्र दण्ड देते हैं, वैसा भी ईसाइयों का ईश्वर नहीं। पुन: कौन ऐसा निर्बुद्धि मनुष्य है कि जो वैदिकमत को छोड़ पोकल ईसाईमत का स्वीकार करे?॥ १२७॥

१२८. हाय पृथिवी और समुद्र के निवासियो! क्योंकि शैतान तुम पास उतरा है....॥ —यो० प्र० प० १२। आ० १२॥

समीक्षक—क्या वह ईश्वर वहीं का रक्षक और स्वामी है? पृथिवी के मनुष्यादि प्राणियों का रक्षक और स्वामी नहीं है? यदि भूमि का भी राजा है, तो शैतान को क्यों न मार सका? ईश्वर देखता रहता है और शैतान बहकाता फिरता है, तो भी उसको वर्जता नहीं। विदित तो यह होता है कि एक अच्छा ईश्वर और एक समर्थ दुष्ट दूसरा ईश्वर हो रहा है॥ १२८॥

१२९. ....और बयालीस मास लों युद्ध करने का अधिकार उसे दिया गया॥ और उसने ईश्वर के विरुद्ध निन्दा करने को अपना मुंह खोला कि उसके नाम की और उसके तम्बू और स्वर्ग में वास करनेहारों की निन्दा करे॥ और उसको यह दिया गया, कि पवित्र लोगों से युद्ध करे और उनपर जय करे और हर एक कुल और भाषा और देश पर उसको अधिकार दिया गया॥ —यो० प्र० प० १३। आ० ५।६।७॥

समीक्षक—भला! जो पृथिवी के लोगों को बहकाने के लिये शैतान और पशु आदि को भेजे और पवित्र मनुष्यों से युद्ध करावे, वह काम डाकुओं के सरदार के समान है ऐसा काम ईश्वर वा ईश्वर के भक्तों का नहीं॥ १२९॥

१३०. और मैंने दृष्टि की और देखो मेम्ना सियोन पर्वत पर खड़ा है और उसके सङ्ग एक लाख चवालीस सहस्र जन, जिनके माथे पर उसका नाम और उसके पिता का नाम लिखा है॥

—यो० प्र० प० १४। आ० १॥

समीक्षक—अब देखिये! जहाँ ईसा का बाप रहता था, वहीं उसी सियोन पहाड़ पर उसका लड़का भी रहता है। परन्तु एक लाख चवालीस सहस्र मनुष्यों की गणना क्योंकर की? एक लाख चवालीस सहस्र ही स्वर्गवासी हुए, शेष करोड़ों ईसाइयों के शिर पर न मोहर लगी, क्या ये सब नरक में गये? ईसाइयों को चाहिये कि सियोन पर्वत पर जाके देखें कि ईसा का उक्त बाप और उनकी सेना वहां है, वा नहीं? जो हों तो यह लेख ठीक है, नहीं तो मिथ्या। यदि कहीं से वहां आया, तो कहां से आया? जो कहो स्वर्ग से तो क्या वे पक्षी हैं कि इतनी बड़ी सेना और आप ऊपर नीचे उड़कर आया जाया करें? यदि वह आया जाया करता है, तो एक जिले के न्यायाधीश के समान हुआ। और वह एक दो वा तीन हो, तो नहीं बन सकेगा, किन्तु न्यून से न्यून एक-एक भूगोल में एक-एक ईश्वर चाहिये, क्योंकि एक, दो, तीन अनेक ब्रह्माण्डों का न्याय करने और सर्वत्र युगपत् घूमने में समर्थ कभी नहीं हो सकते॥ १३०॥

१३१. ....आत्मा कहता है हां कि वे अपने परिश्रम से विश्राम करेंगे परन्तु उनके कार्य्य उनके संग हो लेते हैं॥

—यो० प्र० प० १४। आ० १३॥

समीक्षक—देखिये! ईसाइयों का ईश्वर तो कहता है 'उनके कर्म उनके संग रहेंगे' अर्थात् कर्मानुसार फल सबको दिये जायेंगे और ये लोग कहते हैं कि ईसा पापों को ले लेगा और क्षमा भी किये जायेंगे। यहां बुद्धिमान् विचारें कि ईश्वर का वचन सच्चा वा ईसाइयों का? एक बात में दोनों तो सच्चा हो ही नहीं सकते? इनमें से एक झूठा अवश्य होगा। हमको क्या? चाहे ईसाइयों का ईश्वर झूठा हो, वा ईसाई लोग॥ १३१॥

१३२. ....और उसे ईश्वर के कोप के बड़े रस के कुण्ड में डाला॥ और रस के कुंड का रौंदन नगर के बाहर किया गया और रस के कुण्ड में से घोड़ों की लगाम तक लोहू एक सौ कोश तक बह निकला॥

—यो० प्र० प० १४। आ० १९।२०॥

समीक्षक—अब देखिये! इनके गपोड़े पुराणों से भी बढ़कर हैं, वा नहीं? ईसाइयों का ईश्वर कोप करते समय बहुत दुःखित हो जाता होगा और जो उसके कोप के कुण्ड भरे हैं, क्या उसका कोप जल है वा अन्य द्रवित पदार्थ है कि जिससे कुण्ड भरे हैं, और सौ कोश तक रुधिर का बहना असम्भव है, क्योंकि रुधिर वायु लगने से झट जम जाता है, पुनः क्योंकर बह सकता है? इसलिए ऐसी बातें मिथ्या होती हैं॥ १३२॥

१३३. ....और देखो स्वर्ग में साक्षी के मन्दिर का तम्बू खोला गया॥ —यो० प्र० प० १५। आ० ५॥

समीक्षक—जो ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो साक्षियों का क्या काम? क्योंकि वह स्वयं सब कुछ जानता होता। इससे सर्वथा यही निश्चय होता है कि इनका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं, किन्तु मनुष्यवत् अल्पज्ञ है।

वह ईश्वरता क्या कर सकता है? नहि नहि नहि। और इसी प्रकरण में दूतों की बड़ी-बड़ी असम्भव बातें लिखी हैं, उनको सत्य कोई नहीं मान सकता। कहाँ तक लिखें, इस प्रकरण में सर्वथा ऐसी ही बातें भरी हैं॥ १३३॥

१३४. ....और ईश्वर ने उसके कुकर्मों को स्मरण किया है॥ जैसा तुम्हें उसने दिया है तैसा उसको भर देओ और उसके कर्मों के अनुसार दूना उसे दे देओ....॥ —यो० प्र० प० १८। आ० ५।६॥

समीक्षक—देखो! प्रत्यक्ष ईसाइयों का ईश्वर अन्यायकारी है। क्योंकि न्याय उसी को कहते हैं कि जिसने जैसा वा जितना कर्म किया, उसको वैसा और उतना ही फल देना, उससे अधिक-न्यून देना अन्याय है। जो अन्यायकारी की उपासना करते हैं, वे अन्यायकारी क्यों न हों॥ १३४॥

१३५. ....क्योंकि मेम्ने का विवाह आ पहुँचा है और उसकी स्त्री ने अपने को तैयार किया है॥ —यो० प्र० प० १९। आ० ७॥

समीक्षक—अब सुनिये! ईसाइयों के स्वर्ग में विवाह भी होते हैं। क्योंकि ईसा का विवाह ईश्वर ने वहीं किया। पूछना चाहिये कि उसका ससुर, सासू, शालादि कौन थे और लड़के-बाले कितने हुए? और वीर्य के नाश होने से बल, बुद्धि, पराक्रम, आयु आदि भी कटके अब तक ईसा ने वहां शरीर त्याग किया होगा, क्योंकि संयोगजन्य पदार्थ का वियोग अवश्य होता है। अबतक ईसाइयों ने उसके विश्वास में धोखा खाया और न जाने कबतक धोखे में रहेंगे॥ १३५॥

१३६. ....और उसने अजगर को अर्थात् प्राचीन सांपको जो दियाबल और शैतान है, पकड़के उसे सहस्र वर्ष लों बाँध रक्खा॥ और उसको अथाह कुंड में डाला और बन्द ऊपर करके उसके छाप दी जिसतें वह जब लों सहस्र वर्ष पूरे न हों, तब लों फिर देशों के लोगों को न भरमावे॥ —यो० प्र० प० २०। आ० २।३॥

समीक्षक—देखो! मरूँ मरूँ करके शैतान को पकड़ा और सहस्र वर्ष तक बन्ध किया; फिर भी छूटेगा। क्या फिर न भरमावेगा? ऐसे दुष्ट को तो बन्दीगृह में सदा रखना वा मारे विना छोड़ना ही नहीं। परन्तु यह शैतान का होना ईसाइयों का भ्रममात्र है, वास्तव में कुछ भी नहीं। केवल लोगों को डराके अपने जाल में लाने का उपाय रचा है। जैसे किसी धूर्त्त ने किन्हीं भोले मनुष्यों से कहा कि 'चलो! तुमको देवता का दर्शन कराऊँ,' किसी एकान्त देश में लेजाके एक मनुष्य को चतुर्भुज बनाकर रक्खा। झाड़ी में खड़ा करके कहा कि 'आँख बींच लो। जब मैं कहूँ तब खोलना और फिर जब कहूँ तभी बींच लो। जो न बींचेगा वह अन्धा हो जायगा।'

जब वह सामने आया तब कहा—'देखो!' पुनः शीघ्र कहा कि बींच लो। जब फिर झाड़ी में छिप गया, तब कहा 'खोलो! देखा नारायण को? सबने दर्शन किया'। वैसी लीला इन मज़हबियों की है कि जो हमारे मजहब को न मानेगा, वह शैतान का बहकाया हुआ है। ऐसे उसको फसा लेते हैं। इसलिये इनकी माया में किसी को न फसना चाहिये॥ १३६॥

१३७. ....जिसके सम्मुख से पृथिवी और आकाश भाग गये और उनके लिये जगह न मिली॥ और मैंने क्या छोटे क्या बड़े सब मृतकों को ईश्वर के आगे खड़े देखा और पुस्तक खोले गये और दूसरा पुस्तक अर्थात् जीवन का पुस्तक खोला गया और पुस्तकों में लिखी हुई बातों से मृतकों का विचार उनके कर्म्मों के अनुसार किया गया॥

—यो० प्र० प० २०। आ० ११।१२॥

समीक्षक—यह देखो लड़केपन की बात! भला; पृथिवी और आकाश कैसे भाग सकेंगे? और वे किस पर ठहरेंगे, जिनके सामने से भगे। और उसका सिंहासन और वह कहाँ ठहरा था? और मुर्दे परमेश्वर के सामने खड़े किये गये तो परमेश्वर भी बैठा वा खड़ा होगा? क्या यहां की कचहरी और दूकान के समान ईश्वर का व्यवहार है जो कि पुस्तक लेखानुसार होता है? और सब जीवों का हाल ईश्वर ने लिखा वा उसके गुमाश्तों ने? ऐसी-ऐसी बातों से अनीश्वर को ईश्वर और ईश्वर को अनीश्वर ईसाई आदि मत वालों ने बना दिया॥ १३७॥

१३८. ....उनमें से एक मेरे पास आया और मेरे संग बोला कि आ मैं दुल्हिन को अर्थात् मेम्ने की स्त्री को तुझे दिखाऊँगा॥

—यो० प्र० प० २१। आ० ९॥

समीक्षक—भला! ईसा ने स्वर्ग में 'दुल्हीन' अर्थात् स्त्री अच्छी पाई, मौज करता होगा। जो-जो ईसाई वहाँ जाते होंगे, उनको भी स्त्रियाँ मिलती होंगी लड़के-बाले होते होंगे और बहुत भीड़ के हो जाने से रोगोत्पत्ति होकर मरते भी होंगे। ऐसे स्वर्ग को दूर से हाथ ही जोड़ना अच्छा है॥ १३८॥

१३९. ....और उसने उस नल से नगर को नापा कि साढ़े सात सौ कोश का है, उसकी लंबाई और चौड़ाई और ऊंचाई एक समान हैं॥ और उसने उसकी भीत को मनुष्य के अर्थात् दूत के नाप से नापा कि एक सौ चवालीस हाथ की हैं।। और उसकी भीत की जोड़ाई सूर्य्यकान्त की थी और नगर निर्मल सोने का था जो निर्मल कांच के समान था॥ और नगर की भीत की नेवें हर एक बहुमूल्य पत्थर से सँवारी हुई थीं; पहिली नेव सूर्य्यकान्त की थी, दूसरी नीलमणि की, तीसरी लालड़ी की, चौथी मरकत की॥ पांचवीं गोमेदक की, छठवीं माणिक्य की, सातवीं पीतमणि की, आठवीं पेरोज की, नवीं पुखराज की, दशवीं लहसनिये की, एग्यारहवीं धूम्रकान्त की, बारहवीं मर्टीष की॥ और बारह फाटक बारह मोती थे, एक-एक मोती से एक-एक फाटक बना था और नगर की सड़क स्वच्छ कांच के ऐसे निर्मल सोने की थी॥

—यो० प्र० प० २१। आ० १६।१७।१८।१९।२०।२१॥

समीक्षक—सुनो ईसाइयों के स्वर्ग का वर्णन! यदि ईसाई मरते जाते और जन्मते जाते हैं तो इतने बड़े शहर में कैसे समा सकेंगे? क्योंकि उसमें मनुष्यों का आगम होता है और उससे निकलते नहीं। और जो यह बहुमूल्य रत्नों की बनी हुई नगरी मानी है, और सर्व सोने की है, इत्यादि लेख केवल भोले-भाले मनुष्यों को बहकाकर फसाने की लीला है। भला लंबाई-चौड़ाई तो उस नगर की लिखी सो हो सकती है, परन्तु ऊंचाई साढ़े सात सौ कोश क्योंकर हो सकती है? यह सर्वथा मिथ्या कपोलकल्पना की बात है। और इतने बड़े मोती कहाँ से आये होंगे? इस लेख के लिखने वाले के घर के घड़े में से। यह गपोड़ा पुराण का भी बाप है॥ १३९॥

१४०. और कोई अपवित्र वस्तु अथवा घिनित कर्म्म करनेहारा

अथवा झूठ पर चलनेहारा उसमें किसी रीति से प्रवेश न करेगा....॥

—यो० प्र० प० २१। आ० २७॥

समीक्षक—जो ऐसी बात है, तो ईसाई लोग क्यों कहते हैं कि पापी लोग भी स्वर्ग में ईसाई होने से जा सकते हैं। यह झूठ बात है। यदि ऐसा है, तो योहन्ना स्वप्ने की मिथ्या बातों का कहनेहारा स्वर्ग में प्रवेश कभी न कर सका होगा, और ईसा भी स्वर्ग में न गया होगा। क्योंकि जब अकेला पापी स्वर्ग को प्राप्त नहीं हो सकता, तो जो अनेक पापियों के पापभारयुक्त क्योंकर स्वर्गवासी हो सकता है॥ १४०॥

१४१. और अब कोई श्राप न होगा और ईश्वर का और मेम्ने का सिंहासन उसमें होगा और उसके दास उसकी सेवा करेंगे॥ और उसका मुंह देखेंगे और उसका नाम उनके माथे पर होगा॥ और वहां रात न होगी और उन्हें दीपक का अथवा सूर्य की ज्योति का प्रयोजन नहीं, क्योंकि परमेश्वर ईश्वर उन्हें ज्योति देगा वे सदा सर्वदा राज्य करेंगे॥

—यो० प्र० प० २२। आ० ३।४।५॥

समीक्षक—देखिये यही ईसाइयों का स्वर्गवास! क्या ईश्वर और ईसा सिंहासन पर निरन्तर बैठे रहेंगे? और उनके दास उनके सामने सदा मुंह देखा करेंगे? अब यह तो कहिये तुम्हारे ईश्वर का मुंह यूरोपियन के सदृश गोरा वा अफ्रीकावालों के सदृश काला अथवा अन्य देशवालों के समान है? यह तुम्हारा स्वर्ग भी बन्धन है, क्योंकि जहाँ छोटाई-बड़ाई है और उसी एक नगर में रहना अवश्य है तो वहाँ दुःख क्यों न होता होगा? जो मुखवाला है, वह ईश्वर सर्वज्ञ सर्वेश्वर कभी नहीं हो सकता॥ १४१॥

१४२. देख, मैं शीघ्र आता हूँ और मेरा प्रतिफल मेरे साथ है जिसतें हर एक को जैसा उसका कार्य्य ठहरेगा वैसा देऊं॥

—यो० प्र० प० २२। आ० १२॥

समीक्षक—जब यही बात है कि कर्मानुसार फल पाते हैं, तो पापों की क्षमा कभी नहीं होती। और जो क्षमा होती है, तो इञ्जील की बातें झूठी। यदि कोई कहे कि क्षमा करना भी इञ्जील में लिखा है तो 'पूर्वापरविरुद्ध' अर्थात् 'हल्फ़दरोगी' हुई, तो झूठ है, इसका मानना

छोड़ देओ॥ १४२॥

अब कहाँ तक लिखें, इनकी बायबिल में लाखों बातें खण्डनीय हैं। यह तो थोड़ा-सा चिह्नमात्र ईसाइयों की बायबिल पुस्तक का दिखलाया है, इतने ही से बुद्धिमान् लोग बहुत-सा समझ लेंगे। थोड़ी सी बातों को छोड़ शेष सब झूठ भरा है। जैसे झूठ के संग से सत्य भी शुद्ध नहीं रहता, वैसा ही बायबिल पुस्तक भी माननीय नहीं हो सकता किन्तु वह सत्य तो वेदों के स्वीकार में गृहीत होता ही है॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते कृश्चीनाख्यमतविषये त्रयोदशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ १३॥

अनुभूमिका (४)

जो यह १४ चौदहवां समुल्लास मुसलमानों के मतविषय में लिखा है सो केवल क़ुरान के अभिप्राय से; अन्य ग्रन्थ के मत से नहीं; क्योंकि मुसलमान क़ुरान पर ही पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं। यद्यपि फ़िरके होने का कारण किसी शब्द, अर्थ आदि विषय में विरुद्ध बात है तथाऽपि क़ुरान पर सब ऐकमत्य हैं।

जो क़ुरान अर्बी भाषा में है, उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है। उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्य्यभाषान्तर कराके पश्चात् अर्बी के बड़े-बड़े विद्वानों से शुद्ध करवाके लिखा गया है। यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है, तो उसको उचित है कि मौलवी साहबों के तर्जुमाओं का पहिले खण्डन करे, पश्चात् इस विषय पर लिखे। क्योंकि यह लेख केवल मुनष्यों की उन्नति, सत्याऽसत्य के निर्णय के लिये है अर्थात् सब मत के विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होवे, इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक-दूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें। न किसी अन्य मत पर, न इस मत पर झूठ-मूठ बुराई वा भलाई लगाने का प्रयोजन है किन्तु जो-जो भलाई है, वही भलाई और जो बुराई है, वही बुराई सबको विदित होवे। न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके। और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो, वह न माने, वा माने, किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता।

और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर, गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करें और हठियों का हठ दुराग्रह न्यून करें-करावें। क्योंकि पक्षपात से क्या-क्या अनर्थ जगत् में न हुए और न होते हैं। सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभङ्ग जीवन में पराई हानि करके लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहिः है।

इसमें जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो, उसको सज्जन लोग विदित कर देंगे। तत्पश्चात् जो उचित होगा तो माना जायगा, क्योंकि यह लेख हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद-विवाद और विरोध घटाने के लिये किया गया है, न कि इनको बढ़ाने के अर्थ। क्योंकि एक-दूसरे की हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुँचाना, हमारा मुख्य कर्म है। अब यह १४ चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों का मतविषय सब सज्जनों के सामने निवेदन करता हूँ। विचार कर, इष्ट का ग्रहण, अनिष्ट का परित्याग कीजिये।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु।
इत्यनुभूमिका॥

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

इसके आगे मुसलमानों के मत-विषय में लिखेंगे—

१. आरंभ साथ नाम अल्लाह के। क्षमा करने वाला दयालु॥

—मंजिल १। सिपारा १। सूरत १॥

समीक्षक—मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं कि 'यह क़ुरान* ख़ुदा का कहा है', परन्तु इस वचन से विदित होता है कि इसका बनानेवाला कोई दूसरा है, क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता तो "आरम्भ साथ नाम अल्लाह के" ऐसा न कहता किन्तु "आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्यों के" ऐसा कहता। यदि मनुष्यों को शिक्षा करता है कि तुम ऐसा कहो तो भी ठीक नहीं, क्योंकि इससे पाप का आरम्भ भी ख़ुदा के नाम से होकर उसका नाम भी दूषित हो जायगा।

जो वह क्षमा और दया करनेहारा है तो अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुख़ार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीड़ा दिलाकर, मरवाके माँस खाने की आज्ञा क्यों दी? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वर के बनाये हुए नहीं हैं?

और यह भी कहना था कि "मैं परमेश्वर के नाम पर अच्छी बातों का आरम्भ करता हूँ, बुरी बातों का नहीं"। इस कथन में गोलमाल है। क्या चोरी, जारी, मिथ्या-भाषणादि, अधर्म का भी आरम्भ परमेश्वर के नाम पर किया जाय? इसी से देख लो, कसाई आदि मुसलमान, गाय आदि के गले काटने में भी 'बिस्मिल्लाह' इस वचन को पढ़ते हैं; जो यही इसका पूर्वोक्त अर्थ है तो बुराइयों का आरम्भ भी परमेश्वर के नाम पर मुसलमान करते हैं और मुसलमानों का 'ख़ुदा' दयालु भी न रहेगा, क्योंकि उसकी दया उन पशुओं पर न रही। और जो मुसलमान लोग

* वास्तव में यह शब्द 'कुरआन' है, परन्तु भाषा में लोगों के बोलने में कुरान आता है, इसलिए ऐसा ही लिखा है।

इसका अर्थ नहीं जानते तो इस वचन का प्रकट होना व्यर्थ है। यदि मुसलमान लोग इसका अर्थ उलटा करते हैं तो सूधा अर्थ क्या है? इत्यादि॥ १॥

२. सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते है जो परवरदिगार अर्थात् पालन करनेहारा है सब संसार का॥ क्षमा करने वाला दयालु है॥

—मं० १। सि० १। सूरतुल्फातिहा आयत १। २॥

समीक्षक—जो क़ुरान का ख़ुदा संसार का पालनेहारा होता और सबपर क्षमा और दया करता होता, तो अन्य मत वाले और पशु आदि को भी मुसलमानों के हाथ से मरवाने का हुक्म न देता। जो क्षमा करनेहारा है तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा? और जो वैसा है तो आगे लिखेंगे कि "काफ़िरों का क़तल करो" अर्थात् जो क़ुरान और पैग़म्बर को न मानें वे काफ़िर हैं, ऐसा क्यों कहता? इसलिये क़ुरान ईश्वरकृत नहीं दीखता॥ २॥

३. मालिक दिन न्याय का॥ तुझ ही की हम भक्ति करते हैं और तुझ ही से सहाय चाहते हैं॥ दिखा हमको सीधा रास्ता॥

—मं० १। सि० १। सू० १। आ० ३। ४। ५॥

समीक्षक—क्या ख़ुदा नित्य न्याय नहीं करता? किसी एक दिन न्याय करता है? इससे तो अँधेर विदित होता है। उसी की भक्ति करना और उसी से सहाय चाहना तो ठीक है, परन्तु क्या बुरी बात का भी सहाय चाहना? और सूधा मार्ग एक मुसलमानों ही का है वा दूसरे के भी? सूधामार्ग को मुसलमान ग्रहण क्यों नहीं करते? क्या सीधा रास्ता बुराई की ओर का तो नहीं चाहते? यदि भलाई सबकी एक है, तो फिर मुसलमानों ही में विशेष कुछ भी न रहा और जो दूसरों की भलाई नहीं मानते, तो पक्षपाती हैं॥ ३॥

४. उन लोगों का रास्ता कि जिनपर तूने निआमत की॥ और उनका मार्ग मत दिखा कि जिनके ऊपर तूने गज़ब अर्थात् अत्यन्त क्रोध की दृष्टि की और न गुमराहों का मार्ग हमको दिखा॥

—मं० १। सि० १। सू० १। आ० ६। ७॥

समीक्षक—जब मुसलमान लोग पूर्वजन्म और पूर्वकृत पाप-

पुण्य नहीं मानते तो किन्हीं को दोनों लोकों के ऐश्वर्य देने और किन्हीं को न देने से ख़ुदा पक्षपाती हो जायगा, क्योंकि विना पाप-पुण्य के सुख-दुःख देना केवल अन्याय की बात है। और विना कारण किसी पर दया और किसी पर क्रोधदृष्टि करना भी ख़ुदा के स्वभाव से बहिः है। क्योंकि विना भलाई-बुराई के वह दया अथवा क्रोध नहीं कर सकता और जब उनके पूर्व सञ्चित पुण्य-पाप ही नहीं, तो किसी पर दया और किसी पर क्रोध करना नहीं हो सकता॥

और जो 'गुमराह' शब्द का अर्थ नोट में काफिर, बेदीन (जो मुसलमान नहीं है) यह लिखा है तो वह ख़ुदा केवल मुसलमानों ही का पक्षपाती होगा, अन्य का नहीं। क्योंकि जो सब मत-मतान्तरों में धर्मात्मा और पापात्मा होते हैं, तो धर्मात्मा भी इस लेख से काफ़िर हो सकते हैं और जो मुसलमानों में बुरे काम करते हैं, क्या वे काफ़िर नहीं हैं? और जो काफ़िर हैं, वे सब मतों में बुरे हैं और जो धर्मात्मा हैं, वे सब मतों में उत्तम हैं, तो मुसलमानों से भिन्न मनुष्यों को काफ़िर कहना अविद्या की बात है।

और इस सिपारे और इस सूरे की टिप्पन पर—"यह सूरः अल्लाह साहेब ने मनुष्यों के मुख से कहलाई कि सदा इस प्रकार से कहा करें", जो यह बात है तो 'अलिफ़, बे' आदि अक्षर भी ख़ुदा ही ने पढ़ाये होंगे। जो कहो कि नहीं, तो विना अक्षरज्ञान के इस सूरः को कैसे पढ़ सके? क्या कण्ठ ही से बुलाए और बोलते गये? जो ऐसा है तो सब क़ुरान ही कण्ठ से पढ़ाया होगा।

इससे ऐसा समझना चाहिये कि जिस पुस्तक में पक्षपात की बातें पाई जायें, वह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता। जैसा कि अरबी भाषा में उतारने से अरबवालों को तो इसका पढ़ना सुगम, अन्य भाषाओं को बोलने वालों को कठिन होता है, इसी से ख़ुदा में पक्षपात आता है। और जैसे परमेश्वर ने सृष्टिस्थ सब देशस्थ मनुष्यों पर न्यायदृष्टि से सब देशभाषाओं से विलक्षण संस्कृत-भाषा कि जो सब देशवालों के लिये एक से परिश्रम से विदित होती है, उसी में वेदों का प्रकाश किया है, करता तो कुछ भी दोष न होता॥ ४॥

५. यह पुस्तक कि जिसमें सन्देह नहीं, परहेज़गारों को मार्ग दिखलाती है॥ जो कि ईमान लाते, नमाज़ पढ़ते, और उस वस्तु से जो हमने उनको दी, खर्च करते हैं और वे लोग जो उस किताब पर ईमान लाते हैं जो तेरी ओर वा तुझसे पहिले उतारी गई, और विश्वास क़यामत पर रखते हैं॥ ये लोग अपने मालिक की शिक्षा पर हैं और ये ही छुटकारा पानेवाले हैं॥ निश्चय जो काफ़िर हुए और उन पर तेरा डराना, न डराना समान है, वे कभी ईमान न लावेंगे॥ अल्लाह ने उनके दिलों, कानों पर मोहर कर दी और उनकी आंखों पर पर्दा है और उनके वास्ते बड़ा अज़ाब है॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० २।३।४।५।६।७॥

समीक्षक—क्या अपने ही मुख से अपनी किताब की प्रशंसा करना ख़ुदा की दम्भ की बात नहीं? जब 'परहेज़गार' अर्थात् धार्मिक लोग हैं वे तो स्वतः सच्चे मार्ग में हैं, और जो झूठे मार्ग पर हैं, उनको यह क़ुरान मार्ग ही नहीं दिखला सकता, फिर किस काम का रहा?

क्या पाप पुण्य और पुरुषार्थ के विना ख़ुदा अपने ही ख़जाने से खर्च करने को देता है? जो देता है तो सबको क्यों नहीं देता? और मुसलमान लोग परिश्रम क्यों करते हैं?

और जो बायबिल इञ्जील आदि पर विश्वास करना योग्य है तो मुसलमान इञ्जील आदि पर ईमान जैसा क़ुरान पर है, वैसा क्यों नहीं लाते? और जो लाते हैं तो क़ुरान का होना किसलिये? जो कहें कि क़ुरान में अधिक बातें हैं, तो पहिली किताब में लिखना ख़ुदा भूल गया होगा! और जो नहीं भूला तो क़ुरान का बनाना निष्प्रयोजन है। और हम देखते हैं तो बायबिल और क़ुरान की बातें कोई-कोई न मिलती होंगी, नहीं तो सब मिलती हैं। एक ही पुस्तक जैसा कि वेद है क्यों न बनाया? क्या क़यामत पर ही विश्वास रखना चाहिये अन्य पर नहीं?॥

क्या ईसाई और मुसलमान ही ख़ुदा की शिक्षा पर हैं, उनमें कोई भी पापी नहीं हैं? क्या जो ईसाई और मुसलमान अधर्मी हैं, वे भी छुटकारा पावें और दूसरे धर्मात्मा भी न पावें, तो बड़े अन्याय, अन्धेर की बात है॥

और क्या जो लोग मुसलमानी मत को न मानें, उन्हीं को क़ाफिर

कहना वह एकतर्फ़ी डिगरी नहीं है?॥

जो परमेश्वर ही ने उनके अन्तःकरण और कानों पर मोहर लगाई और उसी से वे पाप करते हैं, तो उनका कुछ भी दोष नहीं। यह दोष ख़ुदा ही का है, फिर उन पर सुख-दुःख वा पाप-पुण्य नहीं हो सकता, पुनः उनको सज़ा जज़ा क्यों करता है? क्योंकि उन्होंने पाप वा पुण्य स्वतन्त्रता से नहीं किया॥५॥

६. वे अल्लाह और ईमानदारों को फरेब देते हैं।। उनके दिलों में रोग है, अल्लाह ने उनको रोग बढ़ा दिया॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ९।१०॥

समीक्षक—क्या ईश्वर से किसी का कपट, छल अज्ञात रहता है? यदि रहता है तो वह खुदा ही नहीं। इससे ऐसा लिखना ही व्यर्थ है। भला परमेश्वर को कौन भरमा सकता है और जो भ्रमाने से बहक जाता है, वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। क्यों विना अपराध खुदा ने उनको रोग बढ़ाया, दया न आई, उन बिचारों को बड़ा दुःख हुआ होगा! क्या यह शैतान से बढ़कर शैतानपन का काम नहीं है? किसी के मन पर ताला लगाना, किसी को रोग बढ़ाना, खुदा का काम नहीं हो सकता। क्योंकि रोग का बढ़ना अपने पापों से है॥६॥

७. उनसे अल्लाह ठट्ठा करता है॥ जिसने तुम्हारे वास्ते पृथिवी बिछौना और आसमान की छत को बनाया॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० १४।२१॥

समीक्षक—जब किसी का ठट्ठा करना, उत्तम पुरुष का काम नहीं, तो खुदा को ठट्ठा करना योग्य कभी नहीं हो सकता, और जो ठट्ठेबाज़ है, वह खुदा ही नहीं।। भला, आसमान छत किसी की हो सकती है? यह अविद्या की बात है। आकाश को छत के समान मानना हांसी की बात है। यदि किसी प्रकार की पृथिवी को आसमान मानते हों तो उनकी घर की बात है॥७॥

८. जो तुम उस वस्तु से सन्देह में हो जो हमने पैग़म्बर के ऊपर उतारी, तो उस कैसी एक सूरत ले आओ और अपने को पुकारो, अल्लाह के विना जो तुम सच्चे हो॥ जो तुम और कभी न करोगे, तो

उस आग से डरो कि जिसका इन्धन मनुष्य है और काफ़िर के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० २३, २४॥

समीक्षक—भला, यह कोई बात है कि उसके सदृश कोई सूरत न बने? क्या अकबर बादशाह के समय में मौलवी फ़ैजी ने विना नुक़ता का क़ुरान नहीं बना लिया था?

और वह कौन सी आग जो दोजख की है? क्या इस आग से न डरना चाहिए? इसका भी इन्धन जो कुछ पड़े सब है। क्या जैसे क़ुरान में लिखा है कि काफ़िरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं, तो पुराणों में लिखा है म्लेच्छों के लिए घोर नरक बना है! अब कहिये किसकी बात सच्ची मानी जाय?

अपने-अपने वचन से दोनों स्वर्गगामी और दूसरे के मत से दोनों नरकगामी होते हैं, इसलिए यह सबका झगड़ा झूठा है, किन्तु जो धार्मिक हैं, वे सुख और जो पापी हैं, वे सब मतों में दु:ख पावेंगे॥ ८॥

९. और तू ईमानवालों को आनन्द का सन्देसा दे कि उनके वास्ते बहिश्तें हैं जिन में चलती हैं नहरें, जब उसमें से मेवों के भोजन दिये जावेंगे तब कहेंगे कि यह वो वस्तु हैं जो हम पहिले इससे दिये गये थे; निश्चय और उनके लिए पवित्र बीवियाँ हैं, सदैव वहाँ रहने वाली हैं॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० २५॥

समीक्षक—भला! यह क़ुरान का बहिश्त संसार से कौन सी उत्तम बातवाला है? क्योंकि जो पदार्थ संसार में हैं, वे ही मुसलमानों के स्वर्ग में हैं। और इतना विशेष है कि यहाँ जैसे पुरुष जन्मते-मरते और आते-जाते हैं, उसी प्रकार स्वर्ग में नहीं। किन्तु यहाँ की स्त्रियाँ सदा नहीं रहतीं और वहाँ 'बीवियाँ' अर्थात् उत्तम स्त्रियाँ सदा काल रहती हैं तो जबतक कयामत की रात न आवेगी, तबतक उन बिचारियों के दिन कैसे कटते होंगे?

हाँ, जो खुदा की उन पर कृपा होती होगी! और खुदा ही के आश्रय समय काटती होंगी तो ठीक है! क्योंकि यह मुसलमानों का स्वर्ग गोकुलिये गुसांइयों के गोलोक और मन्दिर के सदृश दीखता है। क्योंकि वहाँ स्त्रियों का मान्य बहुत, पुरुषों का नहीं, वैसे ही खुदा के घर में भी स्त्रियों का

मान्य अधिक और उनपर खुदा का प्रेम भी बहुत है, उतना पुरुषों पर नहीं। क्योंकि बीवियों को खुदा ने बहिश्त में सदा रक्खा और पुरुषों को नहीं, वे बीवियाँ विना ख़ुदा की मर्ज़ी स्वर्ग में कैसे ठहर सकतीं? जो यह बात ऐसी ही हो, तो ख़ुदा स्त्रियों में फस जाय॥ ९॥

१०. आदम को सारे नाम सिखाये, फिर फ़रिश्तों के सामने करके कहा—जो तुम सच्चे हो मुझे उनके नाम बताओ॥ फिर कहा हे आदम! उनको उनके नाम बता दे, तब उसने बता दिये, तो खुदा ने फ़रिश्तों से कहा कि क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि निश्चय मैं पृथिवी और आसमान की छिपी वस्तुओं को और प्रकट-छिपे कर्मों को जानता हूँ॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ३१। ३३॥

समीक्षक—भला, ऐसे फ़रिश्तों को धोखा देकर अपनी बड़ाई करना खुदा का काम हो सकता है? यह तो एक दम्भ की बात है, इसको कोई विद्वान् नहीं मान सकता और न ऐसा अभिमान करता। क्या ऐसी बातों से ही खुदा अपनी सिद्धाई जमाना चाहता है? हां जङ्गली लोगों में कोई कैसा ही पाखण्ड चला लेवे, चल सकता है। सभ्यजनों में नहीं॥ १०॥

११. जब हमने फ़रिश्तों से कहा कि बाबा आदम को दण्डवत् करो, परन्तु शैतान ने न माना और अभिमान किया क्योंकि वो भी एक काफ़िर था॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ३४॥

समीक्षक—इससे ख़ुदा सर्वज्ञ नहीं। अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान की पूरी बातें नहीं जानता। जो जानता हो तो शैतान को पैदा ही क्यों किया? और ख़ुदा में कुछ तेज भी नहीं है, क्योंकि शैतान ने ख़ुदा का हुक्म ही न माना और ख़ुदा उसका कुछ भी न कर सका। और देखिए! एक शैतान काफ़िर ने ख़ुदा का भी छक्का छुड़ा दिया, तो मुसलमानों के कथनानुसार भिन्न जहाँ क्रोडों काफ़िर हैं, वहाँ मुसलमानों के ख़ुदा और मुसलमानों की क्या चल सकती है?

कभी-कभी ख़ुदा भी किसी का रोग बढ़ा देता, किसी को गुमराह कर देता है ख़ुदा ने ये बातें शैतान से सीखी होंगी और शैतान ने ख़ुदा से; क्योंकि विना ख़ुदा के फरिश्तों का उस्ताद और कोई नहीं हो सकता॥ ११॥

१२. हमने कहा कि ओ आदम! तू और तेरी जोरू बहिश्त में रहकर आनन्द से जहाँ चाहो खाओ परन्तु मत समीप जाओ उस वृक्ष के कि पापी हो जाओगे॥ शैतान ने उनको डिगाया और उनको बहिश्त के आनन्द से खो दिया तब हमने कहा कि उतरो तुम्हारे में कोई शत्रु है। तुम्हारा ठिकाना पृथिवी है और एक समय तक लाभ है॥ आदम अपने मालिक की कुछ बातें सीखकर पृथिवी पर आ गया॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ३५।३६।३७॥

समीक्षक—अब देखिये ख़ुदा की अल्पज्ञता! अभी तो स्वर्ग में रहने का आशीर्वाद दिया और पुनः थोड़ी देर में कहा कि निकलो। जो भविष्यत् बातों को जानता होता तो वर ही क्यों देता? और बहकानेवाले शैतान को दण्ड देने से असमर्थ भी दीख पड़ता है। और वह वृक्ष किस के लिए उत्पन्न किया था? क्या अपने लिए वा दूसरे के लिए? जो अपने लिए किया तो उसको क्या जरूरत थी? और जो दूसरे के लिए, तो क्यों रोका? इसलिए ऐसी बातें न ख़ुदा की और न उसके बनाये पुस्तक में हो सकती हैं। आदम साहेब ख़ुदा से कितनी बातें सीख आये? और जब पृथिवी पर आदम साहेब आये तब किस प्रकार आये? क्या वह बहिश्त पहाड़ पर है वा आकाश पर? उससे कैसे उतर आये? अथवा पक्षी के तुल्य आये अथवा जैसे ऊपर से पत्थर गिर पड़े? इसमें यह विदित होता है कि जब आदम साहेब मट्टी से बनाये गये, तो इनके स्वर्ग में भी मट्टी होगी। और जितने वहां और हैं वे भी वैसे ही फ़रिश्ते आदि होंगे, क्योंकि मट्टी के शरीर विना इन्द्रिय भोग नहीं हो सकता। जब पार्थिव शरीर है, तो मृत्यु भी अवश्य होना चाहिए। यदि मृत्यु होता है, तो वे वहां से कहां जाते हैं? और मृत्यु नहीं होता, तो उनका जन्म भी हुआ। जब जन्म है, तो मृत्यु अवश्य ही है। यदि ऐसा है, तो जो क़ुरान में लिखा है कि बीबियाँ सदैव बिहिश्त में रहती हैं, सो झूठा हो जायगा, क्योंकि उनका भी मृत्यु अवश्य होगा। जब ऐसा है तो बिहिश्त में जानेवालों का भी मृत्यु निश्चित होगा॥ १२॥

१३. उस दिन से डरो कि जब कोई जीव किसी जीव से कुछ भरोसा न रक्खेगा, न उसकी सिफ़ारिश स्वीकार की जावेगी, न उससे

बदला लिया जावेगा और न वे सहाय पावेंगे॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ४८॥

समीक्षक—क्या वर्त्तमान दिनों में न डरें? बुराई करने में सब दिन डरना चाहिए। जब सिफ़ारिश न मानी जावेगी, तो फिर पैग़म्बर की गवाही वा सिफ़ारिश से ख़ुदा स्वर्ग देगा, यह बात क्योंकर सच हो सकेगी? क्या खुदा बहिश्तवालों ही का सहायक है, दोज़ख़वालों का नहीं? यदि ऐसा है, तो ख़ुदा पक्षपाती है॥ १३॥

१४. हमने मूसा को किताब और मौज़िजे दिये॥ हमने उनको कहा कि तुम निन्दित बन्दर हो जाओ॥ यह एक भय दिया जो उनके सामने और पीछे थे उनको, और शिक्षा ईमानदारों को॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ५३॥ ६५।६६॥

समीक्षक—जो मूसा को किताब दी तो क़ुरान का होना निरर्थक है। और उसको आश्चर्यशक्ति दी यह बाइबल और क़ुरान में भी लिखा है, परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं, क्योंकि जो ऐसा होता तो अब भी होता, जो अब नहीं, तो पहिले भी न था। जैसे स्वार्थी लोग आजकल भी अविद्वानों के सामने सिद्ध बन जाते हैं, वैसे उस समय भी कपट किया होगा, क्योंकि खुदा और उसके सेवक अब भी विद्यमान हैं, पुनः इस समय खुदा आश्चर्यकर्म क्यों नहीं देता और नहीं कर सकते? जो मूसा को किताब दी थी, तो पुनः क़ुरान का देना क्या आवश्यक था? क्योंकि जो भलाई बुराई करने न करने का उपदेश सर्वत्र एक-सा होता है, पुनः भिन्न-भिन्न पुस्तक करने से पुनरुक्त दोष होता है। क्या मूसाजी को दी हुई पुस्तक में खुदा भूल गया था। जो ख़ुदा ने निन्दित बन्दर हो जाना केवल भय देने के लिए कहा था, तो उसका कहना मिथ्या हुआ वा छल किया। जो ऐसी बातें करता और जिसमें ऐसी बातें हैं, वह न ख़ुदा और न यह पुस्तक ख़ुदा का बनायी हो सकती है॥ १४॥

१५. इस तरह मुर्दों को अल्लाह जिलाता है और तुम को अपनी निशानियाँ दिखलाता है कि तुम समझो॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ५०॥

समीक्षक—क्या मुर्दों को ख़ुदा जिलाता था तो अब क्यों नहीं

जिलाता? क्या क़यामत की रात तक क़बरों में पड़े रहेंगे? आजकल दौड़ासुपुर्द हैं? क्या इतनी ही ईश्वर की निशानियाँ हैं? पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि निशानियाँ नहीं हैं? क्या जगत् में जो विविध रचनाविशेष प्रत्यक्ष दीखती हैं यह निशानियाँ कम हैं?॥ १५॥

१६. वे सदैव काल बहिश्त अर्थात् वैकुण्ठ में वास करेंगे॥ किन्तु बुराई कमायें और उसे उसका अपराध घेर लेवे, ये लोग सदैव आग में वास करेंगे। —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८२॥

समीक्षक—कोई भी जीव अनन्त पाप पुण्य करने का सामर्थ्य नहीं रखता इसलिये सदैव स्वर्ग नरक में नहीं रह सकते। और जो ख़ुदा ऐसा करे तो वह अन्यायकारी और अविद्वान् हो जावे। क़यामत की रात न्याय होगा तो मनुष्यों के पाप पुण्य बराबर होना उचित है, जो अनन्त नहीं है उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है? और सृष्टि हुए सात आठ हज़ार वर्षों से इधर ही बतलाते हैं क्या इसके पूर्व ख़ुदा निकम्मा बैठा था? और क़यामत के पीछे भी निकम्मा रहेगा? ये बातें सब लड़कों के समान हैं, क्योंकि परमेश्वर के काम सदैव वर्त्तमान रहते हैं और जितने जिसके पाप पुण्य हैं, उतना ही उनको फल देता है, इसलिये क़ुरान की यह बात सच्ची नहीं॥ १६॥

१७. जब हमने तुमसे प्रतिज्ञा कराई न बहाना लोहू अपने आपस के और किसी अपने आपस को घरों से न निकालना, इसके तुम ही साक्षी हो॥ फिर तुम वे लोग हो कि अपने आपस को मार डालते हो, एक फ़िरके को घरों से निकाल देते हो।

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८४। ८५॥

समीक्षक—भला! प्रतिज्ञा करानी और करनी अल्पज्ञों की बात है वा परमात्मा की? जब परमेश्वर सर्वज्ञ है तो ऐसा कड़ाकूट संसारी मनुष्य के समान क्यों करेगा? भला यह कौन सी भली बात है कि आपस का लोहू न बहाना, अपने मत वालों को घर से न निकालना, अर्थात् दूसरे मत वालों का लोहू बहाना और घर से निकाल देना मिथ्या, मूर्खता और पक्षपात की बात नहीं है क्या? क्या परमेश्वर प्रथम ही से नहीं जानता था कि ये प्रतिज्ञा से विरुद्ध करेंगे? इससे विदित होता है

कि मुसलमानों का ख़ुदा भी ईसाइयों की बहुत सी उपमा रखता है और यह क़ुरान स्वतन्त्र पुस्तक नहीं बन सकता क्योंकि इसमें से थोड़ी सी बातों को छोड़कर बाकी सब बातें बायबिल की हैं॥ १७॥

१८. ये वे लोग हैं कि जिन्होंने आखरत के बदले जिन्दगी यहां की मोल ले ली, उनसे पाप कभी हलका न किया जावेगा और न उनको सहायता दी जावेगी॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८६॥

समीक्षक—भला! ऐसी ईर्ष्या द्वेष की बातें कभी ईश्वर की हो सकती हैं? दूसरों की कहानी दूसरों से कहनी, किसी का पक्ष करना ख़ुदा की बात हो सकती है? किन्तु किसी मतावलम्बी मनुष्य की ओर से है। जिन लोगों के पाप हलके किये जायेंगे वा जिनको सहायता दी जावेगी वे कौन हैं? यदि वे पापी हैं और पापों का दण्ड दिये विना हलके किये जावेंगे तो अन्याय होगा। जो सजा देकर हलके किये जावेंगे, तो जिनका बयान इस आयत में है, ये भी सजा पाके हलके हो सकते हैं। और दण्ड देकर भी हलके न किये जावेंगे, तो भी अन्याय होगा। जो पापों से हलके किये जाने वालों से प्रयोजन धर्मात्माओं का है, तो उनके पाप तो आप ही हलके हैं; खुदा क्या करेगा? इससे यह लेख विद्वान् का नहीं। और वास्तव में धर्मात्माओं को सुख और अधर्म्मियों को दुःख, उनके कर्म्मों के अनुसार सदैव देना चाहिये॥ १८॥

१९. निश्चय हमने मूसा को किताब दी और उसके पीछे हम पैगम्बर को लाये और मरियम के पुत्र ईसा को प्रकट मौज़िजे अर्थात् दैवीशक्ति और सामर्थ्य दिये उसको साथ रूहुल्कुद्स* के, जब तुम्हारे पास उस वस्तुसहित पैग़म्बर आया कि जिसको तुम्हारा जी चाहता नहीं, फिर तुमने अभिमान किया, एक मत को झुठलाया और मार डालते हो॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८७॥

समीक्षक—जब क़ुरान में साक्षी है कि मूसा को किताब दी, तो उसका मानना मुसलमानों को आवश्यक हुआ और जो-जो उस पुस्तक में दोष हैं वे भी मुसलमानों के मत में आ गिरे। और 'मौज़िजे' अर्थात्

* रूहल्कुद्स कहते हैं जबरईल को जो कि हरदम मसीह के साथ रहता था।

दैवीशक्ति की बातें सब अन्यथा हैं, भोले भाले मनुष्यों को बहकाने के लिए लोगों ने झूठ-मूठ चला ली हैं, क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्या से विरुद्ध सब बातें झूठी ही होती हैं। जो उस समय 'मौज़िजे' थे, तो इस समय क्यों नहीं? जो इस समय नहीं, तो उस समय भी न थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं॥ १९॥

२०. और इससे पहिले काफ़िरों पर विजय चाहते थे, जो कुछ पहिचाना था, जब उनके पास वह आया, झट काफ़िर हो गये, काफ़िरों पर लानत है अल्लाह की॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८९॥

समीक्षक—क्या जैसे तुम अन्य मत वालों को काफ़िर कहते हो, वैसे वे तुमको काफ़िर कहते हैं? और उनके मत के ईश्वर की ओर से धिक्कार देते हैं? फिर कहो कौन सच्चा और कौन झूठा? जो विचार कर देखते हैं तो सब मत वालों में झूठ पाया जाता है और जो सच है सो सबमें एक सा है, ये सब लड़ाइयाँ मूर्खता की हैं॥ २०॥

२१. आनन्द का सन्देशा ईमानदारों को॥ जो अल्लाह फ़रिश्तों, पैग़म्बरों, ज़िबरईल और मिकाईल का शत्रु है अल्लाह भी ऐसे काफ़िरों का शत्रु है॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ९७। ९८॥

समीक्षक—जब मुसलमान कहते हैं कि 'ख़ुदा लाशरीक' है फिर यह फौज की फौज 'शरीक' कहां से कर दी? क्या जो शैतान का शत्रु वह परमेश्वर का भी शत्रु है? क्या वह ख़ुदा की आज्ञा से विरुद्ध नहीं चलता? इससे ख़ुदा पक्षपाती होता है॥ २१॥

२२. और कहो कि क्षमा मांगते हैं हम क्षमा करेंगे तुम्हारे पाप और निश्चय भलाई करने वालों के॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ८५॥

समीक्षक—भला, यह खुदा का उपदेश सबको पापी बनानेवाला है वा नहीं? क्योंकि जब पाप क्षमा होने का आश्रय मनुष्यों को मिलता है तभी पापों से कोई भी नहीं डरता, इसलिए ऐसा कहनेवाला ख़ुदा और यह ख़ुदा का बनाया हुआ पुस्तक नहीं हो सकता। क्योंकि वह न्यायकारी है, अन्याय कभी नहीं करता और पाप क्षमा करने में अन्यायकारी हो ही जाता है; किन्तु यथापराध दण्ड ही देने में न्यायकारी हो सकता है॥ १५॥

२३. जब मूसा ने अपनी कौम के लिए पानी माँगा हमने कहा कि

अपना असा पत्थर पर मार। उसमें से बारह चश्मे बह निकले॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ६०॥

समीक्षक—अब देखिये! इन गपोड़ों के तुल्य दूसरा कोई होगा? भला! एक पत्थर की शिला में डंडा मारने से बारह झरने निकालना सर्वथा असम्भव है। जो उस पत्थर को भीतर से पोला कर, उसमें पानी भर, बारह छिद्र करने से सम्भव है, अन्यथा नहीं॥ १६॥

२४. और अल्लाह ख़ास करता है जिसको चाहता है दया करता है॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० १०५॥

समीक्षक—क्या जो मुख्य करने योग्य न हो, न दया करने योग्य हो, उसको भी प्रधान और उस पर दया करता है? जो ऐसा है तो ख़ुदा बड़ा गड़बड़िया है क्योंकि फिर अच्छा काम कौन करे? और बुरे कर्म को कौन छोड़ेगा? क्योंकि ख़ुदा की प्रसन्नता पर सब बातें निर्भर करती हैं, कर्मफल पर नहीं। इससे सबको अनास्था होकर धर्मोच्छेदप्रसङ्ग होगा॥ २४॥

२५. ऐसा न हो कि काफ़िर लोग ईर्ष्या करके तुमको ईमान से फेर देवें, क्योंकि उनमें से ईमानवालों के बहुत से दोस्त हैं॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० १०९॥

समीक्षक—अब देखिये! ख़ुदा ही उनको चिताता है कि तुम्हारे ईमान को काफ़िर लोग न डिगा देवें। क्या वह सर्वज्ञ नहीं है? ऐसी बातें ख़ुदा की नहीं हो सकती हैं॥ २५॥

२६. तुम जिधर मुँह करो, उधर ही मुँह अल्लाह का है॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० ११६॥

समीक्षक—जो यह बात सच्ची है तो मुसलमान 'क़िबले' की ओर मुंह क्यों करते हैं? जो कहें हमको किबले की ओर मुंह फेरने का हुक्म है, तो यह भी हुक्म है कि चाहे जिधर की ओर मुख करो, क्या एक बात सच्ची और दूसरी झूठी होगी? और जो अल्लाह का मुख है, तो वह सब ओर हो ही नहीं सकता, क्योंकि एक मुख एक ओर रहेगा, सब ओर क्योंकर रह सकेगा? इसलिए यह संगत नहीं॥ २६॥

२७. वो आसमान और भूमि का उत्पन्न करने वाला है, जब वो

कुछ करना चाहता है यह नहीं कि उसको करना पड़ता है किन्तु उसे कहता है कि हो जा! बस हो जाता है॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० ११७॥

समीक्षक—भला ख़ुदा ने हुक्म दिया कि होजा, तो हुक्म किसने सुना? और किसको सुनाया? और कौन बन गया? किस कारण से बनाया? जब यह लिखते हैं कि सृष्टि के पूर्व सिवाय ख़ुदा के कोई भी दूसरा वस्तु न था, तो यह संसार कहां से आया? विना कारण के कोई भी कार्य्य नहीं होता, तो इतना बड़ा जगत् कारण के विना कहां से हुआ? यह बात केवल लड़केपन की है।

पूर्वपक्षी—ख़ुदा की इच्छा से।

उत्तरपक्षी—क्या तुम्हारी इच्छा से एक मक्खी की टांग भी बन जा सकती है? जो कहते हो कि ख़ुदा की इच्छा से यह सब कुछ जगत् बन गया।

पूर्वपक्षी—ख़ुदा सर्वशक्तिमान् है इसलिए जो चाहे सो कर लेता है।

उत्तरपक्षी—सर्वशक्तिमान् शब्द का क्या अर्थ है?

पूर्वपक्षी—जो चाहे सो कर सके।

उत्तरपक्षी—क्या ख़ुदा दूसरा ख़ुदा भी बना सकता, अपने आप मर सकता, मूर्ख, रोगी और अज्ञानी भी बन सकता है?

पूर्वपक्षी—ऐसा कभी नहीं बन सकता।

उत्तरपक्षी—इसलिए परमेश्वर अपने और दूसरों के गुण, कर्म स्वभाव के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता। जैसे संसार में किसी वस्तु के बनने बनाने में तीन पदार्थ प्रथम अवश्य होते हैं—एक बनाने वाला जैसा कुम्हार, दूसरी घड़ा बनने वाली मिट्टी और तीसरा उनके साधन जिससे घड़ा बनाया जाता है। जैसे कुम्हार, मिट्टी और साधन से घड़ा बनता है और बनने वाले घड़े के पूर्व कुम्हार, मिट्टी और साधन होते हैं, वैसे ही जगत् के बनने से पूर्व परमेश्वर, जगत् का कारण प्रकृति और उनके गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं इसलिए यह क़ुरान की बात सर्वथा मिथ्या है॥ २७॥

२८. जब हमने लोगों के लिए काबे को पवित्र स्थान सुख देने वाला उपद्रव रहित बनाया, तुम नमाज़ के लिए इबराहीम के स्थान को पकड़ो॥ —मं० १। सि० १। सू० २। आ० १२५॥

समीक्षक—क्या क़िबले के पहले पवित्र स्थान ख़ुदा ने कोई भी बनाया था वा नहीं? जो बनाया था तो किबले के बनाने की कुछ आवश्यकता नहीं, जो नहीं बनाया था, तो बिचारे पूर्वोत्पन्नों को पवित्र स्थान के विना ही रक्खा था। जब कुरान बनाई थी, तब ईश्वर को पवित्र स्थान बनाने का स्मरण न हुआ होगा॥ २८॥

२९. वो कौन मनुष्य है जो इबराहीम के दीन से फिर जावे परन्तु जिसने अपनी जान को मूर्ख बनाया और निश्चय हमने दुनियां में उसी को पसन्द किया। और निश्चय आख़रत में वो ही नेक हैं॥

—मं० १। सि० १। सू० २। आ० १३०॥

समीक्षक—क्या मुसलमान लोग इबराहीम के मजहब से बहुत नहीं फिर गये हैं? क्या यह खुदा की बात है कि जो उसको मूर्ख प्रसन्न होंवें, विद्वान् नहीं? यह बात अविद्वत्ता की है अर्थात् जब इस पुस्तक के बनाने वाले ने समझा कि मैं अविद्वान् हूं और विद्वान् लोग मेरी बात को काटेंगे, मैं उत्तर न दे सकूंगा, इसलिए धर्मविषय में मूर्ख के समान होकर जो कुछ अण्ड-बण्ड कहै, सब कुछ मान लेना चाहिए। जो ऐसा न करता तो लोग उसके मजहब में न आते, आ के न स्थिर रहते और न उसका प्रयोजन सिद्ध होता। हां! यह तो ठीक है कि जो धर्मात्मा है, वही ईश्वर को प्रिय होता है, अधर्मी नहीं॥ २९॥

३०. निश्चय हम तेरे मुख को आसमान में फिरता देखते हैं अवश्य हम तुझे उस क़िबले को फेरेंगे कि पसन्द करे उसको, बस अपना मुख मस्जिदुल्हराम की ओर फेर, जहां कहीं तुम हो अपना मुख उसकी ओर फेर लो॥ —मं० १। सि० २। सू० २। आ० १४४॥

समीक्षक—क्या यह छोटी बुतपरस्ती है? नहीं, किन्तु बड़ी।

प्रश्न—हम मुसलमान लोग बुतपरस्त नहीं हैं किन्तु बुतिशकन अर्थात् बुतों के तोड़नेहारे हैं, क्योंकि हम क़िबले को ख़ुदा नहीं समझते।

उत्तर—तो क्या जिन को तुम बुतपरस्त समझते हो, वे भी उस-

उस मूर्त्ति को ईश्वर नहीं समझते? किन्तु उसके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं। यदि बुतों के तोड़नेहारे हो तो उस मस्जिद क़िबले बड़े बुत को क्यों न तोड़ा?

प्रश्न—वाह जी! हमारा तो क़िबले की ओर मुख फेरने का क़ुरान में हुक्म है और इनको वेद में हुक्म नहीं है फिर वे बुतपरस्त क्यों नहीं? और हम क्यों? क्योंकि हम को ख़ुदा का हुक्म बजाना अवश्य है।

उत्तर—जैसे तुम्हारे लिये क़ुरान में हुक्म है वैसे इनके लिये पुराण में आज्ञा है। जैसे तुम क़ुरान को ख़ुदा का कलाम समझते हो वैसे पुराणी भी पुराणों को ख़ुदा के अवतार व्यासजी का वचन समझते हैं। तुम में और इन में बुतपरस्ती का कुछ भिन्न भाव नहीं है प्रत्युत तुम बड़े बुतपरस्त और ये छोटे हैं। क्योंकि जब तक कोई मनुष्य अपने घर में से प्रविष्ट हुई बिल्ली को निकालने लगे, तब तक उसके घर में ऊंट प्रविष्ट हो जाय, वैसे ही मुहम्मद साहेब ने छोटे बुत को मुसलमानों के मन से निकाला, परन्तु बड़ा बुत जो कि पहाड़ के सदृश मक्के की मस्जिद है, वह सब मुसलमानों के मन में प्रविष्ट करा दिई, क्या यह छोटी बुतपरस्ती है? हां, जो हम लोग वैदिक हैं वैसे ही तुम भी वैदिक हो जाओ, तो बुतपरस्ती आदि बुराइयों से बच सको, अन्यथा नहीं। तुमको 'जब तक अपनी बड़ी बुतपरस्ती को न निकाल देओ तब तक' दूसरे छोटे बुतपरस्तों के खण्डन से लज्जित होके, निवृत्त रहना चाहिये और अपने को बुतपरस्ती से पृथक् करके पवित्र करना चाहिये॥ ३०॥

३१. जो लोग अल्लाह के मार्ग में मारे जाते हैं उनके लिए यह मत कहो कि ये मृतक हैं किन्तु वे जीवित हैं॥

—मं० १। सि० २। सू० २। आ० १५४॥

समीक्षक—भला ईश्वर के मार्ग में मरने मारने की क्या आवश्यकता है? यह क्यों नहीं कहते हो कि यह बात अपने मतलब सिद्ध करने के लिये है कि यह लोभ देंगे तो लोग खूब लड़ेंगे, अपना विजय होगा, मरने से न डरेंगे, लूट मार करने से ऐश्वर्य प्राप्त होगा, पश्चात् विषयानन्द करेंगे इत्यादि स्वप्रयोजन के लिये यह विपरीत व्यवहार किया है॥ ३१॥

३२. इन* लोगों पर इनके मालिक की ओर से दया और दरुद हैं और ये ही मार्ग पाने वाले हैं। —मं० १। सि० २। सू० २। आ० १५३॥

समीक्षक—अब देखिये! यह काम भी एक प्रकार की बुतपरस्ती है। भला! मुर्दों पर आयतें पढ़ने से क्या होता है? क्योंकि उसका जीवात्मा तो पहले ही चला गया, पुन: पाठ कौन सुनेगा? इसलिये यह व्यर्थ कर्म है। इत्यादि से यह ईश्वरकृत वा विद्वत्कृत भी नहीं है॥ ३२॥

३३. जो लोग छिपाते हैं उसको जो कि हमने प्रमाणों और शिक्षा से उतारा। उसके बीच में जो कुछ है अल्लाह की और धिक् देने वालों की धिक्कार है। परन्तु जिन्होंने तोबा: और भलाई करी, उनके ऊपर फिर दया करता हूं और करूंगा। जो लोग काफिर हुए, फिर मर गये, और काफिर ही रहे, उन पर खुदा फरिश्तों और सब आदमियों पर धिक्कार है। सदैव उसी में रहेंगे। उनसे पाप हलका न किया जायगा और न वे ढील दिये जायेंगे। तुम्हारा एक ही मालिक है और कोई नहीं। वह क्षमा करने वाला दयालु है॥

—मं० १। सि० २। आ० १५५। १५६। १५७॥

समीक्षक—यह बात जो कि पहले पैगम्बरों के सामने जैसा कि इबराहीम साहेब के सामने खतन: आदि के नियम बांधे थे, उनको जो नहीं करते और शहर मक्के में सफा और मुरब्ब: दो पहाड़ हैं, अरब के लोग इबाराहीम के समय से सदैव हज करते रहे, परन्तु मुसलमानों ने किसी कारण से छोड़ दी थी, उस पर यह आयत उतरी, उन्हीं को धिक्कार दिया जाता है और जो मुसलमान तोबा: करले तो माफ हो जाय, परन्तु जो काफिर अर्थात् मुसलमान के मजहब में नहीं हैं, उन पर ख़ुदा बड़ा खार खाता है। भला! ऐसी बातें कभी ख़ुदा की हो सकती हैं? और जो पक्षपाती है, वह ईश्वर कभी नहीं हो सकता। क्या मुसलमानों पर क्षमा करने वाला दयालु है, अन्य पर दयाकर्त्ता दयाहीन कहा जावे? इसी से न यह ईश्वरकृत पुस्तक और न इसमें कहा हुआ

* यह वाक्य आशीर्वाद में नहीं समझा जाता है। इसका प्रचार मुसलमानों ही में है। कबरवासियों पर पढ़ते हैं, दरुद और फात:॥

ईश्वर हो सकता है॥ ३३॥

३४. और यह कि अल्लाह कठोर दु:ख देने वाला है।। शैतान का पक्ष मत करो निश्चय वो तुम्हारा प्रत्यक्ष शत्रु है।। उसके विना और कोई नहीं जो बुराई और निर्लज्जता की आज्ञा दे तुम कहो अल्लाह पर जो नहीं जानते॥　　—मं० १ सि० २। सू० २। आ० १६५। १६८। १६९॥

समीक्षक—क्या कठोर दु:ख देने वाला दयालु ख़ुदा सब पापियों पुण्यात्माओं के ऊपर है अथवा मुसलमानों पर दयालु और अन्य पर दयाहीन है? जो ऐसा है, तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। और पक्षपाती नहीं है तो जो मनुष्य जहां कहीं धर्म करेगा, उस पर ईश्वर दयालु और जो अधर्म करेगा, उस पर दण्डदाता होगा, तो फिर बीच में मुहम्मद साहेब और क़ुरान को मानना आवश्यक न रहा। और जो सब को बुराई कराने वाला मनुष्यमात्र का शत्रु शैतान है, उसको खुदा ने उत्पन्न ही क्यों किया? क्या वह भविष्यत् की बात नहीं जानता था? जो कहो कि जानता था, परन्तु परीक्षा के लिये बनाया, तो भी नहीं बन सकता, क्योंकि परीक्षा करना अल्पज्ञ का काम है, सर्वज्ञ तो सब जीवों के अच्छे बुरे कर्मों को सदा से ठीक-ठीक जानता है। और शैतान सब को बहकाता है, तो शैतान को किसने बहकाया? जो कहो कि शैतान आप से आप बहका, तो अन्य भी आप से आप बहकेंगे, बीच में शैतान का क्या काम? और जो ख़ुदा ही ने शैतान को बहकाया, तो ख़ुदा शैतान का भी शैतान ठहरेगा। ऐसी बात ईश्वर की नहीं हो सकती। और जो कोई बहकता है, वह कुसंग तथा अविद्या से भ्रमित होता है॥ ३४॥

३५. तुम को पर मुर्दार, लोहू और गोश्त सूअर का हराम है और अल्लाह के विना जिस पर कुछ पुकारा जावे॥

—मं० १। सि० २। सू० २। आ० १७३॥

समीक्षक—यहां विचारना चाहिये कि मुर्दा चाहे आप से आप मरे वा किसी के मारने से, दोनों बराबर हैं, हां इनमें कुछ भेद भी है तथापि मृतकपन में कुछ भेद नहीं। जो लोहू हराम है, तो मरे पीछे लोहू शरीर ही में जम कर मांस हो जाता है, फिर मांस खाना मुसलमानों के लिये सर्वथा हराम रहा और जब एक सूअर का निषेध किया, तो क्या मनुष्य का मांस

खाना उचित है? क्या यह बात अच्छी हो सकती है कि परमेश्वर के नाम पर पशु आदि को अत्यन्त दु:ख दे के प्राणहत्या करनी? इससे ईश्वर का नाम कलंकित हो जाता है। हां ईश्वर ने विना पूर्वजन्म के अपराध के मुसलमानों के हाथ से दारुण दु:ख क्यों दिलाया? क्या उन पर दयालु नहीं हैं? उनको पुत्रवत् नहीं मानता? जिस वस्तु से अधिक उपकार होवे, उन गाय आदि के मारने का निषेध न करना, जानो हत्या कराकर खुदा जगत् का हानिकारक, हिंसारूप पाप से कलंकित भी हो जाता है। ऐसी बातें खुदा और खुदा की पुस्तक की कभी नहीं हो सकतीं॥ ३५॥

३६. रोज़े की रात तुम्हारे लिये हलाल की गई कि मदनोत्सव करना अपनी बीबियों से, वे तुम्हारे वास्ते पर्दा हैं और तुम उनके लिये पर्दा हो, अल्लाह ने जाना कि तुम चोरी करते हो अर्थात् व्यभिचार बस फिर अल्लाह ने क्षमा किया तुम को, बस उनसे मिलो और ढूंढो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिये लिख दिया है अर्थात् सन्तान, खाओ पीयो यहां तक कि प्रकट हो तुम्हारे लिये काले तागे से सुफेद तागा वा रात से जब दिन निकले॥　　—मं० १। सि० २। सू० २। आ० १८७॥

समीक्षक—यहाँ यह निश्चित होता है कि जब मुसलमानों का मत चला वा उसके पहिले किसी ने पौराणिक को पूछा होगा कि चान्द्रायण व्रत जो एक महीने भर का होता है उसका विधि क्या? वह शास्त्रविधि जो कि चन्द्र की कला घटने बढ़ने के अनुसार ग्रासों को घटाना बढ़ाना और मध्याह्न दिन में खाना लिखा है उसको न जान कर कहा होगा कि चन्द्रमा का दर्शन करके खाना, उसको इन मुसलमान लोगों ने इस प्रकार का कर लिया। परन्तु व्रत में स्त्री समागम का त्याग है वह एक बात खुदा ने बढ़ कर कह दी कि तुम स्त्रियों का भी समागम भले ही किया करो और रात में चाहें अनेक वार खाओ। भला यह व्रत क्या हुआ? दिन में न खाया, रात को खाते रहे, परन्तु यह सृष्टिक्रम से विपरीत है कि दिन में न खाना और रात में खाना॥ ३६॥

३७. अल्लाह के मार्ग में लड़ो उन से जो तुम से लड़ते हैं। मार डालो तुम उनको जहां पाओ, क़तल से कुफ्र बुरा है। यहां तक उन से लड़ो कि कुफ्र न रहे और होवे दीन अल्लाह का॥ उन्होंने जितनी

ज़ियादती करी. उतनी ही उन के साथ करो॥

—मं० १। सि० २। सू० २। आ० १९०।१९१।१९३।१९४॥

समीक्षक—जो क़ुरान में ऐसी बातें न होती, तो मुसलमान लोग इतना बड़ा अपराध जो कि अन्य मत वालों पर किया है न करते, और विना अपराधियों को मारना उन पर बड़ा पाप है। जो मुसलमान के मत का ग्रहण न करे, उसको कुफ्र कहते हैं अर्थात् कुफ्र से क़तल को मुसलमान लोग अच्छा मानते हैं। अर्थात् जो हमारे दीन को न मानेगा उसको हम क़तल करेंगे सो करते ही आये, मज़हब पर लड़ते-लड़ते आप ही राज्य आदि से नष्ट हो गये और उनका मन अन्य मत वालों पर अति कठोर रहता है। क्या चोरी का बदला चोरी है? कि जितना हमारा अपराध चोर आदि चोरी करें क्या हम भी चोरी करें? यह सर्वथा अन्याय की बात है। क्या कोई अज्ञानी हमको गालियां दे, क्या हम भी उसको गाली देवें? यह बात न ईश्वर, न ईश्वर के भक्त विद्वान् की और न ईश्वरोक्त पुस्तक की हो सकती है। यह तो केवल स्वार्थी अज्ञानी मनुष्य की है॥ ३७॥

३८. अल्लाह झगड़ा करने वालों को मित्र नहीं करता॥ ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो इसलाम में प्रवेश करो॥

—मं० १। सि० २। सू० २। आ० २०५।२०८॥

समीक्षक—जो झगड़ा को ख़ुदा मित्र नहीं समझता तो क्यों आप ही मुसलमानों को झगड़ा करने में प्रेरणा करता? और झगड़ालू मुसलमानों से मित्रता क्यों करता है? क्या मुसलमान के मत में मिलने ही में ख़ुदा राज़ी है? तो वह मुसलमानों ही का पक्षपाती है सब संसार का ईश्वर नहीं। इससे यहां यह विदित होता है कि न क़ुरान ईश्वरकृत और इसमें कहा हुआ ईश्वर भी नहीं हो सकता है॥ ३८॥

३९. ख़ुदा जिसको चाहे अनन्त आनन्द देवे॥

—मं० १। सि० २। सू० २। आ० २१२॥

समीक्षक—क्या विना पाप पुण्य के ख़ुदा ऐसे ही आनन्द देता है? फिर भलाई बुराई का करना एक सा ही हुआ, क्योंकि सुख दु:ख प्राप्त होना उसकी इच्छा पर है। इससे धर्म से विमुख होकर मुसलमान

लोग यथेष्टाचार करते हैं और कोई-कोई इस क़ुरानोक्त पर विश्वास न करके धर्मात्मा भी होते हैं॥ ३९॥

४०. प्रश्न करते हैं तुझ से रजस्वला को कह वो अपवित्र हैं, पृथक् रहो, ऋतु समय में उन के समीप मत जाओ, जब तक कि वे पवित्र न हों, जब नहा लेवें, उन के पास उस स्थान से जाओ ख़ुदा ने आज्ञा दी॥ तुम्हारी बीवियां तुम्हारे लिये खेतियां हैं, बस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेत में॥ तुम को अल्लाह लग़ब (बेकार, व्यर्थ) शपथ के तोड़ने में नहीं पकड़ता॥

—मं० १। सि० २। सू० २। आ० २२२।२२३।२२५॥

समीक्षक—जो यह रजस्वला का स्पर्श, संग न करना लिखा है, वह अच्छी बात है। परन्तु जो यह स्त्रियों को खेती के तुल्य लिखना और जैसा जिस ओर से चाहो उनसे बर्तो यह विषयी और पुंसि मैथुन का भी कारण हो सकता है। जो ख़ुदा बेकार शपथ पर नहीं पकड़ता, तो सब झूठ बोलेंगे शपथ तोड़ेंगे। इससे ख़ुदा झूठ का प्रवर्त्तक होगा॥ ४०॥

४१. वो कौन मनुष्य है जो अल्लाह को उधार देवे, अच्छा बस अल्लाह द्विगुण करे उसके वास्ते॥

—मं० १। सि० २। सू० २। आ० २४५॥

समीक्षक—अब देखिये यह क़ुरान बनाने वा बनवाने वाले की मतलबसिन्धु की बात! कि ईश्वर के नाम से लोगों से धन ठग के स्वप्रयोजन सिद्ध करना चाहता है। क्या ईश्वर उसको धन नहीं दे सकता था और क्या उस का ख़जाना खाली हो गया था? तथा क्या वह हुंडी, पुड़िया व्यापारादि में मग्न होने से तोटा में फंस गया था जो उधार* लेने लगा? और एक का दो-दो देना स्वीकार करता है, क्या यह साहूकारों

* इसी आयत के भाष्य में तफ़सीरहुसैनी में लिखा है कि एक मनुष्य मुहम्मद साहब के पास आया। उसने कहा कि ऐ रसूलल्लाह खुदा कर्ज़ क्यों माँगता है? उन्होंने उत्तर दिया कि तुमको बहिश्त में ले जाने के लिए। उसने कहा कि जो आप ज़मानत लें, तो मैं दूँ। मुहम्मद साहेब ने उसकी ज़मानत ले ली। खुदा का भरोसा न हुआ, उसके दूत का हुआ। भला खुदा को कर्ज उधार लने से क्या प्रयोजन? जिसने सारे संसार को बनाया, वह मनुष्य से कर्जा लेता है? कदापि नहीं। ऐसा तो विना समझे कहा जा सकता है।

का काम है? किन्तु ऐसा काम तो दिवालिये वा जिनके ख़र्च अधिक और आय न्यून होने वालों को करना पड़ता है, ईश्वर को नहीं॥ ४१॥

४२. उनमें से कोई ईमान लाया और कोई काफ़िर हुआ जो अल्लाह चाहता न लड़ते, जो चाहता है अल्लाह करता है॥

—मं० १। सि० २। सू० २। आ० २५३॥

समीक्षक—क्या जितनी लड़ाई होती है वह ईश्वर ही की इच्छा से? क्या वह अधर्म करना चाहे, तो कर सकता है? जो ऐसी बात है, तो वह ख़ुदा ही नहीं, क्योंकि भले मनुष्यों का यह कर्म नहीं कि शान्तिभंग करके लड़ाई करावें। इसीसे विदित होता है कि यह क़ुरान न ईश्वर की बनाई और न किसी धार्मिक विद्वान् की रचित है॥ ४२॥

४३. जो कुछ आसमान और पृथिवी पर है सब उसी के लिये है, चाहे उसकी कुरसी में आसमान और पृथिवी को समा लेवे॥

—मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २५५॥

समीक्षक—जो आकाश और भूमि में पदार्थ हैं वे सब जीवों के लिये परमात्मा ने उत्पन्न किये हैं, अपने लिये नहीं, क्योंकि वह पूर्णकाम है, उसको किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं। जब उसकी कुर्सी है, तो वह एकदेशी है। जो एकदेशी होता है, वह ईश्वर नहीं कहाता, क्योंकि ईश्वर तो व्यापक है॥ ४३॥

४४. मेरा मालिक सूर्य्य को पूर्व से लाता है बस तू पश्चिम से ले आ, जो क़ाफिर था हैरान हुआ, निश्चय अल्लाह पापियों को मार्ग नहीं दिखलाता॥ —मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २५८॥

समीक्षक—देखिये यह अविद्या की बात! भला सूर्य्य न पूर्व से पश्चिम और न पश्चिम से पूर्व कभी आता जाता है, वह तो अपनी परिधि में घूमता रहता है। इससे निश्चित जाना जाता है कि क़ुरान के कर्त्ता को खगोल और भूगोल विद्या न आती थी। जो पापियों को मार्ग नहीं बतलाता तो पुण्यात्माओं के लिये भी मुसलमानों के ख़ुदा की आवश्यकता नहीं, क्योंकि धर्मात्मा तो धर्म मार्ग में ही होते हैं, मार्ग तो धर्म से भूले हुए मनुष्यों को बतलाना होता है, सो कर्त्तव्य के न करने से क़ुरान के कर्त्ता की बड़ी भूल है॥ ४४॥

४५. कहा चार जानवरों से ले उनकी सूरत पहिचान रख, फिर हर पहाड़ पर उन में से एक-एक टुकड़ा रख दे, फिर उन को बुला दौड़ते तेरे पास चले आवेंगे॥ —मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २६०॥

समीक्षक—वाह-वाह देखो जी! मुसलमानों का ख़ुदा भानमती के समान खेल कर रहा है! क्या ऐसी ही बातों से ख़ुदा की ख़ुदाई है? तो बुद्धिमान् लोग ऐसे ख़ुदा को तिलाञ्जलि देके दूर रहेंगे और मूर्ख लोग फसेंगे। इससे ख़ुदा की बड़ाई के बदले बुराई उसके पल्ले पड़ेगी॥ ४५॥

४६. जिस को चाहे नीति देता है॥

—मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २६९॥

समीक्षक—जब जिसको चाहता नीति देता है, तो जिसको नहीं चाहता है उसको अनीति देता होगा, यह बात ईश्वरता की नहीं। किन्तु जो पक्षपात छोड़ सब को नीति का उपदेश करता है, वही ईश्वर और आप्त हो सकता है, अन्य नहीं॥ ४६॥

४७. जो लोग ब्याज खाते हैं वे कबरों से नहीं खड़े होंगे॥

—मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २७५॥

समीक्षक—क्या वे कबरों ही में पड़े रहेंगे? और जो पड़े रहेंगे, तो कब तक? ऐसी असम्भव बात ईश्वर के पुस्तक की तो नहीं हो सकती है, किन्तु बालबुद्धियों की तो हो सकती है॥ ४७॥

४८. वह कि जिसको चाहे क्षमा करेगा, जिसको चाहे पापी बनावेगा, क्योंकि वह सब वस्तु पर बलवान् है॥

—मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २८४॥

समीक्षक—क्या क्षमा के योग्य पर क्षमा न करना, अयोग्य पर क्षमा करना गवरगंड राजा के तुल्य यह कर्म नहीं है? यदि ईश्वर जिसको चाहता पापी वा पुण्यात्मा बनाता है तो जीव को पाप पुण्य न लगना चाहिये, क्योंकि जब ईश्वर ही ने उसको वैसा किया तो जीवों को दु:ख-सुख न होना चाहिये। जैसे सेनापति की आज्ञा से किसी भृत्य ने किसी को मारा वा रक्षा की उसका फलभागी वह नहीं होता वैसे वे भी नहीं॥ ४८॥

४९. कह इससे अच्छी और क्या परहेज़गारों को खबर दें कि अल्लाह की ओर से बहिश्तें हैं जिन में नहरें चलती हैं उसी में सदैव रहने वाली शुद्ध अर्थात् गोरी-गोरी बीवियाँ अल्लाह की प्रसन्नता से, अल्लाह उनको देखने वाला है॥ —मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० १४॥

समीक्षक—भला यह स्वर्ग है किंवा वेश्यावन? इसको ईश्वर कहना वा स्त्रैण अर्थात् स्त्रियों में प्रसक्त? कोई भी बुद्धिमान्, ऐसी बातें जिस में हों, उसको परमेश्वर का किया पुस्तक कभी नहीं मान सकते। यह पक्षपात क्यों करता है? जो बीवियां बहिश्त में सदा रहती हैं, वे यहां जन्म पाके वहां गई हैं वा वहीं उत्पन्न हुई हैं। यदि यहां जन्म पाकर वहां गई हैं, क़यामत की रात से पहिले ही वहां बीवियों को बुला ली और उनके खाविन्दों को क्यों न बुला लिये? और क़यामत की रात में सब न्याय होगा, इस नियम को क्यों तोड़ा? यदि वहीं जन्मीं हैं, तो क़यामत तक वे क्योंकर निर्वाह करती हैं? यदि फरिश्तों से निर्वाह करती हैं, तो यहाँ से बहिश्त में जाने वाले मुसलमानों को ख़ुदा बीवियां कहां से देगा? क्या क्षतयोनि ही उनको देगा और जैसे बीवियां बहिश्त में सदा रहनेवाली बनाई, वैसे पुरुषों को वहां सदा रहने वाले क्यों नहीं बनाया? इसलिये मुसलमानों का ख़ुदा अन्यायकारी, बेसमझ है॥ ४९॥

५०. निश्चय अल्लाह की ओर से दीन इसलाम है और नहीं॥

—मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० १८॥

समीक्षक—क्या अल्लाह मुसलमानों ही का है अन्यों का नहीं? क्या तेरह सौ वर्षों से पूर्व ईश्वरीय मत था ही नहीं? इसी से यह क़ुरान ईश्वर का बनाया तो नहीं, किन्तु किसी पक्षपाती का बनाया है॥ ५०॥

५१. प्रत्येक जीव को पूरा दिया जावेगा जो कुछ उसने कमाया और वे न अन्याय किये जावेंगे॥ कह या अल्लाह तू ही मुल्क का मालिक है जिसको चाहे देता है जिससे चाहे छीनता है जिसको चाहे प्रतिष्ठा देता है जिसको चाहे अप्रतिष्ठा देता है, सब कुछ तेरे ही हाथ में है, प्रत्येक वस्तु पर तू ही बलवान् है॥ रात को दिन में और दिन को रात में पैठाता है और मृतक को जीवित से जीवित को मृतक से निकालता है और जिसको चाहे अत्यन्त अन्न देता है॥ मुसलमानों को उचित है कि काफिरों को मित्र न बनावें सिवाय मुसलमानों के, जो कोई यह करे, बस वह अल्लाह की ओर से नहीं॥ कह जो तुम चाहते हो अल्लाह को, तो पक्ष करो मेरा, अल्लाह चाहेगा तुमको और तुम्हारे पाप क्षमा करेगा, निश्चय करुणामय है॥

—मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० २४। २५। २६। २७। ३०॥

समीक्षक—जब प्रत्येक जीव को कर्मों का पूरा-पूरा फल दिया जावेगा तो क्षमा न किया जायगा, और जो क्षमा किया जायगा तो पूरा फल न दिया जायगा और अन्याय होगा। जब विना उत्तम कर्मों के राज्य प्रतिष्ठा देगा, तो भी ईश्वर अन्यायी हो जायगा और विना पाप के राज्य और प्रतिष्ठा छीन लेगा, तो भी अन्याकारी हो जायगा। भला! रात में दिन, दिन में रात और जीवित से मृतक और मृतक से जीवित कभी हो सकता है? क्योंकि ईश्वर की व्यवस्था अछेद्य अभेद्य है, कभी अदल-बदल नहीं हो सकती। अब देखिये। पक्षपात की बातें! कि जो मुसलमान के मज़हब में नहीं हैं उनको काफिर ठहराना, उनमें श्रेष्ठों से भी मित्रता न रखने और मुसलमानों में दुष्टों से भी मित्रता रखने के उपदेश करना ईश्वर को ईश्वरता से बहिः कर देता है। इससे यह क़ुरान, क़ुरान का ख़ुदा और मुसलमान लोग केवल पक्षपात, अविद्या के भरे हुए हैं। इसलिये मुसलमान लोग अन्धेरे में हैं। और देखिये मुहम्मद साहेब की लीला! कि जो तुम मेरा पक्ष करोगे तो ख़ुदा तुम्हारा पक्ष करेगा और जो तुम पक्षपातरूप पाप करोगे उसकी क्षमा भी करेगा। इससे सिद्ध होता है कि मुहम्मद साहेब का अन्तःकरण शुद्ध नहीं था। इसीलिये अपने मतलब सिद्ध करने के लिये मुहम्मद साहेब ने क़ुरान बनाया वा बनवाया ऐसा विदित होता है॥ ५१॥

५२. जिस समय कहा फरिश्तों ने कि ऐ मर्य्यम तुझ को अल्लाह ने पसन्द किया और पवित्र किया ऊपर जगत् की स्त्रियों के॥

—मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० ४१॥

समीक्षक—भला! जब आजकल ख़ुदा के फ़रिश्ते और ख़ुदा किसी से बातें करने को नहीं आते, तो प्रथम भी नहीं आया होगा। जो कहो कि पहिले के मनुष्य पुण्यात्मा थे, अब के नहीं, तो यह बात

मिथ्या है। किन्तु जिस समय ईसाई और मुसलमानों का मत चला था, उस समय उन देशों में जङ्गली और विद्याहीन मनुष्य अधिक थे, इसीलिये ऐसे विद्याविरुद्ध मत चल गये। अब विद्वान् अधिक हैं, इसलिये नहीं चल सकता। किन्तु जो-जो ऐसे पोकल मज़हब हैं, वे भी अस्त होते जाते हैं, वृद्धि की तो कथा ही क्या है!॥५२॥

५३. उसको कहता है कि हो, बस हो जाता है॥ काफ़िरों ने धोखा दिया, ईश्वर ने धोखा दिया, ईश्वर बहुत मकर करने वाला है॥

—मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० ४६।५३॥

समीक्षक—जब मुसलमान लोग ख़ुदा के सिवाय दूसरी चीज़ नहीं मानते तो ख़ुदा ने किससे कहा? और उसके कहने से कौन हो गया? इसका उत्तर मुसलमान सात जन्म में भी न दे सकेंगे, क्योंकि विना उपादान कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता। विना कारण के कार्य्य कहना जानो अपने माँ-बाप के विना मेरा शरीर हो गया ऐसी बात है। जो धोखा खाता और मकर अर्थात् छल और दम्भ करता है वह ईश्वर तो कभी नहीं हो सकता, किन्तु उत्तम मनुष्य भी ऐसा काम नहीं करता॥५३॥

५४. मत मरो, परन्तु मुसलमान हो।। क्या तुम को यह बहुत न होगा कि अल्लाह तुम को तीन हज़ार फ़रिश्तों के साथ सहाय देवे॥

—मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० ९३।१२३॥

समीक्षक—देखिये! इससे यह ठीक सिद्ध होता है कि मुसलमान न होगे, तो हम तुमको मार डालेंगे। यह केवल अधर्म की बात है। जो मुसलमानों को तीन हज़ार फ़रिश्तों के साथ सहाय देता था, तो अब मुसलमानों की बादशाही बहुत सी नष्ट हो गई और होती जाती है क्यों सहाय नहीं देता? इसलिये यह केवल लोभ देके मूर्खों को फसाने के लिये महा अन्याय की बात है॥५४॥

५५. और काफ़िरों पर हम को सहाय कर॥ अल्लाह तुम्हारा सहायक और कारसाज है॥ जो तुम अल्लाह के मार्ग में मारे जाओ वा मर जाओ, अल्लाह की दया बहुत अच्छी है॥

—मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १४६।१४९।१५६॥

समीक्षक—देखिये मुसलमानों की मूर्खता! कि जो अपने मत से भिन्न हैं उनके मारने के लिये ख़ुदा की प्रार्थना करते हैं। क्या परमेश्वर भोला है जो इनकी बात मान लेवे? यदि मुसलमानों का कारसाज़ अल्लाह ही है, तो फिर मुसलमानों के कार्य्य नष्ट क्यों होते हैं? और ख़ुदा भी मुसलमानों के साथ मोह से फसा हुआ दीख पड़ता है। जो ऐसा पक्षपाती ख़ुदा है, तो धर्मात्मा पुरुषों का उपासनीय कभी नहीं हो सकता॥५५॥

५६. यह लड़ाई इसलिये कि अल्लाह तुम्हारी परीक्षा लेवे।

—मं० १। सि० ४। सू० ३। आ०॥

समीक्षक—जो लड़ाई के विना परीक्षा नहीं कर सकता, तो वह सर्वज्ञ नहीं। इससे वह ईश्वर क्योंकर हो सके॥५६॥

५७. और अल्लाह तुम को सर्वज्ञ नहीं करता परन्तु अपने पैग़म्बरों में से जिसको चाहे पसन्द करे, बस अल्लाह और उसके रसूल के साथ ईमान लाओ॥ —मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १७९॥

समीक्षक—क्या किसी पैग़म्बर को ख़ुदा अपने सदृश कर सकता है? जो कर सकता है, तो दूसरा ख़ुदा शरीकख़ुदा हुआ। जो नहीं कर सकता तो इस आयत के झूंठ होने से ख़ुदा झूंठ बोला। जिसकी बात झूंठ हो, वह स्वयं झूंठा हुआ। जब मुसलमान लोग सिवाय ख़ुदा के न किसी के साथ ईमान लाते, न किसी को ख़ुदा का साझी मानते हैं तो ईमान में ख़ुदा के साथ पैग़म्बर साहेब को शरीक क्यों किया? अल्लाह ने पैगम्बर के साथ ईमान लाना लिखा, इसी से पैग़म्बर भी शरीक हो गया, पुनः लाशरीक कहना झूंठा हुआ॥५७॥

५८. ऐ ईमानवालो! परस्पर थामे रक्खो और लड़ाई में लगे रहो, अल्लाह से डरो कि तुम छुटकारा पाओ॥

—मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० २००॥

समीक्षक—यह क़ुरान का ख़ुदा और पैग़म्बर दोनों लड़ाईबाज़ थे। जो लड़ाई की आज्ञा देता है वह शान्तिभंग करनेवाला होता है। क्या नाम मात्र ख़ुदा से डरने से छुटकारा पाया जाता है? वा अधर्मयुक्त लड़ाई आदि से डरने से? जो प्रथम पक्ष है तो डरना, न डरना बराबर,

और जो द्वितीय पक्ष है, तो ठीक है॥ ५८॥

५९. यह अल्लाह की हद्दें हैं, जो अल्लाह और उसके रसूल का कहा मानेगा वह बहिश्त में पहुँचेगा जिनमें नहरें चलती हैं और यही बड़ा प्रयोजन है॥ जो अल्लाह की और उसके रसूल की आज्ञा भंग करेगा और उसकी हद्दों से बाहर हो जायगा वो दोज़ख़ की आग में जलाया जावेगा और उसके लिये ख़राब करने वाला काफ़िर है॥

—मं० १। सि० ४। सू० ४। आ० १३।१४॥

समीक्षक—जब ख़ुदा ही ने मुहम्मद साहेब पैग़म्बर को अपना शरीक कर लिया है और खुद क़ुरान ही में लिखा है तो मुसलमानों का लाशरीक ख़ुदा को कहना व्यर्थ है। और देखो! ख़ुदा पैग़म्बर साहेब के साथ कैसा फंसा है कि जिसने बहिश्त में रसूल का साझा कर दिया है। इस एक बात में भी स्वतन्त्र न रहा। ऐसी-ऐसी बातें ईश्वरोक्त पुस्तक में नहीं हो सकतीं॥ ५९॥

६०. और एक परमाणु की बराबर भी वह अन्याय नहीं करता और जो भलाई होवे उसको दुगुणा करे॥ इच्छा करो अपने हाथ मुख से पूछलो निश्चय अल्लाह क्षमा करने वाला है॥

—मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ४०।५६॥

समीक्षक—जो एक अणु भी अन्याय ख़ुदा नहीं करता तो पुण्य को दुगुणा क्यों देता और मुसलमान का पक्षपात क्यों करता, जीव को आप ही पापी क्यों बनाता, फिर दुःख क्यों देता है? क्योंकि अधिक न्यून करने से अधिष्ठाता को भलाई-बुराई का फल मिलता है, आधीन को नहीं। जैसे सेना की लड़ाई में राजा को जय-पराजय रूप फल होता है, भृत्यों को नहीं। वैसे द्विगुण वा न्यून फल कर्मों का देवे तो ख़ुदा अधर्मी हो जावे॥ ६०॥

६१. अवश्य बहिश्त में भेजेंगे, जिनमें नहरें चलती हैं और उनके लिये पवित्र बीबियां हैं तथा सायेदार वृक्ष हैं, उसमें सदा रहेंगे॥

—मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ५७॥

समीक्षक—यह केवल अज्ञानियों को लोभ देकर मुहम्मद साहब ने फसाये हैं और आप भी स्त्रियों में आसक्त होंगे, नहीं तो ऐसी बातें

क्यों कहते?॥ ६१॥

६२. बस उनको चाहिये ख़ुदा के मार्ग में लड़ें।। जो लोग ईमान लाये ख़ुदा के मार्ग में लड़ते हैं, जो काफिर हैं वे बुतों के मार्ग में लड़ते हैं। बस शैतान के मित्रों से लड़ो, निश्चय उसका धोखा निर्बल है, जो उनको भलाई पहुंचती है, तो कहते हैं कि यह अल्लाह की ओर से है और बुराई को तेरी ओर से बतलाते हैं, कह सब अल्लाह की ओर से है॥

—मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ७५।७७॥

समीक्षक—भला! ईश्वर के मार्ग में लड़ाई का क्या काम? और जो बुतपरस्त काफिर हैं, तो मुसलमान बड़े बुतपरस्त होने से बड़े काफिर होते हैं। क्योंकि ये बुत्परस्त लोग छोटी-छोटी मूर्तियों के सम्मुख नमते और भक्ति करते हैं। वैसे ही मुसलमान लोग मक्का की जो एक बड़ी मस्जिद है, उसके सामने नमते हैं। जो कहें कि हम मस्जिद को ख़ुदा नहीं समझते और क़ुरान की आज्ञा है, इससे उधर को मुखमात्र करके ख़ुदा की बन्दगी करते हैं, अच्छा तो ये लोग भी पत्थर को ईश्वर नहीं समझते, किन्तु पत्थर में ईश्वर की भावना करके भक्ति करते हैं और इनको भी पुराण में वैसी आज्ञा व्यासजी जिनको लोग ईश्वरावतार मानते हैं उनकी है, कि तुम मूर्त्ति पूजो।

इसलिये बड़ी मस्जिद को ईश्वर की भक्ति में सामने रखने वाले मुसलमान बड़े बुत्परस्त और ये लोग छोटे बुतपरस्त हैं। जैसे कोई मनुष्य अपने घर में से बिल्ली को जब लों निकाले, तब लों उसके घर में ऊंट प्रविष्ट हो जाय, वैसी ही दशा मुहम्मद साहेब आदि मुसलमानों की है। क्योंकि बिल्ली के समान छोटी-छोटी पाषाणादि की मूर्त्तियों को तो फोड़-तोड़ के अपने घर में से निकाल दी, परन्तु ऊंट के समान मस्जिद हृदयरूपी घर में प्रविष्ट हो गई। इससे मुसलमान लोग बड़ी हानि को प्राप्त हो गये। जब ये बड़े बुतपरस्त हैं तो किस मुख से दूसरे छोटे बुतपरस्तों का खण्डन कर सकते हैं। हां! पहिले आप बुतपरस्ती को छोड़ें, तो अन्य का खण्डन कर सकें॥ ६२॥

६३. जब तेरे पास से निकलते हैं तो तेरे विरुद्ध सोचते हैं, अल्लाह उनकी बात को लिखता है।। अल्लाह ने उनकी कमाई वस्तु के कारण

से उनको उलटा किया, क्या तुम चाहते हो कि अल्लाह गुमराह किये हुये को मार्ग पर लावे, बस जिसको वह गुमराह करे उसको कदाचिदपि मार्ग न पावेगा॥ —मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ८०।८७॥

समीक्षक—जो अल्लाह बातों को लिख बहीखाता बनाता जाता है, तो सर्वज्ञ नहीं। और जो सर्वज्ञ है तो लिखने का क्या काम? और जो मुसलमान कहते हैं कि शैतान ही सब को बहकाने से दुष्ट हुआ है तो जब ख़ुदा ही जीवों को गुमराह करता है, तो ख़ुदा और शैतान में क्या भेद रहा? हां, इतना भेद कह सकते हैं कि ख़ुदा बड़ा शैतान, वह फरिश्ता छोटा शैतान, क्योंकि मुलसमानों का यही क़ौल है कि जो बहकाता है वही शैतान है, तो इस प्रतिज्ञा से ख़ुदा को भी शैतान बना दिया॥ ६३ ॥

६४. और अपने हाथों को न रोकें, तो उनको पकड़ लो और जहाँ पाओ मार डालो॥ मुसलमानों को मुसलमान का मारना योग्य नहीं, जो कोई अनजान से मार डाले बस एक गर्दन मुसलमान का छोड़ना है और खून बहा उन लोगों की ओर साई हुई जो उस क़ौम से होवें, तुम्हारे लिए दान कर देंगे, जो दुश्मन की क़ौम से हैं। और जो कोई मुसलमान को जान कर मार डाले वह सदैव काल दोज़ख़ में रहेगा उस पर अल्लाह का क्रोध और लानत है॥

—मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ९१।९२।९३॥

समीक्षक—अब देखिये महा पक्षपात की बात! कि जो मुसलमान न हो, जहाँ पाओ मार डालना और मुसलमानों को न मारना। भूल से मुसलमानों के मारने में प्रायश्चित्त और अन्य को मारने से बहिश्त मिलेगा ऐसे उपदेश को कुए में डालना चाहिए। ऐसे-ऐसे पुस्तक, ऐसे पैग़म्बर, ऐसा ख़ुदा और ऐसे मत से सिवाय हानि के लाभ कुछ भी नहीं। ऐसों का न होना अच्छा और ऐसे प्रामादिक मतों से बुद्धिमानों को अलग रह कर वेदोक्त सब बातों को मानना चाहिए क्योंकि उसमें असत्य किञ्चिन्मात्र भी नहीं है। और जो मुसलमान को मारे उसको दोज़ख़ मिले और दूसरे मतवाले कहते हैं कि मुसलमान को मारे तो स्वर्ग मिले, लिखा है। अब कहो इन दोनों मतों में से किसको मानें

किसको छोड़ें? किन्तु ऐसे मूढ़ प्रकल्पित मतों को छोड़ कर वेदोक्त मत स्वीकार करने योग्य सब मनुष्यों के लिये है कि जिसमें आर्य्य मार्ग अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों के मार्ग में चलना और दस्यु अर्थात् दुष्टों के मार्ग से अलग रहना लिखा है सर्वोत्तम है॥ ६४॥

६५. और शिक्षा प्रकट होने के पीछे जिसने रसूल से विरोध किया और मुसलमानों से विरुद्ध पक्ष किया, अवश्य हम उनको दोज़ख़ में भेजेंगे॥ —मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ११५॥

समीक्षक—अब देखिये ख़ुदा और रसूल की पक्षपात की बातें! मुहम्मद साहेब आदि समझते थे कि जो ख़ुदा के नाम से ऐसी हम न लिखेंगे तो अपना मज़हब न बढ़ेगा और पदार्थ न मिलेंगे, आनन्द भोग न होगा। इसी से विदित होता है कि वे अपने मतलब करने में पूरे थे और अन्य के प्रयोजन बिगाड़ने में। इससे ये अनाप्त थे! इनकी बात का प्रमाण आप्त विद्वानों के सामने कभी नहीं हो सकता॥ ६५ ॥

६६. जो अल्लाह रसूलों, फरिश्तों, किताबों के साथ कुफ्र करे निश्चय वह गुमराह है॥ निश्चय जो लोग काफ़िर थे और ईमान लाये पुनः फिर गये और कुफ्र में अधिक बढ़े, अल्लाह उन को कभी क्षमा न करेगा और न मार्ग दिखलावेगा॥

—मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० १३६।१३७॥

समीक्षक—क्या अब भी ख़ुदा लाशरीक रह सकता है? क्या लाशरीक कहते जाना और उसके साथ बहुत से शरीक भी मानते जाना यह परस्पर विरुद्ध बात नहीं है? क्या तीन वार क्षमा के पश्चात् ख़ुदा क्षमा नहीं करता? और तीन वार कुफ्र करने पर रास्ता दिखलाता है? वा चौथी वार से आगे नहीं दिखलाता? यदि चार-चार वार भी कुफ्र सब लोग करें, तो कुफ्र बहुत ही बढ़ जावे॥ ६६ ॥

६७. निश्चय अल्लाह बुरे लोगों को और काफ़िरों को जमा करेगा दोज़ख़ में॥ निश्चय बुरे लोग धोखा देते हैं अल्लाह को और उनको वह धोखा देता है॥ ऐ ईमान वालो! मुसलमानों को छोड़ काफ़िरों को मित्र मत बनाओ॥ —मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० १४०।१४२।१४४॥

समीक्षक—मुसलमानों के बहिश्त और अन्य लोगों के दोज़ख़ में

जाने का क्या प्रमाण? वाह जी वाह! जो बुरे लोगों के धोखे में आता और अन्य को धोखा देता है ऐसा ख़ुदा हम से अलग रहे, किन्तु जो धोखेबाज़ हैं उनसे जाकर मेल करे और वे उससे मेल करें। क्योंकि—

''यादृशी शीतला देवी तादृशः खरवाहनः''

जैसे को तैसा मिले तभी निर्वाह होता है।

जिसका ख़ुदा धोखेबाज़ है उसके उपासक मुसलमान लोग धोखेबाज़ क्यों न हों? तभी तो मुसलमान लोग धोखा देने में तत्पर रहते होंगे। क्या दुष्ट मुसलमान हो उससे मित्रता और अन्य श्रेष्ठ, मुसलमान भिन्न से शत्रुता करना, किसी को उचित हो सकता है?॥ ६७॥

६८. ऐ लोगो! निश्चय तुम्हारे पास सत्य के साथ ख़ुदा की ओर से पैग़म्बर आया, बस तुम उन पर ईमान लाओ॥ अल्लाह माबूद अकेला है॥ —मं० १। सि० ६। सू० ४। आ० १७०। १७१॥

समीक्षक—क्या जब पैग़म्बरों पर ईमान लाना लिखा, तो ईमान में पैग़म्बर ख़ुदा का शरीक अर्थात् साझी हुआ वा नहीं? जब अल्लाह एकदेशी है, व्यापक नहीं, इसी से उसके पास से पैग़म्बर आते जाते हैं, तो वह ईश्वर भी नहीं हो सकता। कहीं सर्वदेशी लिखते हैं, कहीं एकदेशी। इससे विदित होता है कि क़ुरान एक का बनाया नहीं, किन्तु बहुतों ने मिलके बनाया है॥ ६८॥

६९. तुम पर हराम किया गया मुर्दार, लोहू, सूअर का मांस जिस पर अल्लाह के विना कुछ और पढ़ा जावे, गला घोटे, लाठी मारे, ऊपर से गिर पड़े, सींग मारे और गोश्ते खाने वाले॥

—मं० २। सि० ६। सू० ५। आ० ३॥

समीक्षक—क्या इतने ही पदार्थ हराम हैं? अन्य बहुत से पशु तथा तिर्य्यक् जीव कीड़ी आदि मुसलमानों को हलाल होंगे? इसलिये यह मनुष्यों की कल्पना है, ईश्वर की नहीं। इससे इसका प्रमाण भी नहीं॥ ६९॥

७०. और अल्लाह को उधार दो अवश्य मैं तुम्हारी बुराई दूर करूंगा और तुम्हें बहिश्त में भेजूंगा॥

—मं० २। सि० ६। सू० ५। आ० १२॥

समीक्षक—वाह जी! मुसलमानों के ख़ुदा के घर में कुछ भी धन विशेष नहीं रहा होगा, जो विशेष होता तो उधार क्यों मांगता? और उनको क्यों बहकाता कि तुम्हारी बुराई छुड़ा के तुम को स्वर्ग में भेजूंगा? यहां विदित होता है कि ख़ुदा के नाम से मुहम्मद साहेब ने अपना मतलब साधा है॥ ७०॥

७१. जिसको चाहता है पुण्यात्मा बनाता है जिसको चाहे पापात्मा बना देता है।। जो कुछ किसी को भी न दिया वह तुम्हें दिया॥

—मं० २। सि० ६। सू० ५। आ० १८। २०॥

समीक्षक—जैसे शैतान जिसको चाहता पापी बनाता वैसे मुसलमानों का ख़ुदा भी शैतान का काम करता है? जो ऐसा है, तो फिर बहिश्त और दोज़ख़ में ख़ुदा जावे क्योंकि वह पाप पुण्य करने वाला हुआ; जीव पराधीन है। जैसी सेना सेनापति के आधीन रक्षा करती और किसी को मारती है, उसकी भलाई बुराई सेनापति को होती है, सेना पर नहीं॥ ७१॥

७२. काफिरों पर गम मत खा।

—मं० २। सि० ६। सू० ५। आ० २५॥

समीक्षक—क्या अधर्म और पक्षपात की बात है कि जो मुसलमान न हो उस पर गम न खाना और मुसलमानों पर गम खाना केवल अधर्म की बात है॥ ७२॥

७३. सेवा करो अल्लाह की और रसूल की, और रसूल का कहा मानो॥ —मं० २। सि० ७। सू० ५। आ० ९२॥

समीक्षक—देखिये! यह बात ख़ुदा के शरीक होने की है, फिर ख़ुदा को 'लाशरीक' मानना व्यर्थ है॥ ७३॥

७४. अल्लाह ने माफ़ किया जो हो चुका, और जो कोई फिर करेगा अल्लाह उससे बदला लेगा॥

—मं० २। सि० ७। सू० ५। आ० ९५॥

समीक्षक—किये हुए पापों का क्षमा करना जानो पापों को करने की आज्ञा देके बढ़ाना है। पाप क्षमा करने की बात जिस पुस्तक में हो, वह न ईश्वर और न किसी विद्वान् का बनाया है, किन्तु पापवर्द्धक है।

हां, आगामी पाप छुड़वाने के लिये किसी से प्रार्थना और स्वयं छोड़ने के लिये पुरुषार्थ, पश्चात्ताप करना उचित है परन्तु केवल पश्चात्ताप करते रहे, छोड़े नहीं, तो भी कुछ नहीं हो सकता॥ ७४॥

७५. और उस मनुष्य से अधिक पापी कौन है जो अल्लाह पर झूठ बांध लेता है और कहता है कि मेरी ओर वही की गई और जो कहता है कि मैं भी उतारूंगा॥ —मं० २। सि० ७। सू० ६। आ० ९४॥

समीक्षक—इस बात से सिद्ध होता है कि जब मुहम्मद साहेब कहते थे कि मेरे पास ख़ुदा की ओर से आयतें आती हैं तब किसी दूसरे ने भी मुहम्मद साहेब के तुल्य लीला रची होगी कि मेरे पास भी आयतें उतरती हैं, मुझको भी पैगम्बर मानो। इसको हटाने के और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये मुहम्मद साहेब ने यह उपाय किया होगा॥ ७५॥

७६. अवश्य हमने तुमको उत्पन्न किया, फिर तुम्हारी सूरतें बनाई, फ़रिश्तों से कहा कि आदम को सिजदा करो, बस उन्होंने सिजदा किया परन्तु शैतान सिजदा करने वालों में से न हुआ॥ कहा जब मैंने तुझे आज्ञा दी फिर किसने रोका कि तूने सिजदा न किया, कहा मैं उससे अच्छा हूं, तूने मुझको आग से और उसको मिट्टी से उत्पन्न किया॥ कहा बस उसमें से उतर, यह तेरे योग्य नहीं है कि तू उसमें अभिमान करे॥ कहा उस दिन तक ढील दे कि क़बरों से उठाये जावें॥ कहा निश्चय तू ढील दिये गयों से है॥ कहा बस इसकी कसम है कि तूने मुझको गुमराह किया, अवश्य मैं उनके लिये तेरे सीधे मार्ग पर बैठूंगा॥ और प्राय: तू उनको धन्यवाद करने वाला न पावेगा॥ कहा उससे दुर्दशा के साथ निकल, अवश्य जो कोई उनमें से तेरा पक्ष करेगा तुम सबसे दोज़ख़ को भरूंगा॥ —मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० ११। १२। १३। १४। १५। १६। १७। १८॥

समीक्षक—अब ध्यान देकर सुनो ख़ुदा और शैतान के झगड़े को! एक फ़रिश्ता जैसा कि चपरासी हो, था, वह भी ख़ुदा से न दबा और ख़ुदा उसके अत्मा को पवित्र भी न कर सका, फिर ऐसे बागी, जो पापी बना कर ग़दर करने वाला था उसको ख़ुदा ने छोड़ दिया। यह ख़ुदा की बड़ी भूल है। शैतान तो सब को बहकाने वाला और ख़ुदा शैतान को बहकाने वाला होने से यह सिद्ध होता है कि शैतान का भी शैतान ख़ुदा है। क्योंकि शैतान प्रत्यक्ष कहता है कि तूने मुझे गुमराह किया। इससे ख़ुदा में पवित्रता भी नहीं पाई जाती और सब बुराइयों का चलाने वाला मूल कारण ख़ुदा हुआ। ऐसा ख़ुदा मुसलमानों ही का ख़ुदा हो सकता है, अन्य श्रेष्ठ विद्वानों का नहीं। और फ़रिश्तों से मनुष्यवत् वार्त्तालाप करने से देहधारी, अल्पज्ञ, न्यायरहित मुसलमानों का ख़ुदा है, इसी से बुद्धिमान् लोग इसलाम के मज़हब को प्रसन्न नहीं करते॥ ७६॥

७७. निश्चय तुम्हारा मालिक अल्लाह है जिसने आसमानों और पृथिवी को छः दिन में उत्पन्न किया, फिर करार पकड़ा अर्श पर॥ दीनता से अपने मालिक को पुकारो॥

—मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० ५५। ५४॥

समीक्षक—भला! जो छः दिन में जगत् को बनावे, अर्श अर्थात् ऊपर के आकाश में सिंहासन पर आराम करे, वह ईश्वर सर्वशक्तिमान् और व्यापक कभी नहीं हो सकता। इनके न होने से वह ख़ुदा भी नहीं कहा सकता। क्या तुम्हारा ख़ुदा बधिर है जो पुकारने से सुनता है? ये सब बातें अनीश्वरकृत हैं, इससे क़ुरान ईश्वरकृत नहीं हो सकता। यदि छः दिनों में जगत् बनाया, सातवें दिन अर्श पर आराम किया तो थक भी गया होगा और अब तक सोता है वा जागा है? यदि जागता है तो अब कुछ काम करता है वा निकम्मा सैल सपट्टा करता, ऐश करता फिरता है॥ ७७॥

७८. मत फिरो पृथिवी पर झगड़ा करते॥

—मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० ७४॥

समीक्षक—यह बात तो अच्छी है परन्तु इस से विरुद्ध जिहाद करना और काफ़िरों को मारना भी लिखा है, अब कहो यह पूर्वापर विरुद्ध नहीं है? इससे यह विदित होता है कि जब मुहम्मद साहेब निर्बल हुए होंगे तब यह उपाय रचा होगा और जब सबल हुए होंगे, झगड़ा मचाया होगा। इन्हीं से ये बातें झूठी हैं॥ ७८॥

७९. बस एक ही वार अपना असा डाल दिया और वह अजगर था प्रत्यक्ष॥ —मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १०७॥

समीक्षक—अब इसके लिखने से विदित होता है कि ऐसी झूठी बातों को ख़ुदा और मुहम्मद साहेब भी मानते थे। जो ऐसा है तो ये दोनों विद्वान् नहीं थे, क्योंकि जैसे आँख से देखने और कान से सुनने को अन्यथा कोई नहीं कर सकता! इसी से ये इन्द्रजाल की बातें हैं॥ ७९॥

८०. अवश्य हम क़तल करेंगे बेटों उनके को और जीती रक्खेंगे बीबियों उनकी को।। बस हमने उन पर मेह का तूफ़ान भेजा, टीढ़ी, चिचड़ी और मैंढक और लोहू॥ बस उनसे हम ने बदला लिया और उन को डुबो दिया दरिया में॥ और हमने बनी इसराईल को दरियाव से पार उतार दिया॥ निश्चय वह दीन झूठा है कि जिसमें वे हैं और उनका कार्य्य भी झूठा है॥ —मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १२४। १३०। १३३। १३६। १३८॥

समीक्षक—भला! जो लड़काओं को क़तल करे और स्त्रियों को जीता रक्खे, उससे निर्दय, राक्षस स्वभावयुक्त, विषयासक्त मनुष्य और दुष्टमत दूसरा कोई भी नहीं होगा। और देखिये जैसा कोई पाखंडी किसी को डरावे कि हम तेरे पर सर्पों को काटने के लिये भेज देंगे, ऐसी ही यह भी बात है। भला! जो ऐसा पक्षपाती कि एक जाति को डुबा दे और दूसरी को पार उतारे यह पक्षपाती, मतलबी के समान ख़ुदा क्यों नहीं? जो दूसरे मत को कि जिसमें हज़ारों क्रोड़ों मनुष्य हों, झूठा बतलावे और अपने को सच्चा, उससे परे झूठा दूसरा मत कौन हो सकता है? क्योंकि किसी मत में सब मनुष्य बुरे और भले नहीं हो सकते। यह इक्तर्फी डिगरी करना महामूर्खों का काम है। क्या तौरेत ज़बूर का दीन, जो कि उनका था, क्योंकर अपने किये को ख़ुदा ने झूठा किया? वा उनका कोई अन्य मज़हब था कि जिसको झूठा कहा और जो वह अन्य मज़हब था, तो कौन सा था, कहो कि जिसका नाम क़ुरान में हो॥ ८०॥

८१. बस तू मुझ को अवश्य देख सकेगा, जब प्रकाश किया उसके मालिक ने पहाड़ की ओर उसको परमाणु-परमाणु किया, गिर पड़ा मूसा बेहोश॥ —मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १४३॥

समीक्षक—जो देखने में आता है वह व्यापक नहीं हो सकता।

और ऐसे चमत्कार करता फिरता था तो ख़ुदा इस समय ऐसा चमत्कार किसी को क्यों नहीं दिखलाता? सर्वथा विद्या विरुद्ध होने से यह बात मानने योग्य नहीं॥ ८१॥

८२. यह कि मार सात असा अपने के पत्थर को, बस फूट निकले बारह चश्मे॥ —मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १५९॥

समीक्षक—अब देखिये! बढकर भानुमती के सी ख़ुदा की ख़ुदाई, पैग़म्बर की पैग़म्बराई। इसको कोई भी बुद्धिमान् लोग सच नहीं मान सकते, सिवाय जंगली मनुष्यों के॥ ८२॥

८३. और अपने मालिक को दीनता, डर से मन में याद कर, हल्के धीमे शब्द के वाज़ से सुबह को और शाम को॥

—मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० २०४॥

समीक्षक—कहीं-कहीं क़ुरान में लिखा है कि बड़े वाज़ से अपने मालिक को पुकार, कहीं-कहीं धीरे-धीरे मन में ईश्वर का स्मरण कर। अब कहिये! कौन-सी बात सच्ची और कौन-सी झूठी? जो एक दूसरी बात से विरोध करती है वह बात प्रमत्त गीत के समान होती है। यदि कोई बात भ्रम से विरुद्ध निकल जाय, उसको मान ले, तो कुछ चिन्ता नहीं॥ ८३॥

८४. प्रश्न करते हैं तुझको लूटों से कहें लूटें वास्ते अल्लाह के और रसूल के और डरो अल्लाह से डरो थप्पड़ लात से॥

—मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० १॥

समीक्षक—जो लूट मचावें, डाकू के कर्म करें, करावें और ख़ुदा तथा पैग़म्बर और ईमानदार भी बनें, यह बड़े आश्चर्य की बात है और अल्लाह का डर बतलाते और डाकादि बुरे काम भी करते जायें और 'उत्तम मत हमारा है' कहते लज्जा भी नहीं। हठ छोड़ के सत्य वेदमत का ग्रहण न करें इससे अधिक बुराई दूसरी कौन-सी होगी?॥ ८४॥

८५. और काटें जड़ काफिरों की॥ मैं तुमको सहाय दूंगा। साथ सहस्र फ़रिश्तों के पीछे-पीछे आने वाले॥ अवश्य मैं काफ़िरों के दिलों में भय डालूंगा, बस मारो ऊपर गर्दनों के, मारो उन में से हर पोरी पर॥

—मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० ७। ९। १२॥

समीक्षक—वाह जी वाह! कैसा ख़ुदा और कैसे पैग़म्बर दयाहीन। जो मुसलमानी मत से भिन्न काफ़िरों की जड़ कटवावे। और ख़ुदा आज्ञा देवे उनको गर्दन मारो और पग की नस को काटने का सहाय और सम्मति देवे। भला! ऐसा ख़ुदा लंकेश से क्या कुछ कम है? यह सब प्रपञ्च क़ुरानकर्त्ता का है, ख़ुदा का नहीं। यदि ख़ुदा का हो, तो ऐसा ख़ुदा हम से दूर और हम उससे दूर रहें॥ ८५॥

८६. अल्लाह मुसलमानों के साथ है॥ ऐ लोगो जो ईमान लाये हो पुकारना स्वीकार करो वास्ते अल्लाह के और वास्ते रसूल के॥ ऐ लोगो जो ईमान लाये हो मत चोरी करो अल्लाह की रसूल की और मत चोरी करो अमानत अपनी को॥ और मकर करता था अल्लाह और अल्लाह भला मकर करने वालों का है॥

—मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० १९।२४।२७।३०॥

समीक्षक—क्या अल्लाह मुसलमानों का पक्षपाती है? जो ऐसा है तो अधर्म करता है। नहीं तो ईश्वर सब सृष्टि भर का है। क्या ख़ुदा विना पुकारे नहीं सुन सकता? बधिर है? और उसके साथ रसूल को शरीक करना बहुत बुरी बात नहीं है? क्या अल्लाह का कौन सा खज़ाना भरा है जो चोरी करेगा कोई? क्या रसूल और अपनी अमानत की चोरी छोड़ कर अन्य सब की चोरी किया करे? ऐसा उपदेश अविद्वान् और अधर्मियों का हो सकता है। भला! जो मकर करता और जो मकर करने वालों का संगी है, वह ख़ुदा कपटी छली और अधर्मी क्यों नहीं? इसीलिये यह क़ुरान ख़ुदा का बनाया हुआ नहीं है, किसी कपटी छली का बनाया होगा, नहीं तो ऐसी अन्यथा बातें लिखित क्यों होतीं?॥ ८६॥

८७. और लड़ो उनसे यहां तक कि न रहे फितना अर्थात् बल काफ़िरों का और होवे दीन तमाम वास्ते अल्लाह के।। और जानो तुम यह कि जो कुछ तुम लूटो किसी वस्तु से निश्चय वास्ते अल्लाह के है पांचवां हिस्सा उसका और वास्ते रसूल के निश्चय मैं तुम्हारा पक्षी हूँ॥

—मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० ३९।४१।४८॥

समीक्षक—ऐसा अन्याय से लड़ाका और लड़ने-लड़ानेवाला मुसलमानों के ख़ुदा से शान्तिभङ्गकर्त्ता दूसरा कौन होगा? अब देखिये यह मज़हब कि अल्लाह और रसूल के लिये सब जगत् को लूटना लुटवाना लुटेरों का सा काम नहीं है? और लूट के माल में ख़ुदा का हिस्सेदार बनना जानो डाकू बनना है और ऐसे लुटेरों का पक्षपाती बनना ख़ुदा अपनी ख़ुदाई में बट्टा लगाता है। बड़े आश्चर्य की बात है ऐसा पुस्तक, और ऐसे ख़ुदा, ऐसे ख़ुदा की ओर के पैग़म्बर और ऐसा उपाधिखोर मजहब संसार में महाशान्तिभङ्ग करके दु:खदायी कहां से हुआ? जो ऐसे-ऐसे मत जगत् में प्रचलित न होते तो सब जगत् आनन्द में बना रहता॥ ८७॥

८८. और कभी देखे जब काफ़िरों को फ़रिश्ते कब्ज करते हैं मारते हैं मुख उनके और पीठें उनकी और कहते चखो अज़ाब जलने का॥ हमने उनके पाप से उनको मारा और हमने फ़िराओन की क़ौम को डुबा दिया॥ और तैयारी करो वास्ते उनके जो कुछ तुम कर सको॥

—मं० २। सि० १०। सू० ८। आ० ५०।५४।६०॥

समीक्षक—क्योंजी! आजकल रूस ने रूम आदि और इङ्गलेण्ड ने मिश्र की दुर्दशा कर डाली, फ़रिश्ते कहां सो गये? और अपने सेवकों के शत्रुओं को ख़ुदा पूर्व मारता डुबाता था, यह बात सच्ची हो, तो आज कल भी ऐसा करे, जिससे ऐसा नहीं होता इसलिये यह बात मानने योग्य नहीं।। अब देखिये! यह कैसी बुरी आज्ञा है कि जो कुछ तुम कर सको वह भिन्न मत वालों के लिये दु:खदायक कर्म करो, ऐसी आज्ञा विद्वान् और धार्मिक दयालु की नहीं हो सकती। फिर लिखते हैं कि ख़ुदा दयालु और न्यायकारी है। ऐसी बातों से मुसलमानों के ख़ुदा से न्याय और दयादि सद्गुण दूर बसते हैं॥ ८८॥

८९. ऐ नबी किफ़ायत है तुझ को अल्लाह और उनको जिन्होंने मुसलमानों से तेरा पक्ष किया॥ ऐ नबी रग़बत अर्थात् चाह चस्का दे मुसलमानों को ऊपर लड़ाई के, जो हों तुम में से २० आदमी सन्तोष करने वाले तो पराजय करें दो सौ का॥ बस खाओ उस वस्तु से कि लूटा है तुमने हलाल पवित्र और डरो अल्लाह से वह क्षमा करने वाला दयालु है॥ —मं० २। सि० १०। सू० ८। आ० ६४।६५।६९॥

समीक्षक—भला! यह कौनसी न्याय, विद्वत्ता और धर्मात्मता की

बात है कि जो अपना पक्ष करे और चाहे अन्याय भी करे उसी का पक्ष और लाभ ख़ुदा पहुंचावे? और जो प्रजा में शान्तिभंग करके लड़ाई करे करावे और लूट मार के पदार्थों को हलाल बतलावे और फिर उसी का नाम क्षमावान् दयालु लिखे, यह बात ख़ुदा की तो कभी नहीं हो सकती। किन्तु किसी भले आदमी की भी नहीं हो सकती। ऐसी-ऐसी बातों से क़ुरान ईश्वरवाक्य कभी नहीं हो सकता॥ ८९॥

९०. सदा रहेंगे बीच उसके अल्लाह समीप है उसके पुण्य बड़ा॥ ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो मत पकड़ो बापों अपने को और भाइयों अपने को मित्र जो दोस्त रक्खें कुफ्र को ऊपर ईमान के॥ फिर उतारी अल्लाह ने तसल्ली अपनी ऊपर रसूल अपने के और ऊपर मुसलमानों के और उतारे लश्कर नहीं देखा तुमने उनको और अज़ाब किया उन लोगों को और यही सजा है काफ़िरों को।। फिर-फिर आवेगा अल्लाह पीछे उसके ऊपर और लड़ाई करो उन लोगों से जो ईमान नहीं लाते॥

—मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० २२।२३।२६।२७।२९॥

समीक्षक—भला! जो बहिश्तवालों के समीप अल्लाह रहता है तो सर्वव्यापक नहीं हो सकता? जो सर्वव्यापक नहीं तो सृष्टिकर्त्ता और न्यायाधीश नहीं हो सकता। और अपने मा, बाप, भाई और मित्र को छुड़वाना केवल अन्याय की बात है, हां जो वे बुरा उपदेश करें, न मानना परन्तु उनकी सेवा सदा करना चाहिये। जो पहिले ख़ुदा मुसलमानों पर सन्तोषी था और उसके सहाय के लिये लश्कर उतारता था, सच हो, तो अब ऐसा क्यों नहीं करता? और जो प्रथम काफ़िरों को दण्ड देता और पुनः पुनः उसके ऊपर आता था, तो अब कहां गया? क्या विना लड़ाई के ईमान को ख़ुदा नहीं बना सकता? ऐसे ख़ुदा को हमारी ओर से सदा तिलांजलि है, ख़ुदा क्या है, एक खिलाड़ी है?॥ ९०॥

९१. बस मत अन्याय करो बीच उसके आपस में और लड़ो मुशरिकों से इकट्ठे जैसा लड़ते हैं।। और हम बाट देखने वाले हैं वास्ते तुम्हारे यह कि पहुंचावे तुम को अल्लाह अज़ाब अपने पास से वा हमारे हाथों से॥ —मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० ३६।५२॥

समीक्षक—क्या मुसलमान लोग आपस में न्याय और दूसरों में

अन्याय करना धर्म समझते हैं। और ऐसा है, तो मुसलमान लोग अन्याय की मूर्तियाँ हैं। क्या मुसलमान ही ईश्वर की पुलिस बन गई है कि अपने हाथ वा मुसलमानों के हाथ से अन्य किसी मत वालों को दण्ड देता है? क्या दूसरे क्रोड़ों मनुष्य ईश्वर को अप्रिय हैं? मुसलमानों में पापी भी प्रिय है? इसलिये **अन्धेर नगरी गवरगण्ड राजा** की सी व्यवस्था दीखती है। आश्चर्य है कि जो बुद्धिमान् मुसलमान हैं, वे भी इस निर्मूल अयुक्त मत को मानते हैं॥ ९१॥

९२. प्रतिज्ञा की है अल्लाह ने ईमान वालों से और ईमानवालियों से बहिश्तें चलती हैं नीचे उनके से नहरें सदैव रहने वाली बीच उसके और घर पवित्र बहिश्तों अदन के और प्रसन्नता अल्लाह की ओर बड़ी है और यह कि वह है मुराद खाना बड़ा॥ बस ठट्ठा करते हैं उनसे, ठट्ठा किया है अल्लाह ने उन से॥

—मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० ७२।७९॥

समीक्षक—यह ख़ुदा की और से स्त्री पुरुषों का लोभ देना है अपने मतलब के लिये। क्योंकि जो ऐसा प्रलोभन न देते तो कोई मुहम्मद साहेब के जाल में न फसता, ऐसे ही अन्य मत वाले भी किया करते हैं। भला! मनुष्य लोग तो आपस में ठट्ठा किया ही करते हैं, परन्तु ख़ुदा को किसी से ठट्ठा करना उचित नहीं है। यह क़ुरान ग्रन्थ क्या है, बड़ा खेल है॥ ९२॥

९३. परन्तु रसूल और जो लोग कि साथ उसके ईमान लाये जिहाद किया उन्होंने साथ धन अपने के तथा जान अपनी के और इन्हीं लोगों के लिये भलाई है॥ और मोहर रक्खी अल्लाह ने ऊपर दिलों उनके के, बस वे नहीं जानते॥ —मं० २। सि० १०। सू० ९। आ० ८८।९३॥

समीक्षक—अब देखिये मतलबसिन्धु की बात! कि वे ही भले हैं जो मुहम्मद साहेब के साथ ईमान लाये और जो नहीं लाते, वे बुरे हैं! क्या यह बात पक्षपात और अविद्या से भरी हुई नहीं है? जब ख़ुदा ने मोहर ही लगा दी, तो उनका अपराध पाप करने में कोई भी नहीं, किन्तु ख़ुदा ही का अपराध है, क्योंकि उन बिचारों को भलाई से दिलों पर मोहर लगा के रोक दिये, यह कितना बड़ा अन्याय है!॥ ९३॥

९४. ले माल उनके से खैरात कि पवित्र करे तू उनको और शुद्ध करे तू उनको साथ उसके अर्थात् गुप्त में॥ निश्चय अल्लाह ने मोल ली हैं मुसलमानों से जानें उनकी और धन उनके बदले; कि वास्ते उनके बहिश्त है, लड़ेंगे बीच मार्ग अल्लाह के बस मारेंगे और मर जावेंगे॥

—मं० २। सि० ११। सू० ९। आ० १०३।१११॥

समीक्षक—वाह जी वाह मुहम्मद साहेब! आपने तो गोकुलिये गुसाइयों की बराबरी कर ली क्योंकि उनका माल लेना और उनको गुप्त में पवित्र करना यही बात तो गुसाइयों की है। वाह ख़ुदा जी! आपने अच्छी सौदागरी की लगाई कि मुसलमानों के हाथ से अन्य गरीबों के प्राण लेना ही लाभ समझा और उन अनाथों को मरवा कर उन निर्दयी मनुष्यों को स्वर्ग देने से, दया और न्याय से मुसलमानों का ख़ुदा हाथ धो बैठा और अपनी खुदाई में बट्टा लगा के बुद्धिमान् धार्मिकों में घृणित हो गया॥ ९४॥

९५. ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो लड़ो उन लोगों से कि पास तुम्हारे हैं काफ़िरों से और चाहिए कि पावें बीच तुम्हारे शक्ति॥ क्या नहीं देखते यह कि वे बलाओं में डाले जाते हैं बीच हर वर्ष के एक वार वा दो वार, फिर वे नहीं तोबा करते और न वे शिक्षा पकड़ते हैं॥

—मं० २। सि० ११। सू० ९। आ० १२३।१२६॥

समीक्षक—देखिये! यह भी एक विश्वासघात की बातें ख़ुदा मुसलमानों को सिखलाता है कि चाहे पड़ोसी हों वा किसी के नौकर हों, जब अवसर पावें, तभी लड़ाई वा घात करें। ऐसी बातें मुसलमानों से बहुत बन गई हैं इसी क़ुरान के लेख से। अब तो मुसलमान समझ के इन क़ुरानोक्त बुराइयों को छोड़ दें, तो बहुत अच्छा है॥ ९५॥

९६. निश्चय परवरदिगार तुम्हारा अल्लाह है जिसने पैदा किया आसमानों और पृथिवी को बीच छः दिन के फिर क़रार पकड़ा अर्श के तदबीर करता है काम की॥ —मं० ३। सि० ११। सू० १०। आ० ३॥

समीक्षक—क्या अल्लाह तुम्हारी नित्य सेवा करता है? आसमान आकाश एक और विना बनाया हुआ अनादि है। उसका बनाना लिखने से निश्चय हुआ कि वह क़ुरान का कर्त्ता पदार्थ विद्या को नहीं जानता

था? क्या परमेश्वर के सामने छः दिन तक बनाना पड़ता है? तो जो ''हो मेरे हुक्म से और हो गया'' जब क़ुरान में ऐसा लिखा है फिर छः दिन कभी नहीं लग सकते। और छः दिन लगना झूठ है। जो वह व्यापक होता, तो ऊपर अर्श के क्यों ठहरता? और जब तदबीर करता है काम की तो ठीक तुम्हारा ख़ुदा मनुष्य के समान है, क्योंकि जो सर्वज्ञ है, वह बैठा-बैठा तदबीर क्या करेगा? इससे विदित होता है कि ईश्वर को न जाननेवाले जंगली लोगों ने यह पुस्तक बनाया होगा॥ ९६॥

९७. शिक्षा और दया वास्ते मुसलमानों के॥

—मं० ३। सि० ११। सू० १०। आ० ५७॥

समीक्षक—क्या यह ख़ुदा मुसलमानों ही का है? दूसरों का नहीं? और पक्षपाती है जो मुसलमानों पर ही दया करे, अन्य मनुष्यों पर नहीं। यदि मुसलमान ईमानदारों को कहते हैं, तो उनके लिये शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं और मुसलमानों से भिन्नों को उपदेश नहीं करता, तो ख़ुदा की विद्या ही व्यर्थ है॥ ९७॥

९८. और था अर्श अर्थात् सिंहासन ऊपर पानी के तो कि परीक्षा लेवे तुम को, कौन तुम में से अच्छा है कर्मों में, जो कहे तू, अवश्य उठाये जाओगे तुम पीछे मृत्यु के॥

—मं० ३। सि० ११। सू० ११। आ० ७॥

समीक्षक—जब पानी पर ख़ुदा का सिंहासन है, तो वह एकदेशी होने से ख़ुदा ही नहीं बन सकता और जब कर्मों की परीक्षा करता है, तो सर्वज्ञ ही नहीं। और जो मृत्यु पीछे उठाता है, तो दौड़ासुपुर्द रखता है और अपने नियम जोकि 'मरे हुए न जीवें', तोड़ता है। यह ख़ुदा को बट्टा लगता है॥ ९८॥

९९. और कहा गया ऐ पृथिवी अपना पानी निगल जा और ऐ आसमान बस कर और पानी सूख गया॥ और ऐ क़ौम मेरे, यह है निशानी ऊंटनी अल्लाह की वास्ते तुम्हारे, बस छोड़ दो उसको बीच पृथिवी अल्लाह के खाती फिरे॥

—मं० ३। सि० ११। सू० ११। आ० ४४।६४॥

समीक्षक—क्या लड़केपन की बात है! पृथिवी और आकाश

कभी बात सुन सकते हैं? वाहजी वाह! ख़ुदा के ऊंटनी भी है, तो ऊंट भी होगा? तो हाथी, घोड़ा, गधा आदि भी होंगे? और ख़ुदा का ऊंटनी से खेत खिलाना क्या अच्छी बात है? क्या ऊंटनी पर चढ़ता भी है? जो ऐसी बातें हैं तो नवाबी की सी घसड़-पसड़ ख़ुदा के घर में भी हुई॥ ९९ ॥

१००. और सदैव रहने वाले बीच उसके जब तक कि रहें आसमान और पृथिवी॥ और जो लोग सुभागी हुए बस बहिश्त के सदा रहने वाले हैं जब तक रहें आसमान और पृथिवी॥

—मं० ३। सि० १२। सू० १२। आ० १०८। १०९॥

समीक्षक—जब दोज़ख और बहिश्त में कयामत के पश्चात् सब लोग जायेंगे फिर आसमान और पृथिवी किसलिये रहेगी? और तब दोज़ख और बहिश्त के, आसमान पृथिवी के रहने तक अवधि हुई तो 'सदा रहेंगे बहिश्त वा दोज़ख़ में,' यह बात झूठी हुई। ऐसा कथन अविद्वानों का होता है, ईश्वर वा विद्वानों का नहीं॥ १०० ॥

१०१. जब यूसुफ़ ने अपने बाप से कहा कि ऐ बाप मेरे! मैंने एक स्वप्न देखा॥ —मं० ३। सि० १२। सू० १२। आ० ४ से ५७ तक॥

समीक्षक—इस प्रकरण में पिता पुत्र का संवादरूप किस्सा कहानी भरी है, इसलिये क़ुरान ईश्वर का बनाया नहीं। किसी मनुष्य ने मनुष्यों का इतिहास लिख दिया है॥ १०१ ॥

१०२. अल्लाह वह है जिसने खड़ा किया आसमानों को विना खंभे के देखते हो तुम उसको, फिर आराम किया ऊपर अर्श के अर्थात् स्वर्ग में, आज्ञा वर्तने वाला किया सूरज और चांद को॥ और वही है जिसने बिछाया पृथिवी को।। उतारा आसमान से पानी बस बहे नाले साथ अन्दाजे के॥ अल्लाह खोलता है भोजन को वास्ते जिसको चाहे और तंग करता है॥

—मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० २। ३। १७। २६॥

समीक्षक—मुसलमानों का ख़ुदा पदार्थविद्या कुछ भी नहीं जानता था। जो जानता तो आसमान को खंभा लगाने की कथा कहनी, गुरुत्व न होने से, कुछ भी आवश्यकता न थी। यदि ख़ुदा स्वर्गरूप एक स्थान में रहता है, तो वह सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक नहीं हो सकता। और

जो ख़ुदा मेघविद्या जानता तो 'आकाश से पानी उतारा' लिखा, पुनः यह क्यों न लिखा कि 'पृथिवी से पानी ऊपर चढ़ाया'। इससे निश्चय हुआ कि क़ुरान का बनाने वाला मेघ की विद्या को भी नहीं जानता था। और जो विना अच्छे बुरे कामों के सुख दुःख देता है, तो पक्षपाती अन्यायकारी निरक्षर भट्ट है॥ १०२ ॥

१०३. कह निश्चय अल्लाह गुमराह करता है जिसको चाहता है और मार्ग दिखलाता है तर्फ अपनी उस मनुष्य को रुजू करता है॥

—मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० २७॥

समीक्षक—जब अल्लाह गुमराह करता है, तो ख़ुदा और शैतान में क्या भेद हुआ? जब कि शैतान दूसरों को गुमराह अर्थात् बहकाने से बुरा कहाता है तो ख़ुदा भी वैसे ही काम करने से बुरा शैतान क्यों नहीं? और बहकाने के पाप से दोज़खी क्यों नहीं होना चाहिये?॥ १०३ ॥

१०४. इसी प्रकार उतारा हमने इस क़ुरान को अर्बी में जो पक्ष करेगा तू उनकी इच्छा का पीछे इसके आई तेरे पास विद्या से॥ बस सिवाय इसके नहीं कि ऊपर तेरे पैग़ाम पहुंचाना है और ऊपर हमारे है हिसाब लेना॥ —मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० ३७। ४०॥

समीक्षक—क़ुरान किधर की ओर से उतारा? क्या ख़ुदा ऊपर रहता है? जो यह बात सच्च है तो वह एकदेशी होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सब ठिकाने एकरस व्यापक है। पैग़ाम पहुँचाना हल्कारे का काम है और हल्कारा की आवश्यकता उसी को होती है, जो मनुष्यवत् एकदेशी हो। और हिसाब लेना देना भी मनुष्य का काम है, ईश्वर का नहीं, क्योंकि वह सर्वज्ञ है। यह निश्चय होता है कि किसी अल्पज्ञ मनुष्य का बनाया क़ुरान है॥ १०४॥

१०५. और किया सूर्य चन्द्र को सदैव फिरने वाले॥ निश्चय आदमी अवश्य अन्याय और पाप करने वाला है॥

—मं० ३। सि० १३। सू० १४। आ० ३३। ३४॥

समीक्षक—क्या चन्द्र सूर्य सदा फिरते और पृथिवी नहीं फिरती? जो पृथिवी नहीं फिरे तो कई वर्षों का दिन रात होवे। और जो मनुष्य निश्चय अन्याय और पाप करने वाला है तो क़ुरान से शिक्षा करनी व्यर्थ

है। क्योंकि जिनका स्वभाव पाप ही करने का है, तो उनमें पुण्यात्मता कभी न होगी और संसार में पुण्यात्मा और पापात्मा सदा दीखते हैं, इसलिये ऐसी बात ईश्वरकृत पुस्तक की नहीं हो सकती। और निश्चय, अवश्य ये दोनों शब्द एकार्थ होने से पुनरुक्त हैं। पुनरुक्त प्रमत्त वाक्य होता है॥ १०५॥

१०६. ये आयतें हैं किताब की और क़ुरान कहने वाले की और अवश्य निश्चय किये हमने बीच आसमान में बुर्जे॥ बस जब ठीक करूँ मैं उसको और फूंक दूं बीच उसके रूह अपनी से, बस गिर पड़ा वास्ते उसके सिजदा करते हुए॥ कहा ऐ रब मेरे, इस कारण कि गुमराह किया तूने मुझ को, अवश्य जीनत दूंगा मैं बीच पृथिवी के, और गुमराह करूंगा॥ —मं० ३। सि० १४। सू० १५। आ० २९। ३९ से ४६ तक॥

समीक्षक—जो ख़ुदा ने अपनी रूह आदम साहेब में डाली, तो वह भी ख़ुदा हुआ और जो वह ख़ुदा न था, तो सिजदा अर्थात् नमस्कारादि भक्ति करने में अपना शरीक क्यों किया? जब शैतान को गुमराह करने वाला ख़ुदा ही है, तो वह शैतान का भी शैतान बड़ा भाई, गुरु क्यों नहीं? क्योंकि तुम लोग बहकाने वाले को शैतान मानते हो, तो ख़ुदा ने भी शैतान को बहकाया और प्रत्यक्ष शैतान ने कहा कि मैं बहकाऊंगा फिर भी उस को दण्ड देकर क़ैद क्यों न किया? और मार क्यों न डाला?॥ १०६॥

१०७. उत्पन्न किया आदमी को शुक्र से बस एक ही वार और निश्चय भेजे हमने बीच हर उम्मत के पैग़म्बर॥ जब चाहते हैं हम उसको, यह कहते हैं हम उसको, हो। बस हो जाती है॥

—मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० ३६। ४०॥

समीक्षक—इससे एक जन्म सिद्ध होता है, परन्तु इसमें बड़ी भारी भूल है, क्योंकि जन्म अनेक होते हैं। जब जीव अनादि हैं तो उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी अनादि हैं, उसका फल भोग भी अनादि से चला आता है, पश्चात् एक जन्म का मानना व्यर्थ है इसका विशेष संवाद नवम समुल्लास में देख लेना। जो सब क़ौमों पर पैग़म्बर भेजे हैं, तो सब लोग जो कि पैग़म्बर की राय पर चलते हैं, वे काफ़िर क्यों? क्या दूसरे पैग़म्बर का मान्य नहीं सिवाय तुम्हारे पैग़म्बर के? यह सर्वथा पक्षपात की बात है। जो सब देश में पैग़म्बर भेजे, तो आर्य्यावर्त में कौन सा भेजा? इसलिए यह बात मानने योग्य नहीं। जब ख़ुदा चाहता है और कहता है कि पृथिवी हो जा। वह जड़ कभी नहीं सुन सकता, ख़ुदा का हुक्म क्योंकर बजा सकेगा? और सिवाय ख़ुदा के दूसरी चीज नहीं मानते तो सुना किसने? और हो कौन गया? ये सब अविद्या की बातें हैं, ऐसी बातों को मूढ लोग मानते हैं॥ १०७॥

१०८. और नियत करते हैं वास्ते अल्लाह के बेटियां, पवित्रता है उसको, और वास्ते उनके हैं जो कुछ चाहें॥ क़सम अल्लाह की अवश्य भेजा हमने पैग़म्बर॥ —मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० ५७। ६३॥

समीक्षक—अल्लाह बेटियों से क्या करेगा? बेटियां तो किसी मनुष्य को चाहिए, क्यों बेटे नियत नहीं किये जाते और बेटियां नियत की जाती हैं? इसका क्या कारण? बताइये? क़सम खाना झूठों का काम है, ख़ुदा की बात नहीं। क्योंकि बहुधा संसार में ऐसा दीखने में आता है जो झूठा होता है वही क़सम खाता है, सच्चा सौगन्ध क्यों खावे?॥ १०८॥

१०९. ये लोग वे हैं कि मोहर रक्खी अल्लाह ने ऊपर दिलों उनके और कानों उनके और आँखों उनकी के और ये लोग वे हैं बेख़बर॥ और पूरा दिया जावेगा हर जीव को जो कुछ किया है और वे अन्याय न किये जावेंगे॥ —मं० ३। सि० १४। सू० १६। आ० १०८। १११॥

समीक्षक—जब ख़ुदा ही ने मोहर लगा दी तो वे बिचारे विना अपराध मारे गये क्योंकि उनको पराधीन कर दिये, यह कितना बड़ा अपराध है? और फिर कहते हैं कि जिसने जितना किया है उतना ही उनको दिया जायेगा, न्यूनाधिक नहीं। भला! उन्होंने स्वतन्त्रता से पाप किये ही नहीं किन्तु ख़ुदा के कराने से किये, पुन: उनका अपराध ही न हुआ, उनको फल न मिलना चाहिये। इसका फल ख़ुदा को मिलना उचित है और जो पूरा दिया जाता है, तो क्षमा किस बात की की जाती है? और जो क्षमा की जाती है, तो न्याय उड़ जाता है। ऐसा गड़बड़ाध्याय की बात ईश्वर की कभी नहीं हो सकती, किन्तु निर्बुद्धि छोकरों की

होती है॥ १०९॥

११०. और किया हमने दोज़ख़ को वास्ते काफ़िरों के घेरने वाला स्थान॥ और हर आदमी को लगा दिया हमने उसको अमलनामा उसका बीच गर्दन उसकी के, और निकालेंगे हम वास्ते उसके दिन क़यामत के एक किताब कि देखेगा उसको खुला हुआ॥ और बहुत मारे हमने क़ुरनून से पीछे नूह के॥

—मं० ४। सि० १५। सू० १७। आ० ८।१३।१७॥

समीक्षक—यदि काफ़िर वे ही हैं कि जो क़ुरान, पैग़म्बर और क़ुरान के कहे ख़ुदा, सातवें आसमान और निवाज़ आदि को न मानने वाले, उन्हीं के लिये दोज़ख़ होवे, तो यह बात केवल पक्षपात की ठहरे। क्योंकि क्या क़ुरान ही के मानने वाले सब अच्छे और अन्य के मानने वाले बुरे हो सकते हैं? यह बड़ी लड़कपन की बात है कि उसके गर्दन पर कर्म की लेख खुदा ने लिख दी। यह बात सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि गर्दन की नाडी-नाडी और हाड़-हाड़ देखने से भी कुछ भी कहीं लिखा नहीं पाता, और क़यामत की रात को किताब निकालेगा ख़ुदा तो आजकल वह किताब कहां है? क्या साहूकार की बही समान लिखता रहता है? हां! यहां यह विचारना चाहिये कि जो पूर्व जन्म नहीं, तो जीवों के कर्म ही नहीं हो सकते, तो फिर कर्म की रेखा क्या लिखी? और जो विना कर्म के लिखा तो उन पर अन्याय किया, क्योंकि विना अच्छे बुरे कर्मों के उनको दुःख सुख क्यों दिया? जो कहो कि ख़ुदा की मरजी, तो भी उसने अन्याय किया। अन्याय उसीको कहते हैं कि विना बुरे भले कर्म किये दुःख सुखरूप फल न्यूनाधिक देना। और उस समय ख़ुदा ही किताब बांचेगा वा कोई सरिश्तेदार सुनावेगा? जो ख़ुदा ही ने दीर्घकाल सम्बन्धी जीवों को विना अपराध मारा तो वह अन्यायकारी हो गया। जो अन्यायकारी होता है वह ख़ुदा ही नहीं हो सकता॥ ११०॥

१११. और दिया हमने समूद को ऊंटनी प्रमाण॥ और बहका जिसको बहका सके॥ जिस दिन बुलावेंगे हम उन लोगों के साथ पेशवाओं उनके के बस जो कोई दिया गया अमलनामा उसका बीच

दहिने हाथ उसके के॥

—मं० ४। सि० १५। सू० १७। आ० ५९।६४।७१॥

समीक्षक—वाह! जितनी ख़ुदा की निशानी आश्चर्य हैं, उन में से एक ऊंटनी भी ख़ुदा के होने में प्रमाण अथवा परीक्षा में साधक है। यदि ख़ुदा ने शैतान को बहकाने का हुक्म दिया, तो ख़ुदा ही शैतान का सरदार और सब पाप कराने वाला ठहरा, ऐसे को ख़ुदा कहना केवल कम समझ की बात है। जब क़यामत की अर्थात् प्रलय ही में न्याय करने कराने के लिए पैग़म्बर और उनके उपदेश मानने वालों को ख़ुदा बुलावेगा, तो जब तक प्रलय न होगा, तब तक सब दौड़ा सुपुर्द रहे और दौड़ा सुपुर्द सब को दुःखदायक है, जब तक न्याय न किया जाय। इसलिये शीघ्र न्याय करना न्यायाधीश का उत्तम काम है। यह तो **पोपाँबाई का न्याय** ठहरा। जैसे कोई न्यायाधीश कहे कि जब तक पचास वर्ष तक के चोर और साहूकार इकट्ठे न हों, तब तक उन को दण्ड वा प्रतिष्ठा न करनी चाहिए, वैसा ही यह हुआ कि एक तो पचास वर्ष तक दौड़ा सुपुर्द रहा और एक आज ही पकड़ा गया, ऐसा न्याय का काम नहीं हो सकता। न्याय तो वेद और मनुस्मृति का देखो जिसमें क्षण मात्र भी विलम्ब नहीं होता और अपने-अपने कर्मानुसार दण्ड वा प्रतिष्ठा सदा पाते रहते हैं। दूसरा पैग़म्बरों को गवाही के तुल्य रखने से ईश्वर की सर्वज्ञता की हानि है। भला! ऐसा पुस्तक ईश्वरकृत और ऐसे पुस्तक का उपदेश करनेवाला ईश्वर कभी हो सकता है? कभी नहीं॥ १११॥

११२. ये लोग वास्ते उनके हैं बाग़ हमेशह रहने के, चलती हैं नीचे उनके से नहरें, गहना पहिनाये जावेंगे बीच उसके कंगन सोने के से और पोशाक पहिनेंगे वस्त्र हरित लाही की से और ताफ़ते की से तकिये किये हुए बीच उसके ऊपर तख़्तों के, अच्छा है पुण्य और अच्छी है बहिश्त लाभ उठाने की॥ —मं० ४। सि० १५। सू० १८। आ० ३१॥

समीक्षक—वाह जी वाह! क्या क़ुरान का स्वर्ग है जिसमें बाग़, गहने, कपड़े, गद्दी, तकिये आनन्द के लिये हैं। भला! कोई बुद्धिमान् यहां विचार करे, तो यहां से वहां मुसलमानों के बहिश्त में अधिक कुछ भी नहीं है सिवाय अन्याय के। वह यह कि कर्म उनके अन्त वाले और

फल उनके अनन्त और जो मीठा नित्य खावे, तो थोड़े दिन में विष के समान प्रतीत होता है। जब सदा वे सुख भोगेंगे, तो उनको सुख ही दु:ख रूप हो जायगा, इसलिये महाकल्प पर्यन्त मुक्तिसुख भोग के पुनर्जन्म पाना ही सत्य सिद्धान्त है॥ ११२॥

११३. और यह बस्तियां हैं कि मारा हमने उनको जब अन्याय किया उन्होंने, और हमने उनके मारने की प्रतिज्ञा स्थापन की॥

—मं० ४। सि० १५। सू० १८। आ० ५९॥

समीक्षक—भला! सब बस्ती भर पापी कभी हो सकती है? और पीछे से प्रतिज्ञा करने से ईश्वर सर्वज्ञ नहीं रहा, क्योंकि जब उनका अन्याय देखा तब प्रतिज्ञा की, पहिले नहीं जानता था, इससे दयाहीन भी ठहरा॥ ११३॥

११४. और वह जो लड़का, बस थे मा बाप उसके ईमान वाले, बस डरे हम यह कि पकड़ें उनको सरकशी में और कुफ्र में॥ यहां तक कि पहुंचा जगह डूबने सूर्य्य की, पाया उसको डूबता था बीच चश्मे कीचड़ के॥ कहा ऐ.ज़ुलक़रनैन निश्चय याजूज माजूज फ़िसाद करने वाले हैं बीच पृथिवी के॥

—मं० ४। सि० १६। सू० १८। आ० ८०।८६।९४॥

समीक्षक—भला! यह ख़ुदा की कितनी बेसमझ है। शङ्का से डरा कि यह लड़का अपने मा बाप को शायद मेरे मार्ग से बहका कर उल्लंघन कर देवे। यह कभी ईश्वर की बात नहीं हो सकती। अब आगे की अविद्या की बात देखिये कि इस किताब का बनाने वाला सूर्य्य को एक झील में रात्रि को डूबा जानता है, फिर प्रात:काल निकलता है। भला! सूर्य्य तो पृथिवी से बहुत बड़ा है, वह नदी वा झील वा समुद्र में कैसे डूब सकेगा! इससे यह विदित हुआ कि क़ुरान के बनाने वाले को भूगोल खगोल की विद्या नहीं थी। जो होती तो ऐसी विद्याविरुद्ध बात क्यों लिख देते हैं? और इस पुस्तक के मानने वालों को भी विद्या नहीं है। जो होती तो ऐसी मिथ्या बातों से युक्त पुस्तक को क्यों मानते? अब देखिये ख़ुदा का अन्याय! आप ही पृथिवी का बनाने वाला राजा न्यायाधीश है और याजूज माजूज को पृथिवी में फ़साद भी करने देता

है। यह ईश्वरता की बात से विरुद्ध है। इससे ऐसी पुस्तक को जङ्गली लोग माना करते हैं, विद्वान् नहीं॥ ११४॥

११५. और याद करो बीच किताब के मर्यम को, जब जा पड़ी लोगों अपने से मकान पूर्वी में॥ बस पड़ा उनसे इधर पर्दा, बस भेजा हमने रूह अपनी को अर्थात् फ़रिश्ता, बस सूरत पकड़ी वास्ते उसके आदमी पुष्ट की॥ कहने लगी निश्चय मैं शरण पकड़ती हूं रहमान की तुझ से, जो है तू परहेजगार॥ कहने लगा सिवाय इसके नहीं कि मैं भेजा हुआ हूँ मालिक तेरे के से, तो कि दे जाऊं मैं तुझ को लड़का पवित्र॥ कहा कैसे होगा वास्ते मेरे लड़का नहीं हाथ लगाया मुझको आदमी ने, नहीं मैं बुरा काम करने वाली॥ बस गर्भित हो गई साथ उसके और जा पड़ी साथ उसके मकान दूर अर्थात् जंगल में॥

—मं० ४। सि० १६। सू० १९। आ० १६।१७।१८।
१९।२०।२२॥

समीक्षक—अब बुद्धिमान् विचार लें कि फ़रिश्ते सब खुदा की रूह हैं, तो खुदा से अलग पदार्थ नहीं हो सकते। और शैतान भी नापाक रूह खुदा ही की हुई, तो खुदा ही नापाक हुआ। यदि ऐसा है तो ऐसे नापाक खुदा के भक्त पाक कैसे हो सकेंगे? दूसरा यह अन्याय कि वह मर्यम कुमारी के लड़का होना, किसी का संग करना नहीं चाहती थी, परन्तु खुदा के हुक्म से फ़रिश्ते ने उसको बलात्कार गर्भवती किया, यह न्याय से विरुद्ध बात है। यहाँ अन्य भी असभ्यता की बातें बहुत लिखी हैं उनको लिखना उचित नहीं समझा॥ ११५॥

११६. क्या नहीं देखा तू ने यह कि भेजा हमने शैतानों को ऊपर काफ़िरों के बहकाते हैं उनको बहकाने कर॥

—मं० ४। सि० १६। सू० १९। आ० ८३॥

समीक्षक—जब खुदा ही शैतानों को बहकाने के लिये भेजता है तो बहकने वालों का कुछ दोष नहीं हो सकता और न उनको दण्ड हो सकता और न शैतानों को, क्योंकि यह खुदा के हुक्म से सब होता है, इसका फल खुदा को होना चाहिये। जो सच्चा न्यायकारी है, तो उसका फल दोज़ख़ आप ही भोगे और जो न्याय को छोड़ के अन्याय को करे,

तो अन्यायकारी हुआ। अन्यायकारी ही पापी कहाता है॥ ११६ ॥

११७. और निश्चय क्षमा करने वाला हूं वास्ते उस मनुष्य के तोबाः की और ईमान लाया और कर्म किये अच्छे, फिर मार्ग पाया॥

—मं० ४। सि० १६। सू० २०। आ० ८२॥

समीक्षक—जो तोबाः से पाप क्षमा करने की बात क़ुरान में है, यह सब को पापी कराने वाली है। क्योंकि पापियों को इससे पाप करने का साहस बहुत बढ़ जाता है। इस से यह पुस्तक और इस का बनाने वाला पापियों को पाप कराने में होंसला बढ़ाने वाले हैं। इस से यह पुस्तक परमेश्वरकृत और इस में कहा हुआ परमेश्वर भी नहीं हो सकता॥ ११७॥

११८. और जिसको चाहा मारा हमने हद्द से निकलने वालों को॥ बस पवित्रता है अल्लाह मालिक अर्श के को॥ और किये हमने बीच पृथिवी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे॥

—मं० ४। सि० १७। सू० २१। आ० ९। २१। ३१॥

समीक्षक—देखिये गदर लूटमार! कि जिसको [चाहा] उसने मारा और जिसको चाहा उसको बचाया। भले-बुरे कर्म की अपेक्षा कुछ नहीं करता। जब सातवें आसमान पर तख्त का निवासी अल्लाह है, वह सब जगत् का स्रष्टा, धर्त्ता, ज्ञाता कभी नहीं हो सकता। यदि क़ुरान का बनाने वाला पृथिवी का घूमना आदि जानता, तो यह बात कभी नहीं कहता कि पहाड़ों के धरने से पृथिवी नहीं हिलती। शंका हुई कि जो पहाड़ न धरता, तो हिल जाती! इतने कहने पर भी भूकम्प में क्यों डिग जाती है?॥ ११८॥

११९. और शिक्षा दी हमने उस औरत को और रक्षा की उसने अपने गुह्य अङ्गों की, बस फूंक दिया हमने बीच उसके रूह अपनी को॥ —मं० ४। सि० १७। सू० २१। आ० ९१॥

समीक्षक—ऐसी अश्लील बातें ख़ुदा की पुस्तक, ख़ुदा की और सभ्य मनुष्य की भी नहीं होती। जब कि मनुष्यों में ऐसी-ऐसी बातों का लिखना अच्छा नहीं, तो परमेश्वर के सामने क्योंकर अच्छा हो सकता है? ऐसी बातों से क़ुरान दूषित होता है। यदि अच्छी बातें होती, तो अति

प्रशंसा होती, जैसे वेदों की॥ ११९॥

१२०. क्या नहीं देखा तूने यह कि अल्लाह को सिज़दा करते हैं जो कोई आसमानों और पृथिवी के, हैं सूर्य्य और चन्द्र तारे और पहाड़, वृक्ष और जानवर॥ पहिनाये जावेंगे बीच उसके कंगन सोने और मोती के और पहिनावा उनका बीच उसके रेशमी हैं॥ और पवित्र रख घर मेरे को वास्ते गिर्द फिरने वालों के और खड़े रहने वालों के॥ फ़िर चाहिये कि दूर करें मैल अपने और पूरी करें भेटें अपनी और चारों ओर फिरें घर क़दीम के॥ तो कि नाम अल्लाह का याद करें॥

—मं० ४। सि० १७। सू० २२। आ० १८। २३। २६। २९। ३४॥

समीक्षक—भला! जो जड़ वस्तु हैं, वे परमेश्वर को जान ही नहीं सकते, फिर वे उस की भक्ति क्योंकर कर सकते हैं? इस से यह पुस्तक ईश्वरकृत तो कभी नहीं हो सकता, किन्तु किसी भ्रान्त ने बनाया हुआ दीखता है। वाह! बड़ा अच्छा स्वर्ग है, जहां सोने, मोती के गहने और रेशमी कपड़ा पहिरने को मिलें। यह बहिश्त यहाँ के राजाओं के घर से अधिक नहीं दीख पड़ता। और जब परमेश्वर का घर है, तो वह उसी घर में रहता भी होगा, फिर बुतपरस्ती क्यों न हुई? और दूसरे बुतपरस्तों का खण्डन क्यों करते हैं? जब ख़ुदा भेंट लेता, अपने घर की परिक्रमा करने की आज्ञा देता है और पशुओं को मरवा के खिलाता है, तो यह ख़ुदा मन्दिरवाले और भैरव, दुर्गा के सदृश हुआ और महाबुतपरस्ती का चलाने वाला हुआ। क्योंकि मूर्त्तियों से मस्जिद बड़ा बुत है। इस से ख़ुदा और मुसलमान बड़े बुतपरस्त और पुराणी तथा जैनी छोटे बुतपरस्त हैं॥ १२०॥

१२१. फिर निश्चय तुम दिन क़यामत के उठाये जाओगे॥

—मं० ४। सि० १८। सू० २३। आ० १६॥

समीक्षक—क़यामत तक मुर्दे क़बरों में रहेंगे वा किसी अन्य जगह? जो उन्हीं में रहेंगे तो सड़े हुए दुर्गन्धरूप शरीर में रहकर पुण्यात्मा भी दुःख भोग करेंगे? यह न्याय अन्याय है। और दुर्गन्ध अधिक होकर रोगोत्पत्ति करने से ख़ुदा और मुसलमान पापभागी होंगे॥ १२१॥

१२२. उस दिन की गवाही देवेंगे ऊपर उनके ज़बानें उनकी और

हाथ उनके और पांव उनके साथ उस वस्तु के कि थे करते॥ अल्लाह नूर है आसमानों का और पृथिवी का, नूर उसके कि मानिन्द ताक़ की है बीच उसके दीप हो, और दीप बीच कंदील शीशे के हैं, वह कंदील मानो कि तारा है चमकता, रोशन किया जाता है दीपक वृक्ष मुबारिक जैतून के से, न पूर्व की ओर है न पश्चिम की, समीप है तैल उस का रोशन हो जावे जो न लगे ऊपर रोशनी के, मार्ग दिखाता है अल्लाह नूर अपने के जिसको चाहता है॥

—मं० ४। सि० १८। सू० २४। आ० २४।३५॥

समीक्षक—हाथ पग आदि जड़ होने से गवाही कभी नहीं दे सकते यह बात सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या है। क्या ख़ुदा आगी बिजुली है? जैसा कि दृष्टान्त देते हैं ऐसा दृष्टान्त ईश्वर में नहीं घट सकता। हां, किसी साकार वस्तु में घट सकता है॥ १२२॥

१२३. और अल्लाह ने उत्पन्न किया हर जानवर को पानी से बस कोई उनमें से वह है कि जो चलता है पेट अपने के॥ और जो कोई सेवा करे अल्लाह की रसूल उसके की॥ कह सेवा करो खुदा की रसूल उसके की और सेवा करो रसूल की ताकि दया किये जाओ॥

—मं० ४। सि० १८। सू० २४। आ० ४४।५२।५४।५६॥

समीक्षक—यह कौन सी फ़िलासफ़ी है कि जिन जानवरों के शरीर में सब तत्त्व दीखते हैं और कहना कि केवल पानी से उत्पन्न किये? यह केवल अविद्या की बात है। जब अल्लाह के साथ पैग़म्बर की सेवा करनी होती है, तो खुदा का शरीक हो गया वा नहीं? यदि ऐसा है, तो खुदा को लाशरीक क्यों क़ुरान में लिखा और कहते हो?॥ १२३॥

१२४. और जिस दिन कि फट जावेगा आसमान साथ बदली के, और उतारे जावेंगे फ़रिश्ते॥ बस मत कहा मान काफ़िरों का, और झगड़ा कर उनसे साथ झगड़ा बड़ा॥ और बदल डालता है अल्लाह बुराइयों उनकी को भलाइयों से॥ और जो कोई तोबा: करे और कर्म करे अच्छे बस निश्चय आता है तरफ़ अल्लाह की॥

—मं० ४। सि० १९। सू० २५। आ० २६।५२।७०।७१॥

समीक्षक—यह बात कभी सच नहीं हो सकती है कि आकाश बद्दलों के साथ फट जावे। यदि आकाश कोई मूर्त्तिमान् पदार्थ हो तो फट सकता है। यह मुसलमानों का क़ुरान और खुदा शान्तिभङ्ग कर गदर झगड़ा मचाने वाला है, इसीलिये धार्मिक विद्वान् लोग इस को नहीं मानते। यह भी अच्छा न्याय है कि जो पाप और पुण्य का अदला बदला हो जाय! क्या यह तिल और उड़द की सी बात है, जो पलटा हो जावे? जो तोबा: करने से पाप छूटे और ईश्वर मिले, तो कोई भी पाप करने से न डरे, इसलिये ये सब बातें विद्या से विरुद्ध हैं॥ १२४॥

१२५. वही की हमने तरफ़ मूसा की यह कि ले चला रात को बन्दों मेरे को, निश्चय तुम पीछा किये जाओगे॥ बस भेजे लोग फ़िरोन ने बीच नगरों के जमा करने वाले॥ और वह पुरुष कि जिस ने पैदा किया मुझ को, बस वही मार्ग दिखलाता है॥ और वह जो खिलाता है मुझको पिलाता है मुझको॥ और वह पुरुष कि आशा रखता हूं मैं यह कि क्षमा करे वास्ते मेरे, अपराध मेरा दिन क़यामत के॥

—मं० ५। सि० १९। सू० २६। आ० ५२।५३।७८।७९।८२॥

समीक्षक—जब ख़ुदा ने मूसा की ओर वही भेजी पुनः दाऊद, ईसा और मुहम्मद साहेब की ओर किताब क्यों भेजी? क्योंकि परमेश्वर की बात सदा एक सी और बेभूल होती है। और उसके पीछे क़ुरान तक पुस्तकों का भेजना पहिली पुस्तक को अपूर्ण, भूलयुक्त माना जायगा। यदि ये तीन पुस्तक सच्चे हैं, तो यह क़ुरान झूठी होगी। चारों का जो कि परस्पर प्रायः विरोध रखते हैं, उन का सर्वथा सत्य होना नहीं हो सकता। यदि ख़ुदा ने रूह अर्थात् जीव पैदा किये हैं, तो वे मर भी जायेंगे अर्थात् उनका कभी न कभी अभाव भी होगा। जो परमेश्वर ही मनुष्यादि प्राणियों को खिलाता पिलाता है, तो किसी को रोग न होना चाहिये और सबको तुल्य भोजन देना चाहिये। पक्षपात से एक को उत्तम और दूसरे को निकृष्ट जैसा कि राजा और कंगले को, श्रेष्ठ निकृष्ट भोजन मिलता है न होना चाहिये। जब परमेश्वर ही खिलाने पिलाने और पथ्य कराने वाला है, तो रोग ही न होने चाहियें। परन्तु मुसलमान आदि को भी रोग होते हैं। यदि ख़ुदा ही रोग छुड़ा कर आराम करने वाला है, तो मुसलमानों

के शरीरों में रोग न रहना चाहिये। यदि रहता है तो ख़ुदा पूरा वैद्य नहीं है। यदि पूरा वैद्य है, तो मुसलमानों के शरीर में रोग क्यों रहते हैं? वही मारता और जिलाता है, तो उसी ख़ुदा को पाप पुण्य लगता होगा। यदि जन्म जन्मान्तर के कर्मानुसार व्यवस्था करता है, तो उसको कुछ भी अपराध नहीं। वह पाप क्षमा और न्याय क़यामत की रात में करता है, तो ख़ुदा पाप बढ़ाने वाला होकर पापयुक्त होगा। यदि क्षमा नहीं करता, तो यह क़ुरान की बात झूठी है॥ १२५॥

१२६. नहीं तू परन्तु आदमी मानिन्द हमारी, बस ले आ कुछ निशानी जो है तू सच्चों से॥ कहा यह ऊंटनी है वास्ते उस के पानी पाना है एक वार॥ —मं० ५। सि० १९। सू० २६। आ० १५४। १५५॥

समीक्षक—यह ख़ुदा को शंका और अभिमान क्यों हुआ कि तू हमारे तुल्य नहीं है और ऊंटनी की निशानी देनी केवल जंगली व्यवहार है, ईश्वरकृत नहीं! यदि यह किताब ईश्वरकृत होती तो ऐसी व्यर्थ बातें इस में न होतीं॥ १२६॥

१२७. ऐ मूसा बात यह है कि निश्चय मैं अल्लाह हूं ग़ालिब॥ और डाल दे असा अपना, बस जब कि देखा उसको हिलता था मानो कि वह सांप है,....ऐ मूसा मत डर, निश्चय नहीं डरते समीप मेरे पैग़म्बर॥ अल्लाह नहीं कोई माबूद परन्तु वह मालिक अर्श बड़े का॥ यह कि मत सरकशी करो ऊपर मेरे और चले आओ मेरे पास मुसलमान होकर॥ —मं० ५। सि० १९। सू० २७। आ० ९। १०। २६। ३१॥

समीक्षक—और भी देखिये! अपने मुख से आप अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त बनता है। अपने मुख से अपनी प्रशंसा करना श्रेष्ठ पुरुष का भी काम नहीं, ख़ुदा का क्योंकर हो सकता है? तभी तो इन्द्रजाल का लटका दिखला, जंगली मनुष्यों को वश कर, आप जंगलस्थ ख़ुदा बन बैठा। ऐसी बात ईश्वर के पुस्तक की कभी नहीं हो सकती। यदि वह बड़े अर्श अर्थात् सातवें आसमान का मालिक है तो वह एकदेशी होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता है। यदि सरकशी करना बुरा है, तो ख़ुदा ने, मुहम्मद साहेब और फरिश्तों ने ईमान लाने, सेवा करने में साथ क्यों मिलाया, इससे सरकशी हुई वा नहीं? इससे यह क़ुरान पुनरुक्त और

पूर्वापर विरुद्ध बातों से भरा हुआ है॥ १२७॥

१२८. और देखेगा तू पहाड़ों को अनुमान करता है तू उनको जमे हुए और वे चले जाते हैं मानिन्द चलने बादलों की, कारीगरी अल्लाह की जिसने दृढ़ किया हर वस्तु को, निश्चय वह ख़बरदार है उस वस्तु के कि करते हो॥ —मं० ५। सि० २०। सू० २७। आ० ८८॥

समीक्षक—भला! बद्दलों के समान पहाड़ का चलना क़ुरान बनाने वालों के देश में होता होगा, अन्यत्र नहीं। और ख़ुदा की ख़बरदारी तो शैतान बाग़ी को न पकड़ने और न दंड देने से ही विदित होती है कि जिसने एक बाग़ी को भी अब तक न पकड़ पाया, न दंड दिया। इस से अधिक असावधानीता क्या होगी॥ १२८॥

१२९. बस मुष्ट मारा उस को मूसा ने, बस पूरी की आयु उसकी॥ कहा ऐ रब मेरे! निश्चय मैंने अन्याय किया जान अपनी को, बस क्षमा कर मुझ को, बस क्षमा कर दिया उसको, निश्चय वह क्षमा करने वाला दयालु है॥ और मालिक तेरा उत्पन्न करता है, जो कुछ चाहता है और पसन्द करता है॥ —मं० ५। सि० २०। सू० २८। आ० १५। १६। ६८॥

समीक्षक—अब अन्य भी देखिये! मुसलमान और ईसाइयों के पैग़म्बर और ख़ुदा कि मूसा पैग़म्बर मनुष्य की हत्या किया करे और ख़ुदा क्षमा किया करे, ये दोनों अन्यायकारी हैं वा नहीं? क्या अपनी इच्छा ही से जैसा चाहता है वैसी उत्पत्ति करता है? क्या उसने अपनी इच्छा ही से एक को राजा, दूसरे को कङ्गाल और एक को विद्वान् और दूसरे को मूर्खादि किया है? यदि ऐसा है तो यह अन्यायकारी होने से क़ुरान सत्य और यह ख़ुदा ही नहीं हो सकता है॥ १२९॥

१३०. और आज्ञा दी हम ने साथ मा बाप के भलाई करना और जो झगड़ा करें तुझ से दोनों यह कि शरीक लावे तू साथ मेरे उस वस्तु को, कि नहीं वास्ते तेरे साथ उस के ज्ञान, बस मत कहा मान उन दोनों का, तर्फ़ मेरी है॥ और अवश्य भेजा हमने नूह को तर्फ क़ौम उसके कि बस रहा बीच उनके हजार वर्ष परन्तु पचास वर्ष कम उस दिन ढांक लेगा उसको अजाब ऊपर उनके से॥

—मं० ५। सि० २०-२१। सू० २९। आ० ८। १४॥

समीक्षक—माता पिता की सेवा करनी तो अच्छी ही है। जो ख़ुदा के साथ शरीक करने के लिये कहे, तो उनका कहा न मानना, यह भी ठीक है, परन्तु यदि माता-पिता मिथ्याभाषणादि करने की आज्ञा देवें, तो क्या मान लेना चाहिये, इसलिये यह बात आधी अच्छी और आधी बुरी है। क्या नूह आदि पैग़म्बर ही को ख़ुदा संसार में भेजता है, तो अन्य जीवों को कौन भेजता है? यदि सब को वही भेजता है, तो सभी पैग़म्बर क्यों नहीं? और जो प्रथम मनुष्यों की हज़ार वर्ष की आयु होती थी, तो अब क्यों नहीं होती? इसलिये यह बात ठीक नहीं। यदि ख़ुदा के न्यायघर में भी नीचे शिर, ऊपर पग बांधकर दंड दिया जाता है, तो उससे आजकल ही का राज अच्छा है। आजकल दण्ड तो दिया जाता है, परन्तु पग नीचे और शिर ऊपर ही रक्खा जाता है। यदि ऐसा ही दण्ड हो, तो भी मनुष्यों में संघटित हो सकता है॥ १३०॥

१३१. अल्लाह पहिली वार करता है उत्पत्ति फिर दूसरी वार करेगा उस को, फिर उसी की ओर फेरे जाओगे॥ जिस दिन बरपा अर्थात् खड़ी होगी क़यामत निराश होंगे पापी॥ बस जो लोग कि ईमान लाये और काम किये अच्छे बस वे बीच बाग़ के सिंगार किये जावेंगे॥ और जो भेज दें हम ए बाव बस देखें उस खेती को पीली हुई॥ इस प्रकार मोहर रखता है अल्लाह ऊपर दिलों उन लोगों के कि नहीं जानते॥

—मं० ५। सि० २१। सू० ३०। आ० ११।१२।१५।५१।५९॥

समीक्षक—यदि अल्लाह दो वार उत्पत्ति करता है, तीसरी वार नहीं, तो उत्पत्ति की आदि और दूसरी वार के अन्त में निकम्मा बैठा रहता होगा? और एक तथा दो वार उत्पत्ति के पश्चात् उसका सामर्थ्य निकम्मा और व्यर्थ हो जायगा। यदि न्याय करने के लिये दिन न रख कर, रात रक्खी जाय तो गवर्गण्ड-सी लीला हो जाय। न्याय तो दिन ही में करना सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसीलिये यह मुसलमान और मुसलमानों के ख़ुदा की उल्टी बात है। यदि बगीचे में रखना और शृंगार पहिराना ही मुसलमानों का स्वर्ग है, तो इस संसार के तुल्य हुआ और वहां माली और सुनार भी होंगे अथवा ख़ुदा ही माली और सुनार आदि का काम करता होगा। यदि किसी को कम गहना मिलता होगा, तो चोरी भी होती

होगी और बहिश्त से चोरी करने वालों को दोज़ख में भी डालता होगा। यदि ऐसा होता होगा, तो 'सदा बहिश्त में रहेंगे' यह बात झूठी हो जायगी। जो किसानों की खेती पर भी ख़ुदा की दृष्टि है, यह विद्या खेती करने के अनुभव ही से होती है और यदि माना जाय कि ख़ुदा ने अपनी विद्या से सब बात जान ली है तो ऐसा भय देना अपना घमण्ड प्रसिद्ध करना है। यदि अल्लाह ने जीवों के दिलों पर मोहर लगा पाप कराया, तो उस पाप का भागी वही होवे, जीव नहीं हो सकते। जैसे जय पराजय सेनाधीश का होता है, वैसे यह सब पाप ख़ुदा ही को प्राप्त होवे॥ १३१॥

१३२. ये आयतें हैं किताब हिक्मत वाले की॥ उत्पन्न किया आसमानों को विना सुतून अर्थात् खम्भे के देखते हो तुम उस को और डाले बीच पृथिवी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे॥ क्या नहीं देखा तूने यह कि अल्लाह प्रवेश कराता है रात को बीच दिन के और प्रवेश कराता है दिन को बीच रात के॥ क्या नहीं देखा कि किश्तियां चलती हैं बीच दर्य्या के साथ निआमतों अल्लाह के, तो कि दिखलावे तुम को निशानियां अपनी॥

—मं० ५। सि० २१। सू० ३१। आ० २।१०।२९।३१॥

समीक्षक—वाह जी! हिक्मतवाली किताब! कि जिस में सर्वथा विद्या से विरुद्ध आकाश की उत्पत्ति और उस में खम्भे लगाने की शंका और पृथिवी को स्थिर रखने के लिये पहाड़ रखना! थोड़ी सी विद्या वाला भी ऐसा लेख कभी नहीं करता और न मानता। और हिक्मत देखो कि जहाँ दिन है वहां रात नहीं और जहां रात है वहां दिन नहीं, उसको एक दूसरे में प्रवेश कराना लिखता है, यह बड़े अविद्वानों की बात है, इसलिये यह कुरान विद्या की पुस्तक नहीं हो सकती। क्या यह विद्याविरुद्ध बात नहीं है कि नौका, मनुष्य और क्रियाकौशलादि से चलती हैं वा ख़ुदा की कृपा से? यदि लोहे वा पत्थरों की नौका बना कर समुद्र में चलावें तो ख़ुदा की निशानी डूब जाय वा नहीं? इसलिये यह पुस्तक न विद्वान् और न ईश्वर की बनाई हुई हो सकती है॥ १३२॥

१३३. तदबीर करता है काम की आसमान से तर्फ़ पृथिवी की फिर चढ़ जाता है तर्फ़ उस की बीच एक दिन के कि है अवधि उस की सहस्र वर्ष उन वर्षों से कि गिनते हो तुम॥ यह है जानने वाला गैब का

और प्रत्यक्ष का दयालु॥ फिर पुष्ट किया उस को और फूंका बीच उस के रूह अपनी से॥ यह क़ब्ज करेगा तुम को फ़रिश्ता मौत का वह जो नियत किया गया है साथ तुम्हारे॥ और जो चाहते हम अवश्य देते हम हर एक जीव को शिक्षा उस की, परन्तु सिद्ध हुई बात मेरी ओर से कि अवश्य भरूंगा मैं दोज़ख़ को जिनों से और आदमियों से इकट्ठे॥

—मं० ५। सि० २१। सू० ३२। आ० ५।६।९।११।१३॥

समीक्षक—अब ठीक सिद्ध हो गया कि मुसलमानों का ख़ुदा मनुष्यवत् एकदेशी है। क्योंकि जो व्यापक होता तो एकदेश से प्रबन्ध करना और उतरना चढ़ना नहीं हो सकता। यदि ख़ुदा फ़रिश्ते को भेजता है तो भी आप एकदेशी हो गया। आप आसमान पर टंगा बैठा है और फ़रिश्तों को दौड़ाता है। यदि फ़रिश्ते रिश्वत लेकर कोई मामला बिगाड़ दें वा किसी मुर्दे को छोड़ जायें, तो ख़ुदा को क्या मालूम हो सकता है? मालूम तो उसको हो कि जो सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक हो, सो तो है ही नहीं; होता तो फ़रिश्तों के भेजने तथा कई लोगों की कई प्रकार से परीक्षा लेने का क्या काम था? और एक हजार वर्षों में प्रबन्ध करने से सर्वशक्तिमान् भी नहीं। यदि मौत का फ़रिश्ता है, तो उस फ़रिश्ते का मारने वाला कौन सा मृत्यु है? यदि वह नित्य है, तो अमरपन में ख़ुदा के बराबर शरीक हुआ। एक फ़रिश्ता एक समय में यदि दोज़ख़ भरने के लिये जीवों को शिक्षा नहीं करता और उन को विना पाप किये अपनी मर्ज़ी से दोज़ख़ भर के उन को दु:ख देकर तमाशा देखता है, तो वह ख़ुदा पापी अन्यायकारी और दयाहीन है। ऐसी बातें जिस पुस्तक में हों, न वह विद्वान् और ईश्वरकृत, और जो दया न्यायहीन है वह ईश्वर भी कभी नहीं हो सकता॥ १३३॥

१३४. कह कि कभी न लाभ देगा भागना तुम को जो भागो तुम मृत्यु वा क़त्ल से॥ ऐ बीबियो नबी की! जो कोई आवे तुम में से निर्लज्जता प्रत्यक्ष के, दुगुणा किया जायेगा वास्ते उस के अज़ाब, और है यह ऊपर अल्लाह के सहल॥

—मं० ५। सि० २१। सू० ३३। आ० १६।३०॥

समीक्षक—यह मुहम्मद साहेब ने इसलिये लिखा लिखवाया होगा

कि लड़ाई में कोई न भागे, हमारा विजय होवे, मरने से भी न डरे, ऐश्वर्य बढ़े मज़हब बढ़ा लेवें? और यदि बीबी निर्लज्जता से पैग़म्बर के सामने न आवे, तो क्या पैग़म्बर साहेब निर्लज्ज हो कर उनके सामने जावें? और पैग़म्बर साहेब पर अज़ाब न होवे, यह किस घर का न्याय है?॥ १३४॥

१३५. और अटकी रहो बीच घरों अपने के,....और आज्ञा पालन करो अल्लाह और रसूल की, सिवाय इस के नहीं॥ बस जब अदा कर ली जैद ने हाज़त उस से ब्याह दिया हम ने तुझ से उस को तौकि न होवे ऊपर ईमान वालों के तंगी बीच बीबियों लेपालकों उनके के, जब अदा कर लें उन से हाज़त और है आज्ञा ख़ुदा की की गई॥ नहीं है ऊपर नबी के कुछ तंगी बीच उस वस्तु के॥ नहीं है मुहम्मद बाप किसी मर्दों का॥ और हलाल की स्त्री ईमानवाली जो देवे विना महर के जान अपनी वास्ते नबी के॥ ढील देवे तू जिस को चाहे उन में से और जगह देवे तर्फ़ अपनी जिस को चाहे, नहीं पाप ऊपर तेरे॥ ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो मत प्रवेश करो घरों में पैग़म्बर के॥

—मं० ५। सि० २२। सू० ३३। आ० ३३।
३७।३८।४०।५०।५१।५३॥

समीक्षक—यह बड़े अन्याय की बात है कि स्त्री घर में क़ैद के समान रहे और पुरुष खुल्ले रहें। क्या स्त्रियों का चित्त शुद्ध वायु, शुद्ध देश में भ्रमण करना, सृष्टि के अनेक पदार्थ देखना नहीं चाहता होगा? इसी अपराध से मुसलमानों के लड़के विशेष कर सैलानी और विषयी होते हैं। अल्लाह और रसूल की एक अविरुद्ध आज्ञा है वा भिन्न-भिन्न विरुद्ध? यदि एक है तो दोनों की आज्ञा पालन करो कहना व्यर्थ है और जो भिन्न-भिन्न विरुद्ध है तो एक सच्ची और दूसरी झूठी? एक ख़ुदा, दूसरा शैतान हो जायगा। और शरीक भी होगा? वाह क़ुरान का ख़ुदा और पैग़म्बर तथा क़ुरान को! जिस को दूसरे का मतलब नष्ट कर अपना मतलब सिद्ध करना इष्ट हो ऐसी लीला अवश्य रचता है। इस से यह भी सिद्ध हुआ कि मुहम्मद साहेब बड़े विषयी थे। यदि न होते तो लेपालक की स्त्री को जो पुत्र की स्त्री थी अपनी स्त्री क्यों कर लेते? और फिर

ऐसी बातें करने वाले का ख़ुदा भी पक्षपाती बना और अन्याय को न्याय ठहराया। भला, कोई भी मनुष्यों में से जो जङ्गली भी होगा, वह भी बेटे की स्त्री को छोड़ता है। और यह कितनी बड़ी अन्याय की बात है कि नबी को विषयासक्ति की लीला करने में कुछ भी अटकाव नहीं होना! यदि नबी किसी का बाप न था तो ज़ैदको (लेपालक) बेटा किस का था? और क्यों लिखा? यह उसी मतलब की बात है कि जिस से बेटे की स्त्री को भी घर में डालने से पैग़म्बर साहेब न बचे, अन्य से क्योंकर बचे होंगे? ऐसी चतुराई से भी बुरी बात में निन्दा होनी कभी नहीं छूट सकती। क्या जो कोई पराई स्त्री भी नबी से प्रसन्न हो कर विवाह करना चाहे, तो भी हलाल है? और यह महा अधर्म की बात है कि नबी तो जिस स्त्री को चाहे छोड़ देवे और मुहम्मद साहेब की स्त्रीलोग यदि पैग़म्बर अपराधी भी हो, तो कभी न छोड़ सकें! जैसे पैग़म्बर के घरों में अन्य कोई व्यभिचार दृष्टि से प्रवेश न करें, तो वैसे पैग़म्बर साहेब भी किसी के घर में प्रवेश न करें। क्या नबी जिस किसी के घर में चाहें निश्शङ्क प्रवेश करें और माननीय भी रहें? भला! कौन ऐसा हृदय का अन्धा है कि जो इस क़ुरान को ईश्वरकृत और मुहम्मद साहेब को पैग़म्बर और कुरानोक्त ईश्वर को परमेश्वर मान सके। बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे युक्तिशून्य धर्मविरुद्ध बातों को अर्बदेशनिवासी आदि मनुष्यों ने इस मत को क्योंकर मान लिया!॥ १३५ ॥

१३६. नहीं योग्य वास्ते तुम्हारे यह कि दुःख दो रसूल को, यह कि निकाह करो बीबियों उस की को पीछे उस के कभी, निश्चय यह है समीप अल्लाह के बड़ा पाप॥ निश्चय जो लोग कि दु;ख देते हैं अल्लाह को और रसूल उस के को, लानत की है उन को अल्लाह ने॥ और वे लोग कि दुःख देते हैं मुसलमानों को और मुसलमान औरतों को विना इसके बुरा किया है उन्होंने, बस निश्चय उठाया उन्होंने बोहतान अर्थात् झूठ और प्रत्यक्ष पाप॥ लानत, मारे जावें जहां पाये जावें, पकड़े जावें और मारे जावें खूब मारा जाना॥ ऐ रब हमारे, दे उन को द्विगुणा अज़ाब से, और लानत से बड़ी लानत कर॥

—मं० ५। सि० २२। सू० ३३। आ० ५३।५७।५८।६१।६८॥

समीक्षक—वाह! क्या ख़ुदा अपनी खुदाई को धर्म के साथ दिखला रहा है? जैसे रसूल को दुःख देने का निषेध करना तो ठीक है परन्तु दूसरे को दुःख देने में रसूल को भी रोकना योग्य था, क्यों न रोका? क्या किसी के दुःख देने से अल्लाह भी दुःखी हो जाता है? यदि ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। क्या अल्लाह और रसूल को दुःख देने का निषेध करने से यह नहीं सिद्ध होता कि अल्लाह और रसूल जिस को चाहें दुःख देवें? जैसा मुसलमानों और मुसलमानों की स्त्रियों को दुःख देना बुरा है तो इन से अन्य मनुष्यों को दुःख देना भी अवश्य बुरा है।। क्या अन्य सबको दुःख देना चाहिये? जो ऐसा माने, तो उस की यह बात भी पक्षपात की है। वाह ग़दर मचाने वाले ख़ुदा और नबी! जैसे ये निर्दयी हैं वैसे निर्दयी संसार में बहुत थोड़े होंगे। जैसा यह कि 'अन्य लोग जहां पाये जावें, मारे जावें, पकड़े जावें', लिखा है वैसा ही मुसलमानों पर कोई ऐसी ही आज्ञा देवे तो मुसलमानों को यह बात बुरी लगेगी वा नहीं? वाह क्या हिंस्र पैग़म्बर आदि हैं कि जो परमेश्वर से प्रार्थना करके अपने से दूसरों को दुगुणा दुःख देने के लिये प्रार्थना करना लिखा है। यह भी पक्षपात मतलबसिन्धुपन और महा अधर्म की बात है। इसी से अब तक भी मुसलमान लोगों में से बहुत से शठ लोग ऐसा ही कर्म करने में नहीं डरते। यह ठीक है कि सुशिक्षा के विना मनुष्य पशु के समान रहता है॥ १३६ ॥

१३७. और अल्लाह वह पुरुष है कि भेजता है हवाओं को बस उठाती हैं बादलों को, बस हांक लेते हैं तर्फ़ शहर मुर्दे की, बस जीवित किया हम ने साथ उसके पृथिवी को पीछे मृत्यु उस की के, इसी प्रकार क़बरों में से निकलना है॥ जिसने उतारा बीच घर सदा रहने के दया अपनी से, नहीं लगती हम को बीच उसके मेहनत और नहीं लगती बीच उस के मांदगी॥ —मं० ५। सि० २। सू० ३५। आ० ९।३५॥

समीक्षक—वाह क्या फ़िलासफ़ी ख़ुदा की है। भेजता है वायु को, वह उठाता फिरता है बद्दलों को! और ख़ुदा उससे मुर्दों को जिलाता फिरता है! यह बात ईश्वर सम्बन्धी कभी नहीं हो सकती, क्योंकि ईश्वर का काम निरन्तर एक सा होता रहता है। जो घर होंगे वे विना

बनावट के नहीं हो सकते और जो बनावट का है वह सदा नहीं रह सकता। जिस के शरीर है वह परिश्रम के विना दु:खी होता और शरीर वाला रोगी हुए विना कभी नहीं बचता। जो एक स्त्री से समागम करता है, वह विना रोग के नहीं बचता, तो जो बहुत स्त्रियों से विषयभोग करता है, उस की क्या ही दुर्दशा होती होगी? इसलिये मुसलमानों का बहिश्त भी सुखदायक सदा नहीं हो सकता॥ १३७॥

१३८. क़सम है क़ुरान दृढ़ की॥ निश्चय तू भेजे हुओं से है॥ ऊपर मार्ग सीधे के॥ उतारा है ग़ालिब दयालु ने॥

—मं० ५। सि० २३। सू० ३६। आ० २।३।४।५॥

समीक्षक—अब देखिये! यह क़ुरान ख़ुदा की बनाई होती तो वह इस की सौगंध क्यों खाता? यदि नबी ख़ुदा का भेजा होता, तो लेपालक बेटे की स्त्री पर मोहित क्यों होता? यह कथनमात्र है कि क़ुरान के मानने वाले सीधे मार्ग पर हैं। क्योंकि सीधा मार्ग वही होता है जिस में सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना; पक्षपात रहित न्याय धर्म्म का आचरण करना आदि हैं और इनसे विपरीत का त्याग करना। सो न क़ुरान में, न मुसलमानों में और न इनके ख़ुदा में ऐसा स्वभाव है। यदि सब पर प्रबल पैग़म्बर मुहम्मद साहेब होते, तो सबसे अधिक विद्यावान् और शुभगुणयुक्त क्यों न होते? इसलिये जैसी कूंजड़ी अपने बेरों को खट्टा नहीं बतलाती, वैसी यह बात भी है॥ १३८॥

१३९. और फूंका जावेगा बीच सूर के बस नागहां वह कबरों में से तर्फ़ मालिक अपने की दौड़ेंगे॥ और गवाही देंगे पांव उनके साथ उस वस्तु के कमाते थे॥ सिवाय इसके नहीं कि आज्ञा उसकी जब चाहे उत्पन्न करना किसी वस्तु का यह कि कहता वास्ते उसके कि हो जा, बस हो जाता है॥ —मं० ५। सि० २३। सू० ३६। आ० ५१।६५।८२॥

समीक्षक—अब सुनिये ऊटपटांग बातें! पग कभी गवाही दे सकते हैं? ख़ुदा के सिवाय उस समय कौन था जिस को आज्ञा दी? किसने सुनी? और कौन बन गया? यदि न थी तो यह बात झूठी और जो थी तो वह बात—जो सिवाय ख़ुदा के कुछ चीज़ नहीं थी और ख़ुदा ने सब कुछ बना दिया—वह झूठी॥ १३९॥

१४०. फिराया जावेगा उनके ऊपर पियाला शराब शुद्ध का॥ सपैद मज़ा देने वाली वास्ते पीने वालों के॥ समीप उनके बैठी होंगी नीचे आंख रखने वालियां सुन्दर आंखों वालियां॥ मानो कि वे अण्डे हैं छिपाये हुए॥ क्या बस हम नहीं मरेंगे॥ और अवश्य लूत निश्चय पैग़म्बरों से था॥ जब कि मुक्ति दी हमने उसको और लोगों उसके को सब को॥ परन्तु एक बुढ़िया पीछे रहने वालों में है॥ फिर मारा हम ने औरों को॥

—मं० ६। सि० २३। सू० ३७। आ० ४३।४५।४६।४८।४९। ५८।१३३।१३४।१३५।१३६॥

समीक्षक—क्योंजी यहां तो मुसलमान लोग शराब को बुरा बतलाते हैं परन्तु इनके स्वर्ग में तो नदियों की नदियां बहती हैं। इतना अच्छा है कि यहां तो किसी प्रकार मद्य पीना तो छुड़ाया है, परन्तु यहां के बदले वहां उनके स्वर्ग में बड़ी खराबी है! मारे स्त्रियों के वहां किसी का चित्त स्थिर नहीं रहता होगा! और बड़े-बड़े रोग भी होते होंगे! यदि शरीर वाले होंगे तो अवश्य मरेंगे और जो शरीर वाले न होंगे, तो भोग विलास ही न कर सकेंगे। फिर उनके स्वर्ग में जाना व्यर्थ है। यदि लूत को पैग़म्बर मानते हैं तो जो बायबिल में लिखा है कि उससे उसकी लड़कियों ने समागम करके दो लड़के पैदा किये, इस बात को भी मानते हो वा नहीं? जो मानते हो, तो ऐसे को पैग़म्बर मानना व्यर्थ है। और जो ऐसे और ऐसे के सङ्गियों को खुदा मुक्ति देता है, तो वह ख़ुदा भी वैसा ही है। क्योंकि बुढ़िया की कहानी कहने वाला और पक्षपात से दूसरों को मारने वाला ख़ुदा कभी नहीं हो सकता। ऐसा ख़ुदा मुसलमानों ही के घर में रह सकता है, अन्यत्र नहीं॥ १४०॥

१४१. बहिश्तें हैं सदा रहने की खुले हुए हैं दर उनके वास्ते उनके॥ तकिये किये हुए बीच उनके मंगावेंगे बीच इसके मेवे और पीने की वस्तु॥ और समीप होंगी उनके, नीचे रखने वालियां दृष्टि और दूसरों से समायु॥ बस सिज़दा किया फ़रिश्तों ने सबने॥ परन्तु शैतान ने न माना, अभिमान किया और था काफ़िरों से॥ ऐ शैतान किस वस्तु ने रोका तुझको यह कि सिज़दा करे वास्ते उस वस्तु के कि बनाया मैंने साथ दोनों हाथ अपने के, क्या अभिमान किया तूने वा था तू बड़े अधिकार

वालों से॥ कहा कि मैं अच्छा हूँ उस वस्तु से, उत्पन्न किया तूने मुझको आग से, उसको मिट्टी से॥ कहा बस निकल इन आसमानों में से, बस निश्चय तू चलाया गया है॥ निश्चय तेरे लानत है मेरी दिन जज़ा तक॥ कहा ऐ मालिक मेरे, ढील दे उस दिन तक कि उठाये जावेंगे मुर्दे॥ कहा कि बस निश्चय तू ढील दिये गयों से है॥ उस दिन समय ज्ञात तक॥ कहा कि बस क़सम है प्रतिष्ठा तेरी की, अवश्य गुमराह करूंगा उनको मैं इकट्ठे॥ —मं० ६। सि० २३। सू० ३८। आ० ५०।५१।५२।७३। ७४।७५।७६।७७।७८।७९।८०।८१।८२॥

समीक्षक—यदि वहां जैसे कि क़ुरान में बाग़ बगीचे नहरें मकानादि ये लिखा हैं वैसे हैं तो वे न सदा से थे, न सदा रह सकते हैं क्योंकि जो संयोग से पदार्थ होता है वह संयोग के पूर्व न था, अवश्यम्भावी वियोग के अन्त में न रहेगा। जब वह बहिश्त ही न रहेगा तो उसमें रहने वाले सदा क्योंकर रह सकते हैं? क्योंकि 'गादी, तकिये, मेवे और पीने के पदार्थ वहां मिलेंगे' लिखा है। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय मुसलमानों का मज़हब चला, उस समय अर्बदेश विशेष धनाढ्य न था, इसीलिये मुहम्मद साहेब ने तकिये आदि की कथा सुनाकर ग़रीबों को अपने मत में फसा लिये और जहां स्त्रियां हैं वहां निरन्तर सुख कहां? वे स्त्रियां वहां कहां से आई हैं? अथवा बहिश्त की रहीस हैं? यदि आई हैं तो जावेंगी और जो वहीं की रहीस हैं तो क़यामत के पूर्व क्या करती थीं? क्या निकम्मी अपनी उमर को बहा रही थीं? अब देखिये खुदा का तेज! कि जिसका हुक्म अन्य सब फ़रिश्तों ने माना और आदम साहेब को नमस्कार किया और शैतान ने न माना! खुदा ने शैतान से पूछा कहा कि मैंने तुझ को अपने दोनों हाथों से बनाया, तू अभिमान न कर। इससे यह सिद्ध हुआ कि क़ुरान का ख़ुदा दो हाथ वाला मनुष्य था। इसलिये वह व्यापक वा सर्वशक्तिमान् कभी नहीं हो सकता। और शैतान ने सत्य कहा कि मैं आदम से उत्तम हूं, इस पर खुदा ने गुस्सा क्यों किया? क्या आसमान ही खुदा का घर है पृथिवी में नहीं? तो क़ाबे को ख़ुदा का घर प्रथम क्यों लिखा? भला परमेश्वर अपने में से वा सृष्टि में से अलग कैसे निकाल सकता है? और वह सृष्टि सब

परमेश्वर की है इससे स्पष्ट विदित हुआ कि क़ुरान का खुदा बहिश्त का ज़िम्मेदार था। खुदा ने उसको लानत धिक्कार दिया और कैद कर लिया, शैतान ने कहा कि हे मालिक! मुझ को क़यामत तक छोड़ दे। खुदा ने खुशामद से छोड़ दिया क़यामत के दिन तक। जब शैतान छूटा तो खुदा से कहता है कि अब मैं खूब बहकाऊंगा और ग़दर मचाऊंगा। तब खुदा ने कहा कि मैं, जितने को तू बहकावेगा, दोज़ख में डाल दूंगा और तुझ को भी। अब सज्जन लोगो विचारिये! कि शैतान को बहकाने वाला खुदा है वा आप से वह बहका? यदि खुदा ने बहकाया, तो वह शैतान का शैतान ठहरा। यदि शैतान स्वयं बहका, तो अन्य जीव भी स्वयं बहकेंगे, शैतान की जरूरत नहीं! और जिससे इस शैतान बाग़ी को खुदा ने खुला छोड़ दिया, इससे विदित हुआ कि वह भी शैतान का शरीक़, अधर्म कराने में हुआ। यदि स्वयं चोरी कराके दण्ड देवे, तो उसके अन्याय का कुछ भी पारावार नहीं॥ १४१॥

१४२. अल्लाह क्षमा करता है पाप सारे, निश्चय वह है क्षमा करने वाला दयालु॥ और पृथिवी सारी मूठी में है उसकी दिन क़यामत के और आसमान लपेटे हुए हैं बीच दाहिने हाथ उसके के॥ और चमक जावेगी पृथिवी साथ प्रकाश मालिक अपने के और रक्खे जावेंगे कर्मपत्र और लाया जावेगा पैग़म्बरों को और गवाहों को और फैसला किया जावेगा॥ —मं० ६। सि० २४। सू० ३९। आ० ५३।६७।६९॥

समीक्षक—यदि समग्र पापों को खुदा क्षमा करता है तो जानो सब संसार को पापी बनाता और दयाहीन है, क्योंकि एक दुष्ट पर दया और क्षमा करने से वह अधिक दुष्टता करेगा और बहुत धर्मात्माओं को दुःख पहुँचावेगा। यदि किञ्चित् भी अपराध क्षमा किया जावे, तो अपराध ही अपराध जगत् में छा जावे। क्या परमेश्वर अग्निवत् प्रकाश वाला है? और कर्मपत्र कहां जमा रहते हैं और कौन लिखता है? यदि पैगम्बरों और गवाहों के भरोसे ख़ुदा न्याय करता है, तो वह असर्वज्ञ और असमर्थ है। यदि वह अन्याय नहीं करता, न्याय ही करता है, तो कर्मों के अनुसार करता होगा। वे कर्म पूर्वापर वर्त्तमान जन्मों के हो सकते हैं, तो फिर क्षमा करता, दिलों पर ताला लगाता और शिक्षा न

करनी, शैतान से बहकवाना, दौरा सुपुर्द रखना केवल अन्याय है॥ १४२॥

१४३. उतारना किताब का अल्लाह ग़ालिब जानने वाले की ओर से है॥ क्षमा करने वाला पापों का और स्वीकार करने वाला तोबा: का॥

—मं० ६। सि० २४। सू० ४०। आ० २। ३॥

समीक्षक—यह बात इसलिये है कि भोले लोग अल्लाह के नाम से इस पुस्तक को मान लेवें कि जिसमें थोड़ा सा सत्य छोड़ असत्य भरा है और वह सत्य भी असत्य के साथ मिलकर बिगड़ा सा है। इसीलिये क़ुरान और कुरान का ख़ुदा और इस को मानने वाले पाप बढ़ानेहारे और पाप करने-कराने वाले हैं, क्योंकि 'पाप की क्षमा करनी' अत्यन्त अधर्म है। किन्तु इसी से मुसलमान लोग पाप और उपद्रव करने में कम डरते हैं॥ १४३॥

१४४. बस नियत किया उनको सात आसमान बीच दो दिन के, और डाल दिया हमने बीच उसके काम उसका॥ यहाँ तक कि जब जावेंगे उसके पास साक्षी देंगे ऊपर उनके कान उनके और आंखें उनकी और चमड़े उनके, उनके कर्म से॥ और कहेंगे वास्ते चमड़े अपने के क्यों साक्षी दी तूने ऊपर हमारे, कहेंगे कि बुलाया है हम को अल्लाह ने जिसने बुलाया हर वस्तु को॥ अवश्य जिलाने वाला है मुर्दों को॥

—मं० ६। सि० २४। सू० ४१। आ० १२। २०। २१। ३९॥

समीक्षक—वाह जी वाह मुसलमानो! तुम्हारा ख़ुदा जिस को तुम सर्वशक्तिमान् मानते हो, तो वह सात आसमानों को दो दिन में बना सका? और जो सर्वशक्तिमान् है वह क्षणमात्र में सब को बना सकता है। भला कान, आंख और चमड़े को ईश्वर ने जड़ बनाया है वे साक्षी कैसे दे सकेंगे? यदि साक्षी दिलावे, तो उसने प्रथम जड़ क्यों बनाया? और अपना पूर्वापर नियमविरुद्ध क्यों किया? एक इससे भी बढ़के मिथ्या बात यह कि जब जीवों पर साक्षी दी, तब वे जीव अपने-अपने चमड़े से पूछने लगे कि तूने हमारे पर साक्षी क्यों दी? चमड़ा बोला कि खुदा ने दिलायी, मैं क्या करूं! भला यह बात कभी हो सकती है? जैसे कोई कहे कि बन्ध्या के पुत्र का मुख मैंने देखा, यदि पुत्र है तो बन्ध्या क्यों? जो बन्ध्या है, तो उसके पुत्र ही होना असम्भव है। इसी प्रकार

की यह भी मिथ्या बात है। यदि वह मुर्दों को जिलाता है, तो प्रथम मारा ही क्यों? क्या आप भी मुर्दा हो सकता है वा नहीं? यदि नहीं हो सकता, तो मुर्देपन को बुरा क्यों समझता है? और क़यामत की रात तक मृतक जीव किस मुसलमान के घर में रहे? और दौरासुपुर्द खुदा ने विना अपराध क्यों रक्खा? शीघ्र न्याय क्यों न किया? ऐसी-ऐसी बातों से ईश्वरता में बट्टा लगता है॥ १४४॥

१४५. वास्ते उस के कुंजियां हैं आसमानों की और पृथिवी की, खोलता है भोजन जिस के वास्ते चाहता है और तंग करता है॥ उत्पन्न करता है जो कुछ चाहता है और देता है जिस को चाहे बेटियां और जिसको चाहे बेटे॥ वा मिला देता है उनको बेटे बेटियां और जिसको चाहे बांझ॥ और नहीं है शक्ति किसी आदमी को कि बात करे उससे अल्लाह परन्तु जी में डालने कर वा पीछे परदे* के से वा भेजे फ़रिश्ते पैग़ाम लाने वाला॥

—मं० ६। सि० २५। सू० ४२। आ० १२। ४९। ५०। ५१॥

समीक्षक—खुदा के पास कुंजियों का भण्डार भरा होगा। क्योंकि सब ठिकाने के ताले खोलने होते होंगे! यह लड़कपन की बात है। क्या जिसको चाहता है उसको विना पुण्य कर्म के ऐश्वर्य्य देता है और तंग करता है? यदि ऐसा है तो वह बड़ा अन्यायकारी है। अब देखिये क़ुरान बनाने वाले की चतुराई! कि जिस से स्त्रीजन भी मोहित होके फसें। यदि जो कुछ चाहता है उत्पन्न करता है, तो दूसरे ख़ुदा को उत्पन्न कर सकता है वा नहीं? यदि नहीं कर सकता, तो सर्वशक्तिमत्ता यहां पर अटक गई। भला मनुष्यों को तो जिन को चाहे बेटे बेटियां ख़ुदा देता है

* इस आयत के भाष्य 'तफ़सीरहुसैनी' में लिखा है कि "मुहम्मद साहेब दो परदों में थे और खुदा की आवाज सुनी। एक पर्दा ज़री का था दूसरा श्वेत मोतियों का और दोनों परदों के बीच में सत्तर वर्ष चलने योग्य मार्ग था?" बुद्धिमान् लोग इस बात को विचारें कि यह खुदा है वा परदे की ओट बात करनेवाली स्त्री? इन लोगों ने तो ईश्वर ही की दुर्दशा कर डाली। कहाँ वेद तथा उपनिषदादि सद्ग्रन्थों में प्रतिपादित शुद्ध परमात्मा और कहाँ कुरानोक्त परदे की ओट से बात करनेवाला खुदा! सच तो यह है कि अरब के अविद्वान् लोग थे, उत्तम बात लाते किसके घर से?

परन्तु मुरगे, मच्छी, सूअर आदि जिन के बहुत बेटा बेटियां होती हैं, कौन देता है? और स्त्री-पुरुष के समागम विना क्यों नहीं देता? किसी को अपनी इच्छा से बांझ रख के दुःख क्यों देता है? वाह! क्या ख़ुदा तेजस्वी है कि उस के सामने कोई बात ही नहीं कर सकता! परन्तु उसने पहिले कहा है कि पर्दा डाल के बात कर सकता है वा फ़रिश्ते लोग ख़ुदा से बात करते हैं अथवा पैग़म्बर। जो ऐसी बात है, तो फ़रिश्ते और पैग़म्बर खूब अपना मतलब करते होंगे! यदि कोई कहे ख़ुदा सर्वज्ञ सर्वव्यापक है, तो 'परदे से बात करना अथवा डाक के तुल्य खबर मंगा के जानना' लिखना व्यर्थ है। और जो ऐसा ही है, तो वह ख़ुदा ही नहीं, किन्तु कोई चालाक मनुष्य होगा। इसीलिये यह क़ुरान ईश्वरकृत कभी नहीं हो सकता॥ १४५ ॥

१४६. और जब आया ईसा साथ प्रमाण प्रत्यक्ष के॥

—मं० ६। सि० २५। सू० ४३। आ० ६३॥

समीक्षक—यदि ईसा भी भेजा हुआ ख़ुदा का है तो उस के उपदेश से विरुद्ध क़ुरान ख़ुदा ने क्यों बनाई? और क़ुरान से विरुद्ध अञ्जील क्यों की? इसीलिये ये किताबें ईश्वरकृत नहीं हैं॥ १४६ ॥

१४७. पकड़ो उस को बस घसीटो उस को बीचों बीच दोज़ख़ के॥ इसी प्रकार रहेंगे और ब्याह देंगे उन को साथ गोरियों अच्छी आंख वालियों के॥ —मं० ६। सि० २५। सू० ४४। आ० ४७।५४॥

समीक्षक—वाह! क्या ख़ुदा न्यायकारी होकर पकड़ाता और घसीटवाता है प्राणियों को? जब मुसलमानों का ख़ुदा ही ऐसा है तो उसके उपासक मुसलमान अनाथ निर्बलों को पकड़ें घसीटें तो इस में क्या आश्चर्य है?।। और वह संसारी मनुष्यों के समान विवाह भी कराता है, जानो कि मुसलमानों का पुरोहित ही है॥ १४७ ॥

१४८. बस जब तुम मिलो उन लोगों से कि काफ़िर हुए बस मारो गर्दनें उनकी यहां तक कि जब चूर कर दो उन को बस कठिन है क़ैद करना॥ और बहुत बस्तियां हैं कि वे बहुत कठिन थीं शक्ति में बस्ती तेरी से, जिस ने निकाल दिया तुझ को मारा हम ने उन को, बस न कोई हुआ सहाय देने वाला उन का॥ तारीफ़ उस बहिश्त की कि प्रतिज्ञा किये गये हैं परहेज़गार, बीच उस के नहरें हैं बिन बिगड़े पानी की, और नहरें हैं दूध की कि नहीं बदला मज़ा उन का, और नहरें हैं शराब की मज़ा देने वाली पीने वालों को, और नहरें हैं शहद साफ़ किये गये की, और वास्ते उन के बीच उस के मेवे हैं प्रत्येक प्रकार से दान मालिक उन के से॥ —मं० ६। सि० २६। सू० ४७। आ० ४।१३।१५॥

समीक्षक—इसी से यह क़ुरान, ख़ुदा और मुसलमान गदर मचाने, सब को दुःख देने, अपना मतलब साधने वाले दयाहीन हैं। जैसा यहां लिखा है वैसा ही दूसरा, कोई दूसरे मत वाला मुसलमानों पर करे तो मुसलमानों को वैसा ही दुःख जैसा कि अन्य को दुःख देते हैं, हो वा नहीं? और बड़ा पक्षपाती है कि जिन्होंने मुहम्मद साहेब को निकाल दिया, उन को ख़ुदा ने मारा। भला! जिस में शुद्ध पानी, दूध, मद्य और शहद की नहरें हैं वह संसार से अधिक नहीं हो सकता। और दूध की नहरें कभी नहीं हो सकती, क्योंकि वह थोड़े समय में बिगड़ जाता है। इसीलिये बुद्धिमान् लोग क़ुरान के मत को नहीं मानते॥ १४८ ॥

१४९. जब कि हिलाई जावेगी पृथिवी हिलाये जाने कर॥ उड़ाये जावेंगे पहाड़ उड़ाये जाने कर॥ बस हो जावेंगे भुनुगे॥ बस साहब दाहिने ओर वाले क्या हैं साहब दाहिनी ओर के॥ और बामी ओर वाले क्या हैं, बामी ओर वाले॥ ऊपर पलङ्ग सोने के तारों से बुने हुए हैं। तकिये किये हुए हैं ऊपर उनके आमने सामने॥ और फिरेंगे ऊपर उन के लड़के सदा रहने वाले॥ साथ आबखोंरों के और आफ़ताबों के और प्यालों के शराब साफ़ से॥ नहीं माथा दुखाये जावेंगे उस से और न विरुद्ध बोलेंगे॥ और मेवे उस क़िस्म से कि पसन्द करें। और गोश्त ज़ानवर पक्षियों के उस क़िस्म से कि पसन्द करें॥ और वास्ते उनके औरतें हैं अच्छी आंखों वाली॥ मानिन्द मोतियों छिपाये हुओं की॥ और बिछौने बड़े॥ निश्चय हम ने उत्पन्न किया है औरतों को कुमारी एक प्रकार का उत्पन्न करना।। सुहागवालियां बराबर अवस्था वालियां॥ बस भरने वाले हो उस से पेटों को॥ बस क़सम खाता हूं मैं साथ गिरने तारों के॥ —मं० ७। सि० २७। सू० ५६। आ० ४।५।६।८।९।१५।
१६।१७।१८।१९।२०।२१।२२।२३।३४।३५।३६।३७।५३।७५॥

समीक्षक—अब देखिये क़ुरान बनाने वाले की लीला को! भला पृथिवी तो हिलती ही रहती है उस समय भी हिलती रहेगी। इस से यह सिद्ध होता है कि क़ुरान बनाने वाला पृथिवी को स्थिर जानता था! भला पहाड़ों को क्या पक्षीवत् उड़ा देगा? यदि भुनुगे हो जावेंगे तो भी सूक्ष्म शरीरधारी रहेंगे तो फिर उनका दूसरा जन्म क्यों नहीं? वाह जी! जो ख़ुदा शरीरधारी न होता तो उसके दाहिनी ओर और बाईं ओर कैसे खड़े हो सकते? जब वहां पलङ्ग सोने के तोरों से बुने हुए हैं तो बढ़ई सुनार भी वहां रहते होंगे और खटमल काटते होंगे जो उनको रात्रि में सोने भी नहीं देते होंगे। क्या वे तक्रिये लगाकर निकम्मे बहिश्त में बैठे ही रहते हैं वा कुछ काम किया करते हैं? यदि बैठे ही रहते होंगे, तो उनको अन्न के पचन न होने से वे रोगी होकर शीघ्र मर भी जाते होंगे? और जो काम किया करते होंगे, तो जैसे मेहनत मज़दूरी यहां करते हैं, वैसे ही वहां मेहनत परिश्रम करके निर्वाह करते होंगे फिर यहां से वहां बहिश्त में विशेष क्या है? कुछ भी नहीं। यदि वहां लड़के सदा रहते हैं तो उन के मा बाप भी रहते होंगे और सासु श्वशुर भी रहते होंगे तब तो बड़ा भारी शहर बसता होगा फिर मल मूत्रादि के बढ़ने से रोग भी बहुत से होते होंगे क्योंकि जब मेवे खावेंगे, गिलासों में पानी पीवेंगे, और प्यालों से मद्य पीवेंगे न उन का सिर दूखेगा और न कोई विरुद्ध बोलेगा। यथेष्ट मेवा खावेंगे और जानवरों तथा पक्षियों के मांस भी खावेंगे, तो अनेक प्रकार के दु:ख, पक्षी, जानवर वहाँ होंगे, हत्या होगी और हाड़ जहां तहां बिखरे रहेंगे और कसाइयों की दुकानें भी होंगी। वाह क्या कहना इनके बहिश्त की प्रशंसा! कि वह अरब देश से भी बढ़ कर दीखती है। और जो मद्य मांस पी खाके उन्मत्त होते हैं, इसीलिये अच्छी-अच्छी स्त्रियां और लौंडे भी वहां अवश्य रहने चाहिये, नहीं तो ऐसे नशेबाजों के शिर में गरमी चढ़के प्रमत्त हो जावेंगे। अवश्य बहुत स्त्री पुरुषों के बैठने सोने के लिये बिछौने बड़े-बड़े चाहियें। जब ख़ुदा कुमारी बहिश्त में उत्पन्न करता है, तभी कुमारे लड़कों को उत्पन्न करता है। भला! कुमारियों का तो विवाह जो यहां से उम्मेदवार होकर गये हैं, उनके साथ ख़ुदा ने कराया, परन्तु उन सदा रहने वाले लड़कों का किन्हीं कुमारियों के साथ

विवाह न लिखा, तो क्या वे भी उन्हीं उम्मेदवारों के साथ कुमारीवत् दे दिये? इसकी व्यवस्था कुछ भी न लिखी। यह ख़ुदा में बड़ी भूल क्यों हुई? यदि बराबर अवस्थावाली सुहागिन स्त्रियां पतियों को पाके बहिश्त में रहती हैं, तो ठीक नहीं हुआ, क्योंकि स्त्रियों से पुरुष का आयु दूना, ढ़ाई गुना चाहिये। यह तो मुसलमानों के बहिश्त की कथा है! और नरक वाले सिंहोड़ अर्थात् थोर के वृक्षों को खा के पेट भरेंगे तो कण्टक वृक्ष भी दोज़ख़ में होंगे तो कांटे भी लगते होंगे, गर्म पानी पियेंगे इत्यादि दु:ख दोज़ख़ में पावेंगे। क़सम का खाना प्राय: झूठे का काम है, सच्चों का नहीं। यदि ख़ुदा ही कसम खाता है तो वह भी झूठ से अलग नहीं हो सकता॥ १४९ ॥

१५०. वही है जिसने उत्पन्न किया आसमानों को और पृथिवी को बीच छ: दिनों के फिर करार पकड़ा ऊपर अर्श के।। ईमान लाओ साथ अल्लाह के और रसूल उसके के।। कौन मनुष्य है कि उधार देवे अल्लाह को उधार अच्छा बस दुगुना करे उसको वास्ते उसके॥

—मं० ७। सि० २७। सू० ५७। आ० ४।७।११॥

समीक्षक—यदि छ: दिनों में पृथिवी और आकाश को बनाकर आकाश में आराम किया तो वह शरीरधारी, एकदेशी, असमर्थ और थकनेवाला होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता। यदि ईमान में पैग़म्बर भी शरीक है तो ख़ुदा का शरीक हुआ वा नहीं और मुसलमानों के मत में ख़ुदा के सिवाय पर भी ईमान रखना आवश्यक होने से लाशरीक ख़ुदा को कहना व्यर्थ है। क्या खुदा के खजाने में टोटा पड़ गया वा कोई लूट गया अथवा खुदा ने फैल फतूरी में नाश कर दिया कि जिस किसी से उधार मांगता है और दूना देना स्वीकार करता है। भला! ऐसी-ऐसी बातें ईश्वर और ईश्वरकृत पुस्तक की कभी हो सकती हैं॥ १५०॥

१५१. अल्लाह ने क्रोध किया ऊपर काफिरों के और विशेष यहूदियों पर गालिब आया उनके शैतान बस भुला दी उनको याद ख़ुदा की ये लोग समुदाय शैतान के हैं॥

—मं० ७। सि० २८। सू० ५८। आ० १५।१९॥

समीक्षक—यदि मुसलमानी मजहब को न मानें और वे अच्छे

हों, उन पर ख़ुदा क्रोध करेगा तो अन्यायी होगा वा नहीं? और जो मुसलमानों में दुष्ट हों, उनसे प्रेम करेगा तो भी पक्षपाती होकर पापी होगा। यदि ख़ुदा की सृष्टि में शैतान प्रबल होता है और उसको ख़ुदा न पकड़, न दण्ड और न मार सकता है, इसीलिये ख़ुदा सर्वशक्तिमान् न्यायकारी भी नहीं है॥ १५१॥

१५२. वह पृथिवी अल्लाह ने लूट की प्रकार से न बटवाई, हजरत के अखत्यार में रक्खी।। यह ही भेद रक्खा लूट में और फी में जो माल लड़ाई से हाथ लगा वह लूट पांचवां भाग अल्लाह की भेंट और चार भाग लश्कर को बांटने॥ —मं० ७। सि० २८। सू० ५९। आ० २।६॥

समीक्षक—क्या कहना है! तभी तो मुसलमान लोग लूट-मार और फिसाद करने में नहीं डरते कि जिनके ख़ुदा और पैगम्बर ने लूट की पृथिवी आदि का भी स्वीकार कर लिया। क्योंकि उस लूट के माल में से पांचवां भाग अल्लाह का भी है। क्या यह ख़ुदा वा पैग़म्बर लूट के कराने वाले नहीं हुए। ऐसा ख़ुदा और पैग़म्बर को कोई बुद्धिमान् न मान सकेगा। और क्या ऐसे की बात का प्रमाण हो सकता है?॥ १५२॥

१५३. निश्चय अल्लाह मित्र रखता है उन लोगों को कि लड़ते हैं बीच मार्ग उसके के॥ —मं० ७। सि० २८। सू० ५९। आ० ४॥

समीक्षक—वाह ठीक है! ऐसी-ऐसी बातों का उपदेश करके बिचारे अरब देश वासियों को सब से लड़ा के शत्रु बना कर दु:ख परस्पर दिलाया और मज़हब का झंडा खड़ा करके लड़ाई फैलाई, ऐसे को ईश्वर, बुद्धिमान् कभी नहीं मान सकते। जो मनुष्य जाति में विरोध बढ़ावे वही सब को दु:खदाता होता है॥ १५३॥

१५४. यदि कर्ज दो तुम अल्लाह को कर्ज अच्छा दुगुणा करेगा उसको वास्ते तुम्हारे क्षमा करेगा वास्ते तुम्हारे पाप॥

—मं० ७। सि० २८। सू० ६४। आ० १७॥

समीक्षक—यह कर्ज का लेना-देना सब मुहम्मद साहेब के मतलब की बात है। जैसे मूर्तिपूजक मूर्ति के नाम से लोगों से धन लेकर स्वकार्य सिद्ध करते हैं, ऐसी ही मुहम्मद साहेब की लीला है। क्योंकि ईश्वर को कर्ज लेने का कोई भी प्रयोजन नहीं॥ १५४॥

नोट—हजरत ने एक बीबी अपनी मैकूफ कर दी खातर से और बीबियों से। हजरत की मर्यम नामी एक बांदी से प्रीति बहुत थी। और इस बात को उनकी एक बीबी ने जानकर रोका। हजरत ने खफा होकर उसको तलाक दे दी। ये आयत हजरत की औरतों की तरफ है। किसी दिन कोई बीबी रूस गई होगी, उस बात पर यह आयत उतरी कि ऐ नबी की स्त्रियो! यह घमंड मत करो कि पैग़म्बर के लिये हम ही हैं, नहीं सिवाय तुम्हारे और भी बीबियां बदल सकते हैं।

१५५. ऐ नबी क्यों हराम करता है उस वस्तु को कि हलाल किया है ख़ुदा ने तेरे लिये, चाहता है तू प्रसन्नता बीबियों अपनी की, और अल्लाह क्षमा करने वाला दयालु है॥ जल्दी है मालिक उस का जो वह तुम को छोड़ देते तो यह है कि उस को तुम से अच्छी मुसलमान और ईमान वालियाँ बीबियाँ बदल दे सेवा करने वालियाँ तोबा: करने वालियाँ भक्ति करने वालियाँ रोज़ा रखने वालियाँ पुरुष देखी हुई और बिन देखी हुई॥ —मं० ७। सि० २८। सू० ६६। आ० १।५॥

समीक्षक—ध्यान देकर देखना चाहिये कि ख़ुदा क्या हुआ मुहम्मद साहेब के घर का भीतरी और बाहरी प्रबन्ध करने वाला भृत्य ठहरा!!

प्रथम आयत पर दो कहानियाँ हैं—एक तो यह कि मुहम्मद साहेब को शहद का शर्बत प्रिय था। उनकी कई बीबियाँ थीं उनमें से एक के घर पीने में देर लगी तो दूसरियों को असह्य प्रतीत हुआ, उनके कहने सुनने के पीछे मुहम्मद साहेब सौगन्ध खा गये कि हम न पीवेंगे।

दूसरी यह कि उनकी कई बीबियों में से एक की बारी थी। उसके यहाँ रात्री को गये तो वह न थी; अपने बाप के यहाँ गई थी। मुहम्मद साहेब ने एक लौंडी अर्थात् दासी को बुला कर पवित्र किया। जब बीबी को इसकी ख़बर मिली तो अप्रसन्न हो गई। तब मुहम्मद साहेब ने सौगन्ध खाई कि मैं ऐसा न करूँगा। और बीबी से भी कह दिया कि तुम किसी से यह बात मत कहना। बीबी ने स्वीकार किया कि न कहूँगी। फिर उन्होंने दूसरी बीबी से जा कहा। इस पर यह आयत ख़ुदा ने उतारी ''जिस वस्तु को हमने तेरे पर हलाल किया उसको तू हराम क्यों करता है?''

बुद्धिमान् लोग विचारें कि भला कहीं ख़ुदा भी किसी के घर का निमटेरा करता फिरता है? और मुहम्मद साहेब के तो आचरण इन बातों से प्रकट ही हैं, कहने की क्या बात है।

और दूसरी आयत से प्रतीत होता है कि मुहम्मद साहेब से उनकी कोई बीबी अप्रसन्न हो गई होगी, उसपर खुदा ने यह आयत उतारकर उसको धमकाया होगा कि यदि तू गड़बड़ करेगी और मुहम्मद साहेब तुझे छोड़ देंगे तो उनका खुदा तुझसे अच्छी बीबियाँ देगा कि जो पुरुष से न मिली हों।

जिस मनुष्य को तनिक-सी बुद्धि है वह विचार ले सकता है कि ये खुदा-वुदा के काम हैं वा अपने प्रयोजन सिद्धि के! ऐसी-ऐसी बातों से ठीक सिद्ध है कि खुदा कोई नहीं कहता था, केवल देश-काल देखकर अपने प्रयोजन के सिद्ध होने के लिए खुदा की तर्फ़ से मुहम्मद साहेब कह देते थे। जो लोग खुदा ही की तर्फ़ लगाते हैं उनको हम क्या सब बुद्धिमान् यही कहेंगे कि खुदा क्या ठहरा मानो मुहम्मद साहेब के लिए बीबियाँ लानेवाला नाई ठहरा!!!॥

भला! जो अनेक स्त्रियों को रक्खे वह ईश्वर का भक्त वा पैग़म्बर कैसे हो सके? और जो एक स्त्री का पक्षपात से अपमान करे और दूसरी का मान्य करे, वह पक्षपाती होकर अधर्मी क्यों नहीं और जो बहुत सी स्त्रियों से भी सन्तुष्ट न होकर, बांदियों के साथ फसे, उन को लज्जा, भय और धर्म कहां से रहे? किसी ने कहा है कि—

कामातुराणां न भयं न लज्जा

जो कामी मनुष्य हैं उन को अधर्म से भय वा लज्जा नहीं होती।

और इन का ख़ुदा भी मुहम्मद साहेब की स्त्रियों और पैग़म्बर के झगड़े को फैसला करने में जानो सरपञ्च बना है। अब बुद्धिमान् लोग विचार लें कि यह क़ुरान किसी विद्वान् वा ईश्वरकृत है वा किसी अविद्वान् मतलबसिन्धु की बनाई? स्पष्ट विदित हो जायगा॥ १५५॥

१५६. ऐ नबी! झगड़ा कर काफिरों और गुप्त शत्रुओं से और सख़्ती कर ऊपर उनके॥ —मं० ७। सि० २८। सू० ६६। आ० ९॥

समीक्षक—और देखिये मुसलमानों के ख़ुदा की लीला! अन्य मत वालों से लड़ने के लिये पैग़म्बर और मुसलमानों को उचकाता है इसीलिये आज तक मुसलमान लोग उपद्रव करने में प्रवृत्त रहते हैं। परमात्मा मुसलमानों पर कृपादृष्टि करे, जिस से ये लोग उपद्रव करना छोड़ के, सब से मित्रता से वर्त्तें॥ १५६॥

१५७. फट जावेगा आसमान, बस वह उस दिन सुस्त होगा॥ और फ़रिश्ते होंगे ऊपर किनारों उसके के, और उठावेंगे तख़्त मालिक तेरे का ऊपर अपने उस दिन आठ जन॥ उस दिन सामने लाये जाओगे तुम, न छिपी रहेगी कोई बात छिपी हुई॥ बस जो कोई दिया गया कर्मपत्र अपना बीच दाहिने हाथ अपने के, बस कहेगा लो पढ़ो कर्मपत्र मेरा॥ और जो कोई दिया गया कर्मपत्र बीच बांये हाथ अपने के, बस कहेगा हाय न दिया गया होता मैं कर्मपत्र अपना॥

—मं० ७। सि० २९। सू० ६९। आ० १६।१७।१८।१९।२५॥

समीक्षक—वाह क्या फ़िलासफ़ी और न्याय की बात है! भला आकाश भी कभी फट सकता है? क्या वह वस्त्र के समान है जो फट जावे? यदि ऊपर के लोक को आसमान कहते हैं तो यह बात विद्या से विरुद्ध है। अब क़ुरान का ख़ुदा शरीरधारी होने में कुछ संदिग्ध न रहा, क्योंकि तख़्त पर बैठना, आठ कहारों से उठवाना, विना मूर्त्तिमान् के कुछ भी नहीं हो सकता? और सामने वा पीछे भी आना जाना मूर्त्तिमान् ही का हो सकता है। जब वह मूर्त्तिमान् है, तो एकदेशी होने से सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् नहीं हो सकता और सब जीवों के सब कर्मों को कभी नहीं जान सकता। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पुण्यात्माओं के दाहिने हाथ में पत्र देना, बँचवाना, बहिश्त में भेजना और पापात्माओं के बांये हाथ में कर्मपत्र का देना, नरक में भेजना, कर्मपत्र बाँच के न्याय करना सर्वज्ञ का काम नहीं। यह सब लीला लड़केपन की है॥ १५७॥

१५८. पढ़ते हैं फ़रिश्ते और रूह तर्फ़ उस की वह अज़ाब होगा बीच उस दिन के कि है परिमाण उसका पचास हज़ार वर्ष॥ जब कि निकलेंगे क़बरों में से दौड़ते हुए मानो कि वे बुतों के स्थानों की ओर दौड़ते हैं॥ —मं० ७। सि० २९। सू० ७०। आ० ४।४३॥

समीक्षक—जब फ़रिश्ते पढ़ते हैं तब ख़ुदा क्या करता है? सुनता है? क्या पढ़ नहीं सकता? आलसी है? यदि पचास हज़ार वर्ष की रात्रि का परिमाण है, तो पचास हज़ार वर्ष का दिन क्यों नहीं किया? यदि उतना बड़ा दिन नहीं है, तो उतनी बड़ी रात कभी नहीं हो सकती। रात्रि में न्याय करना अच्छा नहीं, किन्तु दिन ही न्याय के लिये है। क्या पचास हज़ार वर्षों तक ख़ुदा फ़रिश्ते और कर्मपत्र वाले खड़े-खड़े वा बैठे अथवा जागते ही रहेंगे? यदि ऐसा है, तो सब रोगी हो कर पुनः मर ही जायेंगे। क्या क़बरों से निकल कर ख़ुदा की कचहरी की ओर दौड़ेंगे? उन के पास सम्मन क़बरों में क्योंकर पहुंचा? और उन बिचारों को जो कि पुण्यात्मा, पापात्मा हैं इतने समय तक सभी को दौरे सुपुर्द क़बरों में कैद क्यों रक्खा? और आजकल ख़ुदा की कचहरी बन्ध होगी और ख़ुदा तथा फ़रिश्ते निकम्मे बैठे होंगे? अथवा क्या काम करते हैं? अपने-अपने स्थानों में बैठे इधर-उधर घूमते, सोते, नाच-तमाशा देखते वा ऐश-आराम कर रहे होंगे। ऐसा अन्धेर किसी के राज्य में न होगा। ऐसी-ऐसी बातों को सिवाय जंगलियों के दूसरा कौन मानेगा?॥ १५८॥

१५९. निश्चय उत्पन्न किया है तुम को कई प्रकार से॥ क्या नहीं देखा तुमने कैसे उत्पन्न किया अल्लाह ने आसमानों को ऊपर तले॥ और किया चांद को बीच उन के प्रकाशक और किया सूर्य्य को दीपक॥

—मं० ७। सि० २९। सू० ७१। आ० १४।१५।१६॥

समीक्षक—यदि जीवों को ख़ुदा ने उत्पन्न किया है तो वे नित्य, अमर कभी नहीं रह सकते? फिर बहिश्त में सदा क्योंकर रह सकेंगे? जो उत्पन्न होता है, वह वस्तु अवश्य नष्ट हो जाता है। आसमान को ऊपर तले कैसे बना सकता है? क्योंकि वह निराकार और विभु पदार्थ है। यदि दूसरी चीज़ का नाम आकाश रखते हो तो, भी उस का आकाश नाम रखना व्यर्थ है। यदि ऊपर तले आसमानों को बनाया है, तो उन सब के बीच में चाँद सूर्य्य कभी नहीं रह सकते। जो बीच में रक्खा जाय, तो एक ऊपर और एक नीचे का पदार्थ प्रकाशित हो। दूसरे से ले कर सब में अन्धकार रहना चाहिये। ऐसा नहीं दीखता, इसलिये यह

बात सर्वथा मिथ्या है॥ १५९॥

१६०. और यह कि मसजिदें वास्ते अल्लाह के हैं, बस मत पुकारो साथ अल्लाह के किसी को॥ —मं० ७। सि० २९। सू० ७२। आ० १८॥

समीक्षक—यदि यह बात सत्य है तो मुसलमान लोग **'लाइलाह इल्लिलाः मुहम्मदर्रसूलल्लाः'** इस कलमे में ख़ुदा के साथ मुहम्मद साहेब को क्यों पुकारते हैं? यह बात क़ुरान से विरुद्ध है और जो विरुद्ध नहीं करते, तो इस क़ुरान की बात को झूठ करते हैं। जब मसजिदें ख़ुदा के घर हैं, तो मुसलमान महाबुतपरस्त हुए। क्योंकि जैसे पुराणी, जैनी छोटी सी मूर्त्ति को ईश्वर का घर मानने से बुतपरस्त ठहरते हैं, ये लोग क्यों नहीं?॥ १६०॥

१६१. इकट्ठा किया जावेगा सूर्य और चाँद॥

—मं० ७। सि० २९। सू० ७५। आ० ९॥

समीक्षक—भला सूर्य्य चाँद कभी इकट्ठे हो सकते हैं? देखिये! यह कितनी बेसमझ की बात है। और सूर्य चन्द्र ही के इकट्ठे करने में क्या प्रयोजन तथा अन्य सब लोकों को इकट्ठे न करने में क्या युक्ति है? ऐसी-ऐसी असम्भव बातें परमेश्वरकृत कभी हो सकती हैं? विना अविद्वानों के अन्य किसी विद्वान् की भी नहीं होतीं॥ १६१॥

१६२. और फिरेंगे ऊपर उन के लड़के सदा रहने वाले, जब देखेगा तू उन को, अनुमान करेगा तू उन को मोती बिखरे हुए॥ और पहनाये जावेंगे कंगन चांदी के और पिलावेगा उन को रब उनका शराब तहूरा॥ —मं० ७। सि० २९। सू० ७६। आ० १९। २१॥

समीक्षक—क्योंजी मोती के वर्ण से लड़के किस लिये वहां रक्खे जाते हैं? क्या जवान लोग सेवा वा स्त्रीजन उन को तृप्त नहीं कर सकतीं? क्या आश्चर्य है कि जो यह महा बुरा कर्म लड़कों के साथ दुष्टजन करते हैं उस का मूल यही क़ुरान का वचन हो! और बहिश्त में स्वामी सेवकभाव होने से स्वामी को आनन्द और सेवक को परिश्रम होने से स्वर्ग में दुःख तथा पक्षपात क्यों होता है? और जब ख़ुदा ही उन को मद्य पिलावेगा तो वह भी उन का सेवकवत् ठहरेगा, फिर ख़ुदा की बड़ाई क्योंकर रह सकेगी? और वहां बहिश्त में स्त्री पुरुष का समागम

और गर्भस्थिति और लड़के-बाले भी होते हैं वा नहीं? यदि नहीं होते तो उन का विषयसेवन करना व्यर्थ हुआ और जो होते हैं तो वे जीव कहां से आये? और विना ख़ुदा की सेवा के बहिश्त में क्यों जन्मे? यदि जन्मे तो उन बिचारों को विना ईमान लाने और ख़ुदा की भक्ति करने से बहिश्त उनको मुफ्त मिल गया। किन्हीं को तो ईमान लाने और किन्हीं को विना धर्म के सुख मिल जाने से दूसरा बड़ा अन्याय कौन सा होगा?॥ १६२॥

१६३. बदला दिये जावेंगे कर्मानुसार॥ और प्याले हैं भरे हुए॥ जिस दिन खड़े होंगे रूह और फ़रिश्ते सफ़ बांध कर॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ७८। आ० २६।३४।३८॥

समीक्षक—यदि कर्मानुसार फल दिया जाता है तो सदा बहिश्त में रहने वाले हूरें, फ़रिश्ते और मोती के सदृश लड़कों को कौन कर्म के अनुसार सदा के लिये बहिश्त मिला? जब प्याले भर-भर शराब पीयेंगे तो मस्त होकर क्यों न लड़ेंगे? और रूह निराकार होने से वहां खड़ी क्योंकर हो सकेगी? और ख़ुदा उस समय खड़ा होगा वा बैठा?॥ १६३॥

१६४. जब कि सूर्य लपेटा जावे॥ और जब कि तारे गदले हो जावें॥ और जब कि पहाड़ चलाये जावें।। और जब आसमान की खाल उतारी जावे॥ —मं० ७। सि० ३०। सू० ८१। आ० १।२।३।११॥

समीक्षक—यह बड़ी बेसमझ की बात है कि गोल सूर्यलोक कैसे लपेटा जावेगा? और तारे गदले क्योंकर हो सकेंगे? और पहाड़ जड़ होने से चलेंगे कैसे? और आकाश को क्या पशु समझा कि उस की खाल निकाली जावेगी? यह बड़ी ही मूर्खता और जंगलीपन की बात है॥ १६४॥

१६५. और जब कि आसमान फट जावे॥ और जब तारे उड़ जावें॥ और जब दर्या चीरे जावें और जब क़बरें जिला कर उठाई जावें॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ८२। आ० १।२।३।४॥

समीक्षक—वाह जी क़ुरान के बनाने वाले फ़िलासफ़र! आकाश को क्योंकर फाड़ सकेगा? और तारों को कैसे उड़ा सकेगा? और दर्या क्या लकड़ी है जो चीर डालेगा? और कब्रें क्या मुर्दे हैं जो जिला सकेगा? ये सब बातें लड़के के सदृश हैं॥ १६५॥

१६६. क़सम है आसमान बुर्जों वाले की॥ किन्तु वह क़ुरान है बड़ा॥ बीच लौह रक्षा के॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ८५। आ० १।२१।२२॥

समीक्षक—इस क़ुरान के बनाने वाले ने भूगोल खगोल भी नहीं पढ़ा था, नहीं तो आकाश को क़िले के समान बुर्जों वाला क्यों कहता! यदि मेषादि राशियों को बुर्ज कहते हैं, तो अन्य बुर्ज क्यों नहीं? इसलिये यह बुर्ज नहीं हैं, किन्तु सब तारे लोक हैं। क्या वह क़ुरान ख़ुदा के पास है? यदि यह क़ुरान उस का किया है, तो वह भी इससे अधिक विद्या और युक्ति से विरुद्ध होकर अविद्या से भरा होगा॥ १६६॥

१६७. निश्चय वे मकर करते हैं एक मकर॥ और मैं भी मकर करता हूं एक मकर॥ —मं० ७। सि० ३०। सू० ८६। आ० १५।१६॥

समीक्षक—मकर कहते हैं ठगपन को, क्या ख़ुदा भी ठग है? और क्या चोरी का जवाब चोरी और झूठ का जवाब झूठ है? क्या कोई चोर भले आदमी के घर में चोरी करे, तो क्या भले आदमी को चाहिये कि उस के घर में जा के चोरी करे?॥ १६७॥

१६८. और जब आवेगा मालिक तेरा और फ़रिश्ते पंक्ति बांध के॥ और लाया जावेगा उस दिन दोज़ख़ को॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ८९। आ० २२।२३॥

समीक्षक—कहो जी! जैसे कोटवाल वा सेनाध्यक्ष अपनी सेना को लेकर पंक्ति बांध फिरा करे वैसा ही इन का ख़ुदा है। क्या दोज़ख़ घड़ा सा है कि जिस को उठाके जहाँ चाहे वहाँ ले जावें। यदि इतना छोटा है तो असंख्य क़ैदी उस में कैसे समा सकेंगे?॥ १६८॥

१६९. बस कहा था वास्ते उन के पैग़म्बर ख़ुदा के ने, रक्षा करो ऊंटनी ख़ुदा की को, और पानी पिलाना उसके को। बस झुठलाया उस को, बस पांव काटे उस के, बस मरी डाली ऊपर उन के, रब उनके ने॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ९१। आ० १३।१४॥

समीक्षक—क्या ख़ुदा भी ऊंटनी पर चढ़ के सैल किया करता

है ? नहीं तो किसलिये रक्खी और विना क़यामत के अपना नियम तोड़ उन पर मरी रोग क्यों डाला ? यदि डाला तो उन को दण्ड किया, फिर कयामत की रात में न्याय और उस रात का होना झूठ समझा जायगा ? इस ऊंटनी के लेख से यह अनुमान होता है कि अरब देश में ऊंट, ऊंटनी के सिवाय दूसरी कोई सवारी नहीं होती हैं। इसीलिये किसी अरब देशी ने क़ुरान बनाया है॥ १६९ ॥

१७०. यों जो न रुकेगा अवश्य घसीटेंगे साथ बालों माथे के॥ वह माथा, कि झूठा है और अपराधी॥ हम बुलावेंगे फ़रिश्ते दोज़ख़ को॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ९६। [आ० १५।१६।१८॥]

समीक्षक—यह नीच, चपरासियों का काम घसीटने से भी ख़ुदा न बचा। भला माथा भी कभी झूठा और अपराधी हो सकता है ? सिवाय जीव के, भला यह भी कभी ख़ुदा हो सकता है कि जैसे जेलखाने के दरोगा को जिले का हाक़िम बुलावा भेजे॥ १७०॥

१७१. निश्चय उतारा हम ने बीच रात क़दर के॥ और क्या जाने तू क्या है रात क़दर की ?॥ उतरते हैं फ़रिश्ते और पवित्र आत्मा बीच उस के, साथ आज्ञा मालिक अपने के, वास्ते हर काम के॥

—मं० ७। सि० ३०। सू० ९८। आ० १।२।४॥

समीक्षक—यदि एक ही रात में क़ुरान उतारा तो वह आयत अर्थात् उस समय में उतरी और धीरे-धीरे उतारा यह बात सत्य क्योंकर हो सकेगी ? और रात्री अन्धेरी है इस में क्या पूछना है ? वहाँ लिख आये हैं ऊपर नीचे कुछ भी नहीं हो सकता और यहां लिखते हैं कि फ़रिश्ते और पवित्रात्मा ख़ुदा के हुक्म से संसार का प्रबंध करने के लिये आते हैं। इस से स्पष्ट हुआ कि ख़ुदा मनुष्यवत् एकदेशी है। अब तक देखा था कि खुदा फ़रिश्ते और पैग़म्बर तीन की कथा है, अब एक पवित्रात्मा चौथा निकल पड़ा ? अब न जाने यह चौथा पवित्रात्मा क्या है ? यह तो ईसाइयों के मत अर्थात् पिता, पुत्र और पवित्रात्मा तीन के मानने से चौथा भी बढ़ गया। यदि कहे कि हम इन तीनों को ख़ुदा नहीं मानते, ऐसा भी हो, परन्तु जब पवित्रात्मा पृथक् है तो ख़ुदा फ़रिश्ते और पैग़म्बर को पवित्रात्मा कहना चाहिए वा नहीं ? यदि पवित्रात्मा हैं,

तो एक ही का नाम पवित्रात्मा क्यों ? और घोड़े आदि जानवर, रात दिन और क़ुरान आदि की ख़ुदा क़समें खाता है, क़समें खाना भले लोगों का काम नहीं॥ १७१ ॥

अब यह क़ुरान के विषय को लिख के बुद्धिमानों के सम्मुख स्थापित करता हूं कि यह पुस्तक कैसा है ? मुझ से पूछो तो यह किताब न ईश्वर, न विद्वान् और न विद्या की हो सकती है। यह तो बहुत थोड़ा सा दोष प्रकट किया, इसलिये कि लोग धोखे में पड़ कर अपना जन्म व्यर्थ न गमावें। जो कुछ थोड़ा सा इसमें सत्य है वह वेदादि विद्या पुस्तकों के अनुकूल होने से जैसे मुझ को ग्राह्य है, वैसे अन्य भी मज़हब के हठ और पक्षपात रहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है। इस के विना जो कुछ इस में है वह सब अविद्या भ्रमजाल और मनुष्य के आत्मा को पशुवत् बना कर, शान्तिभङ्ग करा के, उपद्रव मचा, मनुष्यों में विद्रोह फैला, परस्पर दुःखोन्नति करने वाला विषय है। और पुनरुक्त दोष का तो क़ुरान जानो भंडार ही है। परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करे कि सब की प्रीति, परस्पर मेल और एक दूसरे के सुख की उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना वा दूसरे मतमतान्तरों का दोष पक्षपात रहित हो कर प्रकाशित करता हूं, इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें, तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट, मेल हो कर आनन्द में ऐक्य मत हो के, सत्य की प्राप्ति सिद्ध न हो। यह थोड़ा क़ुरान के विषय में लिखा, इस को बुद्धिमान् धार्मिक लोग ग्रन्थकार के अभिप्राय को समझ लाभ लेवें। यदि कहीं भ्रम से अन्यथा लिख गया हो तो उस को शुद्ध कर लेवें।

अब एक बात यह शेष है कि बहुत से मुसलमान ऐसा कहा करते और लिखा वा छपवाया करते हैं ''हमारे मज़हब की बात अथर्ववेद में लिखी हैं।'' इस का यह उत्तर है कि अथर्ववेद में इस बात का नाम निशान भी नहीं है।

प्रश्न—क्या तुमने सब अथर्ववेद देखा है ? यदि देखा होता तो अल्लोपनिषद् देखो! यह साक्षात् उस में लिखी है; क्यों कहते हो कि अथर्ववेद में मुसलमानों का नाम निशान भी नहीं है।

अथाल्लोपनिषदं व्याख्यास्यामः

अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते।
इल्लल्ले वरुणो राजा पुनर्द्दुः।
हया मित्रो इल्लां इल्लल्ले इल्लां वरुणो मित्रस्तेजस्कामः॥ १॥
होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्र महासुरिन्द्राः।
अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणं अल्लाम्॥ २॥
अल्लोरसूलमहामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम्॥ ३॥
आदल्लाबूकमेककम्॥ अल्लाबूक निखातकम्॥ ४॥
अल्लो यज्ञेन हुतहुत्वा। अल्ला सूर्य्यचन्द्रसर्वनक्षत्राः॥ ५॥
अल्ला ऋषीणां सर्वदिव्यां इन्द्राय पूर्वं माया परममन्तरिक्षाः॥ ६॥
अल्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम्॥ ७॥
इल्लां कबर इल्लां कबर इल्लां इल्लल्लेति इल्लल्लाः॥ ८॥
ओम् अल्लाइल्लल्ला अनादिस्वरूपाय अथर्वणाश्यामा हुं ह्रीं जनानपशूनसिद्धान् जलचरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट्॥ ९॥
असुरसंहारिणी हुं ह्रीं अल्लोरसूलमहमदरकबरस्य अल्लो अल्लाम् इल्लल्लेति इल्लल्लाः॥ १०॥

इत्यल्लोपनिषत् समाप्ता॥

जो इस में प्रत्यक्ष मुहम्मद साहब रसूल लिखा है इस से सिद्ध होता है कि मुसलमानों का मत वेदमूलक है।

उत्तर—यदि तुमने अथर्ववेद न देखा हो, तो हमारे पास आओ! आदि से पूर्त्ति तक देखो। अथवा जिस किसी अथर्ववेदी के पास बीस काण्डयुक्त मन्त्रसंहिता अथर्ववेद को देख लो। कहीं तुम्हारे पैग़म्बर साहब का नाम वा मत का निशान न देखोगे! और जो यह अल्लोपनिषद् है वह न अथर्ववेद में, न उस के गोपथ ब्राह्मण में है वा किसी शाखा में है। यह तो अकबरशाह के समय में अनुमान है कि किसी ने बनाई है। इस का बनाने वाला कुछ अर्बी और कुछ संस्कृत भी पढ़ा हुआ दीखता है क्योंकि इस में अरबी और संस्कृत के पद लिखे हुए दीखते हैं। देखो! **अस्मल्लां इल्ले मित्रा वरुणा दिव्यानि धत्ते** इत्यादि में जो कि दश अङ्क में लिखा है जैसे—इस में **अस्मल्लां** और **इल्ले** अर्बी और **मित्रा वरुणा दिव्यानि धत्ते** यह संस्कृत पद लिखे हैं वैसे ही सर्वत्र देखने में आने से किसी संस्कृत, अर्बी के पढ़े हुए ने बनाई है। यदि इस का अर्थ देखा जाता है तो भी यह कृत्रिम, अयुक्त, वेद और व्याकरण-रीति से विरुद्ध सिद्ध होती है। जैसी यह उपनिषद् बनाई है, वैसी बहुत सी उपनिषदें मतमतान्तरवाले पक्षपातियों ने बना ली हैं। जैसी स्वरूपोपनिषद्, नृसिंहतापनी, रामतापनी, गोपालतापनी बहुत सी बना ली हैं।

प्रश्न—आज तक किसी ने ऐसा नहीं कहा, अब तुम कहते हो, हम तुम्हारी बात सच कैसे मानें?

उत्तर—तुम्हारे मानने वा न मानने से हमारी बात झूठ नहीं हो सकती। हां! जिस प्रकार से मैंने इसको अयुक्त ठहराई है, उसी प्रकार से जब तुम अथर्ववेद, गोपथ वा इस की शाखाओं के प्राचीन लिखित पुस्तकों में जैसा का तैसा लेख दिखलाओ और अर्थसंगति से भी शुद्ध करो, तब तो सप्रमाण हो सकती है।

प्रश्न—देखो! हमारा मत कैसा अच्छा है कि जिस में सब प्रकार का सुख और अन्त में मुक्ति होती है।

उत्तर—ऐसे ही अपने-अपने मत वाले सब कहते हैं कि हमारा ही मत अच्छा है, बाक़ी सब बुरे। विना हमारे मत के दूसरे मत से मुक्ति नहीं हो सकती। अब हम तुम्हारी बात को सच्ची मानें वा उनकी? हम तो यही मानते हैं कि सत्यभाषण, अहिंसा, दया आदि शुभगुण सब मतों में अच्छे हैं और बाक़ी वाद, विवाद, ईर्ष्या, द्वेष, मिथ्याभाषणादि कर्म सब मतों में बुरे हैं। यदि तुमको सत्य मत ग्रहण की इच्छा हो, तो वैदिक मत को ग्रहण करो।

इस के आगे स्वमन्तव्याऽमन्तव्य का प्रकाश संक्षेप से लिखा जायगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते यवनमतविषये
चतुर्दशःसमुल्लासः सम्पूर्णः॥ १४॥

ओ३म्

अथ स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिस को सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी, इसीलिये इस को सनातन नित्यधर्म कहते हैं कि जिस का विरोधी कोई भी न हो सके। यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए उस को अन्यथा जानें वा मानें, उस का स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते, किन्तु जिस को आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सब को मन्तव्य और जिस को नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से उसका प्रमाण नहीं होता। अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनिमुनि पर्य्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ जिन को कि मैं मानता हूँ सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ।

मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में एक सा सब के सामने मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है यदि मैं पक्षपात करता तो आर्य्यावर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो-जो आर्य्यावर्त्त वा इन देशों में अधर्मयुक्त चाल चलन है उस का स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उन का त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्म से बहिः है।

मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न

डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं—कि चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित हों—उन की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्त्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उस का नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उस को कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे। इस में श्रीमान् महाराजे भर्तृहरि, व्यास जी और मनु ने श्लोक लिखे हैं, उन का लिखना उपयुक्त समझ कर लिखता हूँ—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥ १॥

—भर्तृहरिशतक [नीतिशतक ८५]

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥ २॥

—महाभारत [उद्योगपर्व-प्रजागरपर्व अ० ४०। श्लोक ११-१२]

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति॥ ३॥

—मनु० [८।१७]

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाऽऽक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥ ४॥

—मुण्डकोपनिषद् [३।१।६]

न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत्॥ ५॥ —उपनिषदि॥

[तुलना—मनु० ८।१२]

इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय से अनुकूल निश्चय रखना सबको योग्य है।

अब मैं जिन-जिन पदार्थों को जैसा-जैसा मानता हूँ उन-उन का वर्णन संक्षेप से यहाँ करता हूँ कि जिनका विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थ में अपने-अपने प्रकरण में कर दिया है। इन में से प्रथम—

१. '**ईश्वर**' कि जिसको ब्रह्म, परमात्मादि नामों से कहते हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त परमेश्वर है उसी को मानता हूँ।

२. चारों '**वेदों**' को विद्या धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्रभाग को निर्भ्रान्त स्वत:प्रमाण मानता हूँ अर्थात् जो स्वयं प्रमाणरूप हैं, कि जिस के प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा न हो जैसे सूर्य्य वा प्रदीप स्वयं अपने स्वरूप के स्वत: प्रकाशक और पृथिव्यादि के प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं। और चारों वेदों के ब्राह्मण, छ: अङ्ग, छ: उपाङ्ग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उन को परत:प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इन में वेदविरुद्ध वचन हैं उन का अप्रमाण करता हूँ।

३. जो पक्षपातरहित न्यायाचरण सत्यभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उस को '**धर्म**' और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण, मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभङ्ग वेदविरुद्ध है उस को '**अधर्म**' मानता हूँ।

४. जो इच्छा, द्वेष, सुख, दु:ख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को '**जीव**' मानता हूँ।

५. जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं अर्थात् जैसे आकाश से मूर्त्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा, इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य व्यापक, उपास्य उपासक और पिता पुत्रवत् आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूँ।

६. '**अनादि पदार्थ**' तीन हैं। एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरी

प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण, इन्हीं को नित्य भी कहते हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उन के गुण, कर्म स्वभाव भी नित्य हैं।

७. '**प्रवाह से अनादि**' जो संयोग से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते, परन्तु जिस से प्रथम संयोग होता है वह सामर्थ्य उन में अनादि है, और उस से पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीन [को] प्रवाह से अनादि मानता हूँ।

८. '**सृष्टि**' उस को कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल हो कर नानारूप बनना।

९. '**सृष्टि का प्रयोजन**' यही है कि जिस में ईश्वर के सृष्टिनिमित्त गुण, कर्म, स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किस लिये हैं? उस ने कहा देखने के लिये। वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग कराना आदि भी।

१०. '**सृष्टि सकर्तृक**' है। इस का कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है। क्योंकि सृष्टि की रचना देखने, जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का '**कर्त्ता**' अवश्य है।

११. '**बन्ध**' सनिमित्तक अर्थात् अविद्यादि निमित्त से है। जो-जो पाप कर्म ईश्वरभिन्नोपासना, अज्ञानादि ये सब दु:ख फल करने वाले हैं। इसी लिये यह '**बन्ध**' है कि जिस की इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है।

१२. '**मुक्ति**' अर्थात् सब दु:खों से छूटकर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उस की सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुन: संसार में आना।

१३. '**मुक्ति के साधन**' ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य्य से विद्याप्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।

१४. '**अर्थ**' जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय। और जो अधर्म से सिद्ध होता है उस को '**अनर्थ**' कहते हैं।

१५. '**काम**' वह है कि जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय।

१६. '**वर्णाश्रम**' गुण कर्मों के योग से मानता हूँ।

१७. '**राजा**' उसी को कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित न्यायधर्म का सेवी, प्रजा में पितृवत् वर्त्ते और उन को पुत्रवत् मान के उन की उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे।

१८. '**प्रजा**' उस को कहते हैं कि जो पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव को धारण कर के पक्षपातरहित न्यायधर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोहरहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते।

१९. जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे, अन्यायकारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सब का सुख चाहे, उस को '**न्यायकारी**' मानता हूँ।

२०. '**देव**' विद्वानों को, और अविद्वानों को '**असुर**', पापियों को '**राक्षस**', अनाचारियों को '**पिशाच**' मानता हूँ।

२१. उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री, स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना '**देवपूजा**' कहाती है, इस से विपरीत अदेवपूजा। इन मूर्त्तियों की पूजा कर्त्तव्य, इन मूर्त्तियों से इतर जड़ पाषाणादि मूर्त्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूँ।

२२. '**शिक्षा**' जिस से विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और इनसे अविद्यादि दोष छूटें, उस को शिक्षा कहते हैं।

२३. '**पुराण**' जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूँ, अन्य भागवतादि को नहीं।

२४. '**तीर्थ**' जिससे दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ विद्यादानादि शुभ कर्म है उसी को तीर्थ समझता हूँ, इतर जलस्थलादि को नहीं।

२५. '**पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा**' इसलिये है कि जिस से संचित प्रारब्ध बनते जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं। इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।

२६. '**मनुष्य**' को सबसे यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि,

लाभ में वर्त्तना श्रेष्ठ, अन्यथा वर्त्तना बुरा समझता हूँ।

२७. '**संस्कार**' उसे कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवे। वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है। इसको कर्त्तव्य समझता हूँ और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये।

२८. '**यज्ञ**' उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थविद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभगुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, ओषधी की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना, उसको उत्तम समझता हूँ।

२९. जैसे '**आर्य्य**' श्रेष्ठ और '**दस्यु**' दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूँ।

३०. '**आर्य्यावर्त्त**' देश इस भूमि का नाम इसलिये है कि जिस में आदि सृष्टि से पश्चात् आर्य्य लोग निवास करते हैं परन्तु इस की अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्रा नदी है। इन चारों के बीच में जितना देश है उसी को '**आर्य्यावर्त्त**' कहते और जो इस में सदा रहते हैं उन को भी आर्य्य कहते हैं।

३१. जो साङ्गोपाङ्ग वेदविद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह '**आचार्य**' कहाता है।

३२. **शिष्य**—उस को कहते हैं कि जो सत्य शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य का प्रिय करने वाला है।

३३. **गुरु**—माता, पिता। और जो सत्य का ग्रहण करावे और असत्य को छुड़ावे वह भी '**गुरु**' कहाता है।

३४. **पुरोहित**—जो यजमान का हितकारी सत्योपदेष्टा होवे।

३५. **उपाध्याय**—जो वेदों का एकदेश वा अङ्गों को पढ़ाता हो।

३६. **शिष्टाचार**—जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्याग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग करना है यही शिष्टाचार, और जो इसको करता है

वह '**शिष्ट**' कहाता है।

३७. प्रत्यक्षादि आठ '**प्रमाणों**' को भी मानता हूँ।

३८. '**आप्त**' कि जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा, सब के सुख के लिये प्रयत्न करता है उसी को '**आप्त**' कहता हूँ।

३९. '**परीक्षा**' पाँच प्रकारी है। इस में से प्रथम जो ईश्वर उसके गुण कर्म स्वभाव और वेदविद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टिक्रम, चौथी आप्तों का व्यवहार और पांचवीं अपने आत्मा की पवित्रता, विद्या, इन पाँच परीक्षाओं से सत्याऽसत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग करना चाहिये।

४०. '**परोपकार**' जिससे सब मनुष्यों के दुराचार, दुःख छूटें, श्रेष्ठाचार और सुख बढ़ें, उसके करने को परोपकार कहता हूँ।

४१, '**स्वतन्त्र**' '**परतन्त्र**'—जीव अपने कामों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र, वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार काम करने में स्वतन्त्र है।

४२. **स्वर्ग**—नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।

४३ **नरक**—जो दुःख विशेष भोग और उसकी सामग्री को प्राप्त होना है।

४४. **जन्म**—जो शरीर धारण कर प्रकट होना सो पूर्व, पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार के मानता हूँ।

४५. शरीर के संयोग का नाम '**जन्म**' और वियोग मात्र को '**मृत्यु**' कहते हैं।

४६. **विवाह**—जो नियमपूर्वक प्रसिद्धि से अपनी इच्छा करके पाणिग्रहण करना '**विवाह**' कहाता है।

४७. **नियोग**—विवाह के पश्चात् पति के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा पुरुष आपत्काल में स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ पुरुष [वा स्त्री के] साथ नियोग कर सन्तानोत्पत्ति कर लेवें।

४८. **स्तुति**—गुणकीर्त्तन, श्रवण और ज्ञान होना, इसका फल प्रीति

आदि होते हैं।

४९. **प्रार्थना**—अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं, उनके लिये ईश्वर से याचना करनी और इसका फल निरभिमान आदि होता है।

५०. '**उपासना**'—जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना। ईश्वर को सर्वव्यापक, अपने को व्याप्य जान के, ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है, वैसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना, उपासना कहाती है, इस का फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

५१, '**सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना**'—जो-जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो-जो गुण नहीं हैं उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना सगुणनिर्गुण स्तुति कहाती है और शुभ गुणों के ग्रहण की ईश्वर से इच्छा और दोष छुड़ाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना सगुणनिर्गुणप्रार्थना और सब दोषों से रहित, सब गुणों से सहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना निर्गुणसगुणोपासना कहाती है।

ये संक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं। इनकी विशेष व्याख्या इसी '**सत्यार्थप्रकाश**' के प्रकरण-प्रकरण में है तथा भूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखी है। अर्थात् जो-जो बात सबके सामने माननीय है, उसको मानता अर्थात् जैसा कि सत्य बोलना सबके सामने अच्छा, और मिथ्या बोलना बुरा है, ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूँ। और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं प्रसन्न नहीं करता, क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट, सर्व सत्य का प्रचार कर, सब को ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़प्रीतियुक्त करा के, सब से सबको सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे और जिससे सब

लोग सहज से धर्म्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि करके, सदा उन्नत और आनन्दित होते रहैं, [यही] मेरा मुख्य प्रयोजन है।

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु।

ओ३म्। शन्नो मित्रः शं वरुणः। शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः। शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥
नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। आवीद्वक्तारम्।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

[तैत्तिरीय आरण्यक ७।१२]

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितः स्वमन्तव्यामन्तव्यसिद्धान्तसमन्वितः सुप्रमाणयुक्तः सुभाषाविभूषितः सत्यार्थप्रकाशोऽयं ग्रन्थः सम्पूर्तिमगमत्॥

सत्यार्थप्रकाशस्थ प्रमाणसूची